श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

सुख यहाँ (पूर्वार्द्ध)

(विपत्ति में हमारा सच्चा मित्र)

प्रवक्ता

अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री न्यायतीर्थ
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द महाराज'

प्रकाशक

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

प्रकाशकीय

प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है और दु ख से छूटना चाहता है। उसका प्रत्येक प्रयत्न सुख प्राप्ति के लिए ही होता है परन्तु दु ख के सिवाय उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। ससारी प्राणियो पर इतना विकट भ्रम का पहाड लदा है कि इसे चैन नहीं है। कर्तृत्व का भ्रम, स्वामित्व का भ्रम व आत्मीय भ्रम, को समाप्त करके हम अपने ज्ञानबल को दृढ बनाएँ तो सुख प्राप्त कर सकते हैं।

हमारी यह धारणा भ्रम मात्र है कि हमे अमुक पदार्थ सुखी करता है और अमुक दुखी करता है। सब पदार्थ अपने-अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से परिणमते हैं, एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का कुछ नहीं कर सकता। इस जीव के अन्दर ही विकल्पों की चक्की चल रही है। उस चक्की मे यह आत्म भगवान् पिसता जा रहा है, कोई दूसरा इसे दुखी करने वाला नहीं है।

जो सयोग मे सुख मानते हैं वे वियोग मे नियम से दुखी होगे। अत शरीर या अन्य पदार्थो में इष्ट-अनिष्ट कल्पना को त्यागकर, तथा उनसे मोह छोडकर ही हम सुखी हो सकते हैं।

पूज्य गुरुवर्य्य श्री सहजानन्द वर्णी जी महाराज ने "सहजानन्द गीता" की सस्कृत में ७ अध्यायों में अद्वितीय रचना की है। 'सुख यहाँ (पूर्वार्द्ध)' मे इस गीता के प्रथम ३ अधिकारो मे वर्णित श्लोको पर पूज्य महाराज श्री द्वारा दिये गये विस्तृत प्रवचन हैं। जिस समय हम दु ख से व्याकुल होते हैं, पाप कर्म का उदय होता है तो ये प्रवचन अमृत का कार्य करते हैं। वस्तु स्वरूप का ज्ञान होने पर घोर विपत्ति मे भी हम आकुलित नहीं होते हुए सकटो को सहन कर सकते हैं।

सहजानन्द गीता के सभी श्लोको का अन्तिम चरण है—

'स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।' इस पुनरावर्त्य चरण मे कहा गया है कि मैं अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊँ। अर्थात् सुख कहीं बाह्य पदार्थो मे न होकर स्व मे ही विद्यमान है।

पूज्य अध्यात्मयोगी श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज जी ने अत्यत सरल एव सुबोध शैली में रोचक दृष्टातों द्वारा प्रवचन कर दु खो से सतप्त मानवो को सुखी होने का उपाय बताया है।

वास्तव मे प्रस्तुत ग्रथ विपत्ति मे हमारा सच्चा मित्र है। 'सुख यहाँ' के प्रवचन कल्पवृक्ष व चिन्तामणि रत्न के समान हैं जिनके अभ्यास व चिन्तवन से सासारिक सुखो से परे पारलौकिक शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है। ये प्रवचन हमारे अज्ञानाधकार को दूर कर अध्यात्म साधना का मार्ग प्रशस्त करेगे।

ग्रन्थ की लोकप्रियता एव बढती हुई माग को ध्यान मे रखकर इस ग्रथ का चतुर्थ सस्करण आपके हाथो मे देते हुए अत्यत हर्ष हो रहा है। श्री सहजानन्द शास्त्रमाला सदर मेरठ पूज्य महाराज श्री के प्रवचनो के प्रकाशन मे सतत प्रयत्नशील है। आशा है पाठकगण लाभ उठाकर आनन्दरस का पान करेगे।

मत्री,

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ प्र)

पिन-२५०००१

टाईप सैटर्स-चित्रा कम्पयूटर्स, सामने कोतवाली, मेरठ। फोन २५०१६, ७७७३४

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्याय साहित्यशास्त्री

पूज्य श्री १०५ क्षु० गुरुवर्य्य मनोहरजी वर्णी
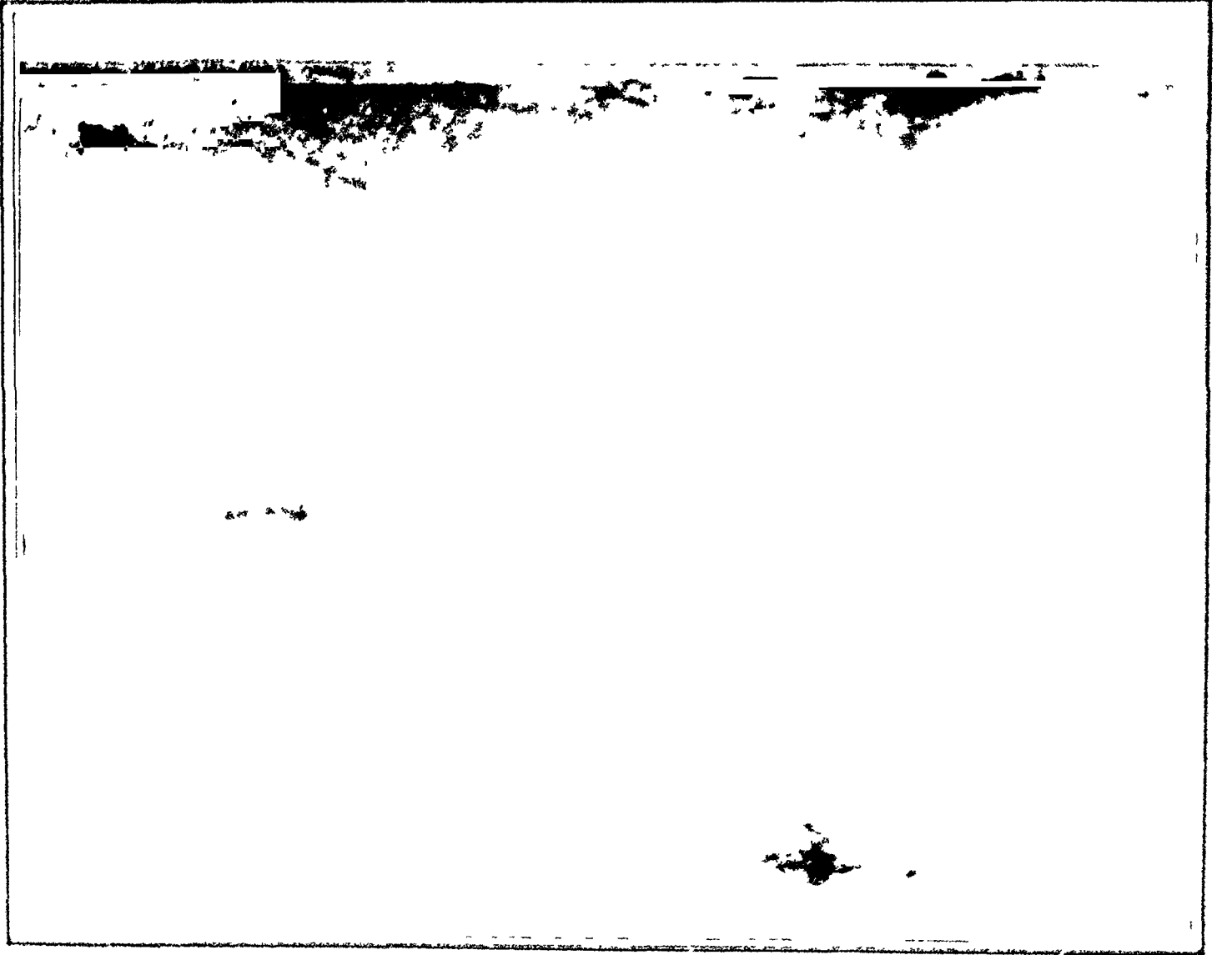
सहजानन्द महाराज

आत्मकीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी

"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज द्वारा विरचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ।।टेक।।

मैं वह हूँ जो हैं भगवान । जो मैं हूँ वह हैं भगवान ।।
अन्तर यही ऊपरी जान । वे विराग यहँ रागबितान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान । अमितशक्तिसुखज्ञाननिधान ।।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान । बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख-दुख दाता कोइ न आन । मोह राग रुष दुख की खान ।।
निजको निज परको पर जान । फिर दुखका नहि लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम । विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम । आकुलता का फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वय जगत परिणाम । मैं जगका करता क्या काम ।।
दूर हटो परकृत परिणाम । 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ।।५।।

आत्मभक्ति

मेरे शाश्वत शरण, सत्य तारणतरण ब्रह्म प्यारे ।

तेरी भक्ति मे क्षण जाय सारे ।टेक।

ज्ञान से ज्ञान मे ज्ञान ही हो, कल्पनाओ का इकदम विलय हो ।
भ्रान्ति का नाश हो, शान्ति का वास हो, ब्रह्म प्यारे ।तेरी० ।१।

सर्व गतियो मे रह गति से न्यारे, सर्व भावो मे रह उनसे न्यारे ।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाही विरत, ब्रह्म प्यारे ।तेरी० ।२।

सिद्धि जिनने भी अबतक है पाई, तेरा आश्रय हो उसमे सहाई ।
मेरे सकटहरण, ज्ञान दर्शन चरण, ब्रह्म प्यारे ।तेरी० ।३।

देह कर्मादि सब जगसे न्यारे, गुण व पर्यय के भेदो से पारे ।
नित्य अन्त अचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे ।तेरी० ।४।

आपका आप ही प्रेय तू है, सर्व श्रेयो मे नित श्रेय तू है ।
सहजानन्दी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे ।तेरी० ।५।

सुख यहाँ प्रथम भाग

(सहजानन्द गीता प्रवचन)

प्रवक्ता-अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

अज्ञानतिमिरान्धाना ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्रीगुरुवे नम ।।

बन्धुवर !

हम आप जीव है । जिनमे जानने देखने की शक्ति हो उन्हे जीव कहते है । जो इस शक्ति से रहित है उन्हे अजीव कहते है । जो जानने, देखने वाली ज्योति है वही मै हू । इस ज्योति के साथ अविनाभावी आनन्द है । इस आनन्द गुण के विकास सुख-दु ख व आनन्द है । सब जीव यही चाहते है कि मै सुखी रहू, दु ख न भोगू । हम जितना भी प्रयास करते है, काम करते है उसका उद्देश्य केवल यही है कि मै सुखी रहू, दु ख से छुटकारा पा जाऊ । सुख की खोज मे ही रात दिन लगा रहता है यह, लेकिन क्या अभी तक सुख प्राप्त कर सके ? नहीं । क्योकि हमारी खोज , हमारा प्रयास विवेक-पूर्ण नही है । हम जितना भी सुखी होने का प्रयास कर रहे है उसका परिणाम उल्टा ही होता है । कारण यह है कि हमारी खोज पर पदार्थो मे है । यदि हम स्वय को देखे, समझे, अनुभव करे तो यही पावेगे कि सुख कहीं नही , आनन्द किसी स्थान पर नही मिलता है, न बिकता है किन्तु मुझमे स्वय मे ही आनन्द लबालब भरा हुआ है । जिसकी प्राप्ति, भटकते रहने के कारण, मै आज तक न कर सका । हम आज तक दु खो को सुख मानकर भोगते रहे । विचारो तो ये जो पतगा, कीडे, मकोड़े, वनस्पति आदि जीव है, जिनकी हत्या करते हुए, जिनको नष्ट करते हुए प्राय लोगो को जरा भी सकोच नही होता, ये सब हमारी ही तो पर्याय है । और यदि यह दुर्लभ मनुष्य की पर्याय पाकर भी हम आत्मा को नही पहिचान सके तो इन चौरासी लाख योनियो मे वैसा ही भटकना पड़ेगा । मानवजीवन पाया, अत हम धन्य है । हम बोल भी सकते है, अपना दु ख व दर्द बता भी सकते है, सेवा भी कर सकते है । अपनी इच्छा व्यक्त भी कर सकते है। किन्तु इन गाय, भैस आदि को तो देखो कितना ही दु ख हो, कुछ भी कैसी परिस्थिति क्यो न हो, भाव भी व्यक्त नहीं कर सकते । चौरासी लाख योनियो म भटकने के बाद दुर्लभ मानवपर्याय पाकर भी हम नही चेते तो फिर हमारा कल्याण नही । पूर्वजन्म मे अच्छे कर्म किये थे इस पर्याय को प्राप्त करने के लिये । और इसको प्राप्त भी कर लिया है । तो भैया ! इसको यो ही न जाने दो । आत्मकल्याण करो । सबसे बडी यही बात है कि अपनी परिणति ठीक करो। हमारा ज्ञान व आचरण ठीक रहा तो इस पर्याय मे भी सुख है और अगली पर्याय मे भी सुख है, और

यदि हमारा ज्ञान व आचरण शुद्ध नही तो अगला भव तो दु खमय है ही और इस भव मे भी दु ख ही दु ख है। भैया भगवान चेतनामय, आनन्द ही आनन्द स्वरूप वाले है ज्ञान ही ज्ञान स्वरूप वाले है। ऐसे वे ज्योतिस्वरूप है जो अपने आनन्द मे रहा करते है । बस यही विचारो कि जब सर्वजीव का भी यही स्वरूप है व सबमे भगवान बस रहा है हम भी ज्ञान व आनन्दमय हैं । इस आनन्द का विकास धर्म के प्रसाद से होता है । धर्म के कार्यो मे सबसे पहिले जीवदया को ही धर्म बताया है । व्यवहार मे सबसे बड़ा और सबसे पहिला मानवधर्म है जीवमात्र पर दया करना । जिसके अन्दर दया नहीं वह आदर नही पाता और जिसके अन्दर सबके प्रति दयाभाव है वही आदर पाता है अत दया ही हमारा प्रथम धर्म है, यही विचार करना चाहिये ।

मूल दया तो अपने व सबके चैतन्यस्वरूप को देखने से आती है । सब जीव भगवान के स्वरूप समान चेतनाशक्ति-युक्त है । किन्तु माया के प्रपञ्च से दु खी हो रहे है । माया के आतक से ही तो अभी मनुष्य है तो फिर पशु पक्षी की पर्याय है । उन खोटी स्थितियो से वचने के लिये, अपना आचरण सुधारने के लिये अच्छा मार्ग सत्सग अपनाना चाहिये, कुमार्ग गमन से तो कोई भी सुखी नहीं होता । जैसे कि जुआ खेलते है रुपया पैसा लगाकर, किन्तु क्या वे उसमे सुख शान्ति पा लेते हैं । नहीं दु खी ही होते रहते है, क्योकि जहा लालसा है वही दु ख है । पाण्डवो को देखो जुए के कारण ही तो वे हीन बन गये ,द्रोपदी का अपमान सहन करना पड़ा । यह सब किसके कारण हुआ और क्या कारण था इसके अतिरिक्त । अत दु ख के सिवाय इन व्यसनो मे रखा ही क्या है ? इसी प्रकार मासभक्षण, मदिरापान, चोरी करना, शिकार खेलना, परस्त्रीसेवन व वेश्यागमन ये व्यसन भी क्लेश ही क्लेश हैं ।

इन सात व्यसनो का तो कम से कम प्रत्येक प्राणी को त्याग होना चाहिये । यदि इन सात चीजो का त्याग कर दिया तो जीवन सुखमय हो जायेगा । मासभक्षण मे कितनी निर्दयता है । देखो अपने शरीर मे यदि काटा लग जाता है या कोई चियुटी काट लेती है तो कितना दु ख होता है । और जिसका मास खाया जाता है उसे तो जान से ही खत्म कर दिया जाता है तब कितना दु ख होता है । बताइये कितना बड़ा स्वार्थ है कि मासभक्षियो को तो जरासा कल्पित स्वाद, और यहा इसके प्राणो की आहुति। उन्हे कितना दु ख नही होता होगा । अत भैया ! सोच विचार कर इस व्यसन का त्याग कर ही देना चाहिये । मनुष्य का भोजन भी मास नही है । बच्चे को भी शुरूमे यदि मास दोगे तो वह वमन कर देगा । प्रकृतिविरुद्ध भी तो बात है यह । शराब पीने से बेहोशी हो जाती है, जानने देखने की शक्ति नष्ट हो जाती है । उसका विश्वास भी फिर कोई नही करता । चोरी करना, जुआ खेलना, मास खाना, शिकार खेलना, मदिरा पीना, परस्त्रीसेवन करना । इनके भी द्वारा होने वाली बरबादी को विचार करके जीवन पर्यन्त इन व्यसनो का त्याग करना चाहिये । जिनको ध्यान भगवान मे लगाना है उन्हे इन्हे तुरन्त ही त्यागना चाहिये । इन व्यसनो से जीवका जो पतन होता है उससे यह पतित प्राणी प्रभु के बिल्कुल विमुख हो जाता है । आज जो हमारी स्थिति है यह पुण्य के प्रताप ही से तो है । तभी तो आज हम मनुष्ययोनिमे है । अत अब भी हमे अपना धर्म न छोडना चाहिये । यह जो शरीर है जिसपर हम

गर्व करते हुये नही अघाते हैं, क्या है यह ? केवल खून,पीप, मवाद आदि दुर्गन्धित वस्तुओ का ही तो पिण्ड है, जिसमे नवद्वार तो प्रकट बहते ही है, और रोम के करोड़ो छिद्रो से मल झरता है । कुछ भी तो सार नहीं है । फिर क्यो इससे इतना मोह, क्यो इतना गर्व इस नाशवान् वस्तुका, जिसके खातिर मांसभक्षण मदिरापान आदि जैसे घोर पाप किये जाते है ।

मदिरा (शराब) के पीने वालो का मनुष्य तो निरादर करते ही है, कुत्ते तक भी मुख मे अशुचि मूत्र क्षेपण कर निरादर कर डालते है । चोर को तो सदा शल्य ही रहती है वह तो छुपाछुपा ही रहना चाहता है । उसे तो कोई पास भी नही बैठने देता । शिकार खेलना तो अतिनिर्दयता है । परस्त्रीसेवन तो अनेक विपदाओ की खान है । परस्त्रीगामी पराधीन दीन बन जाता है उसके प्राण भी नष्ट कर दिये जाते है । वेश्या तो नरककी साक्षात् दूती है । ये व्यसन लौकिक आपदा तो पैदा करते ही है किन्तु इन व्यसनो से जीव ऐसा अधार्मिक हो जाता है कि वह न तो प्रभु के भजन के योग्य रहता है, न धर्म की बात समझने के योग्य रहता है और न शान्ति का जरा भी पात्र ही रहता है । व्यसन तो मुफ्त ही सिर पर ली हुई विपदा है ।

इन सात व्यसनो में से यदि एक भी साथ लग गया तो न तो वह प्राणी आराम से बैठ सकता है, न चार व्यक्तियो मे इज्जत ही पाता है, कोई उसका विश्वास नही करता, सब उसे झूठा समझने लगते है । परमार्थ से तो वह कोसो दूर रह जाता है । अत इन सात व्यसनो का त्याग करना ही चाहिये। आत्मा के हित के लिये क्या करना चाहिए ? यह अच्छी प्रकार विचार कर अच्छी बातो को धारण करो और बुरी आदतो को छोड़ दो । अपनी आजीविका न्यायपूर्वक करे और किसी का जी तक न दुखावे । बस यही विचारे कि मेरे कारण किसी को दु ख न पहुचे । उपकार और त्याग की ही तो महिमा है । जितना पर उपकार करोगे और स्वरूप दृष्टि रख जितना सासारिक परपदार्थो का त्याग करोगे उतने ही महान् बनोगे । जिन्दगी का सार यही है ।

जो जिन्दा है वह मरेगा तो अवश्य ही, इसमे सन्देह नही, किन्तु वह मरण अमर हो, ऐसा प्रयास करना चाहिए । सर्वप्रथम इन सात व्यसनो को त्यागकर अपनी आत्मा के कल्याण के मार्ग मे लगे, अपने को पहिचाने । यदि इस प्रकार का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर आचरण किया तो जीवन सफल हो जावेगा। इन सात व्यसनो के त्याग से धर्म का मर्म समझने की योग्यता आती है । व्यसनसेवी धर्मकी बात का स्पर्श भी करने का पात्र नही होता । अत यह तो सर्वप्रथम ही आवश्यक है कि सप्तव्यसनो का त्याग करे । धर्म जिसके कि कारण से क्लेश नष्ट होते हैं वह बाहर नहीं, आत्मवस्तु मे ही है । वस्तु अपने मे जिस स्वभाव को धारण करता है उसका नाम धर्म है । जैसे बिच्छू का धर्म काट लेना है, मानव का स्वभाव रक्षा करना है , अग्नि का धर्म जलाना है । इस तरह लोक व्यवहार की प्रसिद्धि से भी यही सिद्ध है कि वस्तु के स्वभाव का नाम धर्म है ।

एक उदाहरण है कि एक नदी मे बिच्छू बह रहा था । एक मनुष्य उसको निकालने के लिए नदी

के होते हुए भी कभी भी प्राणी को न अपने को तुच्छ समझना चाहिये तथा न ही किसी वात का अभिमान करना चाहिये । थोड़ा ज्ञान होने पर ही प्राणी अपने को बहुत बड़ा समझने लगता है, किन्तु जैसे-जैसे वह ज्ञान प्राप्त करता जाता है वैसे-वैसे ही वह अनुभूति करता है कि इतने विशाल ज्ञानके समक्ष मेरा ज्ञान बहुत ही कम है ।

देखो भैया ! कृतान्तवक्र सेनापति ने रागसम्बन्धी मोह वर्जित कर सब कठिनाइया आसान समझीं। ससार मे यदि प्राणी का सबसे बड़ा शत्रु है तो वह मोह माया है । इससे विरक्त होकर हम अपनी ओर आये । सुख यहा मिलेगा । हमे केवल दो बाते ही करनी है— (१) बाह्य मे ऐसी न्याय प्रवृत्ति हो जिससे मेरे अन्तरग की शुद्ध वर्तना मे बाधा न आवे। (२) ज्ञानानन्दघन निज आत्मतत्त्व की दृष्टि हो । इस ही दूसरी बात मे प्रभु की भक्ति भी अन्तर्निहित है ।

रागाभाव स्वय स्वाप्तावाप्तास्वो हि स्वभाववत् ।।
स्वे स्वं पर नमस्कृत्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-१।।

अर्थ— निज आत्मा की उपयोगद्वारा प्राप्ति होने पर स्वय राग द्वेष आदि क्लेशों का अभाव हो जाता है, और प्राप्त किया है स्व आत्मा को जिसने ऐसा वह परमात्मा निज के सहज भाव के समान है । इसलिये उस परमात्मा तथा स्वात्मा को अपने में नमस्कार करके मैं अपने में अपने लिये अपने द्वारा सुखी होऊं ।

इसमे नमस्कार किया गया है । लेकिन किसको ? चूकि प्राणी वस्तुत स्वय स्वय को ही नमस्कार करता है और परमात्मा को भी नमस्कार करता हो तो वह भी अपने मे ही किया जाता है । सो परमार्थ से नमस्कार खुद को ही किया जा सकता है । यहा भी खुद ही को नमस्कार है नम्रीभूत होने को नमस्कार कहते हैं । नमना या झुकना नमस्कार का द्योतक है । अपने आपके स्वरूप की ओर नमना भी अपने से ही होता है ।

आत्मा का स्वरूप परमात्मा के सदृश है । आत्मा का एव परमात्मा का स्वभाव चैतन्य स्वरूप है। भगवान् का जो विकास है वैसा ही होने का सब जीवो का स्वभाव है । अपने आपको पा लेने का नाम स्वय को नमस्कार है । अपने आपका दर्शन भी स्वय मे ही होता है । हम लोग जो मन्दिरो मे भगवान् की मूर्ति के सामने दर्शन करते है । सो जिसका दर्शन करना चाहते है उसका दर्शन भी चक्षु से नहीं होगा, ज्ञान से ही दर्शन होगा । चक्षु से तो केवल स्थापित मूर्ति का आकार ही दिखायी देगा । समवशरण मे भी परमात्मा का दर्शन आखो से नहीं होगा, वहा भी ज्ञान से दर्शन होगा । वहा भी अन्तरग मे ही दर्शन होगा । परमार्थ से तो भगवान् के स्वरूप मे ज्ञेयाकार से परिणित निज आत्मा के ही दर्शन होते है ।

वैसे तो समवशरण मे भी निराकार परमात्मस्वरूप का दर्शन नहीं होता किन्तु साकार शरीर का ही दर्शन होता है। सो ऐसे साकार शरीर के ही आखो से दर्शन होगे । जैसे यहा पर मन्दिर मे भगवान

हैं लोग । प्राणी रुपया पैसा वैभव को ही सब कुछ समझता है जबकि ज्ञान के समक्ष सब कुछ व्यर्थ है । देखो सर्वत्र महिमा ज्ञान की ही है । सब लोग ज्ञान को ही जानते हैं और ज्ञान को ही बताना चाहते है । ज्ञानदान की बहुत बड़ी महिमा है । किसी भी प्रकार दूसरो को ज्ञान का दान देना चाहिये, चाहे पुस्तके वितरण करके अथवा रुपया पैसा देकर, पढ़ाई कराकर या स्वय पढ़ाकर आदि । सोचो जब हम दूसरो का कुछ नहीं कर सकते तब भगवान् के लिए क्या कर सकते हैं? जिस प्रकार बम्बई घूमकर आये हुये प्राणी को बम्बई का सम्पूर्ण दृश्य अपनी आखो के समक्ष ही दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार जिसने अपने को पहिचान लिया उसे अपने मे ही प्रभु नजर आते हैं । विपरीत अवस्था मे दूर नजर आते है ।

जिस प्रकार शीशे (दर्पण) मे हाथी जैसा विशाल प्राणी भी दिखाई देता है उसी प्रकार ज्ञान मे सब कुछ प्रत्यक्ष झलकता है । यदि यह प्राणी किसी से राग करता है तो भी अपने लिए ही, द्वेष करता है तो भी अपने लिये ही । तात्पर्य यह है जो कुछ करता है सब कुछ अपने लिए ही करता है, दूसरो का कुछ नहीं । मै नमस्कार करता हू इसमे चाहे किसी को भी नमस्कार करने का उद्देश्य बनाया है किन्तु है सब कुछ अपने लिए ही । भगवान् को नमस्कार क्या दर्शको को दिखाने के लिए करते है ? मन्दिर मे जाकर नमस्कार करना दिखावा करना हो सकता है परन्तु अपने मे ही अपने द्वारा अपने को अपने लिए अपने आप अपने उद्धार के लिए नमस्कार किया जाता है । नमस्कार का तात्पर्य है, मैं अपने मे अपने लिए अपने आप समाकर सुखी होऊ ।

ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, चरित्रशक्ति की तरह ही आनन्दशक्ति है । जो जो अनुभूति बनती हैं वे सब अपने से ही बनती हैं । जब यह प्राणी आत्मानन्द का स्वाद एक बार आस्वादन कर लेता है तब उसे अन्य सब कुछ व्यर्थ लगता है । विलक्षण है ये आत्मानन्द की अनुभूति उस स्थिति मे प्राणी सोचता है कि मेरी यह आत्मा के आनन्द की अनुभूति निरन्तर बनी रहे अन्य कुछ नही । परमार्थ से अध्यात्मतत्व को ही नमस्कार किया जाता है । समवशरण मे भी भगवान् की मूर्ति ही नजर आती है । मन्दिरो मे जो मूर्ति है वह स्थापित मूर्ति है । आखो से देखने पर मुद्रा ही नजर आती है । ज्ञानमय ही भगवान् हैं । सो अपने मे मैं अपने को नमस्कार करता हू और पर परात्पर आत्मा को भी नमस्कार करता हू। अपनी प्राप्ति होना ही अपना नमस्कार है । अपने आत्मतत्व की प्राप्ति होने पर राग का स्वय अभाव होने लगता है। जिसने अपने आपको प्राप्त किया है ऐसा वह परमात्मा भी मेरे स्वभाव के अनुरूप है। अत मैं अपने मे अपने आपको व परमात्मा को नमस्कार करके अपने लिये अपने आप मे स्वय सुखी होऊ ।

यादृक् सिद्धात्मनो रूप तादृग्रूप निजात्मन ।
भ्रान्त्याँ क्लिष्टस्तु ससारे-स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-२।।

अर्थ– जैसा स्वरूप सिद्धात्मा का है, शक्ति की अपेक्षा से वैसा स्वरूप निज आत्मा का है, परन्तु ससार में भ्रम से क्लेश को प्राप्त हुआ , अब भ्रमरहित होता हुआ मैं अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊँ।

मुमुक्ष प्राणियो को विचार करना चाहिए कि जैसा सिद्ध प्रभु का स्वरूप है वही मेरा है, जैसा मेरा स्वरूप है वही सिद्ध प्रभु का है । स्वय के स्वभाव को लिए हुए सत्तावाला वही मै हू । जैसे गरम जल व ठडा जल, इन दोनो प्रकार के पानी का स्वभाव ठडा है । उसी प्रकार जैसा स्वभाव सिद्धो का है वही मेरा है । मैं ससार पर्याय मे होते हुए भी सिद्धो के समान स्वभाव वाला ही हू । ऐसा विचार कर सिद्धो की उपासना करने से लाभ होता है, अन्यथा कोई उनका दर्शन ऐश्वर्य धन-दौलत के लिए तो किया नहीं जाता है। उनमे कर्ता व दाता की बुद्धि जीवो को नहीं करनी चाहिये । हे प्राणियो ! सिद्धो का स्वरूप तो अपना स्वरूप समझने के लिए दर्पण के समान है । जिस प्रकार दर्पण को देखकर अपने चेहरे का भाव होता है । कोई भी उस दर्पण का चेहरा देखने के लिए दर्पण नही देखता उसी प्रकार प्रभु को देखकर हमें अपने स्वरूप को समझना चाहिये । नही तो फिर दर्शन करने से क्या लाभ जब हमे यही नही पता कि हम दर्शन क्यो कर रहे है ? उनसे फलकी वाञ्छा रखकर दर्शन नही करना चाहिए, क्योकि वे कर्ता दाता तो है नही । भगवान् तो पूर्णविकासमय गुणपुञ्ज है ।

उनका दर्शन आकार मे नहीं होता क्योकि वे तो शुद्ध व पूर्णज्योतिपुञ्ज है । जिनके कि ध्यान मे सारा विश्व प्रकाशित होता है । भगवान् का नाम नही होता अपितु नाम तो पर्याय का होता है । जो वस्तु व्यवहार से आवे उसका नाम रखा जाता है । जो भगवान् है उसका नाम नहीं ओर जिसका नाम है वह भगवान् नही भगवान् तो उपासना का विषय है । भगवान् एक दूसरे का कार्य करने वाला नही है तथा ऐसा ही रूप अपनी आत्मा का भी है । मै एक वस्तु हूँ तव अवश्यमेव कोई शक्तियुक्त हूँ क्योकि जो सत् है उसमे उत्पाद व्यय अवश्य होगे । कहा भी है कि 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् ।"

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरहित कोईभी द्रव्य नही है । मेरे अज्ञानपर्याय का व्यय होकर ज्ञानपर्याय का उत्पाद होकर निजस्वभाव मे आनन्द बर्तेगा । अत अपने आप मे विश्वाम बना लेना चाहिये कि जो मै हूँ वह भगवान् है तथा मै वही हूँ, जो भगवान् है -"मैं वह हूँ जो हैं भगवान्, जो मैं हूँ वह हैं भगवान्"। इससे आत्मबल बढ़ता है । इससे ज्ञाता दृष्टा रहने की शक्ति प्राप्त होती है, चिन्ताए दूर होती है । जैसे एक कहावत है कि एक क्षत्रिय का बालक था व एक बनिये का बालक था । बनिये का बालक हृष्ट पुष्ट था, क्षत्रिय का कमजोर । दोनो मे लड़ाई हो गयी । बनिये का बालक क्षत्रिय के लड़के को नीचे गिराकर ऊपर चढ़ बैठा । क्षत्रिय के बालक ने उससे पूछा कि भैया ! तुम किसके लड़के हो, उसने बताया कि मै तो बनिये का लड़का हूँ, इतना सुनना था कि क्षत्रिय पुत्र को बल व जोश आया और झट ऊपर आ गया । सो भैया ! अपना स्वरूप सिद्धो के स्वरूप के समान समझने मे आत्मबल बढ़ता है और एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है ।

आपत्ति, विपत्ति, क्लेश, चिन्ता, यह सब ऐसा सोचने से कि मैं वही हूँ जो भगवान् हैं तथा जो भगवान् हैं वह मै हूँ, नष्ट हो जाती हैं । सदा सब प्राणियो मे समता का भाव रखना चाहिये । जो अनुकूल हैं उनमे भी यही प्रतीति करनी चाहिये कि सब सुखी होवे तथा प्रतिकूल प्राणियो मे भी समता का भाव रखना चाहिये। प्रतिकूल प्राणियो मे करुणा भाव पैदा करके समता रखनी चाहिये क्योकि वे

है लोग । प्राणी रुपया पैसा वैभव को ही सब कुछ समझता है जबकि ज्ञान के समक्ष सब कुछ व्यर्थ है । देखो सर्वत्र महिमा ज्ञान की ही है । सब लोग ज्ञान को ही जानते हैं और ज्ञान को ही बताना चाहते है । ज्ञानदान की बहुत बड़ी महिमा है । किसी भी प्रकार दूसरो को ज्ञान का दान देना चाहिये, चाहे पुस्तके वितरण करके अथवा रुपया पैसा देकर, पढ़ाई कराकर या स्वय पढ़ाकर आदि । सोचो जब हम दूसरो का कुछ नहीं कर सकते तब भगवान् के लिए क्या कर सकते है? जिस प्रकार बम्बई घूमकर आये हुये प्राणी को बम्बई का सम्पूर्ण दृश्य अपनी आखो के समक्ष ही दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार जिसने अपने को पहिचान लिया उसे अपने मे ही प्रभु नजर आते हैं । विपरीत अवस्था मे दूर नजर आते हैं ।

जिस प्रकार शीशे (दर्पण) मे हाथी जैसा विशाल प्राणी भी दिखाई देता है उसी प्रकार ज्ञान मे सब कुछ प्रत्यक्ष झलकता है । यदि यह प्राणी किसी से राग करता है तो भी अपने लिए ही, द्वेष करता है तो भी अपने लिये ही । तात्पर्य यह है जो कुछ करता है सब कुछ अपने लिए ही करता है, दूसरो का कुछ नहीं । मै नमस्कार करता हू इसमे चाहे किसी को भी नमस्कार करने का उद्देश्य बनाया है किन्तु है सब कुछ अपने लिए ही । भगवान् को नमस्कार क्या दर्शको को दिखाने के लिए करते है ? मन्दिर मे जाकर नमस्कार करना दिखावा करना हो सकता है परन्तु अपने मे ही अपने द्वारा अपने को अपने लिए अपने आप अपने उद्धार के लिए नमस्कार किया जाता है । नमस्कार का तात्पर्य है, मैं अपने मे अपने लिए अपने आप समाकर सुखी होऊ ।

ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, चरित्रशक्ति की तरह ही आनन्दशक्ति है । जो जो अनुभूति बनती हैं वे सब अपने से ही बनती हैं । जब यह प्राणी आत्मानन्द का स्वाद एक बार आस्वादन कर लेता है तब उसे अन्य सब कुछ व्यर्थ लगता है । विलक्षण है ये आत्मानन्द की अनुभूति उस स्थिति मे प्राणी सोचता है कि मेरी यह आत्मा के आनन्द की अनुभूति निरन्तर बनी रहे अन्य कुछ नही । परमार्थ से अध्यात्मतत्व को ही नमस्कार किया जाता है । समवशरण मे भी भगवान् की मूर्ति ही नजर आती है । मन्दिरो मे जो मूर्ति है वह स्थापित मूर्ति है । आखो से देखने पर मुद्रा ही नजर आती है । ज्ञानमय ही भगवान् हैं । सो अपने मे मैं अपने को नमस्कार करता हू और पर परात्पर आत्मा को भी नमस्कार करता हू। अपनी प्राप्ति होना ही अपना नमस्कार है । अपने आत्मतत्व की प्राप्ति होने पर राग का स्वय अभाव होने लगता है। जिसने अपने आपको प्राप्त किया है ऐसा वह परमात्मा भी मेरे स्वभाव के अनुरूप है। अत मैं अपने मे अपने आपको व परमात्मा को नमस्कार करके अपने लिये अपने आप मे स्वय सुखी होऊ ।

यादृक् सिद्धात्मनो रूप तादृग्रूप निजात्मन ।
भ्रान्त्याँ क्लिष्टस्तु ससारे-स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥१-२॥

अर्थ– जैसा स्वरूप सिद्धात्मा का है, शक्ति की अपेक्षा से वैसा स्वरूप निज आत्मा का है, परन्तु संसार में भ्रम से क्लेश को प्राप्त हुआ , अब भ्रमरहित होता हुआ मैं अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊँ।

मुमुक्ष प्राणियो को विचार करना चाहिए कि जैसा सिद्ध प्रभु का स्वरूप है वही मेरा है, जैसा मेरा स्वरूप है वही सिद्ध प्रभु का है । स्वय के स्वभाव को लिए हुए सत्तावाला वही मै हू । जैसे गरम जल व ठंडा जल, इन दोनो प्रकार के पानी का स्वभाव ठडा है । उसी प्रकार जैसा स्वभाव सिद्धो का है वही मेरा है । मै ससार पर्याय मे होते हुए भी सिद्धो के समान स्वभाव वाला ही हू । ऐसा विचार कर सिद्धो की उपासना करने से लाभ होता है, अन्यथा कोई उनका दर्शन ऐश्वर्य धन-दौलत के लिए तो किया नहीं जाता है। उनमे कर्ता व दाता की बुद्धि जीवो को नही करनी चाहिये । हे प्राणियो ! सिद्धो का स्वरूप तो अपना स्वरूप समझने के लिए दर्पण के समान है । जिस प्रकार दर्पण को देखकर अपने चेहरे का भाव होता है । कोई भी उस दर्पण का चेहरा देखने के लिए दर्पण नही देखता उसी प्रकार प्रभु को देखकर हमें अपने स्वरूप को समझना चाहिये । नही तो फिर दर्शन करने से क्या लाभ जब हमे यही नही पता कि हम दर्शन क्यो कर रहे है ? उनसे फलकी वाञ्छा रखकर दर्शन नही करना चाहिए, क्योकि वे कर्ता दाता तो है नही । भगवान् तो पूर्णविकासमय गुणपुञ्ज है ।

उनका दर्शन आकार मे नहीं होता क्योकि वे तो शुद्ध व पूर्णज्योतिपुञ्ज है । जिनके कि ~~ध्यान~~ ज्ञान मे सारा विश्व प्रकाशित होता है । भगवान् का नाम नहीं होता अपितु नाम तो पर्याय का होता है । जो वस्तु व्यवहार से आवे उसका नाम रखा जाता है । जो भगवान् है उसका नाम नहीं और जिसका नाम है वह भगवान् नही भगवान् तो उपासना का विषय है । भगवान् एक दूसरे का कार्य करने वाला नहीं है तथा ऐसा ही रूप अपनी आत्मा का भी है । मै एक वस्तु हूँ तब अवश्यमेव कोई शक्तियुक्त हूँ क्योकि जो सत् है उसमे उत्पाद व्यय अवश्य होगे । कहा भी है कि "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् ।"

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरहित कोईभी द्रव्य नही है । मेरे अज्ञानपर्याय का व्यय होकर ज्ञानपर्याय का उत्पाद होकर निजस्वभाव मे आनन्द बर्तेगा । अत अपने आप मे विश्वास बना लेना चाहिये कि जो मै हूँ वह भगवान् है तथा मै वही हूँ, जो भगवान् है –"मै वह हूँ जो है भगवान्, जो मै हूँ वह हैं भगवान्"। इससे आत्मबल बढ़ता है । इससे ज्ञाता दृष्टा रहने की शक्ति प्राप्त होती है, चिन्ताए दूर होती है । जैसे एक कहावत है कि एक क्षत्रिय का बालक था व एक बनिये का बालक था । बनिये का बालक हृष्ट पुष्ट था, क्षत्रिय का कमजोर । दोनो मे लड़ाई हो गयी । बनिये का बालक क्षत्रिय के लड़के को नीचे गिराकर ऊपर चढ़ बैठा । क्षत्रिय के बालक ने उससे पूछा कि भैया ! तुम किसके लड़के हो, उसने बताया कि मैं तो बनिये का लड़का हूँ, इतना सुनना था कि क्षत्रिय पुत्र को बल व जोश आया और झट ऊपर आ गया । सो भैया ! अपना स्वरूप सिद्धो के स्वरूप के समान समझने से आत्मबल बढ़ता है और एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है ।

आपत्ति, विपत्ति, क्लेश, चिन्ता, यह सब ऐसा सोचने से कि मै वही हूँ जो भगवान् है तथा जो भगवान् हैं वह मै हूँ, नष्ट हो जाती हैं । सदा सब प्राणियो मे समता का भाव रखना चाहिये । जो अनुकूल हैं उनमे भी यही प्रतीति करनी चाहिये कि सब सुखी होवे तथा प्रतिकूल प्राणियो मे भी समता का भाव रखना चाहिये। प्रतिकूल प्राणियो मे करुणा भाव पैदा करके समता रखनी चाहिये क्योकि ये

सभी जीव चैतन्यस्वभाव वाले ही है । यह प्राणी ससार मे रहता है किन्तु उसमे ससार नहीं रहे तो यही जय का साधन है । यह ससार से बाहर कैसे रहे किन्तु फिर भी ससार मे रहते हुए भी ससार से दूर रह कर अपने आपकी आत्मा का कल्याण करे । जैसे नाव पानी मे रहती है, चाहे वह समुद्र का पानी हो या नदी का, किन्तु नाव मे पानी नही । नाव मे पानी आ जाने से नाव का ही अस्तित्व समाप्त हो जाता है ।

हम यदि वास्तविक स्थिति देखे तो पायेगे कि हम लोग अपने सम्बन्धियो से तथा जिनसे मोह रखते हैं, उनसे ठगे जा रहे है तथा अपनी पर्याय इनके वश ही बिगाड़ रहे हैं । अत सर्वदा यही विचार करना चाहिए कि मेरा स्वरूप सिद्धो के समान है । यही आत्मा का धर्म है । इसके अभाव मे ही हम लोग मन्दिर जाना, सामायिक करना आदि पुण्य के कार्य करते है ताकि उपयोग निज मे लग जावे । सदा विचार करना चाहिए कि "भ्रात्या क्लिष्टस्तु ससारे" मै भ्रम मे पडकर ससार मे भ्रमित हो रहा हूँ, इन सबसे हटकर क्यो न मै अपनी आत्मा मे रमकर सुखी होऊ । इसे द्रव्यगुण पर्यायमय कहते हैं । द्रव्य की अपेक्षा मै और सिद्ध एक समान हूँ। सिद्ध के गुण और मेरे गुण समान हैं । यदि अन्तर है तो केवल पर्याय का है । उनकी पर्याय शुद्ध व निर्मल है और हमारी मलिन है ।

अन्तरदृष्टि से देखे तो सभी जीव शुद्ध ज्ञायकस्वरूप एकरस है यही विश्वास अमृत है । हमे, मैं अमुक का पिता हूँ किसी का पति हूँ, धनशाली हूँ आदि सस्कारो को ज्ञानरूपी जल से धोकर नष्ट करना चाहिये । मै ज्ञानमय हूँ –इस विचार के पश्चात् बाकी सब माया है । मै तो अनन्तआनन्द का निधान हूँ फिर क्यो थोड़े आनन्द के लिए छटपटाता रहूँ, क्यो कल्पना कर ससार मे भटकता रहूँ ?

अनेक कठिनाइयो से प्राप्त हुए मानव जीवन को विषय कपायो मे नष्ट नहीं करना चाहिए । अपनी ही सीधी सीधी बात न समझ कर प्राणी भ्रम करते है कि मै अमुक शहर का रहने वाला हूँ अमुक जातिका हूँ । इन सब सस्कारो को कभी न कभी तो अवश्य ज्ञानरूपी जल से धोना पड़ेगा । मेरा स्वभाव तो भगवान् के स्वभाव की तरह है, अत बाह्यभ्रमो मे पड़ना व्यर्थ है । देखो भैया ! भगवान् के पास क्या है केवल ज्योति पुञ्ज आत्मा फिर भी सब प्राणी उन्हे नमस्कार करते है । फिर क्यो न हम भी उनके समान गुण धारण करे ? क्यो न वैसा ही बना जावे ? इतना जान भी लेना सन्तोष् जनक होता है कि मै सिद्ध भगवान् के स्वरूप के सदृश हूँ। यदि उपयोग नहीं लगता तो ऐसा विचार करने से भी तो आनन्द ही प्राप्त होता है । ऐसा होते-होते दृढ़ज्ञान हो जावेगा । क्योकि अन्त मे सबकी शरण ज्ञान ही है । यदि कोई करोडपति क्यो न हो जब तक उसका पुण्य उदय है तब तक भले ही मजे करले किन्तु फिर भी उस समय मे किये गये बुरे परिणाम आगे गति बिगाड़ देगे । "मै सुखी दुखी,मै रक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव । मेरे सुत तिय, मै सबलदीन । बेरूप सुभग मूरख प्रवीण ।" आदि पर्याय बुद्धि परिणाम दु ख का ही देने वाला है । मै तो ज्योतिस्वरूप अमूर्त आत्मा भगवान् के समान स्वभाव वाला हूँ– ऐसा सोचते हुए भगवान् को नमस्कार करे ।

इसके भीतर के मर्मपर दृष्टि रखो तथा बाह्य सब छोड़ो तथा अपने को पहिचानो । मुझे अमुकने गाली दी ऐसा मन मे भाव लाना ही दु खजनक है । भैया ! अपने से प्रतिकूल जीवो पर भी करुणा कर समान भाव पैदा करो । सोचो कि ये जो प्रतिकूल प्राणी है, ये अज्ञानी है । जिन्हे अपनी आत्मा के स्वरूप का ज्ञान ही नही है । वे अपने स्वभाव को जान जावे ऐसी करुणा उनके ऊपर करनी चाहिये। किसी भी जीव से घृणा नहीं करनी चाहिये । जगत् मे कोई भी जीव घृणा का पात्र नही है ।

सब जीवो का सहजस्वरूप टकोत्कीर्णवत् स्वत निश्चल एक ज्ञायकस्वरूप है । द्रव्यदृष्टि से देखो तो निर्विकल्प अनादि अनन्त अहेतुक चेतन तत्व है । गुणदृष्टि से देखो तो सभी ध्रुवशक्तिमय है अत सिद्धप्रभु मे और समस्त जीवो मे कोई अन्तर नही है । केवल वर्तमान परिणतिकी दृष्टि से देखने पर अन्तर दिखता है । सिद्धप्रभु तो शुद्ध विलासरूप है और ससारी जीव अशुद्ध विलासरूप है । यह अन्तर है, चूकि भोगने मे तो परिणति ही आती है अत महान् अन्तर है तो भी यह परिणति जीव के स्वभावकृत नही है, किन्तु निमित्तनैमित्तिकभावपद्धतिविहित है । अत मूल मे कुछ भी अन्तर नही है ।

सिद्धप्रभु की तरह शुद्ध केवल ज्ञानमय बनने का क्या उपाय है ? अपने आपको केवल निरखना, ज्ञानमय निरखना केवलज्ञानी बनने का उपाय है । हम अपने को जिस रूप मे निरखेगे उस रूपकी प्राप्ति होगी । अतः हम अपने को यथार्थ सहज निजस्वरूप जैसा है वैसा ही चित्स्वभावरूप अपने को अनुभवे। मै स्वत. सत् हू, स्वत परिणामी हूँ, स्वतन्त्र हूँ, विज्ञानानन्दघन स्वच्छ अविनाशी हूँ–इस प्रकार अपना अनुभव करो । सत्य सुखी होने का यही एक उपाय है ।

विश्वतो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगयो· ।
रागद्वेषविधाताऽऽसम्-स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-३।।

अर्थ– समस्त पदार्थ से न्यारा अकेला होने पर भी मैं योग अथवा आत्मा के प्रदेश परिस्पन्द तथा उपयोग का कर्ता और राग द्वेष का करने वाला हुआ । अत भ्राति रहित होता हुआ मैं अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊँ।

इस जगत् के अन्दर अनन्तानन्त जीव है, अनन्तानन्त पुद्‍गल है । धर्म एक है, अधर्म एक है, आकाश एक है, असख्यात कालद्रव्य है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु सारे अनन्तानन्त परमाणुओ से भिन्न है। सारे अनन्तानन्त परमाणु भी प्रत्येक परमाणु से भिन्न है । एक स्कन्ध की अपेक्षा भी प्रत्येक परमाणु अपने क्षेत्र मे ही परिणमन करता है । कोई भी एक परमाणु अनन्तानन्त परमाणुओ से भिन्न है । सत् की अपेक्षा धर्म, अधर्म आकाश, काल भी जुदा जुदा है । स्कन्ध मे परमाणुओ का परिणमन सामूहिक रूप से होता है किन्तु फिर भी प्रत्येक परमाणु अपने-अपने क्षेत्र मे ही परिणमन करता है । इसी प्रकार प्रत्येक जीव अनन्तानन्त जीवो से जुदा है । यह प्राणी जो मोह माया मे फसकर रातदिन विचरता रहता है कि यह मेरा है , यह मेरे घर का है, यह सब व्यर्थ है क्योकि अपने स्वभाव से बाहर अपना क्या है? चैतन्यस्वभाव के अतिरिक्त ये वैभव ये ठाठ वाट सब व्यर्थ है। जिसने अपना स्वभाव समझ लिया उसके लिए ये सव

बाते निस्सार लगती है । मेरी आत्मा सारे विश्व से भिन्न है । मै एक हू, मै सबसे न्यारा हूँ इस प्रकार विचार करना चाहिए । मै निजी दो बातो को छोड़ कर किसी का कुछ नहीं करता –(१) योग (२) उपयोग । मै कदाचित् इन दोनो का ही कर्त्ता हूँ अन्य कुछ नही करता हूँ । मेरी आत्मा के प्रदेशो मे जो हलन चलन होती है उसी का नाम योग है और जो गुणो का प्रयोग है, प्रवर्तना है उसका नाम उपयोग है । इन दोनो के अतिरिक्त मै कर ही क्या सकता हू ? सिद्ध भगवान् शुद्ध उपयोग के कर्ता है । शेष जीव यथायोग्य शुभ, अशुभ व शुद्ध उपयोग के कर्ता है । ये जगत् के जितने परिणमन होते है सब एक दूसरे को यथायोग्य निमित्त करके सतत होते रहते है । आत्मा तो दूसरे कार्यो की चेष्टा का स्वय ही अकर्ता है । जैसे रोटी बनायी, अब बताओ आत्मा ने इसमे क्या कार्य किया ? आग जलाई या आटा गूथा, क्या किया ? अरे भैया ! वह अपनी जगह ही स्थिर है। आत्मा के प्रदेशो के योग के निमित्तसे शरीर मे वायु का सचार हुआ जिससे अगो मे हलन चलन हुआ और उस प्रसग मे उपस्थित कोई चीज रोटी बना गयी। मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि या सिद्ध कोई भी अपने आप मे परिश्रम करने के अतिरिक्त अन्य कुछ नही करता है । बाकी अन्य पदार्थो मे कर्तव्य समझना ये सब मोह माया का जाल है ।

जैसे स्वप्न मे हम देखते है कि मै जगल मे जा रहा हूँ, वहा शेर मिल गया, उसने मुझे पञ्जा मारा, खून बहने लगा, बेहोश हो गया । यह सब उस समय सत्य ही प्रतीत होता है । स्वप्न मे यह अनुभूति नही होती कि मै यह जो सब कुछ देख रहा हूँ झूठ है, वास्तविकता इसमे कुछ नही । किन्तु इसके विपरीत ही प्रतीति होती है । आख खुलने पर मालूम होता है कि मैने जो कुछ देखा हैं यह सब असत्य है । इसी प्रकार मोह मे पड़ा हुआ प्राणी भी इन सब बातो को सत्य जान रहा है कि यह मै गरीब हूँ, यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र है आदि यह सब तो एक प्रकार का स्वप्न ही है ।

रात को जो हम देखते है, ४-५ घटे की नीद मे जो होता है, यह कुछ उससे लबी निद्रा है किन्तु मेरा स्वभाव तो चैतन्यस्वरूप है, इसके अतिरिक्त सब झूठ है, बकवास है , इस प्रकार से विचार करना चाहिए । जैसे एक शहर मे एक पगडी रगने वाला रहता था। वह आसमानी रग की पगड़ी रगना बहुत अच्छी प्रकार जानता था । उसके पास कोई पीला रग दिलवाने के लिए अपनी ओढ़नी लाया, कोई नीला रग दिलवाने के लिए लाया, कोई लाल कोई हरा आदि । उन सबसे वह रगरेज बोला कि भैया ! चाहे किसी भी रग की रगवालो किन्तु सबसे बढ़िया रग तो आसमानी खिलता है । इसी प्रकार यह करो, वह करो, कुछ भी करो, आत्मीय आनन्द पाने के लिये तो निज सहज स्वरूप की दृष्टि करनी होगी । आनन्द तो निजदृष्टि से ही मिलता है । उन सब बातो को छोड़कर एक ही काम करो जो आत्मोद्धार का मार्ग है । एक ही उत्तम बात है वह है स्वानुभूति । इसके अलावा कुछ भी तो हित नहीं है । धर्म के लिए मात्र चैतन्यस्वभाव की अनुभूति के अतिरिक्त क्या काम है कुछ भी तो नही । यही सर्वदा सोचो कि मै अपने मे अपने लिए अपने को अपने आप अपने द्वारा ही सुखी हो सकता हूँ । कर भी सकता हूँ तो मात्र अपनी ही परिणति, उसके अतिरिक्त मै और कुछ नही कर सकता । ये सामायिक करना

दर्शन करना आदि के भी उपयोग अपनी आत्मा की ओर अपने को करने के लिए ही हैं । खोटे कार्य मे न लगकर स्वकी अनुभूति की ओर झुके , अत सामायिक आदि किया जाता है । मै तो समस्त द्रव्यो से भिन्न हूँ तथा समस्त द्रव्य मुझसे भिन्न है । क्योकि मै एक हूँ । रागद्वेष ही ससार मे रुलाने वाले है । मोह की भित्ति से टकराकर यह उपयोग दो रूप मे बट जाता है, एक राग की ओर, एक द्वेष की ओर । जैसे नदी का बहता हुआ पूर पुल के बीच लगे खम्भे से टक्कर पाकर दो धारा मे बहने लगता है उसी प्रकार मोह की टक्कर पाकर यह उपयोग रागद्वेष इन दो रूप मे प्रवाहित हो रहा है । यदि परपदार्थ एक ही हो तब कोई गड़बड़ी नही होगी किन्तु अनेक पर पदार्थो के मिलने पर रागद्वेष के भाव पैदा होते है। जहा दो होते है वहा द्विविधा होती है । एक पिता के यदि एक लड़का है तब तो कोई बात नहीं होगी किन्तु दो या अधिक होने से रागद्वेष की भावनाए होती है । एक से द्वेष अवश्य ही होगा । मै अज्ञानवश अपने स्वरूप को भूलकर रागद्वेषरूप दो धाराओ मे बह रहा हूँ । अत रागद्वेष को छोड़कर मै स्वय मे सुखी होऊ ।

मै परपदार्थ का उपादान से भी कर्ता नही हूँ, तो क्या निमित्त से हूँ ? नहीं, निमित्त से भी कर्ता नहीं हूँ । योग उपयोग ही निमित्तरूप से कर्ता है । ये योग और उपयोग भी क्षणिक ही है किन्तु आत्मा क्षणिक नही । योग उपयोग की जो तरग उठती है, वह कर्ता है । आत्मा तो निमित्त से भी कर्ता नहीं है । योग उपयोग का कर्ता आत्मा है अर्थात् वह आत्मा की परिणति है । जो ध्रुव है वह दूसरे की परिणतिका भी निमित्तकर्ता नही होता, कर्ता अध्रुव ही होगा ।

प्रत्येक पदार्थ अन्य प्रत्येक पदार्थ से भिन्न है । मै भी बाह्य पर पदार्थो से दूर हूँ। बाह्यपदार्थो की दृष्टि करके व्यर्थ के विकल्पपरिणमन होते है । इन सब विकल्पो को छोड़कर मै अपने मे, अपने आप, अपने लिए, अपने द्वारा सुखी होऊ । रागद्वेष के कारण उत्पन्न सताप की स्थिति में भी यदि स्वकी अनुभूति कर लो, सन्ताप दूर हो जावेगा । अपने आप की अनुभूति ही आनन्ददायक है । अपने आपका दर्शन हो, आत्मा मे ही रति हो, आत्मा मे ही रुचि हो । इसके अतिरिक्त कोई सहायक नही है । यह सब कषाय वालो का मेल है । अत इन सबसे कोई फायदा नही होगा । जिससे जिसकी कषाय मेल खा गई उससे मित्रता, मेल न खानेपर शत्रुता होती है । अत सभी स्वार्थी है । वैसे ये सब स्वानुभूति के समक्ष व्यर्थ है । सर्व पदार्थो को जिन्हे भी जानो, जितना उनका सत्तासिद्ध स्वरूप है उसी रूप मे जानो । आत्मसुख यथार्थज्ञान मे मिलेगा अन्यत्र नही मिलेगा ।

न करोमि न चाकार्षम् न करिष्यामि किञ्चन ।
विकल्पेन मुधा त्रस्त-स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-४।।

अर्थ– मैं न कुछ करता हू और न मैंने कुछ किया तथा न मैं कुछ करूगा, परन्तु व्यर्थ विकल्प से दुखी हुआ हूं, अब निर्विकल्प होता हुआ मैं अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊ।

किसी भी पदार्थ को न मै कुछ कर सकता हूँ, न आज तक कुछ कर सका हूँ, न आगे कर ही सकूगा । सब पदार्थ स्वय सत्ता वाले है । वस्तु सत् तो है, किन्तु अन्य सभी रूप से सत् नहीं हो जाती

है अन्यथा कुछ भी न रहेगा, अत प्रत्येक वस्तु अपने चतुष्टय से सत् है , परके चतुष्टयसे नहीं । यह वस्तु के वस्तुत्व गुण का प्रताप है । वस्तु मे परणित होना, स्वभाव से सिद्ध है । वे अपने आप परिणमन करते है । वस्तु अपने चतुष्टय मे द्रव्यत्व गुण द्वारा परिणमनशील है । वह निरन्तर परिणमन करता रहता है । एक क्षण के लिए भी द्रव्य का परिणमन बन्द नहीं होता, यह द्रव्यत्व गुण का प्रताप है ।

अस्तित्व गुण यदि यह भाव करे कि मै सत् हूँ, ऐसा मुझे आदेश हुआ है और स्वच्छन्द होने लगे तो इसका मुँह बन्द करने के लिए वस्तुत्व गुण मौजूद है । उसकी आज्ञा है कि तू अपने चतुष्टय से ही सत् रह सकता है पर के चतुष्टय से नही । इस प्रकार कि मैं सत् रहूँ और उत्पाद व्यय से भिन्न रहना चाहे तो उसको द्रव्यत्व गुण दबाता है कि तुझे निरन्तर परिणमन करते रहना होगा । यदि द्रव्यत्व गुण कहे कि मैं तो परिणमाऊगा, किसी रूप परिणमाऊ तब द्रव्यत्व गुण को अगुरूलघुत्व गुण दबाता है कि तू अपने मे परिणमनशील है , अत अपने मे ही परिणमन कर । यह न हो कि स्वच्छन्द हो जावे। यदि तू ज्ञान गुण वाला है तो ज्ञानोदयरूप ही परिणमन कर इत्यादि । प्रदेशत्व गुण आधार बताता है, प्रमेयत्व व्यवस्था करता है । सभी द्रव्य स्वतत्र है । इस प्रकार सवके साधारण छ गुण हैं । अत किसी का न कुछ कर सकता हूँ, न बिगाड सकता हूँ, न बना सकता हूँ, न मेरा यह स्वभाव ही है, मैं तो चैतन्यस्वरूप हूँ । यदि इस प्रकार का भाव क्षणभर को भी दृष्टि मे आ जावे तो परपदार्थ का तुरन्त त्याग हो जावे। अपनी श्रद्धा ही तो बदलनी है, चारित्र तो अपने आप आ जावेगा । अत श्रद्धा को अपने भीतर लाने के लिए इस प्रकार का विचार करना चाहिए ।

लोक की देखादेखी पर मुग्ध न होकर अपनी ओर दृष्टि करना चाहिए । एक कथा है कि बाप बेटा दोनो चले जा रहे थे । बाप घोड़े पर बैठा था और बेटा पैदल चल रहा था । आगे गाव के आदमी बोले कि यह आदमी कितना बेवकूफ है, कितना स्वार्थी खुदगर्ज है कि स्वय तो घोड़े पर बैठा है और लड़के को पैदल चला रहा है । बाप ने कहा कि बेटा तू घोडे पर बैठ जा, मैं पैदल चलता हू । दूसरे गाव वाले इस दशा मे इन दोनो को देखकर बोले कि यह लडका कितना मूर्ख है, नालायक है कि स्वय तो घोड़े पर बैठा है और बाप को पैदल चला रहा है । इस बात को सुनकर उन्होने विचार किया कि दोनो ही बैठ जावे और दोनो घोडे की पीठ पर बैठ गये । तीसरे गाव मे पहुचे तो सब ग्रामवासी बोले कि मालूम पड़ता है यह घोड़ा इन्होने किसी से मागा है इनका स्वय का नही है, जो दोनो के दोनो उसकी पीठ पर लदे हुए है, मुफ्त का समझकर बेचारे पर दयाभाव नही रखते । बहुत विचारने के पश्चात् वे दोनो पैदल चलने लगे तथा घोडा साथ-साथ कर लिया । आगे चौथे गाव मे पहुचने पर उसके ग्रामवासी बोले कि ये कितने मूर्ख है कि स्वय पैदल चल रहे है और घोडा ऐसे ही खाली चल रहा है । इसपर बैठकर ये जा सकते थे । देखो भैया, यहा पर चार ही बात तो हो सकती थी —बाप, बेटा, उभय, अनुभय। जैसे कि दर्शन मे (१) सत् (२) असत् (३) उभय (४) अनुभय चार बाते हैं । पाचवी बात तो नहीं हो सकती, क्योकि इतनी तो दोनो मे ताकत नहीं कि वे घोड़े को कन्धे पर लादकर चल सकते । अत भैया ! दूसरो से प्रशसाकी इच्छा रखना व्यामोह को प्रवृत्त करना है । ये

धन, रुपया ऐश्वर्य आदि अपने मे ही परिणमन करते है। तब इनमे फिर क्यो मोह रखा जावे ? हे प्राणियो! जैसा वस्तुओ का स्वरूप है वैसा मान तो लो फिर स्वय ही सुखी हो जावोगे । भैया ! सच्ची बात को सच मानने मे क्या बुराई है ? श्रद्धा से च्युत हुआ प्राणी इस ससाररूपी समुद्र से पार नही हो सकता, चारित्र से च्युत होकर श्रद्धा का आश्रय पाकर फिर भी कभी पार हो सकता है । अत. अपनी श्रद्धा ठीक रखनी चाहिये । रत्नत्रयकी पूर्णता क्रमश होती है । जैसे जीवो का सम्यक् दर्शन होता है तो उन्हे तीन ही तैयारिया करना होती है, अध करण, अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण ये क्रमश होगे । चारित्र को विकसित करने के लिए अणुव्रत धारण करना चाहिये । अपने ज्ञान आदि अपने सहायक है । हमे यदि धर्मसाधना मे कोई सहायक है तो वह भी तभी जबकि हममे कुछ बल है । जैसे किसी रोगी को डाक्टर दवा आदि पिलाकर ठीक करता है, वह तभी तो सम्भव है जबकि उसमे जीवित रहने की शक्ति अवशेष है । अन्यथा दवाई का असर वह कैसे सहन कर पाता ? अपनी ही श्रद्धा, अपना ही ज्ञान, अपना ही दर्शन, यह ही सर्वस्व सार है, अन्य कुछ नही ।

अगर धन आदि छूट जाता है या इसका त्याग हो जाता है तो इसमे हमारा क्या नुकसान है ? यदि ये प्राणी मिले हुए ऐश्वर्य धनादि मे अनासक्ति की बुद्धि रखकर चलता है तो निश्चित आगे उसे इससे भी तिगुना प्राप्त हो जाता है । पूर्वजन्ममे हमने उपेक्षा की होगी तभी तो आज यह ऐश्वर्यादि हमे उपलब्ध है । एक नगर मे एक सेठ रहता था । सेठ तो ऊपर के कमरे मे रहता था तथा नौकर नीचे के कमरे मे रहता था । एक दिन उसके यहा कुछ चोर घुस आये । वह नौकर सर्वदा एक दोहा बोलता रहता था कि—"कौन जावेगा लेने, देगे खुद बुलाकर । होगे दयालु तो देगे खुद आकर" । तो वह इस प्रकार दोहा बोल रहा था कि चोरो को देखकर बोला कि यहा क्या खोदते हो, अरे उस पेड़ के नीचे खोदो जहा रुपयो का हण्डा दबा हुआ है, यहा क्या रखा हुआ है ?

चोरो ने वैसा ही किया । वास्तव मे वहा खोदने पर उन्हे हण्डा मिल गया उसके ऊपर एक तवा ढका हुआ था । तवे को उन्होने उठाया तो उसमे से ततैये निकल-निकल कर उन्हे काटने लगे, उन्होने सोचा कि इसे जाकर उस नौकर के ही ऊपर उडेल देना चाहिये ताकि ये ततैये उसे ही काटे । उन्होने जाकर खोदे हुए कमरे के उस स्थान मे उसे उल्टा करके पलट दिया । पीछे की तरफ अशरफिया भरी हुई थी, अत सब अशरफिया उस गड्ढे मे भर गयी । नौकर उपरोक्त ही दोहा पढ़ रहा था कि 'होगे दयालु तो देगे बुलाकर, कौन जायगा लेने, देगे खुद आकर।' देखो उसने धन के प्रति उपेक्षा भाव रखा तो खुद उसके घर मे धन की वर्षा हुई और धनकी लालसा रखे हुए अगले जन्म मे मुझे धन प्राप्त हो, ऐसा सोचकर ऊपर से ही उपेक्षा दिखाये तो यह भी ठीक नहीं है । वस्तु स्वयसिद्ध है तथा स्वत परिणामी भी है । हमारा स्वभाव भी परिणमनशील है । तब मै दूसरो मे क्या करू तथा दूसरा मुझमे क्या करे? प्रत्येक परमाणु अपने मे ही परिणमन करता है । हमेशा सब कुछ करते हुए भी अपने भाव यही रखे कि यह सब असार है, ससार असार है । यथार्थ श्रद्धा का भाव रखना चाहिये । यदि ऐसा न कर सके तो बरबादी के सिवाय कुछ हाथ नही लगेगा। बुद्धिमानी इसी मे है कि अपनी श्रद्धा यथार्थ बनाये रहो।

सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्ती की सम्पदा तथा इन्द्रादि के भोगो को कौवे की बीट की तरह समझते हैं अर्थात् वे विद्यमान वस्तुओ मे उपेक्षा का भाव रखते है । मै परपदार्थ का न कुछ कर सकता हूँ, न कुछ कर सका, न कर सकूगा । केवल विकल्पो से, कल्पानाओ से दु खी हो रहा हूँ। अत इन सब विकल्पो को छोड़कर मैं अपने मे, अपने लिये, अपने द्वारा, अपने आप सुखी होऊ ।

स्वरागवेदनाविद्धश्चेष्टे स्वस्यैव शान्तये ।
नोपकुर्वे च नो शान्ति - स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-५।।

अर्थ– **मैं अपने राग की वेदना से वेधा हुआ अपनी ही शाति के लिये चेष्टा करता हूँ न दूसरों का उपकार करता हूँ और न उससे शाति होती है , अब सच्ची दृष्टि वाला होता हुआ मैं अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊ ।**

मै अपने अन्तरग की वेदना से बींधा गया । अपनी शान्ति के लिए चेप्टा कर रहा हूँ । स्वय की जो मेरी पीड़ा है उसे सहन न कर पाने के कारण ही शान्ति प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा हूँ । इससे मै किसी का उपकार नही कर रहा हूँ । ग्रन्थकार भी ग्रन्थ लिखने का यही कारण बताते हैं कि ससारी जीवो का दु ख देखकर मुझे दु ख हुआ । अत अपनी वेदना को शान्त करने के लिये ही मैने ग्रन्थ लिखा । इसमे परोपकार कैसा? मैने जो कुछ किया वह अपनी शान्ति के लिए ही तो किया। किसी द्रव्य का किसी अन्य द्रव्य मे परिणमन हो ही नही सकता । फिर किसी भी पदार्थ मे इष्ट, अनिप्टबुद्धि व कर्तृत्वबुद्धि क्यो हो ? वीतराग ज्ञान अर्थात् रागद्वेषरहित ज्ञान न होने के कारण क्लेश ही है।

दूसरो को दु खी देखकर आचार्यो को अनुकम्पा हुई, अनुकम्पा उसे कहते हैं कि दूसरो को दुखी देखकर हृदय पसीज जाना । अत उस अपनी वेदना से बिधकर ही आचार्यो ने चेष्टा की और ये शास्त्र बन गये । उनकी ये भावना नही थी कि मै उपकार कर सकता हूँ या करूगा । बल्कि इस चेष्टा मे उपकार हो गया । अत इससे आत्मज्ञान तथा आत्मध्यान का मौका मिल गया । छठे गुणस्थान मे ऐसे भाव मिल जाते है कि छठे गुण स्थान से सातवे गुणस्थान मे आ जाता है । अत वे ऐसे शुभोपयोग का ध्यान किया करते है जो ध्यान मे बढने का बाधक न हो । गृह सम्बन्धी वेदना से, राग की वेदना से जो चेष्टा की जाती है वह शुद्धोपयोग की दृष्टि से हेय है । आत्मध्यान अति दुष्कर है, किन्तु स्वाधीन होने से अति सरल है ।

शुभोगपयोग मे रहने वालो को लौकिक सुख होता है । किन्तु शुद्धोपयोगियो को परमात्मीय आनन्द होता है । आत्मानुभव के लिये, धर्म की प्रेरणा के लिये शुभोपयोगियो का जल्दी मन हो जाता है, कितु विषयो मे राग होने पर इस ओर को ध्यान होना कठिन होता है । इस कारण शुभोपयोग का भी उपदेश है । जिन्हे शुद्धोपयोग हुआ उन्हे शुभोपयोग के बाद ही हुआ । वैसे असयतसम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान वाला जीव राग, विषयभोग आदि के होते हुए भी उनमे उपेक्षाभाव रखता है । विषयभोगो मे रहते हुए भी यही सोचते हैं कि कब और कैसे यह छूटे ? देखो,कितना कठिन कार्य है यह कि उनको करता भी

है और झझट भी मानता है । कितने ज्ञानबल की बात है । और मै केवल रागचेष्टा मे लगा हुआ हूँ, दूसरो का उपकार क्या कर सकता हूँ ? ऐसा ज्ञानी जीव सोचते है । किसी जीव को दु खी देखकर या भूखा देखकर रोटी दी तो उसमे हमने उसका क्या उपकार किया ? भैया ! स्वय की शान्ति के लिए, स्वय की वेदना से बिधकर ही तो रोटी दी, यह तो स्वय का ही उपकार हुआ । व्यवहार मे जब हम ऐसा कहते है कि इसने उसपर दया की अथवा रोटी देकर उसका उपकार किया, किन्तु वास्तव मे देखा जावे तो उसने स्वयं ही राग की वेदना से बिंधकर चेष्टा की इसमे उपकार कैसा ? एक जज था । एक दिन वह अपनी कार मे बैठकर अदालत मे जा रहा था । रास्ते मे कीचड़ मे पड़े हुए एक गधे को तड़फते देखा । कार रुकवायी और स्वय ही उसको बाहर निकालने के लिऐ आगे बढ़े । साथ मे जो चपरासी था उसने कहा भी कि आप क्यो निकाल रहे है, हम निकाल देते है किन्तु उसने कुछ बात न सुनते हुए अपने हाथो से ही उस गधे को बाहर निकाला । कपड़ो पर भी कीचड़ की छीटे लग गयीं । इतना समय नहीं था कि जाकर कपड़ा बदल आवे, अत उसी पोशाक मे अदालत पहुच गये । जब उनको सबने इस दशा मे देखा तो सब आश्चर्यचकित रह गये कि आज क्या बात है जो जज साहब की ऐसी दशा है ? आज तक तो कभी भी बिना इस्त्री के कपड़े नहीं देखे, न ही गन्दे । फिर आज क्या बात हुई? जिनका उनसे वार्तालाप होता था उन्होने पूछा कि जज साहब क्या बात है, जो आज ऐसी दशा बना रखी है । साथ वाले नौकर ने सम्पूर्ण घटना सुनाते हुए बताया कि साहब बड़े दयालु है । रास्ते मे गधा फसा था । मैं उठाने को तैयार था, किन्तु इन्होने कुछ न सुनकर अपने हाथो से ही गधे पर दया की । तो जज साहब बोले—नही भैया ! मैने जो कुछ भी किया, अपना ही उपकार किया, गधे का नही।

सोचो, यदि मै ऐसा न करता तो यहा आकर जब भी बीच-बीच मे उसके तड़फने का वह दृश्य याद आता तब मै उसी समय वेदना से बिध जाता । अत मैने अपनी वेदना से बिधकर ही उसको बाहर किया । झगड़ा आदि होने पर व्यवहार मे ऐसा कहते है कि देखो भाई ! इसके ऊपर मैने कितना उपकार किया, व्यापार के लिए रुपया दिया, सब सुविधाए दी किन्तु आज है कि मेरी बात ही नही सुनता, मुझे कुछ समझता ही नहीं है । ऐसी पीड़ा अज्ञान से, भ्रम से, कर्तृत्वबुद्धि से हुई । सोचकर तो देखो खुद ही तो तेरे अन्दर राग उत्पन्न हो रहा था जिससे तूने चेष्टा की, उपकार क्या किया ? वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि खुद ही मे खुद का परिणमन हुआ करता है । एक किसान था व उसकी पत्नी थी । पत्नी चतुर थी । जरा अशिक्षित छोटे पुरुषो की ऐसी भावना रहती है कि जब तक औरत को पीटा न जाय तब तक उनपर रूआब नही गालिब होता । अत किसान अपनी औरत को पीटने के लिए तरीके सोचता रहता था, किन्तु वह इतनी चतुर थी कि कभी अवसर ही नहीं देती थी । अत एक दिन किसान ने खेत मे जाकर एक बैल को उत्तर की दिशा मे मुह करके खड़ा कर दिया, दूसरे को दक्षिण की दिशा मे । फिर उनके कन्धो पर जुआ रख कर हल फसाकर खडा हो सोचने लगा कि आज जब भी वह रोटी देने आवेगी तो अवश्य ही ऐसी कोई न कोई उल्टी बात कहेगी जिससे कि मैं उसकी पिटाई कर सकूगा । निश्चित समय पर वह आई तथा दूर से ही यह दशा देखकर सोचने लगी कि आज यह क्या

वात है ? वैसे मेरे पति का दिमाग भी खराब नही , कोई ऐसी बात ही नही है जिससे ये ऐसा करे। कोई न कोई वात अवश्य है, अत वह मन को समझाती हुई किसान को रोटी देती हुई बोली कि चाहे उल्टा जोतो चाहे सीधा जोतो अपना काम तो रोटी दे जाने का है अत लो ये रोटियॉ । और इतना कहकर रोटी देकर चली गई । पीछे को मुडकर भी नहीं देखा, न रुकी ही । सो भैया ! निश्चयनय की दृष्टि लगाकर सोचो तो पता लगेगा कि यह पदार्थ इतना ही है तथा इसका परिणमन इतने मे ही है । किसी भी पदार्थ से मेरा भला बुरा नही –इस प्रकार विचार करने से दु ख स्वय ही समाप्त हो जावेगे। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है व स्वय मे स्वय के लिए ही परिणमन करता है ।

स्वतन्त्रता का लक्षण है – सद्भाव या अभावरूप निमित्त पाकर स्वय का स्वय मे ही परिणमन। इतना ज्ञान यदि आ जावे तो हम भी भगवान् के परिवार मे शामिल हो जावे । उनकी ज्ञानगोष्ठी के सहवासी हो जावे और यदि हममे वस्तुस्वातन्त्रय की दृष्टि नही जगी तो हम उनसे दूर है, उनके आनन्द से परे है, तथा स्वय से भी दूर है। अपने आप के स्वभाव की उपासना करनी चाहिये । परन्तु ऐसी दृष्टि प्राय किसी की नहीं होती। ज्ञान खुद ज्ञान के स्वत सिद्ध स्वरूप को जानने लगे तिस दृष्टि से, विरले ज्ञानी जीव ही ऐसी दृष्टि करते है । यहा पर भी मोही, मोह की ही बात चिल्लाते है किन्तु ज्ञानी जीव किसी की बात नहीं सुनते । जो विवेक मनमे आता है वही करते है । उद्धार की भावना करने वाला बहुतो की प्रशसा न चाहकर दो चार ज्ञानी पुरुषो की प्रशसा की आकाक्षा रखता है यह आत्मा स्वत सिद्ध है अपने मे परिपूर्ण है और यदि ऐसा विचार करे कि अज्ञानी जीव प्रशसा करे तो क्या लाभ और ज्ञानी जीव प्रशसा करे तो बहुत उत्तम है । इस प्रकार विचार कर अपना कल्याण करे। क्योकि करता कोई किसी का कुछ नही । मै भी अपनी राग की वेदना से बिधकर अपनी ही कषाय पूर्ति का कार्यरूप उपकार कर रहा हूँ । अत मै वस्तु के स्वरूप को ध्यान मे रखकर अपने मे, अपने लिए अपने आप सुखी होऊ । मै यहा जो कुछ कर रहा हूँ वह अपनी रागवेदना से पीड़ित होकर अपनी शान्ति के लिए अपनी चेष्टा कर रहा हूँ, मै पर का न उपकार करता हूँ और न अन्य किसी प्रकार का परिणमन करता हू । भ्रमपूर्ण परकर्तृत्व की दृष्टि मे अशान्ति ही बसती है । मै जैसा सहजस्वरूपमय हूँ वैसा ही मानने मे मेरी शान्ति है । यही विचार जीवो को सदा करना चाहिये ।

यातिं नेतो न चायाति जातुचित्किञ्चिदन्यत ।
खिन्नो हीनाधिकमन्य स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-६।।

अर्थ– न यहा से (निज आत्मा से) कभी कुछ जाता है और न अन्य पदार्थ से कुछ आता है, मैं अपने को कम या अधिक मानता हुआ व्यर्थ खिन्न हुआ हू, अब सच्ची दृष्टि वाला होता हुआ मैं अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊ ।

यह आत्मा स्वत सिद्ध है, यह आप अपने मे परिपूर्ण है । जो भी पदार्थ है वह अपने मे पूर्ण ही होता है , अधूरा नहीं । मै भी अपने मे परिपूर्ण हूँ । भले ही अशुद्ध योग्यता मे बाह्य पदार्थ का परिणमन पाकर उल्टा परिणमन हो किन्तु अधपूरापन नही है । यह अधूरापन मोह से होता है । यह

हमारी इच्छा के अनुकूल कल्पना है, नही तो प्रत्येक पदार्थ पूर्ण है और परिणमन भी पूर्ण है । असीम विकास होने को पूर्ण कहते है । अधूरापन उसे कहते है कि ज्ञान मे शक्ति तो अनन्तलोक व अनन्त आकाश को जानने की है किन्तु प्रत्येक समय परिणमन पूर्ण ही है । पर्याय भी पूर्ण है । रागादिका परिणमन भी पूर्ण ही है । अत जितने भी आत्मा है वे सब अपने मे पूर्ण ही है । किसी ने बनाया नही जो आधा बना और आधा न बना। अत मेरा कुछ भी गुण व पर्याय बाहर नही जाता तथा न बाहर से ही कुछ मुझमे आता है । पति-पत्नी का आपस मे जो प्रेम है तो क्या उनके गुण एकमय एक हो जाते है, नही । बल्कि पत्नी की आत्मा उसकी आत्मा मे पूर्ण है और पति की आत्मा पति की आत्मा मे पूर्ण है । पिता अपने मे पूर्ण है और पुत्र अपने मे पूर्ण है । किसी का भी तत्व अन्य मे नहीं जाता। किन्तु व्यर्थ ही यह प्राणी मोह के कारण नाना कल्पना करके नाना प्रकार से क्लेश पाता है । ससारी प्राणियो मे रागद्वेष के वश होकर छटनी करता है यह मोही प्राणी कि यह मेरा है, यह पराया है आदि। परिणाम मे होता क्या है कि यह मेरा है वह अमुक का है आदि तो कोई अभी बात नही। किन्तु यह तो अन्तरग से ऐसा मानता है, अपने ऊपर अन्याय करता है । ये सब तो मोह के उबाल है अन्य कुछ नही, न सत्य ही है। दूसरे की आत्मा मे और मुझमे कोई सम्बन्ध नही है। आत्मा के गुण और पर्याय दूसरे मे नहीं जाते व दूसरो के मुझमे नही आते। जो अपने आपको मानता है कि मै बड़ा आदमी बन गया हू या गरीब हो गया हूँ, कमजोर हो गया हूँ, यह सब मोह के कारण ही है । ज्ञान आदि निज वैभव तो स्वरसत बढ़ेगा ही, घटेगा नही । व्यर्थ मे मन खिन्न होता है । यहा तो ये सारे पदार्थ स्वय परिणमनशील है, स्वतन्त्र है। इनमे कोई किसी अन्य को किसी अन्य का कर्ता माने, स्वामी माने तो यह मोहजालका प्रभाव है । इस जाल मे उलझकर आनद मे कोई नही रह सकता । हम जब दु खी होते है तब अपने ही मिथ्या विकल्पो के कारण दु खी होते है अन्य कोई मुझे दु खी नही करता। वे विकल्प भी बाहर कुछ काम नही करते, वे तो होकर मिट जाते है, किन्तु टेव यह पड़ गई है कि प्रत्येक आकुलता मे यह दृष्टि रहती है कि अमुक पदार्थ यदि यो नही परिणमता तो मै दु खी न होता । परसे अपना परिणमन मानना मिथ्यात्व है । यह है अज्ञका नाच । जितना भी दु ख होता है सब तेरे ही कसूर से होता है । यह प्राणी वस्तुत्व को नहीं पहिचानता कि न बाहर से कुछ मुझमे आता है, न मुझसे बाहर ही कुछ जाता है । अत वे क्लेश करते है और दु खी होते है।

जैसे कहते है "मन चगा तो कठौती मे गगा ।" यहा जो हो रहा है उसे होने दो, उससे मेरा क्या? इस प्रकार सोचने से मन चगा हो जाता है। सब जीव अपने आप अपना ही परिणमन कर रहे है। सच बात तो यह है कि भैया ! भाररहित न होने तक वह श्रद्धा नही होती। सदा विचारे कि मै तो ऐसा वस्तुतत्व हूँ जिसका आकार नही, नाम नही, इतने मात्र ही हूँ, इससे अधिक नही। इस प्रकार कभी तो विचार करना चाहिये। अपने को निरखे। ऐसी श्रद्धा हो जाने पर फिर क्या विपदा है । फिर उसे सकट ही क्या है? जिस प्रकास औषधि से सब सकट दूर होते है उसी प्रकार उक्त तत्व विचारने से सब विपदाए नष्ट हो जाती है । ये प्राणी विषापहारमणि आदि प्राणरक्षा के साधनो को तो ढूढते है, किन्तु हे प्रभु!

तेरा स्मरण नहीं करते। तेरा स्मरण करने से ऐसे-ऐसे चमत्कार होते है कि लोग देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं, किन्तु स्मरण नहीं करते। वह परमात्मा अपने मे ही तो है, किन्तु यह मोही प्राणी व्यर्थ मे ही अपने को छोटा बड़ा समझकर प्रभुदर्शन से वञ्चित रहता है।

हे प्राणी ! अपने वस्तुस्वरूप को सभाल, तेरे सब सकट दूर हो जावेगे। मोह की बात रागद्वेष के सकट को मेटने का उपाय नहीं, अपितु सकट बढ़ाने का है । अपनी सर्वपरिणतियो से उपेक्षा करके सदा मैं अपने स्वरूप को अपने लक्ष्य मे लेकर अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ। यह प्राणी दूसरो को देखता है कि अमुक बहुत स्वार्थी है। उससे अपने को क्या तात्पर्य? वह अपना परिणमन अपने मे ही करेगा। खुद खुदका ही काम करता है, कोई किसी का कुछ नहीं करता। ऐसी दृष्टि रहने पर ही भला है। ऐसी दृष्टि कभी सत्सग मे और कभी एकान्त मे व जब चाहे करना चाहिये। जब सहनन अच्छे होते थे। उस समय समस्याए इतनी जटिल न थी,आज के समय मे बहुत कठिन है। एकान्त मे बलिष्ठ आत्मा ही रह सकता है। दस आदमियो के बीच बैठकर भी आत्मा की ओर ध्यान जावे, ऐसा वस्तुस्वरूप अपनी दृष्टि मे रहे तो कोई सकट नहीं। वहा यह हो रहा है, लोग क्या कहेगे– यह सब परदृष्टि है। वस्तुस्वरूपपर दृष्टि लगाने पर कोई सकट नही परकी दृष्टि ही सकट देने वाली है। अत मै पर की दृष्टि हटाकर स्वय मे स्वय के लिए स्वय को सुखी रखू।

देखो, वस्तु जितनी होती है वे सब शक्तिपिण्ड ही तो है । आत्मा भी वस्तु है, वह भी अनन्त शक्तियो का पिण्ड है। उन अनन्तशक्तियो मे आनन्दशक्ति भी एक प्रधानशक्ति है। इस आनन्दशक्ति का प्रति समय परिणमन होता है, विकृत हो या अविकृत, यह उपादान निमित्तके प्रसग वाली बात है। किन्तु सर्वत्र वह आनन्द मिला स्वय के आत्मा मे ही। सुख यही इसी निज आत्मा मे है, अन्यत्र सुख ढूढना ही दु ख पैदा कर लेना है। अत बाह्य की उलझन छोड़कर मै अपने आपमे ही विश्राम पाऊ। अब आगे कहते है कि वस्तु का स्वरूप स्वतन्त्रता है। तब किसी को कौन क्या करेगा?

स्वातन्त्र्य वस्तुनोरूप तत्र क कि करिष्यति ।
हानिर्मे हि विकल्पेषु स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-७।।

अर्थ– वस्तु की स्वतन्त्रता वस्तु का स्वरूप है उस स्वरूप में कौन क्या करेगा? निश्चय से विकल्पों के कारण ही मेरी हानि है। अब स्वातन्त्रयदृष्टिवाला होता हुआ मैं अपने में अपने लिए स्वयं सुखी होऊ ।

वस्तु का जो स्वरूप है वह स्वतन्त्र है। स्वका मतलब हुआ अपना। जैसे हिन्दी मे कहते है कि तुम्हारा अपना, उसने अपना काम किया। उसी प्रकार सब स्वके अर्थात् अपने तन्त्र है। प्रत्येक वस्तु अपने आधीन है क्योकि वस्तु तो द्रव्य, गुण, पर्याय मे रहती है। अन्य कोई क्या कर देगा कुछ भी तो नहीं कर सकता। जो वस्तु स्वत सिद्ध है उसका वर्णन करना कठिन है । चीज है तो उसमे परिणति होती रहती हैं । वस्तु द्रव्य क्षेत्र, काल और भावात्मक होती है। द्रव्य गुण व पर्याय का पिण्ड है। व्यवहार मे तो पुद्गल को उठाकर दिखा देते है कि यह द्रव्य है। अन्य द्रव्यो को जानने का उपाय ऊपरी नहीं

है। इस प्रकार एक पिण्डरूप से जो वर्णन किया जाता है उसमे जो बताया गया, यह हुआ पिण्डवस्तु। प्रदेशो की अपेक्षा जो वर्णन होवे वह होगी क्षेत्रवस्तु। पर्यायो की अपेक्षा जो वर्णन है वह कालवस्तु कहलाती है। शक्तियो की अपेक्षा बताना भाववस्तु है । जैसे एक आदमी का वर्णन करना है कि वह कैसा है? यह एक अमुक गाव का मुखिया है, यह हुई पिण्डरूप दृष्टि । लम्बा है ५ फुट और पतला है इस प्रकार की दृष्टि हुई क्षेत्र की दृष्टि। अमुक रग का है यह हुआ व्यञ्जन पर्यायो को लेकर। घमण्डी है या क्रोधी है अथवा शान्तपरिणामी है यह हुआ गुण पर्यायो को लेकर काल अपेक्षा से वर्णन। उनकी शक्ति का, गुण का वर्णन भावदृष्टि की अपेक्षा से है । जैसे पुस्तक हाथ मे लेकर कहा कि यह पुस्तक है तो यह बताना हुई द्रव्यदृष्टि । यह इतनी लम्बी इतनी चौड़ी है यह हुआ क्षेत्र की अपेक्षा। यह पुस्तक पुरानी है या अमुक रग की है ऐसा वर्णन कालदृष्टि की अपेक्षा हुआ। इसमे अमुक तत्व लिखा है, इस प्रकार गुणो का वर्णन भावदृष्टि की अपेक्षा से है । इसी चतुष्टय के कारण इनके चार नाम भी पड़ गये। द्रव्य की अपेक्षा नाम है पदार्थ, क्षेत्र की अपेक्षा नाम है अस्तिकाय, काल की अपेक्षा नाम है द्रव्य और भाव की अपेक्षा नाम है तत्व। सो प्रत्येक पदार्थ इनसे सहित है । जैसे कालद्रव्य मे घटाना है – यह द्रव्य तो है ही प्रदेश एक ही सही उसकी अपेक्षा क्षेत्र हुआ, कालदृष्टि से काल भी है। काल मे रहने वाले जो गुण है वह भावदृष्टि हुई।

आत्मा मे घटा लो, आत्मगुण पर्याय का पिड हुआ आत्मा पदार्थ, निज असख्यात प्रदेशो मे विस्तृत हुआ आत्मा अस्तिकाय, आत्मा की पर्यायो से परिणत हुआ यह आत्मद्रव्य और आत्मगुणो मे तन्मय स्वभाव मात्र हुआ यह आत्मतत्व । देखो, अपना चतुष्टय ही अपने मे है। परके चतुष्टयका अश भी अपने मे नही है, अत इससे यही सिद्ध हुआ कि प्रत्येक पदार्थ अपना स्वामी है, अपने मे ही रहता है, अपने मे ही परिणमन करता है, तब कोई अन्य मे क्या कर देगा? कई प्राणी ऐसे हैं जो तत्व को जानते नही और कई ऐसे है जो जानकर भी उसमे नहीं रमते, केवल ज्ञात करते रहते है। कल्याण की जो बात है उसके किये बिना तो गुजारा नही होगा, यह निश्चित है। बड़े दु ख की बात है कि यह प्राणी मोह आदि मे पड़ा भी है और दु ख भी मानता जाता है जिस प्रकार मिर्च खाता भी जाता है और मना भी करता है। मिर्च मत डाला करो और सीसी भी करता जाता है, आनन्द भी लेता जाता है। इसी प्रकार बाह्य पदार्थो मे राग भी कर रहे है, दु ख भी मान रहे है। अत जो करने मे आ रहा है, आ पड़ा है, आवे, उसके बिना भी तो अभी गुजारा नहीं है। किन्तु साथ ही साथ यह अन्तरग मे अवश्य बात उठनी चाहिये कि मै तो मात्र अमूर्त चैतन्य शक्ति स्वरूप हूँ, यह तो स्वय मे स्वय ध्रुव है। श्रद्धा ही काम बनाती है। बात यही ठीक है। प्रतिमा भी ले लो, सब कुछ कर लो, किन्तु बिना श्रद्धा के न मर्म का स्पर्श होगा, न ज्ञान ही होगा । बहुत से विवेकी जन गृहस्थी मे रहकर भी यही सोचते है कि कैसे मैं इन उपयोगो को छोड़ू? ज्ञानी यही सोचता है मुझसे यह सब कैसे छूटे? और बहुत से प्राणी घर से बाहर रहकर भी घर की दृष्टि करते है, पत्नी की वाछा रखते हैं। सो यह घर मे रहकर बाहर की इच्छा रखना, यह सब अर्धविवेक से होता है। अर्धविवेक उसे कहते हैं कि ज्ञान तो है, पर दृढ़ता नहीं हुई। छोड़ने पर ग्रहण

करने की इच्छा, ग्रहण करने पर छोडने की इच्छा। जैसे किसी को कहो की भैया ! रात्रि के भोजन का त्याग कर दो तो वह उत्तर देता है कि छोड़ने से खाने को जी करता है, वैसे रात्रि को खाना नहीं खाये ५ महीने व्यतीत हो गये। अत योग मे वियोग की बुद्धि तथा वियोग मे सयोग की बुद्धि , यही अर्धविवेक मे होता रहता है ।

प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मे है, तब अन्य मे कोई क्या कर देगा, कुछ भी तो नही, किन्तु विकल्पो मे हानि होती है । यही विचार त्यागियो को भी करना चाहिये कि हे आत्मन् ! जिसका त्याग कर दिया है उसके विपरीत तो होगा नही । अत वह शक्ति मुझे दो, जिससे मै अपनी ओर झुका रह सकू। अन्यथा मन कमजोर होने से मै भ्रष्ट हो जाऊगा फिर उठने का कोई अवसर नहीं रहेगा। अत इन थोथी कल्पनाओ का त्याग कर दू।

मै अन्य पदार्थ मे कुछ नहीं करता । मात्र विकल्प ही है । सो उन विकल्पो मे अपनी ही हानि है, लाभ कुछ नही है। जो विकल्प करने वाला है उसे कर्ता कहा गया है। वैसे तो मिथ्यादृष्टि भी कर्ता नही है। कोई वस्तु परपदार्थ का कर्ता नहीं है। प्रत्येक वस्तु अपने परिणमन का ही कर्ता है, सो यह विकल्प करने वाला ही कर्ता है तथा जो विकल्प है वह कर्म है। अत विकल्प वाले के कर्ता कर्मपना कभी नष्ट नही होता । वस्तुका स्वरूप स्वतन्त्रता है, तब अन्य पदार्थ अन्य मे क्या कर देगा? अत विकल्प करना व्यर्थ है । ज्ञान ही निजस्वरूप मे ले जाने वाला है । अपने स्वरूप तक पहुँचने मे ये व्यवहार से उपाय बताये है कि अग्नि जल, तत्व ,रूपवती आदि धारणाए है। सर्वप्रथम उपाय और है, वह यह कि शरीर को स्थिर आसन से बिठाना सबसे पहिले आवश्यक है । मेरूदण्ड की (कमर के बीच की सीधी हड्डी को) साध कर बैठने से मन एकाग्र होता है । पद्मासन मे बैठने से स्थिरता आती है । फिर श्वास देखता हुआ लेवे, श्वास देखता हुआ छोडे। हमने कब श्वास छोड़ी और कब ली यह दिखता तो नही किन्तु पता तो लग ही जाता है कि अब हमने श्वास ली और अब छोडी पहले अपने मनको एकाग्र रखने के लिए यह करना, फिर इसके पश्चात् भीतर को श्वास लेते समय अन्तरग मे 'सो' सोचे ओर श्वास छोडते समय अन्तरग मे ही अह की कल्पना करे। प्रकृति से श्वास छोड़ते व लेते समय भी तो ऐसा याने "सोह सोह"शब्द होता है। अत वैसा ही शब्दो का जुटाव फिट बैठता है । 'सो' का तात्पर्य है भगवान् और अहम् जिसका तात्पर्य है वह मै हूँ। जो भगवान् है वह मै हू । यह श्वास के आश्रय से ही प्रतिध्वनित होता है । करने से स्वय पता लग जावेगा। फिर 'सो' को लुप्त कर देवे, केवल अहम् रह जावे। ऐसा करने से श्वास की वह कल्पना छूट जावेगी। श्वास का आश्रय छोड़ अपने को देखा तो अहम् की बात आयी। अहम् का बोध होते समय भी अहम् की कल्पना मिटकर आनन्द की अनुभूति होती है ।

इस प्रकार आत्मा का ध्यान करने का एक यह भी साधन है । मेरी केवल विकल्पोमे हानि हो रही है, करना धरना कुछ नहीं। कोई-कोई ऐसे प्राणी होते है जिन्हे दूसरो का सम्बन्ध कराने मे ही मन लगता है उन्हे लेना देना कुछ नहीं, किन्तु फिर भी प्रकृति बन गयी है कि दूसरो का विवाह सम्बन्ध कराते

रहते है। केवल विकल्प करता रहता है। कहा है कि "हानिर्मे हि विकल्पेषु" अर्थात् विकल्पो मे हानि ही हानि है, लाभ तो इस आत्मा को कुछ भी नही है । जैसे किसी ने एक स्वप्न देखा कि एक सेठ ने मेरे को ५० गाये इनाम मे दी है । एक ने उससे गायकी कीमत पूछी तो बतायी कि एक गाय का मूल्य १००) है। ग्राहक ने कहा, कम ले लो, ६०) ले लो । वह ८०) तक आ गया। ग्राहक ७०) मे माग रहा था। ग्राहक भी जोर से बोला और वह भी। परिणाम यह हुआ कि इस स्वप्न को देखने वाले की आख खुल गयी । आख खुल जाने पर देखा कि यहा तो कुछ नही है।

उसे बहुत पश्चाताप हुआ । और फिर उसी प्रकार आखे बन्द करके बोला कि "भैया ७० रु० मे ही ले जावो"। लेकिन वहा कुछ भी था क्या? केवल विकल्प ही तो है । अपने कुटुम्ब मे ही देखो कि कुटुम्ब के लिए सब कुछ किया किन्तु मिलता क्या है, कुछ भी तो नहीं । सब कुछ होने के बावजूद भी आत्मा को तो कुछ नही मिल सकता। मृत्यु हो जावेगी फिर साथ क्या जावेगा इनमे से। देखो, पुत्र अपने पिता का पितृतर्पण करता है तो क्या वहा पर एक भी जलकी बूद पहुच पाती है। केवल विकल्पो मे सारा लोक भरम रहा है । समस्त क्लेशो का मूल मात्र विकल्प है। वे विकल्प छूटकर यदि आत्मा की ओर ध्यान जमे तो वही कल्याणकारी है। विकल्पो मे तो हानि ही हानि है, अत जिससे मै विकल्पो को त्यागकर अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ ऐसा ही सकल्प, उपयोग व प्रयत्न उत्तम है। इसके सकट से बचने का एक ही तो यह उपाय है कि सच सच जान लो । सत्यज्ञान मे सर्वसकट समाप्त हो जाते है।

ज्ञाताद्रष्टाहमेकोऽस्मि निर्विकारो निरञ्जन ।
नित्य· सत्य· समाधिस्थ· स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-८।।

अर्थ– मैं जाननेवाला व देखनेवाला हूं, अकेला हूं, विकार रहित व मलरहित हूं, अविनाशी केवल की सत्ता में होने वाला साम्य अवस्थामें स्थित हू, इसलिये समता परिणाम में ठहर कर मैं अपने में अपने लिए स्वयम् सुखी होऊ।

मै ज्ञाता द्रष्टा हू। मैं चैतन्यस्वरूप हू। इसमे जो स्वच्छता का अनुभव है वह तो हुआ दर्शन, उसमे जो ज्ञेयाकार होता है या अर्थ विकल्प होता है वह हुआ ज्ञान। जैसे दर्पण मे दोनो बात होना आवश्यक है। दर्पण मे जो निजी स्वच्छता है उसका भी परिणमन तथा स्वच्छता के कारण जो प्रतिबिम्ब है उसका भी परिणमन। कुछ भी न हो, खुली जगह दर्पण को आकाश मे सामने रख दो तो भी सूक्ष्मरूप से परिणमन होता ही है। यदि विश्वास न हो तो करके देखते जावो तो देखोगे कैसे? क्योकि दर्पण मे स्वय का प्रतिबिम्ब पड़ जावेगा। इसी प्रकार मुझमे भी दो प्रकार का परिणमन होता है। उपयोग की अपेक्षा क्रमश परिणमन होता है। जो भी पदार्थ है वह सामान्यविशेपात्मक है। आत्मा भी चैतन्य गुण के कारण सामान्यविशेपात्मक है। आत्मा का सामान्य प्रतिभास या समस्त जगत् का सामान्य प्रतिभास कहो एक ही बात है, दोनों का अर्थ एक ही है। प्रतिभास के समय सब पदार्थो का जो सामान्य प्रतिभास है उसकी यदि खबर लग जावे तो वह ज्ञान बन जायेगा।

सामान्य प्रतिभास मे तो उस प्रतिभास की खबर ही नही रहती, और यदि खबर रहे तो ज्ञान कहा जावेगा। सामान्य प्रतिभास किसका? यह जानना ही तो ज्ञान हो गया। जानने का अर्थ ही ज्ञान है। यह विशेष तत्व बन गया । कहने को तो मुख से सामान्य कहा जाता है किन्तु यह विशेष बन गया। सर्व पदार्थगत सामान्य उपयोग मे अकेले नहीं हो सकता। पदार्थो का सामान्य प्रतिभास आत्मप्रतिभासरूप ही है। विषय कहते हैं पदार्थ को, विषयी कहते है आत्मा को । सामान्य प्रतिभासरूप परिणमन जो प्रतिभास है वह विषयी को भी नहीं पकडता । किन्तु उसको करने वाला कौन, यह हुआ विषयात्मक। सामान्य की भी पकड़ हो जावे तो वह ज्ञान बन जावे, किन्तु सामान्य प्रतिभास हो जाता है । उसकी पकड़ नहीं होती । यथार्थ मे दर्शन कब हुआ इसकी खबर न पहले होती, न बाद मे, न अनुभव ही होता है । सामान्य प्रतिभास होता सबके है और उस प्रतिभास का विषय मूलतत्व होता है , किन्तु वह मै ही तो हूँ ऐसा अनुभव विषयभोग के सस्कार वाले मोही प्राणी नहीं कर सकते हैं । ज्ञानी पुरुष ही उसे स्वीकार कर पाता है । ऐसी बात उपयोगरूप प्रयत्न द्वारा साध्य है । केवल वचनो से उसका अनुभव नहीं होता । एक कथानक है कि सब कौरव, पाण्डवो के साथ धर्मराज (युधिष्ठिर) भी अध्ययन करते थे । गुरुजी ने पढ़ाया कि गुस्सा मत करो। सबने पाठ सुना दिया, किन्तु युधिष्ठर ने कहा कि अभी याद नहीं हुआ । चार पाच दिन तक गुरुजी के पूछने पर यही उत्तर देते रहे कि अभी याद नहीं हुआ। गुरुजी को बहुत क्रोध आया कि इसमे याद न होने वाली कौन सी बात है अत उन्हे पकड़कर पिटाई की। काफी पिटने के बाद भी जब युधिष्ठिर को क्रोध नही आया तो वे बोले कि गुरुजी अब याद हो गया । इसी प्रकार वचनो से क्या होगा?

जब निर्विकल्परूप से निर्विकल्प प्रतिभास करे तो दर्शनका फिट बैठ जाना हो सकता है । यह दर्शन इस प्रकार है कि यदि फिट बैठाया जावे तो वह भी ज्ञान हो गया । देखना और जानना ये जीव के धर्म हैं । इस ससार मे कोई किसी का नहीं । मैं तो चैतन्यस्वरूप एक हूँ – इस प्रकार का विचार करना चाहिये । पुत्र या पत्नी आदि किसी से भी कितना ही प्रेम क्यो न हो, किन्तु हैं सब अलग–अलग ही । कषाय से कपाय मिल गयी तो दोस्ती, अन्यथा दुश्मनी । जैसे कोई छोटा बच्चा खेल रहा है, दूसरा भी वही खेल जानता है तो दोनो की तुरन्त दोस्ती हो जावेगी और प्रतिकूल दशामे दुश्मनी। इससे अधिक मित्रता व शत्रुमे मर्म ही क्या है ? ज्ञानी पुरुप ही समर्थ है कि वह अपने से अनुकूल को भी एव प्रतिकूल को भी निभा लेते हैं । किन्तु अज्ञानी प्राणी अपने से प्रतिकूल को नहीं निभा सकता। मै द्रव्य ,क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा एक हूँ । मै विकाररहित हूँ, स्वभावदृष्टि के कारण निर्विकार हूँ अर्थात् सरसता की दृप्टि से उपाधि बिना हूँ।

ऐसी दृष्टि बनाये कि ये रागादि भाव पौद्गलिक दिखाई देवे या चिदाभास दिखायी देवे । उपादानपर दृष्टि देवें या निश्चयनय पर यदि परभाव है तो आत्मा से क्या मतलब ? स्वभाव और विभाव दोनो क्या एक साथ रहेंगें? मैं निर्विकार हूँ, निरञ्जन हूँ अजनरहित हूँ, अर्थात् उपाधिरहित हूँ । चैतन्यशक्ति ही मेरा सर्वस्वसार है । पदार्थो मे ममता के परिणम न हो तभी शान्ति प्राप्त होती है । जब तक परपदार्थ मे ममता के परिणाम है तभी तक अशान्ति है । इसको मिटाने वाली स्वभाव दृष्टि ही है।

यदि गीदड़ो के बीच मे पले शेर के बच्चे को किसी प्रकार यह मालूम हो जावे कि मैं शेर हूँ तभी उसे सुख है। और जब तक पता नहीं तभी तक गीदड़ है। पता लगते ही वही शेरका शेर। इसी प्रकार कोई प्राणी चाहे कितना ही हट्टा-कट्टा क्यो न हो, यदि उसे सन्तोष नही तो वह दुखी ही है और दूसरा बूढ़ा बीमार, कमजोर होते हुए भी यदि यह सन्तोष धारण करता है कि मै स्वरूप मे स्वस्थ हूँ तो वह निरोग है, सुखी है । अत अपनी आत्मा की दृष्टि ही सुखकी दिलाने वाली है । मै यदि न था तो आज न होता । यदि कभी न रहूँगा तो आज भी मेरी सत्ता नही होनी चाहिये थी । वर्तमान की सत्ता ही सिद्ध करती है कि मै अनाद्यनन्त हूँ जो सत्मे हो उसे सत्य कहते हैं, मै सत् हूँ मुझमे जो हो वही सत्य है । जो अपने आपकी स्वरसतासे है वही सत्य है । जो चित्स्वभाव अपरिवर्तित है, चेतनायुक्त है ऐसा मै समाधिमे रहने वाला तत्व हूँ सम्-आधि, इसका मूल शव्द है आधि, सम् उपसर्ग है, आधि मानसिक कष्ट है । जहा मानसिक व्यथा शान्त हो उसे समाधि कहते है । उप, उपसर्ग लग जाने पर उपाधि बनता है। उपाधि का तात्पर्य ही है कि जो मानसिक क्लेश के समीप ले जावे। ऐसी जो उपाधि, व्याधि जहा शान्त हो गई वह समाधि है अर्थात् रागद्वेष रहित परिणाम, ऐसा में ज्ञाता, द्रष्टा, निर्विकार, निरजन, नित्य, अकेला हूँ । यही मेरा स्वभाव है । अन्य कोई विश्वास बनाना कि मै ऐसा हूँ सो स्वरूपदृष्टि से बाहर है । यदि कोई मुनि विचार करे कि मै मुनि हूँ, मुझे असत्य नहीं बोलना चाहिये, इस प्रकार के विकल्प से क्या वह स्वरूप की ओर है? नही । वह परपदार्थमे है, किन्तु उन्हे इस प्रकार का विकल्प होता नहीं है । उनमे सहज ही सयम रहता है । जैसा कि कोई आदमी किसी कार्य को करने मे बहुत निपुण होता है तो वह उस कार्य को सहज ही कर लेता है । उसके लिए सोचना नहीं पड़ता, विचार नहीं करना पड़ता। उसी प्रकार इनके भी समिति, गुप्ति सहज ही हो जाती है । उपयोग नहीं लगाना पडता । मै चेतनस्वरूप हूँ, यह दृष्टि रखनेसे दुख नहीं होता, किन्तु जो अतरग से यह मानता है कि मैं स्त्री हू या पुरुष हूँ वह मिथ्यादृष्टि है । जहा प्राणी इतना विचार करता है कि न मैं किसीका पुत्र हूँ, न किसीका पिता, परपदार्थमे मेरा कुछ नही, वहा यह भी विचार करना चाहिये कि न मैं पुरुष हूँ, न स्त्री हूँ। ऐसी प्रतीति अन्तरंग से नही करनी चाहिये कि न मैं अमुक का अमुक हूँ स्त्री हूँ या पुरुष हू । मै तो चैतन्यमात्र एक तत्व हूँ । तो वह ज्ञाता द्रष्टा की क्रियामे लग गया समझो। जैसे खरगोश का शिकार करने वाले शिकारी प्राय अपने साथ मे कुत्ता रखते है , खरगोश भाग-भागकर आगे की झाडियो मे छिपकर बैठ जाता है और अपने कानो से अपनी आखो को ढक लेता है तथा यह समझता है कि अब मुझे देखने वाला कोई नही । तब यदि शिकारी की नजर उस पर न पड़ी तो आराम से पड़ा रहता है, किसी प्रकार का विकल्प नही करता । उसी प्रकार उपयोगमे यदि वे बाते न आवे तो कोई विपदा नहीं, उपयोग मे बाते आ रही है इसीलिए विपदा है ।

जैसे किसी सम्बन्धीकी मृत्यु हो गयी और पता नहीं, तब कुछ भी विकल्प नहीं है । वह तो उसी प्रकार से रहता है जैसे पहिले था । एक पत्र आया और उपयोग मे वे बाते आ गयी तो दुखी हुआ यह भी तो सब विकल्पमात्र है व्यर्थ के विकल्प मे उलझकर दुर्लभ मनुष्य के क्षण गवाना अविवेक

है । अत मैं तो ज्ञाता द्रष्टा हूँ, अद्वैत हू, एक हू । इस स्वरूपसत्तामात्र मुझमे विकार आते भी हैं तो आवो, वे विकार मेरे स्वभाव से नहीं उठते । मै तो स्वभावमात्र हू अत निर्विकार हू। जहा विकार ही नहीं प्रतीत होते है वहॉ भिन्न सत् अञ्जन (उपाधि) की कथा ही क्या है, सो मै निरञ्जन हू । मै तो सत्य हूँ, केवल निज सत् मे होने वाला तत्वमात्र हू, अतः सत्य हू । स्वय समाधानरूप हू शात हू सो समाधिस्थ हू । ऐसे सहज चैतन्यस्वरूप मात्र मै अपने को यथार्थ परमार्थरूप मे देखू और सर्वविकल्प सकटो से मुक्त होकर अपनेमे अपने आप सुखी होऊँ ।

अमरोऽहमजन्मोऽह निःशरीरो निरामयः।
निर्ममो नैर्जगत्योऽह स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-६।।

अर्थ- मैं अमर हू, अजन्मा हू, शरीररहित व रोगरहित हू जिसका जगतमें कुछ नहीं है ऐसा, तथा जो जगत का कुछ नहीं है ऐसा मैं हू, इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊँ।

मै अमर हू, मरणरहित हू । मरते समय जो दु ख होता है वह वियोग का होता है । जैसे कि अज्ञानी जीव कहता है मरते समय कि मुझे वह दो वर्ष का छोटा .ालक दिखा दो, अब तो मेरे प्राण छूटने वाले है । ये रागद्वेष के भाव मरते समय भी अज्ञानी के ही होते है । किन्तु ज्ञानी के इससे विपरीत भाव होते हैं । वह यही सोचता है कि मेरी आत्मा तो अमर है , मेरा इस ससार मे कोई नहीं, मै एक हू, चैतन्यस्वरूप हू । अज्ञानी मे अज्ञानलीला की हद होती है । मै तो मरणरहित हू, जन्मरहित हू, अजन्मा हू, शरीररहित हू। मै तो अपने वास्तविक स्वरूप मे हू। शरीर शरीर मे है और मै अपने मे हू । किन्तु ऐसा कुछ हो रहा है प्राणियो की प्रकृति मे कि उसके विषय मे सोचा भी नही जा सकता । एक तो ऐसा दुःख है जिसे भुलाया जा सकता है, जैसे काटा लग गया, कुछ चुभ गया, उससे दुःखी होता है किन्तु दूसरा जो दुःख है उसमे समताभाव रखना बहुत कठिन तपस्या करना है । जैसे किसीने किसीको कुछ बात कह दी तो वह उसको लग जाती है । तात्पर्य यह कि अपने विपरीत कहने पर जो क्षोभ होता है , वह क्षोभ न होना चाहिये । किन्तु प्राणियो के प्रायः ऐसा धैर्य होता नही। किसीने कोई कड़वी बात कही तो वह भुलाये नही भुलाई जाती। सबसे बड़ी मूर्खता यदि है तो यही है कि दूसरोके द्वारा प्रतिकूल कहने पर अहित महसूस करना। दूसरो की बात सुन कर शल्य पैदा करना । ज्ञानी की बाते ही विलक्षण हुआ करती हैं जैसे सुशीला उपन्यास मे कथा आती है कि एक स्त्री किसी पुरुप से एकान्त मे स्नेह की बात करने पर बाध्य कर रही थी, पुरुषने उसको स्वीकार नहीं किया । स्त्री बोली कि यदि तुम मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हे कलकित कर दूगी, बदनाम कर दूगी , तो उसने अपने ज्ञानसे ही उत्तर दिया कि यदि मैं अपने ज्ञान मे कलकित हू तव तो बुरा होगा अन्यथा तुम मेरा कुछ नही कर सकती । यही तो ज्ञानी का ज्ञान है। अत यही विचार करना कि मै शरीर रहित हू, शरीर-शरीर है, मै, मै हू । शरीर को देह भी कहते हैं किन्तु दोनो का अलग अलग तात्पर्य है। दिहयन्ते सञ्चीयन्ते यत्र परमाणवः सः देहः। और शीर्यन्ते यत्र परमाणवः सः शरीरः ।। प्राय २०-२५ वर्ष तक की आयु के तनको देह कहते है और उसके बाद की अवस्था को शरीर कहते हैं, आत्मा तो अमूर्त है। उसमे कहा फुन्सी, कहा फोड़े, वह तो

अमूर्त है। आत्मा तो सदा आनन्दमय है। बस बुरा काम न करो फिर कुछ नही । नहीं तो सारी शल्ये जीवनभर लगी रहती है। सब जीव सुखी होवे ऐसा विचार करनेसे अपना बिगड़ता भी क्या है? अपनी भावना स्वच्छ रखे, किसी का भी बुरा न सोचे , किसी के प्रति दुःख की बात न सोचे । जरा सी देर के लिए मानो यदि अपना सोचा हुआ दूसरेके प्रति अनिष्ट हो भी गया तो इस आत्मा मे क्या वृद्धि हो जावेगी ?

अतः हे प्राणी ! सबके प्रति अच्छी भावना भावो, सबसे पहला यही काम है। गाली भी यदि कोई दे देवे तो भी यही सोचो कि चलो यह तो मुफ्त मे ही खुश हो गया, सुखी हो गया, क्योकि किसी को भी सुखी देखनेके लिए कुछ न कुछ उसकी खुशी के लिए खर्च करना पड़ता है। अत' उसको गाली देकर सुख प्राप्त हो जावे तो इसमे मेरी क्या हानि ? मै तो चैतन्यस्वरूप हू। मै लोकरहित हू, ममतारहित हू, कर्म के उदयको निमित्त पाकर होने वाला जो मोहभाव है, मै उससे भी रहित हूँ, अपने से ये जगतके समस्त पदार्थ भिन्न है तथा मै इनसे भिन्न हूँ, ऐसा अपनेमे विचारे । सम्यग्दृष्टि केवल शुद्धोपयोग मे ही जीवन व्यतीत करते है। उन्हे न खानेकी चिन्ता, न कमानेकी, न स्त्री पुत्रादिक की। उनकी अपनी गोष्ठी रहती है तथा शुद्धोपयोग मे समय व्यतीत करते है। हमारा भी उत्कृष्ट काम यही होना चाहिये कि हम सम्यग्दृष्टि बने, सबके प्रति अच्छे भाव रखे। देखो, सबको खुश कोई नहीं कर सकता । अतः सब मुझपर खुश हो, यह भाव व्यर्थ है।

एक सेठ था, उसके पास पाच लाख रुपये थे व ४ बेटे। अतः उसने चारो बेटो को एक-एक लाख रुपया बाट दिया और एक लाख रुपया अपने लिए रख लिया । फिर कुछ समय बाद–देखो, अपने आप सब खुशी खुशी न्यारे हो गये, बिरादरीको जिमाना चाहिये । बड़ी खुशी की बात है कि किसी से किसी का झगड़ा तक नही हुआ और अलग-अलग भी हो गये । अतः अब यह शुभ काम अवश्य करना चाहिए । सबसे पहले छोटे लडकेने बिरादरीको जीमन दिया, उसने अच्छा-अच्छा खाना बनवाया और सब प्रकार की मिठाई बनवायी । बिरादरी आयी और जीमने लगी । जीमते जीमते कहती जावे कि मालूम तो ऐसा पड़ता है कि पिताने अपना सबसे अधिक भाग इसी छोटे लड़के को दिया है तभी तो इसने इस प्रकार खर्च किया । अब देखो खा भी रहे है और बुराई भी कर रहे है फिर दूसरेने दावत दी तो उसने केवल तीन मिठाई बनवायी । तो जीमते-जीमते बिरादरी कहती है कि ये लड़का तो बहुत बदमाश है, इसने तीन ही मिठाई बनवाकर अपना काम बना लिया । फिर तीसरेने जिमाया, उसने केवल साग पूड़ी मे ही टाल दिया । फिर चौथे ने जिमाया, उसने केवल चनेकी दाल और रोटी ही जिमायी। जीमने वाले बोले कि सबसे अधिक बदमाश यही है इसने तो बनवाया ही कुछ नहीं । तात्पर्य यह है कि इस जगत मे प्रशसा की दृष्टि से वैभवादि एकत्रित करना व्यर्थ है। जनता सारी ही प्रशसा करे यह सभव नही । महावीर स्वामी जब थे तो उनकी भी सभी प्रशसा नहीं करते थे। कोई उन्हे मायावी कहता था. कोई कुछ । अतः जितना हो सके मनुष्य को धनादि वैभव परोपकार मे लगा देना चाहिये अन्यथा पछतावा होगा ।

एक सेठ था । उसके पास धन बहुत अधिक था, पर था कजूस । तो उसने काफी तो अपने लडको मे बाट दिया, फिर बचे हुए धनको भीतोमे चिनवा दिया । मरनेका समय आया तो उससे बोला न जावे, ऐसी दशा हो गई उसको । पच लोग उसके पास आये और बोले कि क्यो भाई क्या कुछ अब भी दान मे देना है या नहीं ? अब तो तुम्हारा मरणकाल समीप आ गया है। सेठ जी अब अपना साराका सारा ही धन दान मे देना चाहते थे क्योकि घरमे लड़कोका भी व्यवहार उनके प्रति अच्छा न रहा था। अतः उसने इशारे से प्रकट किया कि हा मै यह सब धन जो भींत मे रखा है वह दान करना चाहता हूँ । पच लोग इस बातको समझ न सके । तो उनके लड़को से पूछा कि तुम्हारे पिताजी क्या बता रहे हैं? तो लड़के बोले कि पिताजी कह रहे है जितना धन था वह सब तो ये मकान आदि बनवाने मे खर्च हो गया । अब बचा ही क्या जो दान मे देवे । अब वह सेठ सुन तो सभी कुछ रहा है किन्तु बोल कुछ नहीं सकता । वह मनमे कुढ रहा था कि लडके सब कुछ जान रहे है, पर छल कर रहे है । अब सोचो कि कितना कष्ट हुआ होगा उसको? मानव इसलिये धन नही बढ़ा रहे कि मै आगे भूखो मरूगा, अतः काम आ जावेगा । बल्कि इसलिए कि मेरी इस धन के कारण ही बड़ाई होगी, इज्जत होगी, पोजीशन बनेगी । सव मुझे अच्छा कहेगे । लेकिन यह सब व्यर्थका विकल्प जाल है। अतः इन सबको छोड़कर अपने धर्मका पालन करना ही तत्व की बात है। मै ममतारहित हू, परपदार्थके द्रव्य गुण पर्याय रूप नहीं, ऐसा जान-कर अपने स्वरूप मे ध्यान लगाओ, ये कर्मजाल भी नष्ट हो जावेगे । अब सोचो यदि एक बच्चे के हाथ मे खिलौना देखकर दूसरा भी रोने लगता है अब उसको चुप करना है तो कैसे किया जावे? यदि उसे पीटा जाय तो ओर भी रोवेगा और यदि उस बच्चे का खिलौना छीनकर उसे दिया जावे तो वह भी रोने लगेगा। अतः सीधा उपाय यही है कि उसे और दूसरा खिलौना दे दिया जावे । उसी प्रकार ये पदार्थरूपी खिलौना तो पास आ नही सकता, तब रोना बन्द करनेका एक यही उपाय है कि अपना जो स्वभावरूपी खिलौना है उसका ध्यान करो, उसमे रमण करो ऐसा करता हुआ मै अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी हो सकता हूँ ।

मै स्वय तो सर्वकल्याणमय हूँ, सत् हूँ, अतः अमर हूँ किन्तु प्राकृतिक मायारूप प्रभावोको अपनाकर अपनेको मरने वाला समझ लिया, इसी कारण मैं मरणके दुःख से त्रस्त होता हू । मै अनादिसिद्ध सत् हूं, परिपूर्ण हू, मेरे जन्म की आवश्यता भी नहीं और न मेरा जन्म होता है, किन्तु प्रकृतिजन्य (कर्मोदयभाव) स्कन्धोका सयोग व उस बीच अपने आपको समझ कर मै जन्मका भ्रम कर लेता हूँ, और इससे दुःखी रहता हू। मेरा तो मेरा चैतन्यस्वरूप मात्र है, मेरे शरीर कहा है? जब शरीर ही मेरे नहीं तो राग मेरे कहासे होगे? तथा जब शरीर भी मेरा नहीं है तो अन्य चीजो की कथा ही क्या? इस कारण न मेरा यह जगत है और न जगतका मै हू । ऐसे सवसे निराले अद्वैत ज्ञायकस्वरूप मात्र अपने आपमे मै रहू और आनन्दमय वनू ।

नोपद्रवो न मे द्वन्द्वो निर्विकल्पोऽपरिग्रहः ।
दृश्यः कैवल्यदृष्ट्याऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-१०।।

अर्थ– मेरे उपद्रव नहीं हैं, द्वन्द्व नहीं है, मैं विकल्प रहित हूं परिग्रह रहित हूं, केवल अकेलेकी दृष्टिसे मैं प्रतिभास के योग्य हूं, इसलिये केवल अकेलेकी दृष्टिद्वारा मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ।

आत्मा चैतन्यस्वभावमय है, मै चेतना शक्तिमात्र हूँ, इसमे दूसरी चीजका प्रवेश नहीं । अतः इसमे कोई उपद्रव नहीं हो सकता । मै ही उपद्रव मानू और दुःख मानू तो वह मेरे ही ओर से उपद्रव होगा, परकी ओर से नहीं । परकी आरे से उपद्रव किसी भी अन्य पदार्थ मे नही होता । परपदार्थ मे दूसरेके द्वारा उपद्रव नहीं होता बल्कि नैमित्तिकपरिणमन है । ऐसा वस्तुका स्वभाव है जिसे विभाव स्वभाव कहा है । बाह्मसे उपद्रव नही, निमित्त पाकर होता है। एक दृष्टि से तो सभी निमित्त उदासीन होते है, किन्तु एक दृष्टि से कोई उदार्सीन होता है, कोई प्रेरक होता है, एक दृष्टि से दूसरेका ही अपराध माना जाता है । एक दृष्टि से न उपद्रव है, न निमित्त है, न उपादान है। किसी परपदार्थ के कारण मुझ मे उपद्रव नही किन्तु मै ही कल्पनासे उपद्रव मानता हूँ। मुझमे उपद्रव नही है। ये सब स्वभावदृष्टि से समझे गये। उपयोग की बात बनी रहे तो उपद्रव भी न जचे। यदि कोई व्यक्ति पैर घसीटकर चल रहा है अथवा टेढ़ी चाल से चल रहा है, यद्यपि अपने से उसका परिचय भी नही, किन्तु कल्पना के कारण ऐसा अपने मे मानता है । लक्ष्मण और परशुराम का विरोध था, यह इस कारण कि ब्राह्मणो ने क्षत्रियो का नाश किया और क्षत्रियो ने ब्राह्मणो का नाश किया। अत इनका भी आपस मे विरोध था। जब वे दोनो आमने सामने आये तो लक्ष्मण ने परशुराम को कहा कि तुम मेरी आखो के सामने से हट जाओ और भी दो चार उल्टी-सीधीबात सुनाई। तब परशुराम जी ने कहा–

"कर विचार देखो मन मांही,मूंदहु आख कतहु कोउ कुछ नाही ।।" अर्थात् तुम यदि आखे बन्द कर लो तो तुम्हे स्वय ही कुछ दिखाई नही देगा। उसी प्रकार लोकदृष्टि की आख बन्द कर लेने पर कोई उपद्रव ही नही है। अपने स्वभाव से च्युत होने को तथा पर की दृष्टि होने को उपद्रव समझो। अत मुझ मे कोई दन्दफन्द नही । यह दन्द शब्द द्वन्द्व से बना है जिसका तात्पर्य है दूसरा। अत जब मुझमे दूसरा कुछ नही तो दन्द भी नहीं और फन्द भी नही, क्योकि दन्द के होने पर ही फन्द होता है तो जब दन्द ही नही तो फन्द कैसे होगा? मै तो चैतन्यस्वभाव वाला हू, निर्विकार हूँ, मेरा काम ही स्वच्छ रहना है।

अपने को स्वच्छ सुरक्षिरत रखकर रागादि को पौद्‌गलिक समझे इसका नाम विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनय है । मै परिग्रह से रहित हूँ, मेरा जो तत्व है उसमे अन्य कुछ नही। तव परिग्रह क्या लगा? यही विचार अपरिग्रह कहलाता है। बाह्यपरिग्रह का त्याग तो निष्परिग्रह आत्मतत्व की भावना का फल है। जब अपने आप मे आकिचन्य की भावना वढ़ गई, तव इसके होने पर परिग्रह सभाले कौन? अत छोड़ना ही पड़ता है। उदारता भी उसी के बढ़ती है जो आकिञ्चन्य की, निष्परिग्रह की भावना करे। उच्च परिणामो का होना ही सबसे बड़ी बात है।

जीवन मे आगे बढ़ने का सबसे पहला यही काम है। यह तो कठिन है कि अपने शरीर मे पीड़ा हो और अनुभूति न हो, यह भी कठिन है कि जिस वस्तु की इच्छा हुई वह प्राप्त न होने पर विषाद न हो, किन्तु इसमे क्या कठिनाई है कि यदि किसी ने प्रतिकूल वचन बोल दिया तो महसूस न करे, उसके प्रति विषाद ईर्ष्या न रक्खे। उसके प्रति कषाय रखना इसी का नाम तीव्र कषाय है। सबसे बड़ी जीवन की शिक्षा यही है। कोई भी उपद्रव क्यो न आवे, बस यही विचार करे कि मै तो चैतन्यस्वरूप हूं अन्य कुछ नही।

एक सुनार और एक सेठ पडौसी थे। सेठ धनवान था, सुनार गरीब। किन्तु इतना होने पर भी सेठ उसे तग ही करता रहता था। किन्ही कारणो को ढूढ-ढूढ़कर उसे तग करता था, हानि पहुचाता था जिससे उसकी हानि हो सके, किन्तु यह सब होते हुए भी सुनार सेठ के प्रति अच्छे भाव रखता था, उसका भला ही विचारता रहता था। सेठ ने कारण न रहने पर भी उसे हानि पहुचाने के प्रयास किये, किन्तु सुनारने हानि पहुचाने के साधन रहते हुए भी उसे हानि न पहुचाई। एक बार सेठ के यहा डाकू आ गये, उसकी लट्ठ से पिटाई करना चाहते ही थे कि सुनारने देखा और स्वय बीच मे आ गया, अपने आप पिट गया, घायल हो गया, किन्तु सेठ को बचा लिया। उस दिन से सेठ के भी विचार बदल गये, और सुनार से सेठ ने अपनी गल्ती की माफी मागी। अत हे प्राणी! सबके प्रति क्षमाभाव धारण करो, चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल। देखो जैनधर्म पाया, जैनकुल मे पैदा हुए , समागम भी ऋषियो का मिलता रहता है, शास्त्र भी सुनने को मिलता रहता है। ये सब होते हुए भी यदि हम इतनी बात न कर सके कि क्षमा का भाव धारण करे, तो समझो कि प्रतिकूल चालने वाले पर क्षमाभाव न करके उस बात को और कठिन बना लिया।

यदि क्षमा भाव रखते तो वह उपद्रव वही समाप्त हो गया होता। किन्तु उसमे विषाद करके आगे के लिये उस बात को कठिन कर दिया। क्षमा करने से मेरा घटता भी क्या है? जितना भी क्षमाभाव धारण करोगे उतनी ही इज्जत प्राप्त होगी। यदि इस प्रकार अपने को बना पाये तो समझो कि हम भगवान् के कुल मे सम्मिलित हो गये, उनके वश के हो गये। यह कुटुम्ब जिसे प्राणी अपना मान रहा है यह तो विनाशीक है, किन्तु भगवान् का कुल सत्य है। अत उस भगवान् के कुल के लिए यदि अपना विनाशीक यह लौकिक कुल भी छोडना पडे तो सहर्ष त्याग कर देना चाहिये किन्तु भगवान का कुल नही छोड़ा जा सकता सब कुछ सहन हो सकता है किन्तु धर्म पर आक्षेप सहन नहीं हो सकता। जैसे सब काम फिर हो जायेगे ऐसा कहकर डाले जा सकते है, किन्तु देवदर्शन के समय दर्शन न करे यह अपने को सहन नहीं होगा। जो जीव अपना हित किसमे है– इसकी वास्तविकता को पहिचान गया वह न तो धर्म छोड सकता है, न उसपर आक्षेप ही सहन कर सकता है।

मै परिग्रहरहित हूँ।समस्त इन्द्रियो को वश मे करके स्थिर होकर अपने आप मे जो दीखता है वही आत्मतत्व है, इस प्रकार आत्मतत्व की जो भावना भाता है उससे परिग्रह धारण नहीं हो सकता। अत मै अपरिग्रही हूँ। यह जीव निजपरमात्मतत्व की दृष्टि को ही हित मानता है परिग्रह को नही। यह आत्मा

सम्यक्दर्शन , ज्ञान, चारित्र की दृष्टियो से भी नही दिख सकता, एक कैवल्यदृष्टि को छोड़कर । अत मै अपने को कैवल्यदृष्टि से देखता हुआ अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ । घर गृहस्थी चलाते हम सब कुछ सहन करते है। लड़ाई झगड़ा, मुकदमा आदि आदि। किन्तु जब ही स्वभावदर्शन धारण किया कि सब कुछ क्षण भर मे छूट गया । पद्मपुराण मे बताया है कि उदय शकर अपनी बहिन को लेने आया तो उसका जीजा वज्रभानु, वह उसकी बहिन से बहुत ही मोह करता था । अतः मोहवश वह भी उसके साथ हो लिया । रास्ते मे जगल पड़ा, वहा एक मुनि तपस्या कर रहे थे। यह वज्रभानु उनकी ओर देखता ही रह गया और उसे वही वैराग्य हो गया। साले ने मजाक करते हुए कहा कि क्या तुम भी मुनि होना चाहते हो, जो ऐसे देख रहे हो । वज्रभानु इसी पशोपेश मे पड़ा था कि मै इनसे क्या कहकर इजाजत मांगू, किन्तु स्वय ही कारण मिल जाने पर बोला, यदि मै दीक्षा ले लूं तो क्या तुम भी ले लोगे ? उदयशकर ने सोचा कि यह तो महा मोही है यह क्या दीक्षा लेगा ? अतः प्रकट मे कहा कि ठीक है, मै भी ले लूगा । वज्रभानु ने तुरन्त ही दीक्षा धारण कर ली । उदयशकर आश्चर्य से उसे देखता ही रह गया । और फिर क्षणभर मे ही उसे भी वैराग्य हो गया । यह बात नहीं कि उसने वज्रभानु के शब्दो को यादकर ऐसा किया किन्तु इस मुनि की मुखमुद्रा ही ऐसी शान्त और आनन्दयुक्त भाव वाली थी कि वैराग्य हो जावे । और वज्रभानु का आश्चर्यकारक चरित्र देखा कि वैराग्य हो गया । फिर अन्तर्मुहूर्त मे ही उस औरत को भी वैराग्य हो गया । बताओ क्षण भर मे क्या से क्या हो गया ? जा रहे थे कहा, पहुच कहा गये? न इधर खबर है, न उधर। और हम ऐसे मोह मे पड़े हुए है, कि यदि कहीं सफर मे रेल आदि से जाते है, तो हर अगले स्टेशन से पत्र डालते रहते है कि अब मै अमुक स्थान पर पहुच गया, अब अमुक स्टेशन आवेगा, वहा से भी पत्र लिखूँगा, मै आराम से हूँ आदि, और फिर पहुचकर पत्र डालते रहते है यहा न चिट्ठी , न पत्री थी । बीच जगल मे मुनिदर्शन से मुखमुद्रा ही देखकर तीनो प्राणी वैराग्य को प्राप्त कर अपनी आत्माके, अपने कल्याण मे लग गये। यह मुखमुद्रा अन्तरग के स्वानन्द से, सन्तोषसे ही प्राप्त हो सकती है । हम चाहे विशेष आनन्द होने पर खूब ठठ्ठा कर हस दे। किन्तु वह मुखमुद्रा बननी कठिन है । वह तो तभी होती है जब कि स्वानुभूति हो जाती है । अपने को पहिचान लिया है कि मै चैतन्यस्वरूप हूँ, वाह्यपदार्थो से मुझे कोई प्रयोजन नही । अपने आपके आत्मतत्व के अविचल प्रत्यय से जो सहज आनन्द जगता है, उसकी सानीका आनन्द और कोई है ही नही । यह मै तो केवल शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ। मेरे कोई उपद्रव नही, मेरे कोई द्वन्द्व नही । मै सहज निर्विकल्प हूँ, समस्त परिग्रह भार से स्वतः मुक्त हूँ, अतः मै भ्रमजातको छोडकर अपने ही स्वरूप मे स्थिर होकर, अपने मे अपने आप सुखी होऊँ ।

निर्वशश्चेतनावश निर्गृहश्चेतनागृहः ।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् । ।१-११।।

अर्थ– मैं वेशरहित हूँ तथा चेतना ही जिसका वश है ऐसा हू , मैं घर रहित हूँ तथा चेतना ही जिसका घर है ऐसा मैं हू। मेरा चेतना से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । इसलिये अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊँ।

मै निर्वश हूँ, अग्रवाल, खण्डेलवाल, आदि जातिभेद से भी रहित हूँ तथा क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य आदि जातियो से भी रहित हूँ। यदि मेरा वश ही है तो मेरा वश चेतना है। जिसकी परम्परा अनादि से अनन्त तक चलती रहती है। अन्य कोई वश मेरा नही है। वश वही होता है जो परम्परा बनावे। मेरी परम्परा जाति कुलादिसे नहीं बल्कि चेतना मे बनती है। अतः मेरा वश है तो वह चेतना, और मै निर्गृह हूँ, घररहित हूँ, महल, मकान आदि से रहित हूँ, मेरा असली घर चेतना है जिसमे हम बराबर बने रहते है। जो कभी टल नही सकता, कभी हट नही सकता । चेतना को छोड़कर मेरा अन्य कोई नही। लोक मे अन्य घर भी तो है, फिर हम उन्हे क्यो नही अपना मानते, वह इसलिये कि लोकव्यवस्था मे हमे यह अधिकार है कि यहा से कोई हटा नही सकता , कितु पापादिक मे उदय से या कर्ज आदि के कारण कुडकी हो जाने से यह मकान छूट सकता है, किन्तु मेरे स्वरूप से, चेतना को कोई नही हटा सकता । प्रत्येक पदार्थ अपना अपना स्वरूप रखते है, चतुष्टय उनका भी है । द्रव्य, समुदायका नाम है। क्षेत्र, प्रदेश का नाम है और काल पर्यायका नाम है। भाव शक्ति का नाम है। इनको छोड़कर उसका दुनिया मे है क्या ? इसके अतिरक्ति दुनिया मे कुछ नहीं । इसी प्रकार मेरे प्रदेश गुण, पर्यायको छोड़कर और दुनिया मे है क्या । यही चेतना मेरा घर, वश है, जहा मै बेअटक बना रह सकता हूँ । वहा से मुझे कोई नही हटा सकता । अपना ही स्वभाव मेरा सब कुछ है। इससे अन्य कुछ नही । जिसकी जैसी प्रवृत्ति है उसका उसी रूप परिणमन होगा । उसे देख दुखी न होवे, क्योकि वहा पर मेरा क्या? जैसे किसी आलसी व्यक्ति को देख कर बुरा लगता है किन्तु ऐसा नही होना चाहिये । वह जैसा है होने दो, किन्तु रागादिक परिणामो के कारण ऐसा सब दुःख करता है। ज्ञान से जानो कि इसका परिणमन ही ऐसा है, किन्तु उसे देखकर विकल्प करना अपराध है, अविवेक है। अतः इसे मिटाने से ही शान्ति मिल सकती है। यदि विपरीत मानना है तो मानते रहो, उससे लाभ कुछ है ही नही। जैसे छोटे बच्चे गुड्डे गुड़िया का खेल करते है, उसमे छोटे ककरो को मिठाई का रूप देकर सब किया करते है। जो बराती बनकर आते हैं। वे भी कुछ झूठमूठ मे उन मानी हुई मिठाइयो को खाने का उपक्रम करते है। खाते नही, किन्तु यह सब है क्या? केवल कल्पनाकी ही तो सब वस्तु हैं । क्या ऐसा करने से वास्तविकता आ गयी ? उसी प्रकार हम भी कल्पना मे लगे हुए है कि यह मेरा है आदि, किन्तु इन सबमे कोई वास्तविकता नही है। धन्य हैं वे ज्ञानी जो सोचते है कि मेरा हिती तो मेरा ही स्वरूप है, अन्य नहीं । मेरे इस चैतन्यस्वरूप से अन्य कुछ नहीं। बाह्यपदार्थो से जितना त्याग बढ़ता जाता है उतनी ही महत्ता है । त्याग का ही तो महत्व है। यदि अन्तरग से त्याग के भाव आ जावे तो अनन्त चतुष्टय के दर्शन हो जावे । और यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो समझो कि उसका बेड़ा ही पार है, अतः चैतन्यस्वरूप ही मेरा स्वरूप मेरा सर्वस्व है। एक जीवद्रव्य को दूसरा कोई भी जीवद्रव्य उपाधि नही बना सकता । सादृश्य मे सादृश्य की उपाधि नहीं बनती, ये जीव मेरे सदृश है, अतः मेरी उपाधि नहीं बन सकती । विपरीत जो शरीरादि पौद्‌गलिक वस्तु है वह उपाधि बन जायेगी । एक स्वच्छ काच के सामने एक काच रख दो तो वे आपस मे मलिनता जाहिर नहीं कर सकते। इसलिए समानगुणपरमाणुका समानगुणपरमाणु के साथ बध नहीं होता, विषममात्रा

मे हो जाता है। अतः मेरी उपाधि अजीव व पुद्गल से ही बन सकती है। वह स्वभाव मेरा नहीं, मेरा स्वभाव तो चेतनास्वरूप है। आत्मा को यदि समझना है तो इसका साक्षात् उपाय प्रयोग है। जैसे तैरना सीखना है तो उसका साक्षात् उपाय प्रयोग ही है। रोटी बनाना मुँह से सब विधि बता दो। थाली मे इतना आटा लेना, फिर आटा पतला भी न हो, गाढ़ा भी न हो, पहिला पर्त कम सेके, दूसरा पर्त अधिक सेके, रोटी ऐसे बनाना आदि सब विधि बता दो। फिर उसे बिठा दो रोटी बनाने के लिए । क्या वह बना देगी ? नही । साक्षात् उपाय तो प्रयोग ही है। कितना ही संगीत पुस्तक से सिखा दो किन्तु क्या वह बिना प्रयोग के सीख सकता है हारमोनियम आदि? नहीं । साक्षात् उपाय सीखने का प्रयोग ही है। अतः यदि आत्मा के स्वरूप को समझना है तो साक्षात् उपाय प्रयोग ही है। ज्ञान मात्र करे तभी नहीं, बल्कि चारित्र भी हो ताकि हम एक चित्त होकर अपनी आत्मा के कल्याण में लग सके । परपदार्थो के भूलने से ही आत्मा के दर्शन होंगे।

वोला कि तुम कितने दिन इसमे रहोगे? सेठ सहम गया । साधु बोला कि जिसे तू हवेली समझ रहा है इसके छोड़ने के समय तुझे एक मिनट भी ठहरने की इजाजत न मिलेगी । हा उस धर्मशाला मे भले ही इजीजत मिल जावे मत्री से कह कर। फिर यह धर्मशाला ही तो है। इस प्राणी को ऐसा मोह लगा है, ऐसे मोहजाल मे फसा हुआ है कि यह मेरा है, यह उसका आदि ही रट लगाये हुए यह दुःख भोग रहा है। सोचो तो जब पूर्वभव का हमे कुछ ज्ञान नहीं कि हम कहा थे? कौन हमारे माता पिता थे? तब इस जन्म की ही अगले भव मे क्या याद रहेगी ? अतः मै अपने चेतन के घरको पहिचानकर अपनी आत्मा के कल्याण के मार्ग पर लगू। सदा यही भावना भानी चाहिए । विषयकषाय आदि का जल जिसमे नही चूता, उस निजचेतनागृह को छोड़ अन्यत्र ससार की इस बरसात मे कहॉ घूमूँ ? अतः इससे बचने के लिए चेतना रूपी घर मे रहकर सुखी होऊॅ ।

निर्मित्रश्चेतनामित्रो निर्गुरुश्चेतना गुरु ।
चेतनान्यन्न मे किचित् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-१२।।

अर्थ - मैं मित्र रहित हू, तथा चेतना ही है मित्र जिसका ऐसा हू, मैं गुरु रहित हू, चेतना ही है गुरु जिसका ऐसा हू, चेतना से अतिरिक्त मेरा कुछ नहीं है, अतः चैतन्य स्वरूप में ठहरता हुआ मैं अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊॅ ।

मेरा इस जगत मे कोई नहीं । लोक मे जो मित्र की तरह दीखते है वे केवल विषय भोगो मे ही साथी है। वास्तव मे कोई मित्र नहीं । घर कुटुम्ब मे भी जिन्हे हम अपना समझते है, उनसे अच्छे भगवान् हैं या वे पुत्र, स्त्री आदि, जिसने अपने सहजस्वरूप को पहिचान लिया वे भगवान् के अतिरिक्त अपने सहजस्वभाव के अतिरिक्त किसी को अपना नही समझते और मोही जीव बाह्यपदार्थो को ही अपना समझता है। किन्तु वास्तविकता यही है कि अपना यदि कुछ है तो वह है चेतना, अन्य कुछ नहीं। उनसे, घर के पुत्रादिको से तो पड़ौसी अच्छे है जो ज्ञान की बात बताते है, सिखाते है और ज्ञान मे लगने के लिये प्रेरित करते है।

ये मोही जन तो अन्धेरे मे ही पड़े रहेगे । उनसे अच्छे तो वे है जो हित का उपदेश देते है । ये ज्ञानी, उपदेशक ससार का अन्त करने मे कारण होगे और ये राग के कारणभूत अन्धेरे मे रखने के सिवाय कर ही क्या सकते है? अतः यही सोचो कि मेरा कोई मित्र नही, यदि है तो चेतना । चेतना स्वभाव ही मेरा मित्र है। इसी प्रकार मेरा कोई गुरु भी नही है। गुरु तो सूर्यकी तरह होते है । सूर्यका काम है, प्रकाश कर देना याने मार्ग बता देना, मार्ग दिखला देना । किन्तु जब हम चलेगे तभी तो वहा पहुच सकते हैं । चलना तो मुझे ही पड़ेगा । इसी प्रकार गुरुमार्ग बताने वाले ही हैं, सही ज्ञान देने वाले हैं किन्तु यदि मैं उस पर आचरण करूगा तभी तो मेरा हित होगा । अतः वे मार्ग बताने मे कारण तो हें, उसमे सूझ वनाओ तो कल्याण है। उस पर चलना तो तुम्हे ही है। अत मेरा गुरु मै स्वय हू। तुम्हारे गुरु तुम हो। मेरा स्वभाव ही मेरा गुरु है। चेतना को छोडकर अन्य मेरा कुछ नहीं । जिस मोह मे फसे हुये हम सोचते है कि अमुक बहुत अच्छा है, वह सब विपदा का कारण है। विपदा का कारण होता

है अज्ञान। जो हितकी अभिलाषा करे, हित की बात बतावे हित से मार्ग मे चला देवे उसे गुरु कहते हैं। वास्तव मे कोई न मेरा हित चाह सकता, न अभीष्ट का मार्ग बता सकता, न अभिलाषा करा सकता।जो कुछ करूगा मै ही करूगा। कोई यदि करुणा करेगा तो उसका उसमे ही परिणमन होगा, मेरा कुछ नहीं, सब कुछ करना तो हम ही पड़ेगा। अत वस्तुत मेरा कोई गुरु नही है। मै ही अपना गुरु हुआ। तुम्हारे गुरु तुम स्वय हो। मेरा सब कुछ मै ही हूँ। उस आत्मतत्व की श्रद्धा करो, दृष्टि लगाओ तो ये सब विपदाये नष्ट हो जावेगी। जन्म जरा मरण के चक्कर मिट जावेगे अन्यथा दुनिया मे बने दूसरो के द्वारा तोड़े गये, फोड़े गये,खोदे गये, गीला किया गया, क्या कष्ट नहीं पाये। हम जल भी बने। उसके दु ख देखो- गर्म किया गया, ठण्डा किया गया, कीचड़ मे मिलाया गया ,बहाये गये, ये दु ख हमने ही तो सहन किये। अग्नि बनकर उसके दु ख देखो – जलाया गया, पीटा गया आदि यह सब दु ख भी हमने ही सहन किये। हवा बनकर भी उसके दु ख, टायर मे बन्द किया गया, पखे से हिलाया गया आदि भी दु ख हमने ही सहन किये तथा कीड़े मकौड़ो मे रहकर भी हमने ही दु ख सहन किये।

आजकल लोग जूतो मे नाल लगवाते है, उनमे कितने कीडे-मकौडे नहीं मरते-बहुत मरते है, कुचल दिये जाते है । वनस्पति के दु ख कुल्हाड़ी से काटने आदि के भी हमने ही सहन किये। तिर्यञ्च के दु खो को भी, नरक के, देवो के दु खो को भी हमने ही अपने अज्ञान के द्वारा सहन किया। कोई तो चूहे को बन्द कर देते है फिर बिल्ली को सामने खड़ी कर खोलते है वह उसको खा जाती है। हिसक लोग रस्सी से उसकी पू छ बाध लेते है ओर अग्नि पर लटका देते है। वहीं तडप-तडपकर उसके प्राण निकल जाते है। भैया, ये दु ख भी तो हमने ही उन पर्यायो को धारण कर सहन किए। अडे, मुर्गे, मछलियो का तो कहना ही क्या है? कितने-कितने दु ख सहन करने पड़ते हैं।

वे भी दु ख अज्ञान के कारण हमने ही सहे और यदि हम अब भी अपने विवेक मे न लगे तो फिर ये दु ख सहन करने पड़ेगे और हित की बात जानेगे, करेगे तो भी हमे ही आनन्द होगा। कोई उसमे क्या कर देगा? हित मे लगाना भी हमारे लगने से ही होगा। तब मैं ही तो स्वय का गुरु हुआ। यदि अन्य गुरु है भी तो सूर्य की तरह। अत गुरुजनो ने जो हित का उपदेश किया अब मैं उसपर श्रद्धा कर चल सकू तो चल लू अन्य उसमे कोई क्या कर देगा? जो कुछ करूगा मै स्वय ही करूगा। इष्टवियोग या अनिष्टसयोग होने के कारण जब यह प्राणी बहुत दु खी हो जाता है तो पड़ोसी आकर बहुत समझाते है, किन्तु वह चुप नही होगा। क्योकि दूसरा उसमे परिणमन तो नहीं कर देता। अत चेतन मे अतिरिक्त मेरा कुछ नही। जिस शरीर की रग- रग मे हम समाये हुए है जब वही मुझसे भिन्न है, वही मेरे स्वरूप से अलग है, तब बाह्य पदार्थो मे कैसे कहा जावे कि ये मेरे है? चेतन को छोड़कर अन्य मेरा कुछ नहीं। जो ज्ञानीजन ऐसा मानते है वे अपने आपने प्रकाश पाते है पुष्ट होते है। हम तो समस्त पदार्थो के साक्षी मात्र है उन पदार्थों से भिन्न है सो उन्हे अंगीकार न करे। स्वभाव उसे कहते है जो जैसी बात हो उसको उसी रूप मे वह देवे, स्वभाव घटना का होता है हमारा तुम्हारा नहीं। जब पदार्थ ऐसा है, उसका परिणमन भी ऐसा ही है बस यह जानना है ज्ञान तो है किन्तु यह विचारो कि मैं चैतन्य मात्र छोड़कर

मेरा जगत मे अन्य कोई नहीं। अत बाह्य पदार्थो की उपेक्षा कर अपने मे अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊ। सत्य जो है उसे मान लो, उसी की उपासना करो। प्रत्येक पदार्थ का अपना- अपना जैसा सहज स्वभाव है वही सत्य है। जिस मकान मे रहते है , क्या यह सत्य है कि वह अपना है? नहीं यह असत्य है। सत्य होता तो सदा रहता। ये सब असत्य है, शरीर तक तो असत्य है। कर्मोदय से मोह मे ऐसा भाव बन जाता वास्तव मे ऐसा है नहीं । मेरा तो चेतना को छोड़कर अन्य कुछ नही। क्रोधादिक भाव सब नाशवान है, अन्तरग के दर्शन हो जाने से वे सब नष्ट हो जावेगे क्षणभर मे।

एक पुरुष बहुत व्यसनी था। उसकी स्त्री बहुत भली थी। उसने दुर्व्यसनो का त्याग करने के लिए बहुत समझाया, किन्तु वह न माना। एक दिन उसकी स्त्री ने उसे एक बटरिया दी और कहा कि ये हम सबके देवता हैं। तुम एक बात मानो इसकी पूजा कर लिया करो और चौबीस घटो के लिए ऐब छोड़ दिया करो। उसके पति ने स्वीकार कर लिया प्रतिदिन चावल चढ़ावे, घटा बजावे, नमस्कार करे और २४ घटो को पाप छोड़ देवे। इस प्रकार जब कुछ दिन बीत गये तो एक दिन उसने देखा कि बटरिया के ऊपर चढकर चूहा चावल खा रहा है। उसने सोचा कि इस बटरिया की पूजा करना बेकार है, क्योकि इससे बड़ा तो यह चूहा ही है। अब वह प्रतिदिन चूहे पर चावल चढावे, घटी बजावे, नमस्कार करे और २४ घण्टो का पाप छोड़ देवे। कुछ दिन बाद उसके ऊपर बिल्ली झपटी। उसने सोचा कि इससे बड़ी तो बिल्ली है। अत वह अब बिल्ली की पूजा करने लगा। प्रतिदिन चावल चढ़ावे, नमस्कार करे, घटी बजावे और २४ घटो के लिये पाप त्याग देवे। कुछ दिन बाद उस पर कुत्ता झपटा। अब वह कुत्ते पर देवता के भाव रख उसे पूजने लगा और सब कार्य उसी प्रकार किये। एक बार वह कुत्ता रसोई मे घुस गया, औरत ने उसको डडे से मार दिया। उसने सोचा कि इससे बड़ी तो मेरी औरत ही है, मैं व्यर्थ ही भटक रहा हूँ। अतः अब वह औरत की ही पूजा करने लगा । प्रतिदिन चावल चढावे, घटी बजावे, नमस्कार करे और २४ घटे के लिए पाप छोड़ देवे । जब कुछ दिन इस प्रकार बीत गये तो एक दिन वह खाना खा रहा था । नमक अधिक हो गया था खानेमे । अतः वह अपनी पत्नी से बोला कि आज नमक कैसे अधिक हो गया ? औरत भी पूजा के कारण अब बढ़ गयी थी, अब उत्तर भी जोर शोर से ही दिया कि हाथ ही तो है अन्दाज मे अधिक डल गया होगा । उससे यह सहन न हुआ और अपनी औरत को पीट दिया । फिर उसने सोचा कि यह तो मै ही बडा हूँ, बेकार मे आज तक इन सबकी पूजा करता रहा । तात्पर्य यह कि उसको छोड़, इसको ग्रहण कर। इस प्रकार करते- करते स्वयपर आ गया । अतः सब लघु हैं तुम्हारे लिए। तुम्ही महान हो, अन्य कोई महान नहीं । अतः अब पर-दृष्टि छोड कर मैं अपनी आत्मा मे रमकर अपने मे अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊँ।

निर्वित्तश्चेतनावित्तो निष्फलश्चेतनाकलः ।
चेतनान्यन्न मे किंचित् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् । ।१-१२।।

अर्थ– मैं धन रहित हूँ, व चेतना ही है धन जिसका ऐसा हू, शरीर रहित हूँ, व चेतना ही है शरीर जिसका ऐसा हूं, मेरा चेतना से अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है, अतः जानता देखता हुआ मात्र ही मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ।

मै धनरहित हू, वित्तरहित हूं। धनका दम लोक में अधिक माना जाता है । प्राण, दम, शक्ति जैसे अर्थ मे वित्तका प्रयोग होता है। कुछ पढ़े लिखे तो धनको ग्यारहवां प्राण कहते है। वैसे दस प्राण ही होते है, किन्तु धनको भी प्राण मान लिया है। बताइये कितना मोह है इस धन के प्रति प्राणी को? दुनियादारी मे, व्यवहार मे आज धन का बहुत बड़ा महत्व है, किन्तु दूसरी दृष्टि से यदि सोचोगे तो पाओगे कि यही पाप का पक्का कारण भी बनता है । अतः वास्तव मे तो चेतना ही धन है।

चेतना है धन जिसका ऐसा मैं हूँ । मैं शरीररहित हूँ, न मै वित्तरूप हूँ, न शरीर रूप, वित्त तो प्रकट ही अचेतन वस्तु है। शरीर से चेतना का सम्बन्ध भले ही हो, किन्तु वह भी अचेतन ही है। मेरा धन, शक्ति, बल सब कुछ चेतना ही है, इससे अन्य कुछ नहीं है। अतः मै शरीररहित हूँ, कलकल रहित हूँ, झगड़ा रहित हूँ उपद्रवरहित हू। कल कहते है शरीर को। जैसे कहते है कि क्या कलकल लगा रखी है अर्थात् क्या शरीर शरीर लगा रखा है। यह सब जो नृत्य हो रहा है, सब कलकलका ही तो है। अत' मै कलकलरहित हूँ। यदि मेरा कल है ही तो वह चेतना है। मेरा स्वरूप सिद्धो के समान है। वे शरीररहित हैं, अतः मैं भी शरीररहित हूँ । निज तत्व पर दृष्टि दी जावे (क्योकि अस्तिकाय आदि मे भी काय शब्द आया है, तो मेरा शरीर ज्ञान है।) मेरा सर्वस्व ही ज्ञान है। चेतना मेरा लक्षण है, और यदि अन्य अन्य प्रकार से अपने ऊपर दृष्टि दो कि मैं कितना लम्बा चौड़ा हूँ, तो ऐसी दृष्टि करने से आत्मानुभव नहीं हो सकता । क्या क्रोधी, मानीका परिणमन देखकर आत्माका लक्षण समझा जा सकता है ? नही। भैया, आत्माका लक्षण तो चैतन्यस्वरूप है – चेतना । अतः आत्माका शरीर है तो ज्ञान है। ज्ञान से ही आत्मा की समझ पड़ती है और ज्ञानरूप में ही आत्मा को समझा जावे। तो समझमे आ जावे अतः जो सिद्ध हैं वही मै हूँ।

वास्तविकता तो यही है कि मनुष्य कषाय बिना आत्मानुभव का पात्र हो सकता है। सम्यग्दृष्टि ही क्यो न हो वह भी तीव्र कषाय के रहने से आत्मानुभव का पात्र नहीं हो सकता । यदि विपदा कुछ है तो इस कषाय की ही विपदा है। मेरा तो चेतना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आज ससार मे इस शरीर व धन दोनो का ही बहुत बड़ा महत्व है। बहुत से ऐसे प्राणी होते हैं। चाहे कितना ही धन हो पास मे, दान करने के भाव भी हो, किन्तु अपने हाथ से खर्च नही कर सकते । स्वयं मुँह से भी स्पष्ट कह देते है कि मुझसे खर्च नहीं हो सकता । प्रकृति ही कुछ ऐसी है। भले ही लड़के से दिला देगा , किन्तु अपने हाथसे नही दे सकता । कुछ ऐसी वासना हो जाती है कि नहीं दिया जा सकता । यह हुई धनकी तृष्णा, लालसा और शरीर की तृष्णा है – मै बहुत अच्छा हूँ, मेरा आकार ऐसा है आदि सस्कार बनाये रखना । जैसे धनके लोभ मे अपने हाथ से लाभ नहीं होता, उसी प्रकार शरीर रहते हुए भी शरीर का कार्य नहीं किया जा सकता । ये दोनो ही मोह प्रबल है। अतः मेरा स्वरूप न तो धन है और न शरीर है।

मेरा सब कुछ चेतना ही है। जिसे आत्मदृष्टि है उसका भाव होता है कि सब धनादि मैं परोपकार मे ही लगा दूगा । यह मन भी विनाशीक है, अतः , यही सोचे कि सब जीव सुखी होवें। अन्यथा दूसरों

के प्रति बुरे भाव रखने से अगले भव मे मनरहित जन्म होगा । वचन रहित जन्म लेना होगा । यदि इस तनका दुरुपयोग किया, परोपकार मे न लगाया तो निश्चय ही पृथ्वी वृक्षादि अगले भव मे बनना पडेगा। किन्तु ज्ञानी जन यही सोचते है कि मेरा तन,मन ,धन लगकर जनता प्रसन्न हो तो मै ये सव उनकी सेवा मे लगा दू। ये तो नष्ट होने वाले है अतः जितना भी तन,मन,धन से दूसरोका भला हो सके करना चाहिये। और यदि कहो कि मोह वालो मे लगा रहे है तो उससे क्या लाभ? अरे, सबको समान देखो और सबके प्रति अच्छी भावनाए सोचो, परोपकार करने के लिए दूसरो का दुःख तन, मन, धन, वचन से दूर करने के लिए तत्पर रहो। ऐसा न हो कि कही इनको दुरुपयोग करने से अगले भवमे इनसे रहित अवस्था को प्राप्त हो, और रही अपनो मे उपकार करने की बात, वह तो तुम उनके मोहवश स्वय बिना किसी के समझाए भी करोगे ही । ज्ञान तो जब है जबकि सबको एक दृष्टि से देखते हुये तन, मन, धन, वचन से जहा तक हो सके दूसरो की सेवा करो। एक पडित को परोपकार के लिए कुछ रुपया जीवदया के लिए एक बड़े फण्डके रूप मे दिया गया कि परोपकार मे लगा दो। बाद मे जब हिसाब पूछा गया तो बोले कि मैने परोपकार मे खर्च कर दिया है, अपने घर वालो पर जो रुपया इसमे से खर्च किया, वह भी तो परोपकार ही है।

सोचो भैया ! क्या वह परोपकार मे शामिल है? नही। आप देखेगे तो पायेगे कि घूमने के समय पर भी ऐसे सज्जनो से वास्ता पडता रहता है कि भले ही उनके लिए आप या अन्य कोई परिचित नहीं, फिर भी नम्र वाणी से बातचीत करेगे । जहा अवसर होगा परोपकार किये बिना चूकेगे नही। उत्तम सद्बुद्धि रखने से अध्यात्म मार्गपर चलने का पात्र बनो। अतः मेरा तो इस ससार मे चेतना को छोड़कर अन्य कुछ नहीं । तब मै अन्यपने की दृष्टि न लगाकर अर्थात् अन्य मे उपयोग न लगाकर अपने मे अपने लिए अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊँ। इसको छोडकर दुनिया मे सुख का अन्य कोई उपाय नहीं । दुनिया मे जो लेनदेन की प्रथा है, उसमे देने वाले को साहु कहते है। तो वह कोई भी जब रुपया नहीं लेने आता है तो उनकी इस प्रकार की कहावत हो गयी है कि साहु जी ठीक-ठीक बता दे आप देगे या नहीं । "क्योकि हाका मरे और नाका जीवे।" अर्थात् आपने हमारे मागने पर हा कर दिया और समय पर न दिया तो हम बेमौत मारे जावेगे। और यदि स्पष्ट मे देने से इन्कार कर दिया तो कम से कम अपना अन्य उपाय तो कर लेवेगे, भरोसे तो न रहेगे। इसी प्रकार दुनिया के पदार्थो मे करोगे कि हा यह भी अच्छा, इसमे भी अच्छा यदि तब तो समझो कि मरे। और यदि इस प्रकार सोचोगे, नहीं, पुत्र मे भी सुख नहीं, पत्नीमे भी आनन्द नही, दुनिया के किसी पदार्थ मे भी आनन्द नही । आनन्द है तो केवल अपने चेतनास्वभाव मे, जो समझा वह अमर हो गया । आत्मबल ही एक ऐसा बल है जो कषी हुई अर्थात् कषाय की स्थिति मे भी अनाकुलताका ज्ञान करा देता है अन्तर्ज्ञान से उठी हुई अन्तः परिणति पूर्ण होती है। जिनके अतर्मन मे श्रद्धा है वे बाहर भी वैसे ही दिखायी देते है। किन्तु मिथ्यात्व के कारण ही आज धर्मपर आक्षेप आता है।

हो जाता है सो होने दो । हा धनका दुरुपयोग करना बुरा है। या तो सदुपयोग करो या सब त्यागकर अपनी उपासना मे लग जाओ ।

दुरुपयोग करने से इस लोक मे भी विपदा है और भी दुर्गति ही है। यदि सत्य उपाय बन गया, तो उससे परम शान्ति प्राप्त होगी । परम विश्राम होगा एव अपने सहजस्वभाव दर्शन भी कभी हो जावेगे। इसका आनन्द सब सुखो की अपेक्षा विलक्षण होगा । तब वह उस स्थिति को छोड़ना नहीं चाहेगा, और यही सोचेगा कि मै इसे किस प्रकार बनाये रखू? यह तो वही स्थिति है जिसे मैं आज तक खोजता रहा, जिसके दर्शन न कर नाना गतियो मे घूमता रहा, किन्तु अब मै अपने उद्देश्य को पा गया हूँ, इसी मे मेरा कल्याण है । ऐसा करने पर पाप स्वय ही छूट जावेगे, और पापो के छूटने का नाम ही तो धर्म है अतः भैया ! अपने आपको पहिचानो फिर कोई सता नहीं सकता । समझ लो फिर बेड़ा पार हो गया। अपने आचरणो को ठीक रखने से ही मुक्ति के मार्ग पर जीव लग सकता है। अतः व्यसनो का त्यागकर अपनी आत्माके स्वयसिद्ध ज्ञानस्वरूपका ध्यान कर अपने कल्याण मे लगो। यही तो अपना धर्म है।

निष्कीर्तिश्चेतनाकीर्तिर्निष्कृतिश्चेतनाकृति ः ।
चेतनान्यन्न मे किञ्चित् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-१४।।

अर्थ– मैं कीर्ति रहित हू व चेतना ही है कीर्ति जिसकी ऐसा हू, और कृति रहित हू, व चेतना ही जिसकी कृति है ऐसा हूं, मेरा चेतना से अन्य कुछ भी नहीं है, अतः चैतन्यभाव को ही चेतता हुआ मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ ।

यह जीव कीर्ति चाहता है। प्रत्येक ससारी जीव चाहे वह किसी भी दशा मे क्यो न हो किन्तु वह यश की कामना मन मे रखता है कि सब मुझे अच्छा कहे । भैया ! यदि शरीर की कीर्ति चाहते हो तो यह तो कठोर सत्य है कि यह साथ नही देगा , यह नष्ट होने वाली चीज है, तब इसकी क्या कीर्ति? जो वस्तु स्वय ही नष्ट होने वाली है उसकी कीर्ति कैसी? और जब आत्मा को पहिचाना ही नहीं तब आत्माकी कैसी कीर्ति ? अतः मै चैतन्यस्वरूप हूँ । मै कीर्तिरहित हूँ। मेरा स्वरूप कीर्तिरहित है। मेरी कीर्ति यदि है तो वह चेतना ही है। आत्माके स्वभाव का कार्य हाथ पैर चलाना आदि नही । इसका काम तो जानना, देखना, श्रद्धान करना है। क्योकि यह तो मात्र चैतन्यस्वरूप है। यह सब जो क्रिया हो रही है वह सब पुद्गलकी हो रही है। यह पैसा, धन, वैभव, ऐश्वर्य, पोजीशन, पिता, पुत्र, स्त्री, बन्धु, बान्धवादि का जो मोह लगा हुआ है हम इसीमे पिले जा रहे है, आत्मचिन्तन नही करते । हम जिनको पराया समझते हैं, जिनसे हमारा परिचय नहीं, जो अपरिचित है, उनसे हमे क्लेश नहीं पहुचता किन्तु उन मोहियो से, जिनसे हम मोह बढ़ा रहे हैं, जिनको हम अपना हितैषी मान रहे हैं, उनके कारण ही क्लेश होता है। यदि गैर आदमी हमारी आज्ञा नहीं मानता, यदि हमे उल्टा- सीधा कह देता है तो हमे क्लेश नहीं पहुचता किन्तु जिनसे हम मोह बढ़ाये हुए हैं, वे यदि आज्ञा न माने या विपरीत बात कह देवें तो क्लेश पहुचता है। फिर भी मोह से उन्हे छातीसे लगाये फिरता है। क्या किया जा सकता है? जब मैं इतना भी नहीं समझता कि जिससे तू मोह कर रहा है वही तुझे अनिष्ट पहुचाने वाला है। सबके

प्रति समताभाव धारण कर सुखी होने की भावना न करके यो ही दुःख को सुख मानकर भटक रहा है। सुखका उपाय यदि है तो वह है ज्ञान व वैराग्य । सच्चा ज्ञान व परप्दार्थो मे उपेक्षा भाव ही सुख प्राप्त करा सकता है, अन्य नहीं और सब ये बाह्यपदार्थ तो ससार- समुद्र मे भटकाने वाले ही है, पार लगाने वाले नहीं। इस जीव का परपदार्थो मे कुछ भी शरण नहीं है। यदि शरण है तो वह अपना ज्ञान व परपदार्थो से उदासीनता ही है। जितना ज्ञान का विकास करोगे उतना ही सुखी होवोगे। परपदार्थो मे मोह का नाम ही विपदा है। जिसने अपने आपको पा लिया वही अन्तरात्मा है और वही सुखी है।

सुख का उपाय सत्सग, स्वाध्याय, भगवद्भक्ति है। सबको समान दृष्टि से देखते हुए उन्हे अपने से गैर समझो। हम जो भी कर रहे हैं व जिनसे मोह है उनके प्रति कर रहे हैं, किन्तु सब कुछ समर्पण करना चाहिये ज्ञान व वैराग्य के हेतु । अन्यायसे, अनीति से, झूठबोलकर, तात्पर्य यह कि जिस उपाय से हम आजीविका कमा रहे है, उनके लिए जो हमारे कुटुम्ब के है,जिनको हम अपना समझते है, किन्तु वे ही विपदा व पतन के कारण बनते हैं । बाल्मीकिजी का काम यही था कि वे आते जाते मुसाफिरो को लूटते थे, उनका सब माल छीन लेते थे। एक बार एक साधु जा रहा था उसी मार्ग से। बाल्मीकिजी ने ललकार कर कहा कि ए मुसाफिर ! जो भी तेरे पास है वह सब निकालकर यहा रख दे, नही तो मै तुझे मार डालूगा । साधु जी के पास जो भी लोटा कम्बल आदि था, सब देकर बोले कि भैया ! इनको या तो कही रख लो या मुझपर विश्वास कर एक काम करो कि अपने घर यह पूछकर आओ कि जो मै यह पाप की कमाई कर रहा हूँ, उसमे तुम भी साथ दोगे या नहीं? पाप तुम भी बाट लोगे? बाल्मीकिजी अपने घर जाकर अपने मा, बाप, भाई, बहिन, पत्नी आदि सबसे पूछते हैं कि मै जो यह पापकी कमाई रात-दिन परिश्रमपूर्वक कर रहा हूँ, इसमे तुम लोग भी साथ दोगे या नहीं ? भैया ! पापका नाम ही बुरा होता है, कौन उसमे हिस्सा बाटने के लिए तैयार होगा ? सबसे इन्कारीकी बात सुनकर वापिस आया वह, और उसी दिन से ज्ञानकी साधना मे लग गया। वैराग्य प्राप्त हो गया, यही जानकर कि मै जिनके लिये यह कृत्य कर रहा हूँ वे कोई साथ नही देंगे, हिस्सा नहीं बॉटेंगे, तब साधुजी को सब वापिस कर बाल्कमीकिजी आत्मप्रगति करने के हेतु साधु बन गये । अब बताइये कौन है अपना इस आत्मा के सिवाय, चैतन्यस्वरूप के अतिरिक्त? अतः हे भाइयो, सबको चैतन्यस्वरूप देखो व सोचो कि सब जीव दुनिया के सुखी होवे, कोई दुखी न रहे और मुझमे जो भी तन ,मन, धन, वचन द्वारा उपकार हो सके उसे करने मे मै न चूकू । इसपर बहुत विचारो कि हमारा किसी के प्रति कभी दुर्व्यवहार न हो। यह ध्यान रखो कि जो हमको प्रतिकूल प्रतीत होगा हमारी प्रकृति मे विरुद्ध जो होगा उससे दूसरो को भी तो कष्ट पहुच सकता है सो जिन बातो से हमे अच्छा प्रतीत नहीं होता तो दूसरों के प्रति वह दुर्व्यवहार न करे ।

हमारे शरीर मे यदि काटा लग जावे या सुई चुभ जावे तो कितना दुःख पहुचता है? फिर आजकल जो ये मास, मछली को खाद्य बनाया जा रहा है, भोजन बनाया जा रहा है, उसमे तो मुर्गा बकरा आदि को काटा जाता है, उनको कितना दुःख होता है, उनको कितनी छटपट लगती होगी, और वहीं कुछ लोगों

की स्वादिष्ट सामग्री बनती है, उनकी तो जरासी रसनाकी तृप्ति और उनका प्राणान्त और वह भी वेदनापूर्वक। हाय रे मानव ! कितना पतन हो गया है, क्यो भूल रहा है कि तेरा यह कर्तव्य नही, इसमे सुख नहीं, विपदा है, जन्म मरण के चक्कर है । बड़े अफसोस की बात है। कि यदि मानवजीवन पाकर भी तपस्या न की, तो अवश्य ही हम बुरे मार्गपर है । कितनी दुर्लभता से मिला है ये मानव जीवन और इसको यो ही गवा दिया तो पछताना पड़ेगा । मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नरक- इन चारो गतियो मे यदि उत्तम गति है तो वह है मानवपर्याय, मानवगति और इसे पाकर भी यो ही गवा दोगे तो समझो कि तुमने अप्राप्य वस्तुको पाकर मूर्खतावश उसकी कीमत न समझी अतः भैया ! इसकी कीमत समझो और समझ बूझकर, दृढ़ विश्वास कर आत्मकल्याण के मार्गपर लगो, मन, वचन, तन और धन से जितना हो सके परोपकार करो, नहीं तो क्या है, जैसे जीव जीते है वैसे ही हमारा भी जीवन, वैसे ही मरण, इनके बीचका जीना चलता रहेगा। फिर चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण। अतः कीर्ति को असार जानकर पारमार्थिक ज्ञानस्वरूप मे उपयोग देकर सत्य कीर्ति व कृति प्राप्त करो।

जीविताशा प्रतिष्ठाशा विषयाशा जनैषणा ।
अभिर्मुग्धोविनष्टोऽहं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।७-१५।।

अर्थ - जीने की आशा यश प्रतिष्ठा की आशा विषय प्राप्ति की आशा, लोग अच्छा कहें इस प्रकार की आशा, इनसे मोहित हुआ मैं विनष्ट हुआ अब उनसे निवृत्त होकर मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ ।

ज्ञानवान् पदार्थ शरीर से जुदा है । मै तो आनन्दस्वरूप शान्तिस्वरूप हूँ और इसी की अभिलाषा मे लगा हुआ भी हू । केवल यही लक्ष्य है मेरा कि मै शान्तिवान् बनू, अन्य की अपेक्षा नहीं । अमुक कुलका हूँ, अमुक जातिका हूँ, अमुक धर्मका हूँ, आदि बातो से प्रयोजन नहीं। मै जो कुछ भी हू, शान्ति की खोज करने वाला हूँ। ऐसी प्रत्येक प्राणी की इच्छा है, किन्तु वह ज्ञान न होने के कारण व्यवहार से बाह्यपदार्थो मे आकृष्ट हो, विषयवासना मे आकृष्ट हो, उसी मे शान्ति की कामना करता है। लोगो को आकृष्ट करने के लिए बाह्यपदार्थो मे ही उपयोग लगाये रहता है किन्तु शान्ति प्राप्त नहीं होती । मै तो शरीर से भिन्न निराला ज्ञानपुञ्ज हूँ, शान्तिस्वरूप हूँ, बस मुझे यही चाहिये, अन्य कुछ नहीं । बाह्यपदार्थो से जब उपेक्षा होगी तव समझो कि हम अमूल्य निधि को प्राप्त करने के पात्र है। जिस पदार्थ का जो स्वभाव है उस स्वभाव को ही धर्म कहते है। अपने को धर्मरूप मानना सो धर्म को ही पाना है। आत्मा का स्वभाव सो आत्मा का धर्म। अपने स्वरूप मे ही उसे मानना, सो धर्म का पालन है।

धर्म का पालन बाह्यक्रियाओ से न होकर ज्ञानभावना से होगा। अन्य कोई उपाय नही धर्म के पालन का। धर्मपालन अपने से ही किया जाता है। तन,मन,धन वचन के सदुपयोग से जितना भी हो सके स्व-परोपकार करे। जो धर्म करने वाली आत्मा है वह शरीर मे ही तो है। ज्ञानी जन तन, मन, धन वचन से जैसे भी हो सके स्वोपकार व परोपकार मे ही लगा रहता है तथा सुखी भी वही है। इनके सदुपयोग मे ज्ञानी जीव पथभ्रष्ट नहीं होता। और इनका सदुपयोग न करने के ही कारण ये सव विवाद लगे हुए

है। इनके कारण ही नाना भेद बन गये। परमार्थदृष्टि से तो ज्ञानी जीव सबके प्रति उपेक्षा भाव रख धर्म के स्वरूप को समझते है, अन्तर्दृष्टि बनाकर धर्म का पालन करते है। यह स्वभाव अनादि से अनन्त तक एक सा रहता है। शाश्वत जो सत् है वही द्रव्य कहलाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मेरा स्वभाव नही। इनको धर्म मानना अधर्म का पालन है। मेरा स्वरूप तो चैतन्य है, इसका कार्य ज्ञाता, द्रष्टा रहना है। बाह्यपदार्थ व परभावका मै कर्ता नही यही दृष्टि धर्म का पालन है। दुर्लभ इस मानवजीवन को पाकर सयमज्ञान बढ़ाना जितना हो सके उतना ही कल्याण है। जीवन प्यारा है तो धर्म पालन से जितना हो सके उतना भला कर लेना चाहिये। जीवन प्यारा है तो वह धर्मपालन के लिए है, खाने-पीने के लिए नही। भैया! जीने के लिए खावो। खाने लिए जीना मानव जीवन नही। जीवन है धर्म पालन के लिए। सबसे बड़ा धर्मपालन तो यही है कि अविकार आत्मस्वरूप को देखो, सब पर समता भाव रखो क्रोधादि कषाय मत करो। कषाय करना क्या इस जीवन का स्वभाव है? नहीं। हम कहते है कि किसी से कहा जाय कि तुम एक घटे तक क्रोधी बनकर रहो तो कया वह रह सकता है? कुछ समय पश्चात ही वह अपने वास्तविक स्वरूप मे आना चाहेगा। जैसे जल को आग पर रख दो, गर्म होगा, बाद मे वह अपने वास्तविक स्वरूप मे नीचे रखते ही आने लगेगा। इसी प्रकार मान भी। मान करना, घमण्ड करना क्या जीव का स्वभाव है? नहीं। न माया, न छल-कपट ही जीव का स्वभाव है और न लोभ ही जीव का स्वभाव है। इनके रहते हुए आत्मकल्याण नही हो सकता, अपने स्वरूप का दर्शन नही हो सकता अपने स्वभाव को पहिचानना है, अपने आपका दर्शन पाना है तो भैया! ज्ञान के स्वरूप को ही जानने मे लगो, समता रसका स्वाद लो, सब जीवो पर समता भाव रखो। इन ससारी प्राणियो मे छटनी मत करो कि यह मेरा भाई है , यह मेरा मित्र है, मेरी पत्नी है आदि। राग भाव ही विपदा का कारण है

जितना भी यह नाटक हो रहा है सब उपाधिका है। कषाय से कषाय मिल गयी तो मित्रता और विपरीत अवस्था मे दुश्मनी। छोटे-छोटे बच्चो को ही ले लो कि जिस खेल को एक बच्चा जानता है यदि उसी को दूसरा भी जानता है तो तुरन्त पक्के मित्र बन जावेगे, अन्यथा दुश्मनी कर लेगे, लड़ाई हो जावेगी। जो कुछ भी आज हो रहा है, किसी से दुश्मनी, किसी से मित्रता यह सब कषायो का ही प्रताप है, उपाधिका ही नाटक है। अत हे भाइयो! इस सबको असार जान अपने स्वरूप की ओर आवो उसी मे तुम्हारा हित होगा, और अन्य जो तू परपदार्थ मे रागद्वेष की बुद्धि कर रहा है वह सब विपदा को देने वाली है, ससार का भ्रमण कराने वाली है। आत्मा का आनन्द इन बाह्यपदार्थो मे नहीं। ये सब वैभव, धन, बड़े महल, पोजीशन, आत्मा का स्वभाव नहीं, किन्तु इनमे पड़कर अपनी पर्याय बिगाड़ना है, विकल्प करने से जग-जाल नही छूटेगा देख लो, जितने भी बड़े-बड़े सेठ साहूकार होगे वे भी प्राय दु खी होगे क्योकि तृष्णा जिनकी अधिक रहती है, वे दु खी होते रहते है। ये सब वैभव जो तुम्हे आज प्राप्त है यह पुण्यकर्म की कमाई है। पूर्वजन्म मे पुण्य किया था उसी का फल है जो आज प्राप्त है। और यदि इस जन्म मे यह सब पाकर परोपकार मे न लगाया, बाद मे,धन के बीत जाने पर, शरीर ढल जाने पर पश्चात्ताप होगा, क्लेश होगा कि इनके रहते हुए मे दान न कर सका, दूसरो का उपकार न

कर सका। यदि धन दान मे देता तो कम से कम उसका सदुपयोग तो हो जाता, किन्तु धन के चोरी हो जाने पर, आग लगजाने पर, सन्तान बुरे कर्मो मे फसी हुई होने के कारण पछताता है कि मैं समय रहते न चेता।अत ये सब तो नष्ट होने वाली चीजे हैं। इनका जितना भी परोपकार मे उपयोग करोगे उतना ही सुख उतना धनादि स्वय प्राप्त होता जावेगा। कोई यदि ये सोचे कि परिश्रम करने से शरीर घटता है सो बात नहीं, बल्कि और शक्ति ही प्राप्त होती है। यही लोक धर्म का पालन है। ऐसा करने पर उसे लौकिक सतोष प्राप्त होगा।

मुमुक्ष को विकल्पजालो मे न पड़ना चाहिये। मेरी प्रतिष्ठा हो, मान हो आदि आशाए ही विपदा हैं। इन सबमे उपेक्षा भाव रखो। विषयो की आशा करना भी निर्मूल है। ये यदि प्राप्त हो गये तो भी शान्ति न मिलेगी और यदि न मिले तो भी अशाति ही है। इन सबमे बरबादी के सिवाय हाथ कुछ न लगेगा। मैं यह सब कुछ नहीं, मै तो ज्योतिपुञ्ज हू– इस विचार के रहने से विपदा सब नष्ट हो जावेगी। जो अपने को इस प्रकार मानता है वह सबको चैतन्यस्वभाव वाला ही जानता है, सबकी विनय करता है। इस प्रकार स्वय भी सुखी होता है और दूसरो को भी सुख पहुचाता है। और इससे विपरीत दशा मे तो दु ख ही दु ख है। इन बाह्य पदार्थो मे क्या सुख है? यदि सुख मिलेगा तो वह ज्ञान से ही मिलेगा। अत सब पर समता भाव रखो और सब कुछ समता दृष्टि से ही देखो। अपने आपको पहिचानना है, प्रभु के दर्शन करना है तो अपना आचार विचार व ज्ञान निर्मल बनाये रहो, बाह्यपदार्थों में वैराग्य की भावना रखो। अन्याय का त्याग, सयम से रहना, ये सारी बाते ज्ञान व चारित्र को निर्मल बनाती है। आशा कुछ रखो तो अपने निर्मल परिणामो से रखो। अन्य आशाये रखना केवल विपदा मे गिरना है। यही प्रयत्न व यही उपयोग हो कि मैं सर्व आशाओ को त्यागकर नैराश्य की आशा कर अपने मे अपने आप सुखी होऊ।

भवेऽप्यस्मिन् मुहुर्नाना दु ख प्राप क्व रक्षक ।
को भूत. कस्य भूतोऽह स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-१६।।

अर्थ– मैंने इस भव में भी बार- बार नाना तरह के दु ख पाये, इस दु ख के समय में मेरा कहा कौन रक्षक हुआ, और किसका मैं रक्षक हुआ, अब स्वय रक्षित अपने आप में अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

मैने इस भव मे भी तो नाना प्रकार के दु ख पाये, उनमे बताओ कौन रक्षक हुआ? भैया, किसी से रक्षा की आशा मत करो, रक्षक कोई हो ही नहीं सकता, क्योकि हमारी परिणति ही कोई अन्य बदल नहीं सकता। यदि बदलेगी भी तो स्वय की स्वय मे हुई परिणति से ही बदल सकती है। देखो जन्म से ही विचार कर लो, जब बच्चा था तब अपनी इच्छा व्यक्त न कर सका था, तब भी आत्मा पूर्ण ही था किन्तु इन्द्रियो के कारण बोल नहीं सका। बचपन में भी क्लेश हुआ है, कुछ इच्छा के अनुकूल प्राप्त न हुआ कि झट रो दिया। अब बताओ, कौन रक्षक हुआ इसका? कुछ बड़ा हुआ तो स्कूल भेजा गया। खेलकूद में मन लगता था उसे छुड़ाकर स्कूल में भेजा तो वह भी उसके अनुकूल न हुआ अत' दु खी हुआ। तब भी इसका कोई रक्षक नहीं हुआ। पढने मे रत भी हुआ, पढ़ने में चित्त भी लगाया तो अपने

से अधिक दूसरे के नम्बर देखकर दु खी हुआ। विफल होने पर तो कई छात्र क्लेश की अधिकता के कारण आत्महत्या तक कर लेते है। जवानी मे शादी का दु ख, सगाई-शादी के प्रति उत्सुकता, उसमे दूरी होने से क्लेश पाया। कहीं से शादी न हुई तब दु ख पाया। यदि हुई तो ब्रह्मचर्य का खंडन हुआ, फिर बच्चे हो गये तो ऐसा दबा कि फिर वह ज्ञान की बात सोच ही नहीं सका। कही लड़की उत्पन्न हो गयी तो फिर दु खो का कहना ही क्या है? और जिसकी दो-चार लड़कियां हो जाये तो वह तो शुरू से आखिर तक उसी ऊहापोह मे लगा रहता है, कहा कहा की चिन्ता करनी पड़ती है ? यदि लड़का हो गया तो दु ख कैसे? कुपुत्र हुआ तब तो दु ख है ही, सुपुत्र हो तब भी दु·ख ही दु ख है क्योकि उसके लिए यही चिन्ता करता रहता है कि इसके लिए ऐसा कुछ प्रबन्ध कर जाऊ ताकि यह दु खी न हो, उसके मोह मे दु खी होता रहता है। केवल ज्ञानवान् ही दु ख नहीं मानता, वह सब परिस्थितियो मे सुखी रहता है, क्योकि उसमे सच्चा ज्ञान है, अत· अपने ज्ञानबल के कारण ही आत्मा आनन्द पाता है। फिर यह भी तो सोचो कि मै ही किसका रक्षक हुआ? भैया! यह सब भ्रम है। किसी का किसी से प्रेम है तो दुःख और बैर है तो दु.ख। अन्य पदार्थो की ओर उपयोग गया कि दु ख है और अपनी ओर गया, अपने स्वरूप की ओर ध्यान दिया तो सुख ही सुख है। सबसे बड़ी विपदा तो संकल्प, विकल्प, अज्ञान, विषयवासना इनकी है। यदि किसी ने कुछ कह दिया तो क्या हो गया, उसका उसमे परिणमन हुआ मुझे क्या? किसकी ताकत है कि मुझे दु.खी कर दे और किसकी ताकत है कि मुझे सुखी कर दे? खुद का ही परिणमन दुःख पहुचाता है और खुदका ही परिणमन सुख पहुंचाता है। वे बिरले ही ज्ञानी जीव हुआ करते हैं जो समता परिणमन रख सोचते है कि मेरा कौन और पराया कौन? जिसे हम अपना मानते हैं वही तो दुःख का विपदा का कारण बनता है, अन्य पराये क्या बनेगे, जब कि उनमें उपेक्षाभाव है। तो सबसे अधिक विपदा तो इनसे ही है, जिन्हे हम अपना मान-मानकर दु खी हो रहे हैं।

वास्तव मे देखा जावे तो ये ही मेरी आत्मा का स्वरूप न जानने देने वाले हैं, ये ही बाधक हैं। वे मेरे है नही, उन्हे मानना भ्रम है और यदि कुछ है तो दु ख के देने वाले हैं। उन्हे प्रेम से देखो तो दु ख और विरोध से देखो तो दु ख। सुख प्राप्त हो सकता है तो ज्ञानबल से ही हो सकता है। जहा ज्ञान नहीं वहा दु ख ही दु ख है। ज्ञानी तो द्रष्टा है। ज्ञानबल मे जैसे-जैसे वस्तु का स्वतन्त्र स्वरूप समाता जाता है वैसे-वैसे ही विषयो से राग हटता जाता है। अत सुख के लिए जो अनेक प्रयत्न करते हैं यदि हम उनकी अपेक्षा यह प्रयत्न करे कि जो वस्तु का स्वरूप है वह हमारी दृष्टि मे अधिक से अधिक आवे तो अधिक सुख अथवा शुद्ध आनन्द मिलेगा। हम स्वय ज्ञानवान् हैं, पूर्ण हैं। कहा तो मेरा चैतन्यस्वरूप और कहा विषयवासनाओ मे फसा हुआ मैं। जैसे गीदड़ो मे फसा हुआ शेर अपने को गीदड़ मानता है किन्तु उसे यदि यह ज्ञान हो जावे कि मैं शेर हूँ तो फिर देखो। वही दशा मेरी भी है। मेरा तो स्वरूप भगवान् जेसा है। भगवान के दर्शन करने का यही तो प्रयोजन है और है क्या ? यदि इच्छा रखकर दर्शन किये कि भगवान् हमे सुख दुख देने वाले हैं, इनकी पूजा करे तो क्या सुख दे देवेगे। तो इन परिणामों मे निर्मलता कहा, ये तो मिथ्यात्व है, अज्ञान है। निर्मलता तो वहा है जहा आत्मा का सच्चिदानन्द स्वरूप

सोचा जा रहा है । मेरा स्वरूप तो केवल ज्योतिपुज है, चैतनन्यमात्र है, ऐसी उपासना कर कि जिससे यह ख्याल आवे कि मेरा भी वही स्वरूप है जो तुम्हारा है, वह परमात्मतत्व का भक्त है. परमात्मस्वरूप का दर्शक है। क्योकि द्रव्यत्व वही है किन्तु व्यक्त नहीं है। जैसे दो बर्तन नये लिये, दोनो एक जैसे है, उनमे से एक चूल्हे पर चढ़ा दिया तो वह काला हो गया। जो उनमे भेद आ गया बस वही भेद प्रभु मे और मुझमे है। स्वभाव तो एक ही है किन्तु मुझमे कलक लगा हुआ है और प्रभु उसी प्रकार शुद्ध हैं। हम परपदार्थो मे लगे हुए हैं और वे इन सबसे उपेक्षाभाव रखते हैं। जानते सब कुछ हैं किन्तु जानते हुए भी उपेक्षाभाव रखते हैं। किसी के मर जाने पर यह प्राणी करुण विलाप करता है और कहता है कि हाय, मै तो मर गया, मेरा तो घर ही उजड गया, मेरा दुनिया मे कोई न रहा। हे आत्मन् तेरा स्वरूप तो अरहन्त सिद्धो वाला है। सोचो। कहा तो यह महत्ता और कहा ये विचार कि मै लुट गया । हे भैया! तेरा लुट क्या गया? तेरा स्वभाव तो तेरे अन्दर है। जो कुछ है वह स्वय मे है, अन्तर्दृष्टि से मन, वचन, काय की प्रवृत्तिको एकाग्र करके देख तो सही। किसी काम को करेगे तो वह होगा और यदि बात ही करते रहेगे तो क्या वह होगा? घर मे यदि कूडा इकट्ठा हो जावे तो क्या वह बाते बनाने से दूर हो जावेगा? वह कार्य तो खुद के श्रम करने से ही होगा। अत हे आत्मन् तेरे अन्दर आनन्द तो पूरा भरा हुआ है, आनन्द से लबालब है, किन्तु अन्तर्दृष्टि से उपयोग करे तभी तो पान कर सकेगा। ऐसा भाव जगावे तो उसका बेडा पार है अन्यथा भटकते रहना होगा इन्ही चौरासी लाख योनियो मे। मैने इसी भव मे नाना दु ख सहन किये, बताओ कौन हुआ मेरा रक्षक और किसका मै रक्षक हुआ? मै तो सबसे भिन्न चैतन्य स्वरूप मात्र हूँ । इसका जितना भी दृढ़ विश्वास होगा, दृढ़ श्रद्धान् होगा उतना ही सुख पावेगा यह जीव। सब प्राणी अलग-अलग है, अपने- अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मे परिणमन करते है । एक जीव का दूसरे पदार्थो से अत्यन्ताभाव है। जो त्रिकाल मे भी मेरा कुछ नहीं हो सकता उसमे अपनेपर की बुद्धि करना विपरीत मार्ग मे लगना है। और जो उस विपरीत मार्ग पर चलेगा वह विपरीत अवस्था को प्राप्त होगा, दु ख उठायेगा। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, इन चारो गतियो मे भ्रमण करते हुए दु ख सहन करेगा। मैं तो सव जीवो से, इस शरीर से, रागद्वेष के भावो से इन सबसे न्यारा हूँ, मै तो चैतन्य शक्ति मात्र हू। यह अन्यत्र कहा प्राप्त होगा? यह तो यही ही है। मेरा यह सर्वस्व है।

जो इसकी भावना करेगा सो सुखी होगा। अत मै इसे प्राप्त कर आत्मा का कल्याण करता हुआ अपने में अपने लिए, अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊ।

दुस्त्याज्याचेद्रतिस्त्यक्ता मृतत्यक्तकुटुम्विनाम्।
स्वातन्त्र्य स्यानि कि स्यस्य स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।१-१७।।

अर्थ- जव मैंने मरे व छोडे हुए कुटुम्बियों का दुस्त्याज्य, (मुश्किल से छूट सकने योग्य) स्नेह छोड दिया तो अब किसमें स्नेह करके अपनी स्वतन्त्रता नष्ट करूं, अत सर्व अर्थो से राग हटाकर अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ।

जो आज नही है अर्थात् मर चुके है या अलग हो गये है, उनमे मेरा सबसे अधिक स्नेह था, मोह था, अब जब वही छूट गये तो इन छोटे-छोटे विषयो मे क्या राग करना? जिस कुटुम्ब मे जिससे भी सबसे अधिक मोह होता है फिर एक दो साल बीत जाने पर याद भी नही करते, तब कहा गया वह मोह? फिर जब तूने सबसे अधिक मोह को ही, ममता को ही छोड़ दिया, फिर इन अन्य बाह्यपदार्थो की ओर क्यो आकृष्ट होता है? आखिर छूटेगे तो ये सब भी एक न एक दिन, तब क्यो इनमे राग बढ़ाकर दुखी होता जा रहा है। ऐसी प्रकृति क्यो वना रखी है कि एक से छूटकर दूसरे मे मोह करने लगे। जैसे तुझे सबसे अधिक स्नेह जिस किसी मे था, उसकी मृत्यु हो गयी, तब कहा गये वे सुख विलास, कहा गया वह मोह, ममता? जब तुझसे इतना बड़ा ही मोह बीत गया, छूट गया तब इन बाह्यपदार्थो मे फिर से क्यो राग-द्वेष की वृद्धि करता है, छूट तो ये भी जावेगे एक न एक दिन। फिर इनमे पड़कर क्यो स्वतन्त्रता खो रहे हो? क्यो न इनके प्रति मोह ममता की, द्वेष की वुद्धि को नष्ट करूं? मरने पर, किसी के बीत जाने पर सोचता है कि मेरा शरण कोई न रहा, मै लुट गया हे प्राणी! चेत और विचार कर तो देख तेरा क्या लुट गया, तेरी शरण है कौन ? तेरा सव कुछ तेरे मे ही है। तेरी शरण भी तू ही है। उपादान ज्ञान बिगड़ा हुआ है अत एक बात के, एक पदार्थ के वीतने पर तू दूसरे के प्रति मोह करता है, व्यर्थ में स्वतन्त्रता खोता है, मामूली बातो मे अपनी स्वाधीनता खोता है। अब अपना ज्ञान इतना निर्मल बनाओ ताकि बाह्यपदार्थो मे रागवुद्धि ही न जावे। जव अपनी योग्यता ठीक नही है तब प्रत्येक स्थानपर दु ख ही प्राप्त होगा। अपनी आत्मा का ध्यान करो और सुखी होओ। सबसे वड़ा सुख स्वतन्त्रता है। इसका यह मतलब नही कि उद्दण्ड हो जावो। दूसरे के साथ उद्दण्डता से पेश आवो, कर्म की आधीनता न रहे उसे स्वतन्त्रता कहते है। व्यवहार मे भले ही स्वच्छन्द हो जाओ किन्तु कर्मो का उदय होने पर तो पराधीन ही है। अत अपने स्वरूप को पहिचानो और पर पदार्थो से स्नेह हटाओ, इसी का नाम स्वतन्त्रता है। अपने स्वभाव का भान हो, सम्यक् दर्शन उत्पन्न हो, उसका नाम स्वतन्त्रता है। कितनी ही आपत्ति क्यो न आवे तो भी ज्ञाता द्रष्टा रहो, ऐसी सद्बुद्धि अन्तरग मे आवे तो उसका नाम सच्ची आजादी है।

जब जिससे तीव्र मोह था उससे ही मोह छूट गया, तब इन छोटी-छोटी बातो मे क्यो राग करते हो? जैसे एक सेठ का किसी व्यक्ति पर एक लाख रुपया चाहिये था। वह हो गया गरीब, तो अन्य व्यक्तियो ने सेठजी से कहा कि बेचारे की वह दशा न रही अत अब केवल ५००) ही ले लो, ६६५००) छोड़ दो। तो सेठजी ने सोचा कि जब सभी छोड़ दिया तब ५००) के लिये क्यो लेने का नाम करना? इसी प्रकार सोचना चाहिये कि जब हमे जिससे कुटुम्ब मे सवसे अत्यधिक राग मोह था वही वीत गया तव इन थोड़ी- थोड़ी बातो मे क्या राग करना, क्यो ममता करना? मोह जन इष्ट के बीत जाने पर बहुत अधिक शोक करते है– हाय मै लुट गया, मै मर गया । अरे, तेरा क्या लुट गया, तेरी आत्मा तो तुझमे है, उसका भजन कर। यदि एकाकी जीवन मिला तो उसमे खेद क्यो? अव तो बल्कि और खुशी होना चाहिये कि भगवान् का ध्यान करने की योग्यता तो आ गयी, मेरे भाव अब निर्मल बनेंगे, ऐसा विचार

करना चाहिये उस परिस्थिति मे, न कि दु ख करना चाहिये। रामचन्द्र जी को सबसे अधिक मोह लक्ष्मण से था। ऐसा कि उसके मरने पर भी उस मृतक देह को लिये-लिये फिरे और जब उससे ही उनका मोह छूट गया तब किसी से मोह न रहा। फिर वे दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनि हो गये और मुक्त हो गये। अत जब सबसे बड़ा मोह ही बीत गया फिर छोटी छोटी बातो मे क्यो पडना? मोही जीवो मे ऐसी आदत पड़ी है कि यदि बड़ा राग छूटा तो भी छोटे मे प्रवृति करके राग बढ़ा लेता है। आचार्यो ने कहा है कि रागी होगा तो कर्मो से बन्धेगा और वीतरागी होगा तो कर्मो से छूटेगा। कर्ममुक्त होना है तो राग छोड़ दो। जिनकी हम पूजा करते हैं, दर्शन करते हैं, उन्होने और किया क्या ? अपने को निर्मल बनाया, अपना ज्ञान निर्मल रख, वीतरागी रहे, ज्ञान-दर्शन शक्ति अनन्त प्रकट हुई, स्वच्छ हो गये, कर्म रहित हो गये, परम आनन्द को पाया, तब वे परमात्मा हो गये। अत उनके दर्शन कर यही विचार पैदा करो कि जैसा तुमने किया है वैसा ही मैं भी करू और वह होगा भेदविज्ञान से। भेदविज्ञान के बल से परपदार्थ से हटकर निज आत्मा मे लगे । चैतन्यमात्र अपने आपको निरखा, यह उपाय किया, कर्म बन्ध टूटे, आत्मा मे विकास हुआ। सब पदार्थो को जानकर भी अपने आनन्द के रस मे लीन रहे। यह विचार कर दर्शन करना चाहिये। ऐसा नहीं कि मेरे बाल बच्चे सुखी रहे, इस भाव से दर्शन करे, इससे परतन्त्रता बढ़ती है।

अपने भावो से ही यह प्राणी पराधीन होता है और अपने भावो से ही स्वाधीन होता है। वैसे परमार्थ दृष्टि से देखा जावे तो यह किसी के आधीन है नहीं, किन्तु अज्ञानवश काल्पनिक अपने भाव बनाकर आधीन बनता है। यह आत्मा तो ज्ञान आनन्द का पुञ्ज है। न इसमे ज्ञान बाहर से आता न आनन्द ही। वह तो स्वय ज्ञानमूर्ति है। ऐसा अपने को सोचे तो आनन्द प्राप्त हो। सब जगह घूम आओ, आखिर मे अपने को ही बड़ा पाओगे। अपना ही सहज स्वभाव बड़ा मिलेगा। राग छोड दो तो उपद्रव रहित हो जाओगे अन्यथा क्लेश ही प्राप्त होगा। राग के कारण ही अन्तर मे ऐसा भाव का वातावरण बनता कि मरण के बाद फिर भी शरीर को पाता है जो कि दु ख का मूल है। अब शरीर के भी राग को छोड़ कर अपने वास्तविक स्वरूप को पहिचानो, उसका ध्यान करो। मोह भी करो और ध्यान का आनन्द भी मिल जावे– यह दोनो बाते परस्पर विरोधी हैं। अत राग त्याग कर अपने स्वरूप को पहिचानकर मै अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ ।

देखो– यह रागभाव जो कि दुस्त्याज्य बन रहा है, क्या है? केवल कल्पना का फैलावा है। वस्तु का विचार करो तो राग न तो आत्मा की चीज है, न कर्मो की चीज है और न विषयो की चीज है। फिर भी इस माया मे कैसा बानक बन रहा है कि विषयो का तो आश्रय है, कर्मोदय का निमित्त है और आत्मा का उस क्षण का वह एक परिणमन है। परमार्थ से देखो तो कुछ भी तथ्य नहीं है। ये विषय भी छूटेंगे, टलेगे। जो परपदार्थ हैं इनका सयोग अललटप है, कोईकायदे से या सिलसिले से या खातिरी से नहीं है। वे कर्मोदय भी उसी क्षण मिट जाते हैं जिनका कि निमित्त पाकर ये रागादि भाव होते हैं, अगले क्षण अन्य कर्मोदय हो जाते हैं। इतनी विडम्बना रहती है जिसका परिणाम यह है कि बन्धन चलता

रहता है। ये रागादि भाव भी एक क्षण होकर मिट जाते है। यह बात और है कि और और रागादिभाव निरन्तर होते चले जाते है। इन भावो मे तथ्य कुछ नही है। रागादिभाव असार है, दु ख रूप है। मिटते तो ये है ही, ज्ञानबल से खुद मिटा दिया जाय तो आनन्दमय प्रभु के दर्शन भी होगे। इन रागादिभावो के कारण ही स्वतन्त्रता का विनाश है। वास्तविक स्वतन्त्रता का विनाश है। वास्तविक स्वतन्त्रता का विनाश होने पर भगवान् का दर्शन असभव है। सो अब रागादिभावो से भिन्न अपने ज्ञायकस्वरूप को लक्ष्य मे लेकर स्वतन्त्र होऊ और स्वय स्वय मे आनन्दमग्न होऊ।

ज्ञात्वा रागफलं दु:खं जीवाना भ्रमतामिह ।
रागं मुञ्चानि नो? मुक्त्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।।१-१८।।

अर्थ– इस लोक में भ्रमण करने वाले जीवों के दुःख को राग का फल जानकर क्या मैं राग को नहीं छोड़ूँ? नियम से छोड़ूँगा ही, तब राग को छोडकर मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

जितने भी जीव घूम रहे है यह सब राग का फल है। इनको दु ख ही रहा ममता के कारण, मोह के कारण। ये आज तक भी क्लेश भोग रहे है। इन्होने सुख प्राप्त नहीं किया। किसी को भी बिठाकर उसकी कहानी सुन लो, सब कुछ सुनने के बाद अन्त मे परिणाम यही निकलेगा कि किसी मे राग है, अत दु खी है। अपने दु ख की जितनी भी कहानी बतावेगा उसमे किसी न किसी से राग मिलेगा। वस उसी राग के ही परिणाम के कारण वह दु खी है कोई दु ख की कहानी मे यह बतावेगा कि मेरी समाज मे इज्जत न हुई, कोई यह बतावेगा कि जैसा मै चाहता था वैसा न हुआ। यह सब दु ख रागादिक के ही कारण तो हुआ है, अन्य कुछ नहीं। जिसे दु.ख नही चाहिये उसे राग, मोह, ममता छोड़ देना चाहिये। शादी हो गयी, बच्चे हो गये, अब करना तो सब पड़ेगा ही। किन्तु हे भैया! सव कुछ करते हुए भी यही भाव रखो कि ये मेरे कोई नहीं, मै इनका कुछ नही, न ये मुझे सुख पहुचा सकते हैं, न मै ही इन्हे सुख पहुचा सकता हूँ। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, ये तो मुझे करना पड़ रहा है, ऐसा विचार करने से दु ख न होगा। इन सब दु खो को देखकर तथा अपने दु खो को विचारकर क्या मुझे राग नही छोड़ना चाहिए? अवश्य ही त्याग करना चाहिये। शराब पीने वाला शराब की दुकान पर शराव खरीदने जाता है तो कहता है कि देखो भाई, मुझे विलायती असली माल चाहिये, मुझे बढ़िया वाली शराव चाहिये। तब वह उसको यही दिखाकर कहता है कि क्या तुझे इन बेहोश पड़े हुए अपने बाप, चाचा को भी देखकर विश्वास नही होता कि मेरी शराब बहुत बढिया व अच्छी होगी। अत हे भाइयो! यदि राग का फल देखना है तो स्वय के दु ख देखो और इन सब ससारी प्राणियो के दु खो को देख लो कि राग के कारण कैसे-कैसे कष्ट उठाये जा रहे है, और तूने स्वय कैसे-कैसे कष्ट झेले? अब क्या ये देखकर भी तुझे विश्वास नहीं होता कि यह राग-बुद्धि छोड़ने योग्य है। यदि जानने मे आ गया कि मैं तो स्वचतुष्टयरूप हूँ, तो कोई क्या इस ज्ञान को नष्ट कर सकता है, विपरीत कर सकता है? कोई कुछ नहीं कर सकता। जितने भी

दुनिया के जीव है उन सबसे मै निराला हूँ । ये सब राग के परिणाम देखकर यही धारणा बनावे कि मै तो चैतन्यस्वरूप अपने सहजस्वरूप मे रहने वाला अनाद्यनन्त हूँ। अत मै इन सब को त्यागकर ज्ञायक भगवान के दर्शन करू। यह जीव भगवान के दर्शन ज्ञान से ही तो करता है और उपयोग मे यदि राग बसा हुआ है तो भगवान कैसे दिख सकता है? उपयोग मे राग न हो तो भगवान के दर्शन हो सकते हैं। जब राग पर उपयोग है तब स्वभाव पर नही और जब स्वभाव पर उपयोग है तब उपयोग राग पर नहीं है। तब मै राग छोड़कर अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

भैया ! यह राग तो एक न एक दिन छोड़ना पडेगा, तथा रागद्वेषरहित वीतरागअवस्था को एक न एक दिन तो अवश्य ही धारण करना पड़ेगा, तभी मुक्ति प्राप्त हो सकेगी । तब क्यो अपना समय नष्ट करके दुःख मे रुलता फिरूँ ? इसके लिए कोई अवस्था विशेष निश्चित नहीं कि वृद्धावस्था मे ही राग द्वेष छोडना चाहिये या अमुक अवस्था मे त्याग करना चाहिए । ये तो जितना शीघ्र छूट जावे उतना ही अच्छा है। जैसे- जैसे राग बुद्धि करोगे वैसे ही कर्मबन्ध होते जायेगे, और जैसे-जैसे वीतरागी होओगे तो कर्म स्वय ही तड़ातड़ टूटते चले जावेगे । अतः हे आत्मन् ! तू अपना आत्महित पहिचान, तेरा स्वभाव पापरूप नहीं । स्वयका सहजस्वभाव चेतन है, ज्ञानपुञ्ज है। भैया ! राग था शादी की, राग था बच्चे पैदा हुए । अब इनके फन्दको स्वय ही तो भोगेगा । अन्य कौन भोगेगा ? आनन्द का घातक राग है। आनन्द का और राग का बैर है। एकके होने पर दूसरा नही ठहर सकता । जब ये शरीर भी अपना नहीं तब दूसरो को अपना मानना कहा की बुद्धिमानी है? सोचो तब अपना कैसे हो सकता उनका शरीर? और जब दूसरे जीव अपने नहीं बन सकते फिर ये अचेतन पदार्थ, धन, वैभव आदि कैसे अपने हो सकते हैं? जब अपना कुछ है ही नही तब ऐसा मान लिये तो छूट जावेगे । "मानने मे ही राग है, और मानने मे ही त्याग है।" माने बिना तो रहते ही नहीं, सो मानते जावो, किन्तु मानो सच्ची बातको ही । जिसने अपने भीतरमे ऐसा उपयोग कर लिया तो बेडा पार है। चाहे कर न सको, किन्तु अन्तरग मान तो लो। ज्ञान सम्यक् रखो, स्वय सुखी होवोगे ।

एक शिष्य था । पढ लिखकर बोला कि गुरुजी ? मै तीर्थाटन करने जाता हूँ । गुरु बोले — क्या करेगा जाकर अपने अन्दर तो सब है। शिष्य नही माना, बोला कि मैं तो जाऊगा ही । गुरुजी ने आज्ञा दे दी कि ठीक है चले जाओ। जब वह चल दिया तो आगे रास्ते मे उसे एक बारात मिली। दूल्हे को उसने देखा तो पूछा कि भाई यह सव क्या है, क्योकि बचपन से गुरुजी के पास रहा था , अत वह ये सब जानता था नही । तब उसे बताया गया कि ये एक बारात है। फिर पूछा कि बारात क्या होती है? तो वे बोले कि भैया ! इसमे एक दूल्हा होता है, उसकी शादी होती है, औरत घर मे आती है, फिर बालबच्चे पैदा होते हैं। इतना सुनकर वह आगे चल दिया और आगे जाकर एक कुए पर सो गया , तो उसे वहीं सब दृश्य सपने मे दिखायी देने लगा कि मेरी शादी हो गयी, औरत घर आ गयी

और वह पास मे लेटी है, बीच मे बच्चा लेटा है, औरत कह रही है कि थोड़ा उधरको सरक जाओ वह वास्तव मे सरक गया। फिर वह बोली कि थोड़ा और सरक जाओ, तब वह जैसे ही सरका कि कुए मे गिर पड़ा । पानी मे गिरने से उसकी आख खुल गयीं, तब वह सोचने लगा कि अब इससे बाहर कैसे निकला जावे? कुछ समय बाद उस गॉव का जमींदार लोटा लेकर पानी भरने आया। जैसे ही उसने लोटा कुएँ मे लटकाया कि उस शिष्य ने पकड लिया और बोला कि भैया ! मै भूत नहीं हूँ तुम मुझे बाहर निकालो तो मै सब कहानी बताऊगा । उसने उसे बाहर निकाला व पूछा – अब बताओ क्या बात है? कहाके रहने वाले हो? कैसे कुए मे गिर गये ? तब वह शिष्य बोला कि आप हमारे उपकारी है, मुझे बाहर निकाल कर उपकार किया है, अतः आप पहिले अपना परिचय दीजिये। तब वह जमीदार बोला कि मै इस गाव का जमींदार हूँ, मेरी इतनी जमीन है, इतनी दौलत है और भरा पूरा परिवार है। तब वह शिष्य कभी उसे नीचे से देखे, कभी ऊपर से । वह जमींदार बोला कि तुम मुझे इस प्रकार क्यो देख रहे हो? शिष्य बोला कि मै तुम्हे नहीं देख रहा हूँ । मै तो यह सोच रहा हू कि जब मैने तो स्वपन मे ही गृहस्थी बसायी, तो कुए मे गिर गया और तुम इस प्रकार अपना समाचार बता रहे हो। अतः मै समझ नही पा रहा हूँ कि तुम जिन्दा कैसे हो ? सो भैया ! जिन्दा तो वही है जो अपना धर्म पालता है , वही जीवन है। वह जीव क्या जिन्दा, जिसे अपना धर्म ज्ञात भी नहीं। अब तक इस जीवने अनन्त भव प्राप्त किये, अनन्त जन्ममरण किये । आज यह जन्म है सो इसकी भी गिनती क्या ? जीवन तो तबसे मानो जबसे निज सहजस्वरूप की दृष्टि बने कि मै तो स्वतः सिद्ध अनादि, अनन्त अहेतुक, नित्य, अन्तःप्रकाशमान, चैतन्यज्योति हू। यह मै स्वय ज्ञानघन एव आनन्दमय हू । मै अपने मे ही अपने आप स्थिर होकर आनन्दमग्न रहूँ।

द्रष्टार स्वयमात्मान पश्य पश्य न चेतरम् ।
तिष्ठानि निर्विशेष चेत् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-१६।।

अर्थ- तुम स्वय अपने आपको द्रष्टा देखो, मानो, अन्य किसी को द्रष्टा - देखने वाला मत देखो, जिस कारण आत्मा ही द्रष्टा है उस कारण यदि मैं विशेष रहित विकल्प रहित ठहरा रहूँ, तो अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ ।।

पगत है, उसमे गरीब भाई, करोड़पति, लखपति भाई बहुत से बैठे हैं, परन्तु उस समय पर कोई अपनेको नाना रूप नही समझता, केवल अपनी जातिका एक सेवक समझता है, वहा करोड़पति, गरीब व पडित सभी एक है, वहा नानापन न रहे, यदि रहे तो उनका तिरस्कार हो जाये, उनकी शोभा नहीं होती । इसी तरह से इस जगत् के अन्दर जितने जीव है वे सब एक जाति के हैं, चैतन्यस्वभावमय हैं, इनमे परस्पर एक दूसरे मे अन्तर नहीं है। जो अन्तर यहा है वह उपाधि साथ लिये रहने से आ गया है। फिर भी जो परिणतिको अपनाता नहीं है, उस अन्तर की उपेक्षा करता है और चैतन्यस्वभावमात्र रूपसे सबको निरखता है, वह जीव मोक्षका मार्ग पाता है। किन्तु मोही अपनी पर्यायबुद्धि के कारण स्वभाव से विपरीत अपनेको नाना रूप मान लेता है, मै अमुक कार्य वाला हूँ, यशवाला हू, कुटुम्ब वाला हूँ, लड़के बच्चो वाला हूँ, इज्जत वाला हूँ। किसी भी प्रकार से अपनेको बेकार करना , बस यही वज्र की चोट- उसके गले पडी इससे फिर आगे जन्म मरणका चक्कर लग गया। सो भैया ! विकल्प छोड़कर सब जीवो को समान देखकर जो अपने को ज्ञाता-द्रष्टा मात्र देखता है वह मुक्तिका मार्ग प्राप्त कर लेता है।

यदि अपने आपको केवल द्रष्टा देखे आरे सबप्रकार की विधि से अपने को प्राप्त करता रहे याने सामान्यरूप रहे तो अपने आप सुखी हो सकते है। सुखस्वरूप तो हम हैं ही, सो यदि सुखस्वरूप अपनेको जाने तो यह पूर्ण सुखी हो जायेगा । मै केवल ज्ञानमात्र हू, इस आत्माका किसी भी पदार्थसे किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, मैं स्वतन्त्र हूँ, अविनाशी हूँ, ऐसा अपने को भावने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये।

जो कुछ मुझे दीखता है वह सब रूप, रूप ही तो है, और जो आत्मा पदार्थ है वह शरीरसे परे बहुत बडे गुप्त अनूप जातिमय एक वस्तु है। वह सब किसीको दीखता नहीं है। ऐसा वह बढ़ता ज्ञान मानो शून्यरूप मे वदलना चाहता है। देखो, जो दिखता है वह जानने वाला तत्व नहीं , व जो जानने वाला है वह दिखने वाला तत्व नहीं है। इससे हम स्वय कह सकते हैं कि अब बोलनेकी कोई गुञ्जाइश नहीं, इस जगत्मे बोलने का कोई स्थान नहीं । जो दीखता है वह जड़ है, उससे बोलने से लाभ क्या, जो जानने वाला है वह दिखता नहीं, उससे बोला ही कैसे जा सकता है, और जो जानने वाले तत्व हैं उनके यथार्थरूप विचारो तो केवल ज्ञानमय प्रतिभास ही है, उसका कार्य ज्ञान ही है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ कार्य ही नहीं है, वह तो अनन्त, अविनाशी, चित् है, इसका कोई नाम ही नहीं है ।

जैसा यह प्रभु है एव ज्ञानरूपसे साकार यह ज्ञानमय पदार्थ है, ऐसा इस तत्व को न जानकर और इसको नाना रूप मानकर यह नाथ दुःखी हुआ है। इस जीवको आत्मस्वरूप दिखाने वाला दुनियामे अन्य कोई उपाय नहीं है, यह स्वय देख लेता है। जैसे एक कथानक है कि एक आदमी ज्ञानी आदमी के पास गया। कहता है कि महाराज, मुझमे ज्ञान भर दीजिए, ज्ञानी वोला कि यह तो मामूली बात है , जो उस नदी में मगर रहता है, उसके पास जाओ और उससे पूछ लो। वह वहा गया, जब मगर निकला तो उससे

आदमी बोला कि मेरे मे ज्ञान भर दीजिए। मगर बोला भाई कुए से जरा पानी ले आइये मुझे प्यास लगी है। प्यास बुझा लू, तब तुम्हे ज्ञान बताऊगा । आदमी कहता है कि तुम तो नदी मे बैठे हुए हो फिर प्यास कैसी ? मगर कहता है कि भाई तुम भी तो ज्ञान स्वरूप आत्मा हो, तुम स्वय ज्ञानस्वरूप हो, फिर ज्ञान प्राप्ति की प्रार्थना कैसी ?

इस ज्ञानमय पदार्थमे ज्ञान है ही, मै जानता हूँ, इसके अतिरिक्त और कोई कार्य ही नहीं है, जाननेके अतिरिक्त यह जीव कुछ नही करता, तुम अपनी स्वरूपमय आत्मा हो, जगत्‌के सारे पदार्थ अपने स्वरूपमय है, आत्मामे तो उसका अपना ही काम है, वह अपने स्वरूपसे बाहर कुछ नहीं करता । आप अपने अन्दर ही स्वय देख सकते है, स्वय यह ही ज्ञाता है, बाहरसे आख मूदकर अन्तर मे देखो, क्या महसूस होता है? बाहर गये कि उस जाल मे फसा, मै सत्य कुछ देख ही न सकूगा । बाहर से भीतर की वस्तु का बन्धन कैसे लगेगा, बाहरी स्वरूपका बन्धन कैसे लगेगा? वस्तुतः हम अपने ही कल्पना जाल मे बधते है।

कहते है, एक बार राजा जनकके पास एक व्यक्ति गया, बोला कि मै बहुत फसा हूँ, परिवार ने मुझे बाध डाला है, महाराज ! उस बन्धनसे छुडाये । राजाने कोई उत्तर नही दिया , क्या किया कि सामने जो लोहेका डडा खडा था उसके पास गया ओर डडेको अपनी जेटमे भर लिया व बोला –मुझे इस खम्भेने पकड़ लिया है, इस बन्धनसे छूटू तब तुम्हे उत्तर दूगा । उस व्यक्तिने कहा कि खभेने तुम्हे पकड़ लिया है कि तुमने खम्भेको पकड़ लिया है। राजा जनक बोले–यही तो तुम्हारा उत्तर है, अरे भाई, तुम्हे परिवार ने जकड़ लिया कि तू ही कल्पनासे उन्हे जकडे है। तेरेमे तो तेरा स्वरूप है, प्रभु है और दूसरा कोई नही। तू ही अपने स्वरूपको भूलकर कल्पनाका जाल पूरता है और खुदको बन्धन मे बाधता है।

यह तो अपने - अपने ज्ञान की बात है, जीवोका उद्धार कहा से होता है? ज्ञान ही उनकी शान्ति का कारण बनेगा । जैसे-जैसे उस ज्ञानका आदर करेगा वैसे वैसे ज्ञान बढ़ेगा, जैसे जैसे हम बाहरी बातो मे उपयोग लगायेगे वैसे वैसे ज्ञान का तिरोभाव बढेगा । सो भैया ! इतना ऊचा पद पाया है, उत्तम कुल पाया है, इतना साधन होनेपर भी हम अपने ज्ञानका सुधार नही करते तो क्या है? सब व्यर्थ है, अन्तमे पछताना ही हाथ आयेगा ।

प्रभो! तू केवल ज्ञानमय तत्व है, तेरे मे दूसरे पदार्थका कुछ नहीं आता । जो तुझ पदार्थमे है वह बाहर नहीं जाता । तुम अपनेको स्वय देखो, अपने आपको जानने की पद्धति प्राप्त करो। कही कोई भी अन्य तत्व इस नाथ मे नही है। इसका स्वरूप ज्ञानघन है, आनन्दमय है, इस प्रभुसे अन्य पदार्थका सम्बन्ध नहीं है। और ऐसा ही देखे तो इसकी दुनिया अलौकिक हो जायेगी और फिर उस भावसे समस्त विपदाये समाप्त हो जायेगी।

जगत् के प्राणियोको जितना भी क्लेश है वह सब रागका ही क्लेश है। जैसे इच्छा हो कि क्लेश

को दूर करना चाहिये, तब उसका अर्थ यह समझो कि राग दूर करना चाहिये । इसका भी उपाय सोचना चाहिये कि रागको कैसे मिटाना है? राग मिटे तो क्लेश मिटेगा और राग न मिट सका तो क्लेश नहीं मिट सकता । राग मिटनेका उपाय क्या है? उसका उपाय यह है कि अपने स्वभाव को रागरहित देखना चाहिए और अन्य उपाय करो तो यह राग दब तो जायगा पर मिटेगा नही, जैसे किसी वस्तुका राग है तो उसके खिलाफ किसी काममे लग जावे । तपमे, पूजा मे, परोपकार मे लगे और कोई उपाय है तो उसे करना चाहिये जो कोई और उसका उपाय है वह सब करना तो चाहिए परन्तु इस उपायसे राग दब तो जायेगा , पर राग मूलसे नष्ट न होगा । मेरा रागमे रहनेका स्वभाव नही है यह तो सब मोहकी लीला है। अपने को रागरहित ज्ञायकमात्र देख सकता है। यही शान्ति व राग मिटने का मूल उपाय है। जो इसके आगे देखता है, अपना वैभव कुटुम्ब आदि देखता है, यह सब उसके मोह के मोहकी लीला है।

हे आत्मन् ! तू मात्र ज्ञानस्वरूप है, तू अपने को केवल ज्ञानस्वरूप तो देख, इतना तेरा सर्वस्व है, इतनी यह उसकी सारी दुनिया है, इसके अलावा और मै कुछ नही हू, इस रूपसे तू अपनेको देख, इतना तो साहस कर कि एक बार समस्त पदार्थो की उपेक्षा करके, मै ज्ञानमात्र हूँ, ऐसा अनुभव कर। विकल्प जब दूर होगा तो विपदाये सारी दूर होगी जगत्के पदार्थो से इसको विपदा नहीं आती, यह प्राणी अपने विचारो को बनाकर स्वय दुःखी हो जाता है, बस इसी का नाम विपदा है। बाहरी तो बाहरी ही है। बाहरी पदार्थो से कैसे विपदा आयेगी? विपदा तो उसके ही अन्दरसे आती है, विकल्पका नाम ही विपदा है। कोई मानता है कि उसके पास धन कम है, धन कम होने से विपदा नहीं है, किन्तु धन से अपना हित समझकर, फिर धनकी कमी सोचते रहना ही विपदा है। इसलिये विपदा तो ज्ञान से दूर होगी । भ्रमसे उत्पन्न हुई विपदा का नाश भ्रमनाशक ज्ञान से होगा । इसका एकमात्र उपाय है—रागरहित अपना स्वरूप देखे।

जैसे किसी पुरुष को किसी बात का भ्रमहोनेसे वह दुःखी हो जाय तो दुःख दूर करनेका उपाय केवल भ्रम दूर कर लेना ही है। जैसे कि स्वप्न देखनेसे दुःख हुआ, स्वप्न मे खोटी बात देखी, खोटी बात से जो दुःख उत्पन्न होता है उसका नाश नींद खुल जानेसे होता है। जैसे स्वप्न मे देखा कि मै जगल मे घूम रहा हूँ । देखा कि एक सिह सामने आ रहा है, वह मुख बाये चला आ रहा है, यदि यह देखते हैं, तो क्लेश होता है। उस दुःखको मिटाने का कोई उपाय है, सुन्दर हवा चले तो क्या क्लेश दूर हो जायगा, क्या माता पिता पास बैठे हो तो क्लेश दूर हो जायगा? उसका कोई उपाय नही है, इसका केवल एक उपाय यह है कि नींद खुल जानी चाहिए। यदि नींद खुले तब जाने कि यहा जगल आदि कुछ नहीं, तब उसे आराम मिलेगा ।

यह परिवार मेरा है, यह दौलत मेरी है, ये मित्रजन मेरे है, मेरी लोगोमे इज्जत ऐसी है—इस बातको देखने से सारे क्लेश स्वप्नवत् रहेगे। बीचमे इज्जत को धब्बा लगा तो क्लेश है। धनको उपार्जन करनेका

क्लेश, रक्षा मे क्लेश, नाश मे क्लेश, किसी भी प्रकार के विकल्प बनाए जाते है तो वहा पर प्रारम्भ मे भी क्लेश, बीच मे भी क्लेश। भ्रमसे होने वाले क्लेश को दूर करने का क्या यह उपाय है कि किसी तरह से इज्जत को दुगुनी बना ले? नही, यह कोई उपाय नही है। स्वय सत्यस्वरूप को देख लो, तब क्लेश अनायास ही दूर हो जायगा । उसका तो केवल ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान से तो और कुछ नहीं होता। धन, इज्जत, परिवार आदि से इसको लाभ नही है, बल्कि हानि है। यदि ज्ञानस्वरूप आपको देखकर आपमे सतुष्ट रहे तो सब क्लेश मिट जावेगे। उस ज्ञानको ज्ञान के द्वारा खुद जानता है यह ज्ञानी । ज्ञानके लिए यह जानता है , इससे अधिक उसका कुछ कर्तव्य नहीं है, ऐसी भावनाके बलपर जो ज्ञानी ज्ञायकस्वरूपका अनुभव करता है, उसको जो अनुपम आनद मिलता है वह न तो इन्द्र को प्राप्त है और न चक्रवर्तियो को ही प्राप्त है। वह तो एक प्रभु का जैसा आनन्द है। तपस्याओ एव अन्य बड़े- बड़े लौकिक कामो मे भी वह सामर्थ्य नहीं है, जो सामर्थ्य ज्ञानीकी है। जो क्लेश है उसे तो दूर करना है सो भैया निश्चय कर लो कि क्लेश केवल राग वश है दुख दूर करना है तो रागको छोड़ दे, राग करना दुःख ही है। बाह्यपदार्थ कुछ बाधक चीज नही। वह तो अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप है, क्या कोई बाहरी पदार्थ तेरे साथ आया है? अच्छा वह चेतन है या अचेतन। क्या कोई भी पदार्थ तेरे साथ होगा। मेरे मे तो मेरे ही स्वरूपका विश्राम है। राग तो कल्पनागत है। भगवान् और इस आत्मा मे अन्तर क्या है? केवल राग हो या न हो यही अन्तर है। जहा राग नही है वहा भगवान् है, जहा राग है वहा प्राणी है। राग करनेपर लाभ कुछ नहीं रहता है, बल्कि उससे भी अधिक टोटेमे रहता है। अपनी स्वतन्त्रता का ख्याल कर राग छोड़ दे तो वह भगवान् हो जानेके सम्मुख है। जो रागमे और स्वरूप मे अन्तर नहीं जानता है वह ससार मे राग का काम करता है।

हे आत्मन् ! तू अपने आपको स्वय द्रष्टा देख, जो देखने वाला है वह तू है, जो जानने वाला है वह तू है। जाननेसे आगे न तू है और न तेरा काम– ऐसा सोचकर चिन्ताओ को दूरकर, आराम से तो ठहर, आराम वहा होता है जहा हृदयमे आराम हुआ । हे चिन्तामणि महापुरुष ! तू जिसके उपयोग मे आया वह तो आराममे रहता है। नही तो वह निमित्तरूप शिकारियो के बीच मे पड़ा विकल हो जाता है। भैया ! परपदार्थ से तो वह स्वय बद्ध न होता है और न मुक्त होता है।

भगवान की भक्ति करते है, सो भाई भगवान् स्वय जा जाकर किसीको आराम नही दिया करता है। कुछमे ज्ञान है तो भगवान्को ही जान ले, आनन्दका मार्ग मिलेगा । भगवान्को प्रसन्न करना भगवान् काम नही, यह तो भक्तका काम है। भगवान न तो किसी से प्रसन्न होता है और न किसीसे क्रोधित होता है। यदि ऐसा करने लगे तो वह भगवान् ही न रहे, हमारी ही तरह अनाथ प्राणी ही रहे। कैसा भी कोई पापी है, भगवान् उसपर क्रुद्ध नही होते । भगवान्के ज्ञानपर परिणतिकी झलक आ जाती है। सच पूछो तो जो परभगवान् है उसको न तो प्रसन्न ही किया जा सकता है और न उनकी प्रसन्नता से कोई लाभ

है, किन्तु जो अपनेमे बसा हुआ भगवान् है उसे मै प्रसन्न कर सकता हूँ और उसके प्रसन्न करनेसे मुझे लाभ है। उसकी प्रसन्नता ज्ञानके बलपर है। मै अपने सत्यस्वरूपको अपने ज्ञानमे रखू तो भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं, केवल अपने स्वरूपमात्र मे रहकर केवल ज्ञानमय विशुद्ध तत्व रहू, ऐसा बल उसमे है तो भगवान् उसपर प्रसन्न होगा । अब उसे क्या चाहिए ? उससे बढ़कर और कुछ नही ।

हे आत्मन् ! तू अपनेको राग रहित देख । तेरे मे तो राग करने का स्वभाव ही नहीं, तेरेमे तो राग करनेका कोई काम ही नही, तू जानता चला आ रहा है, जानता है। जानने से आगे मत बढ़ तो तेरे सारे क्लेश समाप्त हो जाये और तू अपने आप सुखी हो जायगा । सुख पानेका यह उपाय है कि तू रागको दूर कर । -

अहकाराहिना दष्टः कर्ता भोक्ता भवेन्न मे।
ममत्वाहंत्वभावोऽपि स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-२०।।

अर्थ- अह्काररूपी सर्पसे डसा हुआ यह जीव कर्त्ता भोक्ता होता है। किन्तु मेरे में तो ममत्व और अहंत्व भाव भी नहीं है, इस लिये अहंकारपने को छोडकर मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊ ।।

जगत् का यह प्राणी अहकाररूपी सर्पसे डसा हुआ है। जैसे सर्पसे डसा हुआ व्यक्ति बेहोश हो जाता है, नई-नई तरह की चेष्टाए करता है, इसी प्रकार अहकारसे डसा हुआ पुरुष मोह करता है , झगडा करता है, वेचैन होता है, नये-नये प्रकार की चेष्टाए करता है। अहकार के वश प्रायः सभी जीव हो रहे हैं। एक वच्चे को देखो वह भी अहकारी होता है। जवान बूढो को देखो वह भी अहकारी होते है। शरीर को माना कि मै हूँ मै अच्छी जातिका हूँ, अच्छे कुलका हू, यह अहकारकी बात है। लोग मुझे जाने, यह सब विकल्प अहकार की बात है।

हे आत्मन् ! तू अपना स्वरूप तो देख, तेरे स्वरूपमे अहकार नही है, किसी भी प्रकार का विकार नहीं है, तू केवल ज्ञायकस्वरूप है, चेतनास्वरूप पवित्र वस्तु है। तू अपनेको क्या है इसको तो समझ , तू एक ज्ञानमात्र वस्तु है। लोकमे ज्ञान ही पवित्र चीज है, तुझसे पवित्र कौन है? तू पवित्र भगवान्‌रूप होकर, माया मे फसकर जन्ममरण के क्लेश सह रहा है, तू अहकार से डसा है। अहकार की बात भी नहीं फिर भी अहकार से डसा है। एक बार राजा भोजकी सभा मे चतुर आदमी बैठे थे । राजा ने किसी एक चतुर से कहा कि तुम वडी बढिया कविता पेश करो। उस चतुर आदमी ने केवल कोरा कागज देकर, जिसमे कुछ नहीं लिखा था , कहा कि लो यह सर्वाधिक सुन्दर कविता है, परन्तु महाराज जो शुद्ध है उसे ही कविता दीखेगी, राजा ने देखा, तो कुछ था ही नहीं, परन्तु मै अशुद्ध न कहलाऊ इस कारण कह दिया कि यह वडी सुन्दर है, खूब सुन्दर कविता है। पास मे जो बैठे थे, उनको राजाने दिखाया पूछा कि कैसी कविता है? देखकर वे भी वहुत गुस्सा हो गये, सोचा कि इसमे कुछ लिखा ही नही, बड़ा गजब है, लेकिन शानमे कहना यही पड़ा कि वडी सुन्दर है। यह अहकार की ही तो बात है। लोक मे जितनी

भी घटनाये ऐसी होती है कि बात कुछ भी न हो किन्तु शान मे कुछ दिखाना पड़ता है। अहकारने इस प्राणी को डस रखा है, सो निरन्तर इसमे अहकार भरा रहता है। मै बड़े गौरवका हूँ, मै बड़े घरानेका हू, लेकिन अपनेको जो समझता रहता है वह सत्य जानता है कि यह दृश्यमान तू है क्या खाक? परवस्तु क्या तेरे आनन्द की, ऐश्वर्य की बात है? यह माया भी केवल तेरे स्वरूप मे नही है। तेरा कुल तो इतना ऊचा है कि ऐसा और नही, लेकिन इस जीव को तो अहकारने ही बर्बाद किया है। अहकारको छोड़ दे, अर्थात् जैसे सब है वैसे ही मै हू, जैसे सब जीवो का स्वरूप है ठीक वैसा ही मेरा भी है। जैसे भगवान का स्वरूप है वैसा मेरा भी स्वरूप है। मेरी जैसी पवित्र कोई वस्तु नहीं है, किन्तु अपना पवित्र स्वरूप नहीं देखता है। देखो अगर कोई लुट जाता है, किसीका कुछ बरबाद हो जाता है कोई दुनिया मे अचानक मर जाता है, चलते-चलते हार्ट फेल हो जाता है, सो मानता है कि दूसरो का हो जाता है। यह सब अहकार का फल ही तो है। तूने इस ससार मे अपनेको महान् और अन्य को नीच समझ रखा है इन सब बातोको देखकर तू सोचता है कि यह सब तो औरो का हुआ करता है मेरा नही तू भगवान्स्वरूप है, वैसे ही सब भगवान्स्वरूप हैं, जो यह दशा है यह सब प्रकृति का विकार है। उसमे उलझने से एक तो जो ये भगवान् है, उन सब जीवोका निरादर करता है और दूसरे अपने स्वरूप को भूलता है।

अरे तुझे अहकाररूपी सर्पका विष चढ़ गया है और इस अहकारके वश होकर तू गर्व करता है, कर्ता बनता है। सोसायटी के करने वाला नये नये कामो को करने वाला तू अपनेको मानता है, अपने स्वरूपको नही देखता । जो केवल ज्ञानमात्र है, चेतनामात्र है, जो केवल जाननेका ही काम करता है, इसके अतिरिक्त और कुछ काम नही करता । इस निज नाथ मे कुछ स्वरूप नहीं है, मै स्वरूप को भूल गया हूँ, मैं अमुक काम करता हूँ, मै अमुक काम करूगा आदि विकल्प विपदामे अपनेको लाता है। तू अपने स्वरूपको तो देख। इस चैतन्यप्रभुका कुछ करने का स्वभाव नही है, केवल जानने का ही स्वभाव है।

इसमे अहकार नही है, अहकार स्वभाव से नहीं है उसको तू करता है। करता तो तू है नहीं, मात्र मानता है कि मैं अमुकको करता हूँ, तो स्वतत्रताका आनन्द कैसे होगा? यह तेरा कोरा भ्रम है कि विषय का आनन्द मिलता, देखनेका आनन्द मिलता, सुननेका आनन्द मिलता । तू तो ज्ञानमात्र है, केवल ज्ञान करता है, ज्ञानके अतिरिक्त तेरा कोई काम नही । भोजन क्या उसका कोई अश भी तुझे आनन्द देता है ? भोजन का तो ज्ञान होता है, उसके साथ मोह है। अमुक वस्तु मीठी है, उसका कुछ ज्ञान हुआ, मोहसे मीठी वस्तुका आकर्षण हुआ, भोजन का आनन्द नही । तूने जो कल्पना की उसका कुछ आनन्द है। जैसे कोई किसी को बताये कि भाई तेरे घर मे लाख रुपयेका धन है। इतनी बात सुनते ही वह मौज मे आ गया। मौज उसकी कल्पना की है। धन धन का है। क्या मौज धन से आती है या ज्ञान से आती है। चार आदमियो ने प्रशसा कर दी तो वह वहा सुख मानता तो क्या वह सुख चार आदमियो

की चेष्टा से आता है या उसकी कल्पना बनी कि देखो चारो आदमी भला कह रहे है, सो उस कल्पना से उसकी मौज आयी। मै ज्ञानस्वरूप आनन्द को जान रहा हूँ। अपने ही ज्ञान से अज्ञान की चर्चा करने वाले आनन्दमग्न है । बाह्य आनन्द क्या आनन्द है? बाहरी वस्तुए क्या आधीन है? पुत्र मित्र आपके आधीन है क्या, जो आपके पास रहे, धन क्या आपके आधीन है? आपका तो आप मे भी अधिकार नहीं रहा। दूसरे पर अधिकार करेगा क्या? अपने को जैसा बनाना चाहता है, बना। अपना है क्या? कोई किसी को नहीं बना पाता। आपका आप मे क्या कुछ अधिकार है? नही है। आप दूसरे पर अधिकार करना चाह रहे है, परन्तु अपने मे अधिकार नहीं, जिस पर अधिकार नही किया जा सकता है उसकी बात सोच रहे हो।

एक देहात मे पटेल था। वह गाव का मुखिया था। एक पचायत जुड़ी, उसमे एक ऐसा सवाल आ गया कि भाई ५० और ५० कितने होते है? पटेल बोला कि ५० और ५० अस्सी होते है। लोगो ने कहा कि १०० होते हैं। उसने कहा कि हमारी यह चार भैसे है वह छोड़ देगे आपको, अगर ५० और ५० मिलकर ८० न होते हो। अब स्त्री ने भी सुन लिया कि पचायत मे ऐसा हुआ । पटेल पूछता है कि तू उदास क्यो है? उसने कहा कि तेरी करनी का फल है। मेरी चार भैसे चली जायेगी, बच्चे क्या खायेगे? कहा से अन्न खरीदेगे? पटेल कहता है कि तू बेवकूफ है। पच सारे के सारे कह रहे हैं कि ५० और ५० मिलकर १०० होते है, जब हम अपने आप कहे कि ५० हौर ५० मिलकर १०० होते है तो ही तो भैस पायेगे, देखो कौन भैस ले पावेगा?

यह जीव भी जानता है कि ससार मे अन्य कोई हितू नही, कोई शरण नहीं है, किसी के मोह से गुजारा नहीं होगा इसी कारण प्रभु का ध्यान भी करते हैं, धर्मपालन का परिश्रम भी करते है। सब कुछ करते हैं मगर भीतर से आत्मा इस बात को मानने के लिए तैयार नही होती है कि दो मिनट भी ऐसा उपयोग बना ले कि मैं जगत् के अन्य प्राणियो के समान ही सामान्य वस्तु हू। केवल देखना, जानना उसके सामने रहे, दो मिनट का भी उपयोग बन जाय तो स्वय ही इस आनन्द को स्वरूप मे पाकर आनन्द मे तिरेगा, सारा क्लेश निकल जायगा। क्लेश कुछ है ही नहीं, किसी खोम्चा ढोने वाले आदमी से तुम कह सकते हो कि वह मुश्किल से पेट भरता है सो दु खी है, किन्तु धनिको व आफिसरो को तो यह गरीवी नही, फिर वे क्यो दु खी है? वे बैठे-बैठे कल्पना से ही दु खी हो रहे है। इसको यह कहा इसने नहीं माना, वह नहीं हुआ। जैसे सोचो कि मैने नौकर से कहा कि तू झाडू दिया कर, नौकर भी स्वतन्त्र आजाद जाति का है। नहीं किया तो तुम्हारा क्या घटा? बाहर से चाहे काम करना पडे, कोई भी क्रोध करना पडे पर अन्तर मे समझना चाहिये कि मेरा ससार मे कुछ भी नहीं है, दूसरे से मेरा लाभ हानि नहीं है। बैठे-बैठे दु खी हो रहे हो। गरीव बेचारे तो परिश्रम कर दु खी होते है। पर यह तो बैठे-बैठे दुखी हो रहे हैं। क्या कष्ट है? विकल्प का कष्ट। यह ऐसा नहीं चल रहा, यह ऐसा नहीं कर रहा, मेरा इसपर अधिकार है। अरे भाई तू कहीं का मालिक नहीं, तू अपना मालिक बन, जगत्के किसी पदार्थ

पर तेरा अधिकार नहीं। मै अमुक कार्य करता हूँ, मै अमुक हूँ। अहकार अहकार मे ही दुनिया बरबाद होती है। क्या करते है कि बढ़िया भोजन बनाया। आपने थोड़ा खाया पर १० को चखा दिया। उसने समझा कि १२ को भी पता चल जाना चाहिए कि यह कैसा भोजन करता है? लोग ऐसे होते है जो अहकार मे अपना तीव्र अहकार भरे रहते है, खुद ही खाते है। वे चाहते है कि मै ही सारा भोग भोग लू। उनके कार्य किसी के लिए भी किए जावे वे सब अहकार के है ।

मै चैतन्य स्वरूपमात्र हूँ, मेरा करने व भोगने का कुछ भी स्वभाव नहीं है। ऐसा निश्चय कर ले तो भगवान् के होने के मार्ग को प्राप्त कर ले। इसलिए यह समझो कि मै ज्ञानमात्र हूँ सर्व जीवो के समान हूँ, मै सबसे अलग कुछ नही रहा। इसलिए सब मे अपने आपको समाया समझो, यह स्थिति शुद्ध योग की है। जहा अहकार का भी विकल्प न हो वह अहकाररहित अवस्था है। अपने को किसी रूप मे भी 'यह मै हूँ' ऐसी मान्यता रहे वहा तक अहकार की मात्रा है। ऐसा निरहकार तो स्वय आत्मा है। अहकार तो औपाधिक पर्याय है, विनाशीक चीज है, निर्मूल चीज है। आत्मा के किसी शक्ति के स्वभाव से अहकार नही होता, इसलिये तो अहकार आत्मा की चीज नहीं और कर्मो मे अहकारभाव आने का माद्दा ही नही, अत अहकार मर्म की चीज नहीं। यह तो कर्मोदय के निमित्त से होने वाली आत्मा मे एक झलक है। इस विभावरूप झलक को देखकर चैतन्य स्वभाव का ही अनुगम करना चाहिये। ऊपर तैरने वाले कुतत्व से दृष्टि हटाकर अन्तर मे शाश्वत प्रकाशमान आधारभूत मर्म का अवलोकन करना चाहिये। सुख यही अन्तर मे मिलेगा सुख का ठौर अन्यत्र कही नही है। अन्यत्र सुख खोजना ही क्लेश है।

वाञ्छन् गृह्णन् त्यजन् हर्षन् शोचन् कुप्यन्न वर्तते ।
यत्रास्ते तत्स्वसाम्राज्यं स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।१-२१।।

अर्थ– **जो भाव वाञ्छा करता हुआ, ग्रहण करता हुआ, त्याग करता हुआ, हर्ष करता हुआ, शोक करता हुआ, क्रोध करता हुआ नहीं रहता है, और जिस स्वभाव में ठहरता है, वह आत्मा का साम्राज्य है, उस ज्ञायकभाव मात्र अपनें में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं। ।**

मै वह आत्मतत्व हूँ जहा मेरा स्वय का सहज अनादि सिद्ध साम्राज्य है। वह मै न तो इच्छा करता हुआ वर्तता हू, न किसी वस्तु को ग्रहण करता हुआ हूँ, न किसी वस्तु को छोड़ता हुआ हूँ, न हर्ष करता हूँ, न शोक करता हूँ और न क्रोधादि करता हूँ, वह मैं आत्मतत्व हूँ। इच्छा का मुझमे स्वभाव ही नहीं है। इच्छा तो प्रकृति के उदय का निमित्त पाकर चेतन भूमिका मे भासित होती है। यही बात हर्ष, शोक, क्रोध आदि विकारो की है। बाह्यपदार्थ का तो मुझमे अत्यन्ताभाव है। उसका ग्रहण करना व त्याग करना तो दूर ही रहो। मै इनको किसी रूप मे नहीं बर्तता हू। मै तो ज्ञानानन्दस्वभावमात्र हूँ। निजस्वभाव मे स्थिर होने मे कोई क्लेश नहीं है।

हैं। जब तक यह भ्रम रहेगा कि ये रागादि मुझ मे हुए तब तक ससार है। तब आगे यह भी जानना चाहो कि भ्रम किसमे है? क्या पुरुष मे भ्रमभाव होने की वात कही तो जो भ्रमी है वही दु खी हो, तब तो प्रकृति दु खी है, मोक्ष प्रकृति का कराओ। यदि पुरुष मे भ्रमभाव होने की बात कहो तो रागादि पुरुष मे न हुए तो न सही, किन्तु भ्रमरूपी महापाप तो पुरुष मे हो गया। सर्व आपदाओ का मूल यही पर्यायवुद्धि है, यही भ्रम जाल है सो अब इच्छा, विकल्प, क्रोध, शोक आदि किसी भी पर्याय मे आत्मबुद्धि न करो। मै तो वह हूँ जहा मेरे ज्ञान, आनन्द आदि निजी वैभवो का साम्राज्य है।

वास्तव मे ज्ञेय को ही जानता हूँ, जानने के लिये ही जानता हूँ, जानना मुझमे ही जानना है इससे आगे मेरा कुछ और कर्त्तव्य नही है, ऐसी भावना के बल पर जो अपने आप मे रम जाया करते है, उन्हे जो अनुपम आनन्द मिलता है वह न तो इन्द्र को नसीब है और न महाराजाओ को। वह तो प्रभु जैसा आनन्द मे सामर्थ्य है कि कर्म कट जायेगे। तपस्या से अथवा अन्य बातो मे भी वह सामर्थ्य नही है जो सामर्थ्य सम्यक्ज्ञान मे है। इसीलिए यदि किसी मनुष्य को दु ख दूर करना है तो वह निश्चय कर ले कि दु ख केवल राग मे है, जिस किसी पदार्थ मे जो राग है उसी मे दु ख है तथा दु ख दूर करना है तो तुरन्त राग को दूर कर दे। राग करना मूर्खता है। कारण जिस बाह्यपदार्थ से राग करते है वह अपने नही है। उनका रच भी सम्बन्ध नही है। क्या कोई बाह्यपदार्थ तेरे द्वारा आया है? क्या कोई भी बाह्य पदार्थ तेरे साथ आयगा ? क्या कोई भी बाह्य पदार्थ जिसे कोई कितना भी चाहे क्या उसके साथ जायेगा? क्या कोई वाह्य पदार्थ उसके सुख दुख मे यहा या कही भी साथी होगा ? यह केवल आत्मा ही है और अपने मे ही बना रहता है, इतना ही तो इसका मर्म है, इसके आगे इसकी कोई गति ही नही। राग करना निपट अज्ञान है कि नहीं? किससे राग किया जाय? भगवान् और आत्मा मे अन्तर क्या है? केवल राग होना या न होना, यही अन्तर है। जहा राग नहीं है वहा केवल है भगवान् और जहा राग है वहा है केवल प्राणी। राग करना तो व्यर्थ का काम है क्योकि राग करने से हाथ लगता तो कुछ नही अर्थात् राग करके आराम मे तो कोई आता नही। जो वस्तु के स्वरूप का ज्ञान करके राग छोड़ देता है वह भगवान बनने के समान है और जो वस्तु के प्रति राग वढाता है, राग रखता है, वह ससार मे रुलने का काम करता है। आत्मन् ! तू अपने आपको ही स्वय द्रष्टा देख या देखने वाला जो है वही तू है। जो जानने वाला है वही तू है। जानने से आगे न तू है, न तेरा काम। ऐसा सोचकर चिन्ता दूर कर, विकल्पो को दूर कर, आराम से कुछ ठहर। आराम के मायने है 'प्रभु राम आ।' चैतन्य महाप्रभु मेरे उपयोग मे आ। जव जव आप मेरे उपयोग मे रहे, मै आराम से रहा। जव तू मेरे उपयोग से हटा तो मै विषयकषायरूपी शिकारियो के चक्कर मे पडे हुए हिरन के बच्चे की भाति विहल हो जाता हूँ। जिन बाह्य पदार्थो से मै घिरा हूँ, वे मेरे लिये शिकारीवत् हैं। एक तुम मेरे उपयोग से हटे कि मेरा आराम चला जाता है।

आराम भगवान स्वय किसी को नहीं दिया करते। भगवान तो न किसी पर प्रसन्न होते हैं, न किसी पर क्रुद्ध होते हैं। यदि वे ऐसा करने लगे तो वह भगवान न रहे, हमारी तरह अनाथ प्राणी हो जाये। कैसा ही कोई भक्त हो उस पर भगवान प्रसन्न नहीं होते और कैसा ही कोई पापी हो उसपर भगवान

क्रुद्ध नहीं होते है। हा, भगवान को यह ज्ञान रहता है कि यह भक्त-आत्मा कितना पवित्र है या यह पतित आत्मा है। परन्तु वे न तो प्रसन्न होते है और न क्रुद्ध होते है। और सच पूछो तो जो कर्ममुक्त भगवान है उनको प्रसन्न नही किया जा सकता। हा उसकी प्रसन्नता अपने आप मे ज्ञान के बलपर निर्भर है, वह भी है अपने सत्य स्वरूप से। यह ज्ञान जो कि जगत् के सब पदार्थो से न्यारा केवल अपने स्वरूपमात्र, परमज्योतिर्मय, केवल ज्ञानमय, विशुद्ध तत्व है वही सारतत्व मै हूँ, ऐसा अनुभव वह अपने मे करे तो उसे परम प्रसन्नता होगी। जब मेरे यहा मेरे भगवान मेरे प्रभु प्रसन्न हो गये तब क्या चाहिए? उससे बढ़कर और है क्या? इसलिये हे आत्मन्! तू अपने को राग रहित देख। मेरा तो राग करने का स्वभाव ही नही। तेरा भी राग करने का कोई काम नही। तू तो ज्ञानस्वरूप है, तू तो जानता चला जा, सब कुछ जानता चला जा। जान कर रह, जानने से आगे मत बढ़, तो तेरे सारे क्लेश समाप्त हो जायेगे और तू अपने मे अपने आप सुखी हो जायगा। सुखी होने का मूल उपाय यही है कि राग को नष्ट कर। राग करके कष्ट दूर नही हो सकते। सबसे बड़ा विकट राग तो यही है कि अपने को नाना विकारो रूप मानना। परमार्थत मै शुद्ध ज्ञायकस्वरूप हूँ। परपदार्थ का प्रतिभास होता है, इससे पर का न कोई सम्बन्ध है और न मुझमे पर की कोई करतूत है। यह तो ज्ञान का सहज विलास है। ज्ञान ऐसे ही रूप को लिए हुए है। मैं इसी सहज ज्ञान मात्र हूँ सो ज्ञान द्वारा ज्ञानमय निजस्वरूप मे ज्ञान के लिये ज्ञानमात्र वर्त कर स्वय सुखी होऊ।

यदाऽज्ञता तदासीन्मे प्रीतिर्भोगे स्वविभ्रमात् ।
दीनवज्ज्ञोपि धावानि? स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-२२।।

अर्थ– जिस समय मेरे अज्ञान का असत् भाव था तब भोगों में आत्मा का या आत्मीयता का भ्रम होने से मेरी प्रीति हुई, अब ज्ञानस्वभाव होकर भी- मैं दीन अर्थात् भ्रमी जीवों की तरह क्या आत्मा के उपयोग से बाहर परपदार्थ में दौड़ूं ? मैं तो अपने में अपने लिये अपने आप स्वयं सुखी होऊ ।

यद्यपि यह जीव ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण है तब भी अपने इस स्वरूप को न जानने के कारण इसको अपने आप मे सतोष तो मिलता नहीं तब बाहर सतोष ढूटता है, किन्तु बाहर कैसे सतोप मिले? इसका सुखी होने का स्वभाव है। भीतर तो सुखी होता नहीं, तो सुख बाहर के पदार्थ मे ढूढ़ता है। बाहर सुख ढूढने मे त्रिकाल मे भी सफलता नही प्राप्त होगी, क्योकि बाहर के जितने भी पदार्थ है वे सब अपनी-अपनी सत्ता मे है, वे अपने बाहर कुछ नहीं करते, उनका उनसे बाहर कुछ नही आता तब उनसे आशा करना विपत्ति ही तो है। जब तक यह कुज्ञान था कि परपदार्थ से उसे सुख मिलेगा तब तक भोगो मे प्रीति थी किन्तु अब स्वय यह जान लिया कि दूसरे पदार्थ से सुख नहीं मिलता, सुखस्वरूप हम ही तो है, जब यह ज्ञान वाले हुये तब उनके भोग मे प्रीति नहीं रहती । किसी धोखे वाली जगह मे प्रीति तब तक होती है जब तक उस विषय का सच्चा ज्ञान नहीं होता है। परिवार का आज्ञाकारी होना, सैंकडो हजारो कोसो मे यश और कीर्तिका फैलना यह सब माया है और इनमे फसे तो आत्मीय आनन्द से हाथ धोये। जैसे अन्य लोग कहा करते है कि किसी ने जब बडी तपस्या की तो इन्द्र को डर लगा कि कहीं उसका

आसन न छुडा ते तब कोई सुन्दर अप्सरा उसने भेजी कि वह रूप हाव भाव नृत्य दिखाकर नाना उपाय कर ऋपि को चिगा दे। अब देखो वे सब राग के कृत्य अपने मे देखने मे बड़े अच्छे लगते है, परन्तु यह सव धोखा है, उस धोखे मे गये तो बस तप श्रम उनका बाद मे खत्म हो जायगा।

इसी तरह आत्मा मे उत्कृष्ट आनन्द भरा है, अनन्त आनन्द स्वभाव है। उस आनन्दस्वाभावमय परमात्मतत्व को अपने स्वभाव के दर्शन द्वारा प्राप्त कर सकते है। स्त्री पुरुष भले ही उसे मिले तो क्या मिले, वे स्वय दीन आत्मा है, उनसे हममे दु ख ही होता है। कुटुम्ब अच्छा मिला तो क्या मिला? तुम्हारी तो आत्मा ही साक्षात् भगवान है, यह स्वय वैभव है। यह माया कुछ नही, केवल भूल है। अपने स्वभाव की उपासना मे लगे और इन भोगो से दृष्टि हटे तो वहा जानना है। यहा के पदार्थ तो यो ही मिले है और यो ही जावेगे । एक कथानक है कि एक चोर ने किसी सेठ के यहा से घोडा चुरा लिंया और वाजार मे खड़ा कर दिया। ग्राहक बोलते है बोलो क्या दाम है इसका? उसने कहा– ६०० रुपया है। तिगुना दाम बताया सो सब लौट गये। इस तरह दसो लौट गये। ग्यारहवी बार दूसरा आया, उसने भी दाम पूछा तो उससे भी कहा –६०० रुपया है। उसने समझ लिया कि इसने चोरी की है। ग्राहक बोला इसमे ऐसी क्या बात है, चोर कहने लगा– इसकी चाल बढिया है । ग्राहक चाल देखने के लिये घोड़ेपर वैठ गया, मिट्टी का हुक्का उसको पकडा दिया। उसको कहा–जरा पकड़ो तो और आप घोडे पर जा बैठा। ग्राहक घोड़े को बहुत दूर ले गया और उडा ही ले गया? दूसरे लोग आये, कहा– भाई, तुम्हारा घोड़ा विक गया? कितने मे विक गया? बोला– जितने मे लाये थे उतने मे बिक गया। पूछा – मुनाफा क्या मिला? कहा– तीन आने का यह मिट्टी का हुक्का।

इसी तरह ये सारे पदार्थ एक पैसे से लेकर खरबो रुपये तक है। ये सारे के सारे मुफ्त मे ही मिले है चीज तो न्यारी है, तो भैया यह सब जो पाया है सो मुफ्त मे ही मिला है और मुफ्त ही मे जायगा, हाथ कुछ नही रहेगा। क्या भाव बना कि यह मेरा है, परिवार मेरा है, ऐसा उन्होने परिणाम वना लिया, परन्तु ज्ञानी पुरुष जानता है दुनिया मे मिला मुफ्त मे यह है और मिटेगा भी मुफ्त मे यह । कोई साथ मे नहीं रहेगा, पर भाव मिटने को आये है और मिटने मे ही जायेगे। कुछ मुनाफा मिला कि नही मिला, न कुछ गया। कहते है कि मिलेगा क्या ? पाप का हुक्का । जो जो मिला है वह नही रहेगा, किसी के पास नही रहेगा। अरबपति, लखपति के पास नहीं रहेगा पडित के पास भी नहीं रहेगा, कुली के पास भी नही रहेगा, पहलवानो के पास भी नही रहेगा। पर जो पुण्य पाप जिन्दगी मे किया वह साथ रहेगा, उसके अनुसार सुख दु ख के साधन सव मिलेगे।

भैया! जब अज्ञान था, भोगो के प्रति प्रेम था, ठीक है, पर अव तो ज्ञान है, तू तो एक चेतनामय स्वरूपमात्रसर्वस्व है, केवलज्ञानमात्र है, सवमे मिला व सबसे जुदा एक आनन्दमय पदार्थ है। सर्वसाधारण एक पदार्थ है, जिसका नाम भी नहीं है, जिसका भाग ही नही है, परन्तु एक पदार्थ है उसे तो भूल गया और आगेकी दुनिया मे दृष्टि रखकर इस माया की दुनियामे लग रहा है और आनन्दके स्वप्नो को सत्य समझ रहा है। इसीसे दुःख होते रहते हैं। अव तक तुमने कितने भव व्यतीत कर डाले ? अव केवल

सर्वोत्कृष्ट वैभव प्राप्त होते है । इस महत्व से ही परमात्माकी हम पूजा करते हैं । बतलाओ क्या है उनके पास दूसरी चीज, एक पैसा नहीं, एक धागा नहीं, एक अनाजका दाना नही, जरासा कुछ नही । जव भी आप उनकी उपासनामे लीन होते है । भैया ! बाह्यपदार्थो की जिद न करो जो कर्म आपने किया है जो गति बध गई है, सारी बाते यहाँ तैयार कर ली है मरण के बाद तो उसमे अब बस नही चलेगा, मैं एक इन्द्रिय नही होना चाहता हूँ, ऐसी जिद न चलेगी मरते समय अगर कीडे मकौड़े बनना है तो मै नहीं बनना चाहता हूँ यह जिद न चलेगी । इस भव मे चाहे पुण्यवश कुछ भी थोड़ी जिद कर ले जैसे किसी ने मना भी कर दिया तो यहापर जिद चल जाती है, मगर मरणके बाद की भी बात सोचो भैया अपना स्वरूप देखो, मै तो इस जगत् का सबसे निराला जीव पदार्थ हू, यदि यह सत्य स्वरूप उपयोग मे बसा लू तो अपनेमे अपने आप स्वय सुखी हो सकूगा।

सुखका घातक तो अज्ञानभाव है। अज्ञानका अर्थ है वस्तुके यथार्थ स्वरूपका पता न होना । वस्तु जगत मे अनन्त है । अन्नत जीव है, अनन्त पुद्गल है , एक धर्मद्रव्य है, एक अधर्मद्रव्य है, एक आकाशद्रव्य है, असख्यात कालद्रव्य हैं । इनमे से किसी भी एक पदार्थ को देखे, प्रत्येक पदार्थ अपनी अपनी सत्तामे है, अपने अपने ही प्रदेशो मे अपने अपने ही स्वरूप मे अपनी अपनी एक अवस्थाका उत्पाद करता है व उसी समय पूर्व एक पर्यायको विलीन करता है और वह सत् स्वय वहीका वही बना रहता है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ निज निज गुणात्मक है। इस कारण किसी भी पदार्थ का किसी भी पदार्थ के साथ कोई सम्वन्ध नही है। किन्तु इस वस्तु मर्मका जिन्हे ज्ञान नहीं है और इसी कारण सम्बन्धबुद्धि, कर्तृत्वबुद्धि भोक्तृत्व बुद्धि आदि रूप अवगम है, सो चूकि जीव तो किसी न किसी पद मे रमनेका काम करेगा ही। लो यो अब वह भोगो मे रमने लगा, भोगो मे हित बुद्धि की, इसी कारण दीन पुरुषकी भाति बाहर बाहर ही दौड लगाता रहता है यह । हाय बड़े कष्टकी बात है कि ज्ञानस्वभावमय होकर भी मैं दीन की भाति परपदार्थो मे दौड़ लगाता हूँ, नाना आशाये रखकर । अब ऐसा नही होगा । जब तक मेरे अज्ञान था तव तक मेरे भोगोमे प्रीति थी, अब अज्ञान मिटा तब अब अन्यत्र मै नहीं दौड़ूगा । मै तो अब अपने आप मे ही रमकर स्वय सुखी होऊगा । -

ज्ञातृत्वं मयि सर्वेषु स्वायत्तं साम्यसंयुतम् ।
कस्य कः ज्ञातृता दृष्ट्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-२३।।

अर्थ- अपने ही आधीन समतासे सयुक्त ज्ञातापन मुझमें और सबों में विद्यमान है, किसका कौन है, इसलिये ज्ञातापन को देखकर के मैं अपनेमें अपनेलिये स्वय सुखी होऊ ।

जीवका स्वरूप है ज्ञातापना ज्ञानस्वरूप होना, प्रतिभसास्वरूप होना । वह ऐसा स्वरूप है कि समता तो उसमे अपने आप ही भरी हुई है। केवल जानना जो है उसमे रागद्वेष नहीं होता । रागद्वेष होता है तव जव जानने से आगे वढ़ता है केवल जानने से राग नहीं, द्वेष नहीं । ऐसी समता वाला ज्ञान आत्माका जो स्वरूप है वह स्वाधीन है, जो स्वाधीन स्वरूप है उसमे सतोप व आनन्द उत्पन्न होता है और जो स्वाधीन नहीं है, पराधीन है उसकी उपासना विपदा उत्पन्न करती है। लोकमे भी देखो जो बात पराधीन

है उसकी इच्छा से विपदा है, जो अपने स्वाधीन है उसमे उतनी विपदा नही । यद्यपि लोकमे बाहरी चीज कोई स्वाधीन नहीं, सब पराधीन है तब भी एक मोटा दृष्टान्त दिया । पराधीनतासे दुःख है, सब पराधीन है, धन वैभवका मिलना पराधीन है। और कषाय विषय का होना पराधीन है, धन वैभव का मिलना भी पराधीन है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, जो ज्ञानस्वभाव है उसके बसकी बात नहीं है कि कषाय कर ले। कषाय उत्पन्न होती है वह भी कर्मोदयकी आधीनता है। शरीर मिलता है वह कर्मके आधीन है। स्वाधीन चीज तो कुछ मिलेगी ही नही । परपदार्थ मे कुटुम्बके लोग है, वे भी अपनी न्यारी सत्ता वाले है, वे अपनी- अपनी परिणति के आधीन है । मित्रजन है जिन्होने कुछ उपकार किया वे भी पराधीन ही है । यह सब कुछ मेरा नहीं, मेरा धन तो अपना अनन्त आनन्द चैतन्यस्वरूप है। सत्यकी दृष्टि मे कोई धोखा नहीं, खतरा नही, कोई क्लेश नही। आत्मस्वरूप की दृष्टिमे कोई धोखा नही, खतरा नहीं, कोई क्लेश नही । आत्मस्वरूपकी दृष्टिसे जो चिग जाते है उनको तो वैभव भी विपत्ति ही है। मोह मे जीव को सर्वत्र मूढ़ता है और मोही जीव को सम्पदाके बीचमे भी विपत्ति है, मोह है। इसलिए मोही कहा जाता है। वैसे तो मोह, मूढ़ता व अज्ञान सब एकार्थक है, किन्तु लोग मोही सुनकर तो बुरा नहीं मानते, लोग मूढ़ सुनकर बुरा मानते है, बात एक है । मूढ़ तो मोह करनेसे बना है, कुछ कहने से नहीं ।

एक आदमी था बेवकूफ । उसका नाम मूरखचन्द रख दिया लोगो ने । उसे सब लोग मूरखचन्द कहते थे । वह गाँव के बाहर भग गया और रास्तेमे एक कुवा था उसमे पैर लटकाकर बैठ गया । इतनेमे एक आदमी निकला और उसे इस तरह जब देखा तो बोला—अरे मूरखचन्द कहां बैठा है? उसने प्रेमसे उसको गले लगाकर कहा, कैसे आपने जाना कि मेरा मूरखचन्द नाम है ? किसने तुम्हे बताया कि मेरा नाम मूरख चन्द है? वह मुसाफिर बोला कि तेरी करतूत ही बताती है कि तुम्हारा नाम मूरखचन्द है? सो भैया ! उपादान हम लोगो का अशुद्ध है तो मोही ही हैं । जिनका उपादान है जिस-जिस रूप, उनका नाम वैसा पीछे पडा । करतूत है तब नाम पीछे है, यह नही कि नाम पहले रखा है कर्तव्य पीछे। करतूत पहले, नाम बाद मे। ज्ञान उसको ही कहते हैं जो अपने ज्ञानके स्वरूपको जान जाये उसका नाम है ज्ञान और जो अपने ही ज्ञानको स्वय न जाने और दुनिया के सारे पदार्थो को जानता है उसको कहते है अज्ञान । यह मोक्ष मार्ग मे ज्ञान और अज्ञानकी पद्धति है कोई कितने ही ठाट-बाट बना ले, कितनी ही सम्पदा जोड़ ले, परन्तु शान्ति तब तक नहीं मिलेगी जब तक अपने सहज ज्ञानस्वरूप ही मैं हूँ, इतना स्वय मे ही यह न मान जाय । मै ही स्वय का स्वय मे सब कुछ हूँ यह प्रत्यय हुए बिना शान्ति नहीं है। अपने आप जैसी सत्ता है वैसा न माना जाय तो अपने मे तब तक शान्ति नहीं मिलेगी, लेकिन मोही प्राणी ने अपनेको बीसो तरहका मान रखा है, यह एक तरह का सर्वसाधारण चेतनामात्र एक रूप। परन्तु मान रक्खा है। बीसो तरह का अपने को । अमुक आकार का मैं हूँ, मैं अमुक जातिका हूँ, ऐसा अनुभव है। अफसर हूँ, मै ऐसी इज्जत वाला हूँ, बाप हूँ, मामा हूँ, बच्चा हूँ, कितने तरह का मान रखा है कि गिनती तक नहीं करायी जा सकती है। भीतर से इतने विकार विकल्प उत्पन्न होते हैं जितना कोई बयान नही कर सकता। तो बोलो कितने रूप अपनेको मान रक्खा है? अनगिनती रूप अपनेको माना है। है

मै क्या हूँ, जहा यह सारा विश्व प्रतिभासित होता है वह मै हूँ। ज्ञान का काम जानना है,थोड़ा जानना नही, बस जानना है सब जानना है, क्योकि आत्मा का स्वभाव जानना है। उस जानने मे सीमा नहीं है, कितना जानना उसका तो जानने का स्वभाव है और जानना कोई सापेक्ष नहीं है कि सामने की ही जाने, जान जावो सामने की, ठीक है, किन्तु उसके हिसाब से जानना नहीं है किन्तु यदि कोई वस्तु है उसको जानना है, सत् के हिसाब से जानना है, सामने के हिसाब से जानना नही है, १०, २० कोस के हिसाब से जानना भी नहीं है , किन्तु है तो वह सब जानन, चाहे वह क्षेत्रकाल की दूरी के रूप से है चाहे किसी तरह से है, है तो जान लेना। फिर आत्मा के ज्ञान का कितना जानने का स्वभाव है? कितना है? कितना जानने का काम है ? सब जो कुछ भी सत् होता है वह सब जानने मे है किन्तु यहा मुझमे जगत् नहीं है और आत्मा मे ज्ञेयाकार बन गया, प्रतिभास बन गया वह भी मै नहीं, ऐसा मै शाश्वत हूँ, किन्तु दु ख की बात है कि उस पर दृष्टि नही, जहा पर सारा विश्व प्रतिभासमान होता है जहा सारा विश्व प्रतिभासित होता है वह तो मै हूँ पर मै प्रतिभास नही, क्योकि मै आनन्दनिधि ज्ञान चेतना मात्र हूँ, शक्तिमात्र हूँ । आत्म-समरण करके ज्ञान मे ज्ञान समझा तब योगी महासुखी हुए। ससार मे रहता तो किसी का कुछ है नही, सब मिटेगा, सबका बिछुडना होगा, लेकिन जब यह मिलता है उस समय ऐसा समझ ले तो उसका बेडा पार है और यदि उल्टा समझ ले और मरण के समय छोड़ना पड़े तो सब बेकार है। जगत् मे ठाट बाट है, मोह के साधन है, पैसा है, धन है, नौकर है, चाकर है, अच्छे अच्छे महल बने है, मगर समझाने वाला विवेक जब भीतर से आता है तो आराम के साधन सब विष लगने लगते हैं। समझने वाला कोई हो तो छोटे बड़े की अपेक्षा ही नहीं। जब भविष्य अच्छा है तो उसका ज्ञान बढेगा, विरति होगी, आत्मदृष्टि जगेगी, भीतर की प्रेरणा ही इस जीव को समझा सकती है।

गुरुजी एक कथा सुनाते थे कि एक बाजार मे कुजड़िया थी, भाजी बेचने वाली । बादशाह सामने से निकला। देखा कुजडिया की लड़की भी वहा बैठी थी, बादशाह ने इच्छा की कि शादी हो जाय। वजीर ने कुजड़ी को बहुत समझाया कि बादशाह की ऐसी इच्छा है कि हमारी शादी इस लड़की से हो जाये। कुजड़िया के यहा की भडवे-भड़वे की वोली, सो कुजड़ी यही गाली देकर बोली कि लड़की की शादी वहा होगी जहा १० बाते गाली की भी सुनाई जावेगी, बादशाह के यहा ऐसी कुछ बोलचाल ही नही। दीवान गया, और भी लोग गये सबको गाली सुनाई। एक सिपाही बोला—महाराज, अभी मै ठीक कर सकता हूँ । उसे क्या चाहिये था? बस, सिपाही गया, कुजडिया की चोटी पकड़ी और खूब झटकारा। कुजडिया ने कहा बात क्या है आखिर वताओ तो क्या बात है? बात क्या है , देख यह बात है कि तेरी लड़की की शादी बादशाह से की जायगी, कुजड़ी बोली कि ठीक है, सिपाही बोला कि तू तो पहले करनेको तैयार ही नहीं थी । कहने लगी- भडवो का भड़वा कोई समझाने वाला नहीं मिला। जैसा मोहियो ने चाहा वैसा किया कर्तव्य करना हो तो विवेक उसको सभाल सकता है। पर अन्य कोई ऐसा जीव नहीं है जो उसकी रक्षा कर सके । विवेक ही रक्षक है । ससार मे हम अपनी परिणति को देखते है तो अभी हीन है , पराधीन हैं । इस परिणतिका क्या है कुछ धन हो गया , क्या मिला ? तू तो ऐसा स्वरूप

वाला है कि सारा विश्व तुझमे प्रतिभासित है । सर्वदृष्टा बन, इतना बड़ा तू है। मगर इस बड़प्पनको भूल गया, लौकिक इज्जत को क्या समझता? यदि मरकर कीड़े-मकोड़े बन गये तो फिर क्या होगा ? अपने आप कैसा है शुद्ध, सबसे निराला, चेतनामात्र, नामरहित एक आत्मतत्व है, एक ऐसे जीवत्व से उसका जरा सम्बन्ध नही । अगर मै मानू कि परिवार मेरा है तो यह भी मूर्खता का नाम है। सब वस्तुओ मे से उत्कृष्ट तो निज भगवान् है, परिवार को समझा कि यह मेरे है ? साधु इत्यादिको समझा कि मेरे है, वहा मोह है। जहा भगवान्को समझा कि मेरा है वहा भी मोह है। केवल एक शुद्ध मै ज्ञानस्वरूप द्रष्टा हूँ, यहा मेरा क्या है ?

मेरा तो मान लिया औरो को कि यह मेरा है। सबसे निराला जो आत्मस्वरूप है उसे तो समझा ही नही । किसी को अच्छा खाना मिलता है। कुछ बढ़िया खाना मिला तो क्या हो गया ? इससे बढ़िया काम, तो आत्मस्वरूपके दर्शन है, क्योकि विषयकषायोसे पूरा तो नहीं पड़ सकता, पूरा तो पड़ेगा आत्म-विश्वास से । पर देखो यह सारा विश्व कितना बड़ा है? ५२६-६/१६ योजन और एक योजन होता है २ हजार कोसका। ऐसे ५२६ योजनका यह भरतक्षेत्र है। यह क्षेत्र जम्बूद्वीप मे है यह सब माप इसलिए बता रहे है कि यह ध्यान मे आ जाय कि इतना बड़ा यह सब लोक है और इसमे एक भी प्रदेश ऐसा नहीं बच जाता है जिसपर यह मै अनन्तो बार जन्ममरण न कर चुका हो। इस जम्बूद्वीप के चारो ओर समुद्र है। इस तरह समुद्र के बाद द्वीप चलते चले जाते है। अरब, खरब, नील, दस अरब, शख, महाशख, शखसे अधिक आजकी भाषा मे सख्या नहीं, किन्तु इनसे कई गुणा असख्य याने जिनकी गिनती नहीं है इतने द्वीप समुद्र है । अन्तमे स्वयभूरमण समुद्र है यह सब मिलकर भी एक राजू नही कहलाते । इस तरह ३४३ घन राजू दुनिया है। इतना बड़ा यह सारा विश्व है। इस सारे विश्वके बीच अगर एक कोने मे आ गये याने १०-२० मीलकी इस एरिया से परिचित हो गये तो क्या बड़ी बात हो गयी? जगत् मे अनन्तानन्त जीव है। इन अनत आत्माओ मे मनुष्य कितने है? अनन्तानन्त जीवोके मुकाबलेमे सारे मनुष्यो की कुछ गिनती नहीं । समुद्र मे तो एक बूदकी फिर भी गिनती है थोड़े से जीवमे अपना आत्म बोध करके अगर कुछ अपने हितका यत्न कर रखा है तव तो तुम्हारी तारीफ है और अपने इस थोड़े समय बाद आयु समाप्त हो जाय और जन्म मरण के झगड़े लगाये रखे इसमे कुछ बुद्धिमानी है क्या? अच्छा बताओ कोई ऐसा समय था कि जिससे पहले समय ही नही था । क्या यह हो सकता है कि कोई भविष्यमे ऐसा समय आयेगा कि उसके बाद कोई समय ही न रहे । ऐसे अनन्तकाल के बीच मे यह ५० वर्षका समय बीत जाता है। यह ६०, ७०, ८० वर्ष का समय क्या कुछ गिनती मे रहता है? फिर थोड़े से समय ५०-६० वर्ष के लिए इतना उत्पात मचाना, गर्व करना, पक्षपात करना बाहरी पदार्थो मे झपटते रहना और उसमे अपनेको एकमेक समझना क्या यह विवेक है?

सो भैया ! यह सब मायामय चीज है । अपने अन्तर मे स्वय को देखो और शुद्ध ज्ञानमात्र बनो। कैसा भी समय हो अपने भीतर की दृष्टि से भावात्मक निज मे उपयोग कर लो स्वरूप मे केवल आनन्द ही आनन्द है, दुःख का नाम नहीं है। ऐसा चैतन्यभावात्मकरूप जहा कोई लोग कहते है –'ब्रह्म है और

एक है'। यह चैतन्यस्वरूप आत्मतत्व जब भावदृष्टि से ही दृष्ट हो तब इसमे अनुपम आनन्द है। हम अपने चैतन्यस्वरूप को देखे वह एक भी नहीं है, अनेक भी नहीं है, वह तो स्वरूप ही स्वरूप है वह अन्य अन्य रूपो मे नहीं और एक भी नहीं है। मै स्वरूपमात्र हूँ ऐसा वह तत्व है। जहा लोग पुरुष या ब्रह्म या ईश्वर मानकर उपासना करते हैं। ऐसा शुद्ध तत्व मै हूँ, ऐसा मानकर अपनी ओर दृष्टि करे तो मुझे सुख है। जहा विश्व प्रतिभासमान होता है वह तो मै ईश्वर, विश्व मै नही हूँ, वह ज्ञेयाकार भी मै नहीं हूँ, बाहरी कोई भी चीज सुखके लिए नहीं है । रागमे अन्धा बनकर चाहे कुछ भी कर ले। विवेकसे सोचो तो कौनसा सम्बन्ध सुख है वैभव का या परिवार का सम्बन्ध इस सुख के लिए है कोई भी नहीं है, सब सम्बन्धो मे दुःख ही दु ख है । मै ही स्वय हितरूप हूँ, सहज अनन्त आनन्दमग्न हूँ, सर्वदर्शी हूँ, मै तो ज्ञानी हूँ, द्रष्टा हूँ, अतः मै अपने इस ज्ञानस्वरूप से अपने मे अपने लिए स्वय सुखी होऊ । किसी भी बाहरी पदार्थ मे दृष्टि की या अगर किसी की आशा की तो इतने ही मे याने वाह्यवस्तुकी आशा करने भरमे ही दुःख हो गया । भैय्या ! अपने ज्ञानस्वरूप को देख उसमे सुख है। मै आत्मा ज्ञानस्वभावमात्र हूँ, यह नहीं समझता, इसलिए चमत्कार वाह्यपदार्थ मे सब कुछ देखना चाहते है जहा यह सारा विश्व प्रतिभासित हो वह मैं हूँ, मैं तो उसे जानने वाला हूँ। बस जान लिया , अपने ही को जान लिया, इसमे समस्त ज्ञान आ आयगा। लोक मे भी देखो यदि इतना ही कहो कि हम तो जान गये, कोई पूछे क्या जान गये, उत्तर दो। बस जान गये, सब जान गये, हम तो जान गये तो वह इतना समझेगा कि वह क्या क्या जान गया, सब जान गया होगा। आत्माका यह स्वरूप ऐसा महत्वशाली है कि यह ज्ञानमे आ जाय तो सर्वोत्कृष्ट वैभव मिल गया । बस मोह करना मिटा दे कि ज्ञानचक्षु काम मे आये। मैं ज्ञानस्वरूपकी आराधना करू उसमे ही आनन्द है।

स्वभिन्नम् न हितं किञ्चिदद्वैतोऽह हिते क्षमः ।
द्वैताश्रिता मुधा बुद्धि· स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।१-२५।।

अर्थ– अपने से भिन्न कुछ भी पदार्थ हितरूप नहीं है मैं अद्वैत अर्थात् केवल, हित कार्यमें समर्थ हू, द्वैत अर्थात् अन्य पदार्थ व विकल्पका आश्रय करने वालीबुद्धि निष्फल होती है अतः मैं अपनेमें अपनेलिये अपने आप सुखी होऊ ।

अपने से भिन्न कोई भी पदार्थ अपनेहितरूप नहीं । एक ही यह मै अपना सर्वस्व हूँ, अपना हितस्वरूप ही मैं हूँ। मै ही अपना हित करता हूँ और मैं ही अपना अहित करता हूँ, जहा विषय कषायो मे लगे वहा अपना अहित कर डाला और जहा अपने सहज शुद्ध स्वभाव मे झुक गये कि अपना हित कर डाला, हित और अहितका उपाय इतना ही मात्र है। यावन्मात्र विषय कपाय परिणमन है वह सब अहित है। उन विषयों में छटनी कर ले कोई कि ये हित करने वाले है व ये अहित करने वाले है वह सब अज्ञान के स्वप्न हैं। जो भी समस्त विपय हैं वे सब हानि करने वाले हैं । आनन्द तो ब्रह्मरुचि मे है। प्रभु जैसी आनन्दकी झलक हो और सव व्यर्थकी वात है। धन, वैभव बढ गया, चार लोग पूछने लगे इस बात से क्या लाभ है, कुछ आनन्द नहीं होगा, सब जजाल विपदाए है, शुद्ध ज्ञानसे आनन्दका अनुभव है।

सो वह काम उसका स्वभाव है। अन्तर से विकल्प विपदा को हटा दिया जाय तो उसका हित है। इसका सुख आत्मानुभव ही है, इसका सुख किसी अन्य के आधीन नहीं। मै केवल यह मात्र अद्वैत अपनेमें अपना कार्य करने मे समर्थ हू। मुक्तिका नाम मिल-जुलकर तो कोई भी काम नहीं होता है, पर फिर भी दुनिया मिल-जुलकर करती चलती दिखती है। लोगो मे मोक्षका काम मिलकर होगा क्या ? शातिका उपाय एक ही अद्वैतभाव है। जब रामचन्द्रजी तपस्या कर रहे थे तब सीताका जीव प्रतीन्द्र आया, इसने तपस्यामे बड़ी बाधा डाली इसलिए कि इन्हे अभी मोक्ष न हो जाय, फिर हम दोनो मिलजुल कर ही मोक्ष जावेगे। सो भैया ऐसा हो जायगा क्या ? जहा मिलने-जुलने की बात है वहा मोक्ष बन्द है और जहा केवल अपने आपमे अकेला रह जाना है वहा मोक्ष पदार्थ है। मेरी हानि करने वाला मै ही स्वय हूँ कोई दूसरा नही । परतन्त्रताका तनिक भी अनुभव न करना, स्त्री है तो क्या, बच्चे है तो क्या, बड़ा है तो क्या, परतन्त्रताका अनुभव न करो । हा यह बात जरूरी है कि जब जब व्यवहार लगा है तो प्रेम युक्त विनय व्यवहार करो। एक दूसरे से ठीक बोलना, जहा तक बने अपने आप कष्ट उठाते रहना, दूसरो को कष्ट न देना, जहा तक हो सके दूसरो की सेवा उपकार कर देना, ठीक वचन बोल देना, पर अन्तरग मे दूसरो की अपेक्षा का अनुभव न करना कि मेरी रक्षा करने वाले ये है, यह पिता है, मेरी रक्षा करने वाले है, यह पति है, मेरी रक्षा करने वाले है, यह स्त्री है मेरी रक्षा करने वाली है। मेरा भगवान ही मेरी रक्षा करने वाला है। कायरता का अनुभव न करो, नही तो यह जीवन दुःखी हो जावेगा ।

देखो भैया ! अपनेको मिला भी क्या है ? वह तो प्रगट न्यारी वस्तु है। उसमे सम्बन्ध ही क्या? दुनियावी दृष्टिसे मन वचन कायका सयोग है। इनका सदुपयोग करो, अपनेको ही पुण्य बना लो, ईमान साफ रखना । फिर कभी कोई गल्तीकी बात भी नही की हो और यदि लोगो मे पक्षपात है जिससे तुम्हारा अपमान हो तो भी मान अपमान क्या मानना ? अहकार है तो किस बातका है? तुम्हे तन मिला है, मन मिला है वचन मिला है, धनकी तो कोई बात कहना ही नहीं, धनकी तो विचित्रता है, किसी के पास धन है किसी के पास नहीं, पर तन मन वचन तो सबके पास है वे तो विनाशीक है उनका सदुपयोग कर लो । वह जीवन सुखमय होता है जब तक तनमे बल है तब तक जो दूसरोंकी सेवा करे दूसरोंका उपकार करे।

बुरा सोचा तो अपना कल्याण करेगा ? दूसरोका अहित सोचनेसे तेरा मनोबल कम हो जायगा, दुःखी हो जायगा। जीवनमे एक गुण तो यह आना ही चाहिए कि हम तन,मन,वचन को बरबाद न करे । परमार्थसे तो तू अपने दर्शन कर आत्मरूप मे रम। अपने बलमे विश्वास करो तो तुम्हे अलौकिक आनद प्राप्त होगा वह आनन्द बाहर कहा रक्खा है जिनमे तू मोह करता है । सबसे विरक्त रह व्यवहार जरूर हित मित प्रिय वचनका कर । ममतापूर्वक दूसरो की ही सेवा मे तू क्या पावेगा ? दूसरो से सुख नहीं होगा यदि ठीक भी बोले तो क्या ? सभी बार ठीक बोल लेगे परिवार के लोग और यदि दो बार कड़ुवा कहा तो अच्छाई खत्म हो जायगी । जैसे कि बढ़िया बढ़िया भोजन बनाकर खिला दो और फिर बादमें कहो कि तुम्हारे बाप, दादाने कभी ऐसा अच्छा खाया है, बस सेवाये की और एक खोटा वचन बोला तो जितनी सेवा होगी वह सब बेकार हो जायेगी ।

सो भैया ! आप पहलेसे ही समझते जाये कि यह लड़का जुदा है। इसका पालन-पोषण करने वाला अन्य कोई नही है यह अपने पुण्यसे पलता है फिर आपका तो यह मात्र कर्त्तव्य है कि उसको पालपोस ले, अगर बापसे बढ़कर पुण्यवान् लड़का है तो फिर क्या है भाग्यसे ही तो यह लड़का इतनी सेवाये पाने वाला हुआ । बापसे भी बढ़कर पुण्यवाला लडका हो क्या यह नही हो सकता । कैसा ही हो मगर बच्चेकी जो रक्षा होती रहती है उसमे ऐसा सोचना आसान है– लड़का मेरा है मैने ही तो पाला है, इसका कुछ ठिकाना लगाया कुछ बेड़ा पार किया । मोह अगर बढ़ जावेगा तो उसका फल घोर दुःख ही है। यदि ज्ञान पहले ही से बना रहेगा तो जीवनमे क्लेश न होगा । आपसे न्यारा कोई अन्य पदार्थ आपको हानि कर दे ऐसा कदापि नही हो सकता । प्रत्येक पदार्थ अलग-अलग स्वरूप लिये हुये है, अपने अपने ही मे वे परिणति करते हैं, एक बात जरूर है एक भले सगमे रहने से सगमे रहने वाले भी भले हो जाते हैं और बुरे सगमे रहनेसे खराब हो जाते है, पर भाग्य सबका न्यारा है। एकत्वका आश्रय ही अद्वैतका आश्रय है, मेरी रक्षा करने वाला मै ही हो सकता हूँ और वह कैसा है सहज स्वरूप लिए हुए, सहज सत्ता लिए हुए है ऐसा मै हूँ, स्वय स्वरूप लिए हुए हूँ, यह है अद्वैत बुद्धि और अपना स्वरूप भूल कर दूसरा ही मेरा सर्वस्व है ऐसी बुद्धि करना सो द्वैतबुद्धि करना है। दूसरोका आश्रय करके जो विकल्प करने वाली वस्तु है, उससे अहित ही होता है। अन्य की ओर दृष्टि करनेसे विकल्प होते है, विकल्पसे मलिनता बढ़ती है।

एक कोई ब्राह्मण का लड़का था, पढ लिख गया, उसने कहा हम शादी करेगे तो अन्धी लड़की के साथ करेगे, हमारी अन्धी से शादी हो । शादी हो गयी , उस स्त्री ने कहा तुमने ऐसा क्या कर लिया। कुछ दिन बाद मे दो तीन लड़के हो गये । बाद मे वह अन्धी जिद करने लगी कि मेरी आख खोल दो, तुम तो मत्र बहुत जानते हो उसने आखे खोल दीं। दो तीन वर्ष बादमे एक बच्चा और हो गया । एक दिन उस स्त्री ने कहा कि तुम मेरी आखे पहिले क्यो नही खोलते थे ? पुरुष बोला अच्छा, आज एक काम करना, रोटी मत बनाना लडके आये और कहे कि रोटी क्यो नहीं बनायी तो कहना कि तुम्हारे बाप हमें गाली देते है, नाराज होते हैं इस कारण हमने रोटी नही बनायी, फिर जो वे उत्तर दे मुझे बताना।

उसने रोटी नहीं बनायी । बड़ा लड़का आया बोला माता जी आज रोटी नहीं बनायीं, मा बोली कि तुम्हारे बापने गाली दी है इससे रोटी नही बनाई। लड़का बोलता है कि आप माता है और वे पिता है आप लोगो के बीचमे हम क्या कह सकते है किन्तु दुःख नही सह सकते, हम भूखे नहीं रह सकते है ।

दूसरा आया, तीसरा आया, वही बात हुई । चौथा लड़का आया और बोला अम्मा आज रोटी क्यो नही बनाई ? मा ने उत्तर दिया कि हमे तुम्हारे बापने गालिया दी है, इससे रोटिया नही बनाई । तो वह चौथा लड़का बोला कि अम्मा, बाप वाप को हम अभी देख लेगे, तू तो रोटी बना, हमे तो भूख लगी है। देखो भैया ! आख खुलने के बाद स्त्री मे चतुराई आयी, लोगो को देखा विकल्प बढ़े, विकार बढ़ा, उस ही का फल देखो चौथे लड़के ने क्या कहा ? भैया ! यहा कोई आनन्दका साधन नहीं, आपको जो आनन्द आता है वह लौकिक एव विनाशीक आनन्द है। आपको चाहे जो समय हो, कुछ भी साधन हो सर्वत्र जो आनन्द मिलता है वह आनन्द स्वयका ही मिलता है।

इस वास्ते ऐसा निर्णय करके मेरे वास्ते मै ही जिम्मेदार हू, मै अपने परिणाम को सदा शुद्ध बनाता रहूँ, अपने स्वभावकी दृष्टि कर सकू ऐसा भाव बनाए रहे । किसी भी प्राणी का अकल्याण मनमे न आये ऐसा भाव बना ले तो बेड़ा पार है अन्यथा दुःख ही है। भैया मनुष्य कुछ कर तो सकता नहीं, केवल भाव करता है। जैसे बच्चोकी पगत होती है तो है क्या उनके पास, कुछ नही और कहते है पत्ते परस कर कि रोटी खावो, केवल ककड़ परोस कर कहते है गुड खावो। अरे जब कल्पना ही करना है तो पत्तोको रोटी कहकर क्यो परोसते हो, पूड़ी कहकर परोसो, ककड़को लड्डू कह लो। इसी तरह केवल सोचना ही है तो बढ़िया कल्पना करो। वहा तो भैया ! परमार्थ नहीं, यहा तो परमार्थ है, सत्य है। सो मनुष्य कुछ कर नही सकता सिवाय सोचनेके, तब बुरा ही क्यो सोचे, अच्छा सोचे, अपना निधि अपना भगवान् अपना स्वामी जो कुछ है वह मै ही अपने आप हूँ। इसलिए मै अपने आप अपनेमे अपने लिए स्वय दृष्टि करूँ और कष्टमुक्त होऊ ।

सहजानन्दभाव क्व क्वेमे रागादिवैरिणः।
सहजानन्दसम्पन्नः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-२६।।

अर्थ– कहां तो सहज आनन्दमय परिणाम और कहा ये राग आदि वैरी, मैं तो निश्चयसे स्वाभाविक सहजानन्दसे सम्पन्न हू, इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊ ।

मेरा सहज आनन्दस्वभाव है, उस आनन्दस्वरूप मे जो करता हू वह मै हूँ। यदि रागमे बैरी व्यभिचारी भाव नहीं उठा तो आनन्दमे कमी नही हो सकती, परन्तु जो इनमे किसी विकार मे झुक गया वह आकुलित ही होता है। आत्मन्, तू निज आनन्दस्वभाव व विकार परिणति इनका अन्तर तो देख, कहा तो इसका आनन्दस्वभाव है और कहा यह रागद्वेष ? यह राग भाव दुश्मन है। इस जीवका कोई बैरी है तो यही राग है और कोई पदार्थ दुनिया मे इस जीवका बैरी नहीं है। अपने आपमे उठा विकार ही बुरा है और कोई बुरा नही। अन्य सब तो पदार्थ है, चेतन अचेतन पदार्थ है। जो बाह्यदृष्टि करता है और बुरा समझता

है उसे दुःख है। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व प्रदेशत्व व अगुरुलघुत्व,–इन ६ गुणो को लिये हुए पदार्थ है। वह भी एक वस्तु है। आप कहेगे कि यह मेरे लिए खिलाफ परिणति कर रहा है। किसी जीवके कषायके अनुकूल अपनी परिणति कर रहा है। किसी जीवको तू अपने से बुरा मत समझ। तेरा बुरा कोई नहीं है दुनियामे, वह तेरे खिलाफ नहीं परिणम रहा। वह अपने कषाय के अनुकूल अपना परिणमन कर रहा। वह तो उसके अपने कषायका पोषण है। कोई तेरा बुरा नही है। तेरा बुरा है रागभाव। रागके कारण सर्वज्ञता का स्वभाव ढका हुआ होता है। रागादि वैरीके निमित्तसे ही तो देखो परमार्थस्वभाव ढक गया। इससे बढ़कर बैरी और तेरा कौन हो सकता है? तेरा बुरा है राग। यदि बैरी पर तुझे झुझलाहट होती है तो तू अपने रागपर झुझला ! और कोई तेरा दुश्मन नही। राग तो इस जीवको बर्वाद करता है। राग एक पर्याय है, पराधीन है। कर्मके उदय से होता है। तेरा स्वयका कुछ अस्तित्व नहीं, फिर तुझे तेरा ख्याल बर्बाद कर रहा है। अथवा मुझे कौन बर्वाद करता है? मै ही अपने आपकी कलासे सुखी व दुःखी हूँ।

जरा अपने स्वभाव मे और इस पराधीन परिणति मे अन्तर तो देख, एक अपने को देख, कुछ ही समय सही ऐसा उपयोग बना ले, इसका सारा सुख, दुःख अपने हाथ है। यह सब कुछ ज्ञान की कलाके आधीन है। जो लोग मानते हैं कि ईश्वर की जो इच्छा होती है कि मै सृष्टि कर लू– इतनी इच्छा करनेसे सव सृष्टि हो जाती है। सृष्टि कैसे बनती है? जगत् मे ये एक ईश्वर ही तो है। यह इच्छा करता है कि मै ऐसा बन जाऊ तो हो जाता है। आखिर प्रभुका स्वरूप ही तो है। इसकी प्रभुता विकाररूपमे विकसित हो रही है। पर हे भैया ! जरा अपना स्वभाव तो देख। कुछ तो मेहरबानी कर अपनेपर। बहुत कुछ बर्बाद्र हुआ। बहुत मरा, बहुत पिटा, कुछ तो अपनेपर करुणा कर। इस दुनियामे तू अकेला है, तेरा कोई साथी नही। भ्रमजालको भुला दे। तेरा साथी केवल तू ही है। अगर अच्छे ढंगसे चला तो स्वय तेरा साथी तू है और अगर खराब ढगसे चला तो तू ही तेरा बुरा है, दूसरा कोई कुछ नही करता। अपने ही उस सहज आनन्द को देख। कैसा यह तेरा स्वभाव है और कैसा वह रागद्वेष बैरी है? यह मिट जाता है, तो स्वभाव मिटता नहीं। यह अज्ञानमय है तो स्वभाव ज्ञानमय है। यह स्वभाव तो सदा रहता है और यह विकार सदा नहीं रहता है। जो सदा रहता है स्वाधीन है, आनन्दसे भरपूर है, ऐसा तू ज्ञानमय है, विकटस्वरूप विराजमान है। ऐसे अपने भगवान् स्वभावको देखना भूल गया और इन झगड़ोमे रम गया। वहीं वहीं स्वभाव देखता है, वहीं वहीं सारा देखता है। उसीमे बुरा होता है। बुरे विचारसे बाहरी पदार्थ बुरे है। जब तेरे लिए तू दुश्मन बनेगा तो तेरे लिए तू बुरा है। इसलिए तू तेरे लिए भला है तो दुनिया मे तेरा कोई बुरा नहीं।

एक श्रावक व श्राविकाकी घटना है कि वे स्त्री और पुरुप चले जा रहे थे दूसरे गावसे। आगे पुरुप था और स्त्री पीछे। पुरुप ४०-५० कदम आगे निकल गया, स्त्री पीछे रह गयी। आगे देखा पुरुष ने कि ३०-४० मोहरे पडी हुई है। सोचा कि पीछे स्त्री आ रही है, उसका दिल न दुःखी हो जाय। इन मोहरोमे इसका परिणाम न आ जाय कि मोहरे ले लू ऐसा सोचकर मोहरो मे धूल डालने लगा। इतने

मे थोड़ी देर मे स्त्री पास पहुची तो स्त्री ने कहा कि क्या कर रहे हो ? पुरुषने कहा कि ३०-४० मोहरे पड़ी थीं तो मै उनपर धूल डाल रहा हू। स्त्री कहती है कि चलो आगे बढ़े चलो, क्या धूलपर धूल डाल रहे हो? तो पुरुष के परिणाम मे यह आया कि मोहरे है और स्त्री के परिणाम मे यह आया कि यह धूल है परिणाम अपने आपका अपनेमें होता है। परिणाम ही रक्षक है हमारा और रक्षक कोई नही । बुरा परिणाम करके करोड़का धन आया। यह परिणाम कुछ नही है। अच्छा परिणाम करके अगर कुछ टोटा पड़ता है तो कुछ टोटा नहीं । अच्छे परिणामका फल मिलेगा । परिणाम निष्फल नहीं जाता। भला परिणाम है तो भला फल मिलेगा और बुरा परिणाम है तो बुरा फल मिलेगा । देखो सबसे ऊचा परिणाम क्या है? जब सत्य ज्ञात हो जाता है तो विश्वका प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र है, अपने अपने अस्तित्व मे है। किसी पदार्थ का किसी पदार्थ से कोई कार्य नहीं होता है। प्रत्येक पदार्थ स्वतः परिणमता रहता है। इसमे परिणति करनेका स्वभाव है। किसी का किसी अन्यके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ऐसा स्वरूपमे भी मै एक वस्तु हूँ। मै स्वतः हूँ और स्वतः परिणमनस्वभाव लिए हुए हूँ। मेरेसे दुनियाका कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा ज्ञानी हूँ मै फिर जब ऐसा परिणामस्वभाव है तो फिर अब किसको बिगाड सकू, किसको अपना सकू, किसे छोड़ सकूगा ? वस्तु तो सब पृथक-पृथक ही है उनका तो किया ही क्या जा सकता है? हा विकल्प ही किए जाते है ।जैसे विकल्प छोड़ना है । अब विकल्प को छोड दे तो सर्वसिद्धि है। निर्विकल्पता के साधनमे जो आनन्द आता है वह अनुपम आनन्द है। देखो अभी यहा कुछ महिलाए जाप भी कर रही, कोई पाठ भी पढ़ रही है। देखो एक बातका ही विकल्प कर लो और कहीं किसीकी बातमे न लगो। जो अपना है उसमे ध्यान दो। और सयम क्या है? अगर ऐसी इच्छा न करो कि हमारे चारो काम हो ही जाये, पूजा भी हो जाय, पाठ भी हो जाय, नियम भी हो जाय, सुबह के प्रवचनमे भाग भी ले, चारो की चिन्ता न करो। मगर एक ही काम करो कि रागको अपनेसे बाहर करना है । और करनेका काम क्या है? बाहरके काम न करो, तेरा साथी है ही कोई नही। तेरा साथी तू ही है। तू भले परिणाममे रहा तो तेरा साथी तू ही है और यदि राग के परिणामसे रहा तो तू ही अपना बैरी है।

वर्ष मे भी मन नहीं भरेगा । दिनमे कुछ परिणाम है, सुबह कुछ परिणाम है, शामको कुछ परिणाम है। यह तो पराधीन व विकृत चीज है। मोह किया तो ससारमे दुःख ही रहेगा । अब छूटा तो छूटा सही। सो मैं अपनी इन राग, द्वेष बुराइयो से हटकर स्वाभाविकरूप स्वभाव मे आकर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ ।

यह निश्चय समझो कि मेरा आनन्द मेरेसे दूर नहीं है। बाहरके किसी भी पदार्थ से आनन्दकी किरण नहीं आती कि जिसमे आनन्द भरा हुआ हो, ऐसा परचैतन्यपदार्थ से भी आनन्द नही आता । उनका आनन्द उन्हींमे है, मेरा आनन्द मुझमे है। कोई किसीका नहीं है। जो मोह के समय बड़ा अच्छा लगता है। उस प्रभुकी प्रभुताकी दुर्गति करने वाला तू ही एक है। यदि मोह नही है तो यह प्रभु आनन्दमय बनेगा । यदि मोह है तो इस जागत् मे जीव नाना सकट सहता रहेगा । निःमोहताकी प्रशसा मे श्री समतभद्राचार्य स्वामी ने बताया है –

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः। ।

निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्ग मे स्थित है, पर मोही मुनि मोक्षमार्गस्थ नही। इस कारण मोही मुनिसे निर्मोही गृहस्थ अच्छा है। मोह क्या है कि भीतरमे यह भाव आ जाना कि यह चीज मेरी है और मेरा जीवन इनसे ही है। मेरा हित इनसे ही है, मेरा बड़प्पन इन चीजोसे ही है– ऐसा भाव है , तो यही मोह दुश्मन है, बेरी है। अहो ! यह मोह अन्धेरा इतने बड़े जीवोके है कि पछताने की भी गुञ्जाइश नही। इतनी बड़ी विपत्तिमे पडा है। यदि यह अधेरा है कि यह जितने भी पदार्थ है इन्हीसे मेरा जीवन है, ये ही मेरे सब कुछ है, तो मनुष्य होना व्यर्थ है। यदि परिणाम बुरा है नो मनुष्य होकर नम्बर भी क्यो खोया? कीडे मकोडे ही बनना अच्छा था । मनुष्य वननेकी गिनती तो नहीं आती । २ हजार सागरके बीच मनुष्य बनकर २३, २४ बारके मौके तो आते, मगर मनुष्य बन गया तो मनुष्यके कार्य तो करने थे। अगर यह विपयकपाय करना ही था तो कीड़े मकोड़े बनते । एक कहावत है कि ये दिल्ली रहे, १२ वर्ष रहे। क्या काम किया ? भाड़ झोका । अगर भाड़ झोकना था तो क्या भाड यहीं गावोमे न झोक दिया जाता । विपयकपायोमे रहे, बुरे कामो मे रहे तो मनुष्य होकर क्या किया ? सज्ञी बनकर खोटा बना तो उसकी दुर्गति ज्यादा होती है। अतरसे देख, हम कैसे आनन्दमय है, हम कैसे ज्ञानमात्र है? जो भगवान है वह मैं हूँ इतना पवित्र मैं हूँ। अपने स्वरूपको भूलकर बुराइयो को अपना लिया , इन धोखे वालोको अपना लिया । भेद करना है तो धन उसका नही, दौलत उसकी नहीं। यह तो ऊपरी बात है। भेद यह करो कि रागद्वेप अपने नहीं है। हे राग बैरी अब तू नष्ट होने के लिए ही तो आया है, मिटने के लिए ही तो आया है। ये रागादि आते है तो आ जाये, मिट जाये, ये तो सर्वज्ञतामे वाधा डालते हैं । मै तो सहज आनन्दमय हूँ, इस तरहसे अपनेमे हुए रागादिको आस्तीनका साप जैसा कहा है। अपनी ही कमीज मे आस्तीन मे साप वैठा हुआ है। अपने ही प्रदेश मे यह विप विकार जन्मा है। अपने ही प्रदेश मे यह रागादि वैठा हुआ है। यह महिमान है। जाने के लिए आया है। महिमान का अर्थ है– महिमा+न याने

महिमा नहीं। यह रागद्वेष बुराई महिमान है । महिमा तो इस ज्ञानस्वभाव की-ही है, रागदिकी महिमा नही। मेरा आनन्द मेरे मे से ही निकलेगा । अचेतन पदार्थ मे मेरा ज्ञान नही। इसी तरह अचेतन पदार्थ मे आनन्द नही। पत्थर पर लड्डू, पेड़ा सब कुछ धरे हो तो क्या आनन्द आयेगा। प्रभु की आराधना करूँ आनन्द मिलेगा, ऐसी कायरता न कर। पर चेतन से भी मेरे मे ज्ञान व आनन्द न आयेगा। लड्डूसे आनन्द नही आयगा । इसी मेरे सबसे ही आनन्द आयगा । आनन्द बाहरसे नही आयगा । सो तू उस आनन्दस्वभाव को निहार । बस यही एक उपाय है आनन्द पानेका ।

प्रयत्नो वाञ्छया तस्माद्वातो यन्त्र प्रवर्तते।
स्वे तान्यारोप्य किं दुःखी स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-२७।।

अर्थ- इच्छा से प्रयत्न होता है प्रयत्न होनेसे वायु चलती है वायुसे यह शरीर रूपी यंत्र प्रवर्तित होता है , फिर उन सब प्रवर्तनोंको अपनेमें आरोपित करके दुःखी क्यों होऊ मैं तो अपने में अपने लिए अपने आप सुखी होऊ ।

यह प्राणी केवल अपने भाव करता है। यद्यपि उसकी किसी भी पदार्थ मे किसी भी प्रकारकी परिणति नही है, लेकिन देखनेमे ऐसा आता है कि हमने तो ऐसा किया है। घर बनाया है, दुकान चलाई, घरसे यहा तक आया हूँ, वचन बोलता हूँ, अनेक तरहके काम करताहू, लगता ऐसा है, किन्तु दुनिया मे प्रत्येक जीव केवल परिणाम ही करता है, अपने परिणाम के सिवाय और कुछ नही करता है। पर ऐसा लगता क्यो है, ऐसी लोगोको विपत्ति क्यो है ? इसका कारण है- निमित्तनैमित्तिक भाव। जैसे आग के सामने गर्म पानीका बरतन रखा है तो पानी तो स्वयकी परिणति से गर्म होता है ,परन्तु लोगो को ऐसा लगता है कि आगने पानीको गर्म किया है अथवा कोई पुरुष २० हाथ दूर खड़ा हुआ है और लोगोने देखा कि कोई गाली देता जा रहा है और वह चिढ़ रहा है। लोगोको ऐसा लगता है कि वह इसको गाली देकर दुःखी कर रहा है, चिढ़ा रहा है, किन्तु ऐसा नहीं है। चिढ़ाने वाला अपने विकल्पसे दुःखी होता है और दूसरा अपनी कषायसे चेष्टा करता है। इसी तरह जीव केवल अपना भाव करता है, भाव के अतिरिक्त और कुछ काम नही करता है। जैसे हाथ से कोई चीज उठाकर १० हाथ दूर रखे तो लोगोको यह भ्रम जरूर हुआ कि यह जीव ही चीज उठाकर रखता है। वास्तव मे जीव के द्वारा रखने की कोई चीज ही नहीं। जीव ने तो केवल अपना परिणाम ही किया, भाव बनाया, इच्छा की कि मैं इस चीजको उठाकर रख दू और इसी तरह उसके प्रदेश मे योग हुआ ।

इस तरह आगे जो काम हुआ वह अपने आप हुआ, जीवने तो केवल परिणाम किया, इच्छा की, प्रदेश परिस्पन्द हुआ । उसका निमित्त पाकर जिस शरीरसे उसका सम्बन्ध है उस शरीरका अग चला और इस चलते हुए अगके बीचमे चीज भी चलती हुई वहा पहुचती है। जीव ने तो केवल परिणाम किया। देखने मे आता है कि देखो यह जीव कितना काम कर रहा है? कपड़ा नापा, पैसा बनाया, हिसाब लगाया, पैसा रखा। कहता जाता है कि मैने १०० रु० कमाये । क्या ऐसा काम बाहर में कुछ ठीक कर लिया है ? नहीं। तब तो केवल अपना परिणाम करता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं । जैसा भी परिणाम

किया, धन आना चाहिए, धनसे लाभ हुआ। अभी परिणाम किया और उस परिणामको निमित्त पाकर योग हुआ और योगके निमित्तसे देह व्यापक वायु चली, वायुके निमित्तसे अवयव चले, उसके निमित्तसे सयुक्त पदार्थ चला । यह सब होता रहता है, परन्तु यह जीव बाहरी चीजोसे अपनेको भिन्न समझ जाये कि मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूँ, जगत्‌के किन्हीं भी कामोको नही करता हूँ, केवल परिणामको बनाता हूँ। सपदाकी स्थिति है तो विपत्तिकी स्थिति है अर्थात् सर्वत्र जीव अपना परिणाम बनाता है, केवल अपने भावको करता है और जैसे भावको करता है उसी भावको भोगता है। इसे अतिरिक्त और कुछ काम नहीं करता। मेरा कहीं कुछ सम्बन्ध नही, मै तो अपना स्वरूपमात्र हूँ, एक पदार्थ हू और परिणमता रहता हूँ, सबसे निराला हूँ, इसमे कोई परभाव नहीं, मै एक ज्ञानमात्र और निरतर, लगातार, हर समय परिणमन कर रहा हूँ– इतना मै हूँ, ऐसी श्रद्धा, ऐसी प्रतीति अपनेमे रहे तो वहा दुःख का कोई काम नहीं । यह दुःख तो बनाया जाता है, लेना न देना, दुःख होता रहता है।

इस जीवसे उसका क्या सम्बन्ध है? सदा न्यारा - न्यारा है, स्वय जुदा जुदा है सब अपने आपमे स्वरूप बना है, फिर दूसरे पदार्थो के साथमे क्या सम्बन्ध है इस शरीर को भी भूलकर तू ध्यान अपने आपका कर । जो कुछ है वह ज्ञानमात्र तू है। तू केवल अपने स्वरूपमात्र पर दृष्टि दे। जैसे भोजन खाना हुआ तो इस स्थिति मे केवल बात ही खानेके कामकी ही नही, वहा तो काम करता है, बनाता है, खाता है, तब उसका सुख मालूम करता है। इसी प्रकार अपने आपके स्वयके विचारमे केवल बात ही करनेसे काम नही चलता । जैसे इनका स्वरूप है, तैसे - तैसे चलनेसे काम चलेगा । लोग कहेगे, कैसा आदमी है, जो न घरकी फिकर, न पैसे की फिकर, न आगे की फिकर, क्या करता है, कैसा अलफतियाबना हुआ है? जो इस दीर्घ ससार मे पड़ा हुआ है उसे वह धन छोडना पड़ेगा । जो घर द्वार सभालने मे लगा हुआ है, सभालते हुए भी नही सभाल पायेगा। जैसे कोई कमीजके पल्लेमे मेढ़क भरे तो एक यहासे उछलता है, एक वहा से उछलता है। इसी प्रकार सम्पत्ति, परिवार आदिसे मोह करके बस नहीं चलता । एक यहासे भागा, एक वहा से भागा और अपने मोहके झोलेमे उन्हे भरना चाहता है, किन्तु यह काम बननेका है नहीं और अहकार यह करता है कि मै सभालने वाला हूँ, मै पालने पोसने वाला हूँ। इस तरह काम नहीं चलेगा । इन सब राग, मोहकी बातो को छोडकर असली तत्वमे आना होगा कि पदार्थ अपने आपमे जैसा है वैसा माने । मैं आत्मा अपने आप कैसा हूँ? मै अपने आप हूँ, केवल अपने आप पर तू ध्यान दे तो पता चल जायेगा । किसी दूसरे पदार्थका ध्यान न रक्खो । कोई भी पदार्थ हो, कोई भी वाह्यपदार्थ हो, एक ही का ध्यान दे तो आत्मा के बुरे परिणाम हो जाते है ।

कोई व्यक्ति यह कहे कि आख के सामने तिल ही रक्खा है। और कुछ नही रक्खा है, आखके आगे तिल भर कागज रख दो तो सब पहाड ढक गया । वहा यह प्रश्न न चलेगा कि उसने तो जरासा ही कागज सामने किया है। अरे देखने मे तो यह जरासा तिल बराबरका है, यो उसने पहाड़ ढक दिया। इसी प्रकार आत्माके दर्शन मे एक भी पदार्थका मोह हो तो भगवान आत्मा ढक जाता है। कोई कहे कि मै पदार्थका मोही नहीं हूँ, मेरे यहा केवल एक लल्ला है, और कोई नहीं । केवल लल्ला ही एक मोह

मे रह गए है, जरासी थोड़ी कसर रह गयी है, बाकी तो सम्यक्त्व है। सो ऐसा नही । एक लल्ला हो, चाहे आधा लल्ला हो, मोह है मिथ्यात्व है।-जो ढेरके ढेर पर्वतके बराबर मोह रखता है उसका तो कहना ही क्या है ?

जब जगत्मे इस आत्माका कुछ नही, तो अतरग ही ऐसा बना लो कि भीतर से विश्वास और ज्ञान हो ऐसा बने तो शान्ति का मार्ग मिल जायेगा । एक कहावत है कि रपट पड़े की हर गगा। बात क्या हुई कि बरसात मे सड़क पर था, थोड़ा बरसाती पानी था । एक आदमी जा रहा था उसका पैर रपट गया । लोग उसको देखकर हसने लगे। जैसे साइकिल से कोई गिरे तो हँसी आ जाती है वैसे ही वह गिर गया । पर उसने लोगो को यह नही महसूस हाने दिया कि मै गिर गया हूँ वह कहने लगा कि हर गगा, हर गगा । गगाजी मानकर अपना धर्म का नाम कर रहा है , कहता है हर गगा । दुनिया मे कुछ नहीं है । तू इसका ख्याल छोड़कर ध्यान मे लग जा, क्योकि इतनी बात मानते हो सब कुछ मिटेगा, चाहे १० साल बाद अथवा २० साल बाद । हम भी चले जायेगे, आप भी मिट जायेगे। किसी की आशा ही क्या ? जो ऐसे रपट पड़े कि हर गगा की तरह पहले ही परसे हट जाओ, फिर तेरा धर्म न छूटेगा । जैसे रपट पड़ा और गिर ही पड़ा तो चतुर व्यक्ति हरगगा कहकर अपनी मजाक खत्म करवा लेता है । चलो, इसी तरह अपनी दुर्गतिका मजाक धर्म की ओर मुड़कर खत्म करा ले । जब यहा कुछ नही रहना है, सब मिटने वाला है तो स्वय ही उपाय दूसरा कर ले। भाई ! यहा कुछ रहना ही नही है, तू अपने ज्ञानको बना । यह सब रहने का नही, यह सब मिटनेका है, यह तेरे पास कुछ नही रहेगा । इनसे मोह हटा लोगे तो अपने मे आत्मा स्वय ज्ञानस्वरूप है, परमे तेरा कोई तत्व ही नही है । जहा तुझे तरस आनी चाहिए । तू आनन्दमय आत्मा है। अतः एक विश्वास करके २४ घटे मे १५ मिनट तो सबका ख्याल छोड़र, ज्ञानानन्दमय एक आत्माका तो ध्यान कर । सब यदि अलग हो जाते है तो अलग हो जाये, परके हिसाब से तेरा कुछ बिगड़ने को तो नही है । हमेशा अकेला तो तुम्हे रहना ही है, दुकेला कब तक रहेगा ? हम दुकेले, तिकेले कब तक रहेगे, चौकेले, दसकेले कब तक रहेगे ? इस जीवन मे क्यो दुःखी होता है । कोई शका नहीं कर, निःशक रहना । इस विषय मे आत्मानुशासन मे कहा है—

जीविताशा धनाशा च येषा तेषा विधिर्विधिः।
कि करोति विधिस्तेषा येषामाशा निराशता ।।

जिसको जीनेकी इच्छा है और धन वैभव की इच्छा है और जिसको निराशा की ही एक आशा है अर्थात् कुछ आशा ही नही करता उसका कर्म कर्म नही है । ज्यादा से ज्यादा कर्म तो यही हानि कर सकता है कि जीवन न रहे या धन न रहे किन्तु जो इसमे राजी है, जीवन व धनसे विविक्त आत्मतत्वमे अपने आपकी भावना बनाए रखते है, भाग्य उनका क्या कर लेगा ? भाग्य तो उन्हे ही दुखी कर सकेगा जिनको जीनेकी इच्छा है, धनकी इच्छा है। भाग्यका ज्यादा से ज्यादा बस इतना ही तो चलता है— मुर्दा हो जाए, जीवन खत्म हो जाए, टोटा पड़ जाए, परन्तु ज्ञानी इन बातो को चेलेज देते है कि ऐसा होता है सो होओ। होगा वही जो होना है, जो ऐसा प्रत्यय बनाए है तो आत्माको प्रबल बनानेसे दुःख न होगा।

उतना ही मिलेगा जितना होगा । आत्मा को प्रवल बना लेने से आत्माको क्लेश नही रहता । इस कारण तू ऐसी भावनाए भरकर आत्माको प्रबल बना । मै एक ज्ञानवान् हूँ, आनन्दमय हूँ, मुझे पहिचानने वाला यहा कोई नहीं है, मै ऐसा हूँ। कि यहाँ मेरी पहुच वाला भी कोई नही है जो कुछ वहा पर दिखता है वह चलचित्र है, यह सब चलता-फिरता सिनेमा है। वहा तो १ गज चौड़े, २ गज लम्बे परदेमे सिनेमा होता है। यहा इस दुनिया मे चलता-फिरता सिनेमा है। केवल परिणतियो की ही बात है, उसमे सार नहीं, उसमे सार नहीं, सार जो तत्व है वह छिपा होता है।

इस तत्व को अतरमे लगाकर अन्य किसीका ध्यान न कर । **'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ''** जिन्होने खोजा उसको भगवान् मिले । जो इस पानी के ऊपर ही देखता रहे उसको कुछ नही मिलेगा। ऐसी उदारता करो। तेरी भक्ति के प्रसाद से हे नाथ ! तेरे गुणो के प्रसाद से हे नाथ ! तेरी ऐसी उदारताका परिणाम हो कि इस जगत् के जीव मुझे एक समान दिखे। यह भावना बने कि यह मेरा प्यारा है और यह मेरा दुश्मन है, यह मेरा भला है और यह मेरा बुरा है, ऐसा परिणाम मत बना । क्या कोई मित्र है इस दुनिया मे ? कोई नही है। ये सब अकेले ही अपनी परिणति से बने हैं । अपनी अपनी कषाय है। उसके अनुकूल इन सबकी चेष्टा है, मेरा यहा कुछ आता जाता नही है। तू स्वय जब बुरा बनता है तो दूसरोको देखता है । तू जब भीतर से चगामगा रहता है। चगा कहते है सुखीको, शुद्ध आनन्द वालेको और मगा कहते है कल्याण को । जब तू स्वय चगामगा रहता है तो दूसरोको मित्र देखता है, भला देखता है, अच्छा देखता है। तू जैसा है वैसा स्वय बाहर से देखता है। देखेगा तू जैसे तेरी ऑखे होगी, जानेगा तू वह स्वय जैसा तेरा ज्ञान होगा, तू जैसे बाहर देखता है और प्रसन्न है तो तुझे सब प्रसन्न दीखेगा । देवता है, कैसा शात है, कैसा धर्मके बारेमे कहता है, धर्मके प्रति प्रेम है, ऐसा आपको बाहरमे देखना होगा और यहा भी कोई ऐसा हो कि बाहरसे ठीक है व अतरमे नाना चाले रखता है, और देवतासा बना बैठा हो तो उन्हे सव मायाचारी दीखेगे । साधु पवित्र चित्त वाले जो होगे उनको सब जगह पवित्रता दीखेगी ।

जैसे हम है वैसे ही वाहर देखे। किसी भी जीव को गैर मत समझो, अपना विरोधी मत समझो। हम तो उसे अपने समान ही समझे । यह बहुत ही सम्भव है कि आपका व्यवहार देखकर पवित्र बन जायेगे। अपने उस कपाय को छोड देगे, पर जो दूसरोके प्रति बुरे ही बुरे ख्याल करते है तो वे तो स्वय तुरन्त बुरे हो जाते हैं ।

भाई ! परमार्थकी वात तो यह है कि अपने को इस तरह देखे कि मै केवल परिणाम करने वाला हूँ अपने परिणाम के अतिरिक्त मैं और कुछ नही करता । हर जगह हर समय केवल अपने परिणाम के लिए अपना परिणमन करता हूँ। जब मैने पहले भी कुछ किया नहीं, न आगे कुछ कर सकूगा । केवल अपना परिणाम वनाया था, अपना ही परिणाम वनाया है और अपना ही परिणाम बनाता रहूँगा । व्यवहार को भी देखे तो क्या वात है? मवसे आप वोलते है, लेकिन यह पता आपको चल जाय कि यह बोलता तो प्रिय है, किन्तु इसका परिणाम बडा खोटा है, तो आपको उसके प्रति ईर्ष्या हो जायेगी । और किसी

से आपका बिगाड़ भी हो जाये और यह आपको विदित हो जाये कि इसका परिणाम अपने कल्याण के लिए था तो उससे प्रेम बना रहेगा। सव तो अपने परिणाम के आधीन ही खेल बना है, परिणामके सिवाय और कुछ नहीं कर सकता । कोई जो कर्तव्यबुद्धि करेगा , वह ससार के जन्ममरण के चक्कर से नहीं छूट सकेगा । अपने और को यह स्वयं जान जाय कि मै एक भावात्मक पदार्थ हूँ और मैं केवल अपने परिणामको ही करता हूँ। इतना ही यह कर्तव्य भोक्तृत्व है और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं, ऐसा अपने आपको निराला बना ले। आपको यह अनुभव हो जायेगा कि मै अतरके सिवाय और कुछ कर ही नही कर सकता , तो मैं अपने परिणामको सोचसमझकर चलूगा । सब कुछ मैं स्वय हूँ, किसीका किसी से कोई ताल्लुक नही है। ऐसा दृष्टा बने तो इससे बढ़कर दुनिया मे और कोई वैभव नहीं है।

पङ्गोर्दृष्टिर्यथान्धे न तथा स्वस्यैव नो तनोः ।
दर्शनं मात्रमस्म्यस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-२८।।

अर्थ- जैसे लंगड़े की दृष्टि अंधेमें नहीं होती, उसी प्रकार आत्माकी दृष्टि शरीर की नहीं है किन्तु आत्माकी है मैं तो दर्शन मात्र हूँ, इसलिये मैं अपनेमें अपने लिये स्वय सुखी होऊं।

लोग कहा करते है कि यह मनुष्य देखता है, जानता है, परन्तु मनुष्य से उनका प्रयोजन शरीरसे है । तो यह शरीर न तो देखता है और न जानता है , देखने जाननेकी शक्ति तो जीवमे है। ज्ञानदृष्टि तो जीवमे विद्यमान है, वह शरीर मे नही पाई जाती है । लेकिन जैसे लगड़े और अधे आदमी मिलकर चलनेका काम करते हैं । अर्थात् अधा तो चलता है और लगड़ा उसके कधे पर बैठता है। ऐसा देखकर लोग कहते हैं कि अधा देखकर चल रहा है, परन्तु उस जगह तो लगड़ेकी दृष्टि काम कर रही है, अधेके दृष्टि है ही नही। परन्तु इस सम्बन्ध मे ऐसा कहा जाता है कि अधा अपनी दृष्टि से काम कर रहा है। इसी तरह दृष्टि तो जीवके है, पर जीवका इस समय सयोगसम्बन्ध शरीरसे है। इस कारण लोग यह कहते है कि यह मनुष्य, यह प्राणी देख रहा है, जान रहा है। परन्तु देखने, जानने वाला तो आत्मा ही है। लगड़ा तो चल नहीं सकता और अधा देख नहीं सकता । यदि ये दोनो अलग-अलग रहे तो दोनो वेकार हैं। न लगड़ेका कोई काम बने और न अधेका कोई काम बने, दोनो जव मिल जाते हैं तो हरकत करने लगते है । इसी तरह आत्मा और शरीर दोनो अलग अलग हो जाये, आत्मा अलग हो व शरीर अलग हो जाये तो दोनो की हरकत बद हो जाती है। आत्मा बाहरी, दिखावटी क्या करे और शरीर भी क्या करे ? आत्मा और शरीर जब दोनो मिलते हैं तो आत्मा भी हरकत करता है और शरीर भी हरकत करता है। ऐसी अवस्था मे शरीर की हरकत देखकर दुनियाके लोग जीवको कहा करते हैं कि यह सब जीव कर रहा है यह सब जीवकी हरकत है। पर जो ज्ञानी जीव है, भेदविज्ञानी जीव हैं वे जीव का काम जीवमे देखते हैं और उनको परस्पर केवल निमित्त मानते हैं। अज्ञान इसीको कहते हैं कि है तो निमित्त और मान ले उसे कर्ता, जैसे कर्मको माना है निमित्त और अज्ञानी मानता है कर्ता। होता क्या है? जीव तो भाव ही करता है, कर्म स्वय बधनको प्राप्त होता है। भाई ! कर्म तो केवल अपना परिणमन करने वाला है। जैसे जीवके विकार रूपसे होने वाले परिणाम मे निमित्त कर्मोदय है, उसको कर्ताके रूप मे

देखना यही अज्ञान है। प्रत्येक पदार्थको उनके ही अस्तित्व मे देखना, एकसे दूसरेका अपनत्व न समझना, यह ज्ञान है। हमारा अपना अस्तित्व अपनेमे ही है, हमारा गुण पर्याय हममे ही है, इस ज्ञानस्वरूप आत्मा का सर्वस्व आत्मा ही है, इसके बाद बाहर अन्यसे क्या सम्बन्ध है? मै हूँ और परिणमता रहता हूँ, इतनी ही मेरी सारी दुनिया है। क्यो ऐसा न मानकर बाहरी पदार्थो को अपनेमे समझकर दुखी हो रहा है? जो इस अपने ज्ञानमे आता है वह ही योग्य है, वह ही ससार मे पूज्य है। पूज्यता पवित्रता से बनती है। पवित्र केवल रह जाना इसको ही पवित्रता कहते है। यह अपना तो केवल जैसा है तैसा चैतन्यस्वरूप मानता रहे, मैं यह ही हू, इसके आगे मेरा कोई काम नही, न मेरी कोई इच्छा है और न मै कहीं अन्यत्र जाना चाहता हू। जान गया कि मै यह हूँ और स्वतः परिणमता रहता हूँ। इस तरह अपने ही स्वरूपकी तरह रहे तो आत्मा का फिर कोई काम नही है। पर जो नहीं रह सकता है उसकी आत्माका आकुल होना प्राकृतिक बात है। मै तो एक दर्शनमात्र हूँ, प्रतिभास मात्र हूँ, मै अपनेमे अपने लिए स्वय सुखी होऊ, बस यही एक कर्तव्य है कि वस्तु वस्तु को स्वतत्र जान ले, इसी मे पूर्ण ज्ञान होगा ।

लोक मे उस ज्ञानकी महत्ता मानी जाती है जो जितना जितना बाहरी चीजको जानता जाये, जितना-जितना बाहरी पदार्थो का आविष्कार करता जाये। पर अध्यात्ममार्ग मे ज्ञानकी महत्ता उसमे बताई जाती है कि जितना जितना बाहरी पदार्थो के विकल्प छोडकर अपनी ओर आता जाये, अपनेको ज्ञानस्वरूप अनुभव करता जाये, ज्ञान सामान्यमात्र अपनेको लक्ष्य मे ले। और छोडो ज्ञानकी विशेष तरग, वितर्क विचार । ऐसे सामान्य ज्ञानमे अपने अपनेको अनुभव कर तो परमार्थमे ज्ञानकी महत्ता है। लोगो मे बाहरी चीजोके अज्ञानकी महिमा है, पर आत्मा ज्ञानसे परमार्थ मे आपकी महिमा है। इसमे कोई एक विशेष पदार्थ की बात ही न उठे। यह ज्ञानका ही स्वरूप है अन्य पदार्थ का कुछ नही। इसमे महत्व ज्ञानका है, इसमे ज्ञान आयेगा, इसको ही सम्यक्ज्ञान कहते है, और इस ही ज्ञानकी ऐसी महिमा है कि जिसके बलपर चिरसचित कर्म भी भस्म हो जाते है। ऐसा जाना है तो बस यह ज्ञान है। विज्ञान ज्ञानके स्वरूपको जाना करे, यही ज्ञान अन्य कुछ जानता है तो उसमे इसका कोई मान नहीं । वह सब क्षणिक और अधूरी बाते हैं, उनमे ससार फन्द बन्द नहीं हो सकते। जन्म मरण की परम्परा उनके अज्ञानसे निवारित नहीं हो सकती है। यही वह ज्ञानस्वरूप है जिसके द्वारा कर्म ध्वस्त हो जाते है।

ज्ञानी ज्ञानके स्वरूपको जानता है। ज्ञानका जानना, इसीसे तो आत्मज्ञान हो जाता है और लगन भी मालूम पड जाती है। हमे करना क्या है? क्या जानना है? कहा जानना है? जाननेका स्वरूप क्या है? जाननेका स्वरूप जानो यह यथार्थज्ञान कहलाता है।बोधिदुर्लभ भावना मे आता है कि सब मिलना सरल है। सोना, चादी सब मिलना सरल है, परन्तु यथार्थ ज्ञान मिलना कठिन है। और सब ज्ञान मिल जाता है, परन्तु जाननेका जानना कठिन है, जानने वाला है वह क्या है? इस शोध का पता नही लगता अज्ञानियो को। मूलमे भूलकर देना यह कितनी बडी भूल होगी । एक कथा है कि एक दामाद अपनी ससुराल गया । उन दिनो मे उसका ससुर बाहर शहरमे गया था, बीमार पड़ा रहता था, बीमारी की चिट्ठिया आ रही थीं । कुछ दिनो मे चिट्ठी आयी, जब दामाद भी वहा था। लोगोने कहा लालाजी से चिट्ठी

है। जो यह स्वभावपूर्ण विकसित होता है बस उसे परमात्मा कहते है। मुझमे भगवान् स्वरूप आ जाय इसके लिए कुछ बाहरी चीजे लिपटती नही । वह खुद ही भगवान स्वरूप हो जाता है।

जैसे कोई एक पत्थर मूर्ति बनाने के लिए लाया गया । भाई, इसमे श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति बनाना है। और देखो यह है एक रामचन्द्रजी की मूर्ति, तपस्वी, ध्यानमग्न, दिगम्बर मुद्रा मे। ऐसी ही मूर्ति इस पाषाण मे बनानी है। कारीगरो ने व्यक्तमूर्ति व पाषाणको देखा । अब कारीगर क्या करते है कि छेनी हथौडा लेकर मूर्ति बनाते हैं। तो मूर्ति नहीं बनाते किन्तु मूर्ति को ढकने वाले जो पत्थर है उनको अलग करते है। आवरण पाषाण खण्ड अलग हुए कि मूर्ति प्रकट हो जाती है मूर्ति तो उसके अन्दर है ही। केवल मूर्ति को ढकने वाले जो इधर उधर पाषाण हैं उनको अलग करके वह मूर्ति अलग हो जाती है। उसी प्रकार यह परमार्थस्वरूप प्रत्येक जीवमे बसा होता है। यह तो स्वभाव की चीज है। एक क्षणको भी अलग नहीं होती और न अलग होगी । चाहे वह भव्य जीव है चाहे अभव्य जीव, सबमे वह स्वरूप होता है । जीव जीव एक समान हैं। अभव्य नाम इसलिए पड़ा कि उसके परमात्मस्वरूपका आवरण कभी दूर नही होता, पर ऐसा नही है कि अभव्य जीव मे परमात्मस्वरूप ही न हो । सब जीवोमे परमात्मस्वरूप है। उसका आवरण करने वाले ये विषयकषाय है। इस आवरणको जो लोग दूर कर सकते है उनका परमात्मस्वरूप प्रकट हो जाएगा । परमात्मस्वरूप कही बाहरसे लेकर नही बनाया है। यह आवरण मोह, रागद्वेषका है। इसके दूर करनेका उपाय है, अपने ज्ञानस्वरूप की भावना करना । मै आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञानमात्र हूँ। आवरण रहते हुए भी विषयकषाय भावसे परे हू। यही इसका स्वभाव है। जरा भी इसके अन्दर विकार नहीं है। यह ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान ही इसका कार्य है। इसलिए सर्वत्र इ.. . ०। ज्ञान है। मैं ज्ञानमात्र हूँ, अपने को दुःख द्वेष, मोह आदि से दूर करने का यही उपाय है। अ ेको ज्ञानमय ही देखना । स्वभाव उसका कैसा है? ज्ञानमय । यह आत्मा कर क्या सकता है? ज्ञानमात्र । जिसका सब कुछ ज्ञानभाव है ऐसे स्वभाव की ओर दृष्टि करना मोह को दूर करने का उपाय है। रागको दूर करना उसका स्वभाव है। यह राग कर्मोदय से आता है। जब कर्मोदय रहता है तो राग आता है कर्मका उदय आयेगा तो राग आयेगा । रागका सवन्ध कर्मोदय से है राग उसकी चीज नहीं, राग उसका स्वभाव नहीं। रागरहित रहना मेरा स्वभाव है। रागरहित अपनेको अलग कर देने का उपाय है, सो यह कहते है कि ज्ञानमयताके यत्न करनेमे यह जीव पहले तो अज्ञानियो के बीच पागलपन जानता है और पीछे पाषाणोकी तरह निश्चल जचता है, वह बेकार काम जचता है अथवा उस ज्ञानीको भी अपना सब विकार पागलपन का है और ये पागलपन की चेष्टाए है और जब भीतर प्रवेश करता है तो उस ज्ञानमे उसका भाव जम जाता है। और अपनेको पाषाण की तरह स्थिर देखने लगता है। इसी तरह जिस ज्ञानकी खुदकी चेष्टाए पागलपन की जचती हैं और खुदका स्वरूप पत्थर की तरह निश्चल जचता है वह ऐसा ही सव जीवोमें देखना है जीवोकी विकार चेष्टाए पागलपन की चेष्टाए जचती है। अज्ञानी सोचता है। कि ये सब भगवानस्वरूप है किन्तु इनके अन्दर कैसी चेष्टाए हो रही है, कैसा स्वभाव है? परिणामके भीतर का स्वभाव देखता है तो निश्चल देखता है । यह तो सब व्यापकस्वरूप है यह क्या है? क्या कर रहा है?

वाह्य बात देखी जाती है तो वह पागलपन की चेष्टा जचती है। भीतरी स्वरूप देखा जाता तो वहा निश्चलता जचती है। खैर इतने चितनके बाद मे विकल्प शात हो जाते है। और पूर्ण शातिमय हो जाता है। इन सब अपने भीतरके मर्मो के समझनेके फल मे अपना क्या कर्तव्य है कि मै ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञानस्वरूप मेरा काम है। जान लू कि मेरा स्वरूप ही इतना है। किसी वस्तुको अपनी नहीं मानो और अपने ही ज्ञानमे, आत्मा मे मोह कर मै अपने मे स्वय सुखी होऊँ।

सुखी होनेके लिए मै अपने आपके स्वरूप मे झुकता हूँ, उस झुकने मे आपदाए समाप्त हो जाती है। एक दृष्टि दो कि दो आदमी है, उनको एक पहाड़मे घूमना है और पहाड़पर काटे बिछे हुए है। तो एक कहता है कि सारे पहाड़ पर चमड़ा बिछाकर मै घूमूगा । तो बताओ। पहाड़मे अपने ही पैरमे जूते पहिन ले और घूमे या चमड़ेसे सारे पहाड़को ढक दे और घूमे। इन दो आशय वालोमे कौन आदमी सफल हो सकता है? इसी प्रकार एक कोई आदमी यह सोचता है कि मै आत्माकी ओर दृष्टि डालू व कोई सोचता है कि इन पदार्थो को अपना बनॉलू फिर आराम से रहूँगा, कोई दुःखका काम न रहेगा और पहिलेका यह सोचना है कि ये दुनिया के पदार्थ मेरे आधीन है, इनमे कुछ अस्तित्व नही। इन्हे मै कुछ नहीं करना चाहता हूँ। इस कारण परपदार्थो से मुख मोड़ो कि मै अपने स्वरूप मे रहूँगा। अब बताओ कि सफल कौन हो सकता है? सफल वही हो सकता है। ज्ञानमात्र अपनेको वनाए रखना ही शान्ति का उपाय है। चैतन्यमात्र, मूर्ति स्वरूप अपनेको देखो, रागरहित अपनेको अनुभव करो केवल जाननेका तेरा अधिकार है। तो दुनियाको जानते हुए मरना यही शातिका मार्ग है।

आत्मजागरणं यत्र चाभावे लोकजागृतिः।
अहं स ज्ञानमात्रोऽस्मि स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-३०।।

अर्थ– जिसके होने पर आत्मजागरण होता है और अभाव होने पर लोक व्यवहार में जागरण होता है वह ज्ञानमात्र मैं हूं, सो अपनेमें अपनेलिये स्वय सुखी होऊं।

जिसके दर्शन होने पर आत्मजागरण रहता है और जहा दृष्टि नही रहने पर लोकमे जागरण रहता है वह ज्ञानमात्र मैं हूँ। मै ज्ञानमात्र हूँ– ऐसी दृष्टि रखने पर आत्मामे जागृति रहती है, परम सन्तोष होता है और जिस अपने ज्ञानमात्र की दृष्टि समाप्त होनेपर वह अपने व्यवहारमे रहता है, जो बाहरकी ओर इस मायाके तत्व मे सार दीखता है, वह ज्ञानमात्र मै हूँ। ज्ञानमात्र आत्मा मे जैसा है वैसी ही दृष्टि डालते रहना, यह चारित्र है। ज्ञानमात्र मै हूँ– इस प्रकार प्रयोग बनाए रखना यह परम चारित्र है। अन्य जो चारित्र कहे जाते है, नीति, अणुव्रत, वह इस चारित्र के समीप ले जानेके निमित्त कारण है। इस कारण उन्हे चारित्र कहा जाता है। यहा पर चारित्र का सम्बन्ध आत्माके साथ है। जो शारीरिक कार्य है, मानसिक विकल्प है, वाचनिक चेष्टाए है, वे पौदगलिक चेष्टाए है, उनमे चारित्र नही है। चारित्र जैसी आत्मा है वैसा ही बनाया जाय, इसको चारित्र कहते है। अपना स्वरूप सुहा जाय, अपने स्वरूपकी ओर आकर्षित हो जाय, झुक जाय, स्वरूप ही मे लग जाय इसको कहते हैं चारित्र, उपासना, पूजा, अराधना, सयम यही सब। आत्माके स्वभाव मे रुचि हो उसकी ओर ही झुकना, यह सब चारित्र है। वाहरी वाते

तो थोडे साधक की ओर हैं कि नियम अथवा यह बाहरी पूजा, भक्ति जो बनी रहती है तो इतना अन्तरमे लाभ है कि बाहर जो विषयकषाय है उनमे झुकनेका मौका नही रहता इसलिए कारण है। जिस तरह कर्मका क्षय होता है वह तो आत्म स्वरूप का साधन ही है। आत्माके स्वरूपके समीप होना, आत्मस्वरूपका उपयोग होना और आत्मस्वरूपमे स्वय रमते रहना, यह कर्मो के क्षयका कारण है। सो जब उपयोग आत्माकी ओर रहता है तब आत्मा मे जागरण रहता है और जब यह उपयोग बाहरी पदार्थो मे चला जाता है तो वहा माया मे जागरण रहता है, परमार्थका जागरण खत्म हो जाता है। आनन्द आत्मजागरणमे है। दुनिया के प्रायः सब जीव उससे अत्यन्त दूर हैं। इस जीवके साथ जो प्रकृति लगी है उसका परिणाम यह सब दुःख है। स्वभावसे तो जीव आनन्द वाला है, अतः ज्यो ज्यो वाह्यसे निवृत्ति रहे वैसा परिणाम बनता रहे सो ज्ञान कर ।

हे आत्मन् तू किसको अपनी कला दिखाना चाहता है। जो ये दृश्यमान जीव है ये सब दुःखी प्राणी हैं, असहाय प्राणी है। इन्हे कुछ दिखाकर क्या लाभ पावेगा? मोह ससार मे रुलाने वाला है, विपत्ति के सम्बन्धमे खोटी आदत वाला है। जितना खोटापन हो सकता है वह सब ससारी जीवमे पाया जाता है। ऐसे मलीन, खोटे, बिगड़े जगत्के जीवो मे हम कुछ अपनी बात दिखाकर लाभ उठायेगे? ऐसा उनको देखनेसे कोई लाभ नहीं। वे सब अत्यन्त दुःखी है, उनसे मेरी कोई आशा नही। वे मेरी किसी परिणति के स्वामी नहीं, ऐसा विचारकर सब जीवोसे उपेक्षा भाव आना चाहिए और वस्तुओ का स्वरूप ऐसा है कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपसे ही रहता है। उसका सर्वस्व अपने आपमे ही है।

मै ही स्वय अपने आप अपने मे रहता हूँ, अपना जिम्मेदार हूँ, अपना ही परिणाम करने वाला हू, अपनेमे ही सदा रहूगा, इसका अपनेसे ही पूरा पड़ेगा, ऐसा अपने आपको जान, अपने आपमे झुक। ऐसा होने पर आत्मामे जागृति होती है, आत्मामे अनुभव जगता है, स्फुरण होता है। इस स्वरूपमे शक्ति है कि कर्मो का क्षय हो जाय। तो अपने आप इस रूपमे बार-बार धारण कर कि मै ज्ञानमात्र हू, मै जाननमात्र हूँ। जो जाननेका स्वरूप है वह मैं हूँ। अपनेको ही अपने आपमे मान । इतना ही मेरा विकार है, कर्मोदय का विकार है। जो कुछ दुनियामे दीखता है वह सुन्दर दीखता है। जैसे बाहरके दृश्य, आनन्दमय दृश्य, जगलके दृश्य, वाग बगीचोके दृश्य, जहा देखकर कहते है कि यह देखो प्रकृति की सुन्दरता है। वह प्रकृति है क्या, वह प्रकृति कर्म है। एकसौ अड़तालीस प्रकृति का यह कार्य है। बाग बगीचो मे क्या अच्छे फूल हैं, अच्छी पत्तिया है, अच्छे पेड है, सुगन्धित है? यह क्या है? प्रकृति के उदय से, कर्मके उदयसे होने वाली अवस्था है। उसीको प्रकृतिकी सुन्दरता कहते है। प्रकृति की चीजे छल धोखा व बरवाद करने वाली वस्तुयें हैं। यह सव उसी की ही माया है और है क्या? जो अच्छी चीज है वह सताए जाने के लिए है। जगलमे ऐसे भी फूल है जिनमे न रूप है, न गध है, उन्हे कोई नहीं तोड़ता है। गुलावके फूल, देला के फूल, चम्पाके फूल, जो सुगन्ध देते हैं, देखनेमे अच्छे लगते है वे तोड़े जाते हैं। जो प्रकृति सुन्दरता की बातें हैं वे स्वभावको छोडे हैं। ऐसी ही वात पुरुपो की है। ये जगत् के प्राणी स्वय दुःखी है। स्वभाव इत्यादि के लिए जो स्वय असहाय हैं, ससारमे भटकने वाले है उनमे तू क्यो झुकता है? तू स्वय ही ज्ञानानन्दमय

है। इतना तो यहा भी देखा जाता है कि बड़े आदमी से दोस्ती करनेसे गरीब को फायदा कुछ नही रहता है। खर्चा भी गरीबका हो, समय भी उसका जाय, गरीब कभी सभामे आदर नहीं पावेगा । बड़े की मित्रता मे छोटेको लाभ नहीं । फिर दुनिया के बड़े बड़े पदार्थो की ओर झुकने मे जो दुनिया मे बड़े माने जाते है। जैसे धन, वैभव, सोना, चादी, इज्जत इनकी आशामे, वडो की दोस्तीमे अथवा बड़े बननेके सम्बन्ध मे जीवको सुख नहीं मिलेगा । सुख तो केवल आत्मज्ञानसे मिलेगा । सही सवाल एक प्रकारसे हल होता है। गलत सवाल दसो प्रकारसे हल होते है। एक सवाल बोला १० बच्चोके बीच मे। तो जो सवाल सही होगे वह एक प्रकारके होगे और जो गलत होगे वह दसो प्रकार के होगे। उनमे दसो प्रकारकी गल्तिया होगी। इसी प्रकार आनन्दका एक उपाय है, दूसरा नहीं। आनन्द के गलत उपाय तो हजारो है। खा लो, पी लो, मास खालो, बड़ोसे दोस्ती कर लो, मदिरा पी लो, कितने ही तरहके काम है। यह करना है, वह करना है, सर्विस करना है, किन्तु आनन्द का जरा उपाय तो बताओ। आनन्दका सही उपाय केवल एक है। कोई कहे यह सब किए बिना तो गुजर नही चलती । हा भैया ! ठीक कहते हो, गुजारा नही चलता। पर ऐसे ही पड़े रहना क्या सदा के लिए ठीक है? यह तो अपने अधिकारकी ही बात नही। जो मनुष्य होता है वह स्थावर हो जाय तो कुछ बताओ क्या करेगा ? यहाकी तो सब बाते यहा ही रह जाती है। इसी तरह विकल्प करनेसे लाभ नही है। और जैसा ही परिणाम निर्मल होगा वैसा ही फल अच्छा मिलेगा और जैसा ही परिणाम खराब होगा वैसा ही फल बुरा मिलेगा ।

परमात्मा के दर्शन न्याय से होते है। परमात्मा जैसा है उस ही स्वरूप मे दर्शन होगा, और रूपमे नहीं होगा । परमात्मा ज्ञायकस्वरूपमे है, ज्ञानमात्र है। वह ज्ञानमात्र है तो ज्ञानमात्रके रूपमे ही तो दर्शन होगे कि हाथ पैरके रूपमे दर्शन होगे? ज्ञानमात्र अपने आपका अनुभव है वहा भगवानूका दर्शन है। क्योकि भगवान् तो ज्ञानमात्र है। जैसे ज्ञानमात्रके दर्शन मे आत्माका जागरण है वैसा ज्ञानमात्र मै हूँ। मै परमात्मत्वके उपयोग बनाकर उसके दर्शन कर लू। परमात्मा ज्ञानानन्दका पिड है। मै यदि लम्बे चौड़े आकारमे ताकूँ तो परमात्माके दर्शन नहीं होगे। मै परमात्माको किसी भी प्रकार की अवस्थामे देखू तो परमात्माका दर्शन नहीं होगा जबकि केवल चैतन्यस्वरूप, प्रतिभासमात्र, ज्ञानमात्र, ज्ञानस्वरूप अमूर्त चैतन्यभावस्वरूपके दर्शन करू तो परमात्माके प्रगट दर्शन हो स्पष्ट दर्शन हो, उस परमात्माकी भेटसे जो आनन्द मिलता है उस आनन्द मे ही सामर्थ्य है कि भव-भव के सचित कर्म भी स्वयमेव नष्ट हो जाते है पर देखने को सामर्थ्य चाहिए तो वह सामर्थ्य परपदार्थो से हटकर अपने मे आने-से-बढती है और परपदार्थो मे लगने से वह सामर्थ्य नष्ट होती है। इस लिए अगर प्रभुताको रखना है और प्रभुताको बढ़ाना है तो उसका एक उपाय है कि बाहरी पदार्थो से उपयोग हटावे और अपने आपको ज्ञाता दृष्टा बनावे, स्वरूपमे रुचि लगावे । इस आत्माके दर्शन होने मे जागरण रहता है, आश्वासन रहता है, आनन्द बढता है और यदि उस ज्ञानमात्र आत्मा का अनुभव नही है तो लोकव्यवहार मे लगा रहना पड़ता है, वड़ा कष्ट होता है। देखो परको जानना तो सरल है किन्तु कष्ट बहुत है। मान लिया कि यह उसका पुत्र है, यह उसका घर है, यह उसके बच्चे है, पर जो इस तरह बरवादी मिलती है वह तो कष्ट है। गुरु बनाना तो सरल है पर दक्षिणा देना

सरल नहीं है। यह पदार्थ मेरे है– इतना मनमे विकल्प कर लेना तो सरल है किन्तु इतना माननेके फलमे क्या बीतती है सो देख लो। बाहरी पदार्थो मे जितना लगा रहेगा उतनी ही सामर्थ्य इसकी घटती चली जायगी । और बाहरी पदार्थो से जितना अलग हो जायगा उतना ही इस आत्माका बल बढ़ता चला जायेगा । मोही का बल घटता है और निर्मोही बल बढ़ता है। मोह मदिराके क्या परिणाम है? सो जगत्मे देख लो। एक आदमी मदिरा वाले के यहा गया । बोला बढिया शराब दो । उससे कहा– यह ले लो। यह बहुत अच्छी है। कहता है कि सबसे अच्छी दो । उसने कहा – यह ले लो, यह सबसे अच्छी है। इसका प्रमाण क्या? इसका प्रमाण इन १०-२० आदमियोको देख लो। दुकानमे १०-२० आदमी मदिरा पीने वाले बेहोश पड़े थे। इसका ख्याल और प्रमाण कर लो कि यह मदिरा ऐसी है। इस दुनियामे भी मोहमदिरा ऐसी विकट है इस मोहमदिराका नशा देखना है तो देख लो । इन पेड बगैरा स्थावरोको, कीड़े मकोडो को, छोटा कहलाने वालोको, सबको देख लो। यह मोहमदिराका फल है। जगत्मे जितनी तरहके जीव है, ये बेचारे नाना प्रकारके जो जीव बने है तो यह सब उसीका तो फल है। बोलो मोहकी मदिरा चाहिए। यह भव पाया है तो यह सब मोहका फन्दा है यदि इसमे फसना न हो तो मोहसे अलग रहिए। और फिर व्रत, नियम, भगवान् की पूजा आदिकी क्या जरूरत है? परन्तु मोहका फल यह होता है कि स्थावर बन गया, कीड़े मकोडे बन गया, चूहा बिल्ली बन गया। किसे बडा कहा गय? ऐसा ही तो मनुष्य बना हुआ है, इसीसे ही कष्ट हो रहे है। जिनवाणी सरस्वतीका प्रसाद है जो कुछ समय कष्टरहित व्यतीत हो रहा है यदि यह नही है तो रात-दिन क्लेश है। कही स्त्री से कलह है, कहीं पडौसियोसे कलह है तो कही दोस्तोसे कलह है। कितनी ही प्रकार की चिन्ताए है। तो कौन बडा है? बड़ा वह है जिसने अपने परमात्मस्वरूपके दर्शन किये है और जिसके प्रसादसे यह जीव आनन्दमग्न होता है। किसी जीवकी अपनेसे बड़ी अपनी आत्मा ही मिलेगी । किसी जीवकी शरण अपनेको अपनी आत्मामे ही मिलेगी, दूसरोका कोई सहारा नही।

एक स्त्री पुरुप थे। पुरुष कुछ व्यसनमे लग गया था । स्त्रीने बहुत समझाया, परन्तु न माना । स्त्री बोली कि तुम केवल एक ही काम यह कर लो और कुछ न कीजियेगा । एक मूर्ति दी, बोली कि यह भगवान्की मूर्ति है इसकी रोज पूजा कर लिया करो। पूजा करनेमे २० मिनट लगेगे तथा पूजा करके केवल २४ घटे को व्यसन का त्याग कर दिया करो। पुरुप ने स्वीकार कर लिया । वह रोज पूजा करे व २४ घन्टे को व्यसनका त्याग कर दे । १० दिन गुजर गए । एक दिन यह देखा कि एक चूहा आ गया । जो भगवानकी मूर्ति पर से चावल ले गया । उसने देखा कि मूर्ति से तो चूहा बड़ा है। तो चूहेको पूजने लगा । चूहेको जब बिल्लीने डराया तो बिल्लीको बड़ा मानने लगा । बिल्लीको जब कुत्ते ने डराया तो कुत्तेको बडा मानने लगा और यह जानने लगा कि इससे बढकर कुछ नही है, उसकी पूजा करने लगा । एक दिन स्त्री रोटी बना रही थी, रसोईमे कुत्ता घुस गया । स्त्रीने एक बेलन मारा । कुत्ता खूद चिल्लाकर भाग गया । उसने सोचा कि कुत्तेसे स्त्री बडी है। स्त्रीकी पूजा करने लगा । एक दिन आप भोजन करने बैठा । दालमे नमक ज्यादा था । बोला– नमक ज्यादा क्यो पड़ गया । स्त्री बोली– हाय ही है ज्यादा पड गया तो क्या किया जावे? एक सेर पानी दालमे डाल दो । उसने स्त्री के एक

तमाचा मारा । स्त्री रोने लगी अब उसने समझा कि मै सबसे बड़ा हूँ। मै बेकारमे दुनियामे भटकता रहा । मै आप ही अपने बलसे दुनियाका काम निकाल सकूगा । अतः जिस ज्ञानमात्र आत्मापर दृष्टि होनेपर यह आत्मा जगती है और जिसपर दृष्टि नही रहती तो लोकव्यवहारमे जागरण रहता है। वह मै आत्मा ज्ञानमात्र हूँ। मै आत्मा जो कि ' ज्ञानमात्र हू' उसकी उपासना कर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

अहस्वं जन्ममृत्यादि सुख दुःखं नयाम्यहम्।
मुक्तौ नेता गुरुस्तस्मात् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।७-३१।।

अर्थ– मैं अपनेको जन्म मरण आदि सुख दुःख को प्राप्त कराता हू और मुक्ति में ले जानेवाला भी मैं हूं, इस कारण मैं ही अपना गुरु हू सो अब अपनेमें अपने लिये स्वय सुखी होऊं ।

मेरा जोकुछ होता है उसका मै ही जिम्मेदार हू। और अब तक जो कुछ मेरा हुआ है उसका जिम्मेदार मै था और भविष्य मे भी जो कुछ होगा उसका भी जिम्मेदार मै ही रहूँगा । जो भी जन्म, मरण, सुख, दुःख इत्यादि मुझे सताया करते है उनका करने वाला मै ही हूँ । तभी तो अन्य लोग भी ऐसा कहते है कि भगवानकी लीला विचित्र है। भगवान की जो इच्छा होती हैं। उसके अनुकूल सारे काम अपने आप बन जाते है - एक बात। दूसरी बात यह है कि जब चर्चा आती है कि भाई वह ईश्वर उपादानकर्ता है कि निमित्तकर्ता है । यदि उपादानकर्ता है तो जैसा चेतन ईश्वर है तैसी ही सृष्टि होनी चाहिए, फिर अचेतन सृष्टि भी क्यो होती है? यदि ईश्वर निमित्तकर्त्ता है तो यह सब उपादान पहलेसे ही हाजिर हैं। इन सब पदार्थो मे ईश्वरने भूलसे क्या किया ? जैसे ये दो प्रश्न ईश्वरके लिए कहे जाते हैं कि ईश्वर उपादानकर्ता है या निमित्तकर्ता है? तो उसका उत्तर होता है कि वह उपादानकर्ता भी है और निमित्तकर्ता भी है। यह बात तो यहा रखो। इस निजनाथकी ओर आवो। यह तो सारी सृष्टिके लिए जन्ममरण करना, सुख दुःख करना, शरीर धारण करना, सबके यह उपादानकर्ता भी है। कितनी ही सृष्टिया इसके अन्दर ऐसी है जैसे कषाय की सृष्टि, योग की सृष्टि, ज्ञानकी सृष्टि, दर्शन, लेश्या। कितनी ही सृष्टिया ऐसी है जिनका उपादानकर्ता यह प्रभु ही है याने जीव ही है. और कितनी ही सृष्टिया ऐसी है कि जिनका निमित्तकर्ता यह जीव उपादान नहीं है। पर जीवके निमित्तसे पुद्गल उपादानमे होते हैं।

इसकी सृष्टिका यह जीव निमित्तकर्ता है और उपादानकर्ता भी है। हम जन्म मरण, सुख दुःख आदि जो करते है उन सबमे ले जाने वाला मै ही तो हूँ, यह दूसरी बात है। अब पहली बात पर आवो। जैसे ईश्वर वादी कहते है कि ईश्वरकी इच्छा हो तो तुरन्त काम हो जाय और उसे कुछ नहीं करना पड़ता है। यही बात देखो कि जो इस प्रकार के परिणाम करता है तो सारे काम अपने आप होते चले जाते है। यह प्रभु केवल परिणाम करता है। अभी इसे क्या बनना है कि सशरीर वाला बनना है, मनुष्य या देव बनना है। यह सब अपने आपहो रहा है। जीवो ने तो केवल परिणाम भर किया । तो मैं ही अपने आपको जाननेमे ले जाने वाला हूँ, यह तो हुई संसारकी बात । मुक्तिमे भी ले जाने वाला मैं हूँ, इस कारण मेरा गुरु मै ही हूँ।

इष्टोपदेश मे लिखा है कि –

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञायकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ॥

अपने ही मे आप सत्की इच्छा करता है। और अपने अभीष्टको ही उससे पहुचाता है। स्वय ही हितमे प्रयोक्ता होता है। इस कारण आत्माका गुरु आत्मा ही है। यह सब मायाजाल है। जो कुछ तो जीवके निमित्तसे पुद्गल उपादानमे होते है और कुछ पुद्गलके निमित्तसे जीव उपादानमे होते हैं। बड़े विकट मायाजाल है–इच्छा के परिणाम, मोहके परिणाम। परिणाम करने मे बहुत सुहावना लगता है, और इतना ही नहीं इस रागसे अधा हो जाता है। और क्या है कि इन्द्रिय, विवेक, मन किसी भी उपायसे इसको कुछ सूझता नही है आखका अजन तो आखसे ही नही सूझता है। किन्तु मोहके अधेको किसी भी तरह सूझता नहीं है। ये सुहावने लगते अवश्य है मगर विवेक तो कर । मनको नहीं सभाला, ज्ञानको नही जगाया तो ये सब उसको दुःखी करने के लिए है। यह ससार क्यो बना हुआ है? **'मोह, राग, रुष, दुःख की खान।'** मोह, राग, द्वेष ही दुःखकी खान है। **"निजको निज और परको पर जान।"** मैं ही अपने को दुःखी करता हूँ, और मै ही अपनेको सुखी करता हूँ। कोई उसके दुःख सुख को करने वाला नही।

एक कथानक है कि एक अतृपुण्य नामका राजपुत्र था। उसने पूर्वजन्ममे कोई पुण्य नहीं किया था । सदैव देवताओ, साधुवोका अपमान ही किया । ऐसा जीव राजाके यहा पैदा हुआ । पैदा होते ही राज्य मे क्षीणता आ गयी । पब्लिकको दुःख हुआ । पब्लिक ने राजा से कहा कि आपके इस पुत्रका जन्म जबसे हुआ महाराज तबसे प्रजामे दुःख छा गया । मतलब यह है कि उस लड़के को राज्यसे निकाल दिया जाय। पर मा को पुत्र प्यारा होता है। मा भी लडके के साथ मे चली गयी । महाराजने गाड़ियो सामान लडके को दे दिया । खूव धन दौलत लड़के को दे दी जिससे कि बच्चा हमारा दुःखी न हो । परतु दुर्भाग्यवश अनाज मार्गमे विखरता गया । सारा खत्म हो गया । जब उदय पापका आता है तब सब समागम दुःखका कारण वन जाते है, और जव पुण्यका उदय आता है तब आपको पता नही कि कहासे क्या आता है ? कैसे चला आता है। यह सब अपने आप होता है। पर उन सबका जो कारण है वह मै ही खुद हूँ, परिणाम यदि सही है तो मेरा भवितव्य अच्छा है और यदि परिणाम मेरा अशुभ है तो भवितव्य भी खराब है। मै ही तो गुरु हूँ। जैसा मै अपनेको चाहूँ वैसा मै अपनेको ले जाऊ । ऐसी दृष्टिया ३ होती हैं- एक शुभदृष्टि, दूसरी अशुभदृष्टि और तीसरी शुद्ध दृष्टि। इन्ही मे यह कमाल है कि सारी सृष्टिया होती रहती है।

मनुष्य मै हूँ, अमुक नाम वाला हूँ। रागद्वेप जो कुछ मै करता हूँ ठीक करता हू। मेरे जो विचार है वह ठीक हैं। अपने आपको मैं जन्मसे विचारता चला आ रहा हू, यह सव ठीक है। ये अशुभ दृष्टियोका फल पापको वनाना है। पाप वर्तमानमे भी आकुलित करता है और भविष्यमे भी आकुलित करेगा । शुभदृष्टि क्या है? भगवान का गुणानुवाद करना, भक्ति करना, पूजा करना, जीवो को दयाके भावसे देखना यह सारी शुभ दृष्टिया है। इनका फल सम्पत्ति, वैभव जो कुछ प्राप्त हो, हितकर कुछ नहीं है।

मै आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू । मै अपने आप क्या हू? मै केवल चैतन्यमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप हू, जानने वाला हू। चैतन्यस्वरूप एकवस्तु हू, ज्ञानमात्र हू। जिसकी जाननेकी ही काया है। ज्ञानघन हू । मै ज्ञानसे अतिरिक्त और कुछ नही हूँ। ऐसी मै चेतना हूँ। ऐसी दृष्टि को शुद्ध दृष्टि कहते है। इस शरीर के अतिरिक्त मै जीव केवल ज्ञानस्वरूप हू । यही मै आत्मा एकवस्तु हू । और मैं कुछ नही हू। ऐसी दृष्टिको शुद्धदृष्टि कहते है। आदमी सोता है तो सोतेमे भी जागता है। सोतेमे भी विकल्प होता है। दिनकी बाते भी कभी-कभी झलक जाया करती है ऐसी दृष्टि ज्ञानकी शोधी हुई है जैसी अपनी दृष्टि की है वैसी दृष्टि बनाता है। देखो जैसे नामकी वासना दृढ़ है, बड़ी भीड़मे बैठा है और नाम कोई ले लो तो तुरन्त चौकन्ना हो जाता है। कैसा नामके प्रति अनुराग है। और उस नामका शब्द कितना सुहावना लगता है। कही नाम लिख दे, कहीं नाम बोल दे तो उससे कितना अनुराग हो जाता है? दूसरो को वश मे करनेकी सबसे बड़ी दवाई यह है उसके नामकी प्रशसा कर दे, उसका नाम लिख दे, नाम बता दे, यो कहिए कि जिसे चाहे वश कर ले । जीवको वशकर ले, दुनियाको वश करे, जो बुरा है उसको वश कर ले यह है क्या? वशीकरण मत्र नामकी कीर्ति गाले, नाम लिख दे, नाम ले ले । इनमे सब वश हो जायेगे । यह डायरेक्ट वशीकरण मत्र है । यह महाविष है । यह इसलिए विष है कि इसमे सब प्रभुता नष्ट हो जाती है । सब जीवो मे मिलाजुला ससार मे एक चैतन्य वस्तु है, मेरा इसका नाम ही नहीं है और न मै दुनिया के अन्य जीवो से कोई खास हू । इसलिए नामरहित शुद्ध अपने आप को देख, यही ज्ञान है, यही शुद्धदृष्टि है । जहा अपने को नाम वाला समझा बस समझो कि ससार मे रुलने का साधन बना लिया । तभी तो शुद्धदर्शन मे नाम को पहिले रखा है । सर्व आपदाओ का मूल नामकरण है।

परमार्थ से मै नामरहित हूँ शुद्ध हूँ, सबसे निराला हूँ, अकेला हू, चैतन्यमात्र हूँ, इसलिए उसकी जो उपासना करेगा दृष्टि पवित्र हो जायेगी और शुद्धदृष्टि बढ़ती चली जायेगी और उस दृष्टि की दृष्टि है, मोक्ष का होना और पर्याय की दृष्टि है ससार मे खोना, जन्म-मरण बना रहना, सुख दु ख बना रहना तो देखो सुख दु ख आदि मे मै ही अपने को ले जाता हू, मैं ही अपने को प्रकाश मे ले जाता हू । इसलिए मै अपना गुरु स्वय ही हू और दूसरा मेरा गुरु कोई नहीं है । मेरा मार्ग बनाने वाला मै ही हू और कोई दूसरा नहीं है, इस विषय कषायकी फिसल रपट कहिए, ऐसी विचित्र है कि जरा भी मनकी ढिलाई की कि वह बढ़ती चली जायेगी । जैसे बरसात मे कीचड़ वाली सडक मे असावधनी से चले तो जरा भी फिसलते है तो फिसलते ही चले जाते है । इसी तरह धनके आकर्षण मे, नाम मे ,यश मे, इच्छा मे, परिवार के राग मे झुके , शिथिल बने, इस दुनिया मे ठीक से रहना, शान से रहना, फिर देखा जायेगा, बडो से सम्बन्ध हो, बडा काम करना है फिर अन्त मे देखा जायेगा, अपने को सभाल ले जाऊगा-ऐसी कुछ ढीलकी कि ढिलाई की तरफ स्वय बढता चला जाता है।

मै आत्मा धर्ममय हूँ ,इसलिए प्रतिदिन धर्म की दृष्टि होना चाहिए । जीवन के रोज के २४ घन्टो मे धर्म का हिस्सा होना चाहिए । जीवन मे सब आयु की बाट नही करो कि हम ८० वर्ष तक जीवेंगे। सो ७० वर्ष मनमाने चले, फिर १० वर्ष अन्त मे धर्म देख लेंगे । तू २४ घण्टो मे ३ घण्टे तो धर्म का

काम कर । इतना समय यदि धर्म कार्य मे जायेगा तो शान्ति का मार्ग मिलता रहेगा । कहीं व्यापारिक कामो मे फसे हुए है, कोई भी स्थिति मे अपने को इन २४ घण्टो के बीच धर्मपालन का समय देना चाहिए और अगर आयु मे ही समय का विभाग करना है तो पहला काल धर्म का लाये । ५ साल खूब धर्म कर लिया जाय आत्मतत्त्व का मर्म ही समझ लिया जाय तो क्या है? कमाने को जिन्दगी बहुत है फिर देख लेना कमाने की बात । अगर आयु के बाट मे धर्म का समय देते हो तो पहले धर्म मार्ग को दो। एक कथा है कि विधाता ने कहा एक जीव से कि बालिग होने के बाद तुम्हारी आयु मे एक दो वर्ष तो देता हूँ तुम्हारे सुख के लिए , मौज के लिए,सम्पदा के लिए, धर्म के लिए-बाकी ५०, ५५ वर्ष वह देगे तुम्हारे दु ख के लिए। अब तुम्हारी मर्जी हो तो एक दो वर्ष चाहे पहिले ले लो चाहे आखिरी ले लो, दस वर्ष के बाद मे वह आदमी बालिग हो गया । १८ वर्ष का हो गया तब वह बहुत सा धन रोज कमाता,उसने सोचा कि एक दो वर्षमे सब सुख कर ले सबसे ठीक बोलेगे, सबके साथ ठीक तरह से रहेगे । उसने खूब धर्म भी किया । मगर यह जाना कि आगे तो वर्ष खोटे आवेगे तो जो कुछ उत्तम हो वह सब जल्दी कर लेना । उसने २ वर्ष धर्म मे बिताए तो भविष्य के पाप भी कट जायेगे। सो भैया ! यदि यह सोचो कि अभी तो ५०, ६०, वर्ष तो व्यर्थ मे जा ही रहे है, सारा समय तो यू ही खत्म हो जायेगा सो अपना सारे जीवन का कुछ आगे पीछे का विभाग न करके २४ घटे मे अपना कम से कम तीन घण्टे का समय धर्म साधना मे लगाना चाहिए । एक घटा ज्ञान आराधना मे गया और कुछ समय भक्ति मे गया, कुछ समय साधु जनो की सेवा मे गया । २४ घण्टे मे कम से कम तीन घण्टे का समय धर्मसाधना मे व्यतीत होना चाहिए । कोई कहे कि धर्म साधना कैसी? सो कहते है ।

धर्मसाधना का मतलब यह नही कि कोई सोचे मै मूर्तिपूजा करता हू और मुझे ज्ञान से, साधुओ से, जनसेवा से मतलब है तो यही भले समझ ले कि मैने धर्म कर लिया है, किन्तु धर्म की प्रवृति सव अगो मे होती है । मै अपने को जन्म मे ले जाने वाला, मरण मे ले जाने वाला,दु ख और सुख मे ले जाने वाला हू । मेरा गुरु मैं ही हू, और मेरा गुरु कोई नही है ऐसा जानकर कुछ अपने मे आना चाहिए। इस जगत् मे यह तो होता ही रहा है कि दूसरे पदार्थ उसका कुछ करने मे समर्थ नहीं होते, तब किसी को उसकी आशा ही नहीं रखना चाहिए । कारण यह है कि दूसरो की परिणति से इसमे कुछ बढता नही है, यह तो अपने ही परिणाम का फल है । दूसरे लोग भी उसके किसी काम मे सहायक हो जाते हैं। यह अपने ही परिणाम की कला है । कल एक प्रश्न मे आया था निमित्त और उपादान । निमित्त कुछ करता है कि नही ? निमित्त और उपादान किसे कहते है ? उपादान तो वह है कि जिसमे परिणति होती है, जिसमे कार्य करे उसको उपादान कहते है । और जिस दूसरी चीज के बिना कार्य न बन सकता हो उस दूसरी चीज को निमित्त कहते है । यहा तो उपादान निमित्त के सम्बन्ध मे ऐसा देखे कि वह दूसरी चीज जो निमित्त है, क्या उसकी कोई परिणति उपादान मे आ गयी? उसका क्षेत्र ,काल, भाव कुछ भी तो उपादान के अन्दर नहा गया । और फिर भी हैरानी इस वात की है कि निमित्त की उपस्थिति बिना उपादान मे कोई विभाव कार्य नही हो सका । ये समस्याये सामने है कि निमित्त करता कुछ नहीं परन्तु निमित्त के विना कुछ होता नहीं। यह तो कैसी विचित्र वात है ।

फलित क्या कि यह सब उपादान की कलाये हैं, यह सब उपादान की ही योग्यताये है कि यह उपादान ऐसे पदार्थो को सामने पाकर खुद ही खुद अपने आप मे रूप मे ऐसा बन जाता है । जैसे इस चबूतरे पर हम बैठे तो इस बैठने का उपादान कौन है ? हम ही हैं । हम के मायने पिडोला,हाथ, पैर, बिस्तर, बण्डल यह पैर मुड़े आगे ऐसे बैठे तो इसके उपादान हम ही है । पर इस चबूतरे को निमित्त पाकर मैने सब कुछ कर लिया, इस चबूतरे ने कुछ नहीं किया । ऐसी कोई जबरदस्ती की है या कोई कसूर किया है । पर मैने ही अपनी इच्छा से पैर के अनुसार मै स्वय ही निमित्त पाकर अपने आप ही इस पर बैठ गया । यह समझना चाहिये कि जितने भी विषय होते हैं जन्म के, मरण के, सुख के, दु ख के उन सब मे ले जाने वाला मै हूँ । इन सबमे सारी अपनी प्रवृत्तियो को मैं ही करने वाला हूँ, दूसरा कोई नहीं है। मै दु खी होता हूँ तो मुझे दुःखी करने वाला मै ही हूँ। मै जब सुखी होता हूँ तो मेरे सुख का करने वाला मै ही हूँ। मै यदि गड़बड़ करता हूँ तो मेरा गड़बड करने वाला मै ही हूँ और मोक्ष मार्ग लगने वाला भी मै ही हूँ। दूसरो का न अपराध सोचे और न एहसान सोचे। क्योकि दूसरे पदार्थो से मेरा कुछ आता जाता नही है। यह तो उसके ही कर्म से उसके ही ज्ञान से आया है। मेरे घर मे १० आदमी हैं पर यहा मन बिगड़ा है यदि वह दूसरो को ऐसे बैठा हुआ देख ले तो वह सोचता है कि यह मेरे प्रति कुछ सोचता है। मेरी ओर यह कैसे बैठा? हाथ पैर तो उसके कहीं जा नहीं सकते वह तो रहेगे ही दूसरा विकल्प करके दुःखी होता है। अपने आप दूसरा विकल्प करके दुःखी हो रहा है। सोचो कि यह स्वय गिरा है। सो दुःख हो गया। दूसरा कोई दुःख नही करता। मन्दिर मे जो शुरूमे विचार करता है और देखता है कि आज वह भगवान् बहुत प्रसन्न हैं। मालूम होता है कि अब भगवान् बोलना चाहते हैं। जैसा परिणाम किया वैसा दुनियाको देखता है। उसमे हमारा जो भी परिणमन होता है उसका करने वाला मै ही हूँ अतः परके कर्तव्यका भ्रम छोड़कर अपने मे ही विश्राम करके अपने आप ही सुखी होऊ।

देहे बुद्ध्या वपुः स्वस्य बुद्ध्या स्वः प्राप्यते मया।
ज्ञानमात्रमतिर्मेऽस्तु स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-३२।।

अर्थ- "देहमें आत्मा या शरीर मैं हू," की बुद्धि करने से मेरे द्वारा शरीर प्राप्त किया जावेगा, और निज आत्मा में निज आत्माकी बुद्धि करने से निज आत्मा प्राप्त होगा इसलिये मेरी ज्ञानमात्र बुद्धि हो और अपनेमें अपने लिये स्वय सुखी होऊ ।

दुनियावी है। सबसे बड़ा गजब तो यह है कि ऐसी आनन्दमय आत्मामे अपनी दृष्टि न रखकर बाहरी पदार्थो मे दृष्टि लगाई है– यह गजब है। बाकी कुछ और नुक्सान नहीं है। जिसे खोटा समझा वे पदार्थ हैं, परिणमते है, परिणमनशील है। उनका काम हो रहा है। उनके होने से नुक्सान नही है। नुक्सान तो यह होगा कि हम अपनी बेवकूफी मात्रसे अपने आपमे अनन्त ससार बनाये रहे। यह गजब हो गया। भैया! सिर्फ ज्ञान ही तो काम कर रहा है। चिन्ता कुछ न कर, वस्तुओ का तू कुछ न कर, उनको ठीक तरहसे समझ ले। केवल समझसे आपकी दृष्टि होती है। बाहरी चीजे मेरी दशा के लिए कुछ नहीं है। वे किसी भी तरह से मेरे लिये जिम्मेदार नहीं हैं। जो आप समझते हैं उसी पर सुख दुःख निर्भर है केवल इतना समझना कि समझकी शैली मे मेरा शरीर बनाना निर्भर है। आना-जाना कुछ नहीं किन्हीं पदार्थो से वास्ता कुछ नहीं। मगर तू उन्हे अपना न माने तो लाभ है। केवल यह जीव समझता है। समझने के अलावा और कुछ नहीं करता है। बस इसी समझने पर ही हमारे शरीरका बनना, न बनना निर्भर है। यह सारा शरीर दुःखो की जड़ है। सुख दुःख जन्म मरण जो कुछ है वे शरीर के ही द्वारा होते है।

इस तरह यह सिद्ध है कि दुःखोका कारण शरीर है। दुःखोका कारण मिटे, इसमे प्रसन्न हो या दुःखो का कारण न मिटे इसमे प्रसन्न हो। दुःखो का कारण मिटे ऐसी बात हमारे मे उठती ही नहीं है। ससारी जीव दुःखका कारण जो शरीर है उसे ही चाहता है। यह वर्तमान मे सोच लिया जाता है। शरीर न मिटे यह जल्दी सोच लोगे। ऐसा सोचो कि यह न रहे तो ठीक ही रहेगा। पर यह सब बाते हमारे किसी की समझ मे नहीं आती । केवल वचनो मे हमारी बाते चलती है। उनसे काम नहीं बनेगा । यह उपयोग सस्कार मे बने तो काम हो । जब मेरा कुछ जगत् मे है ही नहीं, न शरीर रहता है, न परिवार रहता है, न धन दौलत रहती है। मेरा तो केवल ज्ञान ही मेरा है। इसीसे मेरा पूरा पड़ेगा। केवल एक निजसे दृष्टि लगी तो अपने हाथ सब कुछ है। वाह्य दृष्टि न रहे तो शाति सहज ही है। सब कुछ मुफ्त मे मिल रहा है। कोई ऐसा यदि सोच ले तो समझो कि उसे सव कुछ मिल गया है। यह पदार्थ सब अपनी-अपनी सत्तामे है। एकका दूसरेमे अत्यन्त अभाव है। एक दूसरेका कुछ भी नहीं करता है। सभी अपने अपनेमे जुदा रहते हैं। एक का दूसरे मे अत्यन्त अभाव है। एकका दूसरेसे कोई सम्बन्ध नही है। सो चेतन पदार्थो मे सब अपना अपना ईमान चला रहे हैं। पर हम है कुछ मानते है कुछ चलते है।

उनकी यह बात अचेतन मे नही पायी जाती है। वे अपनी सत्ता से ईमान पर निर्भर है। पर यह भगवान् स्वरूप चैतन्य प्रकृति के सम्बन्ध मे अपने ईमान को खो बेठा है।सबमे सम्यक् गुण और चारित्र गुण विद्यमान है। यह मुख्य दो गुण चेतना वाले तो है चेतन नही है। सम्यक् चेतन वाला गुण नही है, जानने वाला गुण नहीं है। यह दृष्टि नहीं जानी कि चेतनमे जितना गुण है वह चेतन ही रहे। यहा तो कार्य अपेक्षाकृत कह रहे हैं आत्मा मे अनेक गुण है। जिसमे चेतना वाले दो गुण हैं। ज्ञान दर्शन तथा इसके अलावा अन्य गुण होते हैं वे चेतन नहीं। सो भैया! अचेतन प्रकृति सगसे क्या चारित्र मे बिगाड़ होता है?

यह भी ईमानदारी की ही बात है कि ये रागद्वेष उपाधिवश अचेतन गुणके विकार है। ईमानदारी छोड़ दी, ईमानदारी छोड़ने का नाम मिथ्यात्व है। अचेतन गुण बिगड़ते है, विपरीत होते है। यह सब होती है न्याय की बात । पर उनमे राग हो जाना यह बेईमानी है। रागद्वेष भावो को अपने स्वरूप मे बैठाता है, यह बेईमानी है। और फिर इस जगत्मे दीखने वाला जो धन है, वैभव है, परिवार है उनको अपना मानना यह तो बेईमानी है ही। अपने पर अन्याय है, अपने आपको जगत्मे रुलाते रहने का उपाय है उसीमे यह शरीर है। वह शरीर भिन्न है, दुःख का कारण है, इसे जो अपने मे मिलाता है वह बेईमान होता है।

जो पवित्र है वह मै हूँ ऐसी आत्मबुद्धि को देह मे आत्मबुद्धि करना यह बेईमानी है, अन्याय है, पाप है और मोह है। इस पाप के करने से क्या होगा कि दुःख का कारण यह शरीर मिलता ही रहेगा। जैसे किसी लड़केसे प्यार नही है, कदाचित् वह एक ओर से भूलग ऐसी चीज माग बैठे जिसमे कोई भी सार नही है या जिसे अलग डालना चाहना था वही मागे तो उसके देने मे झिझक नही होती है। इसी तरह यह ससारी जीव एक असार चीजको माग बैठा। शरीरको जीव माग बैठा तो इसके देनेमे कोई झिझक नही होती है। ले जाओ, लेजाओ, ससार मे जाकर खूब जन्म मरण करो। यह इसका फल है तो शरीर मिलता जायगा । इस शरीर मे आत्मबुद्धि करने से यह शरीर मिल तो जायगा तो दुःख बढ़ते ही चले जायेगे। जैसे जैसे भव मे जायगा उसे उसी भव मे समागम दुःख का मिलेगा और उसी मे राग करके अपना समय निकालता रहेगा। यहा तो यह समागम चल रहा है कि इस राग मे कुछ समय गुजर रहा है पर यह सब अन्तमे न होगा। अन्तमे मरकर ऐसी दुनियामे वह कीडे मकोड़े बन गया तो फिर क्या बस चल पावेगा? अब तो दुःख मेटनेका उपाय जल्दी बन जायगा। अगर सुखी रहना है तो मोह न करो और सम्यक्ज्ञानकी ओर दृष्टि दो, सम्यक्ज्ञानमे अपना समय दो। देखो तो मै तो केवल ज्ञानमात्र हूँ, पर अपने मे स्वरूपदृष्टि न देकर दूसरे पदार्थो मे आ गया हूँ। फल उसका क्लेश है।

हे प्रभु तू तो आनन्दघन है, अतः आनन्द विराजमान है, प्रकाशवान है। इसको वही देख सकता है। जिसकी मोहपर विजय है। जिसको पर्याय मे उपयोग नही है वह अपने आपमे विराजमान प्रभु को निरख सकता है। जो पर्याय मे आत्मबुद्धि करता है उसको भगवानके दर्शन नहीं होगे। वह दु ख के जजाल मे ही पड़ा रहेगा, यहा पर प्रभु की भेट व शरीर का मिलन दोनो मुफ्त मिलते है। पसन्द कर लो क्या चाहिए? यह एक ऐसा दुर्लभ तत्व है तथा कैसा मुफ्त का तत्व है? तुम्हारी इच्छा हो तो तुरन्त मिल जाय, देर नहीं लगेगी। जरा भी इच्छा हो तुरन्त मिल जाय। इसमे जरा भी परेशानी नही। जैसे जलपूर्ण देशोमे और बरसात के समय मे जगह जगह पानी भरा होता है। वहा पानी मिलना कितना सरल है। उससे भी अधिक अपने भगवान की भेट सरल है। बिजली के बटन दबाने से बिजली जलती है, उसमे तो अधिक समय लगता है। एक सेकेन्डका हजारवा हिस्सा भी नहीं लगेगा भगवान मिल जायेगे, परन्तु शर्त लेने की बात है। भीतर से ज्ञान विज्ञान कर लेने की बात है। एक साथ जगत्के सब पदार्थो से अपनेको अलग कर लो। यह सब कुछ भी मै नही हूँ। मै तो एक ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। एक साथ सबको अलग

मानकर क्रम से मान करके लक्ष्य नहीं मिलेगा। इसे कल अलग कर देगे, इसे दो चार साल बादमे अलग कर देगे। ऐसा मत करो सबको एक साथ अलग कर दो उपयोग मे। मै सब कुछ स्वय हूँ। इस जगत् मे कोई भी तत्व मेरा नहीं है। ऐसा निश्चित करके भगवान से भेट कीजिए अन्य कोई भी उपाय नहीं है। वर्षो कोई उपाय कीजिए और यदि किसी दिन कोई एकत्वदृष्टि का उपाय समझ जाओ तो अपने आपको कुछ अकेला अनुभव करो, भगवानसे भेट हो जायगी। भगवान् बाहर से आकर नहीं मिलेगा जो बाहर से आकर खुश कर दे। बहुत बहुत यत्न करके कोई भगवानको खुश कर ले सो नहीं होगा। कोई दूसरा भगवान् खुश नहीं होगा, अन्य और कोई खुश नही होगा, मेरा प्रभु ही प्रसन्न होगा। मेरे प्रभु की प्रसन्नता के बिना काम नहीं बनेगा। मेरा प्रभु ही प्रसन्न होगा । पहले प्रभुके सामने तो आओ, अपने सामने ही आने मे प्रभु का सामना हो जायगा। तुम्हारा यह प्रभु दयालु है। इतना सरल है, इतना भोला भाला है कि जरा भी सामने आओ तो सब कुशल कर देगा,सब माफ कर देगा। प्रतिकमण मे आता है कि मेरा पाप ऐसे मिथ्या होता है। जहा चैतन्य चमत्कारमात्र निष्पाप स्वभाव को देखा वहा अन्य बाते मिथ्या हो जाती है। इस अपने प्रभु के सामने आवो दुष्कृत माफ हो जावेगे। अपने प्रभुके सामने आने का मतलब अपने आपको ऐसा अनुभव करो कि मै प्रभु का स्वरूप हू। शुद्ध ज्ञानमात्र चैतन्यमात्र, ज्ञायकस्वरूप इसका स्वभाव अपने आपको अनुभव हो तो यह प्रभु के सामने आना हुआ। सामना होनेपर वह अपना दुष्कृत माफ हो जाता है। कैसे मिथ्या हो जाता है? सम्यक् बढ़ा तो पाप तुरन्त मिथ्या हो गया। वह मै नहीं था, वह पाप मै नहीं था। वह मेरा स्वरूप नहीं था। वह तो प्रकृति के विकार का खेल था। मै तो सदा ज्ञानमात्र हूँ। ऐसी बुद्धि बनाना प्रभु से भेट करना एक ही बात है। ज्ञानमात्र मै हूँ। ऐसी बुद्धि बनावो। इन सब बातोको एक साथ भूल जावो। मै अमूर्ती हूँ, शरीर वाला हूँ, सम्प्रदाय वाला हूँ, इतने धन वाला हूँ, ऐसी दुकान वाला हूँ,ऐसा जानने व ऐसा सुनने वाला हूँ, –यह भाव मिथ्या है। मुझमे यह सब बिल्कुल नहीं है। ऐसा सब कुछ नही है। यह अनुभव लाओ कि मै ज्ञानमात्र हूँ। जब यह अनुभव होगा तब समझो कि भगवानका सामना हो गया । सब हितमय हो जायेगे।

मोक्षका मार्ग सामने आयेगा। ज्ञानमय आत्मस्वरूप का अनुभव कर बाहरी पदार्थो मे से निकट सम्बन्ध शरीर का बना रहता है। इसकी वुद्धि से किसी को गाली दे दिया । शरीर मे है आत्मबुद्धि, सो उसे बुरा लग गया । क्यो लग गया? शरीर को तो आत्मा माना था। यह आत्मा तो हवासे भी पतला है, आत्मा पानीसे भी पतला है, परमाणु से भी पतला है। यह पतला ही नहीं है यह एक अमूर्तिक भावमात्र पदार्थ है। इसे गाली नहीं लगती। अब अपने स्वरूपकी दृष्टि छोड़कर अन्य पदार्थो मे दृष्टि लगाएगा तभी दुःखी होगा। और जब अन्य पदार्थो मे दृष्टि न लगाकर अपने स्वरूपमे दृष्टि लगायेगा तो दुःखी नहीं होगा । शरीरके ही हिस्से जिन्हे मोही अपना कहता कि यह मेरा बाप है, यह मेरी बुआ है यह मेरी मौसी है, यह मेरी सास है– यह सब सारे शरीरके नाते हैं, कुछ नहीं है। नाते शरीर से ही हैं। यह शरीर जिस शरीर के निमित्त से हुआ वह शरीर बाप है। दूसरा शरीर भी उसी निमित्त से हुआ वह भाई बहिन हैं। जितने रिश्तेदार हैं। शरीरके सम्बधसे ही है। इस शरीरको पैदा करने वाली मा है, वह जहा से उत्पन्न हुई वहीं से जो अन्य शरीर उत्पन्न हुआ, वह मौसी है, मामा है।

सारे नाते शरीर के साथ हैं। मैं आत्मा सबसे निराला हूँ, ज्ञानमात्र हूँ विशुद्ध हूँ। जगत् के मायाजाल से हटकर अपने आपमे परिणाम करके विश्राम करनेको जाते है। जो इनका साथ करेगा सो पार होगा। जो नहीं करेगा उसको हित नही मिलेगा। शरीर मे आत्मबुद्धि जो करे तो उसको शरीर मिलता चला जायेगा । और यदि आत्मा मे आत्मबुद्धि करके ज्ञानमात्र यह आत्मा है तो ज्ञान मात्र यह आत्मा मिलेगा और शरीर से सब छूट जायगा। इन सबकी अवस्था करने वाला मै हूँ। यह शरीर रहे या मुक्ति हो इन सबका जिम्मेदार मै हूँ, मै ही सृष्टि करता हूँ, अन्य जीव कर्म भी व्यवस्था ही नही करते । यद्यपि शरीर अत्यन्त भिन्न है तो भी शरीरका मिलते रहना आनन्द होना आपके परिणाम पर निर्भर है, जब केवल बुद्धिमात्र से, समझने भरसे, जानने मात्रसे इन दोनो की प्राप्ति होती है। तो शरीरकी प्राप्ति कर लो या भगवान्स्वरूपकी प्राप्ति कर लो । जिनको आना हो आवे। पार बना हुआ है । केवल अपने सोचने से ही अपने प्रभु से मिल सकते है। यह आत्मा अपने को समझने पर मिलता है। तब इसके आगे और क्या चाहिए? कितना बड़ा अवसर प्राप्त है कि जिसकी उपमा नहीं दी जा सकती है। अपने आपकी महत्ता तब मालूम होती है जब अपने से छोटो को देखो। यदि १० रु० हैं और महत्ता जानना चाहते हो तो भिखारियो के बीचमे घूमो। सबके देखने बाद अपनी स्थिति का सन्तोष होगा। अब जरा ससार के सब जीवो को देखो, स्थावर कैसे है, मकौड़े कैसे है? खोटे मनुष्य, खोटी जाति के, खोटे कुलके ये सब कैसे है? जरा भी ससार मे दृष्टि तो डालकर देखो तो अपने वैभवका पता चलेगा। जिससे सदा के लिए लाभ मिले, ऐसा करो जिससे क्लेश मिटे सदाके लिए अपने आपको ज्ञानमात्र स्वय मानकर अपने आपमे रमकर आपमे स्वय सुखी होओ।

महान् स्वभ्रातिजः क्लेशो भ्रांतिनाशेन नश्यति।
यथात्म्य श्रद्धे तस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ॥५-३३॥

अर्थ- अपने भ्रमसे उत्पन्न हुआ क्लेश, भ्रमके विनाशसे नष्ट होगा, इसलिये मै यथार्थ स्वरूपकी श्रद्धा करू, और अपने मे अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

स्वय बनाया है और हम ही इस भ्रम को नष्ट करेगे तो यह क्लेश नष्ट हो सकते है अन्यथा नहीं होगे। जैसे एक उदाहरण लो कि एक करोड़पति अपनी हवेली मे दोपहर मे पड़ा हुआ सो गया। उसे स्वप्न आया कि उसको गर्मी बहुत लगी है, सहा नहीं जाता। इसलिए चले समुद्रकी ठडी लहरो मे थोड़ा घूम आवे। वह चला नही स्वप्न मे देख रहा है। समुद्र के पास गया। नाविक से बोला कि हमे एक घण्टे तक इस समुद्र की सैर करा दो। बोला— ठीक है, ५ रु० फीस है। बोले कि ठीक है। इतने मे स्त्री बोली कि हमे भी ले चलो,हम भी चलेगी। घरके बच्चे वगैरा भी ऐसा कहने लगे कि हमको भी ले चलो। पहरेदार बोला— हमको भी गर्मी लगी है, हमे भी ले चलो । सब नाव मे बैठ कर करीब आधा मील पहुचे तो समुद्र मे भवर आयी । नाविक ने सेठ से कहा-नाव डूबने से नहीं बचेगी, हम तो तैरकर निकल जावेगे। सेठ नाविक से बोला-५ हजार रु० ले लो, ५० हजार रु० ले लो परन्तु नाव को पार कर दो । पार कर दो नहीं तो हम सब मर जावेगे । इस समय स्वप्न मे देखो कि दु ख कितना हो रहा है ?

स्वय हम भी मरेगे और हमारे सहायक भी मरेगे । अब क्या होगा ? सारी बाते सोच-सोच कर क्लेशित हो रहे है । पर सेठ जी होते तो है देखो बगले मे, मित्र लोग देख रहे है कि सेठ जी बगले मे सो रहे है । कब जागेगे ? नौकर चाकर भी काम कर रहे है । सेठ जी स्वप्न देख रहे है । नौकर चाकर तथा मित्र कोई भी उनके दु ख को मिटाने मे समर्थ नही है । उनका दु ख केवल एक ही उपाय से मिट सकता है कि जाग जाये,नीद खुल जाए, और उनके दु खो के मिटाने का कोई दूसरा साधन नहीं है । जाग गये तो देखा कि वहा समुद्र नही है और न वे सारे दु.ख है ।

इसी तरह इस जगत के प्राणी मोहकी नींद मे सो रहे है और मोहकी नीद वह है जहा पर सब दु खी रहते है । यह मेरा घर है, यह मेरा वैभव है, यह मेरा परिवार है, इतना मेरा बन गया है, इतने का नुक्सान हो गया है, अपमान हो गया है, इज्जत मिट गयी, सारे अपने मोह को ही देख रहा है। देखो कैसा वह ज्ञानानन्दस्वरूप है । यह जीव अपने आनन्द की सत्ता मे है । जिसका स्वरूप भगवान्स्वरूप है ? ऐसा ज्ञानानन्दस्वभाव मे यह सब है । लेकिन मोह मे पडे हुए है और सारा जगत् लाभ हानि मानकर दु खी हो रहा है । इस जीव के दु खो के मिटाने मे कौन समर्थ है ? क्या परिवार के लोग या मित्रजन, क्या अपनी चेष्टा करके दु ख मिटा सकते हैं ? क्या भगवान ऐसे मोहके दु खो को मिटा सकते हैं ? कोई दु ख मिटाने मे समर्थ नही है । यद्यपि यह जीव शुद्ध परमस्वरूप है, भगवान् स्वरूप है, ज्ञानानन्द घन है लेकिन मोहकी नींद जो आती है उसी दु ख को भूल गया है कि मै अपने वैभव मे हू भूल का फल तो आयेगा । बाहरी पदार्थो मे उपयोग कर लिया । इसके फल मे महान क्लेश होना ही है । इसके मिटाने का सामर्थ्य है केवल अपने पुरुपार्थ मे ।

रत्नकरण्ड मे एक कथा आती है मुछमक्खन की । एक व्यक्ति का नाम मुछमक्खन था । वह एक जैन के यहा गया । वहा मट्ठा पिया । मूछ पर हाथ फेरा । जव हाथ फेरा तो मूछ मे मक्खन लग गया । सोचा कि यह काम वहुत वढिया है । ऐसा रोज करूगा । रोज किया । एक साल मे अच्छा घी लगभग एक मेर उसकी मूछो मे जुड गया । अव जाडे के दिना मे माह के महीने मे डबली को ऊपर

लटकाया । नीचे आग जलाई और सो गया । अब वह स्वप्नवत् पड़े -पड़े मन मे कल्पनाये करने लगा। घी को दो रूपया मे बेचूगा । दो रुपया से और कोई सामान खरीद कर ४, ५, रु० मे बेचूगा, ५ रु० का सामान खरीदकर १०, २०, रु० मे बेचूगा । जब १०, २०, रु० हो जावेगे तब फिर बकरी खरीदूगा, गाय खरीदूगा, बैल खरीदूगा । बाद मे जमीदारी खरीद लूगा, विवाह करूगा, बच्चे होगे । इतने मे एक बच्चा आ गया बोला कि मा ने रोटी खाने के लिये बुलाया है । कहता है कि अभी नही जाऊँगा । दूसरी बार फिर कहेगा कि मा ने रोटी खाने को बुलाया है । कहा- अभी नही जाऊगा । तीसरी बार फिर कहेगा कि मा ने रोटी खाने को बुलाया है । कहा-अबे कह तो दिया कि नहीं जाऊगा । ऐसा कहकर लात फटकारी । लात की फटकार से डबली मे धक्का लगा, नीचे गिर गई और फूट गई । उसकी झोपड़ी भी जलने लगी। अब तो झोपड़ी के बाहर निकलकर चिल्लाने लगा कि स्त्री मरी, बच्चे मर गए, गाय भैस खतम हो गये । लोग जो पास मे थे बोले कि कल तक तो भूखो मरता था । आज कहा से यह सब कुछ आ गया । बाद मे उस मुछमक्खन ने सारा किस्सा सुनाया । एक सेठ ने कहा कि तू कल्पनाये ही तो करता था । तू इन कल्पनावो मे ही क्यो दु खी हो रहा है ? पास मे जो चतुर आदमी खड़ा हुआ था, बोला-सेठ जी क्यो समझाते हो ? तुम भी तो ऐसे ही हो ।

किसी से तेरा सम्बन्ध नहीं । तू स्वय एक आत्मतत्व है । तेरी सम्पदा कहा है ? कल्पनाये कर रखी है कि यह मेरा है, वह मेरा है । सम्पदा बना रखी कि मोह जुड़ गया । यह तो अपना ही राज्य हो गया । सब व्यवस्था चलने लगी । परमार्थसे देखो तो यह आत्मा केवल ज्ञानमात्र है । इसका यहा कुछ नहीं है । ये सब कल्पनाये है, भ्रमजाल है । भ्रम के कारण दु ख होता है हमने अपने दु ख को भ्रम से ही पाला है । हम ही अपने ज्ञान का सहारा करके तथा भ्रमको नष्ट करके सारे क्लेशो को दूर कर सकते हैं। आत्मा के भ्रम से पैदा होने वाले दु ख भ्रम नष्ट करने से ही दूर किए जा सकते है और इसका कोई दूसरा उपाय नही है। तुमने और भ्रम बढ़ा लिया तो क्या दु ख खत्म हो जायेगे? दो बच्चे हो गए, । वह अच्छे-अच्छे ओहदेपर हो गए तो क्या दु ख खत्म हो जावेगा । कितनी ही स्थिति बढ़ जावे पर जब तक आत्मज्ञान नहीं होगा तब तक दु ख नही मिट सकते है । जब भ्रम खत्म है तब दु ख खत्म है। एक कथानक है कि दीवाली मे जब घर की पुताई होती है, तो एक लालाजी के यहा गेरुवे रग की पुताई हो रही थी। लाला जी की लड़की ने जो गेरुवे रग का भरा लोटा था लालाजी के पलग के नीचे रख दिया । रोज वहा एक लोटा रखा रहता था। उनकी आदत थी कि सुबह सबसे पहले वह लोटा लेकर टट्टी जाया करते थे। झट उठे और गेरुवे रग से भरा लोटा लिया, टट्टी चले गए। शौच की शुद्धि की । देखा तो वहाँ लाल लाल दिखा । सोचाकि अरे सारा खून निकल गया, सिर मे दर्द हो गया, बुखार हो गया। वहा से हाफते हाफते मुश्किल से घर आए। खटिया मे लेट गए। बुखार बढ़ने लगा। इतने मे बिटिया आती है और कहती है कि पिताजी मैने खाट के नीचे गेरुवे रग का लोटा रख दिया था, वह कहा है ?अरे वह तो गेरुवे रग का लोटा था। ऐसा दिमाग मे आते ही उनकी तबियत ठीक हो गई। वह बोले कि मै यह लोटा लेकर टट्टी गया था, इसलिए बुखार आ गया। भ्रम कर लिया

तो बुखार आ गया। भ्रम मिटते ही शान्त हो गया। जगत् मे किसका क्या है ? बड़े करोड़पति को सामने कर लो। उसका क्या है ? दु ख की बात देखो तो करोड़पति को भी महान् दु ख है, रात को नींद अच्छी तरह नहीं आतीं है। भ्रम बना रहता है कि चोर यहा गए है, वहा गए है। सुख से नही रहते है। है कुछ नहीं उनका, पर आराम से नही रहते हैं। विवेक यह है कि गृहस्थका कर्तव्य है कि वह धर्म करे। पालन-पोपण के समय मे भी जो कर्तव्य है सो करे। मगर धन का आना न आना भाग्य पर छोड़ दे। और फिर भाग्य के अनुसार जो आता है उसमे अपने लिए सात्विकवृत्ति से खर्च करे। यही गृहस्थ का गुण है। जिसने खूब कमाया है वह भी मनमाने ठाठबाट से नही रहता है। इसलिए रहन-सहन द्वारा हम ऐसा न करके सात्विकता से रहे । ऐश आराम का बढ़ाना यदि किया तो शालीनता बनाये रहना अच्छा है। और जो अपनी आय हो, काम के मुनासिब व्यय करके शेप दूसरो के उपकार मे खर्च हो। इसमे प्रसन्नता नहीं होती कि तृष्णा करके सोच रहे है कि हमने जोडा क्या है ? हमे अभी और जोड़ना है। हमे अभी चार आदमियो मे इज्जत बढ़ाना है। अरे ये चार आदमी मर मिटने वाले है। चार आदमियो के लिए शान क्या बनाना है? भगवान् के ज्ञान मे शान बनावे तब तो ठीक है। जो अनन्त, जो शुद्ध भगवान् है,उस प्रभु मे ध्यान दो। यदि ज्ञान आए तो तुम्हारा लाभ है। सर्व सिद्धि होगी। यहा सब की दृष्टि मे इज्जत चाहना भी क्लेश है। वह सब आत्माके भ्रम के क्लेश है। वह क्लेश है। वह क्लेश भ्रम के नाश से समाप्त होगे। इस कारण यह कोशिश करनी चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ का यथार्थस्वरूप ज्ञात हो। यथार्थस्वरूप ज्ञात होना ही दु खो के मिटानेका उपाय है। अभी सामने रस्सी पड़ी है, कुछ अधेरा और कुछ उजेला है। सामने देखा तो भ्रम हो गया कि यह साप है। इस भ्रमके कारण उसे डर हो गया, आकुलता हो गई, दिल कापने लगा, हाय यह तो साप है। है कुछ नही, रस्सी पड़ी हुई है। उसने कहा कि आखिर देखे तो कि कौन सा साप है? जहरीला है कि और कोई है। देखे तो कि कौनसा साप है? जरा थोड़ा पास गया। कुछ और हिम्मत की । फिर और चला तो देखा कि यह तो रस्सी है। लो भ्रम खत्म हो गया, आकुलता खत्म हो गयी, दुःख खत्म हो गये।

जितना भी क्लेश होता है यह सब भ्रम से होता है। तो अपने आप ऐसा अनुभव करो, ऐसा उपयोग वनाओ कि मैं अपने सत्वमात्र हूँ, ज्ञान और आनन्द मात्र हूँ, शरीरसे न्यारा हूँ, सब पदार्थो से निराला हूँ। केवल मैं आनन्दको करता हूँ और ज्ञानानन्दको ही भोगता हू। ज्ञानानन्द मे रहनेके अतिरिक्त और मैं कुछ नहीं हूँ। इसी तरहसे तू अपने स्वरूपका अनुभव करे तो वहा कुछ क्लेश नहीं है, कोई विपत्ति नहीं है, विपत्ति तो भ्रमसे बनती है, भ्रम समाप्त हो जाते ही विपत्ति समाप्त हो जाती है, पदार्थ उसे दुखित नहीं करते। पदार्थ तो पडे है, जहा हैं तहा है। वे अपना स्वरूप व परिणमन लिए हुए है, निरन्तर परिणमन करते रहते हैं। कोई भी पदार्थ हमे दुःखी नहीं करता। न वह दुःखी करते थे और न वह सुखी करेंगे। यह जीव अपने आप स्वय भ्रम वना-बना करके नाना कल्पनाये करके स्वय अपने आप दुःखी होता है। वडे बड़े महापुरुषो ने राम हनुमान इत्यादि महापुरुपो ने सब कुछ छोड़ दिया, घर छोड़ दिया। न वे रहे। अपने स्वरूप में बसे, आत्मसाधना की। क्या वह कम बुद्धि वाले थे? यह तो बड़े पुरुष थे,

पूज्य पुरुष थे,आराध्य देव थे। ऐसा उन्होने कोई इसलिए किया कि यहा तो सब असार है। इससे उनसे वास्ता कुछ नही, फिर उनपर दृष्टि क्यो की जाती है? सम्यक् ज्ञान हुआ। अतः उन्होने इन सबको छोड़ दिया। और उन्हे अपने आप आनन्द मिला। उन्होने सब कुछ छोड़ा इसलिए कि उन्हे शुद्ध आनन्द मिला। यह आत्मा खुद स्वतत्र है। बाहरी पदार्थो से दृष्टि हटाओ और अपने आनन्दस्वरूपमें दृष्टि लगाओ। सब विकल्पोको छोड़कर अपने आपमे रमो तो वह आनन्द मिलेगा कि जिसके निमित्तसे भव-भवके सचित कर्म भी मिट जायेगे। बड़े-बड़े रागद्वेषोकी आपदाये भी क्षणभर मे ही भस्म हो जावेंगी। यह इस ज्ञानकी ही सामर्थ्य है और किसी मे सामर्थ्य नही है।

अब स्वय मायाजालको छोड़कर जो मेरा स्वरूप है उस स्वरूपमे ही दृष्टि डालू और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ। सुखी होनेका कितना अच्छा एकमात्र सरल व स्वाधीन उपाय है। जहा हम हैं वहा हमारा भगवान् है। यदि अपने स्वरूपको देखो तो मोक्षका मार्ग मिलेगा, सर्वकल्याण होगा । और यदि अपने स्वरूप को भूलकर बाहरी पदार्थो मे दृष्टि लगाई तो दुःखी होनेका उपाय है। केवल समझने पर ही सब कुछ निर्भर है अपनी समझ करना तो सरल काम है। इसमे अनत लाभ है। मै वाह्यपदार्थो मे दृष्टि लगाता हूँ तो यह खराबी है, इसमे जन्म-मरणके चक्र मे फसना पड़ता है। परमार्थतः अपना उपयोग तो किसी मे फसता नही, उपयोग ही स्वय फस जाता है। वह तो स्वयकी चीज है। हम स्वाधीन बने रहे और सर्वत्र सुखी रहे। दुःखका कोई काम ही नही है, हम स्वयं स्वाधीन है। मै जैसा हूँ वैसा अपनेको समझता हूँ । मै अमूर्त ज्ञानमात्र हूँ। इसी अनुभव मे आवो फिर जो कुछ कल्याणकी बात होनी है वह स्वय होगी। और आत्मस्वरूप के जाननेपर शुद्ध जानना ही रह जायगा और समस्त विकल्पजाल समाप्त हो जायेगे। इसी सम्यक् मार्गमे ही मोक्षका मार्ग है।

देह स्वबोधता दुःखं सुख स्वे स्वस्य चेतनम्।
सुखं स्वायत्तमेवातः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-३४।।

अर्थ– शरीर में अहंबुद्धि होना दुःख है, आत्मामें आत्माका अनुभव होना सुख है और वह सुख निजके अधीन है, इसलिये मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊं।।

जो देहमे आत्मबुद्धि करता है वह दुखी है जो चेतनरूपको जाने वह सुखी है जो मै हूँ, जैसा मै हूँ तैसा ही अपनेको जाने सो सुखी है और जो न जाने, जो शरीर, धन, परिवार इत्यादिमे आत्मबुद्धि करे सोई दुखी है। सुख और दुःखके मिलनेका स्रोत यहा पर मै ही हूँ। इसके अभ्यासके लिए बहुत-बहुत ज्ञान करना पड़ा है सब ओर की बातोको जानना पड़ता है और इसीलिए जितना भी ज्ञान का विस्तार है, शास्त्रोका प्रसार है यह ज्ञान कराने के लिए है। यदि कोई शास्त्रोमे घूमे, विवेकवश एक अपने ज्ञानानन्दकी पहिचान करले तो उसने सब शास्त्रो का मर्म जान लिया और कोई पुरुप सब शास्त्रोका विद्वान हो तो भी यदि अपने इस सहजस्वरूपका अनुभव न कर सका तो वह कुछ भी नहीं कर पाया। जगतके जितने भी क्लेश हैं वह सब पर-पदार्थोमे आत्माकी बुद्धिसे है, नहीं तो क्लेश ही कहा है ? किसी दु खीकी कहानी सुनो । उस कहानीमे यह मिलेगा कि इसको अमुक चीजका राग है । उसकी अमुकमे आत्मबुद्धि है,

इसलिए क्लेश हो रहे है। आत्मा तो अमूर्त है। इस ज्ञानमात्र अमूर्त आत्मा मे बाहरकी क्या चीज आयेगी और उसमे इसका क्या सुधार होगा? यह तो खुद ही कल्पनाये करके अपना आकुल परिणाम करता है। आप कल्पनाये छोड़ दे और जो अपना सहजज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमात्र स्वभाव है, उसका ही उपयोग करले तो वहा कोई दुविधा नहीं है। दुविधा तो बनाई जाती है। आत्मा मे विपत्ति नही होती है। क्लेश तो बनाया जाता है, आत्मा मे क्लेश नही है। आत्मा तो एक चैतन्य वस्तु है जो ज्ञानघन है वह ज्ञान से सर्वथा परिपूर्ण है। ज्ञान का ही ऐसा कमाल है कि वह आनन्द को लिए हुए है, ज्ञान और आनन्दस्वरूप आत्मा ही सम्पत्ति है। वह स्वभाव से है जो आपको सत् बनाए हुए है। ज्ञानशक्ति, आत्मशक्ति मिटती नही है। लेकिन इस जीव मे विभावशक्ति है। जिससे बाहरी कई निमित्त पाकर विकार की परिणति कर लेता है। यदि अपने को जैसा है तैसा मान ले कि मै अपने आप कैसा सत् हूँ? मै अपने आप कैसा अस्तित्व रखता हू? यदि यह स्वय समझमे आ जाय तो यह विश्वास तुरन्त बन जाए कि लोक मे मेरा प्रभु मै ही हूँ, मेरा कोई दूसरा नही है। मै जैसे परिणाम करता हूँ वैसी ही सृष्टि करता चला जाता हूँ। शरीर मे आत्मबुद्धि होना सोई दु ख है। बडे-बड़े पुरुषो के जीवनचरित्र देखो तो जब तक उनको मोह रहा, राग का लगाव रहा तब तक चैन से नहीं रह सके। कौरव पाण्डवो का चरित्र देखो, राम लक्ष्मण का चरित्र देखो, किन्ही का चरित्र देखो जब तक लगाव रहा तव तक वह चैन से नहीं रह सके और जब ही उनका ज्ञान परिपूर्ण हुआ, बाहरी दबाव छूटे तो अब उनका वर्तमान सत् देखो वह कर्ममुक्त भगवान हैं, अनन्त सुखो द्वारा सर्वसम्पन्न है। आज हम उनकी आराधना करते है और उनकी आराधना मे अपना सौभाग्य समझते हैं। रावण को देखो दु ख मिला जिन्होने लगाव नही छोड़ा। जीवन के अत तक मोह ही मे रहे, ममता ही मे फसे रहे । उनका नाम लेने वाला कोई नहीं है और नाम भी लिया जाता है तो एक घृणा की दृष्टि से लिया जाता है। तो बड़े-बड़े पुरुष भी इस जगत् मे नहीं रहे। वह अच्छे हुए तो मुक्ति पाकर भगवान हुए और जो अच्छे न हुए वह जन्म मरण के चक्कर मे पड़े रहे। जो भी उत्पन्न हुआ है वह यहा से गया ही है। क्या वह हमारी स्थिति नहीं आयेगी जिस दिन हम यहा नही होगे? हम नहीं रहेगे उस दिन हमारा क्या रहेगा? कोई भी चीज हमारी नहीं होगी । कौन से पदार्थ हमारे साथी होगे? हम विल्कुल अकेले है, अपने ही स्वरूप को लिए हुए है। जग के सब पदार्थो से मै अत्यन्त जुदा हूँ। मेरे मे शरीर भी नहीं है। वह भी एक सूक्ष्मस्कन्ध है और राग, द्वेष इत्यादि विकार भी नहीं है। मै तो एक शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ,चैतन्यशक्तिमात्र हूँ। ऐसा मै बड़ा हल्का, भाररहित, अमूर्त, अत्यन्त पवित्र सारे पदार्थो मे उत्कृष्ट एक चैतन्य वस्तु हू। जैसा मै हूँ वैसे ही सव है और जैसे सब है वैसा मै हूँ। ऐसा मै सचेतना मे साधारण एक चैतन्यवस्तु हूँ। यही हू और कुछ नहीं हूँ, नाना रूप नहीं हूँ। ऐसा जानकर अपने ही स्वरूप मे मस्त रहना सोई सुखका उपाय है, दूसरा कुछ नहीं है।

जगत् के कौन से ऐसे पदार्थ हैं जो सुन्दर हैं, रमणीय है, विश्वास के योग्य है, मेरे सुख के कारण हैं, मेरे हित के हेतु हैं, ऐसे कौन से पदार्थ हैं? कोई हो तो वतलाओ। मोह के अज्ञान से चाहे यह जच जाय कि यह मेरे वच्चे, परिवार के लोग यह सव वडे सज्जन है, कल्याणकारी है, प्रेम करने वाले हैं,

परतु जाचो तो उनसे कुछ नही मिलेगा। आत्मा के आनन्द का मार्ग साफ नहीं हो सकेगा। उन विकल्पो मे अपनी ही अवस्था बिगड़ जायगी, जन्ममरण के चक्कर की फास लग जायगी, लाभ कुछ नहीं होगा। और जो प्रेमदर्शन वाले है वे तो कषाय के अनुसार अपने ही तो परिणाम कर रहे है। इसके अतिरिक्त मुझमे क्या कर सकते है? यहासब जीव जो कुछ करते हे वे खुद अपना परिणाम करते है। इनसे बाहर कुछ उनका कर्तव्य नहीं है। उनसे कोई भी बात मुझे नही आती, हम उनकी प्रवृत्तियो को देखकर फूले नही समाये। वे प्रेम को उत्पन्न कर ले। यह मै अपना ही तो परिणाम कर रहा हू। जिसके बदले मे खुद ही मुझको कुछ मिलेगा। क्या मिलेगा? आकुलता। अब दूसरा कुछ नही मिलेगा। ऐसा जीव बिल्कुल स्वतत्र है। मगर इस लोक मे बड़ी विवशता हो रही है। जैसे कही कोई जुवा होता है या कोई ऐसा खेल होता है जिसमे दो आने वाला नम्बर आए। जो खेलेगा उसको पैसा मिलेगा। दो आने,चार आने लगाते जाये, जब पैसे चले गए तो सोचा जो कुछ बचे है वही घर ले चले। तो पास मे बैठे हुए लोग ऐसा कहेगे कि वह उठ नही सकता है। कहेगे कि बस इतनी ही ताकत थी। उठ नहीं सकेगा। सब लुटाकर अपने घर जायगा। इसी तरह यह सब जीवन लुटाते चले जा रहे है और सोचते है कि जरा भी समय मिले तो हम झझटो से हट ले, और अपने घर चले, लेकिन यहा ऐसे वचन मिलते हैं कि वह जा नहीं सकता है। यहा वचन ही नही, अपितु दर्शन मिलते है तथा ऐसे ही समागम मिलते है कि जिसे चाहते हुए भी हिम्मत नहीं है कि अपने पूरे बल के साथ अपनी आत्मा मे मिलकर प्रभु के दर्शन तो कर ले। कैसा प्रभु का आनन्द है? ऐसा तो निकट ससारी ही साहस करना है। प्राय यहा तो ढला चला शुरू से चला आ रहा है। मना करना, लड़ाई करना ही द्वेष करना, ज्ञान बनाना, इज्जत बनाना, हम भी कुछ जगत् मे हैं ऐसा देखना–यह सारे खेल खेला करता है। पर हम अपने को नही बचा सकते है, न हम अपनी रक्षा कर सकते है और न अपने जीवन को बरबादी से अलग कर सकते है, न हम अपने परमात्मा के लिये कुछ कर सकते हैं। यह इसी मोह का ही तो कारण है, अपनी ही तो कमजोरी है। जैसे कहते हैं कि 'नाच न जाने आगन टेढ़ा' कोई साधारण नाच जानने वाला था, लेकिन लोगो से खुद कहा कि हम भी नाच दिखावेगे। जैसे कोई गर्व से कला दिखाता है कला अच्छी तरह जानता है, फिर भी चार आदमियो के बीच मे यदि वह स्वय दिखावेगा तो कला मे कोई फर्क आवेगा। उसने नाचा, किन्तु ठीक नाच न हो पाया । तब उसने कहा कि मेरा नाच तो बढ़िया है, पर जचेगा नहीं, क्योकि यह आगन टेढ़ा है।इसी तरह जीव आनन्द की कला मे तो अभ्यस्त नही, सो आनन्द मिलता नही, दु खी होता है। वही उस दु ख मे अपना अपराध तो देखता नही, पर का कसूर कहता है। क्योकि अज्ञान को अपना रहा है और यथार्थस्वरूप को नही देखता है। अज्ञान को बनाता है और दु खी होता है, स्वच्छन्द बन गया है। मन मे जो आये करने को तैयार होता है। जिन पदार्थो मे अपना राग मानता है वह करता है, ऐसी अवस्था मे दु ख तो होगा ही। दु ख अज्ञान से ही तो होता है। लड़का ठीक नहीं यह बड़ा दु ख है। यह काम नही हो रहा है, इसका दु ख है। अरे जगत् के सारे पदार्थ चाहे जो कुछ हो उनसे दु ख नही होता है। अपने को ज्ञानस्वरूप देखा तो मै ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञान करने के अलावा और

मैं कुछ नहीं हूँ। ज्ञान करने के अलावा मेरा कोई काम नही है। मै ज्ञानस्वरूप सर्वस्व हूँ। एक ज्ञान मे ही रुचि जगाओ और फिर यदि कोई क्लेश हो तो बताओ। क्लेश की जड़ अज्ञान है। उस क्लेश को मिटाने के लिए सुधार का प्रयत्न करता है। मगर अज्ञान को मिटाने का प्रयत्न नहीं करता है। सेठ अथवा ओहदेदार कोई भी हो, कहीं कहीं पर ऐसे मिलेगे जो अपना आधे से अधिक समय धर्म मे, सत्सग मे, दया मे, उपकार मे, भक्ति मे लगाया करते हैं और लक्ष्मी वैसे ही आया करती है। लक्ष्मी जोड़ने से नहीं आती। परिणाम निर्मल हो, परिणाम तृष्णा का न हो, पदार्थो से उपेक्षा का परिणाम हो, अपने आपके स्वरूप मे प्रेम हो, स्वय ही लक्ष्मी आती है। लक्ष्मी आती है वह मुझको भला करने के लिए नहीं आती है,लक्ष्मी प्राय पतन करने के लिए आती है। आती हो आये और न आती हो तो न आये। मुझमे ऐसी कला है कि सब स्थिति मे सुखी रह सकता हूँ। कोई भी परिस्थितिया हो सबमे मुझे सुख हो सकता है। ऐसी आत्मा मे कला है, बल है, तप है, फिर् वाह्यपदार्थो मे क्यो झुकता है?

मै अपने आप स्वरूप को जानू, मै ब्रह्मत्व् को पहचानू और उसकी दृष्टि से ही सुखी होऊँ यह मेरा लक्ष्य हो।

अच्छा सोचिए पहले हम कुछ थे या नहीं थे। यह बात तो है नहीं, क्योकि नहीं थे तो आज हो नहीं सकते थे। जो हैं, वह नहीं, नहीं बन सकता। जो नहीं है, वह है नहीं बन सकता। जो सत् है वह मिट नही सकता। जो सत् नहीं है वह हो नहीं सकता। हम है तो हम पहले भी थे। क्या थे? ऐसे ही कुछ होगे। मनुष्य हो या देव हो या और कोई हो। कौन था? कुछ था और उसके पहले अनादिसे था कि नहीं था। उससे भी पहले था। तब फिर आप ये कबसे है? अनादि से। जन्ममरण होते चले आये, अनत भव हो गये, अनतकाल हो गया। उन भवो मे भी तो कहीं-कही बाबा दादा हुये होगे। अब कुछ उनसे क्या लाभ है? मुझे तो उनका पता भी नही। उन भावो का कुछ साथ है क्या? कुछ भी तो नहीं। हित का नाम नही, दूसरो के पुण्य का उदय है। जिनके लिये बरबाद होना पड़ता है। अपने सर्वोत्कृष्ट सारतत्व मे आवो तो आनन्द मिलेगा। परमे आत्मबुद्धि होना ही दु ख है और अपने आप मे अपने आपका अनुभव होना ही सुख है। यह जीव जानने के अलावा और कुछ नहीं करता है। ज्यादा से ज्यादा बढ़ो तो इच्छा कर लेता है। इसके बाद जो कुछ परपदार्थ मे होता है वह आटोमेटिक होता रहता है। निमित्तनैमित्तिक भावो से जैसे होता रहता है उनका करने वाला मैं ही हूँ। अधिक से अधिक इच्छा करने वाला हूँ। इच्छा से आगे मेरी करतूत नहीं है। अव ज्ञान और इच्छा मे जहा साधारण ज्ञान रहा वहा आनन्द मिलता है। और ज्ञान से बढकर जहा इच्छा मे चले गए वहा दु ख पैदा हो जाता है। उसका इस लोक मे पूछने वाला कोई नही है। कहा पड़ा है? इसका पूछने वाला कोई नहीं है। इस ही भव की वात देख लो जिन इप्ट पुरुषो का, बाबा पिता आदि का वियोग हो गया उनका अब हम क्या कर रहे हैं, क्या कर सकते हैं? वास्तव मे तो उनका तब भी कुछ नहीं करते थे। पहले की बात स्मृति मे लाकर जरा देखो तो हम चाहते थे, हम उन्हे पूछते थे, वे हमे पूछते थे। वह कहा गए? कोई भी उनका पता नहीं । हम इतना भी नहीं मालूम कर सकते कि बाबा और पिता इस समय कहां पर है? इतना

भी उनके विषय मे पता नही चल सकता है तो और क्या किया जा सकता है? जो लोग प्रतिवर्ष श्राद्ध आसौज मे किया करते है कि यह भोजन दे दिया, यह कपड़ा दे दिया, दादा बाबा के पास पहुंच जायगा। उनसे कभी इतना कहते है कि अरे तुम हमारे मरने पर श्राद्ध करोगे, जिन्दा मे दो कटोरा पानी तो दे दो। जिन्दा मे तो उनको दु खी करते, हैरान करते और मरने पर श्राद्ध करते, ऐसा विचित्र लोक है। मोह के बारे मे भी एक ग्रन्थ मे लिखा है कि जो लोग आसक्ति करते है कि भाई तुम्हारे सुख मे मुझे सुख है और तुम्हारे दु ख मे मुझे दु ख है, तुम्हारी बेचेनी मे हमे बेचैनी है, तुम्हारी जिन्दगी तक हमारी जिन्दगी है और तुम्हारा मरण है तो हमारा मरण है। जिनको ऐसा तीव्र मोह है वह क्या है? निगोद मे जो काम करेगा उसका यह अभ्यास कर रहा है। निगोद मे एक मरा तो अनन्त मरे, एक जीव का स्वांस हुआ तो अनन्त जीवो के स्वास हुए, एकका जन्म हुआ तो अनन्त जीवो के जन्म हुए। उसी का तो यहा अभ्यास किया जाता है। वह चैन मे है तो हम चैन मे है, वह मरा तो मैं मरा– ऐसा अभ्यास कर रहे हैं। जिससे निगोद के काम मे कोई बाधा न आ सके। यह ससार विचित्र है, गोरखधधा है, इसमे फंसा रहता है और कोई काम नहीं करता। किन्तु जो ज्ञानी है वे बड़े आदमियो की महात्माओ की खबर लिया करते है। तो सब इसी कारण से कि वह अनुपम कार्य कर सकता है। जो कार्य हमे करने चाहिये वे सब कार्य किये जाने चाहिये। इसीलिए तो उनकी आराधना करते है, नहीं तो कौंन आराधना करता है? अब जो आखिर मे मर गया है उनकी प्रशसा करता है, मरते समय सबको छोड़ दिया था कि हमारा कोई कुछ नही है और मरते समय प्रभु का नाम लेकर मरे और ऐसा अपने को कर गये तो उनकी प्रशसा हुई और कोई अगर ऐसा कहे कि हमारे बाबा मरे और वह मोह करके मरे और बहुत तड़पकर मरे। हाय, मेरा घर छूटा जा रहा है– ऐसा जो कहेगा तो बाबा की प्रशसा नहीं हुई, निन्दा हुई। प्रशंसा भी ज्ञान मे ही हैं, ज्ञान के बनाने मे ही उत्कृष्टता है और ज्ञान का बडप्पन और महिमा है। यदि सब अज्ञान के विकल्पो को छोड़ दे तो दुनिया मे इससे बढ़कर कुछ नहीं है, सबसे बढ़कर यह बात है। लक्ष्मी सम्पदा को तो भाग्य पर छोड़ो और अपने को सदा क्लेश से दूर होने का पुरुषार्थ कर लो, यही उत्तम बात है। सम्पदा का काम श्रम करते रहने से नही हो जायगा। वह भी जैसे परिणाम करो आती है। तो पुण्य का उदय अपने परिणाम को निर्मल करने का, समता पैदा करने का, जो जैसा है वैसा समझते रहने का है, पुरुषार्थ कर, कषाय न कर अपने आप मे स्वय झुक और अपने आप मे ही प्रभु के दर्शन कर, ऐसा अगर हुआ तो लोकव्यवहार मे शाति रहेगी, परिवार के लोग भी सज्जन होगे, सभ्य बन जायेगे और हम चाहे कि हम कैसे ही रहे और परिवार को सज्जन बना दे तो परिवार सज्जन नहीं बन सकता है। खुद ही ऐसा है कि जिससे तुम उत्कर्ष करते हो, ऐसा हो सकता है तो कुटुम्बपर असर जावेगा। खुद खोटा है तो उसके परिवार के लोग सभ्य तो नहीं बन सकते, पर जो परिणाम किया जाता है उसका लोक मे फल मिलेगा और भविप्य मे भी फल है। ऐसा यह ज्ञान रखना कि मै एक अमूर्त ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वभाववाला हूँ, मै अपने ज्ञान के परिणमन का करने वाला हूँ। इसके अतिरिक्त मेरा कोई सत् नहीं, मैं स्वय ज्ञानानन्द हूँ। ऐसे स्वरूप के दर्शन करता रहू, बस यही एक इच्छा है।

तिर्यङ्नारकदेवानां देहे तिष्ठन् पृथक् तथा।
नृ देहेऽपि नरो नाहं स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-३५।।

अर्थ– जैसे तिर्यञ्च, नारकी, देवों के शरीर में रहता हुआ आत्मा शरीर से भिन्न है उसी प्रकार मनुष्य शरीर में भी रहता हुआ मैं मनुष्य नहीं हू, इसलिये इस पृथक् शरीर से अपने को भिन्न करके मैं अपने में अपने लिए स्वय सुखी होऊं ।

जगत् मे जितने भी सत् है वे अपने आप मे ही सत् है । तभी यह सत् रह सकते है।यदि कोई पदार्थ दूसरे पदार्थ की चिन्ता करने लगे, उसका कुछ भी सम्वन्ध दूसरो से बन जाय तो जगत् मे कुछ भी नहीं रहेगा। न वह खुद रहेगा और जिसे करता है वह न रहेगा। यह पदार्थ है। इसका यही कारण है कि वे सब स्वतत्ररूप लिये हुये हैं। किसी पदार्थ से किसी अन्यका कोई सम्बन्ध नहीं है। तभी ये पदार्थ हैं अन्यथा सवका अभाव हो जाता। पदार्थो मे ५ जो अजीवतत्व है वे भी पदार्थ हैं। उनमे कुछ गड़बड़ी नही। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इत्यादि ५ तत्व है। धर्म, अधर्म, आकाश काल इनमे तो कुछ गड़बड़ी प्रश्न ही नहीं, क्योकि ये त्रिकाल शुद्ध है और पुद्गल मे भी गडबड़ी का प्रश्न नही है। वहा जैसी योग्यता व जैसा निमित्त व सयोग होता है वैसा परिणमन है तो अपना परिणमन होते रहने से जीव पदार्थ है उसमे भी परिणमन ठीक चल रहा है। जैसी योग्यता है तैसा सम्वन्ध होता है, परन्तु यह करता कुछ है और मानता कुछ है। यह इसके अन्दर गड़बड़ी चल रही है। यह गडबड़ी अन्य पदार्थो मे नहीं है, जीव मे ही है और इसके ही फल मे यह ससार मे जन्म मरण का चक्र हो रहा है। यहा मोही स्वप्न देख रहा है। ८ -१० आदमी ये मेरे है जिन्हे आखो देख रहे हैं, सारे सम्बन्ध जोड रहे है । अभी यहा भी नहीं रहेगे, यहा का ख्याल भी कोई न करेगा और यहा वालो को पता भी नही रहेगा जो अपना प्रेम देखते रहेगे अथवा प्रेम कौन देखता है? सब अपने-अपने कषाय का परिणमन कर रहे है। यहा मै ही खुद अपने राग की कल्पनाये करके उनकी ओर झुक रहा हूँ। जिनकी ओर झुक रहे हैं यह मेरे मरने के बाद भी यह न जान सकेगे कि मै कहा हूँ? जो गए है उनका क्या पता कि वह कहा पर है? इसलिये मै तो सवसे जुदा हूँ। परिवार, मित्रजन कोई भी यह न जान सकेगे कि मै कहा पर हूँ? मै अपने मे रमने का साहस नहीं करता इसका फल यह है कि जैसे जग के सव जीवो को हो रहा है। यह भव मिला, वह भव मिला। स्थावर, कीट, पशु-पक्षी, कुमानुष, सूअर आदि जितने भी प्रकार के जीव है उन सबमे जन्म लिया, मरण किया। यही चला करता है। जो अब यहा चाहता भी है कि कुछ तत्व ज्ञान ही मिले, अपने कल्याण की बात ही कर ले, विवेक ही जगे, आवश्यक ज्ञान वैराग्य ही जगे, तब भी लोक समागम व चीजो के सस्कार इनको ज्ञान और वैराग्य मे बैठने नहीं देते। यह सस्कार झट उठा देते है। यह शरीर इससे विल्कुल जुदा है। जैसे और देहो को हम विचार लेते है कि इनकी आत्मा पृथक् है और यह शरीर पृथक् है। हम झट जान लेते है कि आत्मा जुदा जुदा शरीर जुदा जुदा निकल गया है, हम जैसे इसका अनुभव करते हैं वहा हम भी इस मनुष्य देह मे रहकर अपने को पृथक् जाने । इसकी दृष्टि शुद्ध हो। जैसे इसका सहजस्वरूप है वैसा इसका उपयोग बना तो सव अपना अपने आप हो जायेगा। धर्म मे

भी अनेक बाते नहीं करना है। केवल एक बात करना है कि शुरू से अत तक आत्मस्वभाव की साधना करना है। आखिरी तक केवल एक बात करना है कि जैसा अपना सहज अस्तित्व है उस ही मे झुकना, उसपर दृष्टि बसाना, उसका ज्ञान करना। प्रथम ही यह कल्याण के लिए ठीक है। मै एक ज्ञानस्वरूप हूँ, अन्तरदृष्टि करके देखो। बाहर दृष्टि न करके देखो। शरीर जो लगा है उसे भी भुला करके देखो।

केवल अपने आपका स्मरण करके अपने आप मे देखो। क्या इसके अन्दर मिलता है? क्या कुछ ग्रहण करने की चीज मिलती है? क्या कोई इन्द्रियो से रूपादि दर्शाने वाली चीज रहती है? इसके अन्दर क्या मिलता है? केवल ज्ञानभाव और इसी को करके आनन्दभाव मिलता है। कैसे विचित्र पदार्थ है कि जितने भी है सब यहा एकवस्तु है। यह ज्ञान है, वह निराधार नही । ऐसा केवल जाननेमात्र से एक वस्तु है। जिनका और कुछ काम ही नही है और कोई बाहरी पदार्थो से सम्बन्ध ही नहीं है। केवल जानने मात्र से आत्मतत्व मिलता है। क्या कोई अन्य पदार्थो से इसका सम्बन्ध है? फिर क्यो इतनी जबरदस्ती परतत्व बसाये हुए हो कि यह लड़का है, यह स्त्री है, यह नाती है और यह पोता है। यह कुछ नहीं है। जरा इसके चैतन्य स्वरूप को देखो। मेरा तो सब कुछ यही है। मेरा कुछ बाहर सत् ही नही, यह सब मोह के भासित पदार्थ है, यह सब मोह का नशा है। क्या जैसा है वैसा उपयोग बनाया नहीं जा सकता है। ऐसा किये बिना शाति नही रहेगी। यह आत्मा एक ज्ञानमात्र वस्तु है और आनन्द स्वभाव को लिये हुए है। कोई आकुलता नहीं रहती —ऐसा स्वभाव इसमे पडा हुआ है। जब हम केवल ज्ञानस्वरूप को देखते है तो आत्मा कितनी बड़ी है? अरे ज्ञान का नाम ही आत्मा है। जितना बड़ा ज्ञान है उतनी ही बड़ी आत्मा है। ज्ञान कितना बड़ा है? देखो कितना बड़ा है जितनी जानकारी है उतना ज्ञान है। सारे विश्व की जानकारी है तो सारे विश्व जितना ज्ञान है। असख्याते लोकप्रमाण है। इतना ही नहीं वह सर्व आकाश प्रमाण है। परन्तु उसमे जो दूसरा आनन्द स्वभाव पड़ा है उस आनन्दस्वभाव की दृष्टि से देखते हैं तो जितने मे यह पिड का फैलाव है, इसके प्रदेश का फैलाव है उतनी बडी आत्मा है। आनन्द का अनुभव होता है तो आनन्द प्रदेश की सीमा मे होता है और जब ज्ञान का फैलाव होता है तो सारे विश्व मे अनुभव होता है। इस का स्वरूप ही जगमग ज्योति है। यह तो ज्ञान का स्वरूप है। सारे लोक का प्रमाण ज्ञान हो गया और यह आत्मा का स्वरूप है। मग आनन्द को कहते है। और जग ज्ञान को कहते है। मै जगमगस्वरूप हूँ, ज्ञानानन्दस्वरूप हू, आत्म तत्व हूँ। ऐसा यह आत्मा मैं अगर कदाचित् प्रदेश मे फैलता है तो सारे लोक मे फैल सकता है। इसलिए मै लोक-प्रदेश बराबर असख्यातप्रदेशी आत्मा हूँ। यह सब जितना है मै अपने शरीर मे ही अपने आपको पाता हूँ। क्योकि आनन्द का सीमामे ही सम्बन्ध है अथवा कर्म के वश आत्मा शरीर प्रमाण रहता है। इस कारण प्रमाण रहता है। इस कारण शरीरप्रमाण ही चला आया है। जिस शरीर मे यह क्षेत्र है उस शरीर मे यह आत्मा है। यदि ठीक दृष्टि से देखो तो शरीर जुदा है। आत्मा अपने भीतर मे रहती है।

जैसे दूध और पानी एक गिलास मे मिला दिये जाये, एक एक पाव तो गिलास मे दूध है और सब पानी है। और स्वरूप दृष्टि से देखो तो पानी अपने स्वरूप मे है और दूध अपने स्वरूप मे है। यदि

कोई यत्र है तो उससे दूध अलग हो जायगा और पानी अलग हो जायगा। इसी तरह यह शरीर और आत्मा भी पानी और दूध की तरह मिले रहते है। जिस जगह आत्मा है उस जगह पर शरीर है। अन्तर मिटने तक रहता है। शरीर के एक क्षेत्रावगाह मे आत्मा भी पडा हुआ है। इतना होते हुये भी शरीर का असर शरीर मे और आत्मा का असर आत्मा मे होता है। हर तरह के भाव से यह आत्मा शरीर से जुदा है, ज्ञानानन्द पिड है, आत्मा अपने अमूर्त प्रदेश मे है और शरीर अपने मूर्त प्रदेश मे है। आत्मा अपनी शक्ति मे है और शरीर अर्थात् ये परमाणु अपनी शक्ति मे है। आत्मा अपने प्रदेश मे रहती है। शाति, विकल्प, शोक, क्रोध इसमे रहता है तो शरीर रस बदले, गध बदले, इन बातो मे रहता है। शरीर निरन्तर अपना काम कर रहा है और आत्मा निरन्तर अपना काम कर रहा है। इसलिए यह शरीर आत्मा से सभी बातो मे अलग रहता है और यह आत्मा अपने मे अलग रहता है। लेकिन मोहवश अज्ञानवश अपनी जुदाई अपने को समझ मे नहीं आती तो बाहर मे सतोष ढूढते, बाहर की बातो का अनुभव बढाते और बाहर सुख ढूँढते है। किसी भी पदार्थ से कुछ नही मिलेगा। किसी भी बाहरी पदार्थो से कुछ नहीं मिलेगा। अच्छा शरीर से ही देखो अच्छी इन्द्रियो का विषय साधनभूत पदार्थ है। उससे भी कुछ नहीं आयेगा। मैं ही धर्म से चलूगा, मै ही अपना बनूगा और अपने मे झुकूगा, यदि इस बुद्धि से चलूगा तो मेरे दु ख मेरे से ही मिट जावेगे। जगत् मे अनेक भव मिटते चले गए अथवा अनेक भवो मे जो भी जन्म लिया है एक भी भव का स्मरण नही है। अनेक भव बीत गए परन्तु एक भी भव अपने को स्मरण नहीं है। जब एक भी भव आपको स्मरण नही आ रहा है तो फिर और की गिनती ही क्या है? जैसे उन अनतो की कुछ याद नहीं इसी प्रकार इस भव की भी कुछ याद नही रहेगी। तब हम हिम्मत करके कि मैं इस जगत् मे अणुमात्र भी नहीं हूँ। किसी को तू न मान कि मेरा है, क्या यह बात हो नही सकती है । देखो सब जुदा जीव हैं, उनके कर्म ही उनके साथ है। शरीर जैसे जुदा है आत्मा भी ऐसे ही जुदा है। कौन सी ऐसी चीज है कि वह उसके भीतर है, कोई नही। अज्ञान करके बुरा ही फल मिलेगा, जिद और हठ करके बुरा ही फल मिलता है। जिद करने का, भ्रम करने का फल बुरा है।

एक किसान था। वह हल चला रहा था। बीच मे एक साप आया और बैल के पैर के नीचे आ गया और घबड़ाकर उसने थोड़ा सा उस किसान के दात मार दिया। उसे थोड़ी सी रिस बढ़ गयी, मगर साप के विष से वह पागल सा बन जाता है। सो वह डडा लेकर बैलो को बहुत तेजी से मारने लगा। कहने लगा कि मेरे ऊपर पैर क्यो रख दिया है? साप के विष का असर पड़ गया था, सो बैलो को बहुत पीटा। इतने मे एक वृद्ध आदमी आया, उसने बहुत समझाया कि न मारो बैल मर जायगा। तुम्हारे पास केवल दो बैल है। अगर एक बैल मर गया तो किससे जोतेगा, क्या खायगा, परिवार कैसे चलेगा? कुछ सोच समझ में आया तो छोड दिया।

इस तरह जब स्वरूप के विरुद्ध हम करते हैं। भीतर से वाहरी पदार्थो को मान लेते है कि यह मेरे हैं। इस अज्ञान सर्प का ऐसा विष चढ़ जाता है कि जिसका कुछ कहना नहीं। जरा इन्द्रियो को सुहावना लगा तो हम मानते हैं कि वहुत अच्छा है। हठ कर लेते हैं, विवेक नहीं कर पाते है, २४ घन्टे हम कषाय

मे रहते हैं तो इसका फल कौन भोगेगा? खुद को ही भोगना पड़ेगा। दुष्टकर्म का उदय आयेगा तब ऐसी कुस्थिति आवेगी, जन्म मरण के चक्कर आवेगे, सुख दु ख मे घूमना पड़ेगा। समय फेर मे ज्ञान का खोटापन बना रहेगा और वर्तमान मे कितनी ही विपत्तियो का भार रहेगा। बात जरासी है कि यह भीतर से कल्पनाये ही तो करता है कि यह मेरी है। पर इसका फल कितना बड़ा है? सारे ससार को लिये हुए है, यह उसी का फल है कि सारे ससार मे दु ख रहता है। यहा चूहे, बिल्ली, केचुवे, कुत्ते, गधे जो-जो नजर आ रहे है किसी की टाग टूटी है, किसी का पेट फटा है वह सब मूल की भूल का परिणाम है। ऐसे यहा देखो कि जीव कितने आते है यह सब क्या है? यह सब भी अपने मोह का फल है। अन्तरस्वरूप सत्ता की खबर न रखी तो इसका बड़ा कुफल होगा। यह सब हमारी ही गल्ती का बड़ा फल है, मेरा फल है, मेरे लिये फल है। यदि वह भूल छूट जाय तो मै यथाशीघ्र आनन्दमय बन जाऊ, मै सर्वज्ञ बन जाऊ । यद्यपि सर्वज्ञ बनने से लाभ नही है मगर सर्वज्ञ वन जाना पड़ेगा। लाभ कुछ नही मगर स्वय ऐसा है कि बनना पड़ेगा। अगर शुद्धदृष्टि रखोगे तो बनना ही पड़ेगा। लाभ उतना है कि यह दु ख जाल सब खत्म हो जायेगे । भगवान् के शुद्ध परिणमन से लाभ तो उतना ही है कि विपदाये सब समाप्त हो गई । जब स्वरूप शुद्ध होता है तब अनन्तज्ञानी होना ही पडता है। इसका प्रयोजन भी कुछ नहीं, मगर ऐसा होना ही पड़ता है।

मै सर्व पदार्थो से भिन्न सत्ता वाला एक आनन्दमय तत्व हूँ। इसके अतिरिक्त मेरा और कुछ नहीं है। ऐसा उपयोग करके अमृत का पान करू तो मै अमर हूँ। मै यदि इससे हटू तो मेरे सामने दु ख है, सुख है, यह विपत्ति हम बना डालते है। जैसे सब पदार्थ है वैसा मै पदार्थ हूँ। क्या हूँ? सब परिणमते है, मैं परिणमनशील हू, मै शक्तिसम्पन्न हूँ । सब ठीक हो रहा है, मगर जहा मूल मे भूल हुई तो उसका फल अत्यत बुरा है। मोह ऐसा ही फल करेगा। जैसे किसी का किसी से विकट झगड़ा हो जाय। कचहरिया चलने लगे, उनका धन बरबाद हो जायगा। पुलिस की पिटाई भी चलेगी। एक दूसरे की जान लेने को तैयार है। इस लड़ाई के मूल कारण को यदि सोचा जाय तो उसमे कोई जान नही, कोई सार नहीं मिलेगा। वह मूल कारण अत मे झूठा ही मिलेगा। अपना कुछ नही है, मगर जब अगीकार कर लिया तो बुरा फल हो रहा है। वैसे देखो तो कोई ज्यादा भूल नहीं है। यहा केवल सोच लिया कि परपदार्थ मेरे है। इतना ही तो किया, मगर इसके फल मे सारे ससार मे रुल गया। यही सबसे बड़ी भूल है। इसमे जाता सब कुछ है और मिलता कुछ नही, अत यह भूल छोड़कर मैं अपने स्वरूप का अनुभव करू और अपने मे झुककर अपने सत्य आनन्द का अनुभव करूँ।

अन्योऽन्यत्वेन दु ख स्वं. स्वत्वेन सुखपूरित.।
यतैस्वदृष्टित स्वार्थे स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-३६।।

अर्थ– अन्य पदार्थ अन्य होने से दु ख ही है निज आत्मा निज होने से सुखपूर्ण ही है, अत निजदृष्टि से निज के सत्य प्रयोजन में प्रयत्न करू, और अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

जैसे लोग कहा करते हैं कि जो अपना है सोई अपने काम आयेगा, सोई सुख देगा और जो पराया है दूसरा है वह अपने काम नहीं आयेगा, वह अपने सुख का कारण नही बनेगा। दूसरा तो दूसरा ही है। वह तो मेरे लिये व्याधि है। दु ख है और सुख है तो वह ही है। वह अपने लिये सुखमय है। इसका स्पष्ट मतलब क्या है कि जो मै हूँ, सोई मेरे लिये सुखरूप है और जो पर है वह मेरे लिये सुखरूप नहीं, बस परवस्तुका रूप मेरे लिये सुख नही है। मै पर मे जाऊ तो वह मेरे दु ख का निमित्त होता है । स्व स्व मे परिपूर्ण है और जो स्व नही है, पर है वह दु ख का ही निमित्त हो सकेगा। जगत् मे जितने भी पदार्थ हैं वे अपने ही गुण और पर्याय मे हैं, अपने ही गुण और पर्याय मे तन्मय हैं। ऐसे अपने गुण पर्याय मे तन्मय को सुन्दर बताया है और किसी का कुछ गुण या कुछ पर्याय किसी अन्य मे तन्मय है—ऐसी दृष्टि को विसवादक बताया है। केवल समझकी शैली मे ही सब कुछ निर्भर है। ससार मे रुलना, ससार से छूटना केवल एक समझपर निर्भर है। विपत्ति मे पड़े रहना या आत्मीय आनन्द का अनुभव करना एक समझ पर निर्भर है। हर तरह से सम्पन्न हो जाना केवल समझ पर निर्भर है। लोक मे भी बड़े धनी, इज्जत वाले, नेता, राजा महाराजा, चक्रवर्ती इत्यादि हो जाना और दरिद्र, भिखारी, कीड़े, मकौडे स्थावर हो जाना केवल समझ पर ही निर्भर है। जैसी सच्ची समझ है वैसी सब कुछ सम्पत्तिया हैऔर जैसी उल्टी समझ है वैसी सारी विपत्तिया है। मोही अज्ञानी पुरुष किसी भी स्थिति मे रहे, चाहे वह धनी हो गया हो, चाहे वह राज्याधिकारी बना हो, किसी भी स्थिति मे हो। यदि उसके मोह और अज्ञान है तो उसके फल मे तो उसे अशान्ति ही रहेगी। चाहे कुछ बन गया हो, क्योकि उपादान मे तो दुखी होने की बात भरी हुई है। मोह करता है तो शान्ति कहा से आए? यही कारण है कि यह देखा जाता है कि छोटे से लेकर बड़े तक इस लोक मे दु खी नजर आ रहे है। कोई सोचता है कि लखपति सुखी होगा, क्योकि इसके पास लाख की माया है, पर लखपति स्वय समझते है कि करोडपति सुखी होगा, क्योकि इसके पास बडा वैभव, बडे महल है।, नौकर चाकर है, बडे बडे अफसर भी इसको प्रणाम किया करते है। पर उनकी आत्मा के भीतर का ढाचा देखो तो वहा भी दु ख नजर आयेगा। वह सोचता है कि अरबपति सुखी है। सर्वत्र ही जिधर देखो दु ख ही नजर आयेगा। इसका कारण है कि सुख दु ख का निर्णय बाहरी चीजो पर निर्भर नही है। वह अपने ज्ञान और अज्ञानपर आधारित है। जब तक अज्ञान रहता है, उल्टा ज्ञान रहता है तब तक यह जीव दु खी रहता है। जब ज्ञान होता है तब वह सुखी हो जाता है।

बडा महान् हो जाय, चक्रवर्ती हो जाय, अत्यन्त वैभव हो जाय और एक अपने स्वरूप का पता न हो तो उसे अशान्ति ही रहेगी। चाहे वह जो कुछ हो जावे, यह बस अनुभव तथा उन महापुरुषो को जिन्होने यह निर्णय किया पर को छोड़कर केवल आत्मदृष्टि करो केवल आत्मापर जाये याने अन्तरदृष्टि रहे। मैं अमूर्त, भावमात्र, चैतन्यशक्ति, आनन्द ज्ञानमात्र, सबसे अछूता, अपने स्वरूप सत्ता मात्र, यह मै आत्मा स्वय अपनी दृष्टि में बना रहूँ। इसके अतिरिक्त मेरे मे कोई न आवे, उपयोग मे अन्य कोई नहीं बसे, ऐसी ही उन्होने आराधना की, तो क्या था? सत्य बात यह थी। परमार्थ की बात यह है कि परमार्थ

स्वरूप जाने बिना जो उनके आगे जाता है झांझ मजीरा से, बाजो से तथा सगीतो से उनकी आराधना करता है , वह केवल श्रम है। तत्वदृष्टि करके जो उनके लिये अपना सर्वस्व सौप देता है, झुक जाता है, नम जाता है, उनके योग को अनुभूत किये बिना अपने जन्म को निष्फल समझता है, वह कामयाब हो सकता है। हम प्रभु की भक्ति क्यो करते है? क्योकि वह सर्वदृष्टा है, जो हमे करना चाहिए, वह उनसे मार्ग मिलता है। इसी कारण हम उन पर बार बार अनुरक्त हो जाते है, सब कुछ न्यौछावर करने को हम तैयार हो जाते है । यह जगत् की इकट्ठी की हुई माया विकार है, अनर्थ है, स्वय लाभ करने वाली नही है। अन्य तो अन्य ही है, पर तो पर ही है, अत्यन्त जुदा है। मुझमे इस आत्मा मे कुछ बन नही पाता । प्रत्युत परकी ओर झुके तो क्लेश ही थोड़ा आता है, क्योकि परकी ओर झुकना यह अज्ञान है, वहा क्लेश ही क्लेश है। एक कथानक है जो सुनाया भी था कि दो स्त्री-पुरुष थे। जिनके नाम थे बेवकूफ और फजीहत । दोनो मे लड़ाई हो जाती थी और थोड़े ही मे मेल हो जाता था। उनमे लड़ाई चलती ही रहती थी, पर उससे कुछ बिगड़ नही जाता, क्योकि जल्दी मेल भी हो जाता था। एक दिन ऐसी लड़ाई हुई कि दोनो ने घर छोड़ दिया। वह बेवकूफ गाव मे जाकर पूछता है कि क्यो भाई, हमारी फजीहत देखी है? पूछा –क्यो क्या भाग गई ? कुछ उत्तर नही दिया। ५ से पूछा, ८ से पूछा, कुछ पता न चला। एक अपरिचित आदमी था। पूछा कि भैया, तुमने हमारी फजीहत देखी है। उसने पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? बोला कि मेरा नाम बेवकूफ है। उसने कहा कि भाई बेवकूफ होकर भी तुम्हे क्यो फजीहत की तलाश रहती है? जरा उल्टा बोल लो, उससे ही दूसरे लोग लाठी, घूसा, जूते इत्यादि मारने के लिए तैयार हो जावेगे। तुम्हे तो हर जगह फजीहत मिल जावेगी।

इसी तरह यहा भी जो अज्ञानी है, मिले हुए स्वरूप को नहीं अपनाते, अपनी ओर नही झुकते, अपने मे वह प्रभु समाया हुआ है– ऐसा जब तक नही जानते और बाह्यपदार्थो को तरसेगे और उनकी तरफ झुकेगे– ऐसे अज्ञानी बने रहेगे। ऐसे मोही जब तक बने रहेगे तब तक इस मोही की विपत्ति की क्या कमी है? किसी भी स्थिति मे रहे । धन बढ़ गया तो क्या? अच्छे कुल वाला बन गया तो क्या? कुछ भी हो जाय। आत्मा की वर्तमान स्थिति तो पर्याय ही है। कुछ भी बन जाय मगर विपदा नहीं छूटेगी, चाहे तीन लोक मे उसकी सम्पत्ति एकत्रित हो जाय। वह सम्पत्ति उसके हाथ मे आयेगी क्या?

यह मै स्वय दृढ़चैतन्यस्वरूप हूॅ, इसमे दूसरे का प्रवेश नही। यह खुद ही अपने को बुरा बनाकर, बुरा देखकर दुखी हो रहे है । इसको दु खी करने वाला दुनिया मे दूसरा नही है। अन्य तो अन्य ही है, पराए तो पराए ही है, उनसे मेरी भलाई की मुझे क्या आशा? मै, मै ही हूॅ, मेरे से मेरे को मै ही कल्याण स्वरूप होता हू। ऐसा हमे होना चाहिए। यह मै स्वय ज्ञानानन्दमय हूॅ अथवा गुणो की प्रति समय परिणतिया हो रही है। बस इतनी बात है कि जब किसी पर की ओर दृष्टि करके परिणति बनती है तो केवल अज्ञान और दु ख की परिणति बनती है । सब कुछ बनाने वाला मै ही हूॅ। आत्मा के सुझाव से आत्मकल्याण होता है, स्वय होता है, भरपूर होता है। ऊपर से ही दु ख होता है आनन्द तो पड़ा हुआ है। क्योकि आनन्दस्वरूप मै ही हूॅ। पर यह जीव प्रभु है ना। तू अपनी बर्बादी इस प्रकार बतला

रहा है कि बाहरी पदार्थो की दृष्टि करके अपने मे आनन्द प्रगट करेगा, अन्य जगह से आनन्द नहीं लाना है। केवल जो अपना क्लेश बना रक्खा है उसका परिहार करना है। देखो यह बात अन्य पदार्थ से नहीं होगी। अन्य पदार्थ तो यदि किसी काम मे निमित्त हो सकता है तो उसके उल्टे काम मे ही निमित्त हो सकता है। केवल अशातिका ही निमित्त हो सकता है। जन्म मरण के चक्कर मे पड़े रहना पसद हो तो परपदार्थ इसमे निमित्त हो सकता है। परन्तु परपदार्थ हमारे किसी हितके कामके नही, सूक्ष्मदृष्टि से देखो तो यहा तक देखते चले जाओ। सत्सग है, सत है, परमात्मा है, ये भी तो परपदार्थ है। परमार्थ सभी मेरे भलेके लिए नही होते। मेरी भलाई उनसे बाहर रहनेमे है। पर अपेक्षित बात होने से ऐसे ही कहा जाता है कि सब साधु, सतदेव ये सब मेरे हितकर है। जैसे परमार्थदृष्टि से वे प्रभु बने है, उनसे ही दृष्टि करने का उत्साह इनमे मिलता है। सत, देव, साधु,गुरु,सत्सग इत्यादि जिन परिणामोमे निमित्त होगे वे परिणाम शुद्ध होगे। साधारण शुद्धपदार्थ की दृष्टि मे प्रत्येकको विवाद नही। शुभ अशुभमे आपको विवाद है। पर वह ऐसा शुद्ध है जो मोक्ष मार्गमे हमे अधिक बाधा न दे। जैसे कोई आदमी शिखरजी के पहाड़ पर चढ रहा है। दो, ढाई मील चढ़ने पर अधिक थक गया। एक वृक्षके नीचे बैठ गया १० मिनट के लिये। हमे वतलाइये कि वह जो १० मिनटके लिये बैठ गया, वह यात्रामे साधक है या बाधक ? उस जगहपर बैठ जानेसे यात्राका काम रुक रहा है या बन रहा है? परमार्थसे साक्षात् देखो तो रुक रहा है एक दृष्टि से देखो तो यात्रा का काम बन रहा है क्योकि वह थक गया था, आगेको चल नहीं सकता था। वह स्फूर्ति लेगा । शक्ति लेगा। इसको क्या कहेगे? उस १० मिनटके बैठनेको साधक भी कह सकते हैं । बाधक भी कह सकते है। परमार्थ से तो बाधक है ? परम्परा से साधक भी है। इसी तरह से यह शुद्ध परिणाम हमारा मोक्ष मार्ग मे साधक है ? या बाधक है ?परमार्थसे तत्काल तो वह बाधक है, क्योकि तत्काल तो वह एक विकल्प अवस्था है परन्तु वह जहा विषयकषाय मे रहनेसे अधिक हानिमे था, आत्मबल शिथिल हो गया था, अपने आपको खोया हुआ सा बैठा हुआ था, सो तो अब साधुवो, सन्यासियोके स्मरणके प्रसाद से स्फूर्ति आ रही है, एक बल पैदा हो रहा है। उस विषयकषायसे दूर होकर आत्मा के अतरमे जाऊगा– इस स्फूर्तिके योग्य बन रहा है। देव गुरु भक्तिमे वस्तुतः वह भी तो एक विकल्प है अतः बाधक है, पर एकदृष्टिमे वह साधक है अथवा किसी भी परपदार्थमे दृष्टि करे तो वह साधक है अथवा मैं किसी भी परपदार्थ मे दृष्टि करू, तो मेरे किसी काममे निमित्त हो सकता है।शातिमे आत्मबुद्धि ज्ञानके अनुभवमे कोई निमित्त नहीं हो सकती है। इसका कारण यह है कि वह अनुभूति जिसको हम ज्ञानमे रख रहे है वह स्वाधीन है। मै एकसे उत्पन्न होने वाला हूँ। एकमे उत्पन्न होने वाला हूँ। मेरा दूसरो से मेल नहीं है। मुक्ति का, किसी शुद्ध आनन्द का, किसी कल्याण का, किसी दूसरे से मेल नहीं है। इसीलिए जहा भी होगे अकेले ही होगे, सहज होगे, स्वरूपमात्र होगे, अन्य तो अन्य ही है। वह तो जितना भी जब कारण होगे तब विकल्प के कारण ही होगे। परन्तु यह ज्ञानानन्दघन, यह आत्मतत्व आनद से परिपूर्ण स्वय है। सो आनद का आश्रय करने से आनन्द ही होगा। तो मै अपने ही अर्थ मे अपने ही प्रयोजन मे अपनी ही दृष्टि बनाकर कोशिश करू और अपने मे अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

मेरी जिम्मेदारी करने वाला इस लोक मे कोई नही, मेरी शरण, रक्षक, अधिकारी, मालिक इस लोक मे कोई नहीं है। अरे दूसरो की आशा करना क्या है? वह दूसरे भी सब मेरी ही तरह असहाय है। दु ख मे, क्लेश मे पैदा होकर चक्कर काट रहे है। जैसा मै हूँ वैसे वैसे ही सब है।

जैसे नदी मे डूबते हुए चार छ आदमी है जो तैरने का काम नहीं जानते है और इकट्ठे एक जगह आ गए है। गहरे पानी मे उनमे एक को दूसरे से क्या आशा है ? क्या वे एक दूसरे का हाथ पकड़कर बच सकेगे ? वह तो सब डूबने के लिए है।

इसी तरह इस विभावमय ससार मे डूबते हुए प्राणी, परिवार सब अथाह जल मे डूब रहे है तो हम कैसे उद्धार कर सकते है ? यह किसी मोह को बसाकर उपयोग मे सुख शान्ति की आशा करते हैं। यहा कोई रक्षक नहीं, तेरा रक्षक तू ही है। साधुवो ने गुरुजनो ने चेतावनी दी है, जागते रहो लुटेरे हैं, श्रद्धा से लुटोगे। फिर तुम्हे कौन माफ कर देगा ? अपना जिम्मेदार अपने को मान मोह मे बहे चले जाना यह सब क्या अविवेक नही है। जैनधर्म का पाना न पाना बराबर है। जैन सिद्धान्त कहता है कि सत्यस्वरूप एव निष्पक्षस्वरूप वस्तुओ को स्वय पहचान लो। वस्तुओ को ज्ञान मे रक्खो और परीक्षाये कर लो। परपदार्थो से तुम्हे कुछ नहीं मिलेगा।

हे आत्मन् ! खुद के स्वरूप वाले, खुद की सत्ता वाले तुम हो, फिर यह किसको अपना माना है, किसे अपना स्वरूप माना है ? अपने ही काम के लिये अपने ही आप अपनी ही दृष्टि लगाकर स्वय सुखी होने का प्रयत्न करो। सुख अपने आप मे ही मिलेगा।

आत्मलाभस्पृहैव कामे तदन्यत्रास्तु मा गतिः।
नश्यत्वन्तर्जगच्चाद स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।1-37।।

अर्थ- **मेरी तो एक आत्मप्राप्तिकी ही इच्छा है उससे अन्य स्थान में मेरी गति न हो, और यह अन्तर्जगत भी नष्ट हो जावे जिससे मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।**

ज्ञानी पुरुष सदा सहज आनन्द की ही भावना करते है। जो अपने आप जैसे है तैसा ही अपना स्वरूप निरखते है, वे ज्ञानी पुरुष है। उन्हे विकार स्वीकार नहीं है। सर्वविकार से हटे हुए निज स्वभाव की दृष्टि वाले है वे एक शुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र अपने को निरखा करते है, इस ही मे उनको लाभ जचता है। अत वे आत्मा को आत्मा मे रमाते है। ज्ञानी आत्मा ने अपनी दृष्टि से अपने को अपने मे मिलाकर अनुपम ज्योतिका दर्शन किया है। किसी भी पर मे उनको लाभ नही दिखता है। इसी कारण से ज्ञानी पुरुष ऐसी भावनाये रखते है कि मेरी तो केवल आत्मलाभ की ही चाह है। यह जो सम्पत्तिया आती है, पुण्योदयवश आती है। उनमे किसी प्रकार की आसक्ति का होना तो बहिरात्मपने की बात है। ज्ञानी को उसमे भी बहुत वियोग बुद्धि बनी रहती है। इस विभूति से, इस नटखट से मै कब अलग होऊ, कब अपने आप मे अपने आप को देखू-इस प्रकार इस समस्त जाल मे वियोग बुद्धि रहती है। केवल एक चाह है,जैसा मै सहजस्वरूप हूँ वैसे मै अनुभव मे रहूँ, वैसे उपयोग मे रहूँ, केवल एक यही चाह

है। इसके अलावा कहीं मेरी बुद्धि न जाय। वैसे तो भुक्त भोगी के नाते सभी को विरक्त हो जाना चाहिये क्योकि विपत्तिया तो सभी मे आती हैं, वे तो सभी मे दौड़ती है, कितु मिथ्यात्व की ऐसी प्रबलता है कि दु ख के गड्ढे मे भी हसकर बसते हैं। अब ज्ञानी के निकट ससार है। सम्यक्ज्ञान का उदय है, इस कारण जो भीतर का अनुभव होता है, उसका स्मरण होता है और उन स्मृत अनुभवो से उनके दिल मे यह बात घर कर लेती है कि परपदार्थो मे आत्मबुद्धि लगाने से शान्ति मिलना तो दूर की बात है अशान्ति ही अशान्ति रहती है। समस्त पदार्थ उन्हीं समस्त पदार्थो मे है, उनकी सत्ता अन्यत्र नहीं रहती,। उनसे मेरी परिणतिया नहीं बनतीं और न आकुलता ही समाप्त होती है। घर मे पुत्र है, माता पिता है, स्त्री है, चाहे कैसे ही आज्ञाकारी हो, वे अपने कषायभाव के कारण आज्ञाकारी बने हुए हैं, वे अपने सुख की आशा से आज्ञाकारी बने हुए हैं। कोई दूसरी वजह से आज्ञाकारी नही बने हुए है। आपको सुखी करने के लिये वह आज्ञाकारी नही है। वह खुद अपने को सुखी करने के लिये आज्ञाकारी बने हुए है। और ऐसे जितने भी जगत् के जीव हैं उनकी जो-जो चेष्टाये है अपनी ही शान्ति की आशा से है। आपको शान्ति की चाह है तो आप मे कोई आशा बनना आपकी अपनी शान्तिके लिये है। जब आप के चित्त मे यह बात जम जायेगी कि उनकी तो मेरी शान्ति की चाह है, तो आप उन लोगो के लिये परिश्रम करेगे सुखी करने के लिये। पर परमार्थ से कोई किसी को शान्ति नही कर सकता और न चाह सकता है। कभी लगता होगा ऐसा कि चाहा तो करता है कोई दूसरो की शान्ति, किन्तु ऐसा नही है। अपने को शान्त रखने के लिये कोई ऐसा करता है वह न दूसरो को शान्ति कर सकता है और न दूसरो की शान्ति चाहता है, चाह ही नही सकता। दूसरो की परिणति से दूसरो का रंच भी सम्बन्ध नही तब ऐसे पदार्थ मुझ से विमुख हैं। कितनी ही आराधना करे, ध्यान करे, परपदार्थ कभी भी मेरी ओर नहीं आ सकते हैं। वह तो अपने मे ही रहेगे। जब जगत् का ऐसा स्वरूप चल रहा है तब किसी भी परपदार्थ को अपना मानना यह कितनी मूढ़ता है, लगती है अपने को मामूली वात, किन्तु इसका फल होता है अनन्त ससार। अपनी मोह ममता बड़ी सस्ती रहती है। मोह करना, प्रेम करना, परपदार्थ को अपना मानना कितना सस्ता लगता है, किन्तु यह महगा बहुत पड़ेगा। नरक मे कुयोनियो मे रहकर दु ख भोगना पड़ेगा।

भैया! अव तो सजग रह ले, सावधान हो ले और विवेक कहते है किसको? यथार्थ विवेक ज्ञानी पुरुष से छिपा हुआ नहीं है। देखो ना अब तक सव कुछ चाह चाहकर सारे समय व्यतीत कर डाले, पर इस आत्मा के साथ क्या रहा? इस ही भव मे बचपन से लेकर अव तक कितने प्रकार की चाहे कीं, उन चाहों से जो कुछ लाभ हुआ हो तो वताओ, वे सब स्वप्न की बात रह गई। गई सो गई उनमे जो विकल्प और पाप कर डाले उनका फल तो कुछ है नहीं। बाकी तो इन पापो का फल जब समय आयेगा, होगा। होगा क्या? बरबादी होगी । पाप ही केवल हाथ है। पाप क्या कोई अच्छी चीज है? यही तो दु ख का कारण है और यदि अपने उस ज्ञानमय चैतन्यस्वरूप की इच्छा हुई, इस ओर दृष्टि द्वारा प्रयत्न हुआ तो कुछ पल्ले भी रहेगा। मैं बाहर की ओर रहा इससे मेरे पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा अव केवल

यही चाह है कि मेरे मे केवल आत्मस्व रूप का ही उपयोग बना रहे। यह समस्त जगत् जैसा है वैसा जानता भर रहूँ। यह मेरे दु ख का कारण नष्ट हो जावे, यह मैं नहीं चाहता क्योंकि वह दु ख का कारण ही नहीं है उसे दु ख का कारण समझे और जो सुख का कारण नही है उसे सुख का कारण समझे । बस ये ही खोटी समझ मेरी दूर हो, यह वाह्य जगत् दूर हो। इसका भी मुझे विकल्प नही । यह कहा दूर होगा? यह भी सत् है। यह सदा रहेगा। केवल मुझमे उठने वाली तरंगे समाप्त हो जाये। वाह्य पदार्थो से विगाड़ समझते है, वह समझ मेरी दूर हो। यह वाह्य जगत् नष्ट हो यह मै नहीं चाहता यह अन्तर जगत्, मेरी भीतर की दुनिया, भीतर का ससार, भीतर का कुटुम्ब, भीतर के विकार ये सब समाप्त हो—यह मेरी चाह है। बाहरी पदार्थ आपके भीतर नही है। वह तो वह ही है, आप आप ही हैं, किन्तु किसी एक जीव मे वह मेरा पुत्र है,ऐसी जो भीतर की कल्पनाये है ये आपको दु खी कर रही है। बाहर का कोई कुछ नही है— हा भीतर से कल्पना मे बस गया कि यह मेरा पुत्र है , वही कल्पना पुत्र बनकर आपको दु खी कर रही है। बाहर कोई आपका पुत्र नही । इसी तरह धन वैभव की बात है। बाहरी धन वैभव से आप अपने को धनी न अनुभव करे। मेरे पास कितना धन वैभव है? इस प्रकार की भीतर मे जो कल्पनाये आ गई है। उन कल्पनाओ से अपने को धनी अनुभव करते हो, बाहरी वस्तुवो मे आप पर कुछ असर नहीं है। क्योकि बाहरी पदार्थो को सोच सोचकर जो अपना परिणाम बनाते हैं उन परिणामो का क्या असर है। मुझमे मेरा असर है दूसरे मे मेरा असर नही आपका आप पर असर है, दूसरे पर नही।

मे रमे तव उनको शान्ति मिली? सीता जी मोह के राग मे विचरती रहीं, उनकी सारी कहानी देख लो। उनको शान्ति कब मिली जब सम्यक् ज्ञान के जोर से अपने आप ज्ञान किया और उसमे ही लीन हुई तव शाति प्राप्त हुई। इस जीव को इस जगत् मे कोई शान्ति देने वाला नही, कोई दु खो से दूर करने वाला नहीं । अपना यह विवेक, अपना यह ज्ञान अपनी रक्षा कर सकने वाला है।

इसी कारण ज्ञानी जीव के ऐसी भावना जगती है कि मेरे को केवल आत्मा का लाभ हो, यही इच्छा है। परमार्थ दर्शन के अतिरिक्त, ब्रह्म प्राप्ति के अलावा अन्य किसी मे मेरी मति न जावे, अन्यत्र कहीं भी मेरी मति न हो। मेरा यह अन्तर जगत नष्ट हो। मै इस दुनिया के बीच मे ही हूँ, और रहूँगा, सदा रहूँगा। सिद्ध प्रभु को देखो वह भी मुक्त होकर दुनिया से बाहर नहीं है, दुनिया मे ही है। राम, हनुमान इत्यादि महापुरुष सिद्ध हो गए और सिद्ध होकर इस दुनिया के अन्दर हैं दुनिया से बाहर नहीं। मोक्ष स्थान इस लोक के अन्दर ही तो है। इस लोक से बाहर नहीं है। दुनिया मे रहने से मुक्त आत्मावो का कोई विगाड़ नहीं, पर मैं दुनिया मे रह लू तो मेरी ही बर्वादी है, जैसे नाव पानी मे रहती है, वह जल को छोड़कर जावे कहा, पानी मे नाव रहने से बिगाड़ नही किन्तु नाव मे पानी रहने से बिगाड है, नाव पानी मे बैठ जायगी। मैं दुनिया मे हूँ इससे मुझमे बिगाड नहीं, पर मै दुनिया को बसा लू तो मै ही बिगाड़ करने वाला बन बैठा हूँ। यही बिगाड है, अतर जगत् की सफाई कर लो, वाह्य की सफाई की चिन्ता न करो। हमारा अतर जगत् हमने किया है तो अपने अतर जगत् के मिटाने का हमे अधिकार है। इस अतस्तत्व के बनाने का, समुन्नति करने का हमे अधिकार है, हमे अपने आप मे ही कुछ बनाने या मिटाने का अधिकार है, किसी दूसरे को बनाने का अधिकार नहीं है, और मेरी ही यह उन्नति मेरी ही आत्मा की उन्नति का नाम है, और उन्नतिका उपाय है कि परमार्थ का दर्शन किया जाय, कितने लाभ की बात है सदा के लिये छूटने की बात है, अत्यन्त पवित्र हो जाने की बात है और उसका उपाय भी कितना सरल है, कितना मुफ्त है। अपने मे दृष्टि ला लाकर औरवाह्य पदार्थो को भूल भूलकर केवल ज्ञानमय, चैतन्यमात्र, जगमगस्वरूप ही अपने को मान लो । इतनी बात मे कितना आनद भरा है? इसके उत्थान का यही उपाय है कि जिसको समता करने वाला और कुछ नहीं है, और उसे करने के लिए हम सव समर्थ हैं। कीडे-मकोड़े होते तो कहा जाता कि हम विवश हैं, कोई खोटा सग होता तो मै कहता कि भाई मैं क्या करु विवश हूँ। यहा तो आराम है, कमाई से भी किसी की चिन्ता नहीं करना है, खूब खाते पीते हो अन्यथा शिकायत तो कहीं भी समाप्त न होगी। हजार और लाख की भी आमदनी हुई तव भी कुछ नहीं है। ऐसा विचारने मे क्या देर लगती, ऐसा वोलने मे जीभ के हिलाने मे क्या देर लगती? वैसे तो सव कुछ है कोई कष्ट नहीं, तृष्णा की बात अलग है। लाखो की आमदनी भी हो तो और चाहिए। ऐसा सोचा जा सकता है। यह तो आपके मन की वात है।

यदि आप शान शौकत दिखाते है तो यह अधर्म की वात है। पर कोई चिन्ता नहीं, कोई बात नहीं आराम से रहते हो। ज्ञान इतना हो गया है कि सोचने समझने की शक्ति है,धर्म को पकड़ने की शक्ति है, आत्मा के तत्व को पकड़ने की शक्ति है। ऐसी अवस्था मे भी हम अपने में जरा भी हिम्मत

नही कर सकते तो क्या विवेक है ? जैसे जाड़े के दिनो मे कुछ लडके मिलकर तालाब मे नहाने जाते हैं तो तालाब के पास गए ओर किनारे के पत्थर पर या भीत पर बैठ गये। नहाने मे डर लगता है, जाड़ा लग रहा है। पानी मे कैसे जावे? उनको शाति नहीं है। पर चबूतरे से कूदकर पानी मे गिर जावे तो आधे मिनट मे ही सब जाड़ा खत्म हो जाय। वह एक सेकेन्ड का साहस तो करे, इतना कर ले और फिर अच्छी तरह नहाकर अपने घर आ जावे, पर इतना साहस नहीं करते हैं, बैठे रहते है और बाते करते रहते हैं, हिम्मत नही करते है तो बिना नहाए ही घर चले आवेगे। इसी तरह भैया हम धर्म करने के लिए चाहे जो चाहते हैं, परन्तु किसी क्षण हम यथार्थ पूर्णतया मान जाये, हम अपने कल्याण के रास्ते मे लग जावे।

बहुत से लोग ऐसे हैं जो धर्म की ओर आते ही नहीं है और धर्म की ओर आने की भीतर से प्रवृति ही नहीं है। कितने ही मनुष्य भरे पड़े है। हम आप तो कितना निकट आ गए हैं। जो वाणी सुनते हैं, इसके तत्व को हृदय मे रखते है, कल्याण की इच्छा भी रहती है। अभी थोड़ा काम और बाकी है। किसी क्षण वस्तु के स्वरूप को देखकर हिम्मत तो कर लो कि यह मै चिच्चमत्कारमात्र आत्मा हूँ, मेरे स्वरूप मे केवल मै ही हू। अन्य जीव के स्वरूप मे केवल वे ही है। उनसे मुझमे कुछ नही आता और न मेरे से कुछ उनमे जाता है। किसी से किसी का कुछ सम्वन्ध नहीं। इस तरह अपने शुद्ध स्वसत्तामात्र चैतन्यस्वरूप को मान लेने की हिम्मत तो बनाओ। फिर अनुभव का आनन्द पाकर अपने घर मे मौज से बैठो, परमात्मा की तरह सदा आनन्दमय रहोगे, ससार के सारे विकल्प समाप्त हो जायेगे। ज्ञानी मनुष्य की केवल एक चाह है कि उसको शुद्ध आत्मतत्व लाभ हो, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मेरा यह अन्तर जगत् नष्ट हो और मैं अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

यत्र चित्तस्य न क्षोभ· स्वे वैकान्ते वसान्यहम्।
जनव्यूहे हितं किं मे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-३८।।

अर्थ– जनसमूह में मेरा क्या हित है? इसलिये जहा चित्त को क्षोभ न होवे ऐसे निज आत्मा में अथवा एकांत में मैं रहूं और अपने में अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

जहा चित्त को क्षोभ नहीं है, मन मे अशान्ति नहीं है, आकुलता व्याकुलता नही है, ऐसे विज्ञानघन स्वरूप अपने मे मैं रहूँ। वह अपना कहा है तो परमार्थ से देखो तो वह अपना अपनी आत्मामें ही है।अपने आपकी आत्मा को शुद्ध, सबसे निराला, अपनी सत्तामात्र जैसा सहजस्वरूप है उस रूप को निरखता हूँ। मैं सबसे उत्कृष्ट स्वय एकान्त हूँ, मनुष्य के सम्पर्क मे हूँ तथा मै मनुष्य हूँ आदि विकल्प के सम्पर्क मे तो अशाति आयेगी। मै एकान्तवासी हूँ। जैसा शुद्ध एकाकी निजस्वरूप है उस स्वरूप मे बसने को एकान्त का निवास कहते हैं और जहा अपने स्वरूप से हटकर किन्ही विकल्पो मे पड़े बस वह एकात से पृथक् है। वाह्य एकान्त निश्चय एकान्त के तैयार करने मे सहायक है। वाह्य एकान्त से शान्ति नहीं आती, पर अन्तरङ्ग एकान्त से शान्ति आती है। यह आत्मस्वरूप शान्ति और आनन्द का भण्डार है। इसको अकेले निरखो, शुद्ध विधान से देखो-तो इसमे से शाति और आनन्द प्रगट होगा और यदि इसमे कुछ दूसरापन

आ गया तो शाति और आनन्द मे कमी पड़ जायगी। इस मनुष्य के समूह मे क्या कुछ हित है? इन विकल्पो के बीच मे पड़कर बहुत हानि है। विकल्प करते-करते अनन्तकाल व्यतीत कर डाले, पर आज देखो ससार का प्राणी किस परिस्थिति मे है। इस जगत् के प्राणियो ने जगत् के अन्य जीवो को अपना माना। इतनी हैरानी कर डालने पर भी जिधर देखो उधर जीव दीन हीन ही बसे हैं। आज जो हम आपने स्थिति पाई है उसमे अपना काफी उद्धार का उपाय किया जा सकता है, पर उस अपने को अपना काम करने की रुचि होनी चाहिये। जो अपने थोड़े समय के लिये जैसे आया है वैसे ही मिट जाता है, वह अपना गौरव कायम नहीं रख सकता है। यह जगत् एक मायाजाल है। इस जगत् मे जो वाह्य आनन्द मिलता है उसमे भी यह प्राणी दु ख ही पाता है। अतएव इस वाह्य सम्पर्क की रुचि मे कोई हित नहीं है। मेरा जो विकल्पजाल है, वह जजाल है।

हम समाज मे गृहस्थी मे रहते हुए भी फसे नही है, क्योकि जो विकल्प नहीं रखते हैं वे नहीं फसते हैं। यह आत्मा तो एक ही है, अपने स्वरूप मे है। इसका इससे बाहर कुछ नहीं है, किन्तु अनुभव तो होना आवश्यक है। उसके लिये भी क्या करना है? बस समझना ही समझना है। बाहर से किसी को कैसा ही मान ले, इसमे कुछ बाहर से फेर पड़ने का नही, बस अपने आपको मान लो। ये पर बुद्धिया तो सब चक्कर हैं। इन्हीं मे पड़े हुए हो। मान लो कि यह मेरा लड़का है, इससे आत्मा मे क्या गुण हो गया? अरे वह मेरा नहीं है, वह तो एक दूसरा पदार्थ है। मेरा किसी भी पर से कुछ सम्बन्ध नहीं। सब अपनी-अपनी कषाय में चलते हैं। किसी पर को मान लेने से कुछ अपना हो जाता हो, ऐसा नहीं है। पर को अपना मान करके अपने को अधेरे मे और डाल लेते है। अपने स्वरूप का अनुभव किसी प्रकार हो कर लो। बस एक ही कार्य कर लो जिसका सानी और कुछ नही है। ऐसा भी कोई निरापद स्थान है तो वह है जहा आत्मा का शुद्ध दर्शन है। जिसको इस उपयोग मे विराजमान कर हम शान्त रह सकते हैं। जनसमुदाय मे, परिणमन वुद्धि मे हम क्या कर सकते है? अपने एकान्त मे हम रहे तो अपने मर्म का हम पता लगा लेगे। समस्त आपदाओ को सहकर भी मै इस निज एकान्त मे बसना चाहता हू।

आज जो रक्षावन्धन का दिन है। क्या हुआ था कि इसी दिन इस तिथि को आज से लाखो करोड़ो वर्ष पहले चतुर्थकाल में एक महान् ७०० ऋषियो मे अथवा ऋषिगणो मे जिनमे अकम्पनाचार्य प्रमुख थे, वे सब इसी हिन्दुस्तान में एक बार उज्जैन नगरी मे एक जगह ठहर गए। वहा बहुत से लोग दर्शनार्थ गए हुए थे। राजा भी गया । उन मन्त्रियो को भी साथ मे ले जाना पडा था जो धर्म से द्वेष रखते थे। अकम्पनाचार्य जी ने निमित्त से यह जान लिया कि यहा कोई विपत्ति आवेगी। सब मुनियो से कह दिया कि यहा सबका मौन रहेगा जब तक यहा ठहरेगे। जब यहा सब दर्शन को गये तो मोही मत्री भी दर्शन करते रहे किन्तु किसी ने उनको कुछ नहीं कहा। मत्री कहते थे कि राजन् देखो ये सब बेवकूफ है, मूर्ख हैं, वे सब समझते होते तो बात तो करते। वापिस जाते हुए उन मन्त्रियो को श्रुतसागरजी मिले, जो आहार करके वापिस आ रहे थे और जिन्होंने आचार्य जी का उपदेश न सुन पाया था। उन मुनिजी से मत्रियो

ने विवाद छेड़ दिया। परन्तु विवाद मे वे मत्री हार गये। मत्री लोग अपने अपने घर चले आए और उन्हे इस गति का बहुत बड़ा धक्का लगा। जब यह घटना आचार्य को मालूम हुई तब यह सोचकर कि सघ पर सकट आयेगा, सो श्रुतसागरजी को विवाद स्थान पर ही रात्रि मे प्रतिमायोग करने की आज्ञा दी । रात मे सब मत्री तलवार लेकर पहुचे। श्रुतसागर जी को देखकर मत्रियो ने सोचा कि इसी को मारो। सबको मारने से क्या फायदा? मत्रियो ने श्रुतसागरजी पर तलवार एक साथ चलाई पर वे मत्री कीलित हो गए। एक भी तलवार उनपर न लगी। राजा भी सुबह आए, बोले– इन मत्रियो को फासी दी जायगी। आखिर मुनि ने वन देवता से कहा कि इनको छोड़ दो। यह सब अपने अपने कर्म के अनुसार सुख दु ख उठाया करते है, सबको छोड़ दिया । मुनिजनो ने मत्रियो का प्राणदण्ड राजा से हटवा दिया । किन्तु राजा ने गधे पर चढ़ाकर उन मत्रियो को देश से निकाल दिया । ये मत्री हस्तिनापुर मे पहुचे, वहा पद्मराजा के मत्री हो गए। यह राजा सिहबल को आधीन करने के लिए चिन्तित था। इन मन्त्रियो ने हरा करके सिहबल को पकड़ लिया । तब राजा ने मुहमागा इनाम मागने को कहा, कि जो चाहो सो माग लो। बलि मत्री ने कहा कि अभी भण्डार मे रख लीजिये, जब चाहूँगा माग लूगा। कुछ समय बाद वे साधु हस्तिनापुर पहुचे, बलि ने बदले का मौका देखकर कहा कि महाराज हमारा वचन भण्डार मे है सो दीजिए। राजा ने कहा, ले लो , क्या चाहिये? तब मन्त्रियो से सलाह लेकर बलि ने कहा कि महाराज हमे ७ दिन का राज्य दे दो। बस क्या था राज्य मिल गया। अब तो बलि ने उन साधुओ को बाड़े मे वेड़ दिया। अपवित्र वस्तुये जला दी, और ईन्धन भी। सब लकड़ी कडा आदि मे आग लगा दी। साधु जलने लगे। श्रावण शुक्ला चतुर्दशी की रात थी। श्रवण नक्षत्र कापा, कही पर्वत पर बैठे दूसरे मुनि ने ज्ञान से जाना। उन्होने एक क्षुल्लक जी को मुनि विष्णुकुमार के पास भेजा। क्षुल्लक जी ने कहा कि महाराज ऐसा उपसर्ग हुवा है आपको विक्रिया ऋद्धि है, आप उसे दूर कर सकते है। विष्णु जी ने विक्रिया ऋद्धि जानने को हाथ पसारा, पसारते ही रह गए। तब राजा के यहा मुनिराज विष्णु बावनरूप धारण कर पहुँचे । बोले–महाराज हमे कुछ मिलना चाहिये। महाराज ने कहा कि जो चाहो सो माग लो। मुनिराज विष्णु ने कहा कि महाराज हमे तीन कदम भूमि चाहिये। महाराज बोले कि १००, ५० कदम माग लो, तीन कदम से क्या होगा महाराज विष्णु ने तीन ही कदम माँगी। मुनिराज विष्णु से बलि ने सकल्प किया । तब मुनिराज विष्णु ने अपना रूप बढ़ा लिया। एक पैर तो मेरु पर्वत पर, दूसरे से मानुषोत्तर पर्वत घेर लिया। अब तीसरा पैर रखने को जगह नही रही। अब राजा बलिका बस नहीं चलता कि वह क्या करे? सब लोग थर्रा गए। कहा, महाराज कष्ट निवारण करो, शात होओ, मुनिराज विष्णु ने अत्याचारी मत्रियो को धिक्कारा व उपसर्ग शान्त कराया।

तब से यह रक्षाबन्धन चला है। धर्म के कार्यो मे सब सावधान रहो व अपनी रक्षा करो। कैसे भी उपद्रव आवे हम उनसे विचलित न होकर अपनी ओर दृष्टि करे। धर्म मे हानि होती हो तो उसे भी न होने दे। अधर्म को खुद न होने दे, इसका यह सूत्र है।

जिसने अपने बल से ऋषियो के उपसर्ग दूर कर दिये, वह मुनिराज विष्णु थे। कितने ही सकट

थे, महान् आत्माओ, ७०० ऋषियो की रक्षा करके विष्णु मुनिराज समाधिविचलन का प्रायश्चित लेकर फिर समाधिस्थ हो गए। महात्मा लोग फिर अपनी तपस्या मे लग गए।

इस जगत् म अपना क्या है? यह परिवार, कुटुम्ब इत्यादि त्याग करके यदि अपने धर्म की रक्षा करनी पडे तो धर्म की रक्षा कर लो। यदि तुम्हारे अतरग मे धन, वैभव इत्यादि का मोह आए तो उसका त्याग कर लो। मेरी बुद्धि धर्म के कार्यो मे हो, बुद्धि निर्मल हो, ज्ञानमय हो, ज्ञान का प्रसार हो, धार्मिक कार्यो की प्रीति बढ़ावे । ऐसे कार्यो के लिए अपना कुछ उत्सर्ग भी करना पड़े तो वह भी करना चाहिए।

मेरा धन मै ही हूॅ। मैं ही सब कुछ हूॅ। इस ससार मे यह शरीर नही रहेगा, यह घरद्वार भी नहीं रहेगा, यह धन वैभव इत्यादि भी यहा कुछ नही रहेगा। यह सब अपनी अपनी परिणति से है और अपनी ही परिणति से चले जावेगे।

जगत् वाह्यपदार्थो मे मोह की नींद का जो स्वप्न हो रहा है, इसमे नाना विकल्प जग रहे है और कीचड अपने मे लपेट रहे है जिसके फल मे भविष्य का फल भी बिगडेगा। अपने शुद्ध फल को बनाने के लिए और दूसरो से बर्बादी न होने देने के लिए साधारण सहज भाव मे अपने अपने उपयोग को वनाते रहे। हम इस सहज चैतन्यस्वरूप से बढ़कर कुछ नहीं है। धर्म ही आनन्द की खान है। ऐसे धर्म मे हम लगे रहे। यदि धर्म के कार्यो मे हमारे क्षण गुजरे तो समझो कि हमारा जीवन सफल है और मोह चिन्ता मे अगर हमारी क्षणे गुजरती है तो समझे की जहा हमारी आखे मुदी तहा सब कुछ यहा का यहीं खत्म है। परमार्थ से तो जब अपन गए ही। यदि धर्म की ओर हमारी दृष्टि है तब जीवन सफल है अन्यथा नही।

ऐसा कौनसा स्थान है जहा रहने पर क्षोभ नही हो, वह स्थान बाहर कही भी नही मिला। क्योकि वाह्य से अपने आपसे कोई सम्बन्ध नहीं है, बाह्यपदार्थ न तो क्षोभ का कारण होता है और न शाति का कारण होता है। वह स्थान तो स्वय यह ध्रुव आत्मा है, जो अपने सब परिणमनो का स्रोत है, आधार है, वह मैं ही हूॅ। यह मै सबसे निराला, शुद्ध चैतन्यमात्र भगवान आत्मा हूॅ, ज्ञानमय हूॅ, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि रूप मेरा परिणमन होता है, किन्तु ये सब पर्याये है दूसरे क्षण नहीं रहती है। ये सब रूप पर्याय ये जिस शक्ति की होती है वह शक्ति मैं हूॅ, वह है ज्ञानशक्ति। वह ज्ञानशक्तिमात्र मै हूॅ। ऐसा यह मात्र ज्ञानस्वरूप मैं स्वय एकात हूॅ। इस एकात मे मै वसू तो वहा कोई क्षोभ नहीं है। ऐसे इस निज सहज ज्ञायकस्वभावमय अपने आपमे मैं रहूॅ और स्वय स्वय मे सुखी रहूॅ। सुखका अर्थात् आनन्द का एकमात्र उपाय यही है। आनन्द यहीं हमारी आत्मामे है। यह सहजआनन्द तो प्रगट होने के लिए अनादि से इसी की बाट जोह रहा है किन्तु यह रागादि भाव उस पर अनादि से ही पानी फेर रहे हैं। यह रागादि भाव मात्र मायाजाल है। यहा सारा ठोस चीज कुछ नहीं मिलती, कैसे मिले यह रागादिक भाव स्वय सत् तो हैं नहीं, यह एक परिणमन है सो वह परिणमन भी जीव के स्वरूप से उठा हुआ भी नही, यह तो अज्ञान मे एक कल्पना हो गई जो प्रकृति के निमित्त से जीव मे एक झलकरूप है। उसकी अमूलता का पता

यही आत्मा अगर अपने स्वरूप मे जो इसमे ज्ञान है उस ज्ञान का परिणमन कर ले तो इतना ही यह कर पाता है । तब यह इच्छा जिसके वश मे सारा जगत है, जिसके कारण विवश होकर मिथ्यात्व, अन्याय अभक्ष्य का सेवन करता है। ऐसी इच्छा यह है क्या? यह इच्छा आत्मा की चारित्र शक्ति का विकार है, आत्मा का जो चरित्र गुण है, जिसका स्वाभाविक विकास आत्मा मे रम जाने का है, सो स्वाभाविक विकास न होकर वैभाविक विकास जब चलता है तो यह परिणमन होता है। चारित्र गुण के विकार लोभ, मोह आदि है। लोभ की ही एक प्रकार की इच्छा है, और इच्छा जीव मे होती है और अपने जीव को ही चाह सकता है। मै क्या चाह सकता हूँ? क्या मै धन चाह सकता हूँ? धन कभी नहीं चाह सकता हूँ। आप क्या धन की चाह करते है? आप धन नहीं चाह सकते है। आप जो चाहते है सो अपने आपको ही चाहते । धन को नही चाहते, वैभव को नही चाहते, इज्जत प्रतिष्ठा को नही चाहते। आप जो चाहते हैं, वह अपने को चाहते है। जगत् के सभी जीव केवल अपने को चाहते है, दूसरो को नही चाहते। क्योकि यह एक परिणमन है और वह परिणमन आत्मा मे ही हो रहा है, तो उस परिणमन का कार्य आत्मा मे ही है, तो चाह मे आत्मा ही चाहोगे। धन नही चाहोगे मै धनी कहलाऊ ऐसा अपने को चाहते हो। धन को नही चाहते, परन्तु ऐसी शुद्ध दृष्टि मोह मे नही हो पाती है। आत्मा की ऐसी चाह होते समय तो वस्तुत कोई भी प्राणी अपने से बाहर किसी को नही चाह सकता । जो चाहता है वह अपने को चाहता है। मै धनी कहलाऊ ऐसी चाह है पर धनकी चाह नहीं है।

अपने आप मे जो तरग उत्पन्न होती है उसकी ही वह जीव चाह करता है। चाह की बात तो दूर रही, वाहर किसी भी चीज को यह जीव जानता नहीं, जानता है तो अपने को। वाह्य पदार्थो को नही जानता है। यह जीव स्वतत्र ज्योतिस्वरूप है। इस कारण इसका स्वरूप जानने का है। सो सब कुछ जो कुछ इसमे प्रतिबिम्वित हो , ग्रहण हो, सो इसकी ज्योति को जानता हूँ। धन को, वैभव को, कुटुम्ब को न जाना, पर अपने आप मे जो आकार आया है उसको जाना, वाह्यपदार्थो का जो आकार आया है उसको तू जानता है, वाह्यको नहीं जानता।

जैसे एक दर्पण को सामने रक्खे तो हम केवल दर्पण को देख रहे है पर पीठ पीछे दशो चीजे दर्पण मे झलकेगी। हम तो केवल दर्पण को देख रहे हैं पर उसमे दिखता है कि अमुक आदमी को देख रहा हूँ, अमुक लडके को देख रहा हूँ।, अमुक पेड को देख रहा हूँ। हम दसो को क्या देखते है? हम तो दर्पण को देख रहे है। दर्पण मे दसो चीजो का आकार बन गया, प्रतिबिम्ब आ गया, जिस पर उनको देखकर हम दस चीजो का वयान कर देते हैं। इसी तरह हम केवल अपने को जानते हैं कि अपने मे इन सब चीजो का वयान कर देते हैं। इसी तरह हम केवल अपने को जानते है कि अपने मे इन सब चीजो का आकार आ गया है। हम वताते हैं कि हम जानते हैं, पखा जानते है, बिजली जानते है, सब कुछ जानते हैं । पर वास्तव मे अपने को ही जानते है। यह अतरात्मा ज्योतिर्मय है। सबका आकार आ जाता है। हम जानते है, अपने आप मे वर्णन करते हैं सारे जगत् का । अव बतलाइए कि जब तुम्हारा इन पदार्थो के साथ जानने तक का भी सम्वन्ध नहीं है तो फिर यह मेरा है, यह उसका है, यह

सुख देता है। यह सबध कैसे हो? कोई पदार्थ किसी अन्य का कुछ है – ऐसी मान्यता करना यह सब भूल है। आपकी आत्मा दूसरे को साक्षात् जानती भी नही है। केवल अनन्तकारी होने से इस अनन्ताकार रूप परिणमते हुए आत्मा को जानता है, वाह्य चीजो को नहीं जानता। जब हम इन पदार्थो को जानते ही नही है, जानने तक का भी इनसे सम्बन्ध नहीं है तब भला अन्य पदार्थो के साथ सम्बन्ध ही क्या है?

यह मै आत्मा जगत् के सब पदार्थो से अछूता हूँ। यदि मेरा भवितव्य अच्छा है, मुक्ति मेरी निकट है, अल्पकाल मे ही भगवान् होने वाला हूँ तो यह ज्ञान मुझमे जग जायगा कि मै दुनिया मे सबसे अछूता हूँ। मै जग के सब पदार्थो से न्यारा हूँ, किसी से छुवा हूँ ऐसा नही है। ऐसा अबद्ध अस्पष्ट यह आत्मा मै अपने नजर मे आ जाऊ। मै अपने आपको , अपने आपकी आत्मा को अपने ज्ञान की ओर बिना छुवे हुए देख सकू । यह बात तो तभी आयेगी जब निकट काल मे परमात्मा होने वाला होगा। आप जब निकट काल मे परमात्मा होने वाले होगे तो अन्तर मे ज्ञान जगेगा और अपने आपको अछूता शुद्ध चैतन्यस्वरूप नजर आयेगा। यदि अपने आपको पर्यायमात्र ही मानते रहे तो इसके फल मे क्या होगा? ससार के जन्म-मरण के चक्कर मे ही तो जाना होता है । मनुष्य से मरकर पशु होते है और पशु से मरकर अन्य योनियो मे जाना होता है। ऐसे ही योनियो मे चक्कर लगाना पड़ता है तो ससार के पदार्थ जिन्दगी भर तक छोड़ नही सकेगे। अत आत्मा को बड़ा बनाने का समय है। यह महान् वनेगा तो इसकी सदूबुद्धि चलेगी और इसको ऐसे ही रहना होगा तो मोह मे वाह्यपदार्थो मे ही जकड़ा रहेगा। यह बड़े सौभाग्य की बात है जो इस आत्मा को अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप मे देखे। इससे बढ़कर ऊचा भवितव्य और नही कहा जा सकता है। स्वप्न मे बड़े हो गये तो क्या वह बड़प्पन आगे रहेगा? वल्कि स्वप्न मे देखा हुआ बड़प्पन थोड़े समय बाद मे दु ख करेगा। जैसे एक कथानक मे कहते हैं कि कोई घसियारा था। वह सिर पर घास का गट्ठा धरे जा रहा था । साथ मे ४, ५ घसियारे और थे। और एक पेड़ के नीचे बोझ उतार कर आराम से लेट गये। उनमे से एक घसियारे को नींद आ गई। नींद मे स्वप्न आ गया। स्वप्न मे देखता है कि लोगो ने उसे राजा बना दिया है। एक अच्छा महल है। वड़ी हाल मे अनेको दरवाजे लग रहे है। बड़े-बड़े राजा मुकुटधारी आ रहे हैं। लोगो के द्वारा प्रशसा हो रही है। गाने ताने हो रहे है। सब झुक रहे है। इतने मे एक घसियारा जागता है और कहता है कि चलो समय हो गया, बड़ी देर हो गई है। जब वह जाग गया तो बोला हाय, हाय मेरा सब कुछ कहा गया? रोने पीटने लगा।

इसी तरह मोह की नीद मे जो सोये हुए है उनको जो स्वप्न मे बडप्पन दिखाई दे रहा है, मैं ऐसा हूँ, ऐसा बुद्धिमान हूँ, मै भी सरकार की पहुच वाला हूँ आदि जो स्वप्न देख रहे हैं वह सच्चे लग रहे हैं। घसियारे को स्वप्न सा नही लग रहा था, अब तक स्वप्न मे था। पर जव वह जाग गया तो उसे झूठ लगा। मोह छूट जाने पर यह भी झूठा लगेगा। मोह की नींद खुल जाने पर यह जगत् का बड़प्पन अच्छा नही लगेगा। पर जब तक मोह ममत्व है, जब तक अपने को भिन्न-भिन्न नहीं परखा तब तक

यह सब कुछ है। बडा अच्छा मेरा लडका है, मेरा पोता है, मेरा बढावा है, मेरा उत्थान है, मेरा आदर है, मेरे परिवार मे लोग खुश रहे, दुनिया चाहे दु खी रहे। मेरे लड़के, नाती अच्छी तरह रहे। दुनिया चाहे जिस तरह रहे। मेरा व्यापार अच्छी तरह चले। दुनिया के चाहे चले चाहे न चले । पर्यायबुद्धि मे जब तक बसे रहेगे तब तक मोह के स्वप्न सच्चे लगते रहेगे। यह ही मै अपना हूँ। मेरा अपना मेरा आत्मा ही तो है। जगत् के सब जीव एक समान है। सब अपने-अपने स्वरूप वाले है सब मुझसे अत्यन्त भिन्न है। सबका स्वरूप मेरे ही समान है।मोही जीव इस प्रकार का ज्ञान नहीं करता, यह मेरा है, यह पराया है– इस प्रकार का अतरग मे जो घर बन गया है यह भूल निरन्तर इस जीव को शूल की तरह दु ख दे रही है। रात दिन आकुलता उत्पन्न हो रही है। हम धर्म के समय मे भगवान् को भजते है, पर भगवान् के भजने मे जो भगवान् का हुक्म है उसको नहीं करते है । भगवान् का हुक्म है कि इस जगत् मे अपने को अछूता निरखो। अछूता मानना यह बहुत बडी भक्ति है और बाते बना देना यह कोई भक्ति नहीं है। हम भगवान् के हुक्म का पालन नहीं कर सकते तो भगवान् के हुक्म की नजर तो कर सकते है। भगवान् का हमको हुक्म क्या है? यह ध्यान तो बना सकते है। हम ध्यान ऐसा न बनाये और २४ घण्टो मे कुछ भी जोड तोड़ करे, इस अपने स्वरूप का उपयोग न बनाये और भगवान् के भक्त बनने का अपने ही मन मे दावा रक्खे उससे तो काम नही बनता। भगवान की भक्ति यही है कि जैसा भगवान का स्वरूप है तैसा ही अपने अन्दर मे ऐसा स्वरूप दीख जाये और गद्‌गद् होकर अपने ही स्वरूप मे मिल जाय, इससे बढकर भगवान की भक्ति और क्या होगी? भगवान कुछ नहीं चाहता है। उनके धन दौलत नहीं हैं, उनके कुटुम्ब परिवार नहीं है जो आप से कोई सेवा करवावे। आप से भोग चढवावे और द्रव्य चढवावे। यह भोग भगवान के पेट के अन्दर नहीं जाता भगवान की भक्ति हम अपने आपके अन्दर करे तो होती है। बाहर दृष्टि डालकर करे तो नही होती है। भगवान की भक्ति यह है कि हम शुद्ध दृष्टि वाले बने और पापरहित बने, अपने से अधिक दूसरे को समझे। अपने को तो कुछ दु खी करना पसन्द कर ले, पर दूसरो को दु खी कर देना पसन्द न करे, यह है भगवान की भक्ति।

हे प्रभु! आप भी कभी इस अनाथ ससार मे रुलने वाले और निगोद मे पडने वाले थे। प्रभु इस प्रकार मेरी जैसी अवस्था आपने भी कभी पायी थी। किन्तु मुझ जैसा साधारण भाग्य भी आपने पाया तो वहा आपका विवेक जगा था। उस समय आपने अनोखा उत्थान किया जिसके फल से अपने को शुद्धदृष्टि पूर्ण किया। केवल अपने आपको निरखते रहे। आप केवल अपने आप स्वरूप मे सब कुछ हो गये। आप आज ऐसे स्थान पर पहुचे कि सारा विश्व आपके ज्ञान मे झलक रहा है। अनत आनद मे आप निरन्तर डूबे रहा करते है। ससार की कोई भी आपदा आप पर नहीं आ सकती है। ऐसा उत्तम स्थान आपका हुआ है । स्वरूप तो मेरा और आपका एक ही है। केवल एक प्रस्ताव को कर लिया । दूसरे प्रस्ताव को कार्यान्वित कर लिया जाता है – इतना फर्क है। हम प्रस्ताव कर रहे है । क्या **'आत्म के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।'** विषय कषायो मे आत्मा का अहित है उनमे मेरी परिणति न जावे। विषय कषायो मे आत्मा का अहित है उनमे मेरी परिणति न जावे। मेरी अपनी दृष्टि इन विषय कषायो मे न जावे। पर यह प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं होने पा रहा है। आपने कार्यान्वित कर

लिया है। यदि ऐसा साहस हम कर लेते है कि विषय कषायोमे उपयोग न जाय। ऐसा दृढ़ कदम उठा लेते है कि अपने ज्ञानमे ही सदा लक्ष्य रक्खे तो मेरी भी परिस्थिति विशुद्ध हो लेगी। कभी हम साहस भी करते है कि ऐसा कदम उठा ले किन्तु यह करते करते इसे मुन्ना-मुन्नी का ख्याल आ जाता है। यदि ५ मिनट किसीका ख्याल न रक्खे तो क्या वे गुजर जाते है, मिट जाते है। सब मिल जायगा, मगर भीतर तो कुछ और है। कैसे काम बने?

सम्यक् मे सीमा नहीं होती है। चारित्रमे तो सीमा होती सम्यक् तो वह है जिसका वह पूरा हो। न हो तो रच नहीं है। श्रद्धा मे अपनी ओरका झुकाव है पूर्ण है, नहीं है तो नही है। चारित्र से हम नही प्रबल हो पाते है। नही सही, पर श्रद्धा तो हमारी मजबूत रहे। क्योकि देखो पूजामे भी कहा है कि–

कीजे शक्ति प्रमाण शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत सरधावान अजर अमर पदको लहै।।

अपनी रुचि ही अगर नही बनाई तो वह आत्मा मिले कहा से ? हमारे लिए हम ही सहाय है, दूसरे मेरा हित नहीं कर सकते है और दूसरे न मेरे हितकी बात जानते हैं। यह सब स्वप्नके बड़प्पनकी जिम्मेदारी अपने पर नहीं समझे। यह तो सब पुण्य की जिम्मेदारी है ये घरमे बसने वाले सबके पुण्यकी बात है। यह उपयोग किसकी जिम्मेदारी लेकर शुद्ध करे, अपने आप निर्मल बनाये, अशुद्धोपयोगी रहे व ससार मे रुलते रहे– यह तो योग्य नहीं। अतः मै अपने आपकी ऐसी श्रद्धा बनाऊ कि मै अपने आप ज्ञानमे परिणमता रहूँ। जो कुछ करता हूँ, वह अपने भीतरकी दुनियामे ही कर पाता हूँ। इसका इससे ही ताल्लुक है, इसका किसी दूसरेसे सम्बन्ध नहीं है। किसीसे यह छुवा हुआ नहीं है। यह तो स्वयमे ही जगमग रहता है। इतना ही मै हूँ। इस मेरे को दूसरा पहचानने वाला भी कोई नहीं है। जब दूसरा मेरा कोई पहिचानने वाला नहीं है तो कौन मुझपर रोष करता है जबकि मुझे किसी ने पहचाना भी नहीं है। लोग तो हमे जानते ही नहीं है और भीतर ही भीतर कल्पनाये करके विपत्तिया किया करते हैं । मुझे कोई जानता नहीं है और यदि कोई जान जायगा तो उसकी दृष्टि मेरे ऊपर भली बुरी हो सकती और आगे देखता है कि वह उससे रुष्ट क्यो है और वह उससे क्यो खुश हो गया है? यह पुद्गलकी चीज है। मूर्ति ही मूर्तिको देख कर रीझती है। इस अविनाशी को कोई देखने वाला है क्या? अगर १० आदमियो ने हमारा सम्मान कर दिया तो यह इसी हाडमासका ही तो सम्मान किया। जिसको यह मान रक्खा है कि यह धनी है, यह पडित है, यह साधु है। वह सब तो खाक हो जाने वाला है। मेरा पहिचानने वाला दूसरा कोई नही है। मै तो अछूता हूँ। अपने आपके स्वरूप को देखो तो क्या यह करोड रुपयोंसे कम है या ज्यादा ? अरबो तथा खरबो रुपयोसे कम है, या ज्यादा? अरे **'चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखे भोग, काकबीटसम गिनत हैं सम्यक्दृष्टि लोग'**। यह दुनिया ज्ञानी जीवको नहीं सुहाती जिनको अपने ज्ञानका भण्डार मिल गया है तो उनको भगवानका सही आनन्द प्राप्त होगा। ज्ञानीको यह सम्पदा पापकी तरह लगती है,क्योकि ज्ञानी जीवको सर्वोत्कृष्ट आनन्द प्राप्त हुआ है।

आप लोग दुकान करते हैं। साल दो साल पहले तो दुकानमे टोटा ही पड़ता है। साल दो साल पहले धनही लगाना पडता है। धनका लगाना ही लगाना है और फिर बादमे मुनाफा मिलता है। जिसमे ज्यादा मुनाफा मिलनेका प्रोग्राम है तो लम्बा धन लगाना पड़ता है। लम्बा परिश्रम लगाना होता है और शुद्ध भगवानका पाना यह कितना बड़ा मुनाफा है। इसकेलिए तन,मन,धन,सर्वस्व सब कुछ भगवानको समर्पित कर देना पड़ेगा । मेरा कुछ नहीं है– ऐसी दृष्टि लेकर केवल ज्ञानमय अपने को दर्शन करना होगा। इतना करते हैं तव यह लाभ होगा। मेरे इस कार्यको केवल मै ही कर सकता हूँ, दूसरा इसको नहीं कर सकता है। अपने आपकी जिम्मेदारी महसूस कर धर्मपर ध्यान अवश्य देना चाहिए।

ज्ञानं स्वमेव जानाति तदा स्वस्वामिता कुतः।
अहमद्वैतबुद्धिः सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-४०।।

अर्थ– ज्ञान स्वको ही जानता है तब यह स्व है यह स्वामी है इस तरहकी बात कहाँसे हो, इसलिये एक निज अद्वैतबुद्धि होता हुआ मैं अपनेमें अपनेलिये स्वय सुखी होऊ ।

ज्ञान आत्मामे जानने वाला गुण है। ज्ञान किसको जानता है? ज्ञान, ज्ञानको जानता है। ज्ञान सबको जानता है। यह कथनव्यवहार है। अगुली किसको टेढी करती है? अगुलीको टेढी करती है। दीपक ने प्रकाशित कर दिया। किसको प्रकाशित कर दिया? दीपकको प्रकाशित कर दिया। ज्ञान वास्तवमे अपनेको जानता है परको नहीं। इस आत्माने स्वाद ले लिया। किसका स्वाद ले लिया? अपना स्वाद ले लिया, भोजन का स्वाद ले लिया, यह कहना व्यवहार है। भोजन करते समय आत्मा ने यह ज्ञान किया कि यह मीठा है, स्वादिष्ट है, इसी प्रकारका ज्ञानकरनेसे उसने आनन्द माना तो आत्माने एक विकल्पका स्वाद लिया। उस ज्ञानने एक ज्ञानका स्वाद लिया है, भोजनका स्वाद नहीं लिया है। भोजनका रस भोजन मे है। भोजनका रस आत्मामे नहीं आता है। भोजनको निमित्त करके आत्माने जो ज्ञान किया उस ज्ञानका रस आत्मामे आया और यह जीवको जो खुशी हुई तो अपने ज्ञानके रससे खुशी हुई, भोजन के रससे खुशी नहीं हुई। लोगोको ऐसा लगता है कि शायद आत्मा उसका रस ले लेता है, सामने जो दीखने वाली चीजे है। अच्छा, भोजनके अलावा और देखो। सिनेमा देखा, नाटक देखा, बन्दरका खेल देखा, रीछका खेल देखा। अब उनके खेलसे आनन्द आया। किससे स्वादका आनन्द आया? बन्दरके खेल का आनन्द आया या रीछ के खेलका आनन्द आया या अन्य किसी खेलका आनन्द आया? इन किसी भी परवस्तुवो का आनन्द नहीं आया। उनको देखनेसे ज्ञान हुआ, उस ज्ञानका रस आत्मामे आया और खुश हो गये। आत्मा स्वाद ले लेना है। आत्मा ज्ञान करता है, अपने आप करता है, अपने आप स्वाद ले लेता है। आत्मा ज्ञान करता है, अपने आप करता है। मेरा अपना जो कुछ होता है वह अपनेमे ही होता है और अपने लिए होता है। ऐसा मैं अत्यन्त न्यारा आत्मा हूँ। पर मोहके वशमे वाह्यपदार्थो मे मिल रहा हूँ और अपनी स्वतन्त्रताको भूल बैठा हूँ। मान लिया कि यह मेरा है, अच्छा है, बुरा है आदि। इसके विकल्पोमे मे पडा रहता हूँ,अज्ञान मिटे तो ज्ञान जगे, ज्ञान जगे तो अज्ञान मिटे, कुछ कह लो, ज्ञानी हूँ, ज्ञानमात्र हूँ शरीरसे भी न्यारा हू केवल ज्ञानस्वरूप हूँ। इससे आगे और मैं कुछ नहीं हूँ, मेरा इसके आगे और

भी उसकी स्त्री नही है। आप जीवन को छोडकर चले जावेगे, वह यहॉ रह जावेगी। और आगे चलो तो यह शरीर भी आपका नहीं है। और आगे चलो तो यह कर्म भी आपके नही है, यह सब झड जायेगे। और आगे चलो तो यह राग, द्वेष,कषाय भी आपके नही है, यह होते है और तुरन्त चले जाते है। जो राग, द्वेप जिस समयमे हो वह दूसरे समयमे नष्ट होगे, दूसरे समयमे नये राग होगे। जैसे कोई किसी वातकी तृष्णा करता है कि इसमे २० हजारका फायदा हो जाय। २० हजार हो जानेके बाद फिर तृष्णा तो नहीं रहेगी पर दूसरे २० हजार मे फिर तृष्णा हो जायगी । यह तृष्णा का गड्ढा इतना बड़ा है कि वढता ही जाता है। वडा कूडा करकट डालने वाला गड्ढा कूडा करकट डालनेसे कम हो जायगा, पर तृष्णा का गड्ढा वढता ही चला जाता है। तृष्णा मे कितनी ही विभूति का कूडा डालते चले जाओ, तृष्णा वढ़ती ही चली जाती है। इसी प्रकार राग, द्वेप मिट गए, फिर सब राग,द्वेष आ जाते है। इसी तरह राग,द्वेप चलते रहते है। जैसे चक्की मे गेहूँ पिसता है उससे भी अधिक पिसता है। उसमे तो फिर भी अधिक दाने होते है। यह ऐसा पिस जाता है कि इसके स्वरूपका विकास ही नही हो पाता है। जैसे कहा है कि "सूत न कपास कोली से।" वैसे ही लेना न देना मोह पूरा बना हुआ है। यह मेरा है, यह पराया है। तन लगाया गया परिवार के लिए , मन लगाया गया परिवारके लिए, धन लगाया गया परिवारके लिए। अगर पडौसका बच्चा वीमार है या कोई दूसरी परेशानी मे है तो उसकी ओर उसकी दृष्टि ही नहीं जायगी। यह है मोहका तेज नशा। यदि वह तुम्हारे ही घरमे पैदा होता तो उसे अपना मानते। यदि यह आत्मा तुम्हारे ही घरमे न आयी हुई होती तो तुम उसे अपना न मानते। तुम्हारा कुछ है क्या, तुम्हारी कल्पनाओ मे जो अपना आए, बस सोई तुम्हारा बन बैठा है। वाह्य चीजे तुम्हारी नही है, कल्पनाओमे जो परिणमन हुआ वह परिणमन तुम्हारा है। उसमे सब अन्दाज किया करते हो, बाहरसे तो कोई अन्दाज करते नही, मेरा किन्हीं परपदार्थो से कोई सम्वन्ध नहीं है। मै किसी भी अणुमात्र परपदार्थ का स्वामी नहीं, किसी पर द्रव्यका स्वामी नहीं मै केवल अपना ही स्वामी हूँ।

करि विचार देखो मन माही।
मूदहु आख कितहु कछु नाहीं।।

अन्धे पुरुषोको देखा होगा, प्रायः वे वेलिहाज होते है। जैसे यहा सूझते, दूसरे की शर्मसे कोई काम कर दे, दूसरेका ऐहसान मान ले, यह अनुभव अन्धेमे कम होता है। कुछ थोडासा फर्क तो प्रायः रहता है। क्योंकि जो आखसे देखते हैं वह थोडासा लिहाज करते है। यदि समाजमे कोई बात कहता है तो कोई नही कह सकेगा और अगर अधेसे कह दो तो वह झट कह देगा। कई लोग सोचते रहेगे कि कैसे कह दे। पर अंधा भाई आखोसे नहीं देखता है, वह कह देगा। जव हम बाहरी पदार्थो मे जग रहे हैं, इनको देख रहे है इनकी ओर मुड रहे है तो हम लिहाज करते है, शर्म करते हैं, अपेक्षा करते हैं। कैसे राग छोड दे कैसे द्वेप छोड दे। अभी दो स्त्रीमे, दो पुरुपो मे, दो लडकोमे बोलचाल वद हो जाय और जो दो चार महीने तक चल जाय तो इच्छा होती है कि मैं वोलू, चालू, मनमे है कि मैं बोलू, तो भी शर्मकी कषाय कहती रहती है कि न वोलो। अगर कोई सुन पायगा कि यह पहिलेसे वोल गए तो देखनेका,

बाहरमे जगनेका, बाहर रहनेका, लिहाज चलाता है। अपेक्षा चलती है, पर 'मूदहु आख कितहु कोऊ नाही।' वह ज्योतिमात्र है, अपनेको ज्योतिर्मय करता है। यह ज्ञान ज्ञानको जानता है, यह ज्ञान यह अनुभव करके कि मै केवल अपने स्वरूपको जान रहा हूँ। मानता रहा हूँ कि मै अमुक चीजको जानता हूँ।बस इसी भ्रममे बड़ा दुःख है।

मै करता हूँ तो अपने आपको करता हूँ, भोगता हूँ तो अपने आपको भोगता हूँ दुःखी होता हूँ तो खुद ब खुद अपने आप बिना जड़ मूलके दुःखी होता हूँ और सुखी होता हूँ तो अपने आप कल्पनाये बनाकर सुखी होता हूँ।दूसरे पदार्थो से कुछ सबध नहीं है, लगाव कुछ नही है। खुद ब खुद अपने आप कल्पनाये बनाकर अपनी नाना प्रकारकी अवस्थाये कर रहा हूँ। इसका किसीसे सम्बन्ध नही है। आपका बाहरी किसी भी चीजोसे रच भी सम्बन्ध नही है, मेरा कुछ नही है। मै किसीका स्वामी नही हूँ। मै अद्वैतबुद्धि वाला होता हूँ। केवल अपने आपको अपने ज्ञानमे लेता हुआ केवल प्रतिभास मात्र ज्ञानस्वरूप अपनेको अनुभव करूँगा। यह मै हूँ, शात हूँ और अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी हूँ। अपना प्रभु, अपना रक्षक, अपनी शरण मै ही हूँ। अतमे तुम ही मिलोगे, दूसरा नहीं मिलेगा।

दो पुरुष थे, वे स्वाध्याय करते थे उनमे आपसमे बात हुई कि जो कोई मर जाय और देव हो जावे तो वह देव दूसरेको समझाने आवे। उनमे एक गुजर गया और देव हो गया। उसने ज्ञानसे सब जाना कि वह पुरुष स्वाध्याय कर रहा है, तब वह देव आया । अब तो राग, द्वेष छोड़ दो आत्मध्यान मे आवो। पुरुष बोला, अभी बात समझमे नही आती है। माता, पुत्र सदा हित ही हित चाहा करते है। पुत्र बडा अच्छा है, गड़बड़झाला कुछ नही है। तुम्हारी शिक्षाकी बात समझमे नही आ रही है। बोला-— कल १२ बजे दिनमे समझायेगे। हम देव बनकर कह देगे। तुम पेटका बहाना करके बीमार पड जाना। वह पुरुष बीमार बन गया। बड़ा दर्द हो रहा है। डाक्टर आए, कुछ आराम नहीं। देव १२ बजे सड़क पर घूम रहा है। कह रहा है कि मेरे पास सब पेटेट दवा है जो व्यर्थ नहीं जावेगी। उस पुरुष के घरके लोग बोले, इसके पेटमे दर्द है सो ठीक करदो। कहा बहुत अच्छा। एक चादीका गिलास ले आओ उसमे स्वच्छ पानी ले आवो। अपनी थैलियोसे सफेद सफेद शक्कर झूटमूठकी दवा उसमे मिला द्री । उस पुरुषकी मा से बोला, मा जी इसे पी लो, उसका पेट ठीक हो जायगा। लोगोने कहा कि पेट किसका दर्द करता है और दवा किसको पिलाएगा? बोला, मत्रसिद्ध दवा है। यह दवा जो पी लेगा वह मर जायगा और यह अच्छा हो जावेगा। मा सोचने लगी कि मेरे चार लडके है। अगर एक गुजर गया तो तीन लड़कोका सुख देखूगी और अगर मै ही मर गई तो मै किसीका भी सुख न देख सकूगी। उसके पिताजी से कहा, पिता जी ने भी ऐसा ही सोचा। स्त्रीसे कहा कि तुम पी लो। तो स्त्री सोचती है कि अगर मै मर गई तो पुत्रोका भी सुख न देख सकूगी। वैद्यजी कहते है कि मै पी लू। हा हा पी लो, सब बोले। उसने कहा कि अच्छा आप लोग जावो, ठीक हो जायगा । अब कानमे देव कहता है कि तुम्हारे लिए कोई मर मिटने वाला है क्या? उसकी सम्झमे आ गया। भैया! यह तो वस्तुस्वरूप है। तो इसका बुरा न मानना चाहिए कि मेरे लिए हाय कोई मर मिटता नहीं। मगर कोई कभी मेरे लिए नहीं मरा, वह अपने ही विषय

कषाय के लिए मर मिटेगा। अगर कोई मेरे लिए मर गया तो वह मेरे लिये नहीं मरता। वह अपने मनमे कल्पनाये करके अपने विषय कषायकी पूर्ति के लिए मरता है। इसीसे पदार्थो का कोई दूसरा पदार्थ स्वामी है क्या? किसीका कोई अधिकारी है क्या? किसी का कुछ लगता है क्या? आप लोग सोचते होगे। आपसे अच्छे तो विदेशी लोग हैं। वह सरकारको लड़के सौप दे तो सरकार ही लड़को का पालन पोषण करती है, पढाती लिखाती है? वहा किसीका कोई नही है। वहा मोह ममता कम होगे। परन्तु अपने आपमे पर्याय की ममता है, कार्यो की ममता है। मगर इससे झगड़ा कितना बढेगा? बडे-बड़े जो भवके चक्कर लगेगे उनमे कितना झगड़ा बढ़ेगा? ऐसा क्यो हुआ? यो ही हुआ। भूलमे बात कितनी मिली कि मैने अपने आपको नही समझा। परवस्तुको यह मान लिया कि यह मेरी है, यह उसकी है। मूलमे केवल इतनी बात मिली कि इससे झगडा सारा बढ गया। ८४ लाख योनियो मे इसे भटकना पडा । जैसे पुत्रादि के हैरान होनेपर लोग कहते है कि झगडेकी जड़ विवाह है, न विवाह करते न झगड़ा होता। इसी तरह ससारके सब झगडोकी जड परकी दृष्टि है। इससे यह सारी विपदाये ले ली, यह सारे चक्कर हो गए। इसकी विपदा कर ली कि यह मेरा है। परपदार्थो को अगीकार कर लिया। इससे इतना बडा झगड़ा बढ गया। अब मै अद्वैत बुद्धि होकर केवल अपने आपको अपना सर्वस्व समझकर ज्ञानमय बुद्धि रखकर अपने मे अपने आप स्वय सुखी होऊ।

ज्ञप्तिमात्रदशाया न दुःख स्यात्कर्मनिर्जरा।
सैषोऽहं ज्ञप्तिमात्रोऽतः स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-४१।।

अर्थ– जानने मात्र की दशा में दुःख नहीं है, कर्मो की निर्जरा होती है वह ज्ञप्तिमात्र यह मैं हू। सो अपनेमें अपने लिये स्वय सुखी होऊ।

जिसका आत्मा केवल जानता है, जानने के अलावा जाननेके विषयभूत पदार्थ मे कोई राग, द्वेषकी तरग नही उठती है तो वहा दुःख नही है। अब देखिए जीवका कुछ है, तो नहीं और उसपर मर रहा है। पहले तो यह निर्णय कर लो कि जीवका यहा कुछ है क्या? इसी निर्णय पर सब कुछ दारमदार है, सब कुछ सार है, यही है ऋषीजनोका उपदेश और वास्तविकता यही है कि मेरा कुछ है नही। कुछ लोग ऊपरी ढगसे कह रहे है, मान रहे है कि मेरा अन्य कुछ नहीं है, क्योकि कुछ भी साथ नही जाता। कोई कहीं रहेगा, कोई कहीं रहेगा, कोई साथ नहीं रहेगा। यह तो है ऊपरी ढगका वर्णन, वस्तु स्वरूप का वर्णन यह है कि जगत्मे अनन्त पदार्थ हैं। कैसे कैसे अनन्त जीव है, अनत पुद्गल हैं, एक धर्मद्रव्य है, एक अधर्मद्रव्य है, एक आकाशद्रव्य है व असख्याते कालद्रव्य, यह है इनकी सख्या । यह जो कुछ चीज है, एक एक चीज नहीं है। जैसे किवाड यह एक नहीं है। एक चौकी यह एक चीज नहीं है। यह अनन्त चीजोमे मिलकर बनी है क्योकि एक तो उतना होता है जिसका दूसरा टुकड़ा नही। जो वास्तवमे एक होता है उसका दूसरा हिस्सा नहीं है। एक टुकडा हो जाय तो समझो कि दो चीजे थी न्यारी न्यारी हो गई है। यह चौकी अनत परमाणुओका पुज है। शरीर यह एक या अनत परमाणुवोंका पुज है। मेरे हाथ, पैर इत्यादि जो टूट जावें तो सब अलग-अलग वस्तु है तभी टूट जाते हैं। तो जहा कहते है कि एक

चीजका हजारवा हिस्सा तो वहा वह एक नहीं है, वहा हजार है। सब मिलकर एक पिड बना और व्यवहारमे उसके लिए एक पिड कहते है। एक चीजका हिस्सा ही नही हुआ करता है। जो दृश्यमान पदार्थ है उनको एक एक चीज नही मानना। उनको हम एक पिडकी तरह ही देखे। जो एक हो उसका स्वरूप अलग नही होता है। वह एक दिखाई नही देता है, पर ज्ञानमे समझमे आता है। जब यह अनन्तपरमाणुवोका पिड है तो एक एक जो वस्तु है वे अनन्त है, वे स्वतन्त्र है। उनमे मेरा कुछ दखल नहीं है। यहा यह देखना है कि मेरा कुछ नही है तो क्यो दुःख हो? जैन धर्म किस तरह देखता है कि हमारा कुछ नहीं है। जब लोग सीधा बोल देते है कि हमारा कुछ नही है क्योकि न मेरे साथ कुछ आया है और न मेरे साथ जायगा। इसमे तत्व नही निकला। तत्व तब निकलेगा जब हम वस्तुस्वरूपसे देखते है, अनन्त जीव है, अनन्त पुद्गल है, एक धर्मद्रव्य है, एक अधर्मद्रव्य है, एक आकाशद्रव्य है व असख्यात कालद्रव्य है।

एक कहते किसको है जिसका दूसरा हिस्सा हो नही सकता है। आकाशका दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता है। आप यही कहते है कि यह दूसरे तल्लेका आकाश है, नीचे यह तीसरे तल्लेका आकाश है तो एक आकाशका टुकड़ा हो गया। नही हो गया। एक कहते ही उसे है जिसका दूसरा टुकड़ा नहीं है। इसी तरह धर्मद्रव्य उसे कहते है जो जीव और पुद्गलोके चलने मे सहायक हो। वह तुम्हे नहीं दिखता। उसमे रग, स्वाद, गध नहीं होती। वह सारा अलग से एक द्रव्य है। इसी तरह एक अधर्मद्रव्य होता है। अधर्मद्रव्य उसको कहते है जो ठहरनेमे सहायक हो। हम चलते है तो चलकर रुकनेमे यह मददगार है। अगर अधर्मद्रव्य नहीं है तो हम रुक नही सकते। निरन्तर चलते ही रहेगे। इन परमाणुवोमे से एक परमाणु पुद्गल ले लो। यह भी एक द्रव्य है। उसका भी दूसरा हिस्सा नही हो सकता है। परमाणुवोका क्या दूसरा हिस्सा हो जायगा? नही होगा। हम अपना एक जीव ले ले। क्या इसके हिस्से हो सकते है? नहीं हो सकते है और दूसरी पहिचान क्या है? एक परिणमन जितने मे हो पूरेमे होना पड़े। और जिससे बाहर कभी नही हो उतनेको एक कहते है। जैसे इस चौकीका कोई भाग यदि जल जाय, इस खूटमे यदि आग लग जायगी तो यही जला, जिसमे यह भाग जल रहा है तो यह परिणमन यही तो हो रहा है, सारेमे तो नहीं हो रहा है। एक कहते उसे है जिसमे एक परिणमन उस पूरे मे हो। इस चौकी ने एक जगह रूप बदल लिया तो सब जगह रूप बदल लिया तो सब जगह तो नही बदला। एक चीज उतनी होती है कि एक परिणमन जितने मे पूरेमे होना पड़े उतनेको एक कहते है। जैसे मेरा जीव एक है। क्यो एक है कि इसमे कोई सुख परिणमन है तो यह पूरेमे ही होना पड़ेगा। ऐसा नही है कि पेटके हिस्सेमे आत्मप्रदेश तो सुखी हो रहा है और पेटके नीचेका आत्मप्रदेश दुःखी हो रहा है। कभी ऐसा होगा कि हाथमे फोड़ा है। फोड़े मे दुःख हो रहा है। ऐसा नहीं है कि हाथका अगला हिस्सा तो सुखी हो रहा है और पेटके नीचेका आत्मप्रदेश दुःखी हो रहा है। कभी ऐसा होता है कि हाथमे दुःख है, मगर दुःख परिणमन जो है वह फोड़े का नहीं है। आत्मा को जो मुझमे दु ख हो रहा है वह परिणमन मेरे हाथ को फोड़े का निमित्त पाकर कहते है कि फोड़े का दु ख है। हाथ को दु ख है। देखो परिणमन सारे जीवमे हो रहा है। एक परिणमन जितनेमें पूरे मे होना ही पडे और जिससे बाहर कुछ नहीं है। वहीं तो एक वस्तु है।

इस जीवका जितना परिणमन है वह मेरे जीवमे होता है। बाहर कही नही होता है। प्रत्येक वस्तुका परिणमन उसमे ही होता है। उससे बाहर कहीं नही होता है। जगत्मे जितने भी जीव है, मित्र है, दोस्त है, कोई भी हो, उनका परिणमन उनमे ही होता है। उनका परिणमन उनकी आत्मामे ही होता है। उनसे बाहर उनका परिणमन कहीं नही होता है। मेरा परिणमन मेरी आत्मामे ही होता है। मेरा परिणमन मेरी आत्माके बाहर कही नही होता है। तव मैं जो कुछ भी कर सकता हूँ, अपनी आत्मामे ही कर सकता हूँ। मै अपनी आत्माके बाहर कुछ नहीं कर सकता हूँ। दूसरे जीव जो कुछ कर सकते है वह अपनेमे ही कर सकते है। अपनेसे बाहर वे कुछ नहीं कर सकते है। क्योकि वह एक सत् है। क्योकि उनका उत्पाद व्यय ध्रौव्य उनमे ही होता है। उनसे बाहर नहीं होता है। जब किसीका उत्पाद व्यय ध्रौव्य कोई परिणमन, कोई कार्य किसी अन्य द्रव्यमे नहीं हो सकता है फिर कौनसी ऐसी गुजाइश है कि उसमे किसी दूसरेका सत्व माना जा सके। कोई सम्वन्ध ही नहीं है। मैं व्यवहार से केवल कहता हूँ कि मै परपदार्थो को जानता हूँ, पर मैं परमार्थसे केवल अपनेको जानता हूँ। अपनेके अतिरिक्त और मै किसीको नहीं जानता। मै केवल अपनेको जानता हूँ, पर दुनिया भरका बखान करता हूँ। जैसे दर्पणको सामने रख ले तो पीठ पीछेकी बाते, यह लडका है, यह गिर रहा है, यह अमुक है, यह कुछ कर रहा है। जैसे दर्पणको हम जानते है। इसी बलसे हम सबका वर्णन कर डालते है। इसी तरह हम अपनी आत्माको ही जानते है पर को नहीं जानते है। यह है ज्ञानियो की दृष्टि जो जगल मे रहते है और प्रसन्न रहते है। हम दूसरे को जानते ही नही है, तो दूसरे हमारा करेगे क्या ? दूसरे मेरे कुछ नहीं है। अगर श्रद्धा मे यह बात पूरी तरह जम जाय और जड से सबका सबध काट दिया जाय, उसको सम्यक्त्व होगा ही। जिसको सम्यक्त्व होगा उसको दु ख नही होगा। चाहे १ भव, चाहे १० भव, चाहे हजार भव रहना पडे, दु ख उसको नही होगा। अगर सम्यक्त्व लगातार बना रहे तो ७,८, भव तक मे मुक्ति हो जावेगी। अगर सम्यक्त्व छूट जाय, मिथ्यात्व आ जाय तो वह अनेको भव ससार मे रोक सकता है। कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनकाल तक रोक सकता है। परन्तु फिर सम्यक्त्व पाकर रत्नत्रय पूर्ण कर मुक्ति हो ही जावेगी। एक बार सम्यक्त्व प्राप्त हो जाय फिर इस जीव का भला ही है। आप यह वतलाइये कि इस सम्यक्त्व का प्राप्त हो जाना अरबो और खरबो रुपयो से बढकर है या नहीं। अरे धन तो जिसके भाग्य मे होगा वह खायगा। वह दूसरो के लिये है। इसमे तो केवल आपके हाथ पैर के श्रम का काम है। वह धन उनके लिये है जिनके निमित्त पापी बन कर आप ससार मे रहते है। यह धन धर्मियो के लिये नहीं है, वह उनके लिये है जो पापी वनकर ससार मे रुलेगे। स्त्री के लिये, वच्चो के लिये, अपने लिये, परिवार के लिये ससार मे रुलेगे और अगर सम्यक्त्व मिल जाय तो सदा के लिये कल्याण है। मोह कैसे छूटे, इसका साधन है कि जगत् के ये जो परपदार्थ हैं, वे परपदार्थ अपने मे ही अपना परिणमन करते हैं, अपने को ही अपने परिणमन मे विलीन करते हैं और अपना जो निजी स्वरूप है, निजी स्वत्व है उसको त्रिकाल लिये रहते है। इसलिये परपदार्थ अपने ही ढग मे बने रहते हैं। तव फिर किसी पदार्थ का किसी से सम्वध है नहीं। इसी प्रकार जैनसिद्धान्त समझाता है कि हमारा जगत् मे कुछ है नहीं। जव ऐसी दृष्टि बनेगी और ऐसा दूसरे पदार्थो को देखने

लगोगे तो एक जगत् को देखते, जानते रह जावोगे। इष्ट अनिष्ट मानने का विकल्प छूट जायगा। जब तक सही ज्ञान नही है तब तक इष्ट अनिष्ट बुद्धि है।

बच्चे की तकलीफ देखकर किसी ने कहा कि मेरे तकलीफ है । कैसी तकलीफ है ? मेरा स्वतत्र स्वरूप है। वह अपने चतुष्टय से है । पक्की हिम्मत बनाओ। दूसरे लड़के को देख कर तो जल्दी मान लेते कि यह अन्य है अगर घर के लड़के के प्रति यह हो जाय कि मेरा कुछ नही है , मेरा किसी से सम्बन्ध नहीं है याने जिनमे अज्ञान बस रहा था, मोह बस रहा था उनमे ऐसा अगर दृढ़ प्रत्यय हो जाय कि मेरा कुछ नही है, मेरा किसी से सम्बन्ध नही है मेरा तो मात्र मै ज्ञानस्वरूप हूँ। ऐसा निर्णय हो जाय तो सम्यक्त्व हो जाय। ऐसा निर्णय करने के लिये सारा शरीर सौप दिया जाय, सारा धन सौप दिया जाय, अगर यह एक श्रद्धा मिल जाय तो सब कुछ मिल गया। मान लिया कि धन किसी के पास है उसे सरकार भी सताये, चोर भी सताये, धोखेबाज भी सताये, और की बात छोड़ दो खुद को ही यह चिन्ता करके सतायेगा खुद ही दु खी होता है। इस वैभव से पुरुष को क्या आनन्द होता है ? अपने ज्ञान से ही अपने उपयोग मे रहूँ तो मै आनन्द भोगता हूँ। ऐसा आनन्द कितना सरल है? मेरे ही अधिकार की चीज है। यह आनद मेरे ही मे बसा हुआ है। आत्मीय शक्ति के अनुभव से उत्पन्न हुआ आनन्द ही भीतर की निर्जरा है। जैसे तपस्या करे मगर भीतर से क्लेश है तो क्या दु ख व कर्म कट जावेगे? नही कटेगे । ये दुनिया के लोग जो खुद मोही है, दोषी है, पापी है, दु खी है, ससार मे रुलने वाले है, उनमे अपने को अच्छा कहलाने की या कहलवाने की बुद्धि लगाये बैठे है कि इनमे मै अच्छा कहलाऊ, इनमे मै धनी समझा जाऊ, इनमे मै खास समझा जाऊ । यह सब दृष्टि छोड़कर मुझे किसी से कुछ नही चाहिये। ऐसी हिम्मत करो कि मुझे अपने मे खुद सुखी रहना है। यह हिम्मत ज्ञानी के होती है। उस ज्ञान मे जरा भी दु ख नहीं होता है और कर्मो की निर्जरा है। ज्ञाता बन जाना, केवल जाननहार बन जाना, यह तो मेरा स्वभाव ही है । यह तो मेरे अन्दर मे स्वभाव से ही कला भरी हुई है। जैसे कूदना,फादना, छलाग मारना, हिरन के बच्चे मे प्रकृति से ही होता है । हिरन की मा हिरन के बच्चे को कुछ सिखाती है क्या? उसमे खुद कला भरी होती है। इसी तरह केवलज्ञानी बनने की कला इस जीव मे स्वय भरी होती है। इस कला को कोई सिखायेगा क्या ? भगवान बनने के लिये मेरे अन्दर यह कला भरी होती है। मेरे स्वभाव मे ही भगवान् बनने की कला है। आनन्दमय होने की कला मेरे स्वभाव से ही भरी हुई है। केवल ऊधम छोडना है ऊधम जो लगा रखा है, वाह्य पदार्थो को अपना मान रखा है उसको केवल छोड़ना है बस आनन्दमय हो जावोगे। आनन्द करने की कला तो स्वय मे स्वभाव से भरी हुई है। ऐसा ज्ञानमय आत्मा मै स्वय हूँ। ऐसे ज्ञानमात्र का अनुभव करके अपने मे अपने लिये स्वय सुखी हू।

हमारा सुख कहा है? भोजन से सुख है क्या ? नहीं है। भोजन करके जो ज्ञान बनता है उसमे ज्ञान रसका आनन्द है। भोजन करके आनन्द नहीं मिलता है। बाहुबलि स्वामी एक वर्ष तक तपस्या मे रहे । एक वर्ष तक भोजन नहीं किया, आनन्दरस मे डूबे रहे। बराबर एक वर्ष तक खड़े रहे। वे आत्मीय

आनन्द मे मग्न थे। अन्यथा क्या कोई यो खडा रह सकता है? या तो बैठ जायगा या खाने- पीने दौड़ेगा, पर बाहुबलि महाराज तपस्या मे खड़े रहे।

आत्मीय आनन्द अपने ज्ञानरस से आता है, बाहरी पदार्थो से नहीं आता है और वह ज्ञान आनन्दरसमय है तू भी ज्ञानघन है, अत तू ज्ञानस्वरूप को देखकर और अपने ज्ञान का रस लेकर सुखी हो ले।

जैसे कभी-कभी बच्चे दूसरे बच्चो से जिसके हाथ मे लूटका आम हो। आम ले लेने के लिये छेडते हैं और पीटते है। यदि वह आम को फेक दे तो सारे बच्चे पीटना छोड़ देगे। इसी प्रकार पक्षी दूसरे पक्षी से मास का टुकड़ा छीनते है। उस पर अनेक आक्रमण होते है, पर यदि वह उस टुकड़े को छोड दे तो पक्षी आक्रमण करना छोड देगे।

इसी तरह ये जगत् के जीव जो दु खी हो रहे है, लोग जो पिट रहे है इसलिये कि पर को अगीकार कर रहे है। एक काम कर लो, पर की तृष्णा छोड़ दो। सबसे मिलने वाली विपदा समाप्त हो जायगी, सारी तृष्णा यही खत्म हो जायगी। जानने मात्र से ही आनन्द है और उसमे ही कर्म की निर्जरा होती है। इसलिये अपने को अपने ज्ञान मे रखो और शात होओ।

यदुपासैतदाप्ति स्यादत शुद्धात्मता भजे।
शुद्धाप्ति . शातिसम्पत्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-४२।।

अर्थ– मैं जिसकी उपासना करू, उसकी प्राप्ति होती इसलिये मैं शुद्धात्मा को ही भजू क्योंकि शुद्ध आत्मभाव की प्राप्ति और शांतिरूप सम्पत्ति एक ही बात है सो शुद्ध स्वरूप वाले अपने में अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

मै जिसकी उपासना करू उसकी ही मुझे प्राप्ति हो जाती है। पर उसमे शुद्ध, अशुद्ध की बात लेना है। हर एक बात नही लेना है कि मैं हजार रुपया चाहूँ उसकी उपासना करके वह रुपया मिल ही जाय। मै यदि शुद्धतत्व की उपासना करू तो शुद्धतत्व मिल जायगा और यदि अशुद्ध तत्व की उपासना करू तो अशुद्धतत्व मिल जायगा । जैसे धन की उपासना की तो शुद्धतत्व की उपासना की? नहीं, शुद्धतत्व की उपासना नहीं की। यह मैंने अपने को माना कि मै धनी हू, अमुक हूँ, मेरा कितना मान है, राग है? इस तरह से अपने को देखो तो क्या शुद्धतत्व की उपासना की? अपने को मोहरूप अनुभव कर रहा है कि यही मैं हूँ तो अशुद्धतत्व की उपासना हुई । मै ऐसा जानने वाला हूँ, ऐसा बुद्धिमान् हूँ, ऐसा अपने को समझने वाला हूँ, यह भी अशुद्ध तत्व की उपासना हुई । मै अच्छी समझ वाला हूँ, ज्ञान वाला हू, जानने वाला हू, यह भी अशुद्धतत्व हुआ।

मैं केवल शुद्ध चैतन्यमात्र हूँ, इस तरह की उपासना की तो वह शुद्धतत्व हुआ। मैं केवल शुद्धचैतन्यस्वरूप हूँ ऐसी उपासना को शुद्धतत्व की उपासना कहते है और इसके अलावा किसी भी रूप मे हो अशुद्धतत्व की उपासना कही जायगी। मैं अपने को एक समझ रहा हूँ। अपने को समझने पर ही सारे सुख दु ख निर्भर है। सुख, दु ख न धन पर निर्भर हैं, न परिवार पर निर्भर हैं, न मित्र जनो पर निर्भर हैं। मै अपने

को जैसा समझता हूँ उसी पर सुख, दु ख निर्भर है। यदि मै अपने को सब जीवो के समान शुद्ध चैतन्य मात्र जिसका नाम नही है किन्तु चेतनास्वरूप एक वस्तु हूँ—इतना मात्र अपने को अनुभव करू तो वहा व्याकुलता नहीं है। जो अनुभव ससार मय अपने को करता है, अपने को नाना रूपो मे अनुभव करता है, न जाने किन किन रूपो मे अनुभव करता है, वह जगजाल मे रुलता है। जिसका निरन्तर ज्ञानमय चित्त रहता हे, जो मोहियो के सग मे कम से कम रहता है. जिसने दुनिया मे कार्य करने का भार नहीं लादा है, जिसके अपने को दुनिया मे दिखाने का अभिप्राय नही आता है वह शुद्ध तत्व की उपासना के योग्य है। दुनिया उसे जान नहीं जाती है। यह सब दुनिया माया रूप है। इसको समझने से मुझ मे सुधार कुछ नहीं आता है। और यह दुनिया उसे जानती भी नहीं है और यदि जानती है तो वह और चीज है। शुद्ध ज्ञान मे जिसका उपयोग प्राय लगता है, ऐसा पुरुष ही ऐसा अनुभव कर सकता है कि मै शुद्ध चैतन्य मात्र हू।

धर्म करो, धर्म करो, धर्म क्या करे ? एक टाग से खड़े रह जाये धर्म क्या करे? यही धर्म करना है कि अपने को ऐसा अनुभव करो कि मै शुद्ध चैतन्य मात्र हूँ, चेतनामात्र हूँ, हमे कोई पहिचानता भी नही है। लोग मुझे क्या कहेगे ? यदि यह समझ मे आता है तो समझो कि मेरी बुद्धि कहीं बाहर फसी है। लोग यदि कुछ कहते है तो समझो कि हमारी कहीं बाहर मे बुद्धि गई है। चाहे वह धर्म के नाम मे हो ऐसी बात आवे। मै धर्म मे कमी करूगा, लोग मुझे क्या कहेगे? तो भी समझो कि बाहर मे बुद्धि लगी है। लोग मुझे जानते ही नहीं तो मुझे कहेगे क्या ? मै अपने स्वरूप मे हूँ, अपनी चैतन्यशक्तिमे हू, प्रभु हूँ, भगवान् या भगवान् स्वरूप हूँ, अपने कुल की शान रखो, चैतन्य मेरा कुल है । ज्ञाता, द्रष्टा बने रहना ही कुल का उजेला है। यही उसका कल्याण है।

सारा जगत् यदि मेरी प्रशसा कर दे तो क्या कुछ इससे मुझमे फेरफार हो जायगा। जगत् के लोग मेरी निन्दा कर दे तो क्या मेरा बिगाड़ हो जायगा। खोटे कार्य किये है तो मर कर नरक तिर्यञ्च मे जाना पड़ेगा। मै अन्तर मे भला हूँ, शुद्ध दृष्टि वाला हूँ, पूर्वोदयवश सारा जग निन्दा करे तो क्या मेरा स्वर्ग मोक्ष रुक जायगा ? मेरे करने से ही मेरे मे फेरफार होगा। दूसरे के करने से फेरफार नहीं होगा। जहा अपने कल्याण का प्रश्न हो वहा अपने आपके परिणाम पर ही सारा निर्णय छोड़ना चाहिये। कल्याण की बात दूसरे जान जावे तो क्या कल्याण हो जावेगा ? लोग मुझे पूजा करते हुए देख ले तो क्या मेरा कल्याण हो जावेगा ? ऐसी दृष्टि जो रखते है वे लौकिक पुरुष हैं।

मै इस जगत् मे अनाथ हूँ, मै तो लोक मे असहाय हूँ, केवल अपने आपका ही मै आप हूँ, इसके लिये दूसरा कोई नहीं है। मुझे अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिये। इस समस्या मे चाहे लाखो हजारो की माया हो, चाहे सचेतन पदार्थ कितने ही हो, कोई भी मेरी मदद करने वाला नहीं है। मै तो मात्र परिणाम करता हूँ, फिर जैसे यह आटोमेटिक हो वैसे ही मेरी दशा हो जाया करती है। हमे अपने आपका ज्ञान व विश्वास निर्मल रखना चाहिये, जिससे मेरी रक्षा हो। मेरी इसी में सहज व्यवस्था है कि मैं अपने सहजस्वरूप को देखू और उसे ही अपना मानू। मैं जिस रूप मे अपनी उपासना करता हूँ, मै उसी रूप

जाता है। अपनेको जो अशुद्ध मानेगा वह अशुद्ध ही बनता चला जायगा और जो शुद्ध मानेगा वह शुद्ध ही बनता चला जायगा। यदि मै नहा लेता हूँ, तो भावना यह हो जाती है कि मै शुद्ध हूँ, भावनासे ही शुद्ध है। पेटके अन्दर चाहे विकार ही भरा हो परन्तु स्नान कर लिया तो शुद्ध हो गए। यह भावना हो गई कि अब मैने स्नान कर लिया है और शुद्ध हो गया हू, अच्छा यह बताओ कि शरीर शुद्ध है कि आत्मा शुद्ध है। शरीर शुद्ध है कि नही? यह तो डाक्टर ही जाच करके बतायेगा। तो न शरीर शुद्ध है और न आत्मा शुद्ध है। केवल भावनाकी बात है कि मैं शुद्ध हूँ, अथवा अशुद्ध। उस भावनाका क्यो बनानेका रिवाज चला? केवल एक प्रकारका व्यवहार चलाने के लिये यह भावना चली कि मै शुद्ध हूँ अथवा यह भावना बनी कि मै अशुद्ध हूँ पाप साधनो से दूर रहने के लिये भावना बनी है। मनुष्य भावना बनानेके अतिरिक्त और कुछ नही कर सकता है। एक बार तू ऐसी हिम्मत किसी क्षण कर ले कि चाहे कितनी ही परिस्थितियो मे फसा हुआ हो, चाहे कैसा ही अवसर हो, किसीका उपयोग ज्ञानमे न आवे मुझे कुछ नहीं सोचना है। सब असार है, सब पर चीजे है। इस मुझमे कुछ भी नही आता है। मै केवल ज्ञानमात्र हूँ ऐसा ज्ञानमात्र ज्योतिर्मय अपनेको देख, ऐसी हिम्मत तो बन जाय। भीतरसे जो आनन्द आयेगा वह भगवानके समान है। अपने आप ऐसा अनुभव करनेका उपाय करना चाहिए। यदि मैं इस प्रकार शुद्ध आत्मतत्वकी उपासना करता हू तो मैं शुद्ध बन जाऊगा और यदि मै अपनेको अशुद्ध ही अनुभव करता हूँ तो अशुद्ध ही बना रहूँगा।

जगत्के जितने सुख है उन सब पर लात मारना होगा। इतनी हिम्मत जो कर सकता है वह शुद्ध आत्माको प्राप्त कर सकता है। मै चार आदमियोमे अच्छा कहलाऊ, यह भी एक जगत्का सुख है। मेरे दो चार बच्चे हो। लोग समझे कि बाल बच्चे वाला है। यह कल्पनाये जगत्के सुख है। कोई भोजन करके सुखी होता है, वह भी जगत्का सुख है। कोई पूजा उपासना करके सुखी होता है, कोई पडित बनकर सुखी होता है। धर्मकी बात अभी नहीं आयी। विद्या पढो, देखो इसमे क्या रक्खा है? यह भी एक जगत्का सुख है। धर्म वहा है कि इस जगत्की सारी सुखकी बाते हटा दे और केवल निराकुल ज्ञानमात्रका अनुभव जिसके आ रहा है, किसीका ख्याल नहीं है तो वह धर्म है। तो यह धर्म मिलता कैसे है? इस धर्मस्वरूपकी ही उपासना करे तो धर्म मिलता है। अधर्म किसे कहते है? जब नाना रूपोमे उपासना करे तो अधर्म मिलता है। धर्मका मिलना, शुद्ध आत्माका मिलना सदा यह अलौकिक वैभव है, सुख है। मै अपनेमे शुद्ध आत्माकी भावना करके अपनेमें सुखी होऊ।

लोग कहते है कि ईश्वर पहले जब अकेला था, ससार न था। उसने सोचा कि मैं अकेला हूँ। बहुत हो जाऊ तो बहुत हो गये। जीव असख्य हो गये। उसमे समाधान मिलता है कि हम सब एक हैं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं। हम जब सकल्प करते हैं कि मै अमुक हूँ, मैं अमुक हो जाऊ तो अपनेको नाना रूप बनाता रहता है। नाना शरीरो में जन्म मरण कर रहा है। जैसे १० तरह की आग लगती है, कोयलेकी आग, लकडी की आग, कपडेकी आग, तृणोकी आग आदि आदि। उन सबमे आग है, मगर १० तरहकी नहीं। स्वरूप सबका एक है। यह बताओ कि क्या आग गोल है, चौकोर है, टेढी टाढ़ी है, तिखूटी है, लम्बी लकडी यदि जल रही है तो क्या वह लम्बी है? आग कैसी होती है, बताओगे।

केवल गर्मीका नाम आग है, गोलका नाम आग नहीं लम्बीका नाम आग नही। केवल मात्र गर्मीका नाम आग है, वह एकस्वरूप है। इसी तरह यह जीव नाना रूप हो रहा है। यह मनुष्य है, यह कीड़ा है, यह पेड़ है, यह पक्षी है, यह काला है, यह गोरा है यह नार है यह देव है। इस जीवका स्वरूप उतना है क्या ? नही वह तो एक है। क्या जीव लम्बा है, नही है। क्या वह दूसरे प्रकारका है? नही है। कैसा है वह जीव? एक चैतन्यशक्ति का नाम जीव है और वह चैतन्यशक्ति एक ही स्वरूप है। ऐसे एक स्वरूप चैतन्यस्वभावको जिन्होने उपयोगमे लिया वह ज्ञान है और जिसने नाना रूपोंमे उपयोग लिया वह अज्ञान है। एक हमारा सहपाठी था। उसने यह प्रश्न किया था कि बोलो महाराज क्या बात है कि साधुजनोको यदि कोई नमस्कार नही करता तो वे गुस्सा भी होते है और दुःखी भी होते है। इसका कारण क्या है? हमने कहा कि तुम्ही बताओ कि इसका कारण क्या है? निर्णय निकला कि जो यह मानते है कि मै साधु हूं, इसने नमस्कार मुझे नहीं किया तो गुस्सा आ जाता है। और मै साधु नहीं हूं, मै एक चैतन्य वस्तु हूं। ऐसा उपयोग हो तो कषाय नही आवे। मै चैतन्यस्वरूप वस्तु हूं, ऐसा अनुभव करे तो वह ज्ञान है। इसमे जैसे गृहस्थीने अनुभव किया कि मै कुटुम्ब वाला हूं, और साधुने अनुभव किया कि मै साधु हूं। अगर गृहस्थ अपनेको गृहस्थ अनुभव करे तो वह मिथ्यात्व है और अगर साधु अपनेको साधु का अनुभव करे तो वह भी मिथ्यात्व है।

कारण निहित है। जब आपको इन्द्रिय ज्ञान हो रहा है चाहे इन्द्रिय ज्ञान से देख रहे हो चाहे सुन रहे हो। हर जगह इन्द्रिय ज्ञान चला करता है। यही इन्द्रियज्ञान हमको भूल देनेमे कारण बन गया। हम जानते हैं कि इन इन्द्रियोके द्वारा हम तो समझ रहे है, स्वाधीन हो रहे है, पर इनके कारण हम अपनेको भूल रहे है। आखोसे बाहर देखा तो जो देखा वह सही लगा । भूल गया अपने आपको। कानो से जो सुना वह सही लगा। अपने आपके परमार्थ को भूल गया। इन इन्द्रियोसे जो भोग किये वह सही लगे, हम अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपको भूल गए। इतनी बडी विपत्तिमे आ गए। इसी कारण ज्ञानी जीव अपने कर्मविजयके मैदानमे कूदते है तो वह सबसे बड़ी इन्द्रियो का सयम करते है। जहा इन्द्रियोका सयम हुआ, इन इन्द्रियो द्वारा काम करना बन्द किया। इनकी ओर हम ज्यादा उत्सुक न रहे। इन्द्रियविषयोका नियत्रण किया कि हमने अपने आपका अपने आप दर्शन पाया। जब तक ये इन्द्रिया जीवित है, जिन्दा है तब तक हमको दुःख होना प्राकृतिक बात है। कुन्दकुन्द भगवानने तो प्रवचनसार मे जो लिखा, उसकी टीका करते हुए श्री अमृतचन्द जी सूरि कहते है—

'तेषा जीविदवस्थानि हतकरनीन्द्रियाणि तेषा-मुपाधिप्रत्यय न दुःख किंतु स्वाभाविकमेव।'

जिन जीवोकी इन्द्रिया जिन्दा है, उनको दुःख होना प्राकृतिक बात है। उसमे उन्हे जो दुःख होता है उसमे उन्हे यह नहीं कहना चाहिए कि मुझको किसी उपाधि से दुःख होता है। नही, जहा इन्द्रियोमे रत हुए वहा उनको दुःख होना स्वाभाविक ही है। हाथी पकड़े जाते है स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत होकर। मछलिया पकडी जाती है रसना इन्द्रियके वशीभूत होकर। भवरे मर जाते है तो घ्राणके वशीभूत होकर। पतगा दीपकमे जल जाता है नेत्रइन्द्रियके वशीभूत होकर। हिरन, साप पकड़े जाते हैं तो श्रोत्रइन्द्रियके वशीभूत होकर। यह इन्द्रियज्ञान जिसमे हम रस इत्यादि पाते रहते है बड़ा विसवादपूर्ण है। इनके वश होकर जीव अपने आपको भुलाए रखते हैं। इन इन्द्रियो का सयम करना ही धर्मकी शुरूआत है, चारित्रकी शुरूआत है। ये इन्द्रिया है, भीतर आत्मा है। यह आत्मा इन्द्रियज्ञानसे सुखका अनुभव करता है। पर यह आत्मा इन्द्रियज्ञानको छोडकर केवल अपने स्वरूप रसका स्वाद ले तो अत्यधिक सुखी हो जाय। ज्ञानी गृहस्थीको छोड़कर केवल अपने स्वरूप रसका स्वाद ले तो अत्यधिक सुखी हो जाय। ज्ञानी गृहस्थको भी गुजर करना पड़ता है, खाना पड़ता है किन्तु इस तरह से जीभ चलाकर भी अपने आत्मस्वरूपकी ओर दृष्टि रखता है।

मेरा स्वरूप केवल ज्ञानमात्र है। ज्योतिर्मय, ज्ञानस्वरूप बनना मेरा कार्य है यह सब जानते हुए भी उपाधिवश करना पडता है। यह सव पर्यायके चक्कर हैं, परन्तु मेरा स्वरूप तो शुद्धज्ञानमय है। यदि ऐसा कोई रहे नो वह इन्द्रियज्ञानसे ढका है तो भी उसके सम्यक्त्व कहा जाता है। एक को भीतर झुककर भी वाहरका काम करना पडता है और एक भीतर न रहकर बाहर ही करनेमे आसक्त हो जाता है। दृष्टिया मुख्य दो है। एक सम्यक्त्व दृष्टि, दूसरी मिथ्यात्व दृष्टि । मनुष्य खाते तो सभी है। भोगते, पालते पोषते तो सभी हैं परन्तु एकका अन्तरमे झुकाव है। एकको करना पड़ रहा है। आखो को अन्दरसे कुछ पता ही नहीं है। यह सव कुछ उत्तम मालूम देता है और आसक्त होकर इसका उपभोग करता है। इन दोनोमे

इतना अन्तर है कि ज्ञानी कर्मो का सवर करता है और यह बाहर झुका हुआ अज्ञानी कर्मो का आ
करता है। समझके अलावा जीवके पास कुछ नही है। सारा जौहर समझका है। समझके द्वारा यह ज
दुःखी हो जाता है और समझके द्वारा ही यह जीव सुखी हो जाता है। सारी स्थितियोमे समझ ही
है। समझके अलावा इसके अन्दर और कोई कारण नही है। यह आत्मा अपने सहजस्वरूप मे कैसा
इसकी सच्ची समझ ही सबको सुखी कर देती है और अगर इसमे समझ नही है तो वह विपत्तियोमे
पड़ा रहता है। यह चार दिनकी चादनी कितने दिन तक रह सकती है। फिर विपत्तिया आवेगी अ
फिर वही अधेरी रात आवेगी। यह भाव कब छूटेगा, इसका भी ठिकाना नहीं है। चलते फिरते ही
गुजर जाते है। ऐसी घटनाये अनेको दीखती है। प्रथम तो इस जीवका भी भरोसा नही है और यह
कर लिया, भरोसा भी कर लिया तो कोई दिन तो जरूर आने वाला है जब हम यहा नही रहेगे। जै
परिणाममे आयेगा, जैसे तत्वमे आयेगा तैसे ही एकदम परिणमन हो जायगा, परिणमन मिल जायग
ऐसा यह जगत्का चक्कर है। यहा इस इन्द्रियज्ञानमे एक विश्वास बनाया। यह सब मेरे सुखके सा
नही है। मै इन्द्रियोको सयमित कर लू और मोहसे उत्पन्न कल्पनाओका त्याग कर लू। जैसे कोई जा र
है और अपने साथमे खाना लिए जा रहा है, जब उसे भूख लगती है तुरन्त डिब्बा निकाल लिया अ
खा लिया। वह बिल्कुल स्वाधीन है। वह भूखसे छटपटा नही सकेगा। उसे किसीसे प्रार्थना नहीं कर
पड़ेगा। जब कभी भूख लगी तुरन्त निकाल कर खा लिया।

खा लिया, अपना पेट भर लिया, इतने शब्द कहनेसे नहीं रोटी बनती है और न पेट भरता है। हम काम खुद करते हैं। इसी तरह मोक्षमार्ग के लिए ऐसा उपयोग बनाते हैं कि मै ज्ञानमात्र, जगत्मे सबसे निराला, सबसे जुदा हूँ। सबसे पूरा जुदा मान लिया। घरके एक दो आदमियोमे अपनेको मिला हुआ तू चाहे मान ले चाहे हजारसे मिला हुआ मान ले, उसमे अन्तर नही आता है। किसी एक जीवमे मोह करो या अनेक जीवोमे मोह करो, अन्धकार तो वही है। इसे ज्ञानबलसे हटाना यह तुम्हारा ही तो काम रहा। आखके आगे एक कागज लग जाय तो सब जगह अन्धेरा रहता है। इसी तरह एक भी परपदार्थमे, एक भी जीवमे, एक भी अणुमे यदि अपनेको मिला लिया है, उसे अपनी श्रद्धा मे मान लिया है तो यह ठीक नहीं है। वहा भी अधेरा ही अधेरा है। यह बात तो तब समझमे आयेगी जब अपनेको सबसे निराला, केवल ज्ञानस्वरूप देखो। यह लिया दियासे धर्म का पालन नही है। जैसे स्त्रीके साथ, बच्चो के साथ पूजा कर रहे हैं तो वहा भी राग लगा रहे है। अरे यह पूजा नही कर रहे है, यह तो जगत् का मोह कर रहे हैं। अरे धर्मका पालन करने के लिए जगत्मे अपनेको सबसे निराला अनुभव करो, बच्चोको साथ मे लेकर पूजा करने मे राग हो रहा है। लड़को ने अगर पूजा पाठ पढ़ लिया तो बडे खुश हो रहे हैं। अरे यह धर्म नहीं है। धर्मका पालन तब होगा जब अपने आपको जगत्मे निराला अनुभव करोगे। सकल्प तो यह किया कि मै अपने एकत्वस्वरूपका अनुभव करूँगा। जब यह पढ़ते है कि –

अर्हन्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि वस्तुनि नूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमल केवलबोधवन्हौ पुण्य समग्रमहमेकमनाजुहोमि।।

हे पुराण, हे पुरुपोत्तम, यह फल है, यह अक्षत है, यह पुष्प है, यह नैवेद्य है, ये अनेक पवित्र चीजे है, पर मै इसे कुछ नही देख रहा हूँ। हमे केवल एक दिख रहा है। यह सारी चीजे मुझे तो एक ही दिख रही है केवल शुद्ध ज्ञानस्वरूप। यहा कुछ नजर ही नही आता है। अभी किसी से कुछ हो जाय, कोई गुजर जाये तो नाना जी बैठे है, फूफाजी बैठे हैं, मौसाजी बैठे हैं, मगर उसे कुछ नजर नहीं आ रहा है। वे मन वहलाते हैं कि गप्पे लगाना चाहिये, पर उसे कुछ दिखता नही। न मौसा दिखे, न बुआ दिखे, न सिनेमा दिखे। उसे केवल एक ही दिखता है जो गुजर गया, उसमे ही केवल नजर है। इसी प्रकार इस पुजारी को ज्ञानस्वरूप का इतना प्रेम है, उस सारे तत्व का इतना प्रेम है कि इसे थाली भी नजर नहीं आती। उसे लोग भी नजर नहीं आते हैं, प्रभु की प्रतिमा ही केवल नजर आती है। उसे कुछ दिखता नहीं है। उसे केवल ज्ञानस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप ही दिखता है। जैसे इष्टदेव एक ही दिखता है, उसे १० रिश्तेदार नजर नहीं आ रहे हैं। वह केवल एक के ही गुण गाता है। उस पर ही आसक्त होता है और इतने आनन्द और शोक मे गद्गद् होकर आसू बहा देता है। आनन्द आया गुणो की दृष्टि करके, और शोक आया वियोग की दृष्टि करके। यह पुजारी जिसको यह ज्ञानस्वरूप ही रुचा है, उस एक पर को ही वह तन, मन, धन सब कुछ वार कर देता है। वह सब कुछ उसके लिए है जो कहते हैं कि मैं केवल ज्ञान की अग्नि मे समस्त द्रव्यो को एक मन होकर स्वाहा करता हू, त्याग करता हूँ। इतने को ही, जो यह द्रव्य रखा है, यह तो मेरे दिल लगाने का साधन है। वह पुजारी तो उन समस्त सम्पदाओ

को त्याग देता है, जो व्यवहार मे उसके है। वह केवल अपने को एकाकी निरखता है। समस्त वैभव को त्याग देता हे। सोना, चादी तथा अन्य सम्पदाये सब कुछ त्यागने की बात कह रहा है। कोई मानो भगवान का वकील पूछे कि उनको त्यागने की कौन सी बड़ी चीज है? पुद्गल द्रव्य है, अत्यन्त भिन्न है तो आगे सुनो-जिस पुण्य के उदय से वह प्राप्त है उसको भी त्यागता हू, पुण्य कर्म है उसको भी त्यागता हूँ। अब पुन प्रश्न होता कि पुण्यकर्म भी तो अन्य द्रव्य है। केवल बाते करता है कि मै पुण्य को त्यागता हूँ। जब निज शुभ भाव का भी सन्यास ले लिया तो सारा वैभव कहा रहेगा, वह सब छूट जायगा। शुद्ध भक्ति यह है। जिस भक्ति मे भगवान से ही तू तू मै मै हो जाती है, जब भगवान का स्वरूप ही दृष्टि मे रह गया है तो भगवान को भी कहते है कि मै उनकी भक्ति को भी त्यागता हूँ और मै शुद्धदृष्टि भक्ति रखता हूँ, सब विकल्पो को त्यागता हूँ, ऐसी शुद्धदृष्टि करते हुए पुजारी केवल एक तत्व को निरख रहा है। ऐसा विकल्प किये हुए पुजारी पूजा मे खड़ा है।

केवल एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही नजर मे आना चाहिए था। आख खोलकर भगवान को देखो तो स्पष्ट नही दिखाई पड़ते है। और यदि आख मून्दकर देखो तो स्पष्ट दिखाई पड़ते है। ये इन्द्रिया इस इन्द्रियज्ञान को इतना दबा देती है कि मै अपनी समझ मे नहीं आता हूँ। इस इन्द्रियज्ञान का मोह छोड़, यह इन्द्रियज्ञान पर है। कुछ ज्ञान भी नही है। मुझे इस ज्ञान की जरूरत भी नही है। मै हूँ और परिणमता हूँ। इसके आगे मेरे मे कुछ काम होता ही नहीं है। मै हू और परिणमते चला जाता हूँ। ऐसे शुद्ध निजस्वरूप की दृष्टि करके जो अपनी अन्तर आत्मा मे दर्शन होता है वह यही अपने आप सहजस्वरूप मे आनन्दमग्न हो जाता है। यह बस धोखे की माया के लिये है। इन्द्रियो की माया ही असत्य ही नजर आता है, पर्याय ही नजर आता है। ऐसा पर्याय जो जानने मे आता है वह सब असत्य है। सत्य तो वह है जो इन्द्रियज्ञान के परे है। यह सब कुछ मोह की नीद मे स्वप्नसा हो रहा है। मै इसको छोड़ कर अपने मे अपने आप स्वय सुखी होऊ।

भावनाप्रभव क्लेशो भावनात शिवं सुखम्।
भावयेऽत शिवं स्वं शं स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-४४।।

अर्थ- क्लेश भावना से उत्पन्न होने वाला है और शिव स्वरूप सुख भी भावना से होता है, इसलिये शिव, कल्याण और सुख स्वरूप निज आत्मा की भावना करू और अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं।

क्लेश जितने भी होते है वे सब भावना से होते है। जैसी भावना हुई उसी के अनुसार सुख दु ख भी होते है और जीव तो केवल अपनी भावना ही कर पाता है। वाह्यपदार्थो का परिग्रह कर ले, यह जीव के बस की बात नहीं है। जीव के बस की बात केवल परिणाम कर लेना है। क्योकि वह जितना स्वरूपमय है, उतने ही स्वरूप मे रह सकता है। स्वरूप से बाहर किसी भी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। आध्यात्मिक मार्ग मे इसी को मिथ्यात्व कहते हैं कि परिणाम मे द्रव्य की बुद्धि कर ले, अध्रुव मे ध्रुव बुद्धि कर ले, इसी को ही मिथ्यात्व कहते हैं। पदार्थ जितने भी हैं वे सब स्वत ही हैं। उनको किसी ने बनाया है नही। जो भी पदार्थ बने होते है वे पदार्थ नहीं है किन्तु पदार्थो की पर्यायें हैं। सो पर्याय

भी किसी दूसरे के द्वारा बनाई हुई नही होती है, पर अनुकूल परपदार्थ को निमित्त पाकर परिणमन वाले पदार्थ परिणमन कर लेते है। कोई दूसरे पदार्थ उसको परिणमाते नही है। उनका किसी प्रकार कोई दूसरा कर्ता नही है। यह तो सब पदार्थो का स्वभाव है कि वह है और निरन्तर परिणमते रहते है। इसके अलावा उनका कुछ प्रयोजन नही है। किसी अन्य से किसी अन्य का सम्बन्ध नही है। है और परिणमते रहते है। यही उनका काम है। पुद्गल मे कितने ही पदार्थो का समूह बना रहे, वहा कोई झगडा नही होता है, क्योकि सव अपने अपने काम मे लगे रहते है, अर्थात् स्वय परिणमते रहते है। पर जीव ही झगड़ा करता रहता है क्योकि वह कल्पनाये करता, भावनाये करता, उल्टी सीधी बाते मानता रहता है। पदार्थ कैसा है, मानता और तरहका है। इतनी बात होने से जीव के साथ सकल्प लगा और किसी के साथ सकल्प न लगा। सब है और परिणमते है। एक लकड़ी है, एक ओर जल गई।जल जाने मे उसमे कोई सकट नहीं। राख हो गई तो यहा भी परिणमन है। द्रव्य वही का वही है। उन्होने ही पर्याय मे यह अवस्था रख ली, पर बवाल तो इस जीव मे आ गया है। यह यो करता है तो करने दो। वह एक पदार्थ है, अपनी योग्यता से परिणम रहा है। हमारा इसमे क्या दखल है ? ज्ञाता दृष्टा रहे, परन्तु जो जीव ज्ञाता दृष्टा नही रह सकता है उसके बड़े विकल्प सकल्प होते रहते है। यह ऐसा ही होना चाहिये, ऐसा विकृत स्वभाव बना लेता है तो दु ख होता है। अभी किसी सगीत मे या नृत्य मे कोई कमी जानी जाय तो खेद हो जाय। अरे कैसी तान कर दी, कैसा तबला बजा दिया। क्यो दु ख होता है, क्योकि उनका राग है, कल्पना है।

परिवार मे, घर मे निरन्तर विवाद ही बना रहता है। झगडा हुआ, वह भी तो विवाद है, प्रेम है वह भी तो विवाद है। विसम्वाद दोनो मे है, मिल-जुल कर रहे, प्रेम-पूर्वक रहे, वह भी तो विवाद है। झगडा कर रहे, प्रेम कर रहे , वह भी तो विसवाद है। अपने स्वरूप से अलग होकर वाह्य मे किसी मे लगना, वह सारा का सारा विसवाद है। अच्छी तरह रह लिया, कब तक रह लिया, अवधि तो है, सीमा तो है। अपने स्वरूप से अलग होकर कौन सा सुख पाया, कौन सी शान्ति पायी ? यह जीव अपनी भावनाये वनाता है और उन्ही के अनुसार सुख, दु ख प्राप्त करता है। भावना ही ससार को नष्ट करने वाली है और भावना ही ससार की वृद्धि करने वाली है। जहा पर्याय मे आत्मबुद्धि किया वहा ससार बढ़ने लगा जहा पर्याय को पर्याय मानकर, अध्रुव जानकर उससे हटकर सत् निज चैतन्य स्वरूप मे आए वहा ससार का नाश होने लगता है। अर्थात् अपनी गतियो का विनाश होने लगता है, प्रत्येक पदार्थ अनन्त ज्ञान वाले हैं, अनन्त शक्ति वाले हैं। जैसे यह आत्मा है इसमे ज्ञान, दर्शन चारित्र अनेक गुण है और वह अपनी अनन्त शक्तियो से भरा हुआ है। यह अपने शाश्वत गुणो मे रहता है, सामायिक पर्याय मे रहता है, व्यक्तिगत रूप मे रहता है। उनका कोई न कोई प्रगट रूप वना रहता है। जो प्रगट रूप वना रहता है उसको ही सर्वस्व मान लेना सो ही मिथ्यात्व है। जैसे मनुष्य पर्याय यहा प्रगट रूप है, कषायादिक यहा प्रगट रूप हैं। इसको मान लेते हैं कि यह मेरा है, इसको स्वीकार करना ही मिथ्यात्व है। तीन चीजे हुआ करती हैं-द्रव्य गुण, पर्याय। जितना भी शास्त्रो मे ज्ञान भरा है वह आपका तव सफल है यदि द्रव्य, गुण और पर्याय की वात ठीक समझ में आए यदि वह समझ मे नहीं आये और सव कुछ ज्ञान वढने लगे तो

वह निष्फल है। सो द्रव्य, गुण, पर्याय का निर्णय नहीं है तो फिर सारा जानना बेकार है। द्रव्य, गुण, पर्याय क्या कहलाते है ? द्रव्य तो वह चीज है जो अनादिसे है और अनन्त काल तक है। वह एक वस्तु है और द्रव्य की जो नाना शक्तिया है, जो शक्तिया द्रव्य मे तन्मय है, अनादि से अनन्त काल तक है, वह गुण कहलाती है। जो उत्पाद व्यय हो रहा है, जो बन रहा है, बिगड़ रहा है यह सब पर्याय है। जगत् के जीवो मे पाण पर्याय को सर्वस्व मानने का तो ज्ञान आगया, किन्तु ज़िसकी पर्याय है उस ध्रुव पदार्थ की ओर दृष्टिपात भी नही किया। आखो से जो देखा है वह सब पर्याय है। इन्द्रियो से जो ज्ञान आया वह सब पर्याय है। मोटी पहिचान यह है कि जो नष्ट हो जाय उसे पर्याय कहते है। जिसका नाश हो जाता है उसको पर्याय कहते है। न नाश होने वाली चीजो मे किसी बिरले जीव की रुचि है और नाश होने वाली चीजो मे यहा सबका बखेड़ा लग रहा है। जो नष्ट हो उसे पर्याय कहते है। यह जो काला,पीला, नीला, लाल, सफेद दिखता है वह नष्ट हो जाता है। यह सुगन्ध, दुर्गन्ध आदि जो प्रतीत होते है वे सब नष्ट हो जाते है। रूखा, चिकना, कड़ा, नर्म, ठडा, गर्म इत्यादि सब नष्ट हो जाते है। खट्टा ,मीठा, कडुवा आदि ये पर्याय भी नष्ट हो जाते है। गुण वह कहलाता है कि जिसकी ये पर्याये चलती है। आप मे काला,पीला,नीला ये रग बदलते है, पर रग जो शक्ति है, रूप जो शक्ति है,वह शुरू से अत तक एक है। उसके बदलने की बात नही है। परन्तु रूपशक्ति को ज्ञान से ही जाना जाता है, रूप पर्याय को सब ही देखते है।

इसी तरह जो कषाय है या कषायरहित परिणमन है ये तो समझ मे आ जाते है पर यह जो इन पर्यायो का स्रोत रूप है, जिसे चारित्र कहते है, इतना यह किसकी समझ मे आता है? चौकी जान लिया, भीत जान लिया, अमुक को जान लिया, यह सब समझ मे आता है, परन्तु यह परिणमन जिस शक्ति का हो रहा है वह किसकी समझ मे आता है? पर्याय मे तो सारा मोह होता है, द्रव्य की ओर दृष्टिपात नही है। पर्याय बुद्धि करके अनिष्ट बुद्धि व इष्ट बुद्धि करता है परतु द्रव्यो की ओर दृष्टि भी नहीं करता है। यह मेरा भला है, यह मेरा बुरा है। यह होता तो रहता है बड़ा सस्ता, क्योकि झट कह देते है, मान लेते है, पर को अपना मान लेना, यह बड़ा आसान काम बन रहा है। झट अपना मान लिया, झट अप्ना सोच लिया, परन्तु यह बहुत महगा पड़ता है। इसके मीठे रस का कितना भयकर परिणाम होता है कि ८४ लाख योनियो मे भ्रमण होना, चारो गतियो मे चक्कर लगाने का फल सामने होता है। इतनी बात का ही यह भयकर फल है कि पर सत् को यह कहना कि यह मेरा है। इस बीज का इतना भारी यह ससार वृक्ष बन गया। ये ५ इन्द्रिय, ६ काय, ३ वेद, २ कषाय, ये क्या है ? यह ससार वृक्ष ही तो है। यह इतने भारी वृक्ष का बीज केवल मिथ्यात्व है। मोह मे बहे जाते है। परवस्तुओ मे ममता लगाकर उन्हे अपना सर्वस्व समझकर, उनको ही अपना जानकर अपना जीवन गुजारते हैं, पर इस बीज का कितना बड़ा फैलाव है, तो यह सारे ससार मे भटकना ही इसका फल है।

यह क्लेश सारे भावना से ही बने है और यह भावना से ही मिटेगे। यह सारे उपद्रव केवल भाव करने से ही है और भाव से ही उपद्रव नष्ट होगे। जैसे लोक मे किसी को बुरा कह देना, गाली दे देना,

कितना आसान काम है। झट जिसे चाहे जैसा बोल दिया, पर इसके फल मे दूसरे की लाठिया लगीं, मार पीट हुई और बाधे भी जावे, यह सारी विपदाये कितनी बड़ी हो जाती है ? किसी किसी की तो जान भी ले ली जाती है। इतनी बड़ी बात क्यो हो गई ? कहा कि मैने उसको उल्लू कह दिया था। इतनी बडी बात कहने का झगड़ा इतना बड़ा बन गया। न कहते, न झगडा बनता। यह सारा ससार जितना कहेगा उतनी ही विपत्तिया आयेगी। ये विपत्तिया क्यो आ गयी? भाव झूठा आ गया। ममता की भावना आ गयी। ऐसे ही यह सारा ससार बन गया। हमारा काम क्या है ? हम अपना सही काम सोचे।

किसी नगर का एक राजा गुजर गया था तो मत्री ने यह सोचा कि अब वह राजा बनाया जाय, जो कल सुबह अपने को इस फाटक मे सोते हुए पडा मिले । ऐसा सब मन्त्रियो ने इस सम्बन्ध मे निर्णय किया। सुबह फाटक खोला गया तो एक सन्यासी लगोटी पहिने हुए मिल गया। मन्त्रियो ने कहा कि चलो हम तुम्हे राजा बनावेगे। उसने सुन लिया कि हमे राजा बनाया जायगा। सुना क्या मानो वज्रपात हो गया। सन्यासी ने कहा कि हम राजा नही बनेगे। मन्त्रियो ने कहा कि तुम्हे राजा बनना ही पडेगा। सन्यासी को पकडकर ले गये। सन्यासी ने कहा कि देखो राजा बन जावेगे, मगर शर्त है कि हम राज पाट का काम नहीं करेगे। हम तो केवल एक जगह पर बैठे रहेगे। मन्त्रियो ने कहा कि मजूर है। मन्त्रियो ने सन्यासी की लगोटी को उतार दिया और सारे कपडे जो राजा के होते है उसको पहना दिये। लगोटी को एक काठ की पेटी मे सन्यासी ने रख दिया । दो, चार वर्ष तक काम चलता रहा। इसके बाद किसी राजा ने चढाई कर दी। मत्री लोग घबडाकर एकदम राजा के पास आ गये पूछा, राजाजी क्याा करना चाहिए? शत्रुओ ने चढाई कर दी है। राजा कहता है कि सोचकर बताता हूँ। कहा अच्छा हमारी काठ की पेटी उठा लाओ। पेटी से लगोटी निकालो। राजसी कपड़ो को सन्यासी ने उतार दिया और लगोटी पहन लिया। हम आत्म राम को तो यह करना चाहिए। जिसको जो कुछ करना हो वह जाने। सर्वत्र अपने अपने को सोचो कि हम राम को क्या करना चाहिए ? सर्वत्र दृष्टि डाल लो, सर्वत्र घूम लो। सर्वत्र घूमने के बाद यह सार मिलेगा केवल आत्म अनुभव ही एक अपना केवल आत्म अनुभव है, दूसरा अपना नहीं है। जैसे मै सहजस्वरूप मात्र आत्मा हूँ वैसे ही अपने को अनुभव करो बस इतना काम है सार-भूत और इसके अलावा जितनी भी हमारी चेष्टाये है, राग ,द्वेष, अधर्म, मोह, पाप इत्यादि की है वे सब हमारे लिए विपत्ति हैं। सम्पदा केवल एकमात्र अनुभव ही है। धन्य है वे जीव जिन्होने मनुष्य भव पाकर यह काम किया। जो सार बनकर असार से दूर हुए। जो चैतन्य सामान्य होकर बड़े-बड़े योगी ज्ञानी, बलधारियो के उपासनीय बने। जब तक यह जीव अपने को विशेष विशेष मानता है तब तक यह ससार मे भटकता है और जब केवल अपने को चैतन्यस्वरूप मानता है तो इन ससारी बन्धनो से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जैसी उसमे सब विशेषताये हैं वह उनको लादे फिरता है, बताता फिरता है। ज्ञानी की दृष्टि मे , योगी की दृष्टि में उसका कोई सम्मान नहीं और जो अपने को सबमे घुला मिला एक ही बताता है, उसकी दुनिया मे इज्जत है और ज्ञानी की दृष्टि से वे अन्तर मे उठते हैं और उठते ही चले जाते हैं। हम अपने

रहे हैं जब जग जाते हैं तब दु ख मिट जाता है। अरे यहा कहा से रहे ? मै आराम से तो हूँ, मेरे क्लेश मिट गये हैं। इसी तरह मोह के क्लेश है। अन्तर मे देखने मे मै ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानमात्र वस्तु हूँ। यहा किसी का कुछ लगा ही नहीं है। जो मौज मै बैठे है तो वहा क्लेश हो जाता है। मगर जिन्हे यही कला याद है उन्हे ज्ञानी कहते है, और अगर यह कला नहीं याद है तो उसे मोही कहते है।

सारे देहिषु सर्वेषु व्यक्ताव्यक्ते बुधाज्ञयो·।
ज्ञानमात्रे चिर तिष्ठन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-४५।।

अर्थ– समस्त प्राणियों में सारभूत तत्व, ज्ञानी के प्रकट और अज्ञानी के अप्रकट ज्ञानमात्र भाव में चिरकाल तक ठहरता हुआ मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं ।

इस जगत्मे अनन्तानन्त जीव है और भिन्न-भिन्न प्रकार की पर्यायो मे है। देखो यहा ये कितने प्रकार के जीव हैं ? कोई पृथ्वी है, कोई अग्नि है, कोई जल है, कोई वायु है, कोई वनस्पति है, कोई लता वगैरा, कोई चींटी वगैरा तीन इन्द्रिय के जीव। भौरा, ततैया वगैरा चार इन्द्रिय जीव। गाय, बैल, भैंस आदि पचइन्द्रिय जीव होते है। मनुष्य पचइन्द्रिय मे होते है, नारकी देव भी पचेन्द्रिय ही होते है और भेद से देखो तो असख्य प्रकार के जीव हैं। इन जीवो मे सार बात कितनी तुमने देखी ? वह सब जो है वह पर्याय हैं। यही सब सार है। मनुष्यरूप वगैरा जो है वह सब क्या सारभूत है ? इन सब प्राणियो मे सारभूत क्या है, बतलाइए ? इन सारे तत्वो को क्या अज्ञानी बता सकेगे? वे अपने असार को ही सार समझ रहे है। तीसरे लोग सार की चीज को क्या बतावेगे ? पर ज्ञानी जीव को सारकी बात एकदम स्पष्ट है। वह सार की चीज क्या है ? जैसे ये मनुष्य दिख रहे है, कोई बच्चे है, कोई जवान हैं, कोई बूढ़े है, कोई स्त्री है, कोई पुरुष है। ये सब जो नाना प्रकार के मनुष्य दिख रहे है, इन मनुष्यो मे एक सार की चीज क्या है? सदा रहने वाली चीज क्या है ? वह है मनुष्यपना , वह है इन्सानियत। अच्छा बतलाओ कि क्या किसी ने ऐसा मनुष्य देखा है ? जो जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक एक रूप रहता है, वह मनुष्य किसी ने देखा है ? देखने मे कोई जवान आ रहा है, कोई बूढा आ रहा है पर असल मे मनुष्य तो कोई भी आखो से देखने मे नही आ रहा है। मनुष्य तो ज्ञान से देखने मे आता है। ऐसी दृष्टि लगाने से जो जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक रहा वह मनुष्य है। जो मनुष्य एक है वही बच्चा हुआ वही बडा बना वही जवान बना और वहीं बूढ़ा हुआ परन्तु मनुष्य वही एक है। क्या उसे किसी ने देखा है जो जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक एक रूप रहता है। वह मनुष्य किसी ने देखा है। जो जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक एकरूप रहा हो। क्या उसे किसी ने देखा है। एक रूप रहता हो ऐसा क्या दिखाई देता है? कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय है, कोई वैश्य है, कोई शूद्र है, कोई धनी है, कोई गरीब है। ये सब मनुष्य एक दृष्टि से बराबर हैं। जैसे कहें कि एक मनुष्य ले आवो। वह बूढ़ा ले आवे तो कुछ नहीं कह सकता है कि सब एक हैं। तुम इसे क्यो लाये ? क्योकि वह भी मनुष्य है। धनी या रक ले आये तो भी नहीं कह सकते कि इसे क्यो ले आए ? चाहे धनी हो चाहे गरीब हो सब एक समान है। मनुष्य मनुष्य की अपेक्षा सब समान हैं। पर लौकिक प्रयोजन होने पर मनुष्य समान नहीं दीखते है। यद्यपि

काम पडता है, व्यवहार होता है फिर भी किसी ने मनुष्य को समान नही देखा है। कोई शृगार करता है, कोई ऐसा शृगार करता है, कोई वैसा शृगार करता है ऐसे तो दीख रहे है पर मनुष्य नहीं दीख रहे हैं। सब मनुष्यो मे रहने वाला जो एक मनुष्यपना है वह सबमे एक रूप है, चाहे आज का पैदा हुआ बालक हो वह भी मनुष्य है। चाहे ५०, ६० वर्ष का जवान हो वह भी मनुष्य है। मनुष्य बस एक है। इसी प्रकार ध्रुवतत्व की दृष्टि से सब जीवो को निगाह दौड़कर देखो सब जीव किसी दृष्टि से एक से हैं या नहीं। कोई कीड़ा है, कोई मकौड़ा है, कोई पेड है, कोई पानी मे सरकता है कोई पखो मे उडता है, कोई शरीर से ज्यादा बल का काम करता है। अरे यह सब जीव किसी दृष्टि से एक से बराबर है या नही ? वह तत्व सबको नजर नहीं आ सकता, अज्ञानी को नजर नहीं आ सकता है। ज्ञानी की दृष्टि मे आ सकता है। वह तत्व जिसकी दृष्टि मे सब जीव एक, समान हो जैसे हम है वैसे सब जीव है। इसका पता भी लग जाना सबसे बडा ज्ञान है। यही धर्म का पालन है। यही मोक्ष मार्ग मे चलना है। यह सब है।

हो, चाहे और कोई छोटा, बडा जीव हो सब एक समान है। सब चैतन्यस्वरूप, ज्ञानधन व आनन्द घन है। ये समस्त गुण समस्त प्राणियो मे व्यक्त है और यह स्वरूप सब प्राणियो मे सारभूत है। यह तत्व ज्ञानियो को तो व्यक्त है और अज्ञानियो को अव्यक्त है। अब उसी निगाह मे हम अपने आप मे भी चले। मै ज्ञानमात्र हूँ, मै अपने असली स्वरूप को देख रहा हूँ, साफ, शुद्ध जो कुछ मै हूँ उसको लक्ष्य मे ले रहा हूँ। जहा कोई अमीर भी नजर नही आता है, कोई रक भी नहीं मालूम पडता है, कोई तना सा खडा हो ऐसा भी नही मालूम पडता है। नजर केवल आता है शुद्ध चैतन्यस्वरूप, जहा मै अन्य सबको भूल जाता हूँ। ऐसा मै यह ज्ञानमात्र हूँ। जैसा कहते है ना कि जो गरजते है वह बरसते नहीं और जो बरसनहार है वे गरजते नही। इसी प्रकार जब मन काय की चेष्टा है तो अनुभव नहीं और जब अनुभव है तो चेष्टाये नही है। सत्य तो यह है कि मै अपने को सबसे निराला, ज्ञानमात्र देख लू ऐसा यदि कर पाया तो मनुष्य होना सार्थक है, और यदि न कर पाया तो मनुष्य होना निरर्थक है। प्रेम कर लिया, अपना मान जाओ, दु खी हो जाओ और कभी दु खी और कभी सुखी, जीव का यह जीवन तो निरर्थक रहेगा और एक सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र अपने को निरख लो तो सब कुछ पा लिया। तीन लोक का सारा वैभव अहितकर है, असार है, क्लेश का कारण है। कोई सोचे कि मेरे पास खूब धन है तो खूब खाते है, उपकार भी करते है, इज्जत भी बढती है, दस आदमी आते जाते है, दस आदमी पूछते है, सुख हुआ या नही। अरे सुख कैसे हुआ ? भीतर तो अहकार व तृष्णा से पिस कर मरे जा रहे है। देखने वाले बेचारे क्या जाने ? वह तो जानते है कि यह सुखी है, पर वह सुखी नहा है। वह दस आदमियो के बीच अपनी शक्ल सुखी सी बना लेता है। कोई नही जान पाता कि वह दु खी है। वह भीतर से अहकार भरे हुए है। पर्याय, मोह और मूढता इत्यादि की चक्की मे वह पिस पिस कर बर्बाद होता चला जा रहा है। जगत् के सब जीव दु खी है, जगत् के सभी साधन दु ख है। धन है वह भी दु ख का कारण है, परिवार है, चार आदमियो मे इज्जत है, वह भी सुख का कारण नही है। वह सब भी दु ख के कारण हैं।

तो फिर सुख का कारण क्या है? वह तो बतलावो। सुख का कारण धर्म है। और वह धर्म इसमे है कि जहा स्वरूप मे सब जीव एकसमान है, इस बात को अपने लक्ष्य मे लिया इसका नाम है धर्म करना। अगर धर्म करना धनवान के हाथ मे है तो गरीब बेचारे मोक्ष ही न जा सकेगे। अथवा जो साधु मोक्ष गये है उनका रास्ता ही बन्द हो जायगा। धर्म है एक शुद्धनिगाह, धर्म है निज आत्मदृष्टि। पर की दृष्टि मे, पर की निगाह मे धर्म ही नही। समस्त प्राणियो मे सार भूत चीज क्या है? इस जीवन भाव मे चैतन्य स्वरूप, ज्ञानशक्ति है, इस ज्ञानशक्ति को जिसने लक्ष्य मे लिया वह जीव ज्ञानी है, मोक्षमार्गी है, उसका जन्म सफल है। अपने आपको अधिक से अधिक ऐसा अनुभव करो कि मै ज्ञानमात्र हूँ, सबसे निराला हू। कोई मेरी सहायता कर दे, ऐसा कोई नही है। कोई मेरी शरण हो जायगा ऐसा दुनिया मे कोई नहीं है। मै ही अगर सत्य हूँ, पुण्यवान् हूँ, योग्य उपादान वाला हू, तो मै ही शरण रहूँगा और दूसरे लोग भी मेरे सहारे बनेगे। यदि अपने पल्ले मे कुछ नही है तो किसी भी घराने मे पैदा हो, उसका सभी

तिरस्कार कर देगे। और यदि पल्ले कुछ है, पुण्य है, धर्म सस्कार है तो उसको सब करने को तैयार हो जावेगे। यह सब निज परिणाम वैभव के सम्बन्ध की महिमा है, दूसरा साथी नही है। अपनी आत्मा के शुद्धस्वरूप का ज्ञान करो, शुद्धस्वरूप का ही विश्वास करो और उस शुद्धस्वरूप पर ही निगाह करो। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र का पालन हो तब हमारा भला होगा, उत्थान होगा। पर इस आत्मधर्म का पालन किये बिना इस अपने आपको विश्वास किये बिना, रुचि किये बिना मेरी गति नहीं होगी मेरा उत्थान नहीं होगा। हम किसी भी प्राणी का यह विश्वास न करे कि मेरी रक्षा करने वाला अमुक है। अरे आपकी रक्षा करने वाला आपका धर्म है जिसके प्रसाद से ऐसा पावन अवसर बना मनुष्य बना, अच्छे समागम मे आया। अगर चीटी चीटा होता है, कीडे मकोडे होता तो क्या होता? अरे हम ठीक है तो हमारा सब ठीक है और अगर हम ठीक नही है तो हमारा कोई ठिकाना नहीं है। धर्म की पार्टी यहा से शुरू होती है। सब जीवो को एक समान जिस निगाह से देखा जा सकता है उस निगाह को बनाओ। सब एकएक चीज है, सब एक एक पदार्थ है। जो दीखता है आख से वह न दीखे तो सच्चा ज्ञान है।

देखो भैया जब बहिन बेटी घर से ससुराल जाती है तो पिता से भाई से भेट करती है। भेट करती भी किस तरह है कि छाती से लगकर, रोकर प्रीति दिखाकर रोया करती है। अब बताओ जो आखो से शकल, सूरत, रूप रग दिखता है, क्या बाप व भाई के ज्ञान मे दिख रहा है? नहीं। उस पिता के ज्ञान मे रग नही दिखता है। बाप, भाई को तो बेटी बहिन ही दिखती है। ज्ञानी को भी जो दीख रहा है वह आकार कीडे,मकोडे, पेड इत्यादि उसे नही दीखते है। केवल उसे ज्ञानस्वरूप, चैतन्यमात्र ही दिखता है। जिस तत्व की दृष्टि मे सब जीव समान है वही स्वरूप मेरा है। जैसे पिता घर मे बच्चो को एक समान देखता है, उनसे एक समान बर्ताव करता है। अगर एक बच्चा हठ करता है जिद करता है, उस बच्चे को यह पिता नही रुचेगा, वह अपने इस पिता से द्वेष करेगा यह उसे महान् नहीं मान सकेगा। इसी तरह ज्ञानी जीव सबको एक समान निरखता है पर इन जीवो मे से कोई अपनी कल्पना करके कोई जीव ज्ञानी को बुरा देखता है उपद्रव करता है कहीं तो अज्ञानी ज्ञानी को आग लगा देता है, शरीर छील देता है, कष्ट देता है जान ले लेता है फिर भी ज्ञानी जीव की दृष्टि मे सब जीव एक समान है। जिस जीवत्व की दृष्टि मे सब जीव एक समान है वह जीवत्व ही नजर आवे तो यह धर्म की पहिली सीढी है। ऐसा इस ज्ञानस्वरूप अपने मे चिरकाल तक रमते हुये अपने मे अपने आप आप सुखी होऊ।

धर्म करे, अपने मे निर्विकल्प होने की व्यवस्था बनाले। और अगर कोई सोचे कि धर्म का पालन करेगे दो तीन वर्ष वाद मे पहिले दुकान की परिस्थिति बना ले, फिर धर्म कर लेगे। धर्म का पालन करेगे तो वह नहीं हो सकता है क्योकि जो वर्तमान मे शिथिलता है, वर्तमान मे प्रमाद है वह क्या धर्म का कारण वनेगा ? प्रमाद, प्रमाद, का कारण बनेगा। शिथिलता, शिथिलता का कारण बनेगी ? इसलिए कैसी भी स्थिति हो, गरीबी हो, कठिन परिस्थिति हो तो भी अपने को निरखने के काम मे प्रमाद न करो। जैसी शक्ति हो उस माफिक धर्म का पालन करो। पुण्य का उदय है तब तो जैन धर्म का प्रसाद मिला, तब तो आत्मा की वात मिली। जो बाहरी बात है वह तो पर है। जो इस आत्मस्वरूप को मानता है वह धनी है। जो परपदार्थो मे अपना बडप्पन मानता है वह गरीब है। इस मनुष्यपर्याय मे मिले हुए क्षणिक समागम से बड़प्पन का निर्णय नही। गरीब तो वह है जो पर मे रम गया और पर मे ही अपना बड़प्पन समझने लगा। सम्यग्दृष्टि सव अमीर है और मिथ्यादृष्टि सब गरीब है। क्योकि मिथ्यादृष्टि का तो रास्ता वन्द हो गया। अब आगे बढने की गुञ्जायश नही है। पर ज्ञानी जीव का आगे सद्गति का रास्ता खुला है। तो मै अपनी आत्मा मे भी अपना ज्ञानस्वरूप पहिचानू, यही इस आत्मा मे सारतत्व है। ऐसी आत्मा मे ठहरते हुए मै अपने आप मे स्वय सुखी होऊ । सुख बाहर खोजना व्यर्थ है बाहर मे सुख के खोज करने के परिणाम मे हैरानी भरी हुई है इससे तो क्लेश ही होता है। अपने को स्वत स्वय आनन्दघन देखू अपने आपका जो भी परिणमन हो रहा है चाहे वह प्रदेशपर्याय हो, चाहे गुण पर्याय हो वह सब क्षणिक है। उस उस पर आत्मस्वरूप की श्रद्धा न करके जो उन सब पर्यायो का आधार ध्रुवसार तत्व है, चित्स्वभाव भाव है उस ही निज सहज परमात्मतत्व मे उपयोग द्वारा ठहरू और स्वय स्वय मे चैतन्य चमत्कार मात्र परिणमता हुआ सहज आनन्दमग्न होऊ।

सद्दृष्टिज्ञानचारित्रैकत्व मुक्तिरद सुखम् ।
तच्च ज्ञानमय तस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-४६।।

अर्थ– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र का एक-पना मुक्ति है यह ही सत्य सुख है और वह एकत्व ज्ञानमय है सो ज्ञानस्वरूप अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊ।

यह आत्मा एक भावात्मक पदार्थ है। यह भावो से ही रचा हुआ पदार्थ है। भावो के अतिरिक्त इसमे अन्य कुछ नहीं मिलता। यह आकाश के समान अमूर्त है। रूप, रस, गध, स्पर्श से रहित है। यह तो एकभावात्मक चीज है, चैतन्यस्वरूप वस्तु है, सर्वोत्कृष्ट विलक्षण, पदार्थ है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, श्रद्धा, आनन्द इत्यादि भावमय एक चीज है। यह आत्मा ऐसी विलक्षण वस्तु है कि जिसमे ज्ञान होता है, विश्वास का माद्दा है, कही न कहीं ज्ञान को यह लगाये रहता है और आनन्द या कल्पनाये या सुख दु ख विकल्पो को करता है। ऐसा यह एकदम सवसे छुट्टा पदार्थ है। किसी भी अन्य वस्तु से जिसका कुछ लगाव नहीं है, अन्य पदार्थो से इसका अत्यताभाव है। लेकिन अज्ञानी जीव अपने इस स्वरूप को न देखकर अपना सारा पता भूलकर वाहर मे देखता है, वाहर मे ही उसको सार नजर आता है और इसी कारण यह दु खी होता रहता है। वाहर पदार्थो मे इसने इच्छाये वनायी, मेरे पास अमुक चीज रहे, अमुक चीज इस प्रकार

से परिणम जावे, नानाप्रकार की कल्पनाये बनीं परन्तु ऐसा तो कभी नही होगा कि कोई परपदार्थ किसी पर के आधीन बन जाय। कोई भी परपदार्थ इस आत्मा के आधीन तो बनते नही, इच्छा बराबर है। इच्छा का काम होता नही, बस यही तो दुनिया मे दु ख का साधन लगा हुआ है। इच्छाये करते है, पर इच्छाओ से काम नही होता है। आनन्द तो तब आता कि इच्छा करे और इच्छा करने से तुरन्त काम हो जाये या कोई इच्छा ही न हो। अज्ञानी तो इच्छा के काम मे लगा रहता है और ज्ञानी पुरुष इच्छा के अभाव करने मे लगा रहता है। ज्ञानी अन्तर मे दृष्टि करके देखता है कि मै तो यह ज्ञानमात्र पदार्थ हू। जानन जिसका स्वभाव है, जानना ही जिसका स्वरूप है, जानना ही जिसका सर्वस्व है ऐसा ज्ञानमय एकवस्तु हूँ। इतना ही विश्वास हो, इतना ही ज्ञान हो और इसमे ही लग जाओ, रम जाओ। इन तीनो मे एकता आजाय, इसी के मायने मुक्ति है। कहते है कि धर्म मे लगो। धर्म मे कहा कहा लगे? मन्दिर मे लग जाये कि जगल मे लगे कहा जाये। कहा लग जाये जहाँ धर्म है? तो धर्म उस आत्मा के स्वरूप मे ही है। धर्म साक्षात् यह आत्मा ही है। इस आत्मा को श्रद्धा से अपने स्वरूप मे देखो और देखते रहो। यही धर्म का पालन है। यह आत्मा मै ज्ञानमात्र हूँ, ऐसा ही विश्वास हो, ऐसा ही उपयोग बने और ऐसा ही उपयोग बनाकर स्थिर हो जाओ। इन तीनो बातो की जहा परिपूर्णता हो जाती है इसी के मायने मुक्ति है। धर्म की साक्षात् मूर्ति यह सहज ज्ञानमय आत्मा है। इस ही स्वरूप के श्रद्धान ज्ञान व आचरण से आत्मा को सुख होता है। यह बात जब तक घटित नही होती है तब तक इसका उपाय करना चाहिये। इसका उपाय क्या है? सबसे पहला उपाय वैसे तो सम्यक्ज्ञान करना ही बताया, किन्तु व्यावहारिक उपाय सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरु की श्रद्धा करना है। किसी भी काम को करना हो तो उसमे यह त्रितय की पद्धति आती ही है। जैसे सगीत सीखना है तो सगीत मे जो अत्यत निपुण है, इस लोक मे सर्वथा प्रसिद्ध है, परिपूर्ण है, ऐसे व्यक्ति की ओर निगाह जरूर रहती है कि मुझे भी ऐसा बनना है, ऐसा सगीतज्ञ बनना है। लेकिन वह एक आदमी जो उसमे पूर्ण निपुण है, वह हमे मिल जाय, पहिले तो यही बात कठिन है। शायद कही मिल भी जावेगा अर्थात् कभी दर्शन भी हो जायेगा तो वह मेरे साथ दिमाग लगावेगा,ऐसा भी नही है। इस कारण अपने गाव मे किसी उस्ताद को देखें तो कहते हैं कि वह सिखा दे। यहा तक देव और गुरु की दो बात हुई । तीसरी बात सरगम के शब्दो का उसे सहारा लेना है। यही सगीत का शास्त्र हुआ। इस तरह सगीत के देव ,सगीत के शास्त्र और सगीत के गुरु हुए। किसी को रसोई सीखना है तो वह किसी निपुणका नाम जो जानता है उसे दिमागमे लेगा जो साग, दाल, भात आदि सब कुछ बहुत ही उत्तम बनाना जानता हो, यह तो हुआ रसोई विषयक देव, अब यह निपुण तो मिलना कठिन है। अगर ऐसा आदमी उसे मिल भी गया तो उसे अच्छी तरहसे सिखा दे यह मुश्किल है। तब क्या करना होता है कि जो सहज घरमे मिल जावे ऐसी कोई दडी हो जैसे बुवा हुई, जीजी हुई, जो भी हुए उनसे कहता है कि सिखा दो। जिसके प्रति श्रद्धा हो कि बढिया यह भी बना लेती है। तो उससे ही वह बनाना सीखेगा। फिर सिखाने वाला कुछ शब्द तो बोलता ही है। जैसे यदि उसे चावल बनाना है तो वह बतावेगा कि १ घण्टा पहले चावल भिगो दो, फिर जब बटलो हींमे पानीका तेज उबाल

आ जाय तो चावल डाल दो। और ऐसे ढक्कनसे बन्द कर दो जिससे भाप न निकल सके। पानी उतना रखो जितनेमे कि चावल समा जावे। शब्द तो बोलना ही पड़ता है। वही शब्द हो जाते है शास्त्र,देव,गुरु। शास्त्र पद्धति हर बातमे चलती है।

तब मुक्तिका पाना अगर हमे सीखना है, मोक्ष जानेका काम हमे करना है तो उसके लिए भी हमे धर्मके देव, शास्त्र, गुरुकी श्रद्धा रखना है जो मुक्त हो चुके है जो केवल ज्ञानी है, अनन्त आनन्दमयी है, ऐसे परम पवित्र भगवानकी श्रद्धा कर लो कि मै ऐसा बन सकता हूँ। यह तो हुई देवकी श्रद्धा। मगर यह देव रोज हमे कहा मिलेगा और कही मिलेगा भी तो वह हमारे लिये दिमाग लगायेगा क्या, वह हमसे बोलेगा कैसे, वह हमारी ओर झुकेगा कैसे? देव तो न सगी है, न असगी है, अनुभय है, कषाय रहित हैं। वे तो अपने आनन्दरसमे मग्न है। उनकी तो श्रद्धा ही श्रद्धा काम करेगी। अगर हमारे गावमे कोई उस मुद्राका सत्सगी हमे गुरु मिल जाय तो उसे भी ढूढना चाहिये। ऐसा गुरु जो आरम्भपरिग्रहसे सर्वथा रहित है, जो ज्ञान, ध्यान, तपस्यामे ही निरत रहता है। ऐसा यदि होगा तो उसके सत्सगसे, उसके वचनोसे हम कुछ धर्मकी बात पा सकेगे। यह धर्मोपदेश जो हमारेमे गुरुवोके द्वारा आया वह शास्त्र है। इससे देव, शास्त्र गुरुकी श्रद्धा सर्वप्रथम व्यवहारमे आती है मन्दिरमे भगवान की मूर्तिकी पूजा करते है। मूर्तिकी मुद्रा कैसी है? कषायरहित, कही आने जानेका काम नही, इससे पद्मासनसे बैठे है, कुछ करनेका काम नहीं, क्योकि ज्ञाता दृष्टा है, सो हाथपर हाथ लगाये बैठे है। कही कुछ देखनेका काम नही। इस कारण नासाग्रदृष्टि से बैठे है। जिनका कोई शृगार नही, जिनके पास परिग्रह नहीं केवल वही वही है– ऐसी उनकी मूर्ति है, जिसको देखकर हम यह भाव कर सकते हैं कि जगत्मे अगर कोई सार काम है तो यही सार काम है कि सब मायाजालको त्यागकर, परिश्रमोसे दूर होकर अपने आपमे रमो। यही मोक्षमार्ग है, इसमे ही शान्ति मिलेगी । ऐसा उपदेश जिनकी मुद्रा से मिला है उनमे हम भगवानकी स्थापना करते हैं और ज्ञानसे हमे देखना है परमात्मा को जो शिवमय है हमे उस परमात्मामे दृष्टि ले जाना है जो अनन्त ज्ञानमय है, अपने आपमे परिपूर्ण विकसित है ऐसी श्रद्धा करना यह व्यवहार मे प्रथम आवश्यक है जिसने अपने आपको निरख लिया है ऐसा मनुष्य ही भगवानकी सच्ची श्रद्धा कर सकता है जिसने भगवानकी श्रद्धा कर ली, ऐसे मनुष्यमे वह बल है कि जब चाहे वह उसकी ओर झुक जाय और अपने आनद रसका पान कर ले।

हे आत्मन्! तू स्वय बना बनाया प्रभु है। तेरी आत्मामे भगवान बसा है। तेरी आत्मा भगवानसे न्यारी नही है। भगवान इन आत्माओमे वास करता है। यहा तक भी जहा भेद नही है यही आत्मा साक्षात् भगवान है, क्योकि यह आत्मा ज्ञानघन है। भगवान का स्वरूप भी ज्ञानघन है। उस अपने स्वरूप को पहिचान ले तो ससारके सारे उपद्रव समाप्त हो जाये और यदि भगवानको,जो अपना है नही निरख पाते तो ८४ लाख योनियोमे चक्कर काटना, यही बराबर जारी रहा करेगा। सबसे बड़ा काम है अपने आपकी सही जानकारी कर लेना । यह नहीं कर पाया तो कुछ नहीं रहनेका है, यह आत्मा तो केवल भावात्मक वस्तु है, भावमय है, भाव ही लेकर जायगा, भाव ही लेकर बना हुआ है, भाव ही हमारा सर्वस्व है सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रकी एकता ही मुक्ति है और यह एकत्व ही वास्तविक सुख है।

अन्य है वह अन्तरात्मा जिसने सत्यका आग्रह किया है, असत्यमे असहयोग किया है असत्यका असहयोग करना ही सत्य आन्दोलन है। यह सब दिखने वाला ठाट-बाट असत्य है। होकर भी नही है, न होकर भी है। यह सारभूत चीज नही है, यह परमार्थ चीज नहीं है जैसे नीदमे स्वप्न आनेमे जो कुछ दिखता है वह सच लगता है, इसी तरह मोहकी कल्पनाये होनेपर जो मनमे आता है, जिसका सम्बन्ध अच्छा लगता है वह सब उसे सत्य दिखता है। पर सत्य है कुछ नही । सारा जीवन गुजर जाने के बाद अन्तमे वृद्धावस्था मे अक्ल ठिकाने आती है कि सारा जीवन गुजर गया, मैने अपना हित कुछ नहीं किया। जिनके लिये विकल्प किया, दुर्भावविभाव किया वे लोग भी नही रहे। उनका कुछ पता नहीं, और जो बचे है वे भी छोड़कर चले जा रहे है। यह शरीर भी यहा नहीं रह जायगा, हम स्वय यहा नहीं रह जायेगे। यह मै केवल आत्मा, मै अपना कुछ नही कर सका। जो बुद्धि थकनेके बाद, परेशान हो चुकनेके बाद, हर तरह शिथिल हो जानेके बाद आती है। यदि हाथ पैर चलते समय, दुरुस्त रहते समय यह बुद्धि आ जाय और अपनी ममता बाहर करके अपने आत्माका दर्शन करने का प्रयत्न कर ले तो यह बड़ी सफलताकी बात है और इतना नहीं कर सके तो कुछ नही है। कुछ तो कभी भी नही है, केवल कल्पना कर लो। पदार्थ तो खुदकी अपनी सत्ताके जुम्मे है।

एक साहब के एक चपरासी नौकर था। साहब ने सोचा कि इस नौकरके नाम से १० रु० की लाटरी लगा दे। अगर इसका इनाम आ जायगा तो दो लाख रुपया दे देगे। अपने लिये तो बहुत लगाया, हजारो रुपये बरबाद कर दिये, पर कुछ न आया। सुयोगसे उसी चपरासीके नाम लाटरी खुल गई। अब वह साहब सोचता है कि इसको अगर दो लाख रुपया यो ही दे देगे तो यह फूला नहीं समायेगा और इसका हार्ट फेल भी हो सकता है। सो पहिले उसको बैतोसे मारा और फिर कहा कि देखो तुम्हारे दो लाख रुपये आये है। वह हार्ट फेलसे तो बच गया। अब वह सोचता है कि रुपया तो रख नही सकता, कोई काम तो करना जरूर है। तब उसने कहा कि ये रुपये हमारे किस काममे लगेगे? आप ही किसी काम मे लगा ले। उन साहबने मैनेजर बनकर कारोबार खोल दिया। अब उसका काम चलने लगा। कल्पना ही तो है कि उसके पास ये चीजे है और यह काम कर रहा है। खैर और आगे चलकर देखो तो लाखो और अरबोकी सम्पदा है तो क्या है? यह मनुष्य तो यो का यो ही है वे तो पुद्गलकी चीजे है उनसे इस आत्माकी सिद्धि नही है। आत्माकी सिद्धि बस आत्माके ज्ञान मे की जाय तो समझो कि सब कुछ पा लिया। इसमे ही अनुपम आनन्द आयेगा। बस अपने आपकी श्रद्धा होनेका नाम सम्यक्ज्ञान है और इस स्वरूपकी ओर झुके रहना, इसमे ही आनन्दका अनुभव करना, यह ही प्रिय लगना, इसकी ही भावना बनाते रहना, इसका ही नाम सम्यक्चारित्र है। इन तीनोंकी एकताका नाम मुक्ति है। जो कुछ अच्छा लग रहा है, लडके है, लडकिया है, यह कुटुम्ब है, यह परिवार है, बड़े अच्छे है, बड़े भले है, जो कुछ भी दिख रहा है उसका विकल्प होना दुर्गतिमे जानेका रास्ता है, उपाय है, धोखा है, आत्माके पतनकी चीज है। यह सब कुछ तो छूटेगा ही, अगर इन सबको छोड दे, अपने उपयोगको बदल ले तो हम भी सुखी हो जाये। मगर जैसे जुवारियोका दल है, वहा दिमाग सही नही रह सकता है। इसी तरह जहा मोहियोका

दल है, वहा ससारमे इस झुडसे निकल जाना सरल नही हो सकता है। पर कोई प्राणी जिसने अपना ज्ञानवल बढाया, जिसने अपने आनन्दका स्वाद चख लिया ऐसे ही आत्मा इन सबसे विरत होकर अपने आपमे रम सकता है। ऐसा जिसका भाव है वही हमारा गुरु है। ऐसा भाव जिसका पूर्ण बनकर स्वभाव पूर्ण विकसित हो गया वह ही हमारा देव है। और जो ऐसा बना रहा वह ही हमारा गुरु है। यह भाव जव हम करेगे तभी सोचेगे कि यह देव है, यह गुरु है। तो वास्तवमे मेरा भाव ही गुरु है और वही मेरा रक्षक है और ज्ञानमय आत्मा ही अपना सर्वस्व है। अतः मै स्वयमे रूचि करूँ और अपने आप अपनेमे स्वय सुखी होऊ ।

तत्त्वतो ज्ञानमात्रोऽह क्व विकल्पावकाशता।
ततोऽहं निर्विकल्पः सन् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-४७।।

अर्थ– वास्तवमें मैं ज्ञानमात्र हू उस मुझमें विकल्पों का स्थान ही कहां है इसलिये अब निर्विकल्प होता हुआ मैं अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊ ।

मै क्या हूँ,कैसा हूँ, कितना हूँ, इस ओर दृष्टि करे तो यह ज्ञानमात्र मालूम होता है। जो जान लिया, जो जाननेमे आ गया, जो जानन बन गया। इसकी शक्ति रूप जो ज्ञानशक्ति है उतना ही मै हूँ। इससे आगे इसमे कुछ नहीं है। इसमे कही पानी नहीं भरा है, जो कोई ढेला मार दे तो इसमे छींटे उछल पडे। इसमे कही आग नही जल रही कि लकड़ी घुसेड़ दे तो जल जायगी । यहा रूप,-रस, स्पर्शका नाम नहीं हैं यह तो केवल ज्ञानभाव शक्ति है, ज्ञानानन्दभाव है, उतना ही मै हूँ । क्या मै हवा से पतला हूँ? अरे मैं हवा से तो कितने गुना पतला हूँ। मै तो आकाशकी तरह अमूर्त हू जिसमे किसी मूर्तिका नाम नहीं है। ऐसा मैं केवल ज्ञानमात्र वस्तु हूँ। बस अधिक बाहर न जाओ और यही देखो। जाननेका ही नाम आत्मा है। ऐसी इस ज्ञानमात्र मुझ आत्मामे विपत्ति कहा हैं, विपत्तिया कहासे घुसेगी? यह तो मै ज्ञानमात्र ही हूँ, वियोग कहा से होगा? सयोग कहासे होगा? यह तो मैं ज्ञानमात्र हूँ। लोग कहते है कि मुझे बडी तकलीफ है? दादी गुजर गई, दादा गुजर गये, मा गुजर गई। मुझे बडी तकलीफ होती है। अरे तू अपनेको समझता है कि तू क्या है? तू तो ज्ञानमात्र है, जाननस्वरूप है, इसमे कहा सयोग है, इसमे कहा वियोग है? कहीं कुछ लगा हुआ है क्या? मैंने इस कामको कर लिया तो इसमे फस गया। इतना हमसे खर्च हो गया, बडी तकलीफ है। अरे तू आत्मा तो ज्ञानमय है केवल तूने उल्टी सीधी कल्पना बना लिया है, इसीसे दुःख होते हैं और यदि सीधा सच्चा भाव बना लेता तो सुखी होता। केवल तेरे जानन पर ही सब कुछ निर्भर है। इस सारे ससारवृक्षमे यह जगत्के जन्म मरण अथवा अपने आपमे आनन्दका पाना, सारी वाते तेरी जाननेकी कलापर निर्भर हैं। इससे आगे तेरा कुछ करतब नहीं है। ऐसा प्रतिभासस्वरूप ज्ञान, ज्ञानमे वैठ जाये तो यह सारा अमृत है यह सर्वोत्कृष्ट है और तो चीजे सब मिट जावेगी, नष्ट हो जावेगी, किसीका भरोसा नहीं। केवल यह ज्ञान यदि मेरे ज्ञानमे आ गया तो मैं अन्तरात्मा हू। यही ज्ञान है, यही मोक्षमार्ग है, यही मुक्तिका उपाय है। किसी भी पदार्थ मे ऐसी शक्ति नहीं है कि वह मुझे मोक्षमार्गमे लगा दे। सव कुछ मेरे ज्ञानकी कलापर निर्भर हैं किसी भी पदार्थमे ऐसी शक्ति नही है कि

वह मेरे मोक्षको रोक ले, यदि अपने आपमे इस ज्ञानस्वरूपका ज्ञान आता हो। जो अपनेको ज्ञानस्वरूपके अलावा और और किन्हीं रूपोमे मानता है अथवा मेरा धन है, मेरा घर है, मेरा कुटुम्ब है, मेरा परिवार है, मेरे अच्छे मित्र है, मेरा अच्छा रुतबा है, कुछ भी माने, बस वही गरीब है। अन्य कोई इस दुनियामे गरीब नहीं है। अरे जो अपने सही स्वरूपको समझ ले कि यह तो मै केवल ज्ञानमात्र हूँ, जो जानन हार है, जो ज्ञानभाव है, वही मै हूँ, इसके अतिरिक्त मुझमे कुछ नहीं है– ऐसा जिनको स्पष्ट दिख जाय, अपने सच्चे विश्वासमे आ जाय, वह अमीर है और इन अमीरोमे सिरताज है। वह सिद्धभगवान है जिनकी हम उपासना करते है। खुदकी चीज खुदमे पूरे रूपसे रहे, दूसरेकी चीज मुझमे रच भी न रहे, यह सबसे बड़ी भारी पवित्रता है। जो मेरी चीज है वह मेरेमे परिपूर्ण रहे, जो मेरी नहीं है वह रच भी मेरे मै न रहे, जो मेरी नही है वह रच भी मेरे मे न आवे। इसीको पवित्रता कहते हैं।

पवित्र दूध कैसे कहलावे कि जो दूधका स्वत्व हो वह उसमे पूरा पूरा रहे और बाहरी कोई चीज दूधमे रच भी न आवे। दूधका जो निजी स्वत्व है वह मशीनसे बाहर निकाल लिया जावे, केवल सपरेटा रह जावे तो वह दूध अच्छा है क्या? पवित्र है क्या? दूधमे बाहरी चीजे डाल दी जावे, पानी या छेरीका दूध डाल दिया जावे तो क्या वह दूध पवित्र है? नही। दूधका स्वत्व दूधमे पूरा रहे और कोई चीज दूधमे ने आवे तो इसको उत्कृष्ट दूध कहते है। इसी तरह आत्माकी निजी बात आत्मामे पूरी रहे और जो आत्माकी निजी बाते नही है वे आत्मामे रच भी न रहे, इसीको परमात्मा कहते हैं। हमारा अपना हममे कुछ तो है। चाहे पूरा न विकसित हो मगर कुछ तो है। मेरी आत्मासे बाहरकी जो बाते है-वे बहुतसी हममे नहीं हैं, इसी तरह जो है उन्हे भी निकालकर फेक दे और थोड़ा हम विकसित है तो जरा और बढ़कर हम विकसित हो जावे। यही भगवानका स्वरूप है। अपने आपके यथार्थस्वरूपमे आ जाना सबसे दुर्लभ है।

धन कन कंचन, राज सुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान। ।

आज देवतावोके नाममे, धर्मके नाममे, परपदार्थो मे अपनेको बड़ा विवाद है। कोई कहता है कि भगवान का स्वरूप यो है, कोई कहता है कि भगवान का स्वरूप यो है, कोई कहता है कि दुनिया ऐसी है, कोई कहता है कि दुनिया इस प्रकारकी है। जुदे जुदे शास्त्र हैं, जुदी जुदी उनकी कथनी है, जुदी जुदी उनकी पद्धतिया है। यदि तू कल्याणार्थी है तो उनके झगड़ोमे न पड़ । तू तो समझ ले कि तू यथार्थ मे है क्या? तू अपनी यथार्थ बाते समझना नहीं चाहता, बाहरमे मन लगाता है। इसीसे धर्म के नाम में सम्प्रदायके नाममे विवाद होता है,झगड़े होते हैं, मन मोटाव हो जाता है। अरे इन बातोके झमेलोमें तू मत पड़। तू सबको छोड़कर अपने आपका निर्णय तो कर ले। तू केवल अपने आपका ही निर्णय कर लेगा तो सभी निर्णय आ जायेगे क्या होता है भगवान्,धर्म क्या कहलाता है, यह भी स्पष्ट हो जायगा और यदि अपना निर्णय नहीं कर सका तो कुछ भी नहीं वश चलेगा, कुछ भी निर्णय न होगा, विवादमे पड़ा रहेगा, विसम्वादमे बढ़ जावेगा, लोभ जरा जरासी बातोसे बढ़ेगे, शाति कहीं ढूढे भी न मिलेगी। तू अपने आपका ऐसा निर्णय करके तो समझ ले कि मैं एक ज्ञानमात्र पदार्थ हूँ। इसके आगे मेरी कोई

शक्ल सूरत नही, रग नहीं, आकार नहीं, ढाचा नहीं। मै केवल ज्ञानमात्र हूँ, ऐसा ज्ञानमात्र स्वरूपकी हाँ तो कर कि मै यह हूँ। यह पक्का समझ। फिर चरित्र मोहके उदयमे भी अन्तर मे कोई झझट नही आयेगा और यदि झझट पड़ भी जायेगा तो कोई परेशानी नहीं आयेगी।

"होता स्वय जगत परिणाम" पड़ौसका परिणमन है, जगत्का कुछ होना है, समाजका परिणमन है वह सब वहीं का वही है। यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा किसी भी परपदार्थ का क्या काम करता हूँ। इसका तो जाननेका ही काम है। जानता रहे और यह बिगड़ जाय तो इच्छा कर लेवे, चाह कर लेवे, विकल्प कर लेवे, इष्ट मान लेवे सो ऐसी नाना कल्पनाये भी कर ले तो वह कल्पनाओसे अधिक कुछ नहीं कर सकता है। इस आत्मामे दूसरे पदार्थका प्रवेश नही है, दाखिला नहीं है, अधिकार नहीं है, ऐसा यह मै शुद्ध केवल ज्ञायकस्वभावमय हूँ। यहा कुछ अपना नही है। तू अपने भ्रम को छोड़ और अपने ज्ञायक स्वरूपको देख, तू तू ही है। तू अपनेमे जगतके सारे पदार्थो का निषेध कर। तू अपनेको ऐसा जान कि मेरे परिवार नहीं है, मेरे कुटुम्ब नहीं है, मेरे मे जगत्की कोई भी चीज नही है, किसी भी चीजका प्रवेश मेरे मे नहीं हैं मै केवल ज्ञानमात्र हू, ऐसा तू अपने आपको अच्छी प्रकारसे निर्णय कर ले। शायद यह सकोच हो कि घर वाले यह समझेगे कि घरको नही समझ रहे है, यह मेरे को नहीं मान रहे हैं। अरे हम मानते है कि तू नहीं समझ सका, तू नहीं मान सका ऐसा समझ लेगे। पर ये मानते है, ऐसा भी वे क्या जानते हैं? अरे तू तो अपने यथार्थ ज्ञानको तो कर। ऐसा ज्ञान जो अपने ज्ञानमे रख लेता है वह ज्ञानी पुरुष कोई अनुचित व्यवहार नहीं कर सकता है। फिर उस ज्ञानी के घर वाले लोग क्या बुरा मानेगे? ज्ञानकी महिमा तो अलौकिक है परमार्थ तो मै ज्ञानमात्र हूँ। यहा विकल्पो का वास नहीं, आत्मामे कोई झझट नहीं, यदि आत्माको अपने ज्ञानमे रक्खो तो सोते हुएमे स्वप्न आता है तो वहा सारे झझट हैं। और यदि जग जाये तो सारे झझट दूर है। अपने आपके यथार्थस्वरूपको ज्ञानमे न लिया, मोहके विकल्पोमे ही रहे तो उसके लिए सारे झझट है।

जैसे कोई पुरुष मार्गमे कहीं बैठा है, पासमे कुवा है। आने जाने वाले मुसाफिर कोई मोटरसे आ रहा है, कोई तागेसे आ रहा है, कोई किसी चीजसे आ रहा है। कोई मोटरसे आने वाला मुसाफिर पानी कुवे पर पीने लगता है। खडी हुई मोटरको देखकर वह बेवकूफ समझ लेता है कि यह मेरी मोटर है। जब वह पानी पीकर मोटर से चला जाता है तब वह मोटरको न देखकर रोने लगता है कि हाय मेरी मोटर चली गयी। इसी प्रकार इस ससारमे भटकते हुए एक मार्गमे हम आकर बैठ गए है, अब इसी जगह प्रयोजन वश १०,५ आदमी आते हैं, मोटर, बग्घी, हाथी, घोड़े आते हैं, यह बेवकूफ मान लेता है कि यह मेरे हैं यह मेरे हैं, यह मानना ही बुरा है। तो इनका भिन्न-भिन्न रास्ता है, सब जुदा जुदा, पर मैने मान लिया है कि यह मेरे हैं यह मेरे दादा है, यह मेरी दादी है, यह मेरे बाबा हैं। अरे यह सब चले जावेगे, दादा,दादी तथा बाबाका यहा कोई भरोसा नहीं है। मैंने इनको मनमे बसा लिया कि यह मेरे हैं। जिन्होंने इन सबको अपने मनमें बसा लिया है कि यह मेरे है उनको दुःख होता है। वे रोते हैं, हाय मिट गया, रास्तेमे बैठे हुए देखो प्राणी यो रोते हैं। लोग कहेगे कि यह पागल है। जैसे वह रोता

- था कि हाय मेरी मोटर चली गई । रोता है तो रो। हाय यह गया, यह घट गया, अमुक हानि हो गई, हाय नुक्सान हो गया, यह चला गया। इस प्रकारसे उसे देखकर विवेकी लोग तो पागल कहेगे। भ्रमसे यह मोही रोता है तो रोओ। इसका दुःख तो अन्य कोई मेट नही सकता। ज्ञानी पुरुष-ही यह समझ पाते है कि यह पागल हो रहा है। रोता है तो रो, रोनेसे तो कुछ मिलेगा है नही। दुःखी होनेसे तो कुछ आयेगा ही नहीं। अरे भाई अपने सही स्वरूपको तो देख, तू है क्या? यदि अपने आपको नही देखेगा तो करेगा क्या? तू शाति कैसे पायेगा? तू अपने आपको समझ ले कि मै ज्ञानमात्र हूँ। मुझमे उपद्रवोका अवकाश नहीं। झझट और विकल्पोकी निगाह नहीं। यह तो केवल जाननहार वस्तु है सो निरन्तर तू ज्ञान से ही काम कर, मै निर्विकल्प ज्ञायकस्वभावमात्र हूँ। इसलिए मै निर्विकल्प होता हूँ।

अब क्या हूँ, अरे मैने जान लिया कि यह मै ज्ञानमात्र वस्तु हूँ। इसमे उपाधियोका प्रवेश नहीं, झझट इसे छू ही नही सकता। मुझे तो झझटो से रहित तथा निर्विकल्प होकर सारे परपदार्थो की आशाओको, तृष्णाओको छोड़ते हुए केवल ज्ञानस्वरूप अपनेको निरखना है। और फिर अपनेमे अपने लिए अपने आप सुखी हो जाना है। सुखी होनेका दूसरा उपाय मत खोजो, वह सब धोखा है, उसमे सुख नही। कोई व्यापारका काम करते है वहा जब सुख नहीं मालूम देता है तो उसको भी छोड़ करके सर्विस करते हैं, कहते है अब यो करेगे, अब यो करेगे, कितना भी कुछ कर ले और ज्ञानको छोड़कर वह सब मायाजाल है, ज्ञानातिरिक्त सर्वचेष्टाओसे रहित निज ज्ञायकस्वभावको देख, अन्य सबसे उपयोगको हटाकर निर्मल बनाए रहो, बाकी तो सब एकसा मायाजाल है।

एक ब्राह्मणी मा के तीन लड़के थे– बड़ा, मझला और छोटा। एक बनिया था, बनिया तो बड़ा चतुर होता है, हर बातमे पैसोका हिसाब लगाता है। बनियेने सोचा कि एक ब्राह्मणको जिमाना है सो ब्राह्मणी मा के लड़कोको जिमाऊ। मगर छोटा लड़का सबसे कम खाता होगा,उसीको जिमाऊ तो अच्छा रहेगा। ब्राह्मणी मा के पासमे बनिया गया, बोला कि मा जी आज तुम्हारे छोटे लड़के का निमत्रण है। मै उसे जिमाऊगा। माँ ने कहा–बहुत अच्छा है। हमारे तीनो लड़के तिसेरिया हैं याने तीन सेर खाने वाले है, किसीका निमत्रण करो, वे सब बराबर है।

इसी तरह ज्ञानके कामोको छोड़कर बाकी दुनिया के पदार्थो मे जितने भी काम है वे सब झंझट हैं, एक बराबर है, झझटरहित तो केवल एक निज स्वरूपकी दृष्टि है, और यही धर्मका पालन है, यही करना है। घरमे बैठे हुए यह दृष्टि बन जाय तो अपना बड़ा काम कर रहे हो। यदि यात्रा मे यही बात दृष्टि मे आ जाय तो समझो कि धर्म कर रहे है और मनमे कषाय है, रज है, सारी बाते हो रही हैं, लड़ाइया हो रही है, झगड़े हो रहे है, वहा धर्म नही होगा। कहीं चलते फिरते धर्म मिल जाय, किसी जगह मिल जाय और जहा धर्म मिलनेका माधन बनाया वहा नहीं मिले और जहा मिलने का साधन नहीं वनाया, वहा मिल जाय।

हमारा सब काम हमारे आधीन है। जैसे हम अपनेको बनाना चाहे, बना सकते हैं, अपने आपका

निर्णय कर लो कि मै क्या हूँ, मै केवल ज्ञानमात्र हूँ, जिसमे दूसरी चीजका प्रवेश नहीं है, मैं यह ज्ञानमात्र हूँ सहज परमात्मतत्व हूँ, ऐसी ही अपनी दृष्टि बनाकर मैं अपने आप अनुपम आनन्दका अनुभव करू।

देखो, यह ज्ञानमात्र आत्मतत्व ही भगवत्स्वरूप है, यह ज्ञानघनतत्व ही इन्द्रियो के विषयोको जीतता है, कर्मो का क्षय करता है, इससे यह ज्ञानस्वरूप ही निज है, यह ज्ञानस्वरूप ही पूर्णानन्दमय है, कल्याणस्वरूप है, इससे यह ज्ञानस्वरूप ही शिव है, यह ज्ञानस्वरूप ही समस्त ऐश्वर्य है और अपना काम करनेमे आप ही स्वय सर्वकारणरूप है। इससे यह ज्ञानस्वरूप ही ईश्वर है, यह ज्ञानघन आत्मतत्व ही अपनी सृष्टिका मूल है अतः यह ज्ञानस्वरूप ही ब्रह्मा है। राम का व्युत्पत्यर्थ है– " रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति राम " जिसमे योगी जन रमण करे उसे राम कहते हैं, योगी जन इस पवित्र ज्ञानस्वरूपमे ही रमण करते है। अतः यह ज्ञानस्वरूप ही राम है, यह ज्ञानस्वरूप पूर्णव्यापक है, सर्वव्यापक है, समस्त लोकालोकज्ञ है, अतः यह ज्ञानस्वरूप ही विष्णु है, यह ज्ञानमय आत्मतत्व ही समस्त पापो और विकल्पोका हरने वाला है। अतः यह ज्ञानस्वरूप ही हरि एव हर है, यह ज्ञानस्वरूप ही सर्वदेवतामय है, सर्व प्राणिमय है, सर्वहितमय है इसका स्वयसिद्ध स्वरूप निरुपद्रव है, निर्विकल्प है।

हमारे पुराण महापुरुषोने लोकके बड़े-बड़े वैभवोको त्यागकर इस ही ज्ञानस्वरूपमे हित एव आनन्दका अनुभव किया था, जिसके परिणाममे वे ज्ञानमय व आनन्दमग्न होकर भगवान हुए, ऐसे ही इस निर्विकल्प ज्ञानस्वरूपमे अपनेको उपयुक्त करके स्वय शिवमय होऊ।

स्वैकत्वस्य रुचिस्तस्माद्-भव्यता निश्चयेन मे।
अस्वभावे कथ वृत्तः स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-४८।।

अर्थ– मेरे तो निजके एकत्वमें रुचि है इसलिये निश्चयसे मेरे भव्यपना (तथा ही होनहार) है फिर ऐसी प्रवृत्ति में जो मेरा स्वभाव नहीं कैसे लगा, मैं तो अब अपनेमें अपनेलिये स्वय सुखी होऊं।

जितने भी चेतन पदार्थ है उन सबमे किसी न किसी ओरकी रुचि रहा ही करती है। जिन्हे सम्यग्ज्ञान हो गया उनकी रुचि, उनका झुकाव अपने आत्मस्वरूप के उपयोगमे होता है, जिन्हे अपने यथार्थस्वरूपका पता नहीं उनकी रुचि बाहर रहा करती है। बाहर रुचि क्यो हो जाती है? इसका कारण यह है कि जीव तो आनन्दस्वभाव ही है। इसके आनन्दका परिणमन निरन्तर होता ही है, किन्तु पर - उपाधि सहित अवस्था मे अज्ञान होनेके कारण इन्हे यह भ्रम लग गया कि मेरा आनन्द बाहरी पदार्थो से आता है, इसलिये उनकी दृष्टि विषयोंकी तरफ दृष्टि होते रहते भी, आनन्दगुणका परिणमन तो चलता ही रहता है। सो वहा इष्ट विपय पाने पर आनदगुणका सुखरूप परिणमन तो चलता ही रहता है। आनन्द तो अपने ज्ञानसे ही अपनेमें है। वाहर दृष्टि होनेसे यह वाहरी पदार्थो से आता है, लेकिन है बात उल्टी। आत्माका ज्ञान और आनन्द वाहरी पदार्थो की दृष्टिके कारण ढका है, रुका है, प्रगट नहीं होता है। परन्तु इसकी शक्ति अद्भुत है। कितने ही आवरण, कितने ही विघ्न आवे तो भी मूल से इस ज्ञान और आनन्द का निरोध नहीं हो सकता। ज्ञान और आनन्द तो हुआ ही करेगा। अब भ्रमके कारण यह दृष्टि बन गई कि आनन्द

अमुक वस्तुसे होता है। सो भ्रममे इसकी उल्टी मति हो जाती है। यह यथार्थ ज्ञान है कि यह मै आत्मा अपनी शक्तिस्वरूप हूँ, ज्ञानमय हू, आनन्दघन हूँ। ज्ञान और आनन्दके पिण्डके अतिरिक्त यह मै आत्मा कुछ नही हूँ। यह जो शरीरमे रुका है, इसको शरीरने नहीं रोक रक्खा क्योकि शरीर मूर्त है, वह अमूर्त आत्माको कैसे रोके? यह ही शरीर मे मोह करके और अपना सस्कार बना करके रुका है। और कोई पदार्थ तो उसे रोक नहीं सकते है अर्थात् जब तक निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध नहीं हो पाता तब तक यह नही रोका जा सकता है। यह आत्मस्वरूप स्वतः सिद्ध तत्व है। इसके सहजस्वरूपको देखो तो यह प्रभु है। इसमे किन्ही बातोकी कमी नही है। परमानन्दका स्वभाव अनादि अनन्त रहता है। समस्त लोकके जाननेका स्वभाव अनादि अनन्त है। इसमे किन्ही बातोकी कमी नहीं। परिपूर्ण तो यह है ही। जो अपनेको ऐसा देखे वही तो परिपूर्ण बनेगा।

जैसे घरमे चाहे लाखो का धन गड़ा हो, जब तक उसे गड़े हुए धनका पता नहीं है तब तक वह उपयोग मे दरिद्र ही है। उसकी प्रवृत्ति गरीब जैसी होगी क्योकि उसको पता नहीं है कि घरमे लाखोका धन गड़ा है। कही पता चल जाय, कहीपर लिखा हुआ मिल जाय या किन्हीं पुरखोके द्वारा पता लग जाय कि तेरे घरमे लाखो की निधि गड़ी है तो इतना मालूम होते ही उसको आनन्द आ जायगा। अभी उसने देखा भी नहीं है, परन्तु इतना पता लग गया, लिखा हुआ पा गया, उसीसे उसको आनन्द आ जायगा। वह आनन्दमय हो जायगा। अब उसको निकालनेका प्रयत्न करेगा। कुदाली लायगा, सब्बल लायगा, फावड़ा लायगा। उसको खोदेगा। ज्यो ज्यो वह खोदता जायगा, जो कुछ आसार देखता जायगा वह आनन्दमग्न होता जायगा। कही देखा कि मिट्टीकी खपरिया मिली, कही देखा कि कोई मटका मिला, इतनेमे ही वह बहुत खुश हो जाता है। जब धन निकल आता है तो धन पानेका जो अनुभव है उसमे सब कुछ भूल जाता है और विलक्षण सुखका अनुभव पाता है। इसी तरह इस आत्मामे बहुतसी निधि गड़ी हुई है। वह है अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दकी निधि किन्तु यह निधि कर्मरूपी पृथ्वी के नीचे गड़ी है, अतः इसी कारणसे यह भिखारी होता हुआ परकी आशा करके बेचैन हो रहा है, पराधीन हो रहा है। मेरा सुख तो अमुक भैयाके हाथ है। ऐसा समझकर भैयाका दास बन रहा है। मेरी जिन्दगी तो इन्हीं के हाथ है ऐसा सोचकर उसकी ही दासता कर रहा है। ऐसी परिस्थिति है इस ज्ञानघन प्रभुकी, जिसको अपने धनका पता नही है। जब इसको पता लग जाय किसी भी प्रकार तो शास्त्रो मे लिखा हुआ देखकर, अपने पुरुखो के उपदेशो को बाचकर, ज्ञानी धर्मात्माओसे सुनकर जब पता लग जाता है कि मैं तो आनन्दस्वरूप हू, मेरे मे तो ज्ञान और अनन्त आनन्द भरा हुआ है। इतना पता लगते ही वह आनन्दविभोर हो जाता है।

मै गरीब हूँ, मुझे दूसरोसे कम सुख हैं इन कुवासनाओ से जो क्लेश होता है वह सारा का सारा मिट जाता है। यदि अपने आनन्दस्वरूपको पहिचाना तो ज्ञानी अब इस निधिके विकसित करनेका प्रयत्न करता है कि मेरा ज्ञान और आनन्दस्वरूप शीघ्र विकसित हो। इसके लिए वह क्या करता है भगवानकी स्तुति, बारह भावनाओका चिन्तन, वस्तुस्वरूपका अध्ययन, मनन, ध्यान, यही उसके खोदनेकी कुदाली

और सव्बल होते हैं। इन साधनोसे ज्ञानी कर्मपृथ्वीको खोदता है। जैसे ही उसको कुछ आसार भावो मे मिलने लगता है वैसे ही वह एकत्वकी ओर आने लगता है और उसे हिम्मत बधती है। ऐसें उसे आनन्द प्राप्त हो सकता है। वह आनन्दस्वभाव है। देखो ना, ज्ञानीने शुद्ध आनन्दभाव को ही अपने उपयोग मे लिया है। वह आनन्द बढ़ता जाता है, तब ही तो वह अनुभवमे आनेके लिए एकदम शीघ्रता करता है और फिर आनन्दमग्न हो जाता है । ऐसी शुद्धवृत्ति आत्माके एकत्वस्वरूपकी रुचि होनेपर आत्माओ मे होती हैं जिसकी आत्माके एकत्वमे रुचि है, निश्चय है कि वह भव्य ही है। जरा अपनेको तो निहारो कि तुम क्या चाहते हो? चाह लो, जो-जो चाहोगे सोई मिल जायगा। चाहे दो-चार लाख रुपये चाहते हो वह भी मिल जावेगे, इसके बाद शाति मिलेगी क्या, कुछ अन्दाज कर लो, तृष्णा बढ़ेगी, परिचय बढ़ जायगा, चोरो, डाकुओ, राजाओसे बहुत दुश्मनी बढ़ जायगी, लाखो, अरबो रुपया पानेके लिये बैचेन हो जावोगे। जैसा चाहो वैसा चाह लो, अपने भवितव्यका यथार्थ विचार कर लो, शाति कही नहीं मिलेगी। शान्ति है तो केवल अपने शुद्धस्वरूप के उपयोगमे है और इसके द्वारा पूर्ण शाति स्थित रह सकने वाली शान्ति है, मेरे मे जो सुख प्रगट होता है वह दूसरो के द्वारा होता है तो वह पराधीन है। कभी मिलता है और कभी नही मिलता है, इसमे सन्देह है। पर अपनी चीज अपनी ही है, वह अपने उपयोग से ही मिलती है, और अपने ही उपयोग मे आयेगी। यह मै ही सदा रहने वाला हूँ। इसका उपयोग भी सदा रहने वाला है। यह ससार का प्राणी अपने इस धन को छोडकर पराये धन मे रहकर दु खी हो रहा है। परन्तु यदि इस एक अपने आत्मधन मे न आया तो क्या है ? इस जीव ने सब व्यवस्थाये की, यदि अपनी व्यवस्था नहीं की तो क्या है ? यह सब क्षणिक बाते है, मिट जाने वाली बाते है। इससे आत्मा को क्या मिलेगा ? अपनी व्यवस्था करना सर्वप्रथम कर्तव्य है। अपनी व्यवस्था के मायने अपने घर की नहीं, अपने कुटुम्ब की नही, अपने परिवार की नहीं परन्तु अपना रूप पहिचान मे आ जाय, यही इसकी व्यवस्था है।

एक कथानक है कि एक बाबू साहब थे। वह शाम के बाद अपने दफ्तर की सुन्दर व्यवस्था मे लग गए, जहा जो चीज रखना चाहिए उन्होने वहा पर रक्खी, घडी जहा रख दी तो उस जगह लिख दिया घडी, जूते जहा रख दिये तो वहा पर जूते लिख दिया। कमीज, कोट इत्यादि जहा पर रख दिये तो वहा पर कमीज, कोट लिख दिया। इस तरह सारी व्यवस्था बनाते बनाते ६ बज गए, नींद आने लगी परन्तु व्यवस्थाओ का बनाना नहीं छोडा। खुद पलग पर जब जाकर बैठे तो उस पलग मे भी लिख दिया मैं, और उसी पलग पर सो गए, सुबह जब हुआ, सोकर जगे तो घूम घूम कर देखते है कि हमारी सब व्यवस्था ठीक है कि नहीं ? घडी की जगह पर घडी, छड़ी की जगह पर छडी तथा अन्य चीजे भी ठीक ठीक उसी जगह पर रक्खी हुई हैं जहा पर रख दिया था। पर मै नहीं दिखता। गौर से देखते हैं पर मैं कहीं नहीं दिखता। बोले कि मेरा मैं कहा गया है ? जब न मिला तो उसी पलग को झिटकाया पर मैं उस पलग से नहीं टपका, उन्होने सोचा कि मै तो गुम गया है। नौकर को झट बुलाया बोले मनुवा, ओ मनुवा यहा आवो, बड़ा गजब हो गया है, मेरा मैं कहीं गुम हो गया है। नौकर यह सुनकर हसने

लगा और मन में सोचा कि क्या बाबू जी का दिमाग खराब हो गया है? नौकर बोला बाबू जी घबराओ नहीं, आपका मैं आपको मिल जायगा। आप थके हुए हैं जरा सा आराम कर लें। मैं आपका निश्चित ही मिल जायगा। बाबू जी को विश्वास हो गया कि यह पुराना नौकर है, झूठ नहीं बोल रहा है। बाबू जी पलंग पर लेट गए। जब सोकर जागे तो नौकर बोला कि अब आपका मैं मिला कि नहीं, बाबूजी ने जब अपने आप को टटोला तो बोले कि, हाँ मिल गया मेरा मैं, भैया तुम्हें धन्यवाद है।

सब कुछ है। जीव तो अनेक मनुष्य जन्म पाते हैं और मनुष्यभव को छोड़कर चले जाते है। परन्तु मनुष्यभव पाना उन्हीं जीवो का सफल है जिन्होने इस भव मे पाये हुए श्रेष्ठ मन को निमित्त करके आत्मतत्व का अध्ययन किया है और इसके परिणामस्वरूप कभी निर्विकल्प निज ज्ञायकस्वरूप का अनुभव किया है। अपने आपकी अन्तर्दृष्टि करके देखो। क्या इस मेरे को अपने आत्मस्वरूप के एकत्व मे रुचि है या नहीं। यदि मुझे आत्मस्वरूप की रुचि है तो निश्चय से भव्य हूँ। मै परभाव मे क्यो लगू ? अपने मे ही अपने द्वारा रमकर सुखी होऊ।

अद्वैतानुभव सिद्धिर्द्वैतबुद्धिरसिद्धता।
सिद्धेरन्यश्च पन्था न स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-४६।।

अर्थ- निज अद्वैत का अनुभव तथा अद्वैत परिणमन ही सिद्धि है, द्वैतबुद्धि असिद्धि है। सिद्धिका और दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है, निज अद्वैत स्वरूप अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊ।

अपने आप मे अपने अकेले का अनुभव करना, इस ही का नाम सिद्धि है। ऐसे अकेले का अनुभव करना कि जो वास्तविक अकेला है, स्वत सिद्ध है, निजस्वरूप सत्तामात्र है, परपदार्थो और परभावो से जुदा है, अपने आप चतुष्टय मे सत् है ऐसा ज्ञानमात्र व ज्योतिमात्र अपने आपका अनुभव कर। इस ही का नाम सिद्धि है। अन्य कोई चीज अपने मे कुछ मिलती नहीं। मैं किसी अन्यरूप नही हूँ अथवा मैं अन्य कुछ मिल करके भी नहीं हूँ। यदि किसी दूसरी चीज मे अपनी बुद्धि रखते हो तो इसी का नाम असिद्धि है। मैं आत्मस्वभाव मे साक्षात् भगवान् स्वरूप हूँ। लोग कहते है कि भगवान् घट घट मे बसता है, भगवान् अलग नहीं है। जो बसने को घट घट मे जाता हो या एकदम से वह फैलकर घट घट मे आ गया हो। ऐसा नहीं है, किन्तु जितना घट घट है, जितना आत्मा है, जितना चैतन्यस्वरूप है, वह सब भगवान् है। हम स्वय ही सत्य आनन्दमग्न है, किन्तु अपने इस स्वभाव का विश्वास न रखकर वाह्यपदार्थो से आनन्द होता है या आनन्द मे बाधा होती है। ऐसी एक दृष्टि हो गई है। इस दृष्टि से वह अपने आनन्द को रोकता है। वह स्वय आनन्दस्वभाव की निधि है। आनन्द कहीं बाहर से नहीं आता है। स्वय यह आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञान किसी से लेना नहीं है। इसी प्रकार यह आत्मा आनन्दमय है। कभी भी दूसरी जगह से आनन्द इसमे लाया नहीं जाता है। यह खुद आनन्दस्वरूप है और इसी कारण किसी ने इसे आनन्दमय ब्रह्म कहा है अर्थात् ब्रह्म का स्वरूप है आनन्दमय है और इसी को किसी ने ज्ञान का स्वरूप कहा है और किसी ने इसको सत् का स्वरूप कहा है। इस तरह पृथक् पृथक् कहा है किन्तु स्याद्वाददृष्टि ने इसे सत्चिदानन्द बतलाया है। यह आत्मा अपने स्वभाव से बढ़ते है, अत यह स्वभाव वाला है। अत इसे कोई ब्रह्मा कहते हैं और कोई आनन्द की प्राप्ति कहते हैं, किन्तु वह तो सत्स्वरूप भी है, चित्स्वरूप भी है, आनन्दमय भी है अत उसे सच्चिदानन्दमय कहा है। जहा आनन्द का स्वरूप चित् का स्वभाव पूर्ण विकसित है, उसी का नाम परमात्मा है। प्रत्येक जीव को स्वरूप से देखो कि ऐसा है कि नही। वह ऐसा ही है इन जीवों मे चैतन्य भी है, क्योंकि अगर चैतन्य नहीं होता तो इन जीवो मे ज्ञान और समझ कहा से आती ? और आनन्द है कि नहीं ? आनन्द भी है। यदि आनन्द न होता तो जीवो मे आनन्द

तरह चाहे जितनी ही कल्पनाये आ जाये, चाहे जितने ही मत आ जावे उनकी आत्मा का एक ही स्वरूप है, एक ही स्वभाव है । कोई ऐसा भी जीव है जिसका यह मत है कि आत्मा फात्मा कुछ नही है। आत्मा का अस्तित्व कुछ नही है। वे आत्मा को मना कर रहे है। आत्मा का विरोध कर रहे है। आत्मा ही आत्मा को निपेध कर रहे हैं। निषेधबुद्धि करने से सत् नही मिट गया। वैसे आत्मा को अन्य रूप मे कल्पनाये कर लेने से आत्मा मे वह कुछ नही हो जायगा। आत्मा वही है जैसे रस्सी को डोर का भ्रम हो जाय कि यह सर्प है तो भ्रम हो जाने मे कही रस्सी की डोर सर्प नहीं बन जायेगी। वह तो रस्सी ही रहेगी। हम कितनी ही चीजो के बारे मे कितनी ही कल्पनाये कर डालते है परन्तु इतनी कल्पनाये कर लेने से ही चीज नहीं हो जाती। वह तो सत्ता से हो गई है, वही है। हम इस आत्मा के बारे मे कितनी कल्पनाये करे, हम नाना नही बन जावेगे। हमारा तो एक स्वरूप है, जो अनादि से अनन्त काल तक रहेगा।

यह निगोद कीड़ो जैसी पर्यायो मे भी पहुचा है, इस आत्मा का प्रदेश आकार भी बदल गया है, फिर भी निगोद जैसी निम्न अवस्थाओ मे भी इस आत्मा का स्वरूप वही एक रहा है, वह नहीं बदलगया। उसका जो स्वत्व है, सो ही है, वह नहीं बदल गया। ऐसी आत्मा का वह अद्वैतस्वरूप जिनके ज्ञान मे आया है उनको सिद्धि होती है और जिसे द्वैत आया है, जिसने द्वैत का अनुभव किया है उसको असिद्धि होती है। उस एक को जिसने चाहा है उसको सर्वस्व मिला है और एक को छोड़कर जिसने नाना पदार्थो मे दिल लगाया है उनको कुछ नहीं मिला है।

एक ऐसा कथानक है कि एक बार एक राजा किसी दूसरे राजा से लड़ाई करने गया। दो माह तक युद्ध होता रहा। उसमे उस राजा की विजय हो गई। इसके बाद वहा पर राजा ने बड़ा उत्सव मनाया और खुशी मे देश की सब रानियो को पत्र लिखा कि जिसको जो कुछ चाहिये हमारे को पत्र लिखे। तब किसी रानी ने साडी लिखी, किसी ने जेवर लिखा, किसी ने अमुक खिलौने को लिखा, किसी ने कुछ लिखा, किसी ने कुछ लिखा। जो सबसे छोटी रानी थी उसने अपने पत्र मे लिख दिया केवल १ का अक, और कुछ नहीं लिखा। पत्र को लिफाफे मे भरकर भेज दिया। जब राजा ने पत्रो को खोला तो किसी मे कुछ लिखा था किसी मे कुछ मगर छोटी रानी के पत्र मे केवल १ का अक लिखा था। राजा इस केवल एक या १ का अर्थ न समझ सका। उसकी समझ मे केवल १ का मतलब न आया। उस राजा ने मत्रीसे पूछा कि इस छोटी रानी ने क्या मगाया है ?मत्री पत्रको देखकर कहता है कि छोटी रानी ने केवल एक आपको ही चाहा है । राजा सभी रानियो को किसी को साड़ी, किसी को गहना, किसी को खिलौने लेकर अपने देश जाता है। जव वह वहा पहुचता है तो जो जो कुछ देना था वहा, उनके महलो मे पहुचा दिया और छोटी रानी के महल मे स्वय पहुच गए, जिसने केवल एक को चाहा था, पर अब यह बतलावो कि राजा की सारी चीजे, सारा वैभव, हाथी, सेना, शासन, इज्जत इत्यादि सब कुछ उसके महल मे पहुच गया या नही।

इस जगत् मे जितनी भी व्यवस्थाये चल रही है वह सब चैतन्य ज्योतिका ही तो प्रसार है। एक चैतन्य ज्योति को जिसने चाह लिया, एक अद्वैत स्वभाव को जिसने चाह लिया उसको सर्वसिद्धि है।

इस आत्मानुभव की ओर आवो। बाहर की ओर दृष्टि कम करके अपनी प्रकृति, रहन सहन को सात्विक बनावो और मुख्य प्रयोजन जो आत्मसिद्धि का है उसे करो। बनावट, दिखावट, सजावट न करके धर्म मे दृष्टि दो तो बस यही धर्म का पालन है। शाति भी इसी उपाय से प्राप्त होगी। मोक्षमार्ग भी इसी उपाय से प्राप्त होगा। पर पदार्थो मे भटकना, नाना प्रकार की कल्पनाये करके उपयोग को बाहर फसाना, यह सब अशाति के साधन है, अधर्म का पालन है, धर्म की उपेक्षा है। अपने इन २४ घण्टो मे जबकि प्राय सारा समय दुरुपयोग मे जाता है, मोह, राग, द्वेषो मे जाता है, नाना कल्पनाओ के विकल्पो मे जाता है। भाई पन्द्रह मिनट का सकल्प करके, सत्य का आग्रह करके, अपने आपकी भी व्यवस्था बना लो अपने आप मे १०, ५ मिनट आने मे कुछ बिगड़ नही जायगा। एक अमूर्ततत्व की प्राप्ति होगी। अद्वैत का ही अनुभव हो, उसे ही सिद्धि कहते है। जगत् के जीव अहकार भरे हुए है। मै परिवार वाला हूँ, धन वाला हूँ, इज्जत वाला हूँ, यह मै अमुक हूँ, उत्तम हूँ, शुद्ध हूँ, नाना प्रकार की कल्पनाये लिए हुए यह प्राणी विचर रहे है। अरे तू तो वह स्वरूप है जिसका स्वरूप सर्वत्र एक है।

यदि मैने अपने ही स्वरूप को माना तो धर्म का पालन किया और यदि अपने अद्वैत स्वरूप को छोड़कर नाना रूपो मे माना तो अभी धर्म से बाहर हूँ। अपने धर्म से अर्थात् अपने आत्मस्वभाव से स्नेह करो। जगत् मे कहा भटक रहे हो ? शरण कहीं नहीं मिलेगी, हर एक से धोखा मिलेगा, बहकावा ही मिलेगा। शरण तुझे अपने आप मे बसे हुए उस सहज परमात्मत्व की शरण लेना है। यही मुक्ति का मार्ग है। दूसरा कोई मुक्ति का मार्ग नहीं है। जैसे कहते है कि "सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यकचारित्राणि मोक्षमार्ग ।" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता ही मोक्ष का मार्ग है। जहा दर्शन ज्ञान चारित्र मे विकल्प भी नही उठते। इसका एकरस उपयोग हो जाना, यही एक मोक्ष का मार्ग है। जो कि सर्वसिद्धि है। जो इस आत्मा के सहज चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा पा लेगा वही अपने स्वरूप मे रम जायेगा। ऐसी स्वाधीन शाश्वत सम्यक् की बिना मोक्ष का मार्ग नहीं मिलेगा। किसी बहकावे व किसी बालबच्चो की उलझन मे पड़कर शान्ति नही मिलेगी और आगे का रास्ता भी बन्द ही जायगा। बाहरी चीजो मे पड़कर इस आत्मा का हित कुछ नही है हित तो यह स्वरूप है। यह तो धर्म की साक्षात मूर्ति है। यह आत्मा चैतन्य स्वरूप आत्मा ही धर्म की मूर्ति है। वह भगवान् स्वरूप है। वही कल्याण है। मै इस एक को छोड़ दू तो ससार मे भटकते हुए कुछ पता भी नही लगेगा। कितनी योनिया हैं, कितने शरीर के कुल है, कितने जगत् मे लोक के साधन है। किस स्थान मे, कितनी बार, कहा जन्म लूगा, कितने कितने शरीरो मे कितनी बार जन्म लेते रहेगे, कुछ पता तक भी नही रहेगा। अभी मनुष्य है, ज्ञान साफ है, स्वाधीन है। हम दूसरो की बात समझ लेते है। दूसरो को अपनी बात समझा देते है। पशु पक्षियो को देखो ऐसा जन्म होता क्या ? उनके अक्षरमय भाषा नहीं है। दूसरो की बात वह दूसरो से क्या कहेगे, उनमे धर्म की चर्चा क्या होगी ? कीडे, मकौड़े बहुत से जीव हैं, वे क्या कर सकते हैं ? उन जीवो के मुकाबले मे देखे तो हमारी अब कितनी उच्च अवस्था है ? हम और आप सम्यग्दर्शन के पात्र हैं, सम्यग्ज्ञान के पात्र है। अपने मे पुरुषार्थ करने की योग्यता है, हमे कुछ अपना हित भी निरखना चाहिए,

घर, द्वार, धन, वैभव इत्यादि मे ज्यादा दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। यद्यपि इस गृहस्थावस्था मे सबका प्राय यह निर्णय रहता है कि इसके बिना गुजारा चल ही नही सकता है। परन्तु जब यह घर-द्वार, धन वैभव छूट जावेगे तो क्या इसके बिना गुजारा नही चलेगा। धन वैभव के बिना, घर द्वार के बिना आत्मा का गुजारा चल जायगा, पर सम्यग्ज्ञान बिना आत्मा का गुजारा नही चलेगा। इस अपने सम्यग्ज्ञान को छोड़कर यदि परपदार्थ को महत्व देगा तो अशाति, कर्मोपासना तथा कर्म बधना ही रहेगा और यदि अपने इस शुद्धस्वरूप को महत्व देगा, वही रमेगा, वही पहचानेगा, वहीं झुकेगा तो उसके बधन कटेगे, शाति का मार्ग मिलेगा और भविष्य मे इसका जब तक ससार है, उत्तम उत्तम भव समागम मिलेगा और निकट समय मे मुक्ति प्राप्त होगी। इसलिए अपने आपका सम्यग्ज्ञान करो, प्रमादी मत हो, इस अपने स्वरूप को देखकर प्रसन्न रहो। यह मेरा शाश्वत आनन्दमय चैतन्य स्वरूप है, सदा अलग है, यह सब अहकारो से दूर है, मै अपने स्वरूप मे हूँ। एक अपने आप मे सही स्वरूप का पता लग जाय तो इससे बढ़कर कुछ जगत् मे नही है। इस तरह अपने अद्वैत का अनुभव करो, यही मोक्ष का मार्ग है। और ऐसा ही अद्वैत सब पदार्थो मे है। उन सबमे भी उनके अद्वैतस्वरूप का बोध करे इसी का नाम सिद्धि है। आत्मा के ध्यान मे, चितन मे, मनन मे, अध्ययन मे, अनुभव मे अधिक से अधिक पुरुषार्थी बनकर अपने जीवन को सफल बनावे।

स्वैकत्व मगल लोके उत्तमं शरणं महत् ।
रक्षादुर्गं तदेवास्ति स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं ।।७-५०।।

अर्थ– स्व का एकपना ही मगल है लोक में उत्तम है, महान शरण स्वरूप है, वह ही रक्षा का किला है। इसलिये स्वके एकत्वस्वरूप अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

आत्मा के शुद्ध स्वरूप को आत्मा का एकत्व कहते है अर्थात् जो आत्मा अपने आप, अपनी सत्ता के कारण जो कुछ सर्वस्व है वह आत्मा का एकत्व है। इस एकत्व मे दृष्टि जाना यही शरण है। आत्मा के केवल स्वरूप की निगाह होना यही रक्षा का सबसे बड़ा दृढ किला है। जैसे बड़े मजबूत किले के भीतर राजा लोग अपने को सुरक्षित अनुभव करते है, इसी प्रकार इस निज सहज स्वरूप मे ही यह मै हूँ ऐसा अनुभव करने वाला ज्ञानी अपने को सुरक्षित अनुभव करता है। जब इस दृष्टि से हट जावेगा तभी ये नाना विकल्प होगे और उनसे रक्षा करने वाला कोई नही होगा। उसको आराम करने का सुख शाति मिलने का साधन व मार्ग नही मिलेगा। देखो इस एकत्व का शरण गहे बिना ही इतना बड़ा जगजाल बिछ गया। इसी से सैकडो आपदाये बिछ गई। परन्तु जो आत्मा अपने इस स्वरूप के किले मे प्रवेश करके बैठता है उसकी सारी विपदाये खत्म हो जाती है। एक भी सकट मे प्राय वह नही रहता है। यदि इस जीव ने आज तक ऐसा कार्य नहीं किया है तो इसी का फल है कि उसका ससार मे जन्ममरण का चक्र आया। यहा का परिवार यदि अच्छा लगता है, स्त्री का, बच्चो का, धन का यदि मोह लगा हुआ है तो खूब एकदम खुले हुए दिल से डटकर मोह को कर लो। खूब मोह कर लो, इसके अधकचड़े मे क्यो रहते हो ? अच्छा अजमा लो मोह करके, फिर बताओ क्या अपने मे लाभ की व्यवस्था हो

जायगी ? यदि इसमे सार नजर आता है तो इसमे ही लग जाओ। अपने आप मे ही पता चल जायगा कि मुझे इससे हानि मिली है कि लाभ मिला है ? इसमे कुछ नहीं मिलेगा क्लेश ही मिलेंगे आत्मबल ही घटेगा, नाना शल्य बढेगे, बाहर दृष्टि एकदम फैल जायगी फिर आनन्द का उपाय बनाना कठिन हो जायगा। अनेक खोटी परिस्थितिया आ जायेगी, यदि बाह्य मे मोह कर लिया तो। बाह्य मे कोई मगल नहीं है, कोई मुझे सुख देने वाला नही है। मगल वह होता है जो मगल है। मग अर्थात् सुख को जो लावे वह मगल कहलाता है। आनन्द को, सुख को जो लावे उसे मगल कहते है। आप लोग णमोकारमत्र पढकर फिर चत्तारि दडक पढते है उसमे यही तो बोला जाता है।

भैया! इस निर्णय बिना तो धर्मका पालन ही नहीं होगा। अपने आपकी ठीक ठीक समझ बना लो। यह काम सबसे बडा है और यह बात स्वाधीन है। जरा विकल्प छोड़ करके सच्चा विश्राम लेकर देखो कि तुरन्त समझमे आ जाता है यदि कोई ज्ञानी ज्ञानका निषेध भी करे तो भी ज्ञान ही तो यह है, जो निषेध करेगा। इस ज्ञान से इस ज्ञान को इस ज्ञानके अन्दर ले जाये और देखे कि इस ज्ञानका स्वरूप है क्या? जिस ज्ञानके द्वारा हम सारी दुनियाको जाना करते हैं वह ज्ञान खुद कैसा है? मै ज्ञानके स्वरूपको देखनेमे लग जाऊ तो सब ओरके विकल्प हट जावेगे क्योकि हम ज्ञानस्वरूप ही ज्ञानके स्वरूपको देखने मे चल उठे और कुछ विशेप अन्तरमे पहुच करके देखे तो शरीरकी सूरत भी भूल जायगी। शरीर है या नही है, यह भी भान न रहेगा। वहा केवल ज्ञानज्योति, ज्ञानस्वरूप ज्ञानतत्व ही अनुभवमे आयेगा। यह ज्ञानघन पदार्थ देखो जुदा है, सबसे या नहीं, इसका ठीक निर्णय कर लो। समझमे आवे कि जुदा है तो बस ऐसा मान लो। यही धर्मका पालन है और समझमे न आवे कि जुदा है तो अच्छी तरह से पहिले इसी तरहके निर्णयमे लग जावो। अगर जुदा नही है तो ऐसा ही मानते रहो। जैसा है तैसा मान लो। यद्यपि आत्मा जुदा है ऐसा ज्ञान होनेपर भी गृहस्थी मे जुदी-जुदी व्यवस्थवोमे भी यह ज्ञानी लग जाता है तो भी आत्मा जुदा है यह उसकी आत्माकी प्रेरणा अन्तरमे रहा करती है यह सब तो लोकव्यवस्थाके लिए है। सबका जुदा जुदा परिवार है और यह उठकर उसी परिवारमे जायेगा, बात भी करेगा, उसी दुकानमे जायेगा। यह सब व्यवस्था है। जैसे व्यवस्था का काम ठीक चले तो सब लोगोने मिलकर व्यवस्था बना ली कि ये इतने लोगोकी व्यवस्था कर ले, ये इतने लोगोकी। यह बात परिवारके रूपमे दी गई, सो सब जुदा जुदा कर रहे है। सब काममे व्यस्त हो रहे है। केवल लोकव्यवहारमे उच्छृखलता न आ जावे इसके लिए व्यवस्था बना रखी है, इस व्यवस्थामे ज्ञानी भी पड रहे है। लेकिन प्रतीतिमे यह रहता है कि मैं तो अपनेमे आ रहा हू, अपनेको सबसे निराला, चैतन्यमात्र एक पदार्थ जिसका कुछ आकार प्रकार नहीं है, यह मै एक चैतन्य वस्तु हूँ। इसके सिवाय अन्य किसी पदार्थमे इसका रच भी सम्बन्ध नहीं है, ऐसा देखना बस यही मगल है। पापके कामसे पाप नहीं कटेगा और पापके कामसे सुख नहीं मिलेगा। करोडोका धन मिल जाय तो उससे सुख नहीं मिलेगा। कितना ही वैभव बसा ले, शाति नहीं मिलेगी। अगर वाह्य पदार्थो मे शाति होती तो तीर्थकर चक्रवर्ती जैसे महापुरुपोको लोकवैभवमे शाति क्यो न मिल जाती? उन्हे ज्ञान जगा तव वे लोक का मोह छोडकर अपने एकत्वस्वरूप मे युक्त हो गये।

देखो मगल पाठ पढते है तब अरहत सिद्ध साधुको मगल कहकर, फिर अपने एकत्वको मगल कहकर विश्राम पाते हैं। चार मगल है ना, अरहंत भगवान मगल हैं, चार घातियाकर्मो से रहित, मोहसे अत्यत परे परम पवित्र ज्योति आत्मा अरहत भगवान् है जिसके स्वरूप के स्मरण से भव भव के पाप कट जाते हैं, वह अरहन्त मगल है। जिसके स्वरूप के स्मरण करने व अपने स्वरूपका ज्ञान करनेसे और वर्तमानमें जो कुगति हो रही है उसको मद्दे नजर रखनेसे, जो आनन्दसे मिला हुआ पछतावा होता है उसमे जो आँसू बहता है उससे मानो भक्तके कितने ही पाप कट जाते हैं, पापकर्म धुल जाते है बहुत शुद्ध चित्त होकर ध्यान तो बनाओ कि आसमानमे यहाँ से ५ हजार धनुप ऊपर, मायने २० हजार हाथ ऊपर एक

प्रभु विराजमान है जिनकी पूर्ण महिमा के कारण स्वर्गके देवता लोगोने आकर एक बड़ा मण्डप बनाया है जिसके आगे जगत् मे कोई ज्ञानीका वैभव नही हो सकता है। दस बारह कोस मे चौबीस कोस मे एक मण्डप बना हुआ है जिसमे कई गोलोमे कितने ही सुन्दर कोट, खातिका, बाटिका, चैत्यालय आदि रचे है, बीचमे प्रभुका दरबार है, स्फटिक भित्तिकाओसे घिरी १२ सभाये है, इसे समवशरण कहते है।

समवशरणका अर्थ है जीवोको अच्छा पूरा शरण मिले। इसके नीचे कितने ही सोपान लगे हुए हैं। बहुतसे पर्वत जहा नीचे आ गए है उस मडपकी ओर, जिसमे कहते है कि समवशरण अच्छी तरहसे पूरा है जहा शरण मिलता है। ऐसे समवशरण की ओर देवता तथा मनुष्य लोग मनमे पुलकित होकर धर्म साधनो मे उनके उपदेशोको सुनते जा रहे है। देखो ना, आनन्दमे नाना प्रकारके गुणानुवाद करते हुए नृत्य कलामे साथ चले आ रहे है। ये देवागना व देवता लोग हर्षित हो रहे है और प्रभुके गुणानुवादोके पीछे अपने परिवारको भूल गए है। देखो भैया, यहा ही जब आप किसी त्यागी का आदर करते है तो पहले अपने त्यागीको ही अपना मानते है, पहले त्यागीको खिलाते है, चाहे बच्चे भूखे पड़े रहे है, फिर यहा तो तीन लोकके नाथकी बात कही जा रही है। अपने प्रभुके पीछे अपने परिवारको त्यागकर चले जा रहे हैं। उन्होने अपने परिवार को भूलकर उस प्रभुको कितना अधिक माना होगा? उनका विश्वास है कि मेरा शरण प्रभु है। मेरे समस्त सकटोकों टालने वाला मेरा प्रभु है कितने ही प्रकार के गीतवादित्रोके दिव्य शब्द होते चले आ रहे है। धन्य है उन परम आत्मावोको जिनके विकासके कारण दुनियाके लोग एकचित्त होकर, आकर्षित होकर जिनका चरणसेवन प्राप्त कर रहे है। यही अरहत भगवान मगल है। फिर कहते है कि सिद्ध भगवान् मगल है जो इस शरीरके झझटसे सदाके लिए मुक्त होकर ज्ञानानन्द स्वरूपमे विराज रहे है। ऐसा सिद्ध प्रभु वही मेरा सब कुछ है।

ममताके साधनभूत परिवारके बच्चे भी कुछ कहने आवे तो भी भक्तिके समय तो विशेषतया ही ज्ञानीके भाव रहता है कि मेरे को किसी कार्यसे प्रयोजन नही है। जगत्के बड़ेबड़े वाह्यपदार्थो से या सबसे उत्कृष्ट तो यह प्रभु हमारा है, जो समस्त राग, द्वेष,मोह भावोसे रहित और इस शरीरसे रहित, ज्ञानानन्दस्वरूप विराजमान है। वह प्रभु इसके लिए मगल है। वह साधु जिसको केवल अपने शुद्ध स्वरूपके अनुभवका ही काम है, केवल अपने शुद्ध स्वरूपमे ही जिनकी रुचि है, इसी कारणसे जिनके शरीरपर एक धागा भी नही है, न वस्त्रोकी रुचि है, न सासारिक कार्यो की रुचि है, जिनके वैराग्य मुद्राके दर्शन करने मात्रसे उसके आत्मरसका भी अनुमान हो जाता है। शरीरका साधन समझकर यदि शरीरके लिए आवश्यक समझा विवेकने तो यह विवेक दिनमे एक बार विधि मिली तो आहार करा देता है जिनको भोजनसे भी रुचि नहीं है, जो अपने स्वरूपके अनुभव के यत्नमे रहते है अन्य कुछ झझट नही रखते है, ऐसे वे ज्ञानानन्दघन साधु परमेष्ठी है। ऐसे साधुवोके दर्शनसे भव भवके पाप कट जाते है। अरहत सिद्ध इस आत्माका मगल बनकर अपने केवल स्वरूपमे परिणमता रहे। केवल भगवान् स्वरूपकी ओर दृष्टि होना यह धर्म है। सो धर्म ही मगल है। इस आत्माकासहज शुद्ध जो स्वरूप है उसको लक्ष्यमे लेना यह धर्म बतलाया है। अन्तमे देखो वह धर्म ही मगल कहा है। देखो जिसकी दृष्टि, जिसका विचार, जिसका उपयोग अपने काममे

अधिक रहता है उसको बडे बडे पुरुष भी आदरसे देखते है। इस ही धर्म मगल के प्रसादसे साधु अरहन्त सिद्ध भगवान् बने है। यह निजधर्म हमारा मगल है। इसका हम केवल भावका विचार करेगे। यह हमको मिलता है इससे सबका काम बन सकता है, यह भी मालूम होता है। दूसरी बारमे शुद्धि के उपकारमे, आनन्दमे, अपने आपके धर्मसे धर्मका काम हो सकता है। उसके समान आनन्द मे किसी का उपयोग अपने द्वारा कुछ नही हो सकता है। केवल भगवान्की ओर अपना उपयोग करनेसे धर्म मगल हो सकता है। इसी प्रकारसे यह चार उत्तम है और ये चार शरण है। देखो इन चारो मे पहिले हितकारी अरहत का ध्यान किया है जिनके कारण सिद्ध का भी ज्ञान हुआ। बाद मे सुगमप्राप्त उपकारी साधुका ध्यान भी किया है। अन्तमे पूर्ण सार शरण कहा है। केवली भगवान्के द्वारा कहा गया धर्म ही शरण है। केवल भगवान्ने इतना कहा है। क्या कहा है? इतनी बात जो हम भूल गए थे, इसका ही प्रभुने बोध कराया है। ऐसा केवल अपने स्वरूप सत्तामात्र चैतन्यमयकी दृष्टिमे अनुभवो तो यह एक ऐसी दृढ़ कला है कि ऐसा भी उपद्रव आ जाय कि जिससे तीन लोकके जीव अपना रास्ता छोडकर कही भी हटकर घूमने लगे, बिछुड़ने लगे, डरने लगे, किन्तु यह ज्ञानी पुरुष अपने पथसे विचलित न होगा, जो अपने स्वरूपरक्षाके किलेमे आराम कर रहा है। जैसे माना कि जीव पानीसे ऊपर मुह उठाकर चलते रहते है और जरासा भी उपद्रव उनके सामने आवे तो वे पानीमे डूब जाते हैं। सारे उपद्रव तो शान्त हो गए।

इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष भी कभी अपने ज्ञानसे बाहरी ऊपरी पदार्थो की ओर जब मुह करता है और वहा आकुलता तो होती ही है तो तब झट ही बाहरी पदार्थो से मुख मोड़कर अपने उपयोगको अपने ही ज्ञान मे डुबा दे तो सारे उपद्रव खत्म हो जाते है। पर ऐसा कर सकने वाले विरले ही ज्ञानी होते हैं। जगत्के ये बाहरी पदार्थ जहा अज्ञानी आनन्द मानता है उसको ज्ञानका पता भी नहीं। इसी कारण ज्ञानियोमे रहने वाले, ज्ञानियोके सगमे ही बसने वाले शीघ्र आत्मानुभव करनेके योग्य हो जाते है। बस जिन्होने अपने आपके अन्तर्मर्मका पता लगा लिया वे पुरुष उपास्य है। हम उनके गुणानुवादमे अधिक अनुरागी रहे। हमे जीभ मिली है तो इस जिह्वाका अधिक उपयोग कर ले। जिह्वा के द्वारा गुणी पुरुषोके गुणानुवादोसे अपनेको गुण लाभ मिलता है। जिह्वा मिली है तो हमे कल्याणके लिए। हमे विनाशीक इस जिह्वाका सयोग मिला है तो गुणी पुरुषोका वैयावृत्य कर लो। सर्वव्यवहार धर्मका प्रयोजन आत्मधर्मका पालन है। आत्मस्वभाव व वस्तुस्वभावका दर्शन करना ही धर्मका पालन है। वस्तु स्वभावके जाननेका सुन्दर उपाय स्याद्वादकी विधि है कि भाई अपने आपको पहिचानो, सब वस्तुओको यथार्थरूपमे पहिचानो देखो जितनी वस्तुवे हुआ करती हैं वे अपने अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे ही रहती है। वे सब केवल अपने आप सत्ता लिए हुए हैं। वे सब अनादिसे है और अनन्त काल तक है और वे अपने आप ही अपने स्वरूपमे परिणमते रहते हैं। अपने ही परिणामसे अपने लिए उत्पाद करते हैं और अपनेमे अपने लिए अपने आप अपनी पूर्व पर्याय का व्यय करते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपनेमे अपने लिए अपने आप विकसित विलीन होते हैं। फिर भी प्रत्येक पदार्थ अपने आप अपने लिए अपनेमे अपना सत्व बनाए रहते हैं। यही पदार्थो का स्वरूप है।

हे आत्मन्! हम सब भी एक पदार्थ है। अपने आप बनते है। इन पदार्थो का अन्य किसी पदार्थो से रच भी सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध नही है तब श्रद्धामे पूरे तौरसे सबसे न्यारा अपनेको समझो। सत्य श्रद्धा नही पकड़ी तो ससारमे रुलना पड़ेगा।

हे आत्मन्! तू पवित्र है।, अपनी प्रभुता को देख, इस ही प्रभुके प्रभुत्वकी भक्ति से तू पाप काटेगा व सुख पावेगा। यह मगल है, यही उत्तम है, यही शरण है, यही रक्षक है, यही महान् कला है। यह ही अपने आप और स्वय ही ज्ञानानन्दमय अपने आपको ससारके सर्वक्लेशोसे मुक्त करनेका उपाय है।

स्वैकत्वमौषधं सर्वक्लेशनाशनदक्षकम्।
चिंतामणिस्तदेवास्मिन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-५१।।

अर्थ– स्व का एकपन सर्व क्लेशोंके नाश करनेमें दक्ष औषध है व स्वैकत्व ही चिंतामणि है इस लिये स्वके एकपन स्वरूप इस निज आत्मामें मैं अपनेमें अपनेलिये स्वय सुखी होऊं।

जीवका शरीरसे घनिष्ठ सम्बन्ध है और शरीरमे जब-जब रोग होते है तब तब इस जीवको दुःखी भी होना पड़ता है। पर इस रोगका मूल कारण क्या है और इस रोगके मिटने का मूल उपाय क्या है? इस बातमे मोही जीवकी दृष्टि नहीं जाती। यह शरीर मिला है तो जैसे गति नामकर्मका उदय हुआ शरीर नामकर्म सघात, आपद नामकर्मका उदय हुआ, उस उसके अनुसार जीवको शरीर मिला करता है और वह नामकर्म कैसे मिलता है? जैसे जैसे जीवके परिणाम होते है वैसे वैसे कर्मो के बन्धन होते है, शरीरमे रोग होते है, व्याधिया होती है, मृत्यु होती है, शरीर सड़ता गलता है, खोटा शरीर मिलता है, इन सबका कारण आत्माका परिणाम है। इन सब विपदाओका मूल कारण क्या है? इसके अन्तरमे कारण खोजो तो खोटा आत्मपरिणाम उनका कारण मिलेगा। जो जो गुजरते है उन सबका कारण आत्माका परिणाम है। जैसा परिणाम किया वैसा कर्मबन्धन हुआ। तैसी सामने स्थिति आ गयी। इस शरीर मे विपदाये, विपत्तिया कैसे मिटे? इसका कारण सोचे तो वह भी आत्माका परिणाम है। अर्थात् जो उपयोग जिन आत्माके सहज,शुद्ध चैतन्यतत्वको पहचानता है, वहा ही रमता है, उसको ही आत्मा अंगीकार करता है। वह परिणाम तो सर्वक्लेशो, व्याधियोके नाश करनेकेलिए औषधि रूप परिणाम है। सब क्लेशोको नष्ट करनेका शुद्ध परिणाम ही उपाय है। जो अपने आपके यथार्थस्वरूपको छोड़कर अन्य किसी जगहमे लगते है तो विपत्तिया आती है, सकल्प होगे, विकल्प होगे, क्लेश होगे। जगत्के सब कोई पदार्थ मेरे नहीं हैं, सब न्यारे-न्यारे है, एकका दूसरेसे त्रिकालमे कुछ सम्बन्ध नहीं होता। चाहे जितना वैभव हो, चाहे जितना पुण्यवान् हो, उन्हे अपना स्वरूप ही उनको मिलेगा। इसके अतिरिक्त परमाणुमात्र भी नहीं है। जो अपना नही है उसको अपना मान लेना उसको अध्यात्मलोकमे चोर कहते है। कैसे चोर कहते हैं? देखो यहा भी जो दूसरोकी चीजोको उठा ले, अपने घरमे रखले और मनमे यह धारणा बना ले कि यह चीज मेरी हो गई। यह धारणा जिसने बना लिया तो वही चोर है। इसी प्रकार जगत्के ये सब पदार्थ अपनी अपनी सत्ताके है। एक दूसरेसे परस्पर अत्यन्त भिन्न है। जो भिन्न चीजे हैं, जिनसे त्रिकालमे हमारा कोई सम्बन्ध नही है, जो अपने मे ही अपना उत्पाद करता है, अपनेमे ही अपनेको बिगाडता है और अपने स्वरूपमे

वना रहता है। त्रिकालमे उनका अपना यही काम है। किसीका किसीसे रच सम्बन्ध नही। फिर भी उनमे यह धारणा करना कि यह मेरा है। यही तो परमार्थकी चोरी है। यह भगवान् आत्मा तो शुद्ध स्वरूप है। यह भगवान् स्वरूप आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर बाहरी पदार्थो मे आपा अगीकार करता है। यह मेरा है, यह उसका है आदि। यही चोरी होती है। हमारा है नहीं पर माने है कि हमारी चीज है। जो चोरी करते हैं वह गिरफ्तार किए जाते है, उनको सजा होती है यही हमारी बात है। हम परमार्थकी चोरी करते हैं। कर्म हमारे गिरफ्तार कर लेते हैं। यह हमारी सजा उस सजासे अधिक है। नाना प्रकारके शरीर धारण करना, जन्म मरण के चक्र मे आना आदि यह भी जो विपदाये है, घर बार, स्त्री बच्चे वगैरह इस आत्माको वह सत्य नजर आ रहे हैं, ज्ञान को दबा रहे हैं, सच्चाईको नही सोच सकते है। ऐसी विपदाये देखो पर मे आपा माननेसे ही पैदा कर लेते है। जैसे यह मेरा है, वह मेरा है आदि प्रकारसे सोचा तो तभी उन्हे आकुलता हो जाती है। क्यो ऐसा होता है वे अपनी दृष्टि बाहर लगाते है, जो जैसे है उन्हे वैसा नहीं मानते। जो जैसा हो वैसा मानना ही आकुलताओको दूर करनेमे समर्थ है। अपने शुद्धस्वरूपका परिज्ञानकर लेना, यह सब विपदाओको नष्ट करनेमे समर्थ है। दूसरा और कोई इन विपदाओको नष्ट करनेमे समर्थ नहीं है। कहीं बाहर दृष्टि न जावे। धर्मके प्रसंगमे, वेशभूषामे, मजहबो मे, क्रिया पद्धतियोमे इन सबमे दृष्टि न डालो। केवल अपने अन्तरमे दृष्टि डालो, अपनेको केवल ज्योतिमात्र समझो अपने आत्माके प्रकट रूपमे दर्शन करो। इसीमे अपने प्रभुका दर्शन प्राप्त होगा। दूसरा उपाय नहीं है कि विपदाये दूर हो सके। एक यही अनुभवका उपाय है जो सब आपदाओ, विपदाओको समाप्त कर देता है। जैसे वच्चे लोग एक कथानक कहते है कि किसी जगलमे स्यार, स्यारनी थे। स्यारनीको गर्भ था, प्रसवका समय था। स्यारने स्यारनीसे शेरके बिलमे प्रसव वेदनाको समाप्त करनेके लिए कहा। बच्चे हो गए। स्यारनी को विधि समझा दी। स्यार ऊपर चट्टानपर बैठ गया। स्यारनी ने अपने बच्चोको समझा दिया कि जब कोई आवे तो रोने लगना। एक शेर आया। बच्चे रोने लगे। स्यारने स्यारनी से पूछा – बच्चे क्यो रोते हैं? स्यारनीने कहा कि बच्चे भूखे हैं, शेरको खाना चाहते हैं। शेर डरकर वहा से भाग गया। इस इस तरह से १०-२० शेर आए तो सब भी डरकर भाग गए। तब शेरोने मिलकर एक मीटिग की। सबने सोचा कि चट्टानमे ऊपर जो बैठा है उसकी सब करतूत हैं सब शेरो ने हिम्मत की और उस स्यारके पास पहुचे अव सव यह सोचते है कि इसके पास कैसे पहुचा जाय? सोचा कि एकके ऊपर एक खड़े हो जावे। उन सवमे से एक लगडा शेर था। सलाह हुई कि यह ऊपर चढ़ तो सकेगा नही सो इसको नीचे ही खडा करो। लगडा शेर नीचे खड़ा होता है और एकके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा खड़ा होता चला जाता है। इतनेमे ही स्यारनीके वच्चे रोने लगते है। स्यार स्यारनीसे पूछता है कि बच्चे क्यों रो रहे हैं? स्यारनीने कहा कि दच्चे लगडे शेरका मास खाना चाहते हैं। लगड़ा शेर इतना सुनकर घबड़ा गया। वह एकदमसे भागा। दूसरे शेर जो ऊपर चढ गए थे, भद्भद् गिरने लगे और सव भाग गए।

इसी प्रकार हम सव पर अनेको विपत्तिया छाई हैं। जितने जगत्के क्लेश हैं वे सब परमे आप्ना माने हैं, इस बुनियादपर खड़े हैं। ये सारे क्लेश, सारी विपदाये यो ही खत्म हो जाये यदि परमे ममत्वबुद्धि

जो है वह खिसक जाय। अच्छा परीक्षा ही करके देख लो। जैसे कहते है कि यह मेरा घर है। बताओ आपके पास क्या निर्णय है कि आपका ही घर है। आपका शरीर भी नही है। विषय कषाय, विकल्पोका परिणाम तक भी आपका नही है। केवल मै अपने स्वरूपको भूल गया हूँ, इसलिए सारे झझट लग गए है अब इस आत्मा की दृष्टि करने से शुद्ध स्वरूप की पहिचान करो। समस्त क्लेश इस आत्मस्वरूपकी दृष्टि से नष्ट हो जाते है। सब क्लेशोके नष्ट करनेकी सामर्थ्य इस आत्मदृष्टिमे ही है। देखो अतरग मे तपस्या करके जो निर्मल परिणाम होते है जिनसे घातिया कर्म नष्ट हो जाते है तो अरहत अवस्था मानी जाती है। अरहन्त अवस्था आते ही उनका औदारिक शरीर परमौदारिक शरीर हो जाता है। घातिया कर्मके क्षयसे पहिले कोई साधु रोगी हो, कोई जर्जरित हो गया हो, वृद्ध हो, कैसा ही हो अरहन्त होनेपर सारा शरीर निरोगपूर्ण, दैदीप्यमान हो जाता है। इस शरीरमे कितने ही परिणमन आते है परन्तु वीतराग सर्वज्ञ अवस्थामे जब आत्मा हो जाता है तो फिर वह शरीर औदारिक न होकर परमौदारिक हो जाता है। अब भी देखो जब कोई रोग हो तब यदि भगवानकी भक्तिमे लीन होता है, शुद्ध निर्मल परिणाम होता है तब देखो रोग भी दूर हो जाते है। इसी कारण जो रोगी बुद्धिमान् होता है, पड़ेपड़े निरन्तर णमोकार मत्र जप किया करता है। इन मत्रोमे इतनी विशाल महिमा है कि ससारके क्लेश दूर हो जाना तो सरल बात है, भव भवके बन्धन भी नष्ट हो जाते है , क्लेश और झझट भी समाप्त हो जाते हैं। ऐसी आत्माये शुद्ध होती है।

दो प्रकारके पवित्र आत्मा है, एक तो जो आत्मा शुद्ध हैं वे हैं और दूसरे वे हैं जो शुद्ध होनेके प्रभावमे सफ़ल हो रहे है। जो शुद्ध है वे हैं अरहन्त व जो शुद्ध होनेके प्रयत्नमे सफलता पा रहे हैं वे है आचार्य, उपाध्याय और साधु कहते किन्हे है जिनको अपने यथार्थस्वरूपका विश्वास हो गया है, जो अपने आत्माके केवलज्ञानस्वरूप को शुद्ध निरखते है। ये आत्मा किन्ही रोगोसे सम्बन्धित नहीं हैं, ज्ञानस्वरूप है। ऐसा जो आत्मचिन्तन मे दृढ़ हो जाता है, ऐसा जो अपनेको देखनेके लिए बड़ा उत्कृष्ट लालायित हो जाता है, उसे दूसरी चीज जगतमे नही रुचती है, उसका परिवार छूट जाता है। आहार परिग्रह छूट जाते है, यह शरीर नही छूट पाता है। यदि शरीर भी छोड़ा जा सकता तो वह शरीरको छोड़कर बाहर ही आत्माकी उपासना करता। वे तो आहार भी नहीं करते, किन्तु विवेक आहार करवा लेता है। यह शरीर धर्म साधनके लिए है। शरीर की स्थितिके लिए आहार आवश्यक है सो दिनमे एक बार ही वे आहारकी एषणा करते है एक बारसे ही यह शरीर टिका रहता है। एक बार जो आहार कर ले और बाकी समय तपस्यामे व्यतीत करे, निरन्तर आत्मसाधनमे लगा रहे, ऐसी आत्माको साधु पुरुष कहते हैं। उनमे जो ज्ञानी साधु है, औरोको पढ़ाते है जिनको आचार्य उपाध्याय घोषित कर देते हैं वे ज्ञानी साधु उपाध्याय कहलाते है। जो बड़े बडे ज्ञायक है, साधुवोमे प्रमुख है, जिनकी आराधना मे साधु रहते हैं वह आचार्य कहलाते है।

देखो यह आत्मा ही परमेष्ठीका स्वरूप है। आत्माही मोक्षका मार्ग है इस निज आत्मतत्वको, परमेष्ठित्व को निरखकर अपनी दृढ आत्मसाधना द्वारा अपना आत्मकल्याण कर लेना महान् विवेक व पुरुषार्थ है।

अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यही दृष्टि धर्मका पालन है, यही कल्याणका उपाय है। यह अगर कर लिया तो सब कुछ कर लिया और अगर नहीं कर पाया। यदि ऐसा नही कर पाया तो उद्धार नही होगा। दिखाकर नहीं, बनाकर नहीं, गुप्त ही रहकर तू अपना कल्याण कर सकता है। बनावट, सजावट, दिखावट इत्यादि करता है। गुप्त होकर आत्मरूपकी देखनेकी कोशिश नहीं करता है। बननेसे धर्मकी बात कैसे होती है? दिखानेसे धर्म हमारा खत्म होता है, सजानेसे धर्म हमारा नही रहता है। सो अपने आत्मस्वरूपको अपना लो और मनन करलो। इसमे ही रमनेसे तुम्हारा कल्याण हो सकता है अन्यथा कल्याण कोसो दूर है। जो अपनेमे है उसे देखो और अगर न देखो तो अहकारो से घुलमिल जावोगे। कही कीड़े मकौड़े हो गए तो सारी इज्जत धुल जायगी। यह क्यो धुल गयी? यह सब क्या है? परिणाम आया, सारी इज्जत धुल गयी। एक जगह एक छोटी कहानी लिखी है कि एक साधु था और एक शिष्य। दोनो एक राजाके बगीचेमे पहुच गए। वहा पलग पडे हुए थे। एक पर सन्यासी जाकर बैठ गया और दूसरे पर शिष्य जाकर बैठ गया। सन्यासी ने शिष्य से कहा कि तुम बनना नही। थोड़ी देर बाद राजा घूमने आया। उन्हे देखकर राजाने सिपाहीसे पूछा कि बगीचेमे ये कौन बैठे है? सिपाहीने कहा महाराज दो अपरिचित व्यक्ति बैठे हैं। पता नहीं है कि कौन है? सिपाही शिष्य के पास जाकर कहता है कि तुम कौन हो? शिष्यने कहा कि तुम देखते नही हो कि हम साधु है। उस शिष्यको सिपाहीने कान पकड़कर बाहर निकाल दिवा। सिपाही सन्यासी के पास जाकर पूछता है कि तुम कौन हो? साधु कुछ नहीं बोलता है। जब सिपाही राजाके पास गया तो बोला कि राजन् एक मनुष्य है, मौन है, वह कुछ बोलता ही नही है और शिष्यसे पूछा कि तुम कौन हो? उसने जवाब दिया कि देखते नहीं हो कि मै एक साधु हूँ। सो मैने उसे कान पकड़ कर बाहर निकाल दिया है। राजाने कहा कि जो मौन है, कुछ बोलता नही उसे छेड़ा तो नहीं था। अरे वह कोई सन्यासी होगा। राजाके चले जानेपर शिष्यने गुरुसे पूछा कि मै क्यो पीटा गया? आप तो यहा बैठे है। गुरुने कहा कि तुम बने तो नहीं थे? शिष्य बोला कि मै बना तो नहीं था, यही कहा था कि देखते नहीं मैं साधु हूँ। गुरु बोले यही तो बनना हुआ। अरे तू तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। तू अपने आप भ्रमवश मानता है कि मै गृहस्थी हूँ, साधु हूँ।

इन बाह्य वेशभूषाकी दृष्टि छोड़कर अपने परमार्थ स्वरूपको देखो। है तो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा, और बनता है और कुछ। अन्तर्दृष्टि करनेपर यह अनुभव करेगा कि मै सर्व साधारण एक चैतन्यमात्र वस्तु हू। जो अपने आप चैतन्यमात्र ही अनुभव करे वह न रुलेगा। निकट समयमे ही उसकी मुक्ति हो जायगी। हमे न देखना है कि मै दयालु हूँ अथवा न देखना है कि मै तपस्वी हूँ। मुझे अपने ज्ञानस्वरूपका सिचन करना है। यह सिचन ज्ञानसे होता है, ज्ञानकी उपासना की तो भी यह ज्ञान होता है कि मै ज्ञानघन हूँ। यह दिखानेमे, बनावटमें, सजावटमे, सोचनेमे न मिलेगा। उससे कीड़े-मकौड़े बनते रहना होगा। अपने आपमें ही रमनेका प्रयास करो। इसीमे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। इस रत्नत्रयके एक तत्वमे आत्माके एकत्वका विकास हैं यह एकत्वदर्शन चितामणि दर्शन हैं। इसके दर्शन विना ही शरीरके क्लेशोंका सम्बन्ध हो जाता है। यही ज्ञानमात्र स्वरूप हमारे और आपके उपयोगमे रहे। यह ही आत्माका रूप है। जिसने बाहरी पदार्थो में दृष्टि नहीं डाली उसका ही जीवनमे कल्याण है।

ज्ञायकत्वे विकारः क्व रागादेः सन्निधावपि।
सोऽहं ज्ञायकमात्रोऽस्मि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।७-५२।।

अर्थ– राग आदिकी निकटता होने पर भी ज्ञायक स्वरूपमें विकार कहां है? वह ज्ञायकमात्र मैं हूं सो उस ज्ञायक निज आत्मामें अपनेमें अपनेलिये स्वयं सुखी होऊँ ।

इस आत्मा मे राग आदि विकार व्यक्त हो रहे है। उन रागादिकोके होते हुए भी आत्माका जो ज्ञायकत्व है, उस ज्ञायकत्वमे विकार नही है। सफेद बल्बमे जैसे हरा रग चढ़ा देनेसे वह प्रकाश हरा मालूम होता है, खूब हरा मालूम देता है। पर क्या वह हरा होता है ? नहीं, उस पर हरा रग चढ़ा दिया गया है। जैसे जल है। उसमे हरा रग मिला दिया जाय तो क्या जलमे हरा आदि रग आ जायगा? नही। जल जल ही रहेगा। जैसे बिजलीका प्रकाश है उसमे बल्ब हरा, नीला, पीला आ जाय और उससे फिर हरा, नीला प्रकाश भी झलके तब भी बिजली का जो काम है, बिजली का जो निजी प्रकाश है, ज्योति है, क्या उस ज्योतिमे विकार आ जायगा? नही। उस ज्योतिमे विकार नही आ जायगा। इसी प्रकार यह शुद्ध ज्ञायक स्वरूप भगवान आत्मा इस शरीर देवालयमे विराजमान है इस शरीरमे कई प्रकार के रूप रग आदि नजर आ रहे हैं। क्या इन पौद्गलिक पदार्थो से जीवो में विकार आ गया, ज्ञायकस्वरूपोमे क्या विकार आ गया? नही। अन्तरमे क्रोध, मान, माया, लोभ, असयम, योग तथा नाना प्रकारके विकार होते रहते है। विकार है, पर इस आत्माका जो स्वरूप है वह ज्ञानमय है। क्या उस ज्ञानमय स्वभावमे विकार आ गया? अरे विकार होते है फिर भी यहा विकार नहीं होते । ऐसा मर्म जब आपकी समझमे आता है तब आत्माके मर्मका पता चलता है। ५ सेर पानीमे लाल, गुलाबी, हरा कोई रग डाल दो तो वह सारा पानी बिल्कुल हरा, नीला, गुलाबी, या अन्य कोई रग का ही नजर आता है। यह पानीका स्वरूप है क्या? उस पानीके स्वरूपमे हरा, पीला, नीला अथवा गुलाबी रग आ गया। वह केवल रग डालने से ही रगीन नजर आता है, पर पानीका स्वरूप रगीन नहीं। पानी अब भी अपने स्वरूप मे स्वच्छ ही है, पर उस पानी की स्वच्छता रग से ढक गयी है। यह ज्ञायक स्वरूप भगवान अपनेस्वरूपमे स्वच्छ है, अपने स्वभावमे अविकृत है, किन्तु इन विपत्तियोके सम्बन्धसे, इन कषायोके परिणामोसे इस भगवान आत्माका यह शुद्ध स्वच्छ स्वरूप ढक गया है। ढक गया है तो भी स्वरूपमे विकार नहीं आया। स्वरूपमे विकार आ गया होता तो त्रिकालमे भी यह विकार नहीं मिट सकता था। पानी मे रग आ जानेपर भी कुछ समय बाद रग बैठ जाता है। और पानीमे पतला रग मालूम होता है कभी -कभी पानी बिल्कुल ऊपर स्वच्छ ही दिखता है। रगमे रग है और पानीमे पानी है। रगको घोल दे तो सारा रग ही दिखता है और वहींका वही पानीमे सारा पानी दिखता है।

अब घरकी बात देख लो। घरमे पिताजी अपनी धोती और साफा पीले रगसे रगते है तो बोलते है कि साफा पीला कर दिया। साफा पीला हो गया, नीला हो गया, लाल हो गया। धोती पीली हो गई, लाल हो गई, नीली हो गई क्या ? चाहे इनको बार-बार निचौड़े फिर भी रग नही निकले तो भी रग मे रग ही है, धोती मे धोती है, वस्तु मे वस्तु है। वह तो चीजे अपने स्वरूप को लिए हुए है। इतनी

ऊपरी भेद की बाते भी मोही जीव कैसे पा सकते है ? भीत मे कलई पोती गई तो भीत लगती है कि सफेद है अथवा यदि रग मे परिवर्तन करके हरा रग पोत दिया गया तो तो कहते है कि भीत हरी है। भींत हरी नही होगी। भींत भींत ही है। जैसी थी वैसी ही है। यह हरा रग हरा हो गया। भींत हरी नही हुई। इतनी बाहर की भेद की बाते समझ मे जल्दी नही आती है, पर कुछ तो समझ मे आ ही रही है। यह हरा रग है, वह रग ही है। भीत इसमे वही की वही है। लेकिन लोग इसको भूल गए है। वह समझते हैं कि भीत हरी है। भींत का आश्रय पाकर वह आधी वर्ग इन्च का रग का ढेला १ हजार वर्ग गज मे फैल गया, पर देखने वाले लोग यह समझते है कि भीत हरी है, पर ऐसा नही है। भीत तो भीत ही है। ऐसे अनेक उदाहरण ले लो।

अव भाई धीरे से अपनी आत्मा की ओर आवो। शरीर मे यह जीव बद्ध है। पर जीव इस प्रकार नही होगा जैसा कि यह शरीर है। बुद्धिमत्ता है तो अपने ज्ञानस्वरूप मे ही दृष्टि देकर परख लो कि हम हम ही मे हैं। गाय को जेवरी से बाध दिया गया है पर गाय का पूरा गला ज्यो का त्यो है। वह रस्सी से नहीं वधी। उसके गले के चारो ओर रस्सी लटकी है। उसके चारो ओर रस्सी है। उसका ही एक छोर दूसरे छोर से बधा है सो ऐसा लगता है है कि गला रस्सी से बधा है। अरे गले मे गला है, रस्सी मे रस्सी है, रस्सी का यह बन्धन है, गले का बन्धन नही। देह मे देह है। शरीर मे आत्मा का बन्धन नहीं है। जरा बाहर देख लो, फिर वही विकल्प आता है कि मै देह मे बधा हूँ। अरे बाहर न देखो। अपने आनन्दघन स्वरूप को देखो तो अपना स्वरूप अपने मे मिलेगा। बहुत विषय कषाय है, होते रहते हैं, काम मेरा रह गया है, इसमे टोटा पड गया है, इसमे यह करना है। पुत्र,स्त्री तथा परिवार को नहीं छोडते है, उनको ही अपना सर्वस्व देखते है, विपत्तिया उठाते है। अरे तू केवल शुद्ध, ज्ञायकस्वरूप, सबसे निराला, ज्ञानघन, अपने को निरख, तू एक पदार्थ है जिसमे वही वही है। वह तो एक पदार्थ है और ज्ञानस्वरूप परिणाम रहता है। जहा विकल्प एक नहीं है, ऐसा यह स्वय स्वरूप है। चमड़े की आखे खोलकर यदि अपने को देखेगे तो उतनी ही विपदाये आयेगी। सर्वज्ञ देव तो कहते है कि उन प्राणियो के रागादिक भाव जब होते है उस समय भी आत्मा का जो स्वरूप है, स्वभाव है, ज्ञायकत्व है, उसमे विकार नहीं होते हैं। मैं शुद्धस्वरूप हूँ। यह दृष्टि हो तो आते हुए विकार भी खत्म हो जावेगे। और यदि शुद्ध स्वभाव मे नही है तो समझो कि विकार बुलाए जा रहे हैं। ख्याल मे ख्याल होता चला जायगा और अगर उस ओर से मुडकर किसी आराम के स्थान पर उपयोग लगाया तो वह बात ख्याल होते हुए भी भूल जायगा।

तात्पर्य यह है कि आत्मा के स्वभाव मे रागादि दोप नही है। जैसे कोयले की आग जल रही है और उसी मे गधक, लोवान भी डाल देते है। गधक, लोवान डाल देने से हरे, पीले रग की लौ निकलती है। उस हरी, नीली लौ के होने से क्या अग्नि हरी, नीली हो गई। अग्नि तो इस उष्ण प्रकृतिमय सदा एकरूप है। चाहे उसमे लौ हो या न हो, किसी रग या आकार की हो इससे क्या ? प्रत्येक परिस्थिति मे अग्नि एक समान ही है। इसी प्रकार कर्मो के विचित्र सम्बन्ध से इस आत्मा मे क्रोध आता है, मोह आता है, माया आती है, नाना प्रकार के विकार, नाना प्रकार के विकल्प छाये रहते है। इतने पर भी

इस भगवान् आत्मा के स्वरूप को देखो तो वह सदा एक ही स्वरूप है। यह बात सुनने मे समझने मैं थोड़ी आती हो तो भी इस बात का पता लगाये बिना उत्थान का मार्ग नही मिलेगा. और और पकार से तो धर्म के मार्ग पर चलकर ही जंहा का तहा। अन्य उपायो से तो मात्र कल्पित सन्तोष पाप्त किया जा सकता है। जैसे गर्मी के दिनौं मे रात के समय मे समुद्र के पास एक नदी के किनारे खड़े हुए जहाज मे या बड़ी नाव मे कुछ मनुष्य बैठ गए। जहाज या नाव रस्सी से खूटे से खोला नहीं और उस पर बैठ गए। नाव को वे खे रहे है, ताकत लग रही है, परिश्रम लग रहा है दो तीन चार घटे तक नाव चली, ६ घण्टे तक चली, सवेरा हो गया, सोच रहे थे मन ही मन कि अब चार मील पहुच गए है अब ५ मील पहुच गए है, अब हम अपने गाव के किनारे लगे जा रहे है, खुश हो रहे है। जब सवेरा हुआ तो देखा कि नाव अपनी ही जगह पर स्थिर है। बोले, अरे भूल हो गई। बहुत परिश्रम किया, ताकत लगायी, पर नाव वही की वहीं रही। क्या किया कि खूटे मे रस्सी खोली ही न थी।

सत्य मे गर्मी नहीं है। कहीं उस खौले पानी को पी लिया जाय तो पता चल जायगा कि पानी के स्वभाव मे गर्मी नहीं है पर इस पिड मे जो अभी कोई पानी पी ले तो बोलता है कि हाय जीभ जल गई। कहता है कि यदि पानी स्वभाव से गर्म नहीं होता तो मै जल कैसे जाता ? इसका तो पता लगाने के लिए ज्ञानी से मालूम कर पानी के पिड मे गर्मी है, पानी के स्वभाव मे नही। बस इतने ही अन्तर से वेदान्तो के व स्याद्वाद के स्वरूप मे ही अन्तर है। इस ज्ञायकस्वरूप मे विकार कहा है ? जिस स्वरूप मे विकार नहीं है, ऐसा ज्ञायकमात्र मैं हूँ, मै आत्मा अनन्तज्ञानानन्दस्वरूप हूँ।

हे आत्मन् ! तू पर मे दृष्टि न लगा। पर मिट जाने वाले है, तू मिटने वाली चीजो का विश्वास करता है। पर मे दृष्टि लगाने से दु ख होगा। अभी घर मे दादा के गुजरने से दु ख होता है। क्यो दु ख होता है कि उनके बाबा ने बच्चे के बारे मे यह निर्णय किया था कि ये सब अमिट हैं। जब तक उनके मन मे यह नहीं आया था कि जो समागम होगा वह मिटेगा ही। सो अगर कोई कह देता है कि क्या बापजी मर जावेगे तो कहेगे कि कैसे तूने सोच लिया कि बापजी मर जावेगे। यह तू असगुन की बात क्यो सोच रहा है? अरे यहा पर जो कुछ है वह सब मिटेगा। शिकारी आदमी को यदि साधु मिल जाये तो उसे बडा गुस्सा आएगा। शिकारी आदमी के लिए साधु का दर्शन असगुन हो गया। मोहियो के लिए ज्ञानी और वैरागी तो असगुन है। यदि सत्यस्वरूप को देखा जाय तो समझ मे आता है कि सगुन तो ज्ञान और वैराग्य ही है। मोह सम्बन्धी यदि तूने अपना समय असगुन मे ही व्यतीत किया तो कष्ट तो लगेगा ही। यदि अपने स्वभाव सगुन मे उपयोग दिया तो तेरे मे तू ही है, तुझे कष्ट नही होगे। जहा पर ज्ञानदृष्टि होगी वहा पर दु ख अनित्य मे अनित्य की दृष्टि होने पर वह पदार्थ मिट जाय तो वह ज्ञाता रह सकता है। वह तो यही कह उठेगा कि देखो वही बात होगई ना, जो हम पहले समझते थे। अरे वही तो होगा जो हम समझते थे। किसी सौदे के खरीदने मे तुरन्त यदि अनुभव हो जाय कि इसमे तो ठग गए, १० हजार का खरीदा हुआ बेचने से ६ हजार का टोटा पडता है तो इतने की हानि हो रही है। वह इस सौदे को वर्ष भर रखकर बेचता है और उतना टोटा पड़ता है तो पड़े, परन्तु इससे उसे दु ख नहीं होगा। क्योकि वह समझता है कि इसे एक वर्ष पहले खरीदा था, तब भी यह टोटा था। देखने सुनने का ही आत्मा के भीतर कितना कमाल हो गया ? यह प्राणी अनित्य को नित्य समझे तो जब हम मरते है तव हम रोते हैं। इस असार शरीर को जव हमने सार समझ लिया तब रोते है। असार चीज को जव हमने सार समझा तव हम रोते हैं, दूसरे की चीजो को जव हमने अपना समझ लिया तव हम रोते हैं, असत्य को सत्य समझ लिया तव हम रोते हैं। वहा पवित्रता नहीं है जहा मोह है।

लेकिन कहते क्या हैं कि नाली गन्दी है, यह पानी गन्दा है, सड़ा हुआ है इसमे बदबू है अर्थात् इसमें वहुत से गन्दे पदार्थ पहुच गए हैं, गन्दगी है, सड़े गले मास की तथा अन्य वाह्यपदार्थो की वह गन्दगी कैसे हो गई ? सोचो तो सही। पहले तो इस गन्दगी मे मिष्ठान्न के टुकड़े थे, वर्फी थी, वून्दी थी, लड्डू थे, परन्तु अव तो विष हो गया। अव वह गन्दगी वन गई। अव जो गन्दगी की शक्ल है वह भी पहले एक पिड थी और उससे पहिले देखो तो वे अणुस्कन्ध थे, आहारवर्गणाये थीं। उनसे भी पहिले परमाणु

मूर्ति वही तैयार कर सकते हैं जो कुशल कारीगर हैं। जो मूर्ति पहले थी वह अब भी है। जरासा ढकने वाले पत्थरो को काटकर हटा दिया मूर्ति तैयार हो गई। इसी प्रकार इस आत्मा मे भगवान बनने के लिए कुछ नहीं बाहर से लाना है। केवल ज्ञानस्वरूप को ढकने वाले जो विषय कषायो के परिणाम हैं उन विषय कषायो को ज्ञान-छेनी से बाहर करना है। यह स्वरूप कृतकृत्य है। दुकान करने को पड़ी है। यह नहीं चलेगी तो इसके बिना गुजारा नहीं होगा। ऐसा कुछ नहीं है। विषय कषायो की गन्दगी को हटाकर इस ज्ञानस्वरूप मे भगवान के स्वच्छ व सही दर्शन तो कर ले, और अगर न कर सके तो हम जहा के तहा मौजूद मिलेगे।

दु खी कि ? विवश किं ? मेऽत्रैव न्यायो विधिर्जगत् ।
सुखागारोऽप्यय तस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-५३।।

अर्थ- हे आत्मन् ! दुखी क्यों ? विवश क्यों ? मेरा तो इस मुझही आत्मा में न्याय है यहा ही विधि विधान है यहा ही मेरी दुनिया है सुख का आगार भी यह ही मैं हू इसलिये सुख स्वरूप अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊ।

हे सासारिक प्राणी, हे ज्ञानानन्दघन आत्मन् ! दु खी क्यो हो रहा है ? विवश क्यो हो रहा है ? अपने स्वरूप को तो देखो। तेरा तू ही है , एक ज्ञानघनरस, आनन्द पुञ्ज। तुम्हारा आनन्दस्वरूप ही है। दु ख तो तूने कल्पनाये करके बनाए हैं। स्वभाव मे तो आनन्द ही भरा हुआ है। तेरा स्वरूप चतुष्टय तुझमे ही हे, तेरा उत्पाद व्यय ध्रौव्य तुझमे ही होता है। सभी पदार्थो का अपना अपना स्वरूप उन उन ही मे है। अन्य पदार्थो का दूसरे पदार्थो से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।, किन्तु जब यह चैतन्यमय ज्ञानमात्र वस्तु वाह्यपदार्थो मे कल्पनाये करता है कि यह मै हूँ, यह मेरा है, बस इन कल्पनाओ से दु ख उत्पन्न होने लगता है। दु ख का मूल दृढ नही है। एक केवल भ्रम से वाह्य मे आ जाने से, अध्रुव का आश्रय मान लेने से क्लेश उत्पन्न होते हैं। क्लेशो का मूल दृढ़ नहीं, परन्तु हिम्मत करता नहीं तथा अपने आपके स्वरूप मे ही आपा बुद्धि रखता नही और क्लेश यो ही मौज करते करते खत्म हो जाये, सो कैसे हो? सबसे न्यारा विज्ञानघन एक निजी आत्मतत्व मै समझू तो सारे क्लेश समाप्त हो जावेगे। तेरा न्याय तू ही है तेरा न्याय करने वाला कोई दूसरा नहीं है। तेरी पुकार का सुनने वाला दूसरा कोई नहीं है। तेरी प्रभुता तेरे मे ही है। तू ही अपनी पुकार को सुन सकता है। तेरी आवाज तेरा प्रभु आत्मा ही सदा सुनता रहता है अर्थात् जैसे परिणाम उत्पन्न होते हैं वैसे ही इस प्रभु आत्मा मे परिणतिया होती चली जाती हैं। तेरा निर्णय तुझमे है। तू अन्य दृष्टि मत कर। तूने अन्यत्र दृष्टि बहुत की, इसी की वजह से दु ख होते आ रहे है। यह मेरा स्वभाव नहीं है। पर को तो महिमान जान। महिमान कहते है उसे जिसकी कोई महिमा न हो। आते हो तो जाओ, न आते हो तो चले जाओ। ऐसे ही महिमान होते हैं। जिनके प्रति लोग कहा करते है कि इसकी चाहे यह वड़ा भी हो यहाँ महिमा नहीं है। तू अपने ज्ञानस्वरूप को देख कि कर्मो के स्वभाव से उत्पन्न हुए भाव, राग, द्वेष, क्रोध,मान, माया, लोभ मोह आदि यह तेरे स्वभाव में नहीं है। तू तो निश्चल एक स्वभाव मात्र है। तू अपने को ज्ञानस्वरूप ही अनुभव कर। जैसे कोई

पुरुष इसके मित्र है, मै इसका मित्र हूँ, इस तरह से जो अनुभव करता है जिनको मित्र माना है, जिनको वैभव माना है , उन्हीसे उसे क्लेश होते है और उन क्लेशो से उसे रज होता है, दु ख होता है। इसी प्रकार यह किन्ही पदार्थो को अपना मान लेते है तो इस बिगाड़ से ही उसे दु.ख उत्पन्न होता है। इन रागात्मक भावो को तू अपना मान लेता है तो दु ख उत्पन्न होता है। भेद विज्ञान की चरम सीमा यह है कि तू अपने औपाधिक भावो को अपने आप से न्यारा समझ। यह धन वैभव तो प्रकट न्यारे दिखते है मकान है देखो, यह तो प्रकट न्यारा दिखता है, ये मित्र तो प्रकट न्यारा दिखते है, परिवार के लोग भी जुदा जुदा है और इसी आत्मभूमिका मे जो अष्ट प्रकार के कर्मबन्धन बधे हुए है, वे भी इस आत्मा से जुदे है। वे पुद्गल कहलाने है। रूप, रस गध, स्पर्श वाले है, वे सब भी न्यारे हैं। इस आत्मा मे जो रागादि विकार उत्पन्न होते है उन्ही से सुख व दु ख उत्पन्न होते है। अच्छा जरा परीक्षा तो करो कि न्यारा है कि नहीं। एक दृष्टि से देखते है तो वह न्यारे नहीं जचते है।

मेरा द्रव्य ही तो इस समय यो परिणमता है। जब इसके कारण देखते हैं तो जुदा समझ मे आ जाता है। यह विकार मेरा नहीं, यह मेरे स्वभाव के कारण नही हुआ, रागादि भाव मेरे स्वभाव से उठकर नही होते किन्तु कर्म के उदय के निमित्त पाकर झलके होगे। जिन महात्माओ ने, जिन सौभाग्यशाली पुरुषो ने इस निराले तथा चैतन्य चमत्कार मात्र स्वरूप को पहिचाना है वे आनन्दमय हैं और जिन्होने अपने स्वरूप को नहीं पहिचाना है वे प्राणी ससार मे रुलते हैं, रोते है। ऐ रोने वाले प्राणियो, व्यर्थ मे दु·खी हो रहे हो, व्यर्थ मे विवश हो रहे हो। तेरी सहायता करने वाला ससार मे है क्या? तेरे को दण्ड देने वाला कोई दूसरा इस जगत् मे है क्या? तेरा अहित करने वाला, तेरा पहिचानने वाला, तुझे मुक्ति मे ले जाने वाला, तेरे को इस ससार मे भटकाने वाला कोई दूसरा इस जगत मे है क्या ? कोई नहीं है। आप तो परिणाम करते है और ये क्लेश अपने मे ही आटोमैटिक बनते चले जा रहे हैं । इन दु खो से बचना है तो अपने स्वरूप को देखो, दूसरा कोई उपाय नही है। धर्म का पालन इसी को कहते हैं। धर्म बाहर नहीं, वेशभूषा मे नहीं, नाना स्थानो मे नही, नाना पद्धतियो मे नहीं, केवल निज सहज स्वभाव मे यह ही मै हूँ– ऐसा मान लेने से , ऐसा अगीकार कर लेने से, ऐसी दृष्टि बना लेने से धर्म का पालन है। इस ही बात के लिए यह व्यवहार धर्म है। सत्सग करते है किस प्रयोजन के लिए कि हमारी दृष्टि ऐसी बनी रहे कि हम धर्म के पालन के योग्य बने रहे। इसके लिए सत्सग किया जाता है। उपकार सत्सग जो किए जाते हैं वह इसलिए किए जाते है कि मेरी बुद्धि ऐसी व्यवस्थित रहे कि मैं अपने स्वभाव के दर्शन करने के लायक बना रहूँ। अपने स्वभाव के दर्शन करना सो ही धर्म का पालन है। दु ख तो कल्पनाओ से बनाया गया है। कोई भी दु ख हो रहा हो, यही निर्णय कर लो कि और कुछ नही है केवल कल्पनाये बनी रहीं, बस इसी मे दु ख होता रहा है। इन कल्पनाओ का बना लेना, इसी का नाम दु ख है। जैसे न तो टोटा पड़ा है, न विपत्तिया आती है, न हमारे लिए कोई अनर्थ की योजना कर रहा है, केवल कल्पनाये बना बैठा है कि हमारे अनर्थ के लिए कोई योजना कर रहा है। वहा कुछ नहीं हो रहा है। वहा अपने हित की बात बन रही है और मन मे कल्पनाये कर लिया कि मेरी हानि के लिए योजनाये ये बना रहे

है तो इसी से दु ख होता है। वाह्य पदार्थ है, वे अपने आप मे परिणमते है, हम ऐसे है, वह वैसे है, इस प्रकार की वस्तुस्वरूप के अनुकूल विचार चले इससे उन्हे आनन्द है। सुख और दु ख कहीं बाहर से नहीं आते है। जैसी भावना है वैसे ही दु ख तथा सुख है। वस्तु है, किसी दूसरे प्रकार की और मान लेना उसे भिन्न प्रकार की तो दु ख होगा ही और वस्तु जैसी है तैसी मान ले तो सुख होगा। वस्तु का स्वरूप जैसा है तैसी बुद्धि बने तो सुख है। चाहे बाहर की नरकगति के दु ख भी भोगे जा रहे हो किन्तु यदि आत्मा मे मिथ्यात्व नही है तो आत्मा मे सुख है, कोई क्लेश नही है और अन्तर मे सम्यक्त्व नहीं है तो उसकी आकुलता बराबर लगी चली जाती है। सम्यक्त्व बराबर सुख को पैदा करता है और मिथ्यात्व सदा आकुलताओ को पैदा करता है। जैसा है तैसा ज्ञान हो जाना यही ज्ञान है। ज्ञानी गृहस्थ यद्यपि असयम के काम करता है, चरित्र के प्रतिकूल भी चलता है, पर जैसे पतग उड़ाई गई, पतग कितने ही ऊपर चढ़गई है तो डोर तो अपने हाथ मे है। वह पतग कहीं बाहर नही जा सकती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व है तो चाहे उपयोग थोड़ा भ्रम की ओर हो जाय, विचलित हो जाय, यहा वहा पहुच जाय तो वह सब सम्यग्दृष्टि के आधीन बात है। वह अपने उपयोग को शीघ्र अपनी ओर बना सकता है। होता भी ऐसा ही है कि श्रद्धा तो सही है फिर मार्ग पर नही चल पाता। कौन नही जानता कि हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ससार मे भटकाने वाले है। इनकी निवृत्ति होने पर भलाई है फिर भी लोगो को कुछ समय तक करना पड़ता है। पर यदि श्रद्धा है तो पाप कम हो जाते हैं।

जैसे सामने अग्नि पड़ी है, एक पुरुष को जबरदस्ती ढकेल कर कहा जा रहा है कि आग पर चलो तो वह पैरो को आग मे ऊपर ऊपर रखकर निकल जायगा। पर एक ऐसा आदमी जिसके पीछे अग्नि पडी हुई है और कहने से नही किन्तु किसी कारण पीछे पैर रख लेता है। इन दोनो पुरुषो मे जरा बतलाइए कि अधिक कौन जलेगा ? जिसने पीछे बिना प्रेरणा के पैर रख दिया है, उसको पता नहीं था तो वही अधिक जलेगा। उसको आग का पता न होने से जल्दी उठने का परिणाम नही है सो अधिक जल जायगा और जो सामने देख रहा है वह जल्दी जल्दी पैर रखकर निकल जायगा। इसी प्रकार जिसको ज्ञान है, श्रद्धान है, वैराग्य है फिर भी कोई परिस्थिति आती है जिससे कुछ प्रतिकूल चलना पड़ता है। पर प्रतिकूल चलने पर भी उसके विपरीत खिचा हुआ रहता है। जिसके ज्ञानस्वरूप नहीं, विषयो मे आसक्ति है, उसके कर्मवन्धन विशेष है। ज्ञानी को विषयो मे आसक्ति नहीं होती, इससे वह मोक्षमार्गस्थ है।

एक कुत्ता जानवर होता है, वह वडा स्वामिभक्त होता है, आज्ञाकारी होता है। दो रोटी के टुकड़ो मे ही २४ घटे पहरा देता है। अपनी पूछ हिलाकर वडे प्रेम से अपने मालिक को बडा प्रेम दिखाता है। देखो कुत्ता कितने काम आता है ? एक सिह को देखते हैं तो दिल दहल जाता है। किसी किसी का तो हार्ट फेल हो जाता है। कोई कोई तो शेर से डरकर मर जाता। कितना अहित करने वाला यह शेर है। क्यो जी जो उपकारी है, जो भला है उसकी उपमा देना चाहिए या नहीं। अच्छे पुरुष को किसी सभा मे खडे होकर कहे कि फलाने भाई तो वहुत उपकारी है, इनका कहना क्या है ? यह वहुत ही उपकारी एव धर्मात्मा हैं। यह तो एक कुत्ते के समान हैं। इसकी वडी भव्य आत्मा है। यह वडे उपकारी हैं और

उसी को या अन्य किसी को यह कह दिया जाय कि यह शेर के समान है, याने दूसरो की जान लेता है, ऐसा नाम सुनकर वह खुश हो जाता है, पर इसका बुरा अर्थ होता है। यदि किसी व्यक्ति को यह कह दिया जाय कि यह व्यक्ति कुत्ता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह व्यक्ति कुत्ते के समान स्वामिभक्त तथा आज्ञाकारी है। यह अन्तर किस बात का आगया? यह आध्यात्मिक मर्म को बताने वाला अन्तर है। अगर कोई कुत्ते को लाठी मारता है तो उस लाठीको कुत्ता चबाने लगता है। वह समझता है कि मेरा दुश्मन यह लाठी है। मेरा अहित करने वाली यह लाठी है, यह हुई निमित्तदृष्टि अर्थात् निमित्त ही मेरा सब कुछ करने वाला है , ऐसी दृष्टि हुई कुत्ते जैसी दृष्टि । उसको यह पता नहीं चल पाया कि मेरा दुश्मन लाठी नही है बल्कि यह पुरुष है। जबकि शेर को कोई लाठी, तलवार से मारे तो वह शेर यह नहीं समझता है कि मेरा दुश्मन लाठी और तलवार है बल्कि वह समझता है कि यह व्यक्ति ही मेरा दुश्मन है। इसलिए वह शेर पुरुष पर ही हमला करता है। एक की दृष्टि है कि मेरा दुश्मन लाठी है और एक की दृष्टि है कि दुश्मन यह पुरुष है। यही ज्ञानी और अज्ञानी मे अन्तर है। ज्ञानी देखता है कि धन, वैभव, परिवार किसी मे मेरा सुख नही है। मेरा सुख मेरे अन्दर से उठता है परन्तु अज्ञानी यह देखता है कि धन, वैभव, कुटुम्ब, परिवार आदि मे ही सुख है। ज्ञानी यह सोचता है कि बाह्य पदार्थों से सुख नही होता, पर अज्ञानी यही सोचता है कि बाह्यपदार्थोंपर ही सुख दुःख निर्भर है। अज्ञानी जीव ने अपनी प्रभुता को बरबाद कर दिया है। वह सोचता है कि यदि प्रपंच, परिवार, सदस्य तथा अमुक को मै न देखूगा तो मेरा नुक्सान है, परन्तु नुकसान है इसी बाह्य दृष्टि से। यह आत्मा पूर्ण स्वच्छन्द हो तो दुःख नही होगे।

वही गुण है। भगवान् की आत्मा का तत्व शुद्ध ज्ञानके द्वारा आनन्दमय है, ज्ञानघन है, मेरी आत्मा का उपयोग अशुद्ध की ओर है यही तो अन्तर हो गया है। चीज तो एक है जिसमे दुविधापन नही है। तो जैसा सुख का भण्डार प्रभु है वैसा तू है। परन्तु अपने आपको नही जानता है। इसी कारण बाहरी फसाव मे फस रहा है। २४ घण्टे के समय मे २ क्षण को सबकी कल्पनाये छोड़कर अन्तर मे तो देखो। तू उत्कृष्ट ज्ञानानन्द का पिड है। कहते है कि जीव हवा है। फूक मारा उड गया। यह जीव हवा से भी अत्यन्त सूक्ष्म है। शरीर से अत्यन्त जुदा स्वरूप वाला है। शरीर के अन्दर है। इसमे निमित्तनैमित्तिक भावो का होना कारण है। नहीं तो शरीर से इतना सयोग होने की भी गुजायश नही। तेरे परिवार के लोग तेरे नहीं हैं, जिनसे तू इज्जत चाहता है वह तेरे नहीं है। तू तो चैतन्य स्वरूप एक वस्तु है। ऐसा सुख का भण्डार तू है। अन्तर भीतर मे देखो और अपने मे अपने लिए अपने आप देखते रहो।

भावयेद् भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत् पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठितम्।।

समयसार ग्रन्थ अध्यात्मका एक ही ग्रन्थ है। जिसमे अध्यात्मपद्धति से आत्मा का स्वरूप बताया है। उसमे आत्मा का स्वरूप बताते बताते उसका उपाय, भेद, ज्ञान कहते और शिक्षा देते है कि हे आत्मन्! तब तक भेदविज्ञान की भावना करो जब तक यह ज्ञान ज्ञान मे प्रतिष्ठित नही हो जावे। मै ज्ञानमात्र हूँ, शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, इस प्रकार सबसे निराला अपने आपके चैतन्यस्वरूप को देखो। यही काम अभी पड़ा हुआ है। यही काम कठिन है, पूजा सरल है। अरे नही भैया अपना यह काम सरल है पूजा कठिन है। पूजा मे १० साधन जुटाने है। यहा क्या है ? जैसे हो वैसे अपने को देख डालो यह क्या कठिन है? धर्म का पालन यही है। बाहरी चीजे तो सहारा मात्र है, उनमे दृष्टि न दो। जैसे नीचे से ऊपर आने मे जो सीढिया है वे तो सहारा मात्र है, ऊपर आने के लिए सीढियो से प्रेम नहीं करो सीढिया बहुत अच्छी है, बडी सुखद हैं, मैं नहीं छोडूगा। अरे तू न छोड तो वहीं पडा रहेगा। बाह्य तो तेरे सहायक हैं। पहली सीढी पर कदम रखकर उसको छोड़ दे, दूसरी को छोड़ दे, तीसरी को छोडे दे। ग्रहण किया है छोड़ने के लिए। ऐसा न चलो कि हम तो पहले से ही छोडे है पहले से ही छोडे पडे हैं। नहीं, ग्रहण करके छोड़ने की बात है। यहा कुछ छोड़ना नहीं। यथार्थ जान लो। इसमे ही ज्ञान है, इसमे ही आचरण है। ऐसा रूप वाला यह मै निश्चल रूप अपने आप मे रहूँ और अपने आप सुखी होऊ।

ज्ञानपिण्डोऽन्यभिन्नोऽह निर्विकारी स्वभावत ।
स्वतन्त्र सहजानन्द स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-५४।।

अर्थ- मैं ज्ञानका पिण्ड अन्य से भिन्न, स्वभाव से विकार रहित स्वाभाविक आनन्दमय हू इसलिये स्वके ही आश्रित होता हुआ मैं अपने में अपने लिए स्वय सुखी होऊ।

मैं क्या हूँ, इस बात को समझने के लिए इस श्लोक मे पाच बाते बताई गयी है। पहली बात मे कहा गया है कि यह आत्मा ज्ञान पिड है, दूसरी बात मे अन्य समस्त पदार्थो से भिन्न बताया है, तीसरी बात में स्वभाव से निर्विकार कहा है, चौथी बात मे स्वतन्त्र कहा है और पाचवीं बात मे सहजानन्दमय-

दिखाया है। इन्हीं पाच बातो के विवरण से मनन करने पर आत्मा मे यथार्थ बल वृद्धि हो जायगी। मैं ज्ञानपिण्ड हूँ, स्वरूप मेरा ज्ञान ही है। जैसे गर्मी ही अग्नि का स्वरूप है वैसे ज्ञान ही मेरा स्वरूप है। जैसे कोयला तिकोन, चौखूटा है, जलता है तो तिकोना, चौखूटा अग्नि का स्वरूप नहीं है। अग्नि का स्वरूप तो केवल गर्मी है और बाते तो निमित्त पाकर होती हैं। यह मैं आत्मा मच्छ के शरीर मे इतना लम्बा, चौड़ा होगया और चीटी के शरीर मे इतना छोटा हो गया। ऐसा छोडा बडा हो जाना फैल जाना यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। यह तो निमित्त पाकर होता है। आत्मा का स्वरूप तो ज्ञान है। ज्ञान पिड वह आत्मा है और अन्य से भिन्न है। मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं उन सबसे मै जुदा हूँ। यहा अस्ति और नास्तिका जिक्र है।

मै मै हूँ, कुछ और नहीं हूँ। तू तो ज्ञान पिड है और मेरे अतिरिक्त जितने भी पदार्थ है वे सब मै नहीं हूँ। इसी को कहते है एकत्व-विभक्त्व है। तू एकत्व-विभक्त्व है। इसके आगे और कुछ नही है। वस्तु की पहिचान स्याद्वाद से होती है। स्याद्वाद का आश्रय लिए बिना वस्तुवो से परिचय नही होगा। यह पीछी है तो यह पीछे ही है, और और नहीं है। पीछी चौकी हो जाय पीछी ही दरी होजाय तो यह सत् नही हो सकता है पदार्थ सत् कहलाते है, तब सब अपने स्वरूप मे हो और पर के स्वरूपसे न हो। यदि वह परके स्वरूप से न हो और निज के स्वरूप से हों तब तो वह पदार्थ रहे अन्यथा नही। पदार्थ तभी रह सकते है जब अपने स्वरूप से तो हो और परके स्वरूप से न हो। यह चौकी है। यह स्पष्ट दिखती है। यह चौकी अपने आप मे तो है पर इसके अतिरिक्त जितने पदार्थ है, उन सब रूप नही है। तभी तो यह पदार्थ है। इसी तरह अपने आत्मा की बात लगाइए। यह मैं आत्मा अपने स्वरूप मे हूँ और परके स्वरूप से नही हू। अपने आप मे हूँ, मैं अन्य जीव नहीं हूँ अन्य किसी द्रव्य रूप नहीं हूँ, कोई पुद्गल नही हूँ। वह मै क्या हूँ ? इसके बारे मे बताया है कि मैं ज्ञानपिण्ड हूँ। आत्मा में ज्ञानका ही तो सारा वैभव है, ज्ञान का ही सारा कमाल है, ज्ञान ज्ञान ही तो सारा आत्मा है, अमूर्त है, ज्ञान भावात्मक है। ऐसा ज्ञानरस इस आत्मा के साथ अन्य अन्य गुण भी मालूम देते हैं। जैसे आनन्द है, श्रद्धा है, चारित्र है परन्तु यह सब भी लगा रहता है। मानो ज्ञान धर्म के अस्तित्व की सेवा के लिए सर्व गुण है। सबमे प्रधान एक ज्ञान गुण ही है। जब हम आत्मा को पहिचानने चले तो और बातो को देखकर हम आत्मा को अनुभव मे न ला सकेगे।

जैसे हाथ मे स्वर्ण का ढेला रखा है, पहिचान मे आ जाता है कि यह है। एक दृष्टि ज्ञान से आत्मा को सोचो तो कि यह स्वरूप मय आत्मा है, जो जानन का ही काम करता है। त्रैकालिक जो ज्ञानस्वरूप है वह आत्मा है। इस तरह केवल ज्ञानस्वरूप को ही लक्ष्य मे रखो तो ज्ञानस्वरूप ही लक्ष्य मे रहते रहते यह लक्ष्य भी छूटकर ज्ञानमात्र आत्मा की ओर अनुभव हो जाता है। यह चीज प्रयोग की है। जितने शब्द कहे गए उतने शब्द सुनने से आत्मा का अनुभव नही, इतना बयान करने से ही आत्मा का अनुभव नहीं । इसका तो भीतर मे ही उपयोग बने कि मैं ज्ञानमात्र हूँ और जानन का जो काम है वह स्वरूप ही लक्ष्य मे लेवे, इतना मात्र मै हू। ऐसा मनन करने से आत्मा का परिचय मिलता है, आत्मा की पकड़ होती है। यह इस नास्ति वाले दूसरे न्याय से अलग बात नही है। मै अन्य सब पदार्थो से जुदा हूँ, इसको भी साथ मे विचारना चाहिए। अरे नही यह तो पहलेकी बात है। जब ज्ञानानुभव का असर आ रहा हो वहा विभक्तपने की बात सोचना विघ्न है। आनन्द तो आ रहा है।

मै ज्ञानमात्र हूँ । ऐसा उपयोग करने से ज्ञान ही ज्ञान मे पहिचान का आनन्द आने को हो और वहाँ नास्तिका विचार करो तो वह विघ्न है । यह तो वस्तुस्वरूप के पहिचानने की जड़ है । अरे दूसरी बात से निर्णय कर लो कि मै जगत् के सब पदार्थो से न्यारा हूँ । अनुभव के मार्ग मे सोचने की आवश्यकता नहीं । यह तो निर्णय की बात थी। मै तो स्वचतुष्टय से हूँ, परपदार्थो के चतुष्टय से नही हूँ। यह बात निर्णय कर लेने के लिए थी, पर जब ज्ञान के अनुभवका टाइम चल रहा हो उस समय स्याद्वादका आश्रय लेने की जरूरत नही । स्याद्वाद निर्णय के लिए है । निर्णय होकर फिर हमे उसके मर्म मे ही चले जाना चाहिए । फिर स्याद्वाद के विकल्पो को न लिए फिरे । मै ज्ञानपिड हूँ और सब पदार्थो से भिन्न हू, स्वभाव से निर्विकार हू। यहा क्रोध , मान, माया, लोभ इत्यादि विकार मुझमे आते तो है परन्तु यह मेरा स्वभाव नहीं बन गया। स्वभाव होता तो सदा काल ही यहा रहा करता। जैसे अगुली टेढ़ी कर दें तो टेढ़ी ही रहेगी ऐसी बात तो है नहीं। क्योकि टेढी रहना अगुलीका स्वभाव नहीं है अग्नि की गर्मी का निमित्त पाकर पानी गर्म हो गया। गर्म तो हो गया, पर गर्म हो जाना पानीका स्वभाव नही है। विकार तो आ गए, पर विकारोका आना आत्माका स्वभाव नहीं है। मै स्वभावसे निर्विकार हूँ, अपने आप सहज स्वरूप जो मेरी सत्ता है, तावन्मात्र ही हूँ। मै कैसा सत् हूँ इस बातको जब देखो तो मै एक चैतन्य वस्तु हूँ निर्विकार हूँ, ऐसा अपनेको देखना चाहिए। और मै धनी हूँ, मै गरीब हूँ, मै लड़को बच्चो वाला हूँ– यह सब क्या है? यह सब विकारमे फसना है। विकाररूप ही अपनेको माननेपर आत्मा विकाररूप नहीं हुआ । विकाररूप माननेसे आत्मा कहीं विकारमय नहीं हो गया, किन्तु अपने उपयोग विकाररूप बनाना ही विकारोमे आना हुआ। मोही तथा अज्ञानी पुरुष ही अपना उपयोग अपनेको नाना विचित्र रूपोमे मानकर विकाररूपमे बनाते है। परन्तु ज्ञाता पुरुष, मै पुरुष नहीं हूँ, मै स्त्री नहीं हू, मै बालक नही हू, मै बालिका नहीं हूँ, मैं धनी नहीं हू , मैं गरीब नहीं हूँ, इस प्रकारसे सब विचित्रताओको अपनी मानकर यथार्थरूपमे बनाते हैं।

मै केवल चैतन्यमात्र वस्तु हूँ। इस मुझ चैतन्य वस्तुका अन्य वस्तुवोके साथ रच भी सम्बन्ध नहीं

है। वे सब पदार्थ है। वे अपने आपमे है। मै एक पदार्थ हूँ अपने आपमे हूँ, सब पूर्ण स्वतन्त्र है, आजाद है, अपने अपने स्वत्व मे मौजूद है। किसी पदार्थका किसी दूसरे पदार्थके साथ रच भी सम्बन्ध नहीं है स्पष्ट देखो यह वस्तुका स्वरूप है। यह प्रत्येक पदार्थ अपने सत्मे है, अपने स्वतन्त्र स्वरूप मे है। पर ऐसा न मानकर किसी दूसरे के साथ सम्बन्ध हो– ऐसी झूठी बाते बनाए, धन्य है वह आत्मा जो ससारके सारे पदार्थो कोस्वयसिद्ध स्वतन्त्र यथार्थ समझते रहते है। ज्ञानी गृहस्थी जहा पर रहते है वह अपने कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, स्त्री इत्यादिको भिन्न ही समझते है। उन्हे यह प्रतीत है कि मेरा कुछ नहीं है, रच भी इनसे सम्बन्ध नहीं है। यह चीजे मेरी हो ही नही सकती है। और जो कुटुम्ब, परिवार, बच्चो, स्त्री इत्यादिको अपना मानते है, अपना ही सब कुछ समझते है तो उनके हाथ केवल पापका कलक रहता है। यह तो त्रिकालमे उसके नहीं हो सकते है। अगर कुटुम्ब, परिवार, स्त्री, बच्चोको अपना माना तो प्रोफिट मे पापका कलक आ जायगा और ससारमे रुलनेकी बात आ जायगी। अन्य वस्तु तो आ नही सकती। अरे इस ससार मे तेरा कुछ नही है। जगत् के वाह्य पदार्थो को अपना माननेमे कितना प्रोफिट है? अपना मान लेनेसे क्या वह अपने हो गए। वह अपने नहीं हुए। वह तो अपनी सत्तामे है। त्रिकालमे भी वह अपने नही हो सकते है। मिथ्या समझकर अनेक विकार बन गए, अनेक कषाय बन गए, ससारमे बहुत समय तक दुःख सहा, रुलते रहनेकी रजिस्ट्री करा ली। यह सब मुसीबते आजीवन रहीं। अन्य वस्तुका तो कुछ अशमे भी मुनाफा न हुआ। जो दुनियामे कुछ चाहता है उसकी ऐसी ही हालत होती है।

एक सेठ थे, हजामत बनवा रहे थे। वह सेठ बहमी था। नाई बाल बना रहा था। अब सेठने जब देखा कि नाई तो बाल बना रहा है, इसमे तो मेरी जिन्दगी नाई के हाथ है । सेठ डरता है। वह सोचता है कि कहीं बाल बनाते मे गला न कट जाय। इस डरसे वह नाईसे कहता है कि बहुत बढ़िया समझकर बनाना, तुमको हम कुछ देगे। जब नाई बाल बना चुका तो सेठ जी ने एक चवन्नी निकालकर नाईको दी। नाईने कहा कि हम चवन्नी नहीं लेगे हम तो कुछ लेगे। सेठ जी एक अशर्फी, दो अशर्फी, दस अशर्फी देते है पर नाई कहता है कि हम यह नही लेगे, हम तो कुछ लेगे। सेठ जी को कुछ भूख-प्यास लगी थी। नाईसे कहा कि आलेमे जो गिलास रखा है, ले आवो। दूध पी ले। हम भी पी ले और तुम भी पी लो। नाईने गिलासमे जो देखा तो उसमे कुछ काला था। नाईने कहा– सेठजी, इसमे तो कुछ पड़ा हुआ है। सेठ बोला कि कुछ है तो वह कुछ तू ही ले ले। तू कुछ के लिए अड़ा भी था। उठाया तो क्या निकला, कोयला। जो कुछकी जिद्द मे पडा उसको क्या मिला? कोयला।

इसी तरह यहॉ के प्राणी कुछमे ही पडे हुए है। उनको मुनाफेमे मिलता क्या है? मिथ्यात्व । भ्रम, सस्कार हो गए, कुछ मिला नहीं। मान लिया एक करोड, पर आत्मामे आता क्या है? उसमे नए पैसेका हजारवा हिस्सा भी नहीं। सब अपने स्वरूपमे है किन्तु मुनाफा यह मिला कि मिथ्यात्व बढ गया, अज्ञानता बढ गयी, खोटे सस्कारहो गए। यही एक मुनाफा हो गया। चीजे तो कुछ मिलती ही नहीं। क्योकि जगत्के प्रत्येक पदार्ध स्वतन्त्र है। किसी भी पदार्ध का किसी भी पदार्ध मे रच भी सम्वन्ध नहीं है। यह आत्माके स्वरूपकी बात चल रही है और इस श्लोक मे पाच बातोसे आत्माका रूप खोला गया है। जिसमे चौधा

विशेषण चल रहा है कि मैं स्वतन्त्र हूँ, जब मै सबको स्वतत्र निरखूँ तब स्वतंत्र हो सकता हूँ अर्थात् मैं अपने आप स्वतन्त्र श्रद्धा मे रहता हूँ। जब तक प्रत्येक पदार्थको भी स्वतन्त्र स्वरूपमे न देखे कि वे स्वतन्त्र हैं तो मैं भी कैसे स्वतन्त्र रह सकता हूँ? मै तो स्वतन्त्र रहूँ व मेरे घरके बच्चे, अरे वह तो मेरे हैं, वे मेरे आधीन है, अरे वे भी एक सत् हैं। जब वे पराधीन बन गए तो तुम भी पराधीन बन गए। ये मेरे हैं, मेरे आधीन है सोचते है, पर बच्चे पराधीन नहीं बने, तुम स्वय पराधीन बन गए। तुम स्वयं अपने अनुभवसे पराधीन हो। जो मेरा नही है उसे मैंने मेरा मान लिया तो पराधीन बन गए। मैं तो स्वतन्त्र हूँ और जगत्के पदार्थो को पराधीन देखू तो मै स्वतन्त्र नहीं बन सकूगा अपने स्वरूपका अनुभव न कर सके कहे कि यह प्राणी जो लोकमे मोहको लिए हुए है वे राम हो जावे। अरे तू भी तो राम नही बना। कहते हैं कि स्त्री सीता हो जावे और पुरुष राम बने। तो क्या स्त्रिया सीता नहीं बन सकती वे कहते हैं कि यदि पुरुष राम नहीं बनते, स्त्रियाँ सीता नहीं बनती तो सुख और शाति कैसे हो सकती है, आराम कैसे मिल सकता है? तुम्ही उनसे गुणकी श्रद्धा करने वाले हो सकते हो। खुद पुरुष रामका स्वरूप है। यदि खुदके स्वरूपको राम निरखोगे तब बात बनेगी। इसी प्रकार खुद स्वतन्त्र बनो व सबको स्वतन्त्र देखो। सब मेरे आधीन रहे ऐसी कल्पना जहा आई तहा पराधीन बन गए। यह स्त्री मेरी है, यह बच्चे मेरे है, ऐसी कल्पना आनेके माने है कि स्त्री तथा बच्चो के आधीन बन गए। 'यह पदार्थ मेरे है, के मायने है कि आप पदार्थो के आधीन बन गए। मैं स्वतन्त्र हू जगतके सभी पदार्थ अपनी सत्तामे हैं। कोई दूसरेके आधीन नहीं।

पाचवीं विशेषता है कि मैं सहज आनन्दस्वरूप हूँ सहज स्वाभाविक आननदस्वरूप हूँ, आनन्द मुझमे लाया नहीं जाता। जैसे ज्ञानी जीवका स्वरूप है। तैसे आनन्द भी जीवका स्वरूप है। जीवोका सर्व प्रयोजन इसी बातमे है और इसी बातमे प्रयत्न रहता है। एक तो जाननका और एक आनन्दका– इस जीवके यही दो प्रयोजन हैं। इन दोनो ही चीजोको प्राणी चाहता है। कि जानन भी खूब हो और आनन्द भी खूब हो। सो भाई ज्ञान और आनन्द यह आत्मामे ही है। आत्मामे स्वभाव है और आत्मा मे स्वरूप है। ज्ञान और आनन्द कहीं बाहरसे नहीं लाना है। किन्तु जैसे हो तैसा अपनेको मान लेना, बस यही ज्ञान और आनन्दके प्राप्त होनेका उपाय है। इस श्लोक मे पहले विशेषण मे ज्ञान है और आखिरीमे आनन्द है। मेरा भी तो प्रयोजन ज्ञान और आनन्दसे है। वे मेरे ठीक बनानेके लिए और आनन्दके विकासके लिए है। ज्ञान और आनन्द ही जीवका वैभव है। यदि अन्य वैभवके दर्शन करेगा तो तू अपने अमूल्य वैभव को गवा देगा। केवल यह मैं ज्ञानानन्द आत्मा हूँ ऐसा ही अपनेको अनुभव करो तो अपनेमे अपने आप अपने आनन्दका अनुभव कर सकते हो। देखो जैसा मैं नहीं हूँ वैसी भावना करू तो वैसा ही उपयोग दन जाता है। तव मैं जैसा हूँ तैसा अनुभव करके वैसा ही उपयोग बनाऊ तो वैसा बन जानेमे कोई सन्देह नहीं है। मै भैसा नहीं हूँ किन्तु अकेले बैठे बैठे समझ लिया कि मैं भैंसा हूँ तो ऐसी ध्वनि बन जायेगी और अपने शरीरको भूल जाऊगा । यही सोचूगा कि मैं भैंसा हूँ, मेरे एक वड़ा पेट है, दो सीगे हैं, एक पूछ है, चार पैर है। ऐसा यदि एकचित्तसे अपनेको भैंसा समझ लेवें तो मैं भैंसा ही नजर आऊगा,

मै अपने उपयोगसे भैसा ही बनूगा और अगर दिलमे ऐसा अनुभव आ जाय कि मदिरका दरवाजा छोटा है तो रज करूगा कि मै कैसे निकलू मैं मन्दिरसे बाहर कैसे निकल पाऊगा। हमारा शरीर तो इतना मोटा है, दो सीगे है, एक पूछ है, अच्छा काला काला बड़ा मोटा सा हूँ। मैं कैसे बाहर निकल पाऊगा? सारी बाते सोचने सोचने मे ही अपने आप अनुभव कर डालता है। जैसा कि है नहीं, फिर जैसा यह ज्ञान रस, आनन्दघन, ज्ञानमय, सबसे निराला तैसा ही अपनेको माने तब तो यह स्थायी रूपसे ऐसा ही हो जाता है। मै भैंसेकी कल्पना बनाए बैठा था तो क्या मै भैंसा बन गया? भैसा मैं नहीं बन जाऊगा। परन्तु यह तो आनन्दमय है और ऐसा ही मान लेवे तो स्थायी रूपसे ज्ञानमय यह आत्मा बन जायगा। तो यह मै आत्मा सहज आनन्दरूप हूँ तो यह मै अपनेमे अपनेलिए रमकर अपने आप आनन्दमग्न होऊं ।

निजचेष्टाफलं ह्यन्ये दृष्टिः संसार उच्यते।
विज्ञाय तत्त्वतस्तत्वं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।७-५५।।

अर्थ– निश्चयसे " अपनी चेष्टाका फल अन्यपदार्थमें है" इस दृष्टिको ही संसार कहा जाता है, अतः वास्तवमें तत्वको जानकर मैं अपनेमें अपनेलिये स्वयम् सुखी होऊ।

थोड़ेसे शब्दोमे यदि कहा जाय कि ससार क्या है, सारी झझटे क्या हैं तो कहा जा सकता है कि अपनी चेष्टाका फल अन्यमे होता है, ऐसी मान्यता ही झझट है, इस ही को ससार कहते हैं। हम जो कुछ करते है उसका असर दूसरोमे होता है, उसका फल दूसरोमे होता है। इस प्रकारकी बुद्धि होनेका नाम ससार है, सारी विपदाये हैं ऐसी दृष्टिका नाम ही ससार है। ससार शब्दका अर्थ देखा जाय तो निकलता है कि 'ससरण ससार' परिभ्रमण करनेका नाम ससार है। बाहरी दृष्टि से ३४३ घन राजू प्रमाण लोक मे परिभ्रमण करना ससार है और अध्यात्मदृष्टिसे अपने आपके विभावो मे आकुलित होकर, फिर फिर कर विकल्पोमे बने रहनेका नाम ससार है, परिभ्रमण है। यह सस्करण क्यों लग गया? इसका मूल कारण क्या है तो अपनी चेष्टाका फल दूसरोमे माननेकी दृष्टि ही इसका मूल कारण है। हम एक स्वतत्र पदार्थ हैं। जग के ये सभी स्वतन्त्र पदार्थ हैं। किसीसे रच भी सम्बन्ध नहीं है। अपने ही तो उत्पाद व्यय ध्रौव्यमे रह करके अपने ही स्वभाव से ये परिणमते रहते है। अपने रूपकी सीमाका उल्लघन कोई नहीं करता है। फिर कोई वजह ही नहीं कि किसीके करनेसे किसीको कुछ हो जाया करता हो। परन्तु यह मोही प्राणी भी करता है तो यह समझता है कि मैं अमुक मे यह परिणमन कर दूगा । बस इसी दृष्टि के कारण ससार के सारे क्लेश लग गए। इसीको कहते है कर्तृत्वबुद्धि । अर्थात् परको कुछ कर लेनेका ख्याल मैं दूसरोको कुछ कर देता हूँ, दूसरे मुझे कुछ कर देते हैं। इस प्रकारका जो विकल्प चलता है।, खोटा अभिप्राय रहता है। इस ही का नाम ससार है और इन विकल्पोंसे छुट्टी लेनेका नाम ही मोक्ष है। घरमें, समाजमे, समूहमे जहा भी जो विवाद खड़े होते है उन विवादोका मूल कारण देखो तो अहकार निकलेगा। अहकार बिना विवाद नहीं होता है। घरमे स्त्री पुरुषमे, देवर जेठानी में, सास बहू मे अगर विवाद खड़ा होता है तो विवाद दो के बीच मे होता है ना, क्योकि एकसे विवाद क्या? सो जिससे विवाद खड़ा हो, समझो इसमे अहकार ही है। क्यो दुःखी होते हो? अमुक काम न हुआ तो न सही। वह भी पदार्थ हैं वह ही परिणम गया। इसमे तुम्हारा क्या बिगड़ गया? मैंने हुक्म दिया, पर उसने नहीं माना अथवा मैं

ऐसा कहता था, ऐसा क्यो नहीं किया? यह हो गया अहकार । मैने इनका बडा पालन पोषण किया और इनकी सेवा करता हूँ और फिर भी ये मेरे अनुकूल नही चलते यह भी हुआ अहकार। मेरे जितने विवाद होते हैं वे सब अहकारसे होते है। धधे करनेके मामलेमे निरन्तर जैसे चिन्ताये रहा करती है– इतना क्यो नही हुआ, इतना कैसे बचा लिया जाय, यह कैसे कमा लिया जाय अथवा इज्जत रखनी है। सारे जितने पाप है उनका भी मूल है अहकार। उनका क्या बिगड़ा कि ५ लाख थे और २ लाख निकल गए, अरे इसमे क्या तुम्हारा तत्व बिगडगया? इन मायामयी मूर्तियोके बीच इस मायामय मूर्तिको जो चाह रहा है इस मायामय शरीरको जिसने सामने रखा है और इस मायाकी दुनियामे अपनेको कुछ वताना चाहता है वह अहकार ही उन व्याधियोका स्वय कारण है।

जगत्मे जितनी भी विपदाये है सब विपदाओकी व्याधियो का कारण अहकार है हम कुछ करते है फल दूसरेमे होता है। कर्त्तृत्व को माननेका नाम ही ससार है। परमार्थसे बात तो यह है कि हम जो करते है उसका फल हम ही भोगते है। हम करते क्या है, क्या दुकान चलाते है, रोटी बनाते है, घरकी लीपापोती करते है? हम विकल्पका ही काम करते है। कभी विकल्प करते है फिर इसके निमित्तसे जो कुछ होता है वह अपने आप होता है। तुम आत्मा हो। आत्मा एक ज्ञानमय पदार्थ है। वह इस शरीरके अन्दर रहते हुए भी इस शरीरसे जुदा है। यह ज्ञानमय जीव पदार्थ केवल अपने परिणाम कर पाता है। परिणाम किया कि इस शरीरमे रहने वाला यह आत्मा जो शरीरसे न्यारा है। सब प्रदेशोमे हिल जाता है, कप जाता है। जैसे अभी भयका परिणाम हो तो यह आत्मा हिल जाता है। खुशीका परिणाम हुआ, चिन्तनका परिणाम हुआ, इच्छा की, वहा भी हिल जाता है। यहा भी परिणाम करता है तो उस परिणामके फल मे यह जीव कप जाता है, हिल जाता है, प्रदेश परिस्पन्द होने लगता है। इसे कहते हैं योग। पहली वातको कहते है उपयोग। यह जीव केवल उपयोग और योग करता है और दूसरा काम ही नहीं करता है। मै तो केवल उपयोग और योग करता हूँ। इसके बाद जो कुछ होता है वह अपने आप होता है। देखो यह जो ज्ञानकी वात है, यही अमृत है। इसको पी लोगे तो अमर बन जावोगे। बस अमर तो होना ही है। समझमे आ गया कि अमर क्या है।

मै अपने स्वरूपसे हूँ, अपनेमे रहता हूँ, सदा अकेला ही रहने वाला हूँ। यहा तो यह मै ही मै दिखता हूँ, मैं ही यहा हूँ। जरा आखे खोलकर देखो, अरे यह तो शरीरमे है। परमार्थसे शरीरमे नही है यह तो व्यवहारकी वात है। शरीरमे तो वस्तुतः यह नही है और व्यवहारसे है तो रहने दो। यह मै इस शरीरको छोडकर दूसरी जगह के लिए जाऊगा। तो मैं तो वहीका वही हुआ। यहासे छोड़कर दूसरी जगह पहुच गया, मैं तो पूरा का पूरा हूँ। उतनाका उतना,पूराका पूरा मैं अमर ही तो रहा। मरा कहा? मगर वह दृष्टि यह विकल्प कर डालती है कि देखो हमारा कमाया हुआ धन छूटा जा रहा है अथवा इज्जत बनी हुई थी, अव वह छूटी जा रही है। यह जब ख्याल करता है। तो दुःख हो जाते हैं। नहीं तो दुःखी होनेका कुछ काम ही नहीं है।

मै यहा रहूँ अथवा न रहूँ, इससे उसमे क्या फर्क आयेगा? मगर वाहर जव मोहको दृष्टि बनी रहती

कहीं काम नहीं है। इतना कर लेनेके बाद शरीरमे जो वायु भरी है, चक्कर करने लगती है। तब आत्माके भावोंके अनुसार चक्कर काटना शुरू हो जाता है। यो उपयोगके अनुसार योग व योगके अनुसार वायु चलती है। जब आत्मा के प्रदेश मे बौखलाहट होने लगी तो यहा एक क्षेत्र मे रहने वाले इस शरीरके स्कन्धो मे भी वायुको बौखलाहट होने लगी। जहा इस शरीरमे वायु चले तो शरीरके अग भी चल उठे। जैसा उपयोग किया था उस ही के अनुसार योग हुआ, वायु चली, अनेक अग चले और उन चलते हुए अगो के बीचमे कोई रोटी ले आए तो उसके भी परिणमन हुए। उसको देखकर लोग कहते हैं कि इसने रोटी बनाया, दुकान चलाई, वस्तुवे खरीदी इत्यादि बाते लोग कहने लगते है। परमार्थसे अन्य कुछ नहीं किया। जीवने तो केवल उपयोग और योग ही किया है। उपयोग और योग होने के अतिरिक्त इस जीवकी करतूत कुछ नहीं है।

लोक मे कहावत कही गई है कि 'घी शक्कर मीठा या बहू के हाथ।' घी, शक्कर होनेके कारण पकवान मीठा है। हाथ निमित्त हैं। इसमे मीठा क्या है।? बहूके हाथ मीठे है क्या ? नहीं, शक्कर मीठी थी। तो पकवान बहूने बनाया या शक्करने बनाया। देखो हाथमे हाथ चला और रोटीमे रोटी बनी। व्यर्थका ही अहकार होता है कि रोटी मैने बनायी है। रोटीका उपादान तो वह आटा ही है। हाथ तो निमित्तमात्र हैं। निमित्त वह कहलाते है जो अलग रहा करते है। हाथ रोटीसे अब भी अलग है। लोकमे जो भी काम होता है उन सब कामोसे भी हाथ अलग है। निमित्त अलगको ही कहते है। जो भिन्न चीजे हैं सारी अलग है तभी तो निमित्त पाकर भी यदि उपादान योग्य नहीं है तो कार्य नहीं होता। आज भाई आटा नहीं बचा। अरे नहीं बचा तो नहीं सही, कैसे बनेगा? धूल धर दो। क्या रोटी बन जायगी? नहीं। क्यो?अरे उपादान तो है ही नहीं। कार्य जितने होते है वे उस ही वस्तुमे होते हैं, जहा कि वह कार्य है। मै जो कुछ परिणाम करता हूँ, कार्य करता हूँ, मेरा असर मुझमे ही है, मेरे से बाहर मेरा असर नहीं है। मोह करके दुःखी हो गया, बरबाद हो गया । दुःखी हुआ तो दुनियाके अन्य किसी वजहसे दुःखी कुछ नहीं हुए। मोह हुआ उससे ही दुःख हुआ। मोहकी गदगी जो दुनियामे है, हमारी ही है। बाहर कोई गदगी नहीं है। इस गन्दगीका कारण यह आत्मा मोही ही है, मोहका परिणाम ही है। इस मोहके परिणामने हमे निगोद जैसी खोटी योनियोमे पहुचने वाला बना दिया। बतलावो इसमे कौनसी स्थिति ऐसी है जो अच्छी है और सतोपके लायक है। जैसे कहावत है कि– 'घर घरमे मिट्टी के चूल्हे।' घर घरमे क्लेश हैं, घर घरमें विपदाये हैं। कहीं चले जावो,कचहरीमे जज बैठता है कुर्सीपर और हुकूमत करता है। अनेक लोग आकर प्रणाम कर रहे हैं और वाबू वने हुए बैठे हैं। देखने वाले सब लोग सोचते हैं कि जज साहब सुखी हैं। अरे वह सुखी नहीं है। वह अहकारसे भरे हुए हैं। निरन्तर दुःखी होते हैं और चिन्ताओसे युक्त हुआ करते हैं। तो बताओ कि वह मजेमे कैसे होंगे? ऊपरी शानसे सुखी हैं। पर वह भीतरी मनसे दुःखी हैं। जैसे ऊपरसे चादीका घड़ा दिखता है और अन्दरमे विष्टा भरा रहता है तो वह कैसा है? इसी तरह ससारके प्राणी ऊपर से चिकने चुपडे लगते हैं व भीतरसे अज्ञान व अशाति भरी है। कहा है न वैसे ही लखनऊ जैसी नजाकत है। यही वात है कि दिखने मात्रमें वह सुखी हैं, पर भीतरसे यह विकल्प

भरे हुए हैं और दुःखी हो रहे हैं। भीतरमे राग, द्वेष, मोह इत्यादि भरे हुए हैं। कौनसी ऐसी स्थिति है जिससे अहकार किया जाय, सतोष किया जाय। जैसे रास्ता भूलकर कोई पुरुष कुछ आगे बढ़कर चला गया है तो भूल मालूम होनेपर सामने के बड़े बगीचो, वन उपवनोसे अपना मुख मोड़ लेता है, उन्हे मुड़कर भी नहीं देखता है। इसी प्रकार खोटे मार्गमे, भ्रमकी बातो मे पड़कर बहुत दूर तक चला फिरा, भटकता हुआ प्राणी जब यह समझ जाता है कि ये सब विषय कषाय है, भूलका मार्ग है। निज सहज स्वभावकी दृष्टि छोड़कर परपदार्थो को अपना मानना यह सारी भूल है। हम मार्गको भूल गए है। यह तो व्याधियो का मार्ग है–जब ऐसा सही ज्ञान होता है तो यह जीव अपने कुटुम्ब, परिवार इत्यादिसे अपना मुख मोड़ लेता है। अपने धन वैभवका लिहाज नहीं करता है। अपने लड़को पर निगाह नही डालता है।

यदि अपनेको व्याधियोसे रहित मार्गमे लाना है तो सुमार्गकी ओर देखो। अपनी चेष्टाओका फल दूसरो मे होता है ऐसी दृष्टि आप फैलाए है। यही खोटा मार्ग है यही ससार है। यह विपरीत मार्ग है, यही ससार है। इसमे चलनेसे इसमे ही भटकते रहोगे। जब समझ आती है तब ज्ञान इससे मुड़ जाता है। मेरी शक्तियोका परिणाम मुझमे ही होता है। मेरा मित्र मै ही हूँ, मेरी विपदाये मै ही हूँ, यह ज्ञानानन्दस्वरूप भगवान् आत्मा है, इसको ही अपने आपके लक्ष्यमे लो। इस शरीरकी समस्त आकुलताये समाप्त हो जाएगी। अपनी चेष्टाओ का फल दूसरोमे मानना सोई कुबुद्धि है, ससार है। अगर कुछ असयम मे भी पड़ा रहना पड़ता हो तो फिर भी प्रतीति तो पूर्ण सही रखना चाहिए। अपनेको ऐसा ही प्रतीत करना चाहिए कि मै सबसे निराला, केवल ज्ञानस्वरूप ही आनन्दमय भावात्मक एक विलक्षण चैतन्य पदार्थ हूँ, जिसका यहा कुछ नही है। इसमे जो कुछ हरकत होती है, चेष्टा होती है वह इस आत्मस्वरूप की होती है और जो असर बनता है वह इसके ही बनने की चेष्टा हो रही है। जो होता है इसके ही प्रयोजन के लिए होता है, इसमे होता रहता है। इसके लिए ही होता है। जैसे सर्प कुण्डली बना लेता है, अपने लिए ही अपने को घेर लेता है। इसी तरह इस जीव ने जो कुछ उपयोग किया और योग किया वह सब अपने मे ही अपने लिए किया। इसका इसके बाहर कुछ वास्ता नहीं है। अन्तर दृष्टि होने का नाम मोक्षमार्ग है और बाहर मे दृष्टि फैलाने का नाम ससार है ससार का मार्ग है।

देखिये– भावना से ही यह ससार मिल जाता है। अब बुद्धिमानी यह होनी चाहिए कि हम किसे प्राप्त कर ले ? केवल भावना से ही मिल रहे हैं सब कुछ। रात को एक भाई ने यह प्रश्न किया कि हम जैसी चीजो का सौदा करते है, सौदा तो करते हैं और चीज खरीदते नहीं। केवल भावना ही कर लेते है। इसमे नफा नुक्सान क्या होता है ? बड़े गजब की बात यह हो गई। नुक्सान तो सौदा लेने पर होता कि भाव करने पर ? लेकिन यह भाव कर्म का बन्ध करा देता। रोजगार मे भावना करने से नुक्सान नहीं होता। नफा नुक्सान तो सौदा कर लेने पर ही होता है। सो भैया, प्रथम तो यह बात है कि तू तो केवल भावनाओ को बना सकता है, काम कुछ कर सकता नहीं है। भीतर मे विषय कषाय के परिणाम भरे हुए हैं, उनसे कर्मबन्ध होता। हिसा, झूठ आदि के कारण कर्म नहीं बधता। यह विचित्र रोजगार है। जीव भाव ही कर पाता है और भाव से ही नफा नुक्सान होता है। भाव के कारण कर्मबन्धन है।

हा यह बात जरूर है कि भाव बुरे है तो कार्य भी बुरा किया जाता है। इसी से कहो कि हिसा, झूठ आदि भावनाओ के कारण कर्मबन्धन है। यह रोजगार विलक्षण है। यदि अपनी खोटी भावनाओ से हटकर सही रूप मे कार्य करने लगे तो नफा हो जाय। भाव खोटे नही तो वाह्य परिणति से पापबध नही। ऐसे अनेक उदाहरण मालूम होगे।

सुदर्शन सेठ थे। रानी ने सेठ को बुला लिया। महल मे सब चेष्टाये कर ली, परन्तु सुदर्शन विरक्त ही थे। राजा ने गुस्से मे आकर शूली का आदेश दिया, परन्तु सुदर्शन सेठ का परिणाम रच भी बुरा न था। उनका विचार निर्मल था। रानी से कहा था—मा मै तो नपुसक हूँ, उनका परिणाम निर्मल था। उसके कारण उनके कर्म बधन नहीं हुए। तथा परवस्तुवो के कारण मोक्षमार्ग मे बाधा नहीं आयी और ये दुनिया के विचित्र गुण्डेलोग परिणाम बिगाडते है, पर कही बस थोडे ही चलता है, फिर भी कर्मबन्धन हो रहे है। जैन सिद्धान्त तो यह कहता है कि काय से कर्मबधन नही, कर्मबन्धन भावनाओ के कारण है। हां यह बात और है कि भावनाओ के बिना कार्य हो नहीं सकता। यदि साधु ईर्या समिति से जाते हो और अचानक मार्ग मे कोई कुन्थु प्राणी मर जाता है तो प्राणिघात होते हुए भी कर्मबन्धन नहीं हुआ। उन्हे जीवहिसा का पाप नही हुआ। कोई बिना देखे चले और उसके शरीर से किसी प्राणी का घात भी न हो रहा हो तो कर्म बधेगे। कर्म-बधन का रोजगार भाव से चलता है, चीज के लेन-देन से नही। सबसे बुरा भाव, बुरा पाप तो मिथ्यात्व है। अपनी चेष्टा का फल दूसरे मे देखना यह भाव भी मिथ्यात्व है। इस मिथ्या आशय को त्यागकर मै निज चैतन्य स्वभाव मात्र देखू और अपने मे अपने आप सहज विश्राम पाऊ।

अनन्तज्ञानसौख्यादिगुणपिण्डोऽपि तृष्णया।
भ्रमाणि दीनवत्कस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-५६।।

अर्थ— मैं अनन्त ज्ञान सुख आदि गुणों का पिण्ड होता हुआ भी तृष्णा से दीन की तरह क्यों घूमू ? अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

मै अपने आप किन तत्वो से बना हुआ हू, किन तत्वो रूप हू— इस पर विचार करने से जब आत्मा मे देखते हैं तो यही मालूम होता है कि यह एक ज्ञानमय वस्तु है, ज्ञान से ही रचा हुआ है, ज्ञान ही उसका सर्वस्व है, ज्ञान के मायने जानना। जानना आत्मा के आधीन बात है। परपदार्थो के आधीनता की बात नहीं। जानने मे परपदार्थ आते हैं पर जानना तो आत्मा की चीज है, आत्मा मे उठता है। जानना आत्मा के स्वभाव की कला है। इस कारण जानने मे कोई सीमा नहीं होती कि इसको ही जान, आगे न जान, इससे अधिक न जान। ऐसा जानने मे कोई सीमा नही है। स्वभाव से ऐसा जानने का स्वरूप है। जिसे कहते हैं अनन्त ज्ञान। यदि ज्ञान कम जाने, इतना जान पाने का कोई कारण होता है। इतनी बात बतलाइए कि दस कोश का जान लेने का काम है और ग्यारहवे कोश के जानने का आत्मा का काम नहीं है, क्यो ? अरे इसमे तो जानने का ही मात्र स्वभाव है। सीमा बनावेगा तो स्वभाव ही मिट जावेगा। जो है सो जानने का स्वभाव है, जानने का विषय सत् है, वह सब जानने का स्वभाव है। आगे

पूछने की गुजाइश नही। क्यो ऐसा नही है ? इसने हजार कोस तकका जाना, पर हजार कोस से आगे न जाना। पूछा जा सकता है कि वह हजार कोश तक सबको जानता है, इसके आगे वह किसी को नहीं जानता, इसका क्या कारण है , यह कितना जानता है ? अरे यह सबको जानता है। इससे आगे वह किसी को नही जानता है। विश्व के समस्त गुण पर्यायो को जानता है। क्यो जानता है। जानने का क्या कारण है? यह पूछने की बात नही। अनहोनी के होने का कारण पूछा जाता है। कुछ उल्टा बन गया है, उसके ही कारण पूछा जाता है। जो स्वभाव से होने वाला है उसका कारण क्या पूछा जाय ? मेरा स्वभाव जानने का है। जानना ही आत्मा है।

जैसे वर्णन किया जाता है कि आत्मा मे अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व है, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व तथा असाधारण गुणो मे श्रद्धा है, चारित्र है, आनन्द है, ज्ञान है। यदि इन सब गुणो मे से केवल एक गुण ज्ञानका न हो, ज्ञान को न मानो, ज्ञान को बाहर निकाल दो और कहे कि सब खुशी से रहो, अस्तित्व से रहो तो न रह सकेगे। एक ज्ञानभर को न रहने दो, निकाल दो, ऐसा मान लो तो अपनी कल्पनाये कर लो तो अस्तित्व न रख सकोगे, श्रद्धा और चारित्र न रख सकोगे। देखो ज्ञान के न रहने से कितनी विपदाये आ गयी ? ज्ञान ही जिसका एक स्वभाव है, वह सारा मै आत्मा हूँ। गुणो का अन्तर्भाव ज्ञान मे तो किया जा सकता है। पर ज्ञान का अन्तर्भाव किसी अन्य गुणो मे नही किया जा सकता है। आध्यात्मिक शास्त्रो मे तो सब कुछ यह ज्ञान ही है। श्रद्धा है तो ज्ञान है, सम्यग्दर्शन है तो ज्ञान है। जीवादि तत्व के जानने के स्वभाव से ज्ञान के होने का नाम सम्यग्दर्शन है और रागादि का परिहार करने के स्वभाव से ज्ञान का होना तो सम्यक्चरित्र है। ऐसा यह मै ज्ञानमय हूँ, मै ज्ञानमय वस्तु हूँ, ज्ञान ही जिसका सर्वस्व है। मै तो अनन्त ज्ञानादि गुणो का पिड हूँ, फिर भी तृष्णा के वशीभूत होकर अपने मे कैसे कैसे बखेड़े पैदा कर डाले। हीन, दीन, दरिद्र, दु खी अपने को कर डाला।

जिसकी वजह से जगह-जगह भटकता रहा।सर्वत्र कल्पनाओ का ही तो नाच है। दु ख है, कठिनाई है। इस तरह की कल्पना कर डाली तो दु ख है। दु ख मिटाना है तो यह कल्पनाये बदल दीजिए। वस्तुस्वरूप के अनुकूल कल्पनाये कर लीं जाये तो दु ख मिट जायगा। यह दु ख और सुख कैसे कल्पना की हवा मे चल रहे है ? कल्पना कर ली दु ख हो गया। सही बात सोच ली तो आनन्द हो गया। यह जीव अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त सुखो का पिड है। लेकिन कोई ऐसा न माने तो वही दु खी रहेगा। जैसे ज्ञान की सीमा नहीं है इसी तरह अनन्त ज्ञान से अनन्त जानने वाले आत्मा के दर्शन भी अनन्त ही अनन्त है। आनन्द का अन्त तो उसका होता है जो आनन्द झूठा हो, पराधीन हो, कल्पना भाव से बना हो। जिसकी मूल जड़ कुछ नहीं है। केवल सकल्प का ही फल है। ऐसे सुख का अन्त तो आया करता है, और उस आनन्द की सीमा भी नही रहती है। जैसे गुड से शक्कर मे रस ज्यादा होता है उससे मिश्री मे रस ज्यादा होता है उस रसकी सीमा बन जाती है। इसी तरह आत्मीय आनन्द मे तो भेद नहीं, सो आत्मीय आनन्द रसकी सीमा नहीं हो सकती है। आत्मीय आनन्द कितना आया ? देख लो कितना आत्मीय आनन्द है। ऋषभदेव और महावीर स्वामी के आनन्द मे अन्तर है क्या ? रामजी और हनुमान

जी के आनन्द की सीमा है क्या? नहीं है। और यह ज्ञानी जीव भी जब आत्मीय आनन्द अनुभव करता है तो उसके आनन्द की सीमा नही है। सीमा कहा बताई जाय ? जिसकी कमी हो वह सीमा है। इसी प्रकार समस्त विकास को बनाए रहने की ताकत ही अनन्तवीर्य है। मै अनन्त आनन्द, ज्ञानानन्द का पिड हूँ। ऐसा होते हुए भी यह भगवान् आत्मा केवल कल्पनाओ के भुलावे मे पड़कर बाधा के बन्धन मे आकर दीनवत् ससार मे भ्रमण करता है।

जैसे लोग कहते है कि हम अपने घर के बादशाह है और दूसरे लोग चाहे जो कुछ हो। अरे अपने घरका भी सही पता लग जाय कि मेरा निजी स्वरूप ही घर है, जो ज्ञानस्वरूप, ज्ञानमात्र है, इस मेरे का किसी से कुछ सम्बन्ध नही है, इसे कोई पहचानता नही है, इससे कोई बोलचाल होती ही नहीं है, मैंने कभी किसी को कुछ किया ही नहीं, कोई मुझसे अब तक बोला-चाला ही नही, मै सबसे निराला ज्ञानस्वरूप, ज्ञानमात्र हूँ, इस जगत् के प्राणियो को यदि निजी घर का पता लग जाय तो यह बात सत्य है कि वह अपने घर का सर्वस्व हो जावे। सारा जहान चाहे जैसा उसे माने, उस से कुछ अहित नहीं हो सकता है। सारा जहान अनीति कर यदि उसके विपरीत चले तो भी उसका अहित कुछ नही हो सकता है। अपना हित और अहित अपनी कल्पनाओ से, सकल्प से होता है। लोग कहते हैं कि ईश्वर ने संकल्प किया कि सारा ससार बन गया। ऐसी ही उसकी विचित्र लीला है, मगर कुछ नही करना पडता, हाथ-पैर नहीं चलाने पडते। वह तो सुर्वव्यापक, सच्चिदानन्दमय एक अद्भुत शक्ति है। उस ईश्वर ने सकल्प किया कि ससार बन गया। जैसे कि लोग कहते है कि अब इस ईश्वर के मर्म को विचार कर अपने आपका बोध कर। तू अपने को ऐसा निरख कि मै ज्ञानमय आत्मा हू। जिस आत्मा मे हाथ पैर नही है, केवल ज्ञान का पिड है ऐसा मै आत्मा हूँ। ज्ञान मे क्या जानना है ? ओह, ज्ञान का जानना। अरे जो है सो जान लो, वस्तुवो को जान लो। ज्ञान इस आत्मा का प्रधान धर्म है।

इस दृष्टि से देखो तो इस आत्मा मे ज्ञान लोकालोक व्यापक है। यह आत्मा सकल्प करके ही अपने आपकी सृष्टि-रचना कर लिया करता है, और ऐसे सभी आत्मा है। तो उन आत्माओ के स्वरूप मे दृष्टि देकर विचार करो। यह ज्ञानमय स्वरूप अपने सकल्पमात्र से सारे ससार को रचता है। सकल्प ही तो करता है। कर्म के बन्धन होते हैं। कैसे इसने सकल्प किया कि बन्धन हो गए ? पुण्य का बन्धन होता है। कैसे सकल्प तूने किए कि पुण्य नही हो पाया। पुण्य का बन्धन होता है कैसे ? सवर निर्जरा होती है कैसे ? अपने निर्विकार यथार्थ स्वरूप को सकल्प मे लो। सकल्प मात्र से अपनी सृष्टि की रचना करते हैं। हम तो अनन्तज्ञान के पिड हैं, मगर मोह से तृष्णा से रहते हैं, इस लिए इस असार ससार मे घूम रहे हैं। ये दस लक्षण प्रति वर्ष आते हैं। ये हमे ख्याल कराते हैं।

हे आत्मन्! तेरा क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम , तप, त्याग, अकिञ्चन व ब्रह्मचर्य जैसे पवित्र विकासरूप रहने का स्वभाव है। ऐसे ही स्वभाव मे रहे तो तेरे सारे सकट समाप्त हो जावेगे। इस स्वभाव को छोड़कर अन्य बातो में लगे तो ससार मे भटकना ही बना रहेगा। आज इस वर्ष के दस लक्षण का प्रथम दिन है, क्षमा का दिन है। क्षमा करो, माफ करो, अरे अपने प्रभु को ही क्षमा कर, जानने

वाले को ही माफ कर। अपने आपको मैंने कितना सताया है, अपने आप पर कितना गुस्सा किया है। अनन्तानुबन्धी यह कषाय अपने आप पर किए जा रहे है। अपने अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इत्यादि अपने आप पर किए जा रहे है। क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि उन्हे कहते है जो सम्यक्त्व नहीं होने देते। क्यो भैया, एक ऐसा मनुष्य है जिसके घर मे स्त्री व पुत्र दो प्राणी है, कमाते है पैसा आता है,किराया भी आता है, कमाना भी नहीं पडता है, किसी से गुस्सा होने का कोई काम नहीं है, वह तो पड़ा रहता है तो उसमे सदैव क्षमा बनी रहनी होगी। अरे इसमे क्षमा नहीं बनी रहती है अपने प्रभु की प्रभुता को भूल रहा है और अपने पर निर्दयी होकर अपनी प्रभु आत्मा मे विमुख हो रहा है। अपने प्रभु की प्रभुता को बिगाड रहे हो यह कितना बडा भारी क्रोध है।

नही रहे हैं । वीतराग के सारे पाप दूर हो जावेगे। मोह से तो दूर हो रहे है, क्योकि यह बोध तो स्पष्ट है कि जो समागम प्राप्त है वह कुछ रहने वाला नही है। जैसी दृष्टि वृत्ति बने, जैसा जिसने परिणाम किया उसके अनुसार ही जो कुछ भोगना होगा भोगेगा। क्षमा कर, अपने आपको क्षमा कर। परवस्तुवो के बारे मे अन्य जीवो के बारे मे राग, द्वेष,मोह, हठ इत्यादि न बनावे। राग होता है उसमे भी पछतावा होता है। द्वेष होते है तो अपने आपको दु खी कर लेते है। सो भाई अपने आप पर दया करो, अपने को क्षमा करो। अपने आपकी ही तरह जगत् के सब जीव हैं, अत सब जीवो पर क्षमा करो। क्रोध सब गुणो को जला देता है। क्रोध को अग्नि की उपमा दी जाती है। सो यह बड़ा भारी क्रोध सब गुणो को जला देता है। क्रोध को अग्नि की उपमा दी जाती है। सो यह बड़ा भारी क्रोध किया जा रहा है। हम अपने आपको सताते चले जा रहे है। दूसरो के प्रति नाना प्रकार के राग, द्वेष करते है तो यह बुरा ही तो करते हैं यह पर मे राग द्वेष क्या है? अपने आपको सताना है । अत अपने आपको सताते चले जा रहे है। सो भाई बढ़ते हो तो बढ़ते जाओ, करोड़पति या अरबपति हो जाओ, यह तो मामूली बात है। वह मोक्ष जाये तो जाने दो, जाओ, बडी जल्दी जाओ। उससे मेरी कोई हानि है क्या ? अरे जाओ परमात्मा हो जाओ या जाओ अपने आप मे रमो। दूसरो को बड़ा बना देने मे, दूसरो के बड़ा हो जाने से यहा कुछ कम नही हो जायगा। सबके प्रति कल्याणभाव हो, अपने आपके स्वरूप का परिचय हो क्षमा तभी पैदा होती है। सबने अपने-अपने यहा क्षमा की महिमा गायी है। कोई कहता है कि तुम्हारे गाल पर कोई तमाचा मारे तो कहो अच्छा लो यह दूसरा गाल भी तुम्हारे तमाचे के लिये हाजिर है। यह ईसाई लोगो के यहा कहा है। अरे तमाचा तो केवल मन बहलाने के लिए लगाया है तो लो और बदला लो। किसी ने किसी प्रकार कहा। मतलब क्षमा को धर्म सबने कहा।

हे आत्मन्! निज नाथ को पहिचाने बिना अधेरा है। तूने अपने यथार्थ स्वरूप का अनुभव नहीं किया, इसलिये तेरे मे क्षमा का अनुभव नहीं हुआ। यदि तेरे मे क्षमा नही है तो समझो तूने कुछ नहीं किया। इस वर्ष भी ये भादो मे दस लक्षण आए और भादो सुदी पचमी से आए। ऐसा हुआ क्यो? एकएक कल्प काल मे प्रलय काल हुआ करती है तो इस काल मे भी प्रलय हो चुकी थी। प्रलय मे वर्ष के अन्तिम ४९ दिन खोटे होते हैं। बहु वर्षा तूफान आदि चला करते है। सारे विश्व मे नहीं चलते। भरत व ऐरावत के आर्य खण्डो मे चला करते है। वे दिन आषाढ़ सुदी पूर्णिमा तक खत्म हो जाते हैं। फिर ४९ दिन तक अच्छी वर्षा होती है। उत्तम बृष्टि होती है, अमृत वृष्टि, दुग्ध वृष्टि होती है, जिससे कुछ शाति छा जाती है। वह ४९ दिन भादो सुदी चौथ को खत्म हो जाते हैं। इसके बाद मे आपके धर्म की वृत्ति सिर्फ होती है। जो कुछ होना था इन्हीं के ४९ दिनो मे हो गया। अब धर्म वृद्धि होती है। वह तिथि भादो सुदी पचमी को पड़ती है। यह दस लक्षण पर्व प्रतिवर्ष हमे धर्मभाव का स्मरण कराने आते है। हमको चाहिए कि अपनी शक्ति के अनुसार हम क्षमादि धर्मो को अपने मे उतारे। सबसे बड़ी चीज यही है कि अपने पर यथार्थ क्षमा कर लो तो समझो कि सब कुछ कर लिया। हमने अनन्तज्ञानमय होकर भी स्वभावदृष्टि से दूर रहकर इस ससार मे घूमकर अनन्त दु ख उठाए। अब मैं अपने स्वरूप को देखकर, अहकार से दूर रहकर अपने मे आप आनन्दमग्न होऊ।

ज्योतिर्मयो महानात्मा वञ्चितोऽक्षविषैरहम् ।
सम्बन्धमात्र रम्यैस्तु स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-५७।।

अर्थ– यह मैं आत्मा ज्ञानमय और महान् हू, परन्तु सम्बन्ध मात्र से रमणीक इन्द्रियों के विषयरूप विषके द्वारा मैं ठगाया गया, अब मैं स्वयं महान् अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊ।

यह आत्मा ज्ञानज्योतिस्वरूप है। उस स्वरूप को देखकर जगत के सभी पदार्थो मे दृष्टि डालते हुए जब निर्णय करते हो तो यह आत्मा सर्व मे महान् है। इसे समयसार कहा जाता है। समय का अर्थ है' स एकत्वेन अयते स्वगुणपर्यायान् गच्छति इति समय ।' जो अपने गुण पर्याय मे तन्मय हो रहे उसे समय कहते है। सभी पदार्थ समय है, वे अपने ही गुण पर्याय मे तन्मय हो रहे उसे समय कहते है। सभी पदार्थ समय है, वे अपने ही गुण पर्याय मे तन्मय है। तन्मय होना तो स्वभाव ही है। इस कारण सब पदार्थ समय कहलाते है। उनमे सार क्या है ? यह आत्म पदार्थो मे ऐसा अनुभव करना कि जगत् मे सब कुछ होता है, धर्म है, अधर्म है, पुद्गल है, काल है , आकाश है, पर एक जीव न हो, एक चैतन्यपदार्थ न हो तो क्या हो ? व्यवस्थाये न हो, कुछ चहल पहल न हो। इन सबका जानने वाला, इन सबमे व्याप्त यह जीव पदार्थ ही सबका व्यवस्थापक है। सबको जानने देखनेका ही इसका स्वभाव है। कितना भी दूर हो, इस आत्मामे कुछ सत् हो तो यह शक्ति है कि उन सबको जान लेता। सामने हो या पीठ पीछे हो लेकिन ज्ञान सबका रहेगा। कोई पदार्थ कही भी रहे। सामने हो तो क्या है? ज्ञान तो अमूर्ततत्व है। इसमे स्वभावसे ही ऐसी कला है कि जो कुछ भी हो इसके जाननेमे आ जाता है। जाननेका जिसका स्वभाव है वह मै आत्मा हूँ। उस आत्माका महत्व क्या होता है? इस आत्माके महत्व को बतानेका कोई दावा करे तो वह विद्वानोमे हसीका पात्र है। उस हमारी आत्माका महत्व और क्या हो सकता है ?

जगत्के जितने भी जीव है सब भगवान स्वरूप है। राम, विष्णु, ब्रह्म, हरि और बड़े राजा महाराजा जो महापुरुष हुए है, जितने भी है, वे सब क्या है? उस आत्माकी ज्योति ही तो है, उस आत्मास्वरूप ही तो है। निगोदसे लेकर सिद्ध तक जो जितने विकास है वे सब इस आत्मामे ही तो है। कितने प्रकारके भोग विलास रहे? यह आत्मा वह है जिसमे अनन्त गुण है। यो तो कहनेमे ४,६ आवेगे पर गुण अनन्त है। ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, योग, शक्ति आदि अनेक गुण है। उन गुणो मे से केवल एक गुणको ले तो इसमे अनन्त पर्याय है। उन पर्यायोमे से एक पर्यायको ले तो एक पर्यायमे अनेक अविभाग प्रतिच्छेद हैं। प्रत्येक अविभाग प्रतिच्छेदोमे अनन्त रस है ऐसे अनन्तरसका पिंड यह मै आत्मा हू। परन्तु जो अब इस आत्माकी दशा हो रही है वह इन्द्रियोके विषयोके वशीभूत होकर हो रही है। इन्द्रियो से इस आत्माका लेन-देन कुछ नहीं है। फिर भी इस जीवने स्वय भ्रम करके, अज्ञान बना करके अपने को ऐसा बना रखा है कि न इसकी इन्द्रियोमे शाति है, न विषयोमे शान्ति है। शाति तो परमात्मतत्व से होती है। अगर हम मान ले कि हमे शाति नहीं है तो हमे समझ आयेगी कि इन्द्रियोके विषयो ने ठग लिया है।

देखो तिर्यञ्चोमे हिरन है, हाथी है, मछली है, भवरा है, ये जीव एक एक विषयमे तन्मय होकर मरणको प्राप्त हो जाते है। पर इस मनुष्यकी दशा तो देखो यह तो सर्वविषयोके आधीन है। जो समागम पाया उसका भी उपयोग विषयोके लिए किया। इस मोही प्राणीने कभी धर्मका सेवन भी किया तो भोगके निमित्तसे किया। परिवार सुखसे रहे, मुकदमेमे विजय हो, पैसा मिलने आदिकी भावनाये धर्मसेवन से हो जाती हैं। धर्मपालन किया तो भोगके खातिर किया। केवल राग, अज्ञान, मोहमे आकर धर्मका पालन तो किया, मगर वह भोग के निमित्त हो रहा है। आत्माके लिए धर्म का पालन नही किया। आत्मा या स्वरूपमे ज्ञान दृष्टि रहना तो इस आत्माके स्वभाव का काम है। इसका काम बस प्रतिभास मात्र जो सत् है वह झलक गया, बस इतना मात्र काम है। इसके आगे आत्माका काम नहीं है। आत्मामे देखो तो समस्त प्रदेशो मे ज्ञान और आनन्दरस ही भरा है, पर उसमे रुचि नहीं है। जीवका उपयोग वाह्य की ओर है, पर उस उपयोगमे शाति न मिल सकेगी। अपने आपको देखो तो सब पदार्थो को त्यागकर ऐसी बुद्धि बन जाय कि यह तो मै चैतन्यमात्रस्वरूप ही हू तो आत्माको शाति प्राप्त हो सकती है। यदि इस बुद्धि से विलग हुए तो शातिका कुछ पता है क्या? विषयोमे पड़कर भोग किया, मरणके समय क्लेश और विकल्प होगे। यो विषयभोगका ही मार्ग लिय , यह तो शातिका मार्ग नहीं है। शाति अपने ही अन्दर अपने आपसे ही प्रकट होती है। ऐसा यह महानूआत्मा इन्द्रियो के विषयोके कारण ठगाया गया, ये इन्द्रिया तो सुन्दर लगती है पर आनन्दकी जगहपर क्लेश भोगना पडता है। औरकी बात छोड़कर अपनेमे आवो, क्योंकि बड़ी अवस्था हो जानेपर फिर पछतावा होता है। इतना समय व्यर्थ कर दिया, दुःखोमे, चिन्ताओमे समय गुजर गया। जो समय गुजरा वह समय वापस नही आता।

देखो उम्र १० वर्षकी हो गयी, ज्ञानकी वृद्धि हुई, वाह्य सिलसिले चलने लगे। युवावस्था आ गई। युवावस्थामे भी ज्ञान नही मिला। वह अवस्था भी दुःखोमे ही बीत गई। अब वृद्धावस्था आ गई तो पछतावा करते हैं। अरे अब तो सही परिणाम बनाओ, अभी काम बन जायगा। रागमे, मोहमे, विषयोमे आत्माको शाति नही प्राप्त हो सकती है। जगत्के कौनसे जीव तुम्हारे है जो राग करते हो। केवल मायामय मूर्ति ही तो देखते हो कि आत्मा भी देखते हो। अच्छा, तुम राग किससे करते हो? क्या शरीरसे, इस अशुचि पिडसे? इससे तो करते नहीं। तव क्या आत्मासे करते हो? आत्मा तो अमूर्त चैतन्यमात्र है। जैसा एक चेतन है तैसे सब चेतन हैं। अतः आत्मस्वरूपके जाननेपर व्यक्तिभेद तक भी नही रहता, फिर राग ही क्या करोगे? यही मायामय मूर्ति ही तो देखते हो। वह कुछ प्रीतिकी चीज है क्या? आत्मासे प्रीति करना है तो आत्माके स्वरूपको देख। वह आत्मा एक ज्ञान भाव मात्र है। जाननमात्र, आकाशकी तरह अमूर्त किन्तु एक ज्ञानगुणको लिए हुए है। एक विलक्षण पदार्थ है। वह तो वह है और ऐसे ही सव है। स्वभाव और आत्मामे भेद ही नजर नहीं आता। मुझ ज्ञानमात्रआत्मतत्वको देखता ही कौन है? अरे देखनेसे राग नहीं आ सकता है। वह ज्ञातादृष्टा ही रह सकता है। उस आत्मासे कौन प्रीति करता है? ये जितने भी वाह्यपदार्थ हैं वे सव बिल्कुल•असार हैं। इनमे हितका नाम ही नहीं। यदि पर पदार्थो से अपना हित मानते हैं तो समझें कि हम भ्रममें पडकर उल्टे मार्गमे चल रहे हैं।

अरे इन विषयोके मार्ग को छोड़ो और अपने स्वरूपमार्गमे आवो, जिसमे उस सहज स्वरूपके ज्ञानानन्दमय आत्मतत्वके दर्शन होगे। वह तो प्रभु पवित्र है। जैसा प्रभुका आनन्द है वैसा ही आनन्द उसका है। मै अपने स्वरूपको देखू बाकी सब व्यर्थ है। जगत्का कौनसा ऐसा तत्व है जो हितकर हो? फिर कौनसी बातमे अहकार हो? आज दस लक्षणो का दूसरा दिन है और मार्दव धर्म है जिसका अर्थ है कोमलता, नम्रता ऐसी विनम्रता हो जो खुद खुद मे समा गयी हो, खुद खुदमे ही विलीन हो गयी हो। ऐसे आत्मानुभवका रस पी लो। यही शुद्ध आत्महितका मार्ग है। जगत्के अन्य पदार्थो को तू न मान। कौनसे पदार्थ तेरे है? कोई नही। प्रत्येक पदार्थ अपने अपने ही सत् है और फिर विनाशीक है। नष्ट हो जाने वाले भी है। कौन सी ऐसी वस्तु है जो सदा रहती हो? भगवान् स्वामी समन्तभद्रने कहा है–

स्वास्थ्य महात्थन्तिकमेव पुंसां स्वार्थो न भोगः परिभगुरात्मा।
तृषोनुषगान्न च तापशन्तिरितीदमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः।।

कहते है कि जीवका आत्यन्तिक स्वास्थ्य क्या है? अथवा उसका वास्तविक स्वार्थ क्या है? आत्मप्रयोजन क्या है? सदाके लिए स्वस्थ हो जाना यही जीवका परम स्वार्थ है, परम हित है। स्वास्थ्य कहते किसे है? स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः, स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यम्।" अपने आपमे ठहरे रहनेकी बात को कहते है स्वास्थ्य। सदाके लिए अपने आपमे रम जावो, ठहर जावो– ऐसा जो स्वास्थ्य है वह उत्कृष्ट स्वार्थ है। यह भोगविलास स्वार्थ नही, वह तो क्षणिक है। भोगकी प्रीतिमे केवल खोया हुआ है। देखो मोही जन जो कर रहे है वह सब कल्पनाके समय सस्ते लगते है पर ये भोग ये विषय बड़े महगे पड़ेगे। हाथ पैर मिलते है, मन मिलता है, बहुतोमे हुकूमत चलाई जा सकती है, बहुतोसे बात बनाई जा सकती है। इस प्रकारके विचारो वाले प्राणीका स्वरूप या सर्वस्व खोया हुआ रहता है। वह नरक वाली योनियोमे भ्रमण करता रहता है। जन्म मरणके चक्रमे पड़कर वह कीड़े मकौड़े हो जायेगा और उसे सदा दुःख ही दुःख होगे। देखो तो गजबकी बात हमारी यह विविध सृष्टि इतने जीवोके रूपमे कैसे बन गई? यह सब प्रकृति की उपाधि मे चेतन प्रभुकी अवस्था है। परमार्थसे तो मै एक शुद्ध आत्मतत्व हूॅ। यदि वाह्यपदार्थो मे दृष्टि लगी है तो पतन है और यदि स्वमे दृष्टि लगी तो उत्थान है। जो शुद्ध आत्मतत्व, वीतराग सर्वज्ञ निर्दोष भगवान आत्मा अरहत एव सिद्ध है और ऐसे शुद्ध बननेके प्रयत्नमे जो लगा रहता है वह साधु है। ऐसा ज्ञानमय, चारित्रमय, चरित्रमात्र मै सत् हू। अपने आपमे तन्मय हुआ ज्ञानानन्द आदि त्रिकालिक शक्तियोमात्र जो जो अनत विलासको लिए रहती है। जो अनेक प्रकारके पर्यायोको धारण करता है फिर भी वहीका वही है। वह चैतन्यप्रभु मै हू। इसका ही पूर्ण विकास अरहन्त व सिद्ध भगवान् है। ऐसे शुद्ध भगवान् की उपासना करे तो यह हमारे उत्थानकी बात है। शुद्ध के आश्रयसे शुद्ध होता हूॅ और अशुद्ध के आश्रय से अशुद्ध होता हूॅ। वर्तमानमे तो मै शुद्ध नही, भगवान् शुद्ध हैं तो किसके लक्ष्यसे मै शुद्ध बनू? स्वरूपको लक्ष्यमे लू तो मै शुद्ध हो सकता हूँ शुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा शुद्ध हो गयी और अशुद्धका लक्ष्य करनेसे आत्मा अशुद्ध हो गयी। अब क्या पसन्द करोगे कि आपकी आत्मा अशुद्ध हो कि शुद्ध हो? अब देखो शुद्ध आत्मा क्या है? जिसकी आत्मा रागी है, द्वेषी है, जो विषय कषायोमे

भरा हुआ है, सो घूम रहा है ऐसी आत्माको अशुद्ध कहेगे। उसके लक्ष्यसे शुद्धि नहीं होगी तथा भगवान् परमात्मा है। परका लक्ष्य परमार्थसे होता नहीं। उनके ध्यानसे, उनके आश्रयसे आत्मा शुद्ध नहीं हो सकती है। परमार्थ से देखो तो इस आत्मा के लिये यह महान् शुद्ध द्रव्य कहलाता है। कहते है कि मै प्रत्येकसे न्यारा अपने आपमे तन्मय हूँ इस आत्माके अतिरिक्त जितने भी पदार्थ है उन पदार्थो पर मेरा अधिकार नहीं है। मैं ही वह उपास्य हूँ, मै ही परमात्मतत्व हूँ– इस प्रकारका तू मनमे विचार कर। तू उन वाह्य पदार्थो का ध्यान न कर। तू उनको ज्ञानका विषय न बनाकर अपने ही ज्ञानका परिणमन कर अर्थात् अपने ही भावो का ध्यान बनाकर तू परमात्मोपयोगी बन। परद्रव्योमे ध्यान देकर कोई परमात्मा नहीं बन सकता है। सो एक तो यह बात है। दूसरी बात यह है कि वह अपने शुद्ध परिणमनको छोड़कर लुटेरे घसीटो का हाथ पकड़ मोक्षमे ले जाय, ऐसा हो नही सकता। अपने आपको ही देखो कि मै आत्मा शुद्ध हू, सबसे निराला हूँ। अपने शुद्ध आत्मतत्वकी दृष्टिसे तू पार होगा। तू परमे दृष्टि लगाकर माया, मोह आदि मे पिसा जा रहा है। तो ऐसा करनेसे क्या हम शुद्ध बन जायेगे, नही। हम आत्मा की श्रद्धा करके शुद्ध बन सकेगे और आत्माकी श्रद्धा न कर सके तो शुद्ध न हो सकेगे। तब फिर शुद्ध होनेका उपाय क्या है? इस आत्माका जो शुद्ध सहजस्वरूप है, शुद्ध स्वभाव है, वह स्वतः सिद्ध आत्मतत्व है। मै शुद्ध आत्मतत्वकी श्रद्धा करनेसे शुद्ध हो सकता हूँ। हमारे इस कूड़े कचरे शरीरके भीतर जो चैतन्यस्वरूप है, जो ज्ञानमे आ रहा है उस शुद्ध आत्मतत्वको लक्ष्यमे ले तो यह गदगी, कूड़ा करकट नष्ट हो जाता है। हम अपनी आत्मा तथा ज्ञानदृष्टि के बहुत भीतर चलकर शुद्धतत्वको जान सकते है। वह कोई एक पिड जैसी चीज नहीं, बल्कि ज्ञानको लिए हुए है। ऐसा यदि अपना ध्यान नही करेगा तो जगत्मे तेरा कोई शरण नहीं है। बाहरमे जो शरण माना है वह तेरे कोई नहीं है। वे सब स्वार्थी है, अपने अपने विषयोमे वे लगे हुए हैं। वे सब अपने ही प्रयोजनमे लगे हुए हैं, वे मुझसे बात ही नहीं करते है, वे मेरा कुछ नहीं करते हैं। तो हम किसकी शरणमे जावे? अरे वह तेरे लिए सकट हैं उनसे तुझे शरण नहीं मिलेगी। तेरी शरण तुझे तेरी प्रभु आत्मामे ही मिलेगी। मै अन्तर्दृष्टि करके देखू तो वह ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानस्वभाव है। शरण तो सही मे वह हमारा प्रभु है, भगवान् है, परमात्मा है, वही हमारा रक्षक है। तूने परको निज समझ लिया तो वह तेरे नहीं हो गए। वह तेरे हो नहीं सकते हैं। अन्यमे दृष्टि करनेसे हम बहुत गलत रास्तेमे वहे चले जा रहे है। तो लौटना भी हमे उतना ही पड़ेगा। जैसे यदि हमे कलकत्ता जाना है और हम पश्चिममे चले जावे तो हमे वहासे लौटना ही पड़ेगा। इसी प्रकार यदि हमारी दृष्टि परमे है तो हमे उतना ही उन सबसे निवृत्त होकर निजस्वरूपकी ओर दृष्टिको लाना पड़ेगा। यदि हम बाहरी तत्वोको उपयोगमे लाने लगें, अपने परिवार तथा मित्र जनोको सर्वस्व मानें तो मुझे मेरा प्रभु नहीं मिल सकेगा। यदि हम विषयभोगोमें आसक्ति न करे, अन्य तत्वोंको अपने उपयोगमे न ले कुटुम्ब,परिवार तथा मित्र जनों को अपना सर्वस्व न समझे तव हमारा प्रभु हमे मिलेगा। जैसे कोई मुसाफिर भूलकर ५०० मील आगे चला गया हो तो उसे उतना ही तो लौटना पड़ेगा सही मार्ग पर आनेके लिए। इसी प्रकार इस जीवको जो अपने आपको भूलकर परमे दृष्टि लगाए हुए है उसे भी सर्व परसे निवृत्त होकर अपने निजस्वरूपको

पहिचानना होगा। देखो, अपने धन, वैभव, कुटुम्ब, परिवारसे सबको प्रीति है पर अपने ज्ञानस्वरूपसे प्रीति नही है। ज्ञानस्वरूपमे प्रीति करनेमे तो कही रुकावट नही है। तू अपने निजस्वरूपसे प्रीति कर।

एक दुकान मालिक यहा बैठा है। कल्पना कर ले कि मैं अपनी दुकानमे गया, दुकानकी तिजोरी खोली, तिजोरीमे सन्दूक है, सन्दूकमे डिब्बा है और उस डिब्बेमे कपड़ेमे बधा हुआ हीरा रक्खा है, उसमे अगूठी रक्खी है तो वहा तक ज्ञानके पहुचने मे कमरा कोई बाधा नहीं कर सकता है। तिजोरी वगैरह कोई बाधा नहीं डालते । अरे तू अपने ज्ञानकी रुकावट न कर। ज्ञानकी रुकावट तो विषयकषायसे होती है। ज्ञानके आ जानेसे बाधाये नहीं फैलती है भाई इन विषयो मे पड़ करके ज्ञानको खोए हुए हो। इन विषयोमे पड़नेसे तेरा कोई रक्षक नही। तेरी रक्षा करने वाला रुकावट करने वाला तू ही है। तेरे मे ज्ञान है, जरा अपने अन्तरमे दृष्टि तो दो। यथार्थ विकासो के बिना तेरे को बड़ा कौन कर सकता है? इन विषयोमे यह दम नही कि तुझे बडा बना दे। हे आत्मन्! तेरी रुकावट करने वाला ही तू है। तेरी ही सैन पाकर कर्म व विषय प्रबल होते है। जैसे मालिक के साथ कुत्ता हो। यद्यपि कुत्तेमे कुछ दम नहीं, परन्तु मालिकके छूछू करने पर कुत्ता बलिष्ट बन जाता है। वह नहीं देखता है। कि यह युवक पुरुष है, इससे न जीत सकूगा, पर वह आक्रमण कर देता है। इसी प्रकार आत्माके विषय कषायकी सैन पाकर ये इन्द्रिय विषय दुःखदाई हो जाते है। इस आत्माको जब निजकी पहिचान मिल जाती है तो यह वाह्यकी इच्छा नहीं करता है और अपने निजस्वरूपकी उपासना करता है। इस निजस्वरूपकी पहिचानसे ही आत्मा बलिष्ठ हो जाती है।

अतः यदि हम अपने निजस्वरूप पर दृष्टि दे तो हम सुखी हो सकते हैं। यदि मैं निजस्वरूपमें दृष्टि न दे सका, वाह्यपदार्थो के ही सयोग मे रहा तो जीवन भर ही उसे दुःखी रखता हूँ। यही पहिलेसे सोच ले। किसीमे ऐसी सामर्थ्य नही जो हमे सुखी कर दे। परको जिसने अपना इष्ट माना है वे दुःखी होते है। यदि वह विषयोमे आसक्त है तो उससे दु ख होते है। यदि विषयो मे आसक्त रहे तो विषयों मे कोई ताकत नहीं कि उसे सुखी कर दे। सर्वथा सुखी होना तथा दुःखी होना अपने ऊपर ही आधारित है। दूसरोके सुखी करनेमे सुखी नही हो सकता और दूसरोके दुःखी करनेसे दुःखी नहीं हो सकता। मै दूसरोके दुःखी करनेसे दुःखी होऊ तो इसका अर्थ है कि मेरी आत्मा मे वल बुद्धि नहीं है। ऐसी कल्पना करने वाली आत्माओको पराधीन आत्माये कहते है। हम वाह्यमे दृष्टि न करे तो हम पराधीन नहीं होगे। मुझे पराधीन होनेसे ही दुःख होता है अर्थात् अपनी दृष्टि वाह्यमे लगा दू तो मुझे दुःख होता है। वाह्यमें मेरा कुछ नही है। मेरेको वाह्यसे कुछ मिलता भी नहीं है। पर मैंने मन वना लिया है कि पर मेरे सव कुछ है, उनसे हमे बहुत कुछ मिलता है। यही कारण है कि दुःख होते हैं। अरे वाह्यपदार्थोसे तुझे गौरव के लायक कुछ मिलता है? शरीर है तो वह भी असार, धन-वैभव है वह भी असार है। वह किसीके लिए भी सार नही हो सकेगा।

तू तो अकेला है, ज्ञानानन्दमय है। ज्ञान और आनन्दके परिगमन कर रहा है। वाहर कुछ नहीं है। तू अपने पर कृपादृष्टि रखे तो आध्यात्मिक चक्रवर्ती वन जाय। तू वाह्यसे अपनी बुद्धि छोड़ दे, तू

अपने वाह्य उपयोगोको छोड़ दे, और अपने आन्तरिक उपयोगोमे आ। यदि तू अपने आन्तरिक उपयोगोमे आया तो सुख होगे और यदि वाह्यमे तूने अपना उपयोग बनाया तो तुझे दुःख होगे और तुझे पागल वनना पडेगा। भाई, देखो कितनी पवित्र यह आत्मा है। यह आत्मा निरन्तर विषयोसे भी ठगाई गयी, फिर भी यह आत्मा अपने आपमे स्वभावसे टगी नहीं गयी। तू अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव तो कर तो तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जायेगे। यदि तू अपने आपका अनुभव न कर सका तो तू ठगाया जायेगा। तुझे क्लेश होगे। तूने यह कल्पनाये बना रखी है कि विषयोसे सुख है इसलिए तू उन विषयोमे ही समय लगा रहा है। हाय, तू विषयोमे पड़ रहा है। अरे विषय ही तुम्हे दुःखी बना देते है। अगर मोह, राग, माया बने तो ये भी विषय है। इनसे भी तू पराधीन हो जायगा। तू पराधीन मत बन। यदि ऐसी दृष्टि वन गई कि यह मेरा है, यह पराया है– इससे अहकार प्रतीत होता है। अरे ऐसा कुछ नहीं है। मै तो सवसे न्यारा हूँ, यदि ऐसा उपयोग बन जायगा तो तेरा उत्थान होगा और यदि ऐसा उपयोग न बन सका तो तेरा पतन होगा और ससारमे रुलना पडेगा।

यथार्थ बात तो यह है कि सुख दुःख अपनी समझपर ही निर्भर है। तू अपनी आत्मामे ही विश्राम कर। वहीं तुझे शरण मिलेगी और यदि तूने अपनी आत्मामे विश्राम न किया तो ससारमे भटकना पड़ेगा, तुझे सहारा कोई नही देगा। यहा तक कि मरणके समय भी तुम्हे सहारा नही मिलेगा। तेरा शरीर भी तुझसे मिला नहीं रहेगा। परिवारके लोगोको खूब खिलाया,पिलाया, अपने सब सुख दुःख भूलकर परिवारके लोगोकी सेवा भी की पर अतमे कोई किसीका नही हुआ । तेरा साथी तू ही है और कोई दूसरा नहीं है। चक्रवर्तियोके साथ भी कोई नहीं रहेगा। ये जो वाह्य पदार्थ है वे भी हमारे नहीं होगे। यह जो ससारका नृत्य है वह आप निजके स्वरूप की भूलसे ही होता है। अतः वाह्यदृष्टिको छोडकर अब अपने आत्मस्वरूपमे दृष्टि दू और अपनेमे अपनेलिए अपने आप सुखी होऊ।

पूर्णदृग्ज्ञानसत्सौख्यी सिद्धात्मा देशतोऽप्यहम्।
पूर्णश्च भवितु शक्यः स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-५८।।

अर्थ– सिद्धात्मा पूर्णदर्शन ज्ञानशक्ति सुखस्वरूप है मैं भी एक देशसे शक्तिकी अपेक्षा दर्शन ज्ञानशक्ति सुख दशा रूप हूँ और पूर्ण होनेके लिये समर्थ हूँ अतः अपनेमें अपनेलिये स्वय सुखी होऊं।

सिद्ध, आत्मा पूर्णदर्शन, पूर्णज्ञान, पूर्णसुख और पूर्ण शक्तियोसे सम्पन्न है। यह मै आत्मा एक देश दर्शन, एक देश ज्ञान, एक देश सुख और एक देश शक्तिसे युक्त हूँ। किन्तु मै वैसा ही पूर्ण, वैसा ही सर्वज्ञ होने योग्य हूँ। मेरी और प्रभुकी जाति एक है। हम और वह सिद्ध वस्तुसे एक हैं। मै चैतन्यमात्र हूँ। जैसा सर्वोत्कृष्ट ज्ञानानन्दघन प्रभु है वैसा मैं हूँ। केवल जरा आविर्भाव तिरोभावका अन्तर है। यह अन्तर कैसे किया? हमने अपने अपराधसे किया। निमित्त कुछ भी हो, मगर अपराध हम ही करते है। और उसके ही करनेसे मुझमे हैरानी होती है। यह तो स्वभावसे ही असीम विकास वाला है। इसका अपराध मैं ही तो करता हूँ, अपराधका कारण मै हूँ, किन्तु प्रभु पूर्ण है इसका कारण नहीं। जैसे कभी वच्चोको मेढकका खिलौना दिया जाता है। मेढकका खिलौना टीनका वना हुआ है। उसमे पत्ती नीचे लगी रहती

है और पासमे चिपड़ा लगा रहता है जिसमे वह चिपक जाता है। मेढकको कभी पत्तीसे चिपकाकर रख देते है तो वह छूटकर छिटक छिटककर उसी जगहपर उछलता है। उसके उछलने के मायने यह नहीं कि उसका कुछ यत्न किया जाता है। वह छूटते स्वभावसे उछलता है। उसमे कुछ करना नहीं पड़ता है। एक किवाड अपने आप लग जाते है। किवाड़ खोलनेमे तो यत्न करना पड़ता है, पर लगाने मे कुछ नहीं करना पड़ता है, छोडा और लग गए। जो जैसी स्थितिका है उसके लिए यत्न नहीं करना पड़ता है, क्योकि उसमे कारण है। उसके खिलाफ बात है तो यत्न करना पड़ता है, क्योकि उसमे भी कारण है। हमारे ज्ञान कम है वह इसका कारण हैं और भगवानका ज्ञान सारे ससारमे विकसित है उसका कोई कारण नही है। वह स्वभावसे ही विकसित है। वह बीचमे नहीं पैदा हुआ है। अभी अल्पसुख है, फिर दुःख होगे, फिर सुख होगे। इसमे कारण चलता है, पर आत्मीय आनन्द है तो इसमे कोई कारण नहीं है।

आत्माका स्वरूप ही है कि वह आनन्दमे रहा करे। भगवान पूर्ण ज्ञानमय है, पूर्ण दृष्टिमय है, पूर्ण आनन्दी है, पूर्ण शक्तिवान् है। इस शुद्ध विकासके बने रहनेका कोई कारण नहीं है। क्यो कारण नहीं है, क्योकि वह स्वभावतः ही अपने आप जैसा स्वरूप है वैसे वे है। सर्वत्र ही देख लो किसीका ज्ञान बडा है और किसीका छोटा है। इस ज्ञानकी आकुलताके कारण है। यह मोटा दृष्टान्त दे रहा हूँ। जलको अग्नि या धूप मे रख दे तो उष्ण हो जायगा, उसका कुछ कारण है। आत्मा शात रहे इसका कारण नहीं है। आत्मा सर्वज्ञ है, परमानन्दमय है तो इस आत्माकी क्या तारीफ है? क्या कमाल है? अरे उसका तो यह स्वभाव ही है। तारीफ तो उन ससारमे रहनेवालोकी है जो तिर्यञ्च बन जाते हैं, कीडे मकोड़े बन जाते है। भगवान्‌की हालतमे क्या कमाल है, वह तो स्वय ही शुद्ध है। कमाल तो इनमें है जो कैसे थे और पेड़ हो गए पत्तिया लग गयी वाह वाह आत्मा कमाल तो तेरा है। भगवान तो एक पदार्थ है। शुद्ध है, अकेला रह रहा है। भगवानका जो अन्तिम शरीरके प्रमाणका आकार रहता है उसकी वजह यह है कि पहले जैसे शुरूमे थे, जब तक वह शरीरमे रह आए तब तक कर्मों का उदय कारण था। जैसा कर्मोदय था तैसा उनको शरीर मिला, तैसा ही आत्माका प्रसार हुआ । अन्तिम समयमें जो मिला उस शरीर मे आत्मा थी । पहले तो यह हुआ कि आत्मा फैलती है तो कर्मके कारणसे आत्मा सिकुड़ता है तो कर्मके कारणसे, जैसा कर्मका उदय है उस ही प्रकार का आत्मा सिकुडता और फैलता है। अब अतमें शरीर भी चला गया तो जब शरीर छूटा तो अब कोई प्रस्तावको रख देवे कि इस आत्मामे क्या होना चाहिए? जिस शरीरसे मोक्ष गए उस शरीरसे आत्माको फैलाकर बड़ा बनाना चाहिए या छोटा बनाना चाहिए। यदि बडा बनाना चाहते हो तो क्यो बडा बनाओगे और यदि छोटा बनाना चाहते हो तो क्यो छोटा बनावोगे? यह बडा और छोटा तो कर्मोदयका कारण हुआ करता है।

है कि यह प्रभु क्या है? हम जो हैं सो ही रह रहे हैं। जैसा स्वरूप है तैसा ही सिद्धि का विकास हो गया। अव प्रभुमे रागबाजी नहीं चल रही है। क्षणमे कुछ, क्षणमे कुछ, लीलाये ससारी प्राणी रचा करता है। पर मालूम पड़ता है कि यह प्रभु प्रभुताकी ऐसी लीला करके थक गया है, इसलिए प्रभुने लीलाये वद कर दी है।

यहा देखो– वाह रे ससारी प्राणी! तेरा तो थकनेका काम ही नहीं है। तू तो अनेक कल्पनाये करता है, समागम करता व सयोग वियोगके विकल्प तथा अनेक कर्मण्यताये करता है। आजसे ५० वर्ष पूर्व तू किस योनि मे रहा होगा? वहा क्या कोई कल्पनाये थीं कि यह घर द्वार मेरा है, यह धन वैभव कुटुम्ब, परिवार मेरा है और अब यहा क्या कल्पनाये करने लगा? जब मै यहासे जाऊगा तो यह कल्पनाये रहेगी क्या? कितना श्रम कर यह ससारी कार्य कर रहा है। तू कितना कर्मठ बन रहा है। विकल्प, निरन्तर विकल्प, यह छोड़ा वह छोड़ा और यह क्या है? यह सब सासारिक आपदाये है। जैसे किसी बडे सग्राममे बडे सिपाही को चैन नहीं, छिप-छिपकर खेल खेलकर गोली चलाये, दौड़े भागे। इस प्रकारसे दुनियाके लोग श्रम कर रहे हैं। इस तरहसे यह प्रभु इस ससारमे नाना खेल कर रहा है। आख मिच गई कि आगे उसका कुछ पता नही। आगे गया और ढगका बन गया और आगे बढ़ा तो कल्पनाये करके और ढगका वन गया। यो कल्पनाये करके दुःखी होता है। कोई भी इसका कुछ हो तो बतला दो। क्या है इसका, मगर कल्पनाये इतनी बड़ी बना लेता है। सो हे प्रभु! आपने भी यह सब भारी काम किया। बड़ी कर्मठतासे ८४ लाख योनियोमे चक्कर लगाये, अनेक लीलाये खेली। अब मालूम होता है कि उन कलाओ से तू थक गया है और थक करके ही उन अपनी लीलाओ को छोड़ दिया है।

हे प्रभु! तुम शुद्ध पदार्थ हो, शुद्ध आत्मा हो। अरे अशुद्धि को मेटो तो शुद्ध हो जावो। अशुद्धि मेटी तो उसका परिणमन अच्छा हुआ। क्या गजब हो गया, हा महान् जरूर हो। यहा पर क्या है ? स्त्री हो गई बाल बच्चे हो गए। अरे हो गए तो इनसे तुम्हे क्या मिला ? लाखो और करोड़ो रुपयो का धन उनके लिए जोड़कर भर दिया। अरे वह सव साथ मे जाता नहीं, फिर क्यो इतना माया मोह के चक्कर मे फस रहे हो। इस तरह से यह प्राणी माया मोह मे रहकर ही जीता है। अपने आत्मस्वरूप को भूल जाता है और बरवाद हो जाता है। इन वाह्यपदार्थो मे कहा सुख है ? सब वाह्यपदार्थो को ही देख रहे हैं, पर मे ही सुख की बाते सोच रहे हैं और यह वाह्य सब झझट हैं। अपनी दृष्टि को ठीक-ठीक अपने ही स्वरूप मे डालो तो झझट तुम्हे नहीं मालूम पडेगे। प्रभु पूज्य अवस्था तो यह तुम्हारी ही है। इस प्रभु ने जैसा आनन्द किया है वैसा ही आनन्द इस मेरी प्रभु आत्मा मे भरा है। बस अशुद्धि मेटने लगे, मिल जायगा। जैसे पैर के आगे पैर रखकर चले तो हम मजिल पर क्यो नहीं पहुचेगे। चलने से ही हम आगे पहुचेगे और वैठने से हम वैठे ही रहेगे। यदि तूने बैठने का ख्याल किया तो बैठा ही रहेगा और यदि चलने का ख्याल किया तो आगे वढ जायगा। अपने भगवान के पास कैसे नहीं पहुचोगे? अरे पैर भी थक जावे तो सोचो कि अभी मेरे पास ही तो है। यदि थक भी जावोगे तो हिम्मत तो वनी रहेगी। इस तरह अशुद्धि को मिटा दो, अभी यह काम वन जायगा। मोक्ष मे पहुचने के लिए कोशिश करो।

परमार्थ से देखो तो उस मे रुचि जायगी। जैसे कोई काम करता है, हलुवा बनाना सीख रहा है तो उसमे उसकी रुचि होती है, उत्साह होता है। इसी तरह शुद्ध हो रहा हो, आनन्द हो रहा हो, दर्शन हो रहे हो, उस अपने के निकट पहुच रहा हो तो उसमे उस की रुचि बढ़ेगी, उसका उत्साह बढ़ेगा।

कोई घटना ऐसी आ जाय कि जिससे हजार पाच सौ मिलते हो, मगर उसमे झूठ या अन्याय करने की नौबत हो, उस समय सच्चा निर्णय करने के लिए दिल बना रहे। झूठ न बोलो, सच्चाई मे दिल बना रहे और यह देखो कि हजार पाच सौ जाते है तो जाने दो। उन हजार पाच सौ जाने से भी बड़ा आनन्द मानो। और यह बात मानो कि मुझे बड़ी प्रसन्नता है। उसने अपने से अशुद्धि को मिटाया और जो शुद्ध है उससे ही प्रसन्न हुआ। तो भैयासतोष की बात यही है कि अपनी अशुद्धि को मिटाओ और शुद्धि को पहिचानो। इसी प्रकार से अशुद्धियो को बाहर करते करते वह मजिल आ जायगी और ज्यो-ज्यो मजिल निकट आती जायगी त्यो-त्यो सतोष बढ़ता चला जायगा, आनन्द का अनुभव होगा।

एक मुसाफिर था। वह पैदल यात्रा करते हुए जगल मे रास्ता भूल गया। शाम का समय था। दो तीन मील जाकर भूल गया था और पगडडियो से चल रहा था। एक घण्टा हो जाने के बाद वह सोचता है कि यदि मैं और आगे बढ़ता ही चला गया तो फिर मुझे भूल निकालने का मौका भी न आयेगा। ऐसा सोचकर वह रुक गया और वही रात व्यतीत करने का निश्चय किया। पर चिता लगी हुई है कि मै कितना भूल गया ? अब मुझे कहा से जाना है ? कहा रास्ता मिलेगा ? इसी भूल मे पड़ा हुआ वह देखता है कि क्षणिक बिजली चमकी। उसने देखा कि सामने सड़क है जिससे मुझे जाना होगा। अब वह नि शक हो गया। ऐसा नि शक होकर वह सोचता है कि मै रास्ता भूल तो गया हूँ, पर इतनी ही भूल मे पड़ा हूँ। यह भूल यो ही मिट जाया करती है तो मिट जायगी। सवेरा हुआ तो सामने देखा कि थोड़ी दूर पर सड़क है, सड़क पर लोग चल रहे है। वह भटक गया था, पर सतोष किए हुए था। इसी प्रकार यदि ज्ञानी विषयो से भटक कर अपने ज्ञान को भूल गया तो कुछ भी विवेक हो तो वह भूल को न बढ़ायेगा, रुक जायेगा। कभी उसका ज्ञान सच्चाई को लेकर आता है तो वह समझ जाता है कि यह आत्मदर्शन का मार्ग है, किस पर हमे चलना है ? देखो भूल का मिटाना व ज्ञान का होना दोनो एक साथ होते है। इसमे ज्ञान का तो उत्पाद है और अज्ञान का व्यय है। यह सब धर्म पालन एक इस आत्मा पर ही निर्भर है। क्या आनन्द भी आयेगा ? हा, इस आत्मा मे आनन्द भी आयेगा। आनन्द तो आत्मा का स्वभाव ही है।

जब भूले हुए पथिक को ज्ञान होता है तभी यह उत्साह बढ़ता है कि अब मै अपनी भूल से उऋण हो रहा हूँ। अब मैं अपने सही मार्ग मे जा रहा हूँ। अब वह ऐसे उत्साह से चलता है कि जो पगडडिया सड़क से मिला देगी उन्हीं पगडडियो से समझकर चलता है। जब सड़क पर वह मुसाफिर पहुच जाता है तो उसे बड़ा सतोष होता है। अब तो करने योग्य जो काम था कर लिया, अब आनन्द मे बढ़ता चला। जहा जाना चाहता था उस स्थान पर पहुच जाता है। पहुचकर वह विश्राम कर लेता है। अब बिल्कुल निश्चित हो गया। इसी तरह जगत् का प्राणी अज्ञान के अधेरे मे विषयकषायो की गलियों में

भटक गया, वही अपने को भूल गया है। इस भूल मे बढने से बढ़कर भूल हो जाती है तो वह सोचता है कि इस भूल से बढ़ो मत, नही तो जितनी भूल बढ़ जायगी उतना ही वापिस होने मे कठिनाई पड़ेगी। विषय कषायो मे मत फसो, तुम निर्णय कर शाति का मार्ग ढूढो, बस इसी से प्रेम करना भक्ति होता है। यदि तूने विषयकषायो से अपने को दूर रखा और शाति के मार्ग का पता लगाया तो तुझे सतोष आयेगा, भक्ति आयेगी। तो इन साधनो के बीच रहते हुए कभी अन्तर बिजली चमकती है तो निर्मल अवस्था का अवलोकन होता है और केवल ज्ञानमात्र स्वरूप का निर्णय करता है। शाति का मार्ग यही है। इसी तरह के मार्ग से जो आप चलना चाहे तो मोह और विषयो मे जी लगा रहे तो उसको भूलकर सही मार्ग का पता लगाओ। जब उस सही मार्ग का पता लगा लोगे तब तुम्हे शाति प्राप्त होगी, सतोष प्राप्त होगा। जब तू अपनी भूलो मे पड जाता है, तू विषयो मे पड़ जाता है तो सतोष नहीं प्राप्त होता है। यदि अपने को भुलावे मे डाल लिया तो शाति का असर उसके दिल मे नही होगा। यदि वह ज्ञान से अच्छे मार्ग मे आ जाता है तो वह सतोष प्राप्त करता है क्योकि उसे भूल का पता लग गया। यह तो सब भाववस्तु है। इनसे मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह कल्पना बना लेने से कि यह परपदार्थ मेरे हैं उसकी शाति खत्म हो जाती है, मोक्षमार्ग से हटता रहता है और ससार के जन्ममरण के चक्र मे फसा रहता है। उस मोही प्राणी की यही स्थिति बनी रहती है। परन्तु यह मेरे नही है, ऐसी कल्पना जो बना लेता है उसे सतोष प्राप्त होता है और उसे जन्ममरण के चक्कर से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पानी मे क्रमल का पत्ता पड़ा हुआ है, पानी से वह पत्ता बिल्कुल भिन्न है। पानी का पत्ते पर कुछ असर नही। पानी गला है या सडा। पत्ता तो सूखा ही सूखा होता है। निकालकर देख लो सूखा ही निकलेगा। यह गृहस्थी प्राणी भी घर मे रहते हुए भी सुखी रहता है। कोई उसका पता लगाने वाला नहीं है। घर मे रहते हुए भी घर वालो का उस पर असर नही है। वह सदा सुखी रहते है। जो बाह्यपदार्थो से सतोष प्राप्त करता है वह इस भूल जगत् से हट जावे और अपने निजस्वरूप से ही सतोष प्राप्त करे। जो प्राणी इस जगत् के मोह मे पड़कर भूल गए है वे यदि अपने निजस्वरूप को देखकर सतोष प्राप्त करे तो वे आनन्दमग्न हो जावे। जिस प्राणी को आत्मसतोष प्राप्त करना है, आनन्दमग्न हो जाना है उसे सारे आनन्द परिग्रह त्यागना होगा और उसे कुछ काम करना नही है। यदि किसी ने महान् पुरुषार्थ किया, कल्याण किया, सन्यास लिया और अपने आपसे प्रेम किया तो वह इस जगत् मे आनन्दमग्न हो जाता है। अशुद्धि को दूर किया और शुद्धि को प्रकट किया तो इस मार्ग से चलने पर तो निर्विकार मार्ग मे पहुच जायगा। अपने आपको यदि अशुद्धि मे रखा तो विकारयुक्त होकर उसे असतोष हा जाता है। हे प्रभु तुम कोई वडी गजव की वस्तु नहीं हो। जानता हूँ कि अशुद्धि से हटकर शुद्धि के मार्ग मे अपने को ले गए हो। हैरानी की वात कुछ नहीं है। गजव कुछ नहीं है किन्तु इसका स्वरूप बहुत महान् है। कैसी अद्भुत शक्ति का विकास है। इस अपने आपको देखने मे भक्ति है और बातो मे भक्ति नहीं है। यह भगवान है, वडा है, वलशाली है इत्यादि वातों मे भक्ति नहीं है। मुझे तो कुछ गजब नहीं दिख रहा है कि भगवान् कोई गजब की चीज है। जैसे बिरादरी में कोई धनी है। कैसा भी हो बिरादरी का तो है। उसे कोई धनी नहीं

देखता। यहा हम बैठे है, वहा वह धनी आदमी बैठा है। हम दोनो मे कोई अन्तर नही दिखता है। तुम्हारी नगर महापालिका का उच्च अफसर जो तुम्हारे बगल मे बैठे हैं वे तुम्हे गजब का काम करते हुए नहीं दिखते हैं। अरे वह शुद्ध प्रभु भी मेरी बिरादरी का है। जैसी वस्तु वह है तैसा मै हू। उस शुद्ध प्रभु की अशुद्धि मिट गयी, विकार मिट गए, वह तो वही के वही है। पर हे जगत् के प्राणी ! महत्ता तो तुम्हारी है उस प्रभु की कौन महत्ता है ? उस प्रभु मे तो कोई गजब नही दिखता है। अपने से अपरिचित्त को जरूर गजब दिखता है। यहा क्या है ? कैसे हो गया ? बड़े गजब की बात है। भगवान कोइ और चीज हुआ करती होगी, ऐसा देखने लगते है। अरे हैरानी की चीज नही। भगवान की अशुद्धि मिट गयी विकार मिट गए। वह तो वही के वही है। हे जगत् के प्राणी तू बलशाली है तेरी महत्ता है, तेरे मे बलशाली ज्ञान भरा हुआ है। उस अपने ज्ञान को बाहरी पदार्थों मे लगा रहे हो और अपने परिणामो को अनन्तरूपोमे बना रहे हो।

भी स्वभाव वही है, वैसा ही स्वच्छ है। जैसा कि भगवान शुद्ध है वैसा ही यह आत्मा शुद्ध है। शुद्धि के विकास मे कोई अन्तर नही है। इस प्रकार प्रभु अनन्तज्ञान दर्शन और अनन्तशक्तियो का पिड है। इस ज्ञान के विकास के लिए सामर्थ्य तथा अन्तरदृष्टि इत्यादि की आवश्यकता है। अपने को अपने सही रूप मे निरखकर स्वय ही अपने मे शान्ति का मार्ग प्राप्त करे।

निर्द्धूयाज्ञानजान्ध्यं स्व दृष्ट्वा ध्यानाग्निना विधिम्।
दहानि निष्कलंक सन्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।७-५६।।

अर्थ– अज्ञान से उत्पन्न होने वाले अन्धकार को नष्ट करके अपने आत्मा को देख करके ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा कर्म क्रिया को जलाऊँ और अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

स्वरूप न सूझना और विषय कषायो मे ही उपयोग को बनाए रखना यह बड़ा अधकार है। यह अधकार अज्ञान से पैदा होता है। अज्ञान क्या वस्तु है ? पदार्थो का जैसा स्वरूप है वैसा न मानना अज्ञान है। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है। अपनी-अपनी सत्ता को लिये हुए है। अपनी ही सत्ता से परिणमता है। किसी का किसी मे प्रवेश नही है। इनके खिलाफ ऐसा समझना कि मै अमुक वस्तु को कुछ कर दूगा या अमुक मेरे लिए कुछ कर देगे। इस प्रकार स्वतन्त्रता के खिलाफ विकल्प करना यह मोह है। पदार्थ अपने मे ही उत्पाद करते है। अपने मे ही अपनी अवस्था को विलीन करते है और खुदबखुद सदा बने रहते है। जैसे एक अगुली है, अभी सीधी है इसको टेढी कर दी तो टेढी बन गयी। वह अगुली उस टेढ़ी अवस्था मे उत्पाद वाली हुई और सीधी अवस्थामे उसका व्यय हुआ यानी सीधी अवस्था विलीन हो गई और अगुली वही की वही बनी हुई है। इसी प्रकार परपदार्थ अपने ही स्वरूप मे अपनी अवस्था का उत्पाद करते हैं, अपने ही स्वरूप मे अपनी ही अवस्था का व्यय करते है और अपने ही स्वरूप को वनाए रहते है। इसे कहते है त्रिगुणात्मक पदार्थ । पदार्थो मे यह तीन गुण भरे हुए है। प्रथम अवस्था का उत्पाद, द्वितीय पूर्व अवस्था को विलीन करना और तृतीय वह खुद बखुद बनी रहे। ये तीन बाते परमार्थ मे सदा चलती हैं। प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक से अलग है। जो खोटा रूप भी परिणमता है वह भी खुद ही परिणमता है। दूसरा उसके साथ मिलकर खोटा रूप नहीं परिणमता है, पर दूसरे पदार्थ जिसका निमित्त पाकर खोटे भाव होते हैं उन सबमे ऐसा मानना कि वे ही करते है, इसके मायने अज्ञान है। जो पदार्थ जिस रूप मे है उनको वैसा न मानना अज्ञान है और जो जैसा है तैसा मानना ही ज्ञान है। इस ज्ञान के कारण विपयो का अधेरा समझ मे आ जाता है। वस्तु की स्वतन्त्रता का उपयोग करके जो वास्तविक आनन्द आता है तो उसमे आकुलता रहती है। उसमे परिणमन नहीं रहता है और अज्ञान रहता है। एक दूसरे के साथ सम्वन्ध मानने की बात रहती है, ऐसी स्थिति मे विषयो को लगाए रहना प्राकृतिक बात है, बाह्य पदार्थो में खपना प्राकृतिक वात है, यह बड़ा अधेरा है। विषयो मे प्रतीत होना, यह वडा अधेरा है। विपय ६ प्रकार के होते है – स्पर्श २, रस १, गध १, वर्ण १ , शव्द व सकल्प विकल्प। यू तो स्पर्श ८ होते हैं स्कध की अपेक्षा । शुद्ध परमाणु मे ठडा गरम मे से १, रूखा चिकना मे से १। इन ६ प्रकार के विपर्यो मे रति होना यह अधकार है। अपने आपको टटोलना चाहिए कि हम अधकार

मे हैं या उजाले मे है। स्पर्श विषयो मे तो मुख्य वेद सम्बन्धी विषय है। फिर स्निग्ध रूक्ष ठण्डा गर्म आदि जो ८ प्रकार के स्पर्श है वे है स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, शीत, कड़ा, नर्म, हल्का, भारी। यह ८ प्रकार के स्पर्शनेन्द्रिय के विषय है। सो देखो निरन्तर ये प्राणी इनमे बहते ही रहते है। गर्मी लगती है तो ठण्डी चीज चाहिये, सब स्पर्शइन्द्रिय के विषय है। नरक मे रहने वाले हो, अन्य पशु पक्षियो मे हो तो क्या सहन न कर लिया जायगा। हम ही गरीब हो तो इतनी ठण्डी गर्म न सह लेते। इन्द्रिय विषय मे मीठा होना, खट्टा होना, स्वादिष्ट होना ये रसना इन्द्रिय के विषय है।

ससार के प्राणी इन रसो मे कैसे रत होते है ? कितनी तरह के व्यञ्जन बने, कितनी प्रकार की खाने की चीजो का आविष्कार हुआ जिनका नाम लिया जाय तो ३००, ४०० नाम हो जावे। खाने की चीजो का नाम हम कहते हैं और वस्तुओ के नाम हम नहीं कहते हैं, फलो की बात हम नही कहते हैं। भोजन बनाया जाता है तो कितनी तरह के बनते है। मिठाइया बनती, चाय बनती, नमकीन बनती इत्यादि अनेक वस्तुवे बनती है। यह सब क्या है ? रसना इन्द्रिय के विषय है। सामने मिठाइया सेव वगैरह रखे है, दाल रोटी भी रखी है। दाल रोटी मे ही सतोष कर ले तो समझो विजय है। वस्तुओ को देख लिया तो चख लिया, स्वाद ले लिया, यह सब क्या है ? यह सब रसना इन्द्रिय के विषय है। रसना इन्द्रिय का जो विषय है वह भी अधकार है। एक अगुली या दो अगुली की इस नाक को खुश करने के लिए कितने प्रकार के सुगन्धित तेल है, कितने प्रकार के पुष्प है। इन सुगन्धित पुष्पो तथा तेलो से इस नाक को खुश करते है। कहीं फूल या इत्र का फोवा नाक मे लगा है, कही कान मे लगा है, कही इत्र लगा दिया, कहीं कोई दूसरा सुगन्धित तेल लगा दिया। यदि कोई तेल लगा लिया तो वह खुशबूदार होना चाहिए। ये सब घ्राण इन्द्रिय के विषय है। विषय सेवते सेवते भी सतोष तो नही आता।

जो है वह ठीक है। यह हुआ तो क्या हुआ ? इत्र है उसमे क्या हुआ ? यह सब अन्धकार है। विषयो का रस सुहाया यह अन्धकार है और इस अन्धकार मे ही चुलबुल करता हुआ यह जगत का प्राणी छिन्न-भिन्न बरबाद होता रहता है। चक्षु इन्द्रिय का विषय देखो। नेत्रो ने एक एक अगुल मे नये नये खेल देखे तो मन बढ़ गया। जो कुछ देखा वह वही का वही है। पर जो कुछ देखा उससे मोह कर लिया। इस मोह के कारण वह दु खी रहता है। सिनेमा देखा, नाटक देखा, इनमे कुछ है क्या ? किसी का रूप देखो तो क्या, वह तो अपने शरीर मे देख लो ना ? शका हो तो अपने शरीर मे तोड़फोड़ कर देख लो। बरसात के दिन है तो शरीर पर कपड़े नहीं सुहाते। और भी जीव पदार्थो को सुन्दर सुन्दर रूप, ड्रेसेज, आकार तथा अन्य नई-नई कमीजे वगैरह बनाना, नई-नई डिजाइनो का बनाना, कहीं कुछ बनाना, कही कुछ बनाना। यह सब क्या है ? यह सब चक्षु इन्द्रिय के विषय है। नेत्र इन्द्रिय के विषय मे यह रत होता रहा है, पर यह यही तो बनेगा।

गुरुजी सुनाते थे कि सागर मे एक कान्सटेबिल था। वह वेश्या मे आसक्त था। जो कुछ धन-दौलत उसके पास थी सब वेश्या के पास पहुच गयी। अब वह बड़ी अवस्था का हो गया था। अव धन तो वेश्या के पास आ गया । अब उसे क्या परवाह है? वह अपने घर न आने देवे उस सिपाही को।

कासटेविल उसके घर के सामने ही रात-दिन पडा रहे। किसी ने पूछा– भाई साहब, तुम यहा क्यो पड़े रहते हो ? कहा –पड़ा रहता हूँ। रात-दिन मे कभी तो घर से निकलेगी ही, देख लूगा। हाय हाय क्या मिल गया ? रात-दिन पडे रहे। वह पदार्थ अपनी जगह पर है। आत्मा मे आत्मा है, शरीर मे शरीर है, जो जहा है तहा ही रह जाता है, हाथ मे कुछ आता नहीं है। यह क्या है ? यह नेत्र विषय के रूपो का अधकार है।

कर्ण का विषय देखो–कितनी तरह के राग है। अभी कोई शब्द हो, सुन्दर गायन हो, तो यह सगीत सुनने चला कि कुछ सुन ले। देहातो मे रद्दी आलाप होते है उनको सुनने की भी इच्छा होती है। सपेरा वीन बजाता है वह भी सुहाती है। हर तरह के जो सुहावने शब्द सुनाई पड़ते है वह भी सुहाते है। यह क्या है ? यह कर्ण के विषयो की रति है। यह विषयो का अधकार है। मन को देखो विषय उसका सबसे बड़ा है। मन चाहता है कि इतना धन वैभव रहे, किसी से पीछे न रहू , आगे बढू, यह सब मन सोचता रहता है और ये ही विकल्प जन्ममरण के चक्र मे डालने को प्रेरित करते है। जैसे कलकत्ता की सोच ले तो सोचने मे देर नही लगती है। एक मिनट भी नही लगता, आधा मिनट भी नही लगता, एक सेकेण्ड भी नही लगता। मन मे इच्छाये की कि हमे फला चीज खाना है, फला चीज पहनना है तो यह सोचने मे देर नही लगती है। यह है मनका विषय और जो पच इन्द्रियो के विषयें है वे भी मनके विषय बन गए।ये मन वाले के विषय तो पच इन्द्रियो के विषयो मे भी मन के साथ सदा चला करते है। ऐसे जो विषयो मे अन्धेरा है जो कि अज्ञान स्वभाव से उत्पन्न होता है, उस अधकार को नष्ट करके अपने आपको सुखी करू, इस अन्धकाररूप अज्ञान को दूरा कर ज्ञान के द्वारा इस कर्म को जलाऊ, कल्पनाये करके दु खी हो गया, फिर कल्पनाये ही करके सुखी होगया, आत्मध्यान से आनन्दमय हो गया। कुछ लेना पड़ा न कुछ देना पड़ा, न कुछ खटपट पडी केवल अपना ध्यान बना लिया, सारे दु ख मिट गए।

देखो– दु ख तथा सुख है क्या ? केवल कल्पनाये बना लेते है। मै इन कलक से रहित विषयकषायो के बन्धन से रहित शुद्ध ज्ञानस्वरूप का अनुभव करू और अपने शुद्ध ज्ञान तत्व मे रमकर इन कर्मो को जलाऊ। यही ज्ञानावरणादि कर्म आत्मा के साथ रम गए है ये कैसे दूर होगे ? इसका उपाय केवल यह है कि सबसे निराला, शुद्ध ज्ञानमात्र अपने को पक्का जानूं तो उपयोग बनाने का यह काम हो सकेगा। यह कर्म बाहर हो जाते है, शुद्ध स्वभाव वाला मै प्रेक्टिकल- हूँ तो कर्म बाहर हो जाते है। केवल वोली के सुनने मे कर्मो मे असर होता है। जितने भाव बनने है शुद्ध अशुद्ध उन भावो से कर्मो मे असर होता है। यदि शौक से नाना ज्ञान सीखे तो यह तो मनका विषय बन गया, पर विषयकषायो मे फर्क है। इस मन के विषय के भीतर आत्मनिर्णय की भावना साफ है और दुनिया के विषयो मे केवल मन को दुग लगने की वात है। इतना ही अन्तर है तो इन सब विषयकषायों की तरगो से पर जो ज्ञायकस्वरूप शुद्ध आत्मतत्व है उस ही रूप अपने को मानो, ऐसा ही उपयोग बनाओ। बस यह ही कर्मो को बाहर करने का उपाय है। कर्म और तरह से अलग नहीं हो सकते। कर्म अलग है, धर्म भी करे, पूजा भी करे, भक्ति भी करे, दान भी दे, सब कुछ करे, मगर जितने अशो मे भाव निर्मल है उतने अशो मे काम

हो रहा है। इसी काम के होने से सब कुछ मिल जाता है। क्रोध, मान, माया, लोभ ये तीव्र कैसे होते है ? अधिक क्रोध किसे कहा जाय ? पदार्थो की बात मे क्रोध बढ़े उसे अधिक क्रोध कहा जाय। धर्म के कार्यो मे क्रोध बढे तो तीव्र क्रोध है। धर्म धारणा करके क्रोध बढे तो जैसे मुझे किसी ने छू लिया अभी हम स्नान करके आए। धर्म का कार्य समझते हुए क्रोध करना तो यह तीव्र क्रोध हुआ। धर्म के इस प्रसग मे क्रोध साफ हो जाना चाहिए था। क्रोध तीव्र कैसे हो रहा है ? धर्म धारणा हो जाय तो क्रोध ठहरेगा नही।

मानकी बात भी देखो– एक आत्मा ऐसी है कि धर्म के होने के कारण अपनी सभी इज्जत मान रही है– यह तो हुआ उसका घमण्ड । गरीब से धनी हो रहे है, धन को और जोडना चाहते है। एक आदमी ऐसा है जो पूजा उपवास आदि धर्म का काम करके अपने को धर्मात्मा जानता है, यह अधिक घमण्ड हुआ। धर्म के काम मे छल-कपट करना तीव्र माया है। धर्म के काम मे लोभ करना तीव्र लोभ है। कोई पुत्र आदि बीच मे बीमार हो जाय। पाच सौ रु० मासिक उसमे निकल जाये, ६ मास पड़े ही रहे। यह सब करने से वह मोह कर रहा है। अपने पुत्र के लिए दवा कर रहा है कि ठीक हो जावे, उसमे भी मोह है। किसी का मोह किसी जगह पर उतरता है और किसी का अन्य दूसरी जगह मे। लोभ परिवार मे हो जाता है। जितना भी करते है वह सब अपने परिवार के लिये करते है, वे अपने परिवार के लोगो को ही सर्वस्व समझते है तो यह धर्म नही हुआ इसमे लोभ है।

हे आत्मन! तेरा स्वरूप शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। अपने ज्ञानानन्द स्वभाव को देखो। एक पुरुष पिता के खूब गुण गाता है, पर पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता है। पिता के भीतर होने वाली इच्छाओ को आदर नही करता है और एक पुरुष वह है जो पिता की आज्ञा पालन करने के लिए तैयार है तो बतलाओ कि कौनसा पुरुष अच्छा है व भक्त है? पुरुष वही अच्छा है जो पिता के गुणानुवाद तो नहीं गाता, पर पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार है।

एक आदमी ऐसा है जो भगवान की दस बार पूजा करता है और भगवान को हैरान कर डालता है और एक पुरुष है जो केवल भगवान का स्मरण मात्र कर लेता है, शुद्धस्वभाव का ध्यान करता और भगवान का हुक्म मानता है तो बताओ कौन भक्त है ? भक्त वह है जो भगवान का हुक्म मानता है। भगवान का हुक्म यह है कि अपने आपको ज्ञानमात्र, सबसे निराला, शुद्ध ज्ञायकस्वरूप समझो। अब सोचो मै अज्ञान से उत्पन्न होने वाले अधकार को नष्ट कर ज्ञानमात्र, आनन्दमय अपने आपको देख करके ध्यानरूप अग्नि के द्वारा इन कार्यो को जलाऊ और निष्कलक होकर अपने आप मे अपने आप सुखी होऊ।

रागादि पीडयेत्तावन्नाविष्टो ज्ञानसागरे।
अतो ज्ञानेऽवगाह्याह स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-६०।।

अर्थ– राग आदि विभाव तब तक पीडा कर लें जब तक ज्ञान रूप समुद्र में प्रविष्ट नहीं हुआ इसलिये ज्ञान में प्रवेश करके मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

यह रागादि जीवो को बड़ी पीडा दिया करते हैं। देते हैं तो दे, कब तक देगे ? यह तब तक ही पीडा देगे जब तक कि मैं ज्ञानसागर मे डूब न जाऊ। यह कर्म तब तक जीव को सताते है जब तक कि वे ज्ञानसागर मे नही डूब जाते। जैसे धूप से पीड़ित मनुष्य को गर्मी तब तक सताती है जब तक उसको छाया प्राप्त नहीं होती। जब तक ज्ञान मे ज्ञान नही प्रवेश करे तब तक सतोष कैसे प्राप्त हो सकता है? जब तक ज्ञान सागर मे डूबे रहे तब तक रागादि सताप नहीं रह सकते हैं। ज्ञान दो किस्म के हैं? एक आत्मा का ज्ञान और दूसरा पर वस्तुवो का ज्ञान। परवस्तुवो की कल्पनाओ से दु ख होता है और अपने स्वरूप का ध्यान करने से दु ख दूर हो जाते हैं। लेना-देना कुछ नहीं है केवल परिणाम की बात है। सुख दु ख आनन्द होना केवल भावो के परिणाम की बात है। देखो इतनी बड़ी समस्या, इतनी बडी प्रोबलम केवल एक विचार परिवर्तन से ही हो जाती है तथा हल भी हो जाती है। कम धन होने से दु ख होता है। रोजगार करते है, यह करते है, वह करते है, कितने ही यत्न करते हैं, पर उनसे यह समस्या हल न होगी। घर आदि की समस्या वाह्य सचय से हल न होगी। लड़को को सग मे रखना, कुटुम्ब को बाधकर रखना, परिवार मे रहना, इन सबसे घर की समस्या हल नही हो सकती है। इस समस्या का हल विकार के तिरस्कार से तथा स्वभाव के दर्शन से होगा। स्वभाव दर्शन क्या है? जैसा खुद का स्वरूप है तैसा उपयोग बन गया यह स्वभाव दर्शन है। इसी से समस्याऐ हल होगी। कैसा है यह अपना स्वरूप पहले तो सबसे निराला, किसी से मिला-जुला नही। अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला, अपने आपके स्वभाव को अपने आपके अस्तित्व मे लिए हुए हूँ, यह भाव मात्र है, उसमे कुछ खटपट नहीं, उसमे कोई झझट नहीं। इस मुझमे लेने-देने का कुछ नही मिलेगा, केवल भावमात्र हूँ। ज्ञानभावमात्र, आनन्दमात्र हूँ। रच भी दूसरे पदार्थ के साथ सम्बध नहीं है, मगर जहा मोह उठता है तो वह सारा का सारा कैसा मालूम पड़ता है? यह मेरा लडका है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, जिसमे उछल-उछलकर रहता है। विपदाओ का कारण यह मोह है, नहीं तो मै आनन्दानुभव वाला तथा सबसे निराला हूँ।

आत्मा स्वय ज्ञानघन है, आनन्दमय है, पर मोह ऐसा गदा विष है कि अनहोनी को होनी बना देना चाहता है । मोह ही तेरे दु ख का कारण है। दूसरा तेरे दु ख का कारण क्या है वह बतला ? अरे दु ख का कारण दूसरा नहीं , मोह ही दु खका कारण है। यह मेरा है, यह उसका है, यह क्या है ? यह मोह ही तो है। अरे यदि यह मोह हट जावे तो दु ख भी हट जावेगे। ये सब यहीं के यहीं रह जावेंगे। जिनमे तू मोह कर रहा है वे भी यहीं रह जावेगे, तू भी नहीं रहेगा। रहेगा तो हमारा स्वरूप ही साथ रहेगा। रागादिभाव पीड़ा देते हैं तो दे। अरे यह पीडा ही क्यो देगे ? यह तेरे को तभी पीडा दे सकते हैं जब तक तू ज्ञान ससार मे डूबकर प्रवेश न कर जाय। तू जिसको जान रहा है उससे ही तुझे दु ख होते हैं। अरे तू इनको न जानकर अपने को जान। परिवार के छोड़ने का क्या दु ख ? अगर तेरा ज्ञान परिवार मे लीन हो गया तो दु ख होगे और अगर तेरा ज्ञान याने तू ज्ञानसागर मे डूब गया तो सुखी रहेगा। दु ख तो तुझे तब होगे जब तेरा मोह, तेरा लगाव उनसे होगा। जैसे कहावत मे कहते हैं कि तुम्हे आम खाने से काम कि पेड गिनने से, तुम्हे आनन्द से काम है या लडको , बच्चो से काम है ? तुम्हे

यदि लडको, बच्चो से आनन्द मिलना है तो उनसे ले लो या अपने आप से मिलता है तो अपने आपसे ले लो। आनन्द तो इस आत्मा मे है। यदि आत्मा मे ही दृष्टि रहे, आत्मा मे ही झुकाव रहे तो सुखी रहेगा। दु ख तो तब है जब तेरा झुकाव पर मे होगा मोह मे होगा कुटुम्ब परिवार मे होगा। यदि आप अपने ख्याल को अपने कुटुम्ब परिवार मे छोड दे तो दु ख कैसे होगा और यदि अपना लगाव अपने कुटुम्ब, परिवार, धन-वैभव आदि मे होगा तो तुझे दु ख होगे।

मोही प्राणी माया मे पडकर दूसरो से दुश्मनी कर डालते है। कौनसी बात का असर है जो दुश्मनी कर डाली। निजी चीज जिसे मानी वह भी निजी नही। यदि पूछा जाय कि दुश्मनी क्यो कर डाली तो यही कहेगे कि मेरी बात नही रही। ये रागादि विकार करके दु खी होते है। ये रागादि विकार कब तक दु खी करेगे जब तक कि ज्ञानसागर मे हम डूब न जावे। राम, लक्ष्मण, सीता इत्यादि महान् आत्माओ के जीवन चरित्र को देखते है कि जब तक इन्होने सन्यास नही धारण किया है, त्याग नहीं किया है तव तक दु खी रहे है परन्तु अन्तिम जीवन मे उन्होने त्याग किया, सन्यास किया तो उनका जीवन सुखी हुआ। आज उन्ही की महिमा का गुण गाया जाता है। जब तक कि इन आत्मावो का जीवन घर मे ही व्यतीत हुआ है तव तक उनकी कोई कीमत नही थी परन्तु अपने अन्तिम एक चौथाई जीवन मे ही सन्यास धारण कर अपने जीवन को सफल बनाया। जब तक वे अपने घर से न निकले थे, पालने मे झूला झूलते थे तव तक उनके गुणो का गान न होता था। परन्तु जब अपने घर से निकलकर सन्यास हुआ तो उनके गुणो का गान हुआ और वह मोक्ष गए। इस कारण पुराना जो घरेलू जीवन था उसके चारित्र के भी गुण गाये जाते है। इसी तरह तीर्थकर भी जब तक अपने घर मे रहते थे तब तक उनके गुणो का वर्णन नही होता था परन्तु बाद मे चरित्र निर्मल हुआ, अपने आप मे रमे, अपने घर बार स्त्री आदि से विमुख हुए और अपने जीवन को सफल बना सके। निर्वाण पधारे तब पुराना सारा जीवन प्रभु भक्ति की पद्धति मे आ गया।

हे जगत् के प्राणी! इतना जीवन गुजर गया और इस इतने जीवन मे बहुत सी बाते रही। उन उन बातो मे क्यो रोते हो ? जिन्होने वर्तमान व भविष्य को सम्भाला अनेक लोग उनके गुण गाने लगे इस जीवन को सम्भाल लेने मे ही कल्याण है।

राजा श्रेणिक पहले तो मास भक्षी थे, अञ्जन चोर आदि थे, वेश्या मे आसक्त थे, अत्यन्त दुराचारी थे। बाद मे उन्हे ज्ञान मिला। उस ज्ञान मे ही देखो यह कितने मासाहारी थे और तर गए। बाद मे उनकी महिमा का गुणगान हुआ।

वज्रभानु अपनी स्त्री मे अत्यन्त आसक्त था। वह मोह माया मे अत्यन्त लीन था। वे रास्ते मे मुनिमुद्रा के दर्शन करके विरक्त हो गए। तव से ही उनके गुणो का गान किया जाता है। लोग बाद मे कहने लगे कि वाह, वह कैसे थे ? अशुद्ध थे, शुद्ध हो गए। अच्छा चारित्र बनने पर पहिले चरित्र भी किसी रूप मे भावानुवाद मे आ जाते है। हे आत्मन् तू अपने रागादि से उत्पन्न दु खो से क्यो रोता है? तूने ही तो इन दु खो को बनाया है। यह तेरे रागादि भाव तब तक तुझे पीडा देगे जब तक तेरी आत्मा मे ज्ञान प्रविष्ट नही होगा। तू अपनी आत्मा मे ज्ञान प्रविष्ट कर अपने आनन्दस्वरूप को निरख। इसी से तेरे समस्त क्लेश समाप्त हो जावेगे। यदि तुम्हे आत्मस्वरूप मे आनन्द मिलता है तो उसमे झुको और यदि दुनिया के परपदार्थो से आनन्द मिलता है तो उनमे झुको। यदि तू अपने निज स्वरूप से आनन्द प्राप्त करेगा तो तुझे आनन्द प्राप्त होगा और शाति मिलेगी। यदि बाह्य पदार्थो से आनन्द प्राप्त किया तो उसमे अशाति ही अशाति रहेगी। जिस काम मे दो-चार वर्ष तक टोटा ही टोटा रहे तो उसको बुद्धिमान व्यापारी

बदल देता है। इस वाह्य आनन्द मे ही यदि तू पड़ा रहा तो शाति नही मिलेगी। तो तू ऐसे रोजगार को बदल दे। अपने आपके आत्मस्वरूप मे आनन्द प्राप्त किया तो उससे शाति मिलेगी। इसलिए तू ऐसा ही व्यापार कर। यदि तूने एक जन्म की बाते सही जान लीं तो करने योग्य २० बाते खुद ही जान लेगा अन्य १० बातो को बताने की जरूरत नही।

एक घटना है कि बुन्देलखण्ड मे एक राजा रहता था। वह राजा गुजर गया, उसका पुत्र नाबालिग था। अब वह लड़का २०-२१ वर्ष का हो गया। उसकी मा ने कहा कि मेरे लड़के को राज्य सौप दिया जाय। उसकी मा ने उसे समझा दिया कि बादशाह जैसा पूछे उसका उत्तर देना। यदि यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर दे देना, यह प्रश्न पूछे तो यह , और यह प्रश्न पूछे तो यह उत्तर देना। इस तरह से १० बाते मा ने उसे समझा दी। उस राजकुमार ने कहा कि यदि इन १० बातो मे से एक भी न पूछेगे तो क्या कहेगे ? मा बोली कि तब अपने आप उत्तर दे सकते हो। राजकुमार ने कहा कि क्या मुझे कल्पना भी अपनानी होगी ? मा बोली कि यह तो बडी बुद्धि और प्रतिभा की बात है। राजकुमार बादशाह के सामने बुलाया गया। बादशाह कुछ नही बोला, उस लड़के के दोनो हाथ पकड़ लिये और कहा कि अब तुम पराधीन हो गए, विवश हो गए, अब तुम बताओ क्या कर सकते हो? राजकुमार ने कहा कि अब क्या है ? अब तो मै सब कुछ कर सकता हू। जब स्त्री के साथ विवाह मे कन्यादान होता है तो एक मात्र हाथ पकड़ लेने से स्त्री की जिन्दगी भर रक्षा करनी पड़ती है तो आपने तो मेरे दोनो हाथ पकड़े है। अब तो हम बिल्कुल स्वतन्त्र हो गए। इसका तो कहना ही क्या है? यह सुनकर बादशाह प्रसन्न हो गए और राजकुमार को राजगद्दी दे दी गयी।

इस कमण्डल को कैसे उठाना है, कैसे क्या करना है आदि बातो को क्या सीखना है ? यदि इस यथार्थ बात को समझ लिया तो इतना ही क्या है ? बीसो बाते अपने आप समझ मे आ जावेगी। यदि अपने ज्ञानस्वरूप की प्रतिभा जग जाय तो सारी बाते आ जावे। यहा उपद्रव करने वाले बहुत है, मगर ज्ञानसागर मे प्रवेश करने पर कुछ नही।

गगा नदी के पानी मे एक जानवर था। आराम करने के लिए मुह उठाकर पानी के बाहर थोड़ा शरीर निकालकर जाता है। चारो तरफ से सैकडो पक्षी उस जानवर पर हमला करने के लिए आते है। वह जानवर थोडा सा पानी मे खिसक जाता है। वे सब पक्षी बेकार होकर भाग जाते है।

ये रागादिक भाव, नाना प्रकार के विकल्प, नाना प्रकार के विचार इस ज्ञानगगा के बाहर मडरा रहे है। सब हमारे ऊपर हमला कर रहे है। यदि हम जरासा इन रागादिक भावो से विलग हो जावे व ज्ञानगगा मे मग्न हो जावे तो ये हमारा कुछ नही कर सकते है। जिस प्रकार से गगा नदी मे जीव के दब जाने से सारे पक्षियो के वार व्यर्थ हो जाते है, सारा उन पक्षियो का परिश्रम बेकार हो जाता है, ठीक इसी प्रकार हम अपने आपको अपने ज्ञान मे डुबा लेवे तो यह रागादि भाव अशक्त हो जावे। जब तक ज्ञानस्वरूप मे ज्ञान नही है तभी तक ये पीडा देते हैं। शुद्ध अवस्था मे ज्ञान असीम पर्यायी होता है। न उसकी सीमा होती है न कोई मर्यादा। अपने उपयोग को इसकी उपासना मे ही स्थिर कर दे तो

लक्ष्य की प्राप्ति सहज और सरल हो जावे। मोह से हटने का एक यही अमोघ उपाय है इसी मे अपनी रक्षा है और यही प्रशस्त मार्ग है। ओम् शुद्ध चिदस्मि। इसी प्रकार ज्ञाताज्ञात और ज्ञेय मे भेद नही है। जिसमे भेद नहीं है उसमे ही यह अद्भुत परम आत्मानुभव का आनन्द है। जानने वाला तो मै हूँ और ज्ञेय वने रहते है दुनिया के अनेक पदार्थ जहा, वहा तो आकुलता रहेगी और जिनका जानने वाला मै ही ज्ञेय बना रहता हूँ। इस ज्ञेय को ज्ञान मे जाने, यह है सबसे अच्छा रोजगार, जिसमे तीन लोक का नाथ बन जाय यह है विलक्षण व्यापार। किसलिए जान रहे है ? इसलिए जान रहे है कि इस जानने के आगे और कुछ प्रयोजन नही तो अब इस ज्ञान मे ही प्रवेश करके मै अपने मे अपने आप सुखी होऊ। ये रागादिक उपद्रव तो तब तक होगे जब तक इस ज्ञानसागर निज आत्मतत्व मे अपने आपका प्रवेश न हो जाए। यही ज्ञानयोग ज्ञानियो का, योगियो का एकमात्र कार्य है। इस ही से महात्मा होते व महात्मा से परमात्मा हो जाते है। करने को काम केवल एक ज्ञानानुभव ही है। सो अब ज्ञान मे ज्ञान का अनुभव करके मैं अपने मे अपने आप आनन्दस्वरूप होऊ।

स्वभाव सिद्धतैते तु पर्याया कर्मविक्रमा ।
न्वह स्वविक्रम कुर्या स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-६१।।

अर्थ– **अपने गुणों की प्राप्ति रूप सिद्धता स्वभाव है परन्तु ये पर्यायें कर्म के विक्रम हैं, मैं तो स्वका विक्रम-पुरुषार्थ करूँ और अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊ।**

इस आत्मा का स्वभाव सिद्ध बनने का है। सिद्ध कहते हैं उसे जिसने अपने आपके गुणो की प्राप्ति कर ली है, जिसने अपने आप मे सब कुछ कर लिया है। जो अपना गुण है, अपनी शक्ति है, उसको पूर्ण कर लेने का आत्मा मे स्वभाव है अथवा पूर्ण विकास रूप बन जाने का इस आत्मा का स्वभाव है, अनन्तज्ञानी, अनन्तदृष्टा, अनन्तसुखी, अनत शक्तिवान् हो जाने का स्वभाव है। यह ही इस आत्मा का विक्रम है, परिश्रम है, करतूत है, शूरवीरता है। पर अन्य जो इसमे पर्याय उत्पन्न होते है जैसे गतिमार्गणा मे नारक, तिर्यच, देव आदि व इन्द्रिय मार्गणा मे एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय और पच इन्द्रियो मे बताया गया है अन्य कपाय, असयम आदि जो कहा गया है वह किसके विक्रम है ? येकर्म के विक्रम है। जैसे निर्मल शुद्ध काच है वह शुद्ध बना रहे, स्वच्छ बना रहे तो काच का ही विक्रम हुआ। जैसे काच को किसी के सामने कर दो या काच के सामने कुछ आ गया, मानो हाथ ही आ गया तब उसमे हाथ की छाया आ गयी, उसमे करतूत किसकी चल गयी ? हाथ की। तो यह हाथ निमित्त हुआ, हाथ का ही विक्रम हुआ, हाथ की ही कलाये हुई । यह एक दृष्टि है, इसी दृष्टि से देखना चाहिये। इसी प्रकार जीव मे शुद्ध ज्ञानरूप बर्ताव केवल ज्ञानरूप मे रहना, ज्ञाता दृष्टा रहना, यह तो हुआ आत्मा का विक्रम और इसमे क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह आदि जो कुछ भी विभाव पर्यायें होती है वे सब कर्म के विक्रम हैं। यहा यह प्रेरणा लेनी चाहिए कि जो तेरा विक्रम है उस विक्रम को करू और कर्म के जो विक्रम हैं उनकी उपेक्षा करू। मेरा तो काम है ज्ञाता, दृष्टा रहना। यह चीज कठिन है, ऐसा जानकर भी निरुत्साही नहीं होना चाहिए। जैसे कि बहुत दिनो से पढते आए, सुनते आए, कुछ लाभ नहीं दिखता है, अन्तर

नहीं आता है। भाई बात तो कठिन है जिस दिन ठीक होना होगा, ठीक हो जायेगा। कोशिश करते रहना है, उपयोग बनाए रहना है, जब होना होगा ठीक हो जायगा।

एक बाबू ने एक कोरी को पायजामा दिया। अब वह नही जानता था कि कैसे पहना जाता है? वह उस पायजामे को कभी कमर मे लपेटता, कभी हाथ मे डालता तो कभी गले मे लपेटता था। इस तरह से उसने बहुत बहुत काम किये। एक समय उसने पायजामे का पैर अपने एक पैर मे डाला और पायजामे के दूसरे पैर को भी अपने दूसरे पैर मे डाला। अब पायजामा झट ठीक ढग से बन गया। उसकी समझ मे आ गया कि ऐसे पहिना जाता है। इसी तरह जो पढ़ते है सुनते है, कोशिश करते है तब भी बात फिट नही बैठती है। बात यदि फिट नही बैठती है तो न सही। कोशिश करना बन्द न करो। किसी दिन पर द्रव्य की अपेक्षा हट जायगी और अपने आप मे सहज विश्राम पाने लगोगे। अपने आपका सहज अनुभव हो जायगा कि यह बात है, यह प्रभु के स्वभाव का मर्म है। मै तो अपना विक्रम करूगा। चींटी चढती है तो चढती ही चली जाती है। कभी-कभी गिर भी जाती है, फिर भी हिम्मत नही हारती है। वह ऊपर को चढती ही चली जाती है। पार-पार करने के लिए काम यह है कि पर मे उपेक्षा और आत्मा मे दृष्टि हो और कुछ करने लायक काम नही है। धन कमाया है, चला जायेगा या अत मे मृत्यु हो जायेगी।

परिणाम तो करता , स्वभाव मे दृष्टि तो करता, श्रद्धा तो बनाता, प्रतीति तो बनाता है। मेरा तो रक्षक मै ही हूँ।दूसरा कोई मेरा रक्षक नही है। मै अपने प्रभु को पहिचानू तो मेरा रक्षक मै ही हूँ, मेरा शरण मै ही हूँ। मै अपने परिणामो को पहले देखू। कर्म जो कुछ विक्रम करते है तो करने दो। मै अपने विक्रम को करू, अपना पुरुषार्थ आप करो, कर्म का विक्रम होने दो। अपना पुरुषार्थ यह है कि अपने शुद्ध ज्ञायकस्वरूप को देखो कर्म के विक्रम कषायादिक है, वह चारित्र मोह मे होने दो। आत्मस्वरूप दृष्टि का काम करे, कर्म चारित्र मोह करे, जीव के विक्रम और कर्म के विक्रम मे होड़ लगने दो। तू अपने उपद्रव को समाप्त कर। जब तू अपना उपद्रव समाप्त करेगा तभी तेरा कल्याण होगा। हे प्राणी, तूने तो कल्पना बना ली। अपने परिवार को, अपने कुटुम्ब को अपने सामने रख लिया और जन्ममरण का चक्कर ले लिया । मैने तो अपने आप मे यह विक्रम लगाया है। अपने आपको शुद्ध ज्ञायकस्वरूप, ज्ञानमात्र, जाननस्वरूप, जो केवल जानता है, जानना ही जिसका स्वरूप है, जो परपदार्थो से भिन्न है, किसी अन्य से सम्वन्ध नहीं है ऐसे उपयोग मे हमे लगना है। यह प्रथम चीज है, इससे ही मेरे मे आनन्द आता है, इसके बिना गुणो का विकास नही। इस प्रकार का ध्यान बनाकर ज्ञानी जीव अपने को ज्ञाता द्रष्टा बनाये रहने का अपना विक्रम करते है। क्रोध उदय वहा नहीं है, अन्य प्रकार के विकार भी वहा नहीं हैं। इसमे मोह नहीं है, दु खो से रहित है। जहा पर मोह, मान, क्रोध, माया, लोभ है वहा पर विपत्तिया हैं। वे अपना विक्रम कर रहे है और यह अपना विक्रम कर रहा है।

देखो एक जानवर है कछुवा। उसे कोई सताए तो वह अपना मुह भीतर दबा लेता है। और यदि वह अपना मुह भीतर दवा ले तो वह भीतर ही घुस जाता है। केवल ढाचा पड़ा रहता है, मुह भीतर पड़ा रहता है। कछुवेका बाकी शरीर तो कडा रहता है, उसको चाहे ठोकते रहो, पीटते रहो परन्तु वह सुरक्षित रहता है। यह तो उदाहरणकी बात है। इसी प्रकार हमारे ऊपर चाहे जितनी आपत्तियॉ आये आने दो। हमारे पास तो ताकत है, हम अपना विक्रम करे, अपने विक्रमको हम भीतर ले जाये और स्वरूप मात्र, आनन्दभाव मात्र अपने स्वरूपको निरखे। यहा तो मेरा कुछ नही है। मै ज्ञानमात्र हूँ। क्रोध, मान, माया, लोभ, इत्यादि मेरे मे नहीं है, पर मेरे हो जाते है। कर्मका विक्रम है होने दो। मै अपना विक्रम करू अर्थात् ज्ञाता दृष्टा रहूँ और अपना विक्रम करके अपने आप सुखी होऊ।

करनेका एक यह ही काम है कि मै अपना विक्रम करू परन्तु वह करनेमे नहीं आ रहा है। अपनी कमजोरीसे अपने भावोको ढीला कर दिया, मनको ढीला कर दिया तो हम स्वच्छन्द हो गए। अपने मनके स्वभावके दर्शन कर लिए तो उत्साह हो गया। मुझे क्या करना है? मैं तो कृतकृत्य हूँ, मेरा तो कृतकृत्यके अतिरिक्त और काम ही नही पडा है। कौनसा काम पडा है? अमुक अमुक। अरे वह तो मेरा काम ही नहीं है, वे प्रत्येक द्रव्य तो अपने आपमे परिणमते है। उनमे मेरा कुछ नहीं है, मैं कृतकृत्य हू मै जो कुछ करूगा वह यही कि जानना चाहिए ज्यादा जान जाऊगा। चेतनाका चमत्कार है, केवल जानता हू, प्रतिभास्वरूप हूँ मैं इतना मात्र आत्माका मर्म जानता हूँ। अपनी शूरवीरता से हटे तो दुनियाके सभी पदार्थो से मुझे दुःख है, हम दुःखके कारण वन जावेगे। और यदि हम प्रवल रहे तो दुनियाके कोई भी पदार्थ मुझे दुःखी नहीं कर सकते हैं।

कभी देखा होगा कि जब बच्चे अथवा कोई भी कहते है कि पीठपर मुक्के लगाओ, जितने लगा सकते हो, लगाओ। उस बच्चेकी हिम्मत बड़ी हो जाती है। वह पीठ कड़ी कर लेता है। और सास भर लेता है, वह मुक्के लगवा लेता है, सह जाता है, उसे क्लेश नही होता है। उनकी बात क्या कहे? जो व्यायाम दिखाने वाले होते है , अपनी छाती पर से हाथी का पैर रखवाकर निकलवा देते है, वे भीतरसे तैयारी कर लेते है, इस कारण उन्हे दुःख नही होता। उनका दिल कडा बन जाता है। वे क्लेश महसूस नही करते है। इसी प्रकार यदि भीतर के मनको कड़ा बना लिया जाय, सयम कर लिया जाय तो यह जानना ही तो है ना। अरे मै तो जान गया, जानना ही तो मेरा स्वभाव है, मै तो अपने आपके ज्ञानस्वरूपको जान गया। ऐसी कड़ी हिम्मत कर लो तो जो विपदाये भी आती है वे चली जाती है। इन विपदाओका मुझ पर असर नही होगा, अपने विक्रममे रहे तो कर्मके विक्रमसे विपदाओका असर न होगा। ढीले-ढाले बैठे है, भीतरसे कोई तैयारी नही है और यदि कोई मुक्का लगा देवे तो अत्यन्त दुःख होगा। इसी तरह ढीला ढाला शिथिल मन पड़ा हुआ है तो यह असर करता है। यह आत्मा खुद ही बाहरी चीजोका निमित्त पाकर अपने आपमे आपका असर डाल लिया करता है। जैसे कहते है कि खुद तो जगते नही, खुद तो स्वाधीन नही होते और कहते है कि स्टेशन लुटेरा है। अरे खुद जगते रहो, कौन लूटेगा? इसी तरह हम खुद स्वाधीन नही होते, नाम लगता है घरका, गृहस्थीका , धनका, वैभवका। इन चीजोने तो उसे लूट लिया, बरबाद कर दिया, फास लिया। नाम बदनाम करता है परपदार्थो का, यो ही देखनेसे उस अज्ञानीको दुःख हो रहे है। दु ख तो कोई चीज ही नहीं है। दुःखो का तो केवल नाम है। ऐसी कल्पना करो कि जहा यह जचे कि दुःख कोई चीज नही है, तब सुख होगा।

तीन चोर थे। चोरी करने जा रहे थे। रास्ते मे एक नया आदमी मिला, बोला– कहा जा रहे हो? बोले– चोरी करने जा रहे है। उसने कहा कि इससे क्या होगा, बोले– धन लूटेगे, अगर धन लेना है तो तुम भी चलो। नया व्यक्ति साथमे चल देता है, वह यह नही जानता है कि घरमे कैसे घुसा जाता है और कैसे बाहर निकला जाता है? घरके अन्दर सब घुस गए एक बूढे आदमीने खास दिया। वे तीन तो भाग गए, अब वह नया आदमी भागना नही जानता था, उसने और कुछ न सोचा, घरमे जो ऊपर कडी लगी हुई थी उसपर जाकर बैठ गया। गावके बहुतसे लोग एकत्रित हो गये, हल्ला मच गया, वहा दसो आदमी थे, सभी तरहके सवाल होते थे। घरके मालिकने कहा कि हम सब बातोको क्या जाने, ऊपर वाला जाने। उसके कहनेका तात्पर्य भगवानसे था कि भगवान जाने, पर उस छिपे हुये नये चोरने यही समझा कि यह मेरे लिए कह रहा है। उसने सोचा कि मै पकड़ा न जाऊ, इसलिए बोला कि क्या मैं ही जानू, वे तीन आदमी क्यो न जाने? अब वह नया चोर पकड लिया, बाधा गया, मारा-पीटा गया, बन्द हो गया।

यहा पर उसने केवल कल्पना ही तो की थी कि यह मेरे लिए कह रहा है, इसलिए पकडा गया, मारा गया और बन्द कर दिया गया। अब मुझे अपने आपको उठाना है, कर्मके विक्रम यदि चलते हैं तो अपने विक्रम को करू, ज्ञाता दृष्टा बनू इसके आगे हमे कुछ नहीं चाहिए। क्योकि कुछ मिलेगा नहीं

पर से। उनका परिणमन उनमे है, हमारा परिणमन हमारेमे है। जो कुछ मुझे ज्ञान होता है वह मेरे से मेरेमे होता है। जो मुझको आनन्द प्रकट होता, वह आनन्द मेरेसे मेरेमे प्रकट होता है, दूसरा निर्णय नहीं, दूसरा न्याय नही, फिर किस बातकी आशा करते हो? अपनी अन्तरदृष्टि बनाओ कि जैसी उसकी प्रतिमा है तैसी मेरी प्रतिमा है। सब अपनेमे है, मै अपनेमे हूँ। इस प्रकारसे वस्तुके स्वरूपको निरखना यही पुरुषार्थ, यही विक्रम है। एक शुद्धज्ञान पुरुषार्थ करके अपनी इन सब वासनाओको दूर करो, जो जो सस्कार भरे हुए है, जो जो वासनाये भरी हुई हैं, जो-जो क्रोध मान, माया, लोभ इत्यादि भरे हुए हैं उन सबको अपने पुरुषार्थ से अपने विक्रमसे दूर करो।

एक साप था। उसने यह विचार किया था कि मै किसी को सताऊगा नही। वह शात था, सुबह उस घरमे बच्चे को एक कटोरा दूध दिया जाता था । वह बच्चा अपने सामने कटोरा रखे हुए दूध पी रहा था, इतनेमे साप आया और उस कटोरे से दूध पी लिया। उस बच्चेने सापके कई थप्पड़ मारे, पर सापने सहन कर लिया। खूब दूध पीकर वह मस्त हो गया। इसी तरह वह नित्य प्रति दूध पीकर मस्त हो रहा था। दूसरे सापने कहा कि तुम क्या खाते हो जो कि मोटे-तगड़े हो रहे हो, उसने कहा कि तुम इसकी कला नहीं जानते हो। मैं नित्य प्रति बच्चेको पिलाया जाने वाला दूध पी लेता हू, बच्चा मुझे मारता है और मैं क्षमा करता रहता हूँ, थप्पड़ सहन करता रहता हूँ, खूब दूध पीता हूँ। दूसरा साप बोला कि मै भी ऐसा ही करूगा। पहलेने कहा– कैसे करोगे? बोला कि मै सौ थप्पड़ तक क्षमा कर दूगा। सवेरा हुआ बच्चेके लिए दूध आया, दूसरा साप बच्चेका दूध पीने लगा, बच्चेने एक थप्पड़ मारा, दो थप्पड़ मारे, दस थप्पड़ मारे, पचास थप्पड़ मारे, निन्यानवे थप्पड़ मारे और सौ थप्पड़ मारे, साप सब सहन करता गया। जब उस बच्चेने एक थप्पड़ और मारा तो झट उस सर्प ने फूकार मारी। अब उस फुकारको सुनकर सब लोग उसके ऊपर टूट पड़े और उन्होने उसे मार डाला। वह सर्प मनमे वासनाये भरे हुए था कि मैं सौ थप्पड़ तक सहन करूगा, आगे नहीं। इस वासना के ही कारण वह मारा गया।

अन्तरमे कषाय, विषय जो भरे हुए हैं, वे सब परेशान करते है। लोग कहते है कि जब जाप करते हैं तो दसो जगहो पर मन जाता है और अगर अपनी दुकानपर रहते है तो एक ही जगह पर मन रहता है। इसलिए जापसे अच्छी तो मेरी दुकान है। अरे, दोनो एक ही जगह हैं, सस्कारसे कर्मबन्धन हुआ करते हैं। यह न समझो कि दुकानदार बैठने से उपयोग दस जगह नही जाता, सो कर्मबन्ध नही होता। जैसी वासना है, वैसा बध है। बात तो बल्कि यह अच्छी समझनी चाहिए कि जो नाना विषय कषाय भरे हुये हैं उनको जाप का प्रसग सब बतला देता है। अब ज्ञानोपयोग करके उन विषयकषायोको निकाल दो, अब यह करना चाहिए कि अपने ज्ञानस्वभावका, ध्यानका, मननका, चितनका विचार तो करना ही चाहिए और वासनाओ का, कषायो का तिरस्कार करना चाहिए। यही मेरा विक्रम है कि मैं ज्ञानस्वरूप रहूँ और अपना विक्रम मानू। यदि मैंने यह विक्रम कर लिया तो मैं अपने लिए आनन्दस्वरूप हो सकता हूँ।

।। सुख यहां प्रथम भाग समाप्त ।।

।। ॐ ।।

सुख यहाँ द्वितीय भाग

(सहजानन्द गीता प्रवचन)

(अध्यात्म सूत्र द्वितीय अध्याय पर प्रवचन)

रचियता व प्रवक्ता–अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

।। अध्याय २ ।।

य· संयोगजया दृष्ट्या भाति सयोगज किल ।
तौ नाहं मे न तौ हित्वा स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१।।

अर्थ– सयोग से होने वाली दृष्टि के द्वारा जो संयोगज पदार्थ प्रतिभासित होता है निश्चय से वह दोनों अर्थात् संयोगज दृष्टि व संयोगज पदार्थ मैं नहीं हूं । मेरे वे दोनों नहीं हैं, इसलिये उनसे लक्ष्य हटाने रूप उपाय से उन दोनों को त्यागकर अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं ।

इस लोक मे इस सयोगजन्य दृष्टि के द्वारा जो जो कुछ सयोगजन्य पदार्थ मालूम हो रहे है सो न तो यह सयोगजन्य मै हू और न सयोगजन्य पदार्थ मै हूँ । मै देख रहा हूँ किन को देख रहा हूँ ? इन सयोगजन्य पदार्थो अर्थात् परमाणुओ के सयोग से बने हुए इन ढाचो को देख रहा हूँ । कमण्डलु है यह भी सयोगजन्य पदार्थ है, अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखने वाला पदार्थ नही है क्योकि यदि यह अपनी स्वतन्त्र सत्ता वाला हो तो यह मिट नहीं सकता । जो सत् है वह त्रिकाल है वह मिटा नही करता है। दरी हैं, चौकी है, शरीर है ये सारे के सारे सयोगजन्य पदार्थ है स्वय सारभूत नहीं हैं इसीलिए ये माया रूप है, परमार्थ नही है । जो कुछ भी देख रहे हैं वे कुछ परमार्थ नहीं है, ये सब सयोगजन्य है, माया रूप है मिट जाने वाली चीजे है । वास्तविक रूप तो कुछ और हो परन्तु रूप कुछ और बन गया हो, तो वे सब बनावटे है, माया है, इन्द्रजाल हैं । यदि कहा जाय कि यह ईश्वर की लीला है तो विचार करने पर निर्णय पावोगे कि खाली जीव या खाली ईश्वर से यह लीला नहीं बनती, यह कर्म उपाधि से बनती है, यह प्रकृति के निमित्त से बनती है, प्रकृति की चीज है । किसी भी तरफ देख लो ये सव मायामय वस्तु है, सयोगजन्य पदार्थ हैं, सहजरूप नहीं हैं । तो मोह मे मै क्या बन रहा हूँ, यही सब मैं हूँ मैं और कुछ नही हूँ ऐसा अज्ञानी बन रहा हूँ, अरे भैया, ये असारभूत मायामय पदार्थ माया की वस्तुयें हैं प्राकृतिक

हैं याने प्रकृति के विकार हैं । किन्ही भी शब्दो मे कहे जो कुछ माया दिख रही है इसको देखने वाला कौन है ? किसके द्वारा हम देख रहे है, इस एक के द्वारा नहीं, जिस दृष्टि के द्वारा यह दिखता है वह दृष्टि ही सयोग जन्य होती है, जिसकी ओर देख रहे है वह भी मायामय वस्तु है, केवल के द्वारा होने वाली बात नहीं है । यही दृष्टि भी केवल पुद्‌गल नही है केवल जीव भी नही है जो देखने का काम करती है । दिखने वाले तो ये पुद्‌गल है, वे कुछ नहीं देखते है। पुद्‌गल देखे तो मुर्दा शरीर भी देखे, जीव देखे तो ऐसी सयोग दृष्टि सिद्ध की भी हो जाय, ऐसा देखना केवल न आत्मा का काम है, न केवल पुद्‌गलो का काम है और दोनो का मिल करके भी काम नही, और काम होता रहता है । देखो तो यह दृष्टि भी गजब की माया है । मायामय चीजे है । मायामय ही दिखाई पड़ती है । तो न मायामय चीजे मेरी हैं और न मायामय दृष्टि मेरी है ओर न ये दोनो मेरे है। इस कारण उन दोनो को समाप्त करके त्याग करके अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ ।

भैया ! त्याग कहते किसे है ? यथार्थ ज्ञान कर लेना इसी के मायने त्याग है जैसे विरोध मे मित्रता का त्याग है । इसी तरह यह धन वैभव बना हुआ है वह भी भिन्न पदार्थ है, उसका लेना देना आत्मा मे नहीं है ।

यदि यह कल्पना बनी कि मेरे पास धन हे तो मै धनी बन गया और यदि यह मैने मान लिया कि मेरे पास धन नही है तो मै गरीब बन गया । एक कल्पना ही तो है । यह अपने को जैसा माने तैसा हो जायगा । जो जो कुछ दिखते है वे सयोगजन्य पदार्थ है । यथार्थतया परमार्थ मे कुछ भी तत्व नहीं दिखता । जिस जीव मे प्रीति होती है मोह होता है वह परमार्थ से अत्यन्त भिन्न है, किसी पदार्थ मे प्रीति करे तो वह कुछ अपना नही हो जाता । जैसा देखा होगा कि बहुत से मनुष्य हैं जिनसे बोलने का भी प्रसग नहीं होता और आपको उनके प्रति मोह और प्रीति उत्पन्न हो जाती है । तो मोह और प्रीति का कारण तो तुम्हीं हो याने तुम्हारी कल्पना है । केवल अपने अन्दर मोह और प्रीति की कल्पनाये भर ली है । अव तुम्ही दु खी रहो, वह तो जो है सो है । सो जो खोटे भाव करेगा वह स्वय मिट जायगा। इस नश्वर मायामय वस्तुओ का सग्रह करने के उद्देश्य से अपने आपकी रुचि छोड़कर छल, धोखा आदि करे तो यह अपने आप पर वहुत वड़ा अत्याचार है । और यदि अपने ईमान और सच्चाई पर दृढ हो और फिर अपने बल से, धर्म से स्खलित न होकर शान्त रहे तो आत्मा मे एक आनन्द का चमत्कारसा उत्पन्न होगा । मन्दिर मे भगवान की मूर्ति के सामने ध्यान करते है तो किस बात से करते है इस प्रभु की मूर्ति की मुद्रा ऐसी है कि मानो वह कह रही है कि तू समस्त जजालो को छोड़ । हे आत्मन् ! कुटुम्ब परिवार इत्यादि को त्यागकर मुझ जैसा विश्राम पा । तेरा किमी से प्रयोजन नही है । तू अपना प्रयोजन किसी से न रख तू अपने आप मे ध्यान करके शात हो जा । और अपने आप के स्वरूप मे आनन्दमग्न हो जा । केवल तू शुद्ध अपने आप रहेगा और आनन्दमग्न हो जायगा ।" हे भगवान आप तो शुद्ध हो गये, अपने आप मे आनन्दमय हो गये । धन्य है तुम्हे 'भगवन् ! यही आपकी महत्ता है ।

सो भैया, किसी से तेरा प्रयोजन न रहे और स्वय मे विचार करके आनन्दमग्न हो तो तेरी स्थिति

उस भगवान सरीखी हो सकती है । तू मन्दिर मे मूर्ति को देखकर इस प्रकार से ध्यान कर कि उस मूर्ति के देखने से तुझे शाति की शिक्षा मिले, त्याग की शिक्षा मिले । यही वास्तविक मूर्ति की पूजा है और यदि मूर्ति को खूब सजाये, ऊचा आसन बनाये, सिहासन बनाये और उस मूर्ति को बैठाये और यदि उस मूर्ति से शिक्षा न हो सके तो वास्तविक पूजा नही कही जायेगी। जिस मूर्ति से तुम्हे त्याग की शिक्षा प्राप्त हो तथा शाति एव धैर्य की शिक्षा प्राप्त हो वही तो प्रभु की मूर्ति है ।

हे आत्मन् ! त्याग ही सार है । तू त्याग को ही अपनाकर यदि ध्यान को बनाता है तो आत्मा को क्लेश नहीं है, और यदि त्याग से विमुख होकर इस प्रकार के दूषित वातावरण मे पड़े तो आजीवन क्लेश रहेगे । मूर्ति जो कि मन्दिर के अन्दर होती है उसकी मुद्रा त्यागमय है, उसके दर्शन से त्याग की शिक्षा मिलती है ।

हे जगत के प्राणियो ! यदि परिग्रह का त्याग नहीं, स्त्री पुरुषो से वैराग्य नही और ऊटपटाग बैठने का ही काम रहा तो आजीवन क्लेश होगे । अरे अपने मे विराजमान साक्षात् परमात्मतत्व को देखो और अपने समस्त माया, मोह को त्यागो । यदि यह भाव उत्पन्न होता है तो तुझे सुख है । तेरे सुखी बनने का अमोघ उपाय है । जैसी प्रभु की शात मूर्ति है वैसा शात बनने की कोशिश करो । उस मूर्ति के दर्शन से जो शिक्षा मिलेगी वह तेरे लिये कल्याणकारी है । देखो जिनमे फसे हुए हो वे सब मायामय पदार्थ है, उन समस्त मायावी पदार्थो से प्रीति मत करो, सावधान ! ये सब खतरनाक है । तू परसे प्रीति मत कर । यदि पर की प्रीति मे फस गया तो तुझे क्लेश है । प्रीति करते समय तो वह सब अच्छा लगता है । स्त्री बड़ी उत्तम है, बड़ी गुणवान है, बड़ी रूपवान है, पुत्र बड़े अच्छे है, मित्र बड़े अच्छे हैं, परन्तु भैया ! ये तेरे नहीं हो सकते हैं, ये सब तेरे लिये जजाल है । उनसे तेरा हित कुछ नही, अहित ही रहेगा । यह गृहस्थी बसाई गयी है । गृहस्थ धर्म बताया गया है, पर स्त्री पुरुषो से आनन्द प्राप्त करना ही नही बताया गया है । इसलिए यह गृहस्थ धर्म नही है । हे भाई ! तेरा काम तो यह है अपने सारे आरम्भ परिग्रह का त्याग करके अपने अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, आकिञ्चन्य मे आ करके आत्मयोगी बन मोक्ष मे पधारो । किन्तु जो कोई कायर है, कमजोर है, कुछ करते नहीं हैं तो उसे बताया है कि इस प्रकार की गृहस्थचर्या को धारण करके तुम धर्म के कामो मे लगो । यदि धर्म के कामो मे लगोगे तो तुम्हारा कल्याण है । यह गृहस्थी इसलिए बसाई हे कि तुमसे महाव्रत नहीं पल सकता तो एक स्त्री व छोटी गृहस्थी मे सतोष करके बाकी सब पापो से दूर रहो ।

हे आत्मन् ! आकुलताये बनाये रखना और झझटो मे पड़ा रहना यह गृहस्थी का धर्म नही है । इसलिए तू इन समस्त झझटो एव आकुलताओ से विलग होकर अपने आप मे रमो । जब अपने आप मे रमोगो तभी गुजारा होगा अन्यथा नहीं, जो बच्चा अच्छी तरह से नहीं चल सकता है उसके लिए माता अगुली का सहारा देती है । इसी प्रकार जो सकल सन्यास नही कर सकते हैं । उन्हे गृहस्थ धर्म का सहारा दिया गया है, भाव तो वहा भी शेष समस्त पापो से दूर होने का है । ज्ञानी के प्रतीति है कि यह मै नहीं हूँ, यह मेरा नहीं है इसलिए मैं इन सबको त्याग देना हू । त्यागना क्या है, यह मान लो

कि ये भिन्न हैं, मेरा इनसे कुछ सम्बन्ध नहीं है । मै तो एक ज्ञानानन्द भावात्मक वस्तु हूँ । स्वय आनन्दस्वरूप हूँ, परिपूर्ण हूँ, अधूरा नहीं हूँ । मुझमे कमी नही है हमे बनना नही है हम बने बनाये है । मेरे मे सब वैभव भरा है, सब तैयार है । केवल ऊपर की ढकी हुई अज्ञान की चादर को उठाने की जरूरत है । जैसे भोजन भीतर सब तैयार है, किन्तु उस थाली पर छन्ना ढका है तो सिर्फ छन्ना उठाने की जरूरत है । आत्मा मे ज्ञान, आनन्द, दर्शन, चारित्र इत्यादि समस्त चेतन गुण भरे पड़े हैं । केवल जानने भर की जरूरत है । अज्ञान का छन्ना पड़ा हुआ है उसे हटा लो। पूरी सावधानी करके अपने जौहर को देखो और उसका आनन्द लूटो इन त्यागे जाने योग्य पदार्थो मे पड़ने से अपना कभी कुछ पूरा नही पड़ेगा, अत यह साहस करो कि मैं इन सयोगजन्य पदार्थो का त्याग करू और अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ ।

अब यहा यह जिज्ञासा होती है कि जब मै यह दृष्टि नही हू तो क्या हूँ या कुछ भी नही हूँ और हूँ तो कहा देखू ? इसके समाधान मे कहा जाता है–

नाहमन्यत्र नान्यस्य न नष्टो न वहिर्गत. ।
किन्तु ज्ञायकभावोऽह स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-२।।

अर्थ– **मैं अन्य जगह नहीं हूं, अन्य का नहीं हू न नष्ट हुआ हू न बाहर गया हूं किन्तु ज्ञायक भाव स्वरूप मैं यह मैं अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊ।**

यह मैं आत्मा अन्य किसी जगह नहीं हूँ, मुझमे ही हूँ । यह मै आत्मा किसी अन्य का नहीं हूँ, मैं मेरा ही हूँ । यह मैं आत्मा कभी नष्ट नहीं हुआ और न नष्ट हूगा, मै ध्रुव हूँ । यह मै आत्मा अपने से बाहर कभी नहीं गया जो मुझको अपने को ढूढने की हैरानी करनी पडे, क्योकि यह ज्ञान स्वरूप आत्मा यहीं का यहीं विराजमान है । यह तो ज्ञान के चमत्कार के कारण त्रैलोक्याधिपति है । तीन लोक के अधिपति बनने का उपाय आकिंचन स्वरूप आत्मा का दर्शन है । एक जगह गुणभद्र स्वामीने कहा है कि–'अकिचिनोऽहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवे । योगिगम्य तव प्रोक्त रहस्य परमात्मन ।

गुरुजी अपने शिष्यों से कहते हैं कि आज मैं तुम्हे परमात्मा बनने का रहस्य बतलाऊ तो शिष्यो ने कहा कि हा हा गुरुजी बतलाओ । गुरुजी ने कहा कि देखो मैं अकिचन हूँ, मेरा कहीं कुछ नहीं है, मेरा मैं ही हू, मेरे से बाहर मेरा न तो गुण है, न पर्याय है, न असर है, न लगाव है और कुछ भी नहीं है, ऐसा मानकर टन्नाकर बैठ जाओ, ऐसा अपने मन मे जिद्द वनाकर ठहर जाओ, तो तू तीन लोक का अधिपति हो जायगा । देखो भैया, यह परम औषधिमय उपदेश है । सर्व क्लेश मिटने की सबसे उत्कृष्ट परम औपधि है तो है अकिचन की भावना । जैसे कोई रोग हो जाय तो कहीं उस डाक्टर से इलाज करवाया कहीं इस डाक्टर से इलाज करवाया परन्तु किसी से भी आराम न हुआ तो जिसको वह ज्यादा समझदार समझता है उससे आखिरी मे इलाज करवाने के लिए कहता है और उसी से इलाज करवायेगा । अरे अव आखिरी एक इलाज तो करवालो । इसी तरह ससार के दु ख दूर करने का इलाज

बहुत तरह का करवाया । धन वैभव हो जाये, कुटुम्ब परिवार हो जाए, लड़के बच्चे हो जाये इस भाव से बहुत यत्न किए, इलाज किए, किन्तु इन उपायो को करके भी कष्ट से दूर नही हुए । कितने ही विपरीत उपाय कर डालो पर दु ख दूर नही होगे । बस दु ख दूर करने का तो इलाज यह है कि अपने को अकिचन मानो, बस ससार की सारी चिन्ताये सारे क्लेश समाप्त हो जावेगे । अपने को मानो कि मै अकिचन हूँ, मेरा तो मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं है । यही सबसे अच्छा इलाज है । सो भैया अपने को अकिचन मानकर अपने आप मे विश्राम तो कर लो । यदि अपने को अकिचन मान लिया और अपने आप मे ही विश्राम पाया तो त्रिलोक के अधिपति हो जाओगे । मै यहाँ अपने आप मे हूँ, अपने ही स्वरूप को लिए हूँ, मेरे मे अनन्त आनन्द भरा हुआ है, मै कैसा विलक्षण, सबसे निराला, ज्ञानानन्दमय, परमपवित्र पदार्थ हूँ, कही बाहर नहीं हूँ, अन्यत्र नहीं गया हुआ हूँ । भैया, अपने आपको न निरखकर यह जीव शून्य बन जाता है, अपना पता ही नही रखता है, बाह्य मे दृष्टि रखता है, अपने को सकिचन भाव मे लगाता है । इसी से उसे क्लेश हुआ करते है । हम अपने आपको समझे कि मैं अकिचन हूँ, मेरे से बाहर मेरा कुछ नही है और जो कुछ मुझमे है वह बाहर से नही आता है । मेरे मे तो मेरा स्वरूप चतुष्टय विद्यमान है । यह मैं ज्योतिस्वरूप पदार्थ हूँ । देखो लोक-व्यवहार मे भी उस मनुष्य की इज्जत बढ़ती है जो मनुष्य यह कहता है कि मै कुछ नहीं हूँ, जीवन भर बड़े बड़े दान के काम भी कर लिए, देश और समाज की सेवाओ का भी काम कर लिया, उनकी प्रतिष्टा भी बढ़ गयी, उनकी शोभा भी बढ़ गयी, यश भी चारो ओर छा गया, उनका सम्मान भी होता है पर यह तब तक है जब तक वह अपने को 'ना कुछ' कहता है । उसने परमार्थ से भी देख लिया कि मैं ओरो के लिए कोई चीज नही हूँ, मेरा जगत् मे कुछ नही है । मै केवल अपना स्वरूप मात्र हूँ यदि मै अपने को इस तरह से समझू तो अन्तर मे पारमार्थक इज्जत हो जायेगी । आनन्द चाहते हो तो आनन्द का उपाय इस अमूर्ततत्व को ही उपयोग मे लेना है । मै अकिचन हूँ । मेरा कुछ नहीं है, अन्यत्र ।

एक साधु था। उसकी लगोटी को चूहे काट जाया करते थे, अब साधु को यह बहुत बड़ी हैरानी हुई । साधु ने चूहे से रक्षा के लिए एक बिल्ली पाली । बिल्ली दूध पीती थी अब उस बिल्ली को दूध पिलाने के लिए एक गाय पाली । उस गाय को चराने वाला कोई नौकर या नौकरानी होना चाहिये सो गाय को चराने के लिए एक नौकरानी रखी । कुछ समय बाद उस दासी के कुसग होने से लड़का पैदा हुआ । उस साधु ने देखा कि पहले बिल्ली थी, फिर गाय हुई, फिर गाय का बच्चा हुआ, फिर नौकरानी हुई, फिर लड़का हुआ, इस तरह से मेरा घर तो भर गया । अब उन्हे किसी गाव जाने की जरूरत पड़ी क्योकि घर तो भर गया था उसका, गुजारा सबका करना था। रास्ते मे एक नदी मिली, उस नदी से सब निकलने लगे। अचानक ही नदी मे एक छोटी सी बाढ़ आयी जिससे सबके पैर उखड़ गये, सब बहने लगे। दासी ने झट साधु को पकड़ा, क्योकि रक्षा करने वाले तो वही थे। इस तरह से सब उस साधु की शरण मे गये। बिल्ली भी गई, गाय, गाय का बच्चा तथा लड़का इत्यादि भी उस साधु की शरण में गये। अब तो साधु सोचता है कि अरे ये सारी बला तो केवल लगोट के कारण आई है। लगोट

के ही कारण गाय, गाय का बच्चा, बिल्ली, दासी, दासी का लड़का इत्यादि से विडम्बना हो गई है। अब उस साधु ने लगोट को झटके से निकालकर फेक दिया और सत्य विचारने लगा कि ये जीव मेरे कुछ नहीं हैं। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, उसे ज्ञान हो गया। देखो भैया, उस साधु ने पर से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था तो उसे अब क्या-क्या तकलीफे उठानी पड़ी? जो अपने को पर से मिला हुआ समझता है वह डूब जायगा और जो अपने को कुछ नहीं समझता है वह तर जायगा।

यह जीव अकेला रहकर बड़े आराम से बना रहता है । पुद्गल भी मासादि रहित पवित्र बने रहते हैं। इस जीव की गड़बड़ाहट से पुद्गल की यह दशा हो गई । इसी से जीव की यह दशा हो गई। अच्छी नुक्ती का बढ़िया लड्डू खूब बढ़िया बना है, खूब मजेदार है, तबियत भी ठीक है, स्वास्थ्य भी अच्छा है, यह आदमी अच्छा है, बस अब लड्डू खाये तो लड्डू खाने से लड्डू की क्या हालत हुई सो मुह बाकर आईना मे देख लो। खाने वाले की तो तबियत खराब हो जाती है और लड्डू बेकार हो जाता है, यह तो हुई लड्डू की दशा। लड्डू अपनी जगह पर अच्छा था, आदमी अपनी जगह पर अच्छा था अपनी जगह पर रहते तो दोनो मजे मे थे।

ये दुनिया के सारे वैभव, मित्र जन, कुटुम्ब, परिवार इत्यादि भी हो तो इन किन्हीं से भी हमारा पूरा न पड़ेगा, खराबी ही रहेगी। जो पदार्थ जहा जिसमे जिस स्वरूप मे है, बना रहने दो। उनमे यदि पड़े तो उनमे भी खराबी है। खुद मे भी खराबी है। यह अकिचन भाव सकट रोग की अमोघ औषधि है । कितने ही कष्ट हो, जरा अपने को ज्ञान मे अकिचन बना लो तो सब क्लेश मिट जायेगे। अरे भाई अपने को सबसे निराला समझो कि मै अकिचन हूँ, मेरा कहीं कुछ नहीं है मैं तो आनन्दमग्न ही हूँ। यह अकिचन भाव अच्छा है । यदि अकिचन भाव अपने मे न आया तो बड़ी-बड़ी झझटे पड़ जायेगी। जैसे कि लौकिक झझटे बहुत पड़ गई हो, बड़ी चिन्ताये हो गई हो उसमे २० हजार लगे, इसमे ५ हजार लगे, टोटल किया तो २५ हजार का नुकसान आया। अरे यह नुकसान मेरा कुछ नहीं है, हो जाने दो। उससे मुझे कुछ नुकसान नहीं पहुच सकता है, इस प्रकार का यदि विचार बन जावे तो लो दु ख मिट गया और यदि इसके विपरीत विचार बने तो क्लेश बढ़ते ही चले जावेगे। जैसे सट्टा खेलते हैं तो मिलता कुछ नहीं है, केवल कहते हैं कि इतने पैसे लगे है, यह खरीदा वह खरीदा। खरीदना कुछ नहीं पड़ा, पैसे कुछ नहीं लगाने पडे, सट्टा खेलते है। इसका फल केवल यह हुआ कि पूरे रात-दिन जगे इसी तरह इन पदार्थो से हमे लेना देना कुछ नहीं इनसे अपना सम्बन्ध कर लेने से नुकसान ही है, जैसे सट्टा खेलने का फल केवल पूरी रात का जागरण है उसी प्रकार से पर पदार्थो से सम्बन्ध स्थापित करना, उनको अपना इष्ट अनिष्ट मानना इसका फल केवल क्लेश है, यह सब धोखा है, परन्तु यदि अपने को अकिचन मान लें तो तीन लोक के अधिपति हो जावे। देखो—घर में बच्चो मे कोई चीज का झगड़ा हो जाय, किसी चीज के वितरण मे कोई बच्चा यह कहे कि हम यह चीज नहीं लेगे हमे कुछ नहीं चाहिए, मा बाप कहते जाते है कि नहीं बेटा और ले लो, बेटा नहीं कर देता है। अब उस नहीं कर देने के बदले मे और और मिलता है, जो शान्तिरूप हैं, जिन्होंने नहीं, नहीं कहा। जो यह कह देते हैं कि हमे चाहिए तो उनके लिए

मा बाप कहेगे कि अब नहीं मिलेगा। इसी प्रकार आत्मन् ! ज्यो-ज्यो पर पदार्थो से बाहर होते जाओगे, उनके लिए यह कहोगे कि मुझे कुछ नहीं चाहिए तो पावन होता जायगा और त्रिलोक के अधिपति हो जाओगे। यदि कुछ मागोगे तो कुछ नही मिलेगा। आचार्यदेव के वचनो से हमे यह शिक्षा मिलती है कि हे जगत के प्राणियो ! परपदार्थो मे न पड़ो ये सब गोरखधधा है।

भैया ! तुम कहा अपना विश्वास कर रहे हो ? ये सब परपदार्थ तुम्हारे लिए हितकर नही है। कौन सी ऐसी चीज है जिससे पूरा पड़ जायगा। अरे पूरा पड़ने वाली कोई चीज नही है, यदि तू इनमे पड़ा तो तेरी दशा खराब हो जायेगी। तू अपने को अकिचन मान। अपने आप मे विश्वास कर कि मै अपने आप मे हूँ, अन्यत्र नहीं हू, परिपूर्ण हूँ, नष्ट नहीं हूँ, मै बाहर नही गया हूँ। इस तरह सबकी ओर उपेक्षा करके रहे तो आत्मवैभव वृद्धिगत होता है, और जिसके केवल पर्यायबुद्धि के कारण भीतर मे लगाव होता है कि मै यह इन्सान हूँ, मैं अमुक हूँ, उसके पर्यायबुद्धि के हो जाने से खोटे अभिप्राय बढ़ जाते हैं।

देखो भैया ! एक अपने आपसे परिचित न होकर जिन्दगी बेकार चली जा रही है। आपको भावो, चाहे अकिचन भावना हो, चाहे ज्ञानमात्र भावना हो, प्रयोजन दोनो का एक है, मैं केवल ज्ञानमात्र हूँ। जानन एक विलक्षण भाव है जिसका उपाय दुनिया मे अन्यत्र कही नही मिलता है, किसी को स्पष्ट नहीं दिखता है, उस जानन के पेट नही है, पैर नही है, शक्ल नही है। रूप, रस, गध इत्यादि उस जानन मे नहीं है। यदि हम अपने को ज्ञानमात्र मानते है तो आनन्द है और यदि इसके विपरीत अपने को समझते है तो हमे क्लेश है।

हम अब तो अपने घर मे रहते ही नहीं। कितने कष्ट की बात है? अरे बाहर भी रहते हो तो घर मे दो-चार घण्टे को तो घुसा ही करते हो। अनन्तकाल व्यतीत हो गए। बाहर ही बाहर दृष्टि रही, विपदाओ के साधनो की ओर ही दृष्टि रही। अरे ज्ञानघन आत्मा को तो देखो। सोने चादी के ढेरो मे क्या रखा है? दौलत से, धन-वैभव से तुम्हारा क्या विकास, क्या उत्थान हो जायगा? व्यर्थ ही क्यो हे जगत के प्राणी! तू अपने मे ही सकल्प विकल्प करके दु खी होता है। तेरी आत्मा तो दु ख रूप है ही नही। वह तो आनन्दघन है फिर तू क्यो दु खी हो रहा है? अरे इन सकल्प विकल्पो को टाल दो तो आनन्द उत्पन्न हो जायगा। मेरा सुधार करने वाला, मेरा बिगाड़ करने वाला मैं ही हूँ, मुझे अपने को ज्ञानस्वरूप, ज्ञानानन्दमात्र निरखकर आनन्दमय होना चाहिए। यह प्रभु तो यहीं विराजमान है, अति निकट क्या, यही मै हूँ। परमात्मतत्व कुछ अन्य वस्तु नही है, चेतनत्व ही परमात्मा होता है। केवल पदार्थ समझ लेने व न समझ पाने का ही सारा अन्तर हो जाता है। जिन्होने अपना यथार्थ स्वरूप समझा और इसी कारण द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय व उनके विषयभूत वस्तु मे अपना प्रयोजन नहीं समझा और इन तीनों से उपेक्षा की और उपेक्षा करके अपने ज्ञानस्वभाव मे रत हुए तो परमात्मत्व प्रकट हो जाता है, ऐसा ही स्वरूप मेरा है। उसका ध्यान कर सर्व क्लेशो से मुक्त हो जाने का उपाय कर लेना ही परम विवेक है।

विष वद्विषयांस्त्यक्त्वा पृथक्कृत्य वपुर्धिया ।
स्वात्मानमेव पश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-३।।

अर्थ– विष की तरह विषयों को छोडकर शरीर को बुद्धि के द्वारा पृथक् करके अपने स्वात्मा को ही देखू और अपने में अपने लिए स्वयं सुखी होऊ।

देखो भाई ! ये विषय जिनमे ससार के प्राणी अधे हो जाते है, विष से भी भयकर है विष तो एक ही भव मे प्राण का हरण करता है, परन्तु विषयो की आसक्ति भव-भव मे मूल प्राण का, चैतन्य प्राण का हरण करता है अर्थात् ज्ञान दर्शन का विकास नही होने देता। ससार के विभिन्न तिर्यञ्चोको तो देखो, ये तो देखने मे आ ही रहे है। हाथी हथिनी के सम्पर्क की धुन मे जगल मे बनावटी हथिनी के समीप दौड़कर जाता है और उस स्थल पर जाते ही गड्ढ़े मे गिर जाता है, दु खी होता है और पराधीन हो जाता है। मछलियो को देखो–जरा से मास खड के खाने के लोलुपी होकर धीमर के जाल् मे फस जाती है। धीमर लोग फिर उनको पकड़कर अलग रख देते है वे मर जाती है या कहीं-कहीं पर मछलियो को जिन्दा ही आग मे भून डालते हैं। भ्रमर गध के वशीभूत होकर पुष्प के भीतर ही नि स्वास हो जाते हैं। पतगे रोशनी की ज्वाला पर पड़कर मर जाया करते है, यह तो प्राय देखते ही रहते होगे। साप, हिरण आदि तो शब्दराग के विषय मे मस्त करके पकड़ लिए जाते है सपेरे व शिकारियो के द्वारा, जब इन जीवो की एक-एक इन्द्रिय के विषय के वश मे ही ऐसी दुर्गति हो जाती है तो हाय यह मनुष्य रूपी कीट जो पाचो इन्द्रियो के विपयो का दास है इसका क्या हाल होगा।

अत भैया ! पुण्य के उदय से पाया तो सब कुछ समागम है, परन्तु उसके भोगने से पहिले कुछ विवेक का भी आदर कर लो, अन्यथा पछतावा करना ही हाथ रहेगा। विषयो को विष की तरह अहितकारी समझकर और कषायो के साधनभूत शरीर को आत्मा से पृथक मानकर उन सबसे उपेक्षा करना, बस यही धर्म मार्ग है। ये विषय भोग ससार मे परिभ्रमण कराते हैं, जन्म परम्परा बढ़ाते है तब कर्तव्य क्या है कि इन विषयो को छोड़कर और इन विपयो के साधनभूत शरीर को भी आत्मा से पृथक देखकर सबसे उपेक्षा कर दो। मैं अपने आप मे उपयोगी होऊ। इन्द्रिय विषयो को जीतने के लिये मुख्य उपाय ज्ञान ही है। घर छोड अथवा किसी के नाम पर धर्म की उपासना कर ले, बडे बडे कार्य कर ले सव ठीक हैं, परन्तु निर्विपय आत्मतत्व का जब तक दर्शन नहीं तब तक इन्द्रियो को जीता नही जा सकता है और जब तक इन्द्रियो पर विजय नहीं होगी तब तक मोक्षमार्ग नहीं प्राप्त हो सकता है। इन्द्रियविषयो को जीतने के लिये कैसा उपयोग बनाना है, इस सम्वन्ध मे समयसार मे श्री पूज्यपाद अमृतचद सूरि जी कहते हैं कि विपयभोग का सम्वन्ध तीन वातो से हुआ करता है–१ द्रव्य इन्द्रिय २ भाव इन्द्रिय और ३ उनके विपयभूत पदार्थ । विपयभोग का सम्वन्ध इनसे रहा करता है। द्रव्य इन्द्रिय के निमित्त से उनके विपयभूत पदार्थो से इन्द्रियज्ञान करके रमण होता है। इस तरह से भोग भोगने के लिए तीन से वास्ता पड़ता है–द्रव्य इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय और विपयभूत पदार्थ। द्रव्येन्द्रिय तो शरीर मे दिखने वाले ये हैं ही। इन्द्रिय के निमित्त से जानकारी होती है, वह जानकारी भावेन्द्रिय है। और विपयभूत पदार्थ जगत के ये पुद्गल पदार्थ है।

ये विषय पाच प्रकार के होते है—स्पर्श तो स्पर्शनका विषय है, रस रसना का विषय है, गन्ध घ्राण का विषय है, रूप चक्षुका का विषय है, शब्द श्रोत्र का विषय है, चक्षु इन्द्रिय और रसना इन्द्रिय तो दुनिया मे कमाल कर रहे है। हम इन इन्द्रियो के प्रति कैसा ज्ञान बनावे कि विषयो से हटकर अपने स्वभाव मे लग जाये। कहते है कि इन्द्रिय क्या हैं? इन्द्रिय पुद्गल है, जानने वाली नहीं है। यह मै आत्मा ही चैतन्यस्वरूप हूँ जो जानता हूँ, ज्ञानमय तत्व हूँ, सबसे निराला हूँ। मुझमे और इस पौद्गलिक इन्द्रियो मे कितना अन्तर है? ये इन्द्रिया तो मै हूँ नहीं, ये तो मेरे से भिन्न हैं।

विशिष्ट ज्ञान करके ही हम इन इन्द्रियो के वशीभूत हो जाते है, और इन्द्रियो के वशीभूत होकर दु ख उठाते है। हमे इनको विजय करने के लिये इनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए, लोग इन इन्द्रियो को दण्ड दे देते। इन्द्रियो को विजय करने के लिए जीभ काट डालो, कान काट डालो, नाक कतर डालो, आखे फोड़ दो। क्या यह इन्द्रिय विजय का उपाय है? नहीं, इन्द्रिय-विजय का उपाय है उपेक्षा। क्या करो कि किसी दूसरे की ओर मुडकर भी न देखो, अरे यह तो जग है, उससे तू विलग है, तू तो एक चैतन्य पदार्थ है, तू इन्द्रियो मे क्यो फसा है? भैया ! इन इन्द्रियो मे वशीभूत होकर तेरा ज्ञान दब रहा है। इन इन्द्रियो के कारण ही तो स्पष्ट बात समझ मे नही आती है। तू तो अपने आपको सोच कि मै इन्द्रियो से अपना सम्बन्ध नही रखता, तू अपने को जान कि मै आत्मा स्वतत्र हू, यदि तू अपने को इस प्रकार का बना ले तो यही हुआ इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करना। इन इन्द्रियो के द्वारा ही नाना कषाय बढ़ते है, इन्द्रियो के निमित्त से जो ज्ञान होता है उसे कहते है भाव इन्द्रिय। इन्द्रियो के निमित्त से हमारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान है, पराधीन ज्ञान है। किन्तु मै आत्मा तो अपूर्ण नहीं हूँ। यह आत्मा तो पूर्ण ज्ञानमय है। इन्द्रियो के द्वारा जो ज्ञान होता है वह अपूर्ण ज्ञान होता है। अत परस्पर इन दोनो ज्ञानो मे अन्तर है। मै अपूर्ण ज्ञानवान नहीं हूँ, मै तो अपने को इन्द्रियज्ञान से भिन्न सहज ज्ञानमय देखता हूँ। मुझे तो चाहिए कि इन इन्द्रियो से, खड खड ज्ञान से पृथक् अखण्ड ज्ञानमय अपने आपको अनुभवू और इन्द्रिय ज्ञान से विलग होऊ। इन इन्द्रिय विषयो मे मे स्पर्शन इन्द्रिय का विषय तो उन्मत्ततापूर्ण है। इसके विषय का रोगी पुरुष ब्रह्मविद्या की आराधना का पात्र नहीं है।

रसना इन्द्रिय को देखो इसका विषय भावेन्द्रिय द्वारा ही जान पाया है। खण्ड खण्ड ज्ञान है वह। जैसे कोई अधेरे मे बैठा हुआ आम चूस रहा है। उसको पता नहीं कि आम कलमी है कि दशहरी है कि देशी है। केवल उस आम के रस को जिह्वापर रखता है तब उसे आम का पता चलता है, उसे यह पता नही चलता कि आम किस रग का है, किस रूप का है, देखो यह अपूर्ण ज्ञान हुआ ना। आम के विषय मे पूर्ण जानकारी नही हो पाती ऐसे ही सब इन्द्रियज्ञान है सो भैया ! अपने को इन इन्द्रियो के उपयोगो से हटाओ अब विषयभूत पदार्थों को देखो—ये बाह्यपदार्थ जड है, भिन्न है, परिग्रह है, पर यह मै आत्मा चैतन्यस्वरूप हू केवल हू अलग हू किसी अन्य पदार्थो से मेरा सम्बन्ध नहीं है। ये सब अपनी-अपनी स्वरूपसत्ता मात्र है है, मै अपनी सत्तामात्र हू। इस भेद करके उन बाह्य पदार्थो से अपना सम्बन्ध न स्थापित करो उनमे दृष्टि न डालो, केवल अपने आपको निरखो। अपने इन विषयो को जीतने

का क्या कोई और उपाय है? कुये मे डाल दो अथवा तोड़ फोड दो, इन इन्द्रियो को बरबाद कर दो, कान कतर दो, आखे फोड़ दो, विषयो पर विजय प्राप्त करने का क्या यही उपाय है। अरे ! इन इन्द्रियो का बहिष्कार कर दो, दिल से उतार दो। इसी प्रकार से विषयो को दिल से उतार दो, मोह को भुला दो, जो भिन्न-भिन्न रूपो मे जन्म मरण के चक्र मे डालने वाले है। इन विषय कषायो को त्याग दो। इन विषयो को, मन को, इस शरीर को अपने स्वरूप से पृथक् देखो तथा अपने को ज्ञानमात्र, सबसे निराला समझो और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

इस जगत मे जितने भी लोग पराधीन बने रहते है वे विषयो के कारण ही पराधीन बने रहते है। इसलिए विषयो से छुटकारा प्राप्त करो। कोई किसी से बधा है क्या? कोई किसी से बधा हुआ नहीं है। केवल खुद मे ही वस्तुस्वरूप से विपरीत कल्पनाये बना लेने से बन्धन बना लिया है।

सुकौशल राजकुमार अपनी कुमार अवस्था मे विरक्त हो गये। वह घर छोड़कर चल दिये। तब राजकुमार की अवस्था छोटी थी। वे अपनी मा ओर अपने साम्राज्य सुख से विलग हो गए। देखो, मत्रीजनो ने उन्हे बहुत समझाया, पर वह न माने, कैसे मानते उन्हे ज्ञान हो गया था। वे अपनी आत्मा मे ही लीन होना चाहते थे। तब फिर उनको रोकने वाला कौन था? उनमे यथार्थ ज्ञान हो गया था। तब फिर दूसरो का असर उन पर किस प्रकार से हो सकता था। यदि खुद मे अज्ञानभाव होता तो दूसरो के समझाने पर यह अपने मे अपनी उत्सुकता के कारण उस तरह का असर कर लेता। मत्रियो ने राजकुमार को बहुत समझाया कि आपकी स्त्री के गर्भ है, बच्चा तो हो जाने दो। फिर चाहे चले जाना। मा ने कहा, बेटा ! उस बच्चे को तो राजतिलक दिए जाओ। दुनिया को तो यह बता जाओ कि मै अपने बच्चे को राजतिलक दे रहा हूँ इस लिए हे महाराज ! अभी इतनी जल्दी न जाओ। दो तीन माह बाद फिर चाहे चले जाना। राजकुमार सुकौशल कहते हैं कि अच्छा गर्भ मे जो सतान है उसे मै तिलक किए देता हूँ। जो गर्भ मे सतान है उसे मैं राजा बनाए देता हूँ। ऐसा कहकर सुकौशल राजकुमार विरक्त हो गये।

ज्ञान ही सुख, आनन्द व शान्ति देता है। और यदि ज्ञान नही है तो आजीवन क्लेश है। अत मैं इन विकारो को, विषय कषायो को त्यागकर अपने मे ज्ञान उत्पन्न करूँ, अपने आपके ज्ञान से आनन्द लू और सारे सकल्पो से मुक्त होऊ।

शाति के मार्ग मे बढ़ने के लिए सबसे पहिला कदम है इन्द्रिय विजय अर्थात् इन्द्रियो के विपयो पर विजय प्राप्त करना। यह इस उपाय से सभव है कि इन विपयो मे पृथक्, विपयो के ग्रहण के साधनभूत द्रव्येन्द्रियो से पृथक् और विषय ग्रहण विकल्प रूप भावेन्द्रिय से पृथक् ज्ञानमात्र अपने आत्मतत्व का सचेतन करू। इसके लिए हम प्रारम्भ मे सीधा इतना ही काम ले कि विपय के निमित्तो को दूर करे तथा विषयो के कारण भूत इस शरीर को आत्मा से अलग समझे। फिर इन विकल्पो के दूर होने पर आत्मा मे परम विश्राम होगा जिससे शाति के मार्ग का साक्षात्कार होगा। सुख इस ही स्वरूप मे है अन्य विपयो मे सुख खोजना महामूढ़ता है।

न मे वर्णो न मे जाति र्न मे देशो न विग्रह॰ ।
नैषामहं न्वह त्वेक॰ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-४।।

अर्थ– मेरे वर्ण नहीं मेरे जाति नहीं मेरे देश नहीं मेरे शरीर नहीं और निश्चय से इनका मैं नहीं हूं परन्तु मैं एक हूं उस एक अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊं।

जो आत्मा मे हो उसकी तो हा करना और जो आत्मा मे नही है उसे ना करना। आत्मा मे ज्ञान है सो ज्ञान की हा करना और आत्मा मे वर्ण नही, देश नही, शरीर नहीं, कर्म नही तो उसकी ना करना, ना को ही हा कर दे और हा को ना कर दे उसी का नाम मिथ्यात्व है। आत्मा मे ज्ञान है, पर उसे ना कहने वाले बहुत है, कुछ दार्शनिक भी ऐसे है जो आत्मा का स्वरूप ज्ञान नही मानते बहुत-बहुत बाते हैं, यहा कौन अपने को ज्ञानस्वरूप मानता है ? अरे विशुद्ध व्यवस्था नही है तो मैं हू क्या ? जैसा भी जिसने कह दिया वैसा ही मान लिया और बहक गए। यह तो हाल है सस्कार का परिणाम मे, जैसा जिसने समझ लिया, जैसा सग जिसको मिल गया तैसा ही असर बना लिया ऐसो की संख्या ज्यादा है। जिनको हा का पता नही है और जिनको ना ही का भूत लगा है उनकी तो चर्चा ही यहा नही है, और भीतर दर्शनशास्त्र मे चले तो ज्ञान की ना करने वाले बहुत है। कोई दार्शनिक तो आत्मा का स्वरूप नहीं मानते। क्योकि ज्ञानस्वभाव आत्मा को नही मानते। ज्ञान के सम्बन्ध से आत्मा ज्ञानी है। आत्मा मे ज्ञानरूप नही है, ऐसा मानते है। और इसी तरह और और भी है, आत्मा मे रूप है क्या कि हरा है, कि काला है, कि सफेद है, कुछ भी नही। किन्तु मोही मानता है कि यह गोरा है, यह काला है, यह सफेद है, मैं गोरा हूँ, मै काला हूँ, मै गेहुँवे रग का हूँ। अरे यह आत्मा अनेक रूप नही है। आत्मा मे जातिया हैं क्या? भैया! आत्मा मे कोई जातिया नहीं। आत्मा मे वर्ण नहीं, वह तो चैतन्यस्वरूप, चेतनात्मक प्रभु सरीखा एक वस्तु है, वह आत्मा है। मेरी जाति नही, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इत्यादि कोई जाति आत्मा मे नही है।

विकार और अविकार भावो की तो बात ठीक है कि मेरी इस आत्मा मे विकार तो है, किन्तु स्वभाव मे विकार नहीं है। वह निर्विकार है, निर्विकल्प है, ज्ञानानन्दमय है, ज्ञानघन स्वरूप है। विकारमयी होना आत्मा का काम नही है, वह तो चैतन्यमय पदार्थ है। यद्यपि पर्याय मे परिणामो के अनुकूल ही जातियो मे विभाग है अर्थात् जितने प्रकार के परिणाम होगे उतनी ही जातिया होगी, परन्तु परमार्थ से जैसा मैं हूँ तैसा ही हूँ। मेरे अस्तित्व मे कोई जाति नहीं। जैसे आज हिन्दुस्तान मे हूँ और हिन्दुस्तानी कहलाता हूँ। आगे अगर मरकर इगलैंड मे जाकर किसी अन्य योनि मे जन्म लू तो अग्रेज बन जाऊगा और कहूगा कि मेरा देश इग्लैंड है, मैं अग्रेज हूँ। वास्तव मे भैया, मेरे स्वरूप मे कोई जातिया नहीं, मेरा कोई देश नहीं। जब तक जिन्दा हूँ तब तक तो हिन्दुस्तानी हूँ, अग्रेज हूँ, फला हूँ इत्यादि विकल्प की वाते रहती हैं, पर ज्यो ही मृत्यु हो जाती है उसका विकल्प बदल जाता है। देश की बात देखो, देश के प्रदेश की बात देश मे है, मेरा देश नहीं, मेरे विग्रह नहीं, सुख दु ख का अनुभव तो चैतन्य प्रदेश मे होता है। शरीर मे सुख, दु खों का अनुभव नहीं होता है, ज्ञान, शिक्षा की दात चैतन्य प्रदेश में होती है, शरीरादि में नहीं

होती है। मेरे विग्रह नहीं, शरीर नहीं। मै इनका नहीं और ये मेरे नही, मैं तो केवल एक ज्ञानमात्र हूँ ऐसी भावना ज्ञानी जीव के होती है।

भैया ! जाति और धर्म वेशभूषा या पहनावा का जिनके आग्रह है उनको मोक्ष प्राप्त नही होता। मै किसी जाति वाला किसी शरीर वाला नहीं हूँ, मैं आत्मा चैतन्य जाति का हूँ, ऐसा जानूं। कोई भी आग्रह हो चाहे जानू कि मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ, शूद्र हूँ अथवा किसी प्रकार का विकल्प भरे हुए हूँ तो उस आग्रह के कारण मोक्ष नहीं होता। हालाकि बात ठीक है कि तमाम जातियो मे यह कोई श्रेष्ठ जाति है। हम श्रेष्ठ जाति व आचरण वाले मोक्षपात्र हैं। यदि संस्कार निम्न जातियो मे हुए तो मोक्ष नहीं है तो भी अपने आप मे किसी भी पर्याय का आग्रह हो तो मोक्ष नही होता। मै पुरुष हूँ अथवा स्त्री हूँ ऐसे कोई भी विकल्प मेरे मोक्षमार्ग में बाधक होगे। मोक्षमार्ग प्रगति की बात तो दूर रही इस पर्यायबुद्धि से तो मुझे सम्यक्त्व भी नहीं होगा। मेरा मेरे सहज स्वरूप के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। अगर शुद्ध स्वभाव का विश्वास नहीं है तो सम्यक्त्व नहीं है। मै तो एक चैतन्यवस्तु हूँ, मैं तो सबसे अछूता चैतन्यमात्र हूँ। वह ज्ञानी नहीं है जो अपने को सबसे निराला तथा अछूता न निरखे। अपने आपकी सहज चैतन्यभाव के रूप मे पहिचान होगी तब सम्यक्त्व है। यह बात कहो कि हसी मे ही शाति मिल जाय तो शाति नहीं मिलने की। हसी हसी से ही यदि यह चाहो कि मोक्ष का मार्ग मिले तो नहीं मिल सकता है। मेरे लिये तो आध्यात्मिक तपस्या की जरूरत है। तपस्या तब होगी जब कि यह समझो कि मैं पुरुष नहीं हूँ, मैं स्त्री नही हूँ। अपने को पुरुष स्त्री बनाने वाले भाव का तिरस्कार कर दो और ऐसी भावाना बनाओ कि मैं मनुष्य नहीं हूँ, मैं सदा आनन्दघन चैतन्यस्वरूप वस्तु हूँ, मेरी भावात्मक ज्योति बढ़े यही मेरा काम है। देखो, इगलिश मे आइ शब्द है जिसका मै अर्थ होता है वह आइ शब्द न पुरुष लिंग है और न स्त्रीलिग है। अह शब्द जो कि अस्मद् धातु से बना है वह भी न पुरुषलिग है और न स्त्रीलिग है, इसी प्रकार मैं शब्द भी न पुरुषवाचक है न स्त्रीवाचक है। तब सोचो कि मैं शब्द भी जब स्त्री पुरुष दोनों से परे है तो वाच्य जो यह मै चेतन वस्तु हूँ सो यह मै भी न स्त्री हूँ और न पुरुष हूँ। मैं तो चेतनात्मक, जगमगस्वरूप, प्रकाशमान चकचकायमान एक प्रतिभासस्वरूप वस्तु हूँ।

हे आत्मन्, तेरे मे तो विकार नहीं है पर तेरे मे जो विकार हो गये, विकल्प हो गये, विषयकषाय हो गये वह तूने ही भ्रमवश ही झलका लिया। तू धन के ही पीछे पड़ा रहा, अपने परिवार के ही पीछे पड़ा रहा, विकल्प तो तूने स्वय ही इस जगत मे बना लिये हैं। अरे यदि तू नुकसान मान लेता है तो नुकसान है और यदि नुकसान नहीं मानता है तो कोई नुकसान नहीं है। चाहे हजार का नुकसान हो, चाहे लाख का, चाहे करोड़ का, उसे तू कोई नुकसान न समझ। वे तो सव परद्रव्य हैं उनसे तेरा क्या सम्वन्ध है। हे जगत् के प्राणी ! तू विकल्पो को जिनका कुछ मूल ही नहीं, भ्रम की काल्पनिक भींत पर हीं जो भासते हैं, छोड़ दे तो तुझे शान्ति हो जायेगी।

भैया ! घर में यदि कोई बीमार हो जाय, जिसके वचने मे सदेह हो, तो उसके परिवार का इष्ट पुरुप कितना विह्वल रहता है। वैद्य आता है तो उससे पूछता है कि सच तो बता दो कि यह बचेगा

कि नहीं। कितनी विह्वलता है, इसकी विह्वलता तो उसकी मृत्यु के बाद भी नही रहती । यदि बीमार मर जावे तो दु ख वियोग का तो जरूर है किन्तु अनिर्णय का अन्धेरा नही है। उसे पूर्ववत् भीतरी अज्ञान की आकुलता नहीं है। पहिले क्लेश डबल था। अब केवल वियोग का क्लेश है।

यदि कोई बीमार पुरुष के बारे मे उससे यह कह जावे कि बचने की कोई आशा नही है, हा हो सकता है कि भाग्य अच्छा हो तो बच जावे। ऐसा कहने से उस इष्ट का दिमाग खराब हो जाता था और उसके हृदय मे अशाति फैल जाती थी। अब मर जाने पर भी अनिर्णय की व्याकुलता तो नही है। अज्ञान मे होने वाली आकुलता बड़ी आकुलता है। मै पुरुष हूँ, मै स्त्री हूँ, इस प्रकार के विकल्प से सही ज्ञान नही मिल सकता है। ऐसी अवस्था मे वह कितने ही धर्म के नाम पर काम कर डाले, तपस्या कर डाले, उपवास कर डाले, पर अहकार भरे हुए है कि मै शुद्ध हूँ, मै तपस्या का काम करता हू, मुझे मोक्ष जाना है। तो विकल्प से तो काम नही हो जाता। जिसका कोई आग्रह नही होगा वह ही निर्वाण का पात्र है। मुझे अपने आप मे विश्वास करना चाहिए कि मै सव जीवो की भाति चैतन्यस्वरूप को लिए हुए हूँ। उसका कोई नाम नही, आकार नहीं, रूप नहीं, मै तो केवल भावात्मक चीज हू, ज्ञानानन्दघन हूँ। यदि ऐसी ही बात होवे तो मै निर्वाण का पात्र हूँ, सम्यक्त्व का पात्र हू। सम्यक्त्व मेरे कहीं बाहर नहीं है।

जैसे नदी या सागर के तट पर पहुचने पर फिर नदी या सागर दूर नहीं। वैसे ही सम्यक्त्व भी मोक्ष का एक तट है, उस तट पर पहुचने पर मोक्ष दूर नही। हा कोई विरला ही आत्मा आन्तरिक तपस्या से खिसक जाय ऐसी अवस्था मे निर्वाण कुछ दूर-सा रह जाता है। पर अधिक दूर नहीं रह जाता है और अगर अधिक दूर नही रह जाता है तो मोक्ष का मार्ग भी ज्यादा से ज्यादा निकट समझिये। यदि सम्यक्त्व बना रहे तो मार्ग अत्यन्त निकट है। सम्यक्त्व मे सही ज्ञान है और सही ज्ञान मे ही उजेला है। वही बना रहे तो निर्वाण का सुख अभी से है। निर्वाण सुख का ही एक रूप तो आत्मानुभव है।

जैसे आजकल लोग प्राय पाइप से (गेहूँ की नाल से) लकड़ी से रसीला पानी पीते हैं। भरा हुआ गिलास लोग पीते है। उस भरे हुए गिलास मे एक रस है। गिलास मे रस भरा हुआ होता है वही तो एक सतान हो पाइप द्वारा मुह मे जाता है। यद्यपि गिलास मे सर्वाङ्गसमृद्ध रस है और मुह मे अश जाता है, फिर भी वह आशिक अश व गिलास का रस एकरूप हो रहा है । तो देखो वह एक निर्वाण का सुख है। वह यद्यपि लबालब आनन्दसागर कुछ आगे है, मगर सम्यक्त्व के प्रभाव मे उस आनन्द का स्वाद लिया जा रहा है। मै एक भावात्मक वस्तु हू। स्थान का नाम ही निर्वाण हो सो नहीं है। जहा भगवान स्वय विराजमान है वहीं अनन्त निगोद है किन्तु निगोदिया जीव वहा जैसे ही निगोदियो की तरह हैं और भगवान अनन्त आनन्द लिये हुए है। यह जीव भी भगवान के स्वरूप के ही समान है, जो अपने को इस सहज स्वरूप मे नहीं समझता है वह जन्म-मरण के चक्र मे पडा रहता है। आत्मा जैसे आकार मे है, जिस क्षेत्र मे है उस स्वरूप सर्वाग मे अनन्त आनन्द भरा हुआ है। परन्तु जो आत्मा अपने आप पर विश्वास करता है, अपने आप पर दृष्टि करता है, वह अनन्त आनन्द अपने मे भरे हुए है इससे उसे

शका नहीं होती। इस अपने अनन्त आनन्दस्वभावी आत्मा भगवान पर विश्वास करता हुआ, अपने आत्मा को देखता हुआ चलू तो जीवन का प्रत्येक क्षण आनन्द से पूर्ण होता चला जायगा।

मैं एक ज्ञानानन्द पदार्थ हूँ, सत् हूँ, अपने स्वरूप में हूँ, पर के स्वरूप मे नहीं हूँ, मैं अपने ही द्रव्य से हूँ और अपने ही क्षेत्र से हूँ। भैया ! प्रत्येक सत् मे ४ चीजे पायी जाती है—१. द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव। जैसे यह चौकी है तो यह एक वस्तु हुई। जितनी लम्बी चौड़ी तथा मोटी है, यह उसका क्षेत्र हुआ। और काली है कि पीली है अथवा यह चौंकी कब तक रहेगी यह हुआ काल, जो उसमे सर्व शक्तिया हैं, योग्यताये है वे हुए सर्वभाव। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव बने बिना कोई सत् नहीं हुआ करता है। कोई सत् है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को लिए हुए है। चाहे वह मूर्त पदार्थ हो चाहे अमूर्त, प्रत्येक पदार्थ मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का चतुष्टय होता है। आत्मा को देखो कि मैं आत्मा गुण पर्याययुक्त होने से द्रव्य रूप हूँ तथा क्षेत्र, काल और भाव को लिए हूँ। जो गुणपर्याय है उसका मैं पिड हूँ, मेरे मे विकार नहीं, विकल्प नहीं। देखो गुण पर्याय का पिड आत्मा है। यह सब ज्ञान द्वारा यो बताया जा सकेगा जैसे पुद्गल पिड को उठकार बता देते हैं। ज्ञान से उसका प्रतिसमय कोई न कोई परिणमन है वह ही समझ मे आता है कि इसमे जो त्रैकालिक शक्ति है वह गुण है, पर्याय है उसको देखकर कहा जा सकता है कि यह आत्मा एक सत् है। इसमे अन्य द्रव्यो की भाति द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव है। जैसे एक धोती है तो वह एक पदार्थ है। उसको फैला दिया जाय तो व्यक्तरूप से क्षेत्र है और उसका काला, पीला इत्यादि जो रग है वह ~~काल~~ है। उसमे जो शक्ति है वह भाव है। इसी तरह से यह आत्मा एक द्रव्य है। इसमे गुण का प्रसार है, फैलाव है, यही इसका क्षेत्र हुआ। इस आत्मा का क्षेत्र आकाश के किसी क्षेत्र के बराबर नहीं बल्कि अपने आप मे जितना फैला हुआ है उतना ही उसका क्षेत्र है। भाव दृष्टि से जितना मेरा ज्ञान उतना ही मेरा क्षेत्र है। यदि मैं २-४ कोस की दूरी तक जानता हूँ तो २-४ कोस का क्षेत्र है और यदि हजारो कोस की दूरी तक जानता हूँ तो हजारो कोस का क्षेत्र है। और यदि विश्व के विषय जानता हूँ तो विश्व के बराबर क्षेत्र है। प्रदेशत जितने मे यह मैं द्रव्य विस्तृत हूँ उतना निजी असख्यात प्रदेश मेरा क्षेत्र है। चौंकी व धोती एक सत् नही है परन्तु उपचार से दृष्टान्त मे घटाया है। हमारा स्वरूप दु ख रूप नहीं, क्लेश रूप नहीं, वे सब केवल हमारे विभाव परिणाम हैं। इन परिणामों से ही दु ख होते हैं। यदि हम खोटे परिणाम न करे तो क्लेश नहीं हो सकते हैं। ऐसी खराब भावनायें हो जाने से हम विकास नहीं कर पाते । यदि हम विभाव न करे तो भी हम परिणमते तो प्रतिसमय ही हैं, जैसे कि प्रत्येक वस्तु प्रतिसमय परिणमता रहता है, इस परिणामो को व इनके आधार को जो नहीं मानता है उनका परिणमन भिन्न-भिन्न रूपो मे रहता है। भैया ! इस ज्ञानानन्द भावमात्र को तो देखो। यह देखने के योग्य है इसमे कोई विकार नहीं है।

केवल यह आत्मा स्वरूपसत् मात्र है, इस जगत मे जितने भी पदार्थ हैं वे सब द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को लिए हुए हैं। इस भावस्वरूप चैतन्य का जो ज्ञान करे वह सम्यक्त्व के निकट है, बात कठिन पड़ रही है मगर वस्तु की यह खास तत्व की चीज है।

जितने भी दर्शन बने, जितने भी वेदान्त, साख्य, बौद्ध, इत्यादि सिद्धान्त बने, सबकी बुद्धि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे ही विद्यमान है। यह बात अन्य है कि किसी सिद्धान्त ने एक का ग्रहण किया किसी ने दो का। चारो का ग्रहण करने मे वस्तु पूर्ण आ जाती है। अहो, यह मैं आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से परिपूर्ण अपने सत्मात्र हूँ। अपने ही द्रव्य मे सत् हूँ। प्रत्येक द्रव्य अपने मे ही सत्रूप होते हैं। अन्य द्रव्य की अपेक्षा सत्व इस आत्मा मे नही होता है।

यह कमण्डल, यह दरी कोई भी पदार्थ हो, सब अपना-अपना अलग-अलग सत्व रखते हैं। ये व्यवहार मे पदार्थ माने जाते है, परमार्थ से तो ये पदार्थ नहीं है, ये तो पदार्थो के समूह हैं। कभी-कभी इस प्रकार की दृष्टि बन जाती है कि कोई सर्व पदार्थो को मिलाकर अपने को एक सत् मानते है। यदि वे स्वतन्त्र सत् नहीं मानते है तो एकान्त अद्वैतवाद आ गया। पर द्रव्यो को सत् रूप न देना ही एकान्त अद्वैतवाद है। मैं तो अपने ही क्षेत्र मे सत् हूँ, पर के क्षेत्र मे सत् नही हूँ, ऐसे ही सब अपने अपने ही क्षेत्र मे सत् है। ऐसा मान लू तो मेरे आकुलताये व्याकुलताये नहीं आवेगी। और यदि इसके विरूद्ध अपने को मान लिया तो अनेक प्रकार की आकुलताये व्याकुलताये आ जावेगी। इस तरह से मैं अपने को ज्ञानानन्द, चैतन्यस्वरूप निरखू। और यदि किसी ने अपने को निरखा कि मै पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं साधु हूँ, मैं अन्य कोई नहीं हूँ तो उसका निर्वाण नही होता, वह दु ख के बन्धन मे ही फस जाता है। मेरी दृष्टि बाहर नहीं होना चाहिए। मुझे यह समझना चाहिए कि मैं सबसे निराला, चैतन्यस्वभावमय पदार्थ हूँ, मेरे मे वर्ण नहीं, जातिया नहीं। मै तो सबसे जुदा हूँ, ऐसा ही मुझे अपने को निरखना चाहिए। मैं स्त्री स्वरूप नहीं हूँ, मैं पुरुष स्वरूप नहीं हूँ, मै किसी अन्य रूप नहीं हूँ, मै एक चैतन्यमात्र वस्तु हूँ, इस प्रकार से जो अतर मे अपने आपको निरखता है वह शांति का मार्ग प्राप्त कर सकता है।

इस जगत के जीव पर अनेको विकल्प विपदाये मडरा रही है। यदि इस जगत् का यह प्राणी अपने ज्ञानसागर मे डूब जावे तो अनेक प्रकार के जो विकार है, वे उन्हे परेशान नहीं कर पावेगे। ये जगत के प्राणी यदि अपने ज्ञानसागर मे डूब जावे तो उनके विकल्प समाप्त हो जावेगे। और वे मोक्ष के मार्ग को प्राप्त करेगे। मै केवल ज्ञानमात्र हूँ, मेरे मे अन्य रूप नहीं है, मै चैतन्यरूप हू। ऐसा मुझे अपने आप को मानना है। इसमे ही मेरी सवार्थसिद्धि है।

कल्पना यत्र भासन्ते सोऽहं नास्थिरकल्पनाः ।।
श्रद्धामृत पिवानीदं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-५।।

अर्थ– जहां कल्पनाएं भासमान होती हैं वह मैं हूं परन्तु अस्थिर कल्पनाए मैं नहीं हूं। इस श्रद्धा रूप अमृत को पीऊँ और अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं।

जहा कल्पनाये प्रतिभासित होती है वह तो मै हूँ, किन्तु ये अस्थिर कल्पनाये मैं नहीं हूँ। इस श्रद्धामय अमृत को पीऊ और मै अपने मे अपने लिए स्वय सुखी होऊ। इस जगत के प्राणियो को कल्पनामात्र से ही क्लेश होते हैं। जो कुछ वे कल्पनाये बना लेते हैं, उन्हे सत्य दीखती हैं। पर ये सत्य नहीं होती

हैं। उन कल्पनाओ से उन्हे क्लेश होते है। जैसे सोते हुए व्यक्ति को स्वप्न मे सब बाते सही दिखती है वह उस स्वप्न मे आनन्दमग्न हो जाता है, परन्तु ये सब बाते सही नही होती है। जैसे सिनेमा के पर्दे मे चित्र उछलता है पर्दा नहीं उछलता है। पर्दा का स्वरूप चित्र नही हो जाता है। पर्दा तो वही है जिस पर चित्र उछल गए। अपने मे यह भावना बनाओ कि मै चैतन्यमात्र हूँ, मेरे मे सुख दु ख नहीं है, सुख दु ख आदि विकार तुझ मे उछल जाते है, पर मै तो चैतन्य शक्तिमात्र आत्मतत्व हूँ। मै सबसे निराला हूँ मेरे मे मोह नहीं है। मैं तो अविनाशी तत्व हूँ, मिटने वाला नही हूँ, ऐसी श्रद्धा हे आत्मन् तू अपने आप मे बना।

हे आत्मन्, यदि तू अपने आपको सबसे निराला, शुद्ध अविनाशी समझे तो तुझे **अविनाशी** सुख प्राप्त होगे, तेरे मे कभी आकुलताये व्याकुलताये नहीं आवेगी और यदि तूने अपने आपको इसके विपरीत समझा, मै तो ससार के समस्त प्राणियो से मिला हुआ हूँ, यह मेरी मा है, यह मेरा भाई है, यह मेरी बुआ है यह मेरे फूफा है, ऐसी श्रद्धा मे तो उनको कष्ट ही रहेगा, मै तो जैसा हूँ वैसा ही सदा बना रहने वाला मै हूँ। अन्य अन्य रूपो मैं नही हूँ यदि तू अपने को अन्य रूपो मे मानेगा तो तुझे क्लेश प्राप्त होगे और यदि अपने को भगवान जैसा स्वभावरूप मे मानकर अपने मे ही रम गया तो तुझमे आकुलताये व्याकुलताये नहीं आवेगी।

मै ज्ञानमात्र हू, सबसे निराला हू, ऐसा अपने आपको निरखो। तू अपने को भगवत्स्वरूप मान, इस तेरे मे तो कोई विकार ही नहीं दीखते हैं। तू तो निर्विकार है तेरे मे दु ख कहा है। तू तो सदा सुखी है। दु खो का रच भी तेरे मे नहीं है। तू अपने को शुद्ध चैतन्यमात्र समझ, अपने आपको भगवान स्वरूप मानकर अपनी ही अन्तरआत्मा मे रम और अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी हो।

देखो भैया ! जो आत्मा है वह स्थिर व एक स्वरूप है उसमे जो अस्थिर व अनेक स्वरूप भाव झलकते हैं वे औपाधिक हैं, वे कल्पनाये मै नही हू। किन्तु जिस पदार्थ मे कल्पनाये प्रतिभासित होती है वह मैं हू। जैसे फिल्म का चित्र सिनेमा का पर्दा नही है किन्तु जिस पर चित्र उछलते है वह पर्दा है। यह मात्र लौकिक दृष्टान्त है। मै निज की समस्त पर्यायो का स्रोत हू किन्तु किसी पर्यायमात्र मै नहीं हू। जो पर्यायमात्र अपना अनुभव करे वह परसमय अर्थात् मिथ्यादृष्टि है। इसी का अपरनाम पर्यायबुद्धि है और जो चैतन्यात्मक ध्रुवस्वभावमय अपने को अनुभव करे वह स्वसमय अर्थात् सम्यग्दृष्टि है। अपने सहज स्वरूप मात्र अपनी श्रद्धा करना सो परमार्थ अमृत का पान करना है, इस अमृतपान से आत्मा अमर व अनुपम आनन्दमग्न हो जाता है, आनन्द तो यही इस आत्मा मे है, सो मै अपने को सहज चैतन्यस्वरूप मात्र निरख कर निर्विकल्प हो अपने मे आप सुखी होऊ।

भैया ! पर की अनुरक्ति मे पर से कुछ मिलता ही नहीं है और कभी भी कुछ मिल ही नहीं सकता है प्रत्युतम हानि ही हानि है विकल्प और सक्लेशों के सताप मे भुनना पड़ता है। गइराई से विचार करो तो ये कल्पनायें न तो आत्मा का तत्व है और न उपाधिका (प्रकृति का) तत्व है। ये कल्पनायें अध्रुव

हैं, आत्मा के स्वभाव रूप नहीं है अत· आत्मा के (पुरुष के) तत्व नही और कल्पनाये जड़ उपाधि के परिणमन ही नही अत उपाधि के तत्व नही। इसी कारण कल्पनाओ को मायाजाल कहते है। कल्पनाओ को जिन्होने आत्मरूप से नही स्वीकारा, बल्कि कल्पनाओ से पृथक ज्ञायकस्वभावमात्र मै अपने मे हूँ इस श्रद्धामृत का पान किया वे अमर होते है, वे स्वरूपमय है, अपने मे अपने द्वारा अपने आप सुख का अनुभव करते है।

भिन्नदर्शी भवेद्भिन्नः संकरेषी च संकरः ।
तत्वतः सर्वत· प्रत्यक् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-६।।

अर्थ– जगत् से अपने को भिन्न देखनेवाला भिन्न हो जाता है और संकर (मिश्रित) की चाहवाला संकर हो जाता है तत्व से मैं सर्वसे विविक्त (पृथक) हूँ उस विविक्त अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊं।

हे आत्मन्, तुझे जगत् से न्यारा बनना है या जगत् से मिला हुआ रहना है। पहले तो इसका निर्णय कर जगत से न्यारा रहने की स्थिति कैसी होगी तो देखो वहा न कुटुम्ब है, न शरीर है, न क्रोध है, न मान है, न माया है, न मोह है, न कषाय है, न इच्छा है, न व्याकुलता है, न आकुलता है, केवल ज्ञानमात्र निराकुल, शात, तेरी स्थिति होगी। यदि जगत् से मिला हुआ रहना है तो उसमे स्थिति कैसे होगी? कुटुम्ब, परिवार, मित्रजन, समागम, प्रशसा, निन्दा, कभी बड़ा बन जाय, कभी छोटा बन जाय और फिर मरकर मनुष्य हो सकता है और यदि मनुष्य न हो पाया तो कही नरक हो जाय, कहीं तिर्यञ्च हो जाय, कहीं निगोद हो जाय, कीड़ा, मकोड़ा बन जाय, उसका कोई भरोसा नही कि वह क्या न बन जावे, निम्न शरीर मिला तो कुछ सोचने समझने की शक्ति नहीं मिलती है, जगत से मिला हुआ रहने पर देखो भाई ऐसा हो जाता है।

अब तो निर्णय कर लो कि इस ससार से न्यारा रहना है या जगत् से मिलकर रहना है। यदि मुझे जगत से भिन्न रहना है तो अपने को जगत से भिन्न देख और यदि अपने को जगत मे मिला हुआ रखना है तो अपने को जगत से मिला हुआ देख। यदि जगत से मिला रहता उसे सकर कहते हैं तो तू अपने को जगत से भिन्न रखने का प्रयत्न कर। जगत से भिन्न रखने का एक सही उपाय यह है कि तू अपने को जगत से भिन्न देख। जो अपने को जगत से भिन्न देखता है वह भिन्न हो जाता है, और जो अपने को सकर याने जगत से मिला हुआ मानता है वह सकर अर्थात् जगत से मिला हुआ रहता है। भाई कल्याण का बड़ा सरल उपाय है। केवल अन्तर मे अपने आपको मानना है कि मै ज्ञानमात्र हूँ, निर्मल हूँ, जगत से न्यारा हूँ। भाई अपने आप मे ऐसी दृष्टि बनाना कुछ कठिन है क्या? अरे यह तो अत्यन्त सरल है मगर अतरग सयम चाहिए। अपनी अतरग आत्मा को सयत कर सको ऐसा ज्ञान चाहिए। देखो भैया ! तू कमाने वाला है क्या? हजारो रुपयो का मुनाफा मिलता तो वह तेरी करतूत है क्या? कभी-कभी बड़े-बड़े सेठ लोगो को देखा होगा कि उनके पास लाखो रुपयो की सम्पत्ति होती है। वतलाओ कि उनके पास सम्पत्ति कैसे आ जाती है। पहिले वे शुद्ध मार्ग के प्रेमी थे व अव वे धर्म का कार्य करते है, दान करते हैं तो उनके पास करोडो का धन आ जाता है। उन्हे परिश्रम नहीं करना

पड़ता है। और दूसरे वे लोग जो गरीब हैं, जो दूसरो को गाली देते है, अधर्म का कार्य करते है, वे लोग बड़ा परिश्रम करते हैं फिर भी सम्पत्ति हाथ मे नहीं आती है। धन का आना पुण्योदय पर निर्भर है। उन व्यक्तियो को देखा होगा कि अचानक ही अपने आप धार्मिक सत्सग के पास चले जाते है। अपने घरद्वार की फिक्र नहीं करते हैं। फिर भी उनको लाखो रुपयो की आय हो जाती है। पुण्यहीन आसक्तजन दुकान पर बैठे ही रहें तो क्या इससे कमाई हो जायेगी। नही हो जायगी। कमाई तो पुण्य से होती है। अपना कर्तव्य समझकर अर्थ पुरुषार्थ का उचित समय पर कार्य करे और धर्म का लक्ष्य करे तो ऐसी स्थिति मे पुण्यवृद्धि होती ही है, तो कमाई होती ही है, और वर्तमान मे भी पुण्य धर्म से चलते हैं तो लम्बे समय तक सम्पत्ति साथ रहती है। लक्ष्मी की चिन्ता मे अपने को अधिक फँसाने की जरूरत नहीं है। गृहस्थ को तो यह देखने की आवश्यकता है कि उसके भाग्य से जो आता है उसके ही भीतर वह गुजारा बनाए। लोग इज्जत करते है तो इज्जत करने के लिए उनके पास पोजीशन चाहिए और यदि पोजीशन नहीं मिलती है तो मन की बात नहीं बनती है।

लोग इज्जत रखने के लिए प्रयत्न करते हैं परन्तु इस यत्न से उनकी इज्जत नहीं रहेगी। परिवर्तनशील ससार मे मौजीपन रखने का ध्यान करना अविवेक है जिस किसी प्रकार से यदि धन वैभव आता है उस पर विश्वास करना चाहिए कि वह भाग्य के उदय से निमित्त से प्राप्त होता है। अत जो कुछ भाग्यवश प्राप्त हो जावे उस पर ही गुजारा करना चाहिए। इस तरह से जो रहे समय का सदुपयोग करे और अपने आत्मकल्याण की ओर ध्यान रखे तो वह मजे मे रहेगा। हम कुछ दिन के लिए यहा है, सदा नही रहेगे। अचानक ही चले जायेगे। यहा के लोगो को क्या अपना माने। अपना पूरा कैसे पड़े तथा आनन्द कैसे अपने में भरे इसकी फ़िक्र तू कर तो तेरा भला होगा। यदि तू अपने को जगत से न्यारा निरखे, शरीर से, कषायो से न्यारा रक्खे और केवलज्ञान और आनन्द को ही प्राप्त करने की दृष्टि रखे तो तेरा भला होगा। दूसरो से मुहब्बत जोड़-जोड़ कर तू कब तक गुजारा करेगा? यदि तूने इस प्रकार से अपना गुजारा भी किया तो यह मोह है। किन लटोरो खचोड़ो को तू अपना मान रहा है वे अपने नही है और देखो मोह का माहात्म्य कि जिनसे मोह होता है वे निकृष्ट भी है तो भी अच्छे लगते हैं। उनमे कुछ ज्ञान नहीं है, उनमे दुर्गुण हैं, वे सब स्वार्थी हैं, गर्जी है, उनसे अपना कल्याण नही है, फिर भी उनमे मोह है, उनकी आकुलता होना निश्चित है, जिनकी दृष्टि पर मे ही होती है उनसे तेरा क्या पूरा पड़ेगा। अरे! उन भटकने वालों से अपना सम्बन्ध न स्थापित करो। उनसे तुम्हे कुछ नहीं मिलेगा। तुझे ससारी ही रहना है तो तू ससारी ही अपने को देख। यदि तू शकर बने रहने को चाहता है तो बाह्य पदार्थो मे ही तू अपनी रुचि बना, तू अपने को बाह्य पदार्थो से मिला जुला रख। यही तेरा ससारी बने रहने का मुख्य उपाय है।

भैया! अगर अपने को जगत से न्यारा रखना है तो तू अपने को जगत से न्यारा निरख आनन्द तो तेरे में ही है। तुझे आनन्द कहीं बाहर से नहीं लाना है, तू अपने को यह समझ कि मै ज्ञानमात्र हूँ, इसके आगे मैं और कुछ नहीं हूँ, इस भावना से ही तेरे में तेरा सव कुछ आयगा, तू जगत के अन्य प्राणियो से भिन्न हो जायगा।

मेरे मे क्या है? मेरे मे सब कुछ है। मेरे मे ज्ञान है, वह ज्ञान ही सब कुछ है। ज्ञान की विचित्र कला से ही देखो–यहा राग है, मोह है, शोक है, ज्ञान का अधेरा है, ज्ञान का उजेला है, यह सब ज्ञान के ऊपर ही निर्भर है। बड़ी-बड़ी विपदाओ के सामने यदि ज्ञान से काम ले तो विपदाये दूर हो सकती हैं। ज्ञान के बिना आकुलताये व्याकुलताये दूर नही होती है। कल्पनाये करके ही विपदा बना ली जाती है। देखो कोई एक नौजवान लड़का है। अभी अभी चार-छ वर्ष शादी के हुए हैं, दोनो मे परस्पर प्रीति है। एक दूसरे के जीवन आनन्द से व्यतीत हो रहे है याने दोनो ही एक दूसरे के इष्ट बने है। और यदि स्त्री किसी कारण से गुजर जाती है तो स्त्री के पीछे उस पुरुष को कितना क्लेश होगा? वह पुरुष यह समझ लेगा कि हाय मेरे लिए सब कोई मर गया। इस प्रकार से वह व्यक्ति २४ घण्टे दु:खी होता रहेगा।

यदि वह व्यक्ति अपना ज्ञान बनावे अथवा उस व्यक्ति का ज्ञान जाग जाय कि अरे ये स्त्री पुत्र वगैरह मेरे कहीं कुछ नहीं है, सब अपना-अपना अलग-अलग अस्तित्व रखते है, उनसे मेरा परमाणु मात्र भी सम्बन्ध नहीं है, ऐसा यदि यथार्थ ज्ञान जग जाय तो उसकी विपदाये समाप्त हो जावे। बाकी अन्य उपायो से विपदाये समाप्त नहीं हो सकती हैं। चाहे दूसरी शादी की बात चलने लगे, धन दौलत मिल जाय, जेवर गहना मिल जाय, सारी चीजे मिल जावे, मगर जो इष्ट उसके दिल मे बस गया है उसकी कल्पना उसे दु ख देती रहती है। उसका केवल ज्ञान जग जाय तो सारी विपदाये समाप्त हो जावेगी व्यापार मे भी ऐसा ही होता है, कोई समय ऐसा आवे कि चारो तरफ से नुकसान हो जावे, तो चारो तरफ से नुकसान होने पर उस व्यापारी को दु ख हो जाता है कि हाय मैने कितनी कमाई की, सब चला गया, नुकसान हो गया। अरे व्याकुल हो जाने से क्या धन वापस लौट आयेगा। क्या उस नुकसान होने वाले धन को कोई वापस कर जायगा। अरे नही कोई धन वापस नही दे जायगा। उल्टे लोग तो उसे लूटने की सोचते हैं और सोचेगे।

दु ख दूर करने का उपाय तो यह ज्ञान ही है जिस ज्ञान से यह जाना कि वह तो भिन्न चीज है। तू उस धन की चिन्ता न कर, अरे तुझे तुझसे बाहर कोई शरण नही मिलेगी, तू व्यर्थ मे शोक मत कर, तू व्यर्थ मे मत घबड़ा, तेरे शोक करने से तुझे लाभ नहीं मिलेगा, तुझे तो केवल तेरे ज्ञान से लाभ मिल सकता है। ज्ञान को छोड़कर अन्य किसी चीज से लाभ नही प्राप्त होता है। अरे मुझे पार कौन कर देगा? जिस भगवान की हम उपासना करते है क्या वह हमे पार कर देगा। भगवान की उपासना करके अपने स्वरूप कोपहिचानो अपने आप के स्वरूप को निर्मल बनाओ तो यह निज भगवान तुम्हे पार कर देगा और तुम पार हो जावोगे।

भैया ! हमारे आयार्यो ने हम लोगो को करुणा करके समझाया है कि तू तो पवित्र ज्ञानमय है, तेरे मे तो कोई क्लेश है ही नहीं, तू तो सर्वोत्कृष्ट है, दु खी क्यो हो रहा है? अरे इन बाहरी पदार्थो मे जिनमे तू दृष्टि डालता है वे सब असार है, अहित करने वाले है, भिन्न है। इसलिए जब कभी पर मे दृष्टि होगी तब क्लेश होगे। वे परपदार्थ तेरे लिए शाति के कारण नहीं होगे। तू उनके लिए क्यो मरता है? अपने स्वरूप को तो देखो। तू तो परमार्थ स्वरूप है। अपने आपको देख तो प्रभु हो जायगा। भैया!

बतलाओ तो जरा कि अपने आपको जगत मे सब पदार्थो से निराला मान लेने मे क्या बिगाड़ हो जायगा? अपने को सबसे निराला मान ले तो तेरे सभी दु ख समाप्त हो जायेगे। ठीक-ठीक ज्ञान कर ले तो सारे दु ख दूर हो जावेगे। यदि इसके विपरीत तूने अपने मे आपका ज्ञान न किया, भीतर मे ज्ञान का अधेरा ही रहा तो आजीवन तुझे क्लेश ही रहेगे और तू जगजाल मे फसा रहेगा। तू अपने को निर्मल देख, अपने में ज्ञान उत्पन्न कर ज्ञानमात्र आत्मस्वरूप के लक्ष्य मे हमे अविनश्वर आनन्द मिलेगा।

भगवान की वाणी एक आध घन्टे पढ़ लिया, सुन लिया और बाकी समय मोहियो के सगम रहते हैं तो फिर वे ही सोचे कि अपने को कैसे सम्हाला जायगा। उनको तो वे मोही प्राणी ही रुचते है। उनके लिए वे ही सब कुछ है। भयानक विपत्तिया उन मोहियो से मिलती है फिर भी वे उन्हीं मोही प्राणियो के पास दौड़ते है। और जिनसे अपना उद्धार होगा उनको पहिचानते भी नही हैं। जो अपने को शुद्ध आत्मतत्वरूप देखेगा वह शुद्ध बन जायगा। मैं मनुष्य हू, मै अमुकचन्द हूँ, मैं फला हूँ, ऐसी दृष्टि अगर बन गयी तो क्रोध, मान, माया, मोह इत्यादि ही बढ़ जावेगे और अहकार भीतर आ ही जायेगा। इस प्रकार से मैं अशुद्ध बन जाऊगा। हे आत्मन् ! तेरे ऊपर कूड़ा लदा है। तू इस कूड़े की फिक्र मत कर। तू अपने मे विद्यमान ज्ञान के उजेले को सम्हाल, अपने को देख कि मै सबसे निराला ज्ञानमात्र हूँ। तू अपने को यदि ज्ञानमय देखेगा तो तेरे सारे क्लेश सारी विपदाये, सारे कूड़े खत्म हो जायेगे। तू अन्य की चिता न कर। तू तो अपने भीतर को शुद्ध देखने का पुरुषार्थ कर।

भैया ! जो अपने को शुद्ध देखता है वह शुद्ध हो जाता है और जो अपने को अशुद्ध देखता है वह अशुद्ध हो जाता है। बहुत सी चीजे मिल जाये फिर भी किसी जीव मे किसी दूसरी चीज का प्रवेश नहीं। एक बोरे मे गेहूँ, चना, मटर इत्यादि मिल गये हैं फिर भी वे सब न्यारे है। सब न्यारे-न्यारे है। समुदायो को देखकर कहते हैं कि मिल गए है, पर उनके स्वरूप को देखे तो सब न्यारे है। और भी चीजें देखें जैसे कि दूध और पानी मिल गया हो तो समुदाय मे कहते है कि दूध और पानी मिल गया, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूध मे दूध है और पानी मे पानी है। अब भी दूध मे पानी नहीं मिला और न पानी मे दूध मिला। सब न्यारा-न्यारा है। यद्यपि यहा जीव शरीर से न्यारा नहीं रहता है, क्योंकि यदि हम चाहे कि शरीर यहीं रहे और मेरा आत्मा किसी के पास पहुच जाय तो आत्मा शरीर छोड़कर आगे नहीं पहुच जायगा। तो भी शरीर मे शरीर है और आत्मा मे आत्मा है। इस विज्ञान को जानना अधिक कठिन नहीं है। केवल भेदज्ञान का यत्र चाहिये, पता चल जावेगा। जैसे दूध और पानी को अलग-अलग समझ लिया जाता है। इसी तरह मिले हुये शरीर और आत्मा को आत्मा और शरीर को पृथक् निज-निज स्वरूप में समझने का यत्र चाहिये। वह है क्या? प्रज्ञा स्वरूप की दृष्टि और स्वलक्षणदृष्टि।

भैया ! इन्द्रिय सयत कर लो। इन्हीं की उद्दण्डता से बरबादी होती है इन्द्रियो को सयत करके अपनी अन्तर आत्मा मे चला जा, अपने आपका ध्यान कर, ऐसा निर्विकल्प ध्यान कि इस शरीर का भी ध्यान न रहे, इन इन्द्रियों का भी ध्यान न रहे तो अनुपम सुख प्राप्त होगा। तू इन्द्रियो को नि सकोच उपयोग से त्याग दे। किसी भी इन्द्रिय का रच भी कार्य न रहे तो तुझे तो तेरा स्वलक्षण साक्षात् ज्ञात हो जायगा

कि जो केवल ज्ञान का वर्णन है वही तो तेरे स्वरूप का वर्णन है। तू अपने स्वरूप को पहिचान ले तो तू प्रभु हो सकता है। जिन्होने जगत से भिन्न अपने को देखा है वे जगत से भिन्न होकर भिन्न ही चलते रहेगे। और जो अपने को मिला हुआ देखता है कि मैं अमुक हू, मैं साधु हूँ, मै ऐसा बलिष्ठ हू, यह गृहस्थ है, यह साधु है, यह मनुष्य है, घर मे रहता है, श्रावक है इत्यादि, तो वह इस जगत से मिला हुआ ही चलता रहेगा। और आजीवन ही उसको क्लेश रहेगा। जो व्यक्ति अपने को सबसे मिला हुआ समझता है वह सबसे बोलता चालता है, देखता है सुनता है, सबसे सावधानी से मिलता है, पर आत्मकल्याण की फिक्र नहीं करता है, वह इसी कारण जीवनभर दु खी रहता है अगर भीतर के सत् मे स्वयं निरखे कि मै तो सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र, शुद्ध हूँ तो हमारी यह दृष्टि वह चिनगारी है जो कि विपदाओ के कर्मो के पहाड़ो के पहाड़ो को जला सकती है। यह एक छोटी दृष्टि, सूक्ष्य दृष्टि है, मगर वह इतनी चमत्कारिणी है कि वह सारे पहाड़ो को भस्म कर सकती है। यदि इतनी अपनी बात को सम्हाल लिया कि मैं जगत से निराला ज्ञानमात्र, अपनी स्वरूप सत्तामात्र त्रैकालिक शक्ति को लिए हूँ तो हे प्रियतम तू प्रभु बन जायगा!

तेरा प्रीतम आत्मा है। आत्मा को छोड़कर अन्य कोई तेरा प्रिय अधिक नही है। कितने ही तो धर्म की खातिर सब कुछ छोड़ देते हैं। सीता जी अग्निपरीक्षा मे उत्तीर्ण हो गयी। जब वे अग्नि में कूद रही थी तब क्या ऐसा विचार हो सकता था कि हम बच जावे तो फिर घर मे आनन्द से जावे, उनकी तो धर्म मे प्रीति थी। सब कुछ छोड़कर एक आत्मधर्म मे रुचि थी। हमारा घर छूटा जा रहा है इस विकल्प की सम्भावना भी नहीं थी। उनके लिए तो धर्म ही प्रिय था। वह सोचती थीं कि यदि बच जाऊगी तो धर्म से ही रहूँगी। धर्म के मायने है स्वभावरमण, सही स्वरूप को जानने व उसमे रमने का नाम ही धर्म है। प्रीतम तुम्हारा कोई नही है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा प्रीतम है।

देखो भगवान की भक्ति से भगवान के सब विशेषण लगते है। हे भगवान, हे प्रियतम, हे प्रिय, हे साइयां तो भजन मे ही इन्हीं शब्दो को कहकर भगवान के गुण गाया करते है। भगवान और आत्मा मे भेद क्या है? स्वभाव को देखो कुछ भी भेद नही। तो यह आत्मा ही तुम्हारा बालम है, तुम्हारा सैंया हैं, तुम्हारा प्रियतम है, तुम्हारा सर्वस्व है। और हे आत्मन् ! इस दुनिया मे तेरा कुछ नहीं है। सबसे निराला अपने आपको देखो। यदि सबसे निराला इस जगत मे तू अपने आपको नहीं देखता है तो इस ससार मे तू रुलेगा।

अब देखो जिसकी कल्याण मे लगन लगी है उसको दूसरी चीज सुहाती नहीं। हे आत्मन् तुझे तो कल्याण चाहिए। तेरा काल्पनिक लौकिक वैभव चाहे लुटता हो, परवाह न करना चाहिए। ज्ञान की बात को ज्ञानी ही समझ सकता है और अज्ञानी ज्ञान की बातो को नहीं समझ सकता है। ज्ञानी व्यक्ति मोही व्यक्ति को भी परख सकता है पर मोही तथा अज्ञानी व्यक्ति मोही को भी नहीं परख सकते हैं और ज्ञानी को तो परखेगे ही क्या? देखो ये दो भैया भिण्ड से आए है। जैसे कोई तो पर्व को घर से निकलता है फिर पर्व के बाद घर जाता है किन्तु हमको तो सभी दिन पर्व के दिन हैं। ये सिखा रहे हैं आपको

कि जो केवल ज्ञान का वर्णन है वही तो तेरे स्वरूप का वर्णन है। तू अपने स्वरूप को पहिचान ले तो तू प्रभु हो सकता है। जिन्होने जगत से भिन्न अपने को देखा है वे जगत से भिन्न होकर भिन्न ही चलते रहेगे। और जो अपने को मिला हुआ देखता है कि मैं अमुक हू, मै साधु हूँ, मै ऐसा बलिष्ठ हू, यह गृहस्थ है, यह साधु है, यह मनुष्य है, घर मे रहता है, श्रावक है इत्यादि, तो वह इस जगत से मिला हुआ ही चलता रहेगा। और आजीवन ही उसको क्लेश रहेगा। जो व्यक्ति अपने को सबसे मिला हुआ समझता है वह सबसे बोलता चालता है, देखता है सुनता है, सबसे सावधानी से मिलता है, पर आत्मकल्याण की फिक्र नहीं करता है, वह इसी कारण जीवनभर दु खी रहता है अगर भीतर के सत् मे स्वयं निरखे कि मै तो सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र, शुद्ध हूँ तो हमारी यह दृष्टि वह चिनगारी है जो कि विपदाओ के कर्मो के पहाड़ो के पहाड़ो को जला सकती है। यह एक छोटी दृष्टि, सूक्ष्य दृष्टि है, मगर वह इतनी चमत्कारिणी है कि वह सारे पहाड़ो को भस्म कर सकती है। यदि इतनी अपनी बात को सम्हाल लिया कि मैं जगत से निराला ज्ञानमात्र, अपनी स्वरूप सत्तामात्र त्रैकालिक शक्ति को लिए हूँ तो हे प्रियतम तू प्रभु बन जायगा।

तेरा प्रीतम आत्मा है। आत्मा को छोड़कर अन्य कोई तेरा प्रिय अधिक नहीं है। कितने ही तो धर्म की खातिर सब कुछ छोड़ देते हैं। सीता जी अग्निपरीक्षा मे उत्तीर्ण हो गयी। जब वे अग्नि में कूद रही थी तब क्या ऐसा विचार हो सकता था कि हम बच जावे तो फिर घर मे आनन्द से जावे, उनकी तो धर्म मे प्रीति थी। सब कुछ छोड़कर एक आत्मधर्म मे रुचि थी। हमारा घर छूटा जा रहा है इस विकल्प की सम्भावना भी नहीं थी। उनके लिए तो धर्म ही प्रिय था। वह सोचती थीं कि यदि बच जाऊगी तो धर्म से ही रहूँगी। धर्म के मायने है स्वभावरमण, सही स्वरूप को जानने व उसमे रमने का नाम ही धर्म है। प्रीतम तुम्हारा कोई नही है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा प्रीतम है।

देखो भगवान की भक्ति से भगवान के सब विशेषण लगते है। हे भगवान, हे प्रियतम, हे प्रिय, हे साइयां तो भजन मे ही इन्हीं शब्दो को कहकर भगवान के गुण गाया करते है। भगवान और आत्मा मे भेद क्या है? स्वभाव को देखो कुछ भी भेद नही। तो यह आत्मा ही तुम्हारा बालम है, तुम्हारा सैंया हैं, तुम्हारा प्रियतम है, तुम्हारा सर्वस्व है। और हे आत्मन् ! इस दुनिया मे तेरा कुछ नहीं है। सबसे निराला अपने आपको देखो। यदि सबसे निराला इस जगत मे तू अपने आपको नहीं देखता है तो इस ससार मे तू रुलेगा।

अब देखो जिसकी कल्याण मे लगन लगी है उसको दूसरी चीज सुहाती नहीं। हे आत्मन् तुझे तो कल्याण चाहिए। तेरा काल्पनिक लौकिक वैभव चाहे लुटता हो, परवाह न करना चाहिए। ज्ञान की वात को ज्ञानी ही समझ सकता है और अज्ञानी ज्ञान की बातो को नहीं समझ सकता है। ज्ञानी व्यक्ति मोही व्यक्ति को भी परख सकता है पर मोही तथा अज्ञानी व्यक्ति मोही को भी नहीं परख सकते हैं और ज्ञानी को तो परखेगे ही क्या? देखो ये दो भैया भिण्ड से आए है। जैसे कोई तो पर्व को घर से निकलता है फिर पर्व के बाद घर जाता है किन्तु हमको तो सभी दिन पर्व के दिन हैं। ये सिखा रहे हैं आपको

कि परवाह न करो, घर का काम तो चल ही जायगा उसकी चिन्ता न करो। अगर तुम चिन्ता न करोगे तो क्या तुम्हारे घर काम नहीं चलेगा? चिन्ता न करो घर का काम तो चलेगा ही, जैसा चलना होगा। चिन्तायें नहीं करनी चाहिये। चिन्ताये करने से नुकसान है। भीतर से जब आत्मकल्याण की भावना रहे तो शाति प्राप्त हो सकती है।

सुकुमाल स्वामी मकान से चले। जिसका शरीर ऐसा सुकुमार था कि कमल की बास मे पहुचने वाले चावल ही जिसके गले से निगले जा सकते थे, जिसको रोशनी देखते ही आसू आ जाते थे, ऐसे सुकुमार जव विरक्त हुए, घर से चले, नगे पैर चले जा रहे थे, खून बह रहा था। अब उनके लिए वैभव, वैभव नहीं रहा। वे साधु हो गए। ध्यान मे वे बैठ गए ऐसी सुकुमार अवस्था थी जब कि इन्होने अपने शरीर को तपस्या में लगा डाला था और देखो अन्त मे उनको एक स्यारनीने खाया। क्या उन्हे कष्ट था? नहीं कोई कष्ट नहीं था। यदि कष्ट मानते हो तो कष्ट है और यदि कष्ट न मानो तो कष्ट कहीं नहीं है। अरे देखो रात दिन कितने गृहस्थी मे सकट सहते हैं, किन्तु कष्ट नहीं मालूम होते हैं पर धर्म के कामों में कष्ट मालूम होते हैं। जहां मन नहीं लगता है वहा कष्टो का नाम लगता। धर्म का काम जहां पर हो रहा हो वहा बैठने में ही मोही आत्मा परेशान हो जाता है। जहा थोड़ा सा भी समय हो गया, कहते हैं कि अरे एक घन्टा हो गया, दो घन्टे हो गये। पौन घन्टे मे ही जाना चाहिए था, स्वाध्याय जल्दी खत्म हो जाय तो अच्छा है। यद्यपि गृहस्थी के कार्यो मे या गप्प सप्प के काम मे वे आराम से घुटने टेके बैठे रहे, कोई परेशानी नहीं है, कितनी ही अड़चने हो फिर भी उनको परेशानी नहीं होती है। आत्महित मे प्रमाद किया जाता है।

भैया! अन्दाज कर लो कि जिसका जिसके ऊपर मन रमा है, वहा चाहे कितने कष्ट हों, कष्ट नहीं हैं और जिसका मन जिस किसी मे नहीं रमता है, वहा यदि कष्ट भी नहीं हैं तो कष्ट कल्पना से आ पडते हें। कल्याण का उपाय सरल है। जरा अपने को ज्ञानमात्र, सवसे निराला तो देखो। अपने भीतर के स्वरूप की ओर तो देखो तो भिन्न हो जाओगे, परमात्मा हो जाओगे। यह मैं तो ऐसा ही हूँ। इसलिए अव अपने को सहज सत्य स्वरूप में देखकर अपने मे अपने आप विश्राम पाऊं। आखिर सव दु खों से छुटकारा पाना ही तो हित है। दु ख लगे है पर के सग मे सो परसग से मुक्त होने के लिए पर से भिन्न अपने को देखू और अपने मे अपने आप निराकुल होऊ।

न मे लोको न चाज्ञातोऽनष्टो नष्टे विकल्पिते ।
तदित्थं ज्ञानमात्रोऽहं स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वय ।।२-७।।

अर्थ- लोक मेरा नहीं है और वह लोक अज्ञात भी नहीं है तथा विकल्पित भाव लोक के नष्ट होने पर मैं नष्ट नहीं होता इस प्रकार ज्ञानमात्र मैं अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं।

पदार्थों के जानने के प्रसग में तीन बातें हुआ करती है। एक तो शब्द पदार्थ, दूसरे अर्थ पदार्थ, और तीसरे ज्ञान पदार्थ। जैसे यह चौकी है तो यह तीन तरहकी होगी। शब्द, चौंकी, अर्थ चौंकी और ज्ञान चौकी। घर में भी शब्द घर, अर्थ घर और ज्ञान घर ऐसे ये तीन शब्द वस्तुओं के हुआ करते हैं।

शब्द चौकी के मायने 'चौंकी' ये दो अक्षर जो कि मुख से बोला जा रहा है कि यह तो 'चौंकी' है या किसी कागज पर लिख दिया जाय 'चौकी' और वे अक्षर दिखाकर अगर आपसे पूछे कि यह क्या है तो क्या कहोगे? यह कहोगे कि यह चौकी है तो यह हुआ शब्द चौंकी। यह काम करने वाली चौकी नही है। जैसे रोटी है उसमे भी शब्द रोटी, अर्थ रोटी और ज्ञान रोटी–ये तीन प्रकार की समझनी चाहिए। किसी कागज पर लिख दे और आपसे पूछे कि यह क्या है तो आप बतलायेगे कि यह रोटी है। यह रोटी किसी काम की नहीं है। इससे क्या आपका पेट भर जायगा, उस रोटी से क्या आपकी भूख मिट जायेगी? नहीं। वह अर्थ रोटी नही है। जो बनी हुई होती है, जिसको खाते हैं वह है अर्थ रोटी। ज्ञान रोटी के मायने यह है कि रोटी के बारे मे जो ज्ञान हो। इसी तरह अर्थ चौकी यह है जिस पर हम पुस्तक रखते हैं और ज्ञान चौंकी वह होती है जो कि चौकी के बारे मे ज्ञान होता है। उस ज्ञान का नाम है ज्ञान चौंकी। इस तरह पदार्थ मे तीन चीजे है–शब्द पदार्थ, अर्थ पदार्थ और ज्ञान पदार्थ।

इसी तरह लोक को भी तीन तरह से देखो, शब्द लोक, अर्थ लोक और ज्ञान लोक। यह जितना भी लोक है, यह दुनिया जितनी है वह है अर्थ लोक। क्या अर्थ लोक मेरा है? नहीं, मेरा नही है, वह तो मुझसे भिन्न है, वह मेरा नही है। जो लोक शब्द लिखा है या लोक शब्द बोले तो क्या वह लोक मेरा है, नहीं। यह तो केवल शब्द लिखा है। यह तो शब्द लोक है। यह शब्द लोक मेरा है क्या? नहीं, यह मेरा नहीं है। शब्द भी मुझसे भिन्न है। दुनिया के बारे मे जो ज्ञान होता है वह ज्ञान लोक है। वह मेरा पर्याय है, फिर भी मेरा नही है क्योकि वह विकल्प है। यह विकल्प नष्ट तो हो जाता है पर इस विकल्प के नष्ट हो जाने से क्या यह लोक भी खत्म हो जाता है। लोक खत्म होता है अपनी परिणति से। और भी समझ लीजिए–शब्द चौकी, अर्थ चौकी और ज्ञान चौकी होती है पर आपको दिखती केवल एक यह अर्थ चौकी है। चौंकी शब्द बोला गया, वह क्या है, शब्द चौकी। जिस पर यह किताब रखते है यह क्या है? यह है अर्थ चौकी और, चौकी के सम्बन्ध मे जो ज्ञान बन रहा है वह है ज्ञान चौकी। उस शब्द चौकी मे हमारा कुछ लगता है क्या? वह तो शब्द है, अक्षर है, वह तो हमसे भिन्न है। क्या अर्थ चौकी हमारी है? नही वह हमारी नहीं है, वह हमसे भिन्न है। ज्ञान चौंकी को अपनी कह सकते हो। वह विकल्पमात्र ही तो है। उस कल्पना के नष्ट हो जाने पर क्या यह चौंकी नष्ट हो जाती है, नही। चौकी नष्ट होती उसकी परिणति से। इसी तरह यह लोक मेरा नहीं है और लोक अज्ञात है, ऐसा भी नही है। जानने मे यह लोक आ रहा है। मगर वह जानना क्या है, विकल्प है। ज्ञान की एक पर्याय है। उसके नष्ट हो जाने पर यह लोक नष्ट हो जाता है क्या? यह सब कुछ लोक मैं नहीं हू मेरा नहीं है। अब मै क्या रहा। केवल एक ज्ञानमात्र ही रहा।

अब भैया ! देखो भगवान को, तो उस भगवान की भी तीन किस्म हैं–शब्द भगवान अर्थ भगवान और ज्ञान भगवान ! मै मुख से भगवान शब्द बोल दू या किसी कागज पर भगवान शब्द लिख दू तो वह क्या है? क्या वह भगवान है, कौन सा भगवान है? भैया ! वह ज्ञान या अर्थ भगवान नहीं है। वह तो शब्द भगवान है। अर्थ भगवान कौन है? सयोगकेवली व अयोगकेवली व गुणस्थानातीत, ये हैं अर्थ

भगवान। जैसा भगवान है उस भगवान के बारे मे जितना ज्ञान होता है वह ज्ञान भगवान कहा जायगा। भगवान के बारे मे जो विकल्प होते हैं, ज्ञान होता है वह कौन सा भगवान है? ज्ञान भगवान है। तो आपकी भेट क्या उस शब्द भगवान से हो सकती है? अर्थ भगवान से हो सकती है? नहीं। इस ज्ञान भगवान से ही हमारी भेंट हो सकती है। भगवान के बारे मे मे हम जान जाये और उसी जानने मे हम तन्मय हो जाये तो उस भगवान से भेट हो सकती है। शब्द भगवान तो अन्य पदार्थ है, उसे मैं नहीं जान सकता। मै तो केवल ज्ञान भगवान को ही जान सकता हूँ, उस ज्ञान भगवान को ही पूछ सकता हू। मै ज्ञान भगवान की ही भक्ति किया करता हू। मैं शब्द भगवान तथा अर्थ भगवान की भक्ति नहीं करता हूँ, और न कर सकता हूँ।

कुटुम्ब की बात देखो। पुत्र मे भी शब्द पुत्र, अर्थ पुत्र और ज्ञान पुत्र होते हैं। जरा शब्द पुत्र से कहो कि एक गिलास पानी दो तो क्या वह ला देगा। अरे वह तो किसी कागज पर पुत्र शब्द लिखा है या बोला हुआ शब्द है, सो वह सब पुद्गल है। वह कैसे पानी ला देगा? अब जरा अर्थ पुत्र को देखो जो कि घर मे बैठा है, जो दो हाथ, दो पैर वाला है, जो पुत्र आपके घर मे जन्मा होवे, वह है अर्थपुत्र। ज्ञानपुत्र वह है जो पुत्र के बारे में ज्ञान बनावे। आप यह बतलाइए कि शब्द पुत्र से आप मोह करते हैं कि अर्थ पुत्र मे या कि ज्ञान पुत्र से आप मोह करते है। अरे शब्द पुत्र से तो तू मोह करेगा कैसे? क्योंकि वह तो भाषावर्गणारूप पुद्गल चीज है, उससे तू तन्मय नहीं हो सकता। आप तो अपने ज्ञान पर्याय मे तन्मय है। पुत्र शब्द से तू मोह करेगा नहीं। तो क्या तू अर्थ पुत्र से मोह करता है जो घर मे बैठा है। वह भी अन्य पदार्थ हे उसमे भी तेरी पर्याय नही पहुचती। उससे भी तू मोह नहीं करता, और न कर सकता हे, क्योंकि वह तो भिन्न पदार्थ है। अर्थ पुत्र से भी तू मोह नहीं कर सकता। फिर किससे तू मोह करता है। पुत्र के बारे में जो विकल्प बनाया, जो ज्ञान की परिणति बनायी उस ज्ञानपुत्र मे ही तू मोह करता है। इस तरह से आप ज्ञान पुत्र से मोह करते है अर्थात् पुत्र के बारे मे जो आपको विकल्प होते है उन विकल्पो से आप मोह करते हैं, उन विकल्पो को आप मोह से करते है। पुत्र से मोह नहीं करते है। यह यथार्थ बात कही जा रही हे। यह भी समझने की चीज है जिससे कि मोह घटता है।

मोह करने मे ही आकुलताये हे। बाह्य तो बाह्य ही है। मे तो अपने ही विकल्प मे तन्मय हूँ। मै अपने ही विकल्प मे मोह करता हू और अपने ही विकल्प से जला भुना करता हूं। दूसरो से मैं न राग कर पाता और न द्वेष कर पाता। मे तो अपने आप मे ही राग और द्वेष किया करता हूं। इसी कारण मेरे विकल्प नष्ट होते रहते है और बनते रहते है। अब जरा और भी बात सोचो कि विकल्प नष्ट होने से क्या वे बाह्य पदार्थ भी नष्ट हो जाते हे या वे बन जाते हे? नही, वे तो अपने स्वरूपचतुष्टय मे ही आविर्भूत तिरोभूत होते है। वे वे ही है और हम हम ही है। ये सारी बाह्य चीजे कुछ भी मेरी नही है। मैं तो मात्र मैं ही हूं यह लोक मेरा नही है। मै तो ज्ञानस्वरूप हूं इससे लोक अज्ञात भी नही है और ज्ञान मुझसे छिपा हुआ नही है इस ज्ञान मे जानने मे सब कुछ आयेगा। जानने मे आ गया

तो मेरे मे कुछ अन्य नहीं आ जाता और जानना अगर मिट गया तो चीज नहीं मिट जाती है।

भैया ! जितने भी शास्त्र ज्ञान देते है उनका सार तत्व यह है कि भाई, अन्य चीज अन्य ही है और मै मै ही हूँ, मुझमे मै हू, पर मे पर है, वे सब अपने से भिन्न है। फिर खोटी कल्पनाये करना कि यह मेरी है, यह उसकी है, यह सब क्या है? जैसे वाह्य वस्तुओ को सुखकारी मानते हो, कल्याणकारी मानते हो तो असल मे देखो तो वे ही निमित्त रूप से दु ख के कारण बन रहे है। कौन से ऐसे पदार्थ हैं जो मेरी शाति के कारण है।

एक गुरु शिष्य थे। शिष्य गुरु के पास पढ़ने आता था। एक दिन वह देर से आया। गुरु जी ने पूछा कि देर से क्यो आए? शर्मीले शब्दो मे कहा कि मेरी सगाई हो रही थी। गुरु जी कहने लगे कि अब तो तुम गाव से गए अर्थात् अब तुम्हारा गाव से मोह नहीं रहा। सगाई हुई कि घर से गए। जहा सगाई की, वहीं दृष्टि गयी। अब तो तुम्हारा अपने घर से भी मोह नहीं रहा। कई दिन बाद वह शिष्य फिर देर से पहुचा। गुरुजी ने पूछा कि देर क्यो हो गई? शिष्य ने कहा कि शादी हो गई। गुरुजी ने कहा कि अब तो तुम अपने मा बाप से भी गए। उनको तू नहीं पूछेगा। और फिर गुरुजी ने कहा कि कुछ दिन बाद मे बच्चे होगे तो तू अपने से भी जायगा। तू उन बच्चो मे ही लगा रहेगा। कमायगा, खिलाएगा, उनका लालन पोषण करेगा। इस तरह तू बाहर-बाहर ही रहेगा और अपने आपको भूल जायगा। अरे ये तो बाहरी पदार्थ है। इनमे तू क्यो पड़ता है, इनसे तो तेरे मे आकुलताये आवेगी, और तुझे शांति नहीं प्राप्त होगी।

भैया ! ज्ञान मे यह ज्ञान है, मुझमे मै हूँ, वाह्य मे वाह्य है, ये सब स्पष्ट भिन्न रूपो मे नजर आते हैं, सब अपना भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते है, यदि ऐसी दृष्टि आवे तो उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान हो और मोह दूर न हो यह नही हो सकता है। ज्ञान का स्वभाव ही है कि वह मोह के आवरण को हटाता है। सूर्य का जब उदय होता है तो अन्धकार हट जाता है। इसी प्रकार जव भीतर मे ज्ञान उगे तो मोह का अन्धकार मिट जाता है। मोह का अन्धकार ज्ञान के उदय होने पर मिटे नही, यह नहीं हो सकता है। यदि मोह अभी मिटा नहीं है तो समझो कि अभी ज्ञान का उदय नही हुआ है। ज्ञान के होने पर राग तो कदाचित् हो जाता है पर मोह नहीं हो सकता है। राग और मोह मे अन्तर है। राग उसे कहते हैं जो वस्तुओ को सुहा देवे और मोह उसे कहते हैं जो वाह्य को यह समझे कि यह मेरा है या यही मैं हूँ। वाह्य वस्तु मे ममत्वबुद्धि कर लेना ही मोह है और वाह्य वस्तुये सुहा जाने का नाम ही राग है। मोह मे है अज्ञानता का अधेरा और राग मे है पर का लगाव। ज्ञान होने पर कदाचित् किसी रूप मे पर मे लगाव तो हो सकता है पर अज्ञानता का अधेरा नही हो सकता है। यह मोह तो उत्पन्न होता है लगाव से लगाव रखने से। लगाव पर वस्तुओ मे हो जाता है और उन पर वस्तुओ मे लगाव हो जाने से विकल्प हो जाता है और उस विकल्प मे लगाव रहने से मोह उत्पन्न हो जाता है। जिसे कहते हैं राग मे राग, पर वस्तुओ मे राग हो गया है, यह राग का काम है और राग मे यह वासना होना कि यह राग मैं हूँ, राग से ही मेरा कल्याण है, मेरी भलाई है, यह हुआ राग का राग। राग मे राग हो जाने का नाम ही

मिथ्यात्व है। यह महान् अन्धकार है। सो मैं परपदार्थ रूप नही हूँ परपदार्थो के विषय मे होने वाला जो सकल्प विकल्प का जाल है उस रूप मैं नहीं हूँ। मै तो अनन्त आनन्दरूप, त्रैकालिक ज्ञानस्वरूप हूँ। सो मैं अपने मे आपको निरखकर अपने लिए अपने आप स्वय अपने मे सुखी होऊ।

अब मैं कैसा हू, इस विषय मे कहते हैं कि–

देहे स्थित्वापि न स्पृष्टो नानाकारो निराकृति· ।
जानन् सर्वं न सर्वोऽह स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-८।।

अर्थ– मैं देह में ठहरकर भी देह से छुआ हुआ नहीं हूँ नाना आकार वाला होता हुआ भी निज की निरपेक्ष आकृति वाला नहीं हूँ सबको जानता हुआ मैं सबरूप नहीं हू इस प्रकार शुद्ध अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं।।

मैं देह मे ठहरा हुआ हूँ फिर भी देह से नहीं छुआ हूँ। मै उस देह से मिला हुआ भी नहीं हूँ। देह तो जड़ है। मैं चेतन हूँ, मैं अमूर्त पदार्थ हूँ। देह तो मूर्त है। तो इस मूर्त पदार्थ मे एक अमूर्त पदार्थ मिल जाय तो यह कैसे हो सकता है? मिल तो मूर्त मे अन्य मूर्त पदार्थ भी नहीं सकता। अत· यह आत्मा इस शरीर में रहते हुए भी शरीर से जुदा है। अरे तूने परिवार को अपना माना है, पुत्रो को अपना माना है। यह बतलाओ कि क्या वे तेरे है? नहीं, वे मेरे नहीं है। ये बच्चे जो हैं इनमे तू फसा है। अच्छा बता, कैसे फसा है? वे तेरे नहीं हैं और न कभी तेरे हो सकेगे। भाई आप तो यहा मौजूद हैं। कुटुम्ब परिवार इत्यादि कहीं के कहीं बैठे हुए हैं। आप उनसे किस तरह से बधे हुए हैं, किस तरह से फंसे हुए हैं आप उनसे बधे हुए नहीं हैं। आप अपने कुटुम्ब, परिवार इत्यादि से फसे हुए नहीं हैं। केवल आपने कल्पनायें बना ली हैं और उन कल्पनाओ से ही मोह बना लिया है यही कारण है कि तू अपने को यह समझता है कि मैं परिवार मे फसा हूँ।

भैया ! अब यह ख्याल न कर कि मैं फसा हुआ हू। किससे फसे हो जरा बताओ तो। अपनी कल्पनाओं को छोड़ दे तो तू किसी बन्धन में नहीं है। मैं तो अमूर्त हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ तो फिर मैं कैसे फस गया। मैंने केवल अपने आप ही विकल्प बनाकर अपने आप ही सोच सोचकर देह मे स्वय अपने को फसा लिया है और जैसे कभी ज्ञान भी हो जाय कि यह परिवार खुदगर्ज है, अपने कषाय के साथ है, इतना ज्ञान भी हो जाय तो भी कुछ दिन और फसे रहते है पूर्व वासना के कारण। पूर्व परिचय के कारण निराकुल नहीं हो पाते है। इसी तरह देह और आत्मा मे भी भेद हो जाय, फिर भी यह आत्मा देह में बधी रही है, पूर्व वासना के कारण। पर इससे छूटने का उपाय भेदज्ञान ही है। किसी कुमित्र से मित्रता हो जाए तो भिन्न-भिन्न वस्तु और परस्पर विरुद्ध आशय का ज्ञान कर लेना ही, उस मित्र से छूटने का उपाय है। यह मुझे ठगना चाहता है, धोखा देना चाहता है, यह हमारे साथ कपट करता है यह हमसे झूठ बोलता है यदि इतना भी जान लेने का ज्ञान नहीं है तो फिर इसके आगे और क्या हो सकता है।

देह मे ठहरा हूँ तो भी देह से छुआ हुआ मैं नहीं हूँ। देखो–इस देह के कारण, इस कर्म उपाधि के कारण भी नाना रूप बन रहे हैं। नाना शरीर बन रहे हैं। कहीं कीड़े मकोडे बन गए। कहीं पक्षी बन गए। कहीं और किन्हीं रूपो मे बन गए। इस प्रकार से नाना रूप विस्तार अपने आत्मप्रदेशो मे भी हो जाते है, किन्तु जो आकारो पर दृष्टि रखते है वे अपने को भूल गए हैं।

भैया ! मै तो ज्ञानस्वरूप हूँ। अपने अपने स्वरूप को देखो कि मै ज्ञानस्वरूप हू। यह मै ज्ञानमय आत्मा द्रव्य हू। इसका आकार है, इसका क्षेत्र है। परन्तु इस क्षेत्रदृष्टि से आत्मा का परिचय नही हो सकता है। आत्मा का परिचय तो आत्मा के अन्तर्गत लक्षण की दृष्टि से हो सकता है। आत्मा कहते किसे है? जो जाननहार है उसे आत्मा कहते है। मै सबको जान रहा हूँ मगर मैं सब रूपो मे नही हूँ। अभी मै इतनी चीजे जान रहा हूँ तो क्या इतना जानने से मै इन रूपो मे हो गया हूँ। नहीं सिनेमा के परदे पर कितने ही चित्र उठ जाते है तो क्या परदा उतने रूप है? नहीं, वह परदा तो स्वच्छ है। इसी तरह इस आत्मा मे सब रूपो की झलक आ जाने से यह आत्मा सब रूप हो गया है क्या? नही मै तो मै ही हूँ। ये सब ये ही हैं। अन्य सब मै नहीं हू। मै सबको जानता हूँ फिर भी मैं इन सब रूप नहीं हू। मै तो सबसे निराला, ज्ञानमात्र अपने को निरखता हू। यही ज्ञान इतने ज्ञान के बिना ही बुद्धिरूप बनकर बाहर घूमता है, सो बाहर मे ही बुद्धि फस जाती है। बाहर मे बुद्धि फँस जाने से आकुलताये हो जाती है। मै सबसे निवृत्त होकर केवल अपने आपके स्वरूप को देखू तो वहा कोई क्लेश नही है। सब है तो सब रहे। मै तो मै ही हू। यह दुनिया तो मोह का स्वप्न है। स्वप्न मे देखी हुई चीजे जैसे झूठ नही मालूम होती है उसी प्रकार मोह मे प्रतीत हुई चीजे झूठ नहीं मालूम होती हैं, पर जैसे स्वप्न के बाद जग जाता है तो सब चीजे झूठ मालूम होती है। उसी प्रकार मोह के दूर होने पर सम्यक्त्व हो जाता है और इस सम्यक्त्व के हो जाने से पर पदार्थो के प्रति ठीक ठीक ज्ञान हो जाता है, सत्य और असत्य का निर्णय हो जाता है तब ये पर पदार्थ झूठ मालूम होते है

विभक्तैकत्वबोधस्य न स्पर्शं पुण्यपापयो ।।
सेयवस्तुस्थितिर्मेऽस्तु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-६।।

अर्थ– सर्व से विभक्त और अपने में एकत्व के बोध वाले मुझ आत्मा के पुण्य व पाप दोनों का स्पर्श नहीं है अहो वही वस्तु स्थिति मेरी होओ जिससे मैं अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊं ।

इस आत्मा को कहते हैं विभक्त एकत्व। एकत्व का अभिप्राय यह है कि यह आत्मा अपने आपके गुणपर्यायों मे तन्मय है। अपने ही स्वरूप मे तन्मय है, स्वय सर्वस्व है और विभक्त का अर्थ है कि जगत के अन्य सब पदार्थो से अत्यन्त जुदा है। जगत मे पदार्थ अन्य है कितने? अनत तो पुद्‌गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असख्यात कालद्रव्य, इन सबसे यह आत्मा जुदा है और अपनी आत्मा को छोडकर जगत मे जितनी भी आत्माये हैं उन सबसे भी जुदा है। केवल अपने आप मे तन्मय है। इसे कहते है एकत्व विभक्त। इस मुझ आत्मा मे पुण्य और पाप का स्पर्श भी नहीं है। जब मैं अपने सहज स्वरूप को देखता हू तो पहले मेरी सहजसत्ता किस प्रकार है, यह अपने इस प्रकार के मर्म को देखता हू तो उस एकत्वविभक्त निज आत्म-पदार्थ मे पुण्य पाप कोई नहीं है। कोई प्रकार का विकार नहीं है। स्वभाव में कोई विकार नहीं हुआ करता है।

भैया ! जैसे गदा जल है ना। वह कचडा मिला हुआ है। अगर जल के स्वभाव को देखो अर्थात् जल का स्वरूप अपनी सत्ता के कारण कैसा है इस बात को देखो तो क्या गदा नजर आवेगा? नहीं, गदा नहीं नजर आवेगा। वह तो निर्मल है, अर्थात् जल का स्वभाव तो बिल्कुल स्वच्छ है। इसी तरह इस गदी आत्मा मे रहने वाली आत्मा को १४ प्रकार के जीव समासो मे रहने वाले इस जीव को स्वभावदृष्टि से देखें तो क्या कोई विकार नजर आयेगा? नहीं। वह तो शुद्ध ज्ञायकमात्र नजर आयेगा अथवा और भी जितनी विभाव पर्याये है गति चार, इन्द्रिय पाच, काय सात, योग पन्द्रह, कपाय पच्चीस और ज्ञान सात (मति, श्रुत, अवधि, मन पयय, कुमति, कुश्रुति, कुअवधि) इत्यादि सभी पर्यायो में भी स्वभाव से ज्ञायक ही है। स्वभाव दृष्टि मे तो केवल ज्ञान भी नजर नहीं आता है। वह तो केवलज्ञानस्वभाव ही है। परन्तु केवलज्ञानस्वभाव ही है। परन्तु केवल ज्ञान स्वभाव पर्याय है। इस कारण स्वभावविकास गुण के सदृश देखा जाता है। इसी प्रकार अन्य अन्य स्थानो मे देखो तो यह कोई विकार नजर नही आता है। ऐसा एकत्वभाव मे हू।

मै लडको वाला हू, घर वाला हू, जानने वाला हू, ये सब बात व्यर्थ की है। मै सुखी हू, मैं दुःखी हू, मै धनी हू मै गरीब हू, मै राजा हू, मेरे पास बल है, मेरा बडा प्रभाव है, मेरे पुत्र है, मेरे स्त्री है, मै बलवान हू, सुडौल हू, बेडौल हू, अरे ये सब कुछ नही है। स्वभाव को तो देखो मेरे में तो विकारो का स्पर्श भी नही है। यह परम शुद्ध निश्चय की बात चल रही है। इस ही बात को मान लेवे और कोई पर्याय का निषेध करें तो ब्रह्माद्वैत आदि अभिप्राय खडे हो जाते हैं। मै आत्मस्वरूप कैसा हू यह स्वभाव दृष्टि में ही दीखता है।

इसी तरह से विवेकी जीव इस चैतन्य आत्मा को सहज स्वरूप, ज्ञानमय, ज्ञान स्वरूप मानता है। इस आत्मा मे कोई विकार नहीं है। इसमे पुण्य पाप नहीं, राग द्वेष नहीं। कोई कहे कि वाह! वर्तमान मे तो ये सब है, अरे यह कर्मो की प्रकृति है, मेरी प्रकृति नहीं। राग की आदत तो कर्मो से है, द्वेष की प्रकृति कर्मो से है। चूकि कर्मविपाक के साथ विभाव का अन्वयव्यतिरेक है सो ऐसे निमित्त पर आरोप किया गया है अपनी खराबियो का। जो अपने को शुद्ध, स्वच्छ देखता है उसमे कषायभाव और पुण्य पाप का स्पर्श नहीं है। सो ऐसी वस्तु स्थिति मेरी होवे अर्थात् अविकारता होवे। कहीं पर पदार्थ मे, कहीं नैमित्तिक भाव मे यह मै हूँ, यह मेरा है, इससे ही मेरा भला है, इस ही मे रमना चाहिए, इस प्रकार के भाव मुझमे उत्पन्न न हो।

मै ज्ञान मात्र का अनुभव करूँ, ज्ञानदृष्टि मे रहूँ, इस प्रकार के भाव उत्पन्न होना चाहिए। पर मे उपयोग का जाना ही अनिष्टकारी है। यदि उपयोग को मिले हुए समागमो मे लगाते हो तो रागद्वेष बढ़ेगे अकल्याण होगा।

भैया! बताओ तो जरा कि गोष्ठी मे परिवार मे जितने लोग है उनसे इस आत्मा का क्या सम्बन्ध है? यदि कोई सम्बन्ध हो तो बतलाओ। आपकी आत्मा का पुत्र की आत्मा से क्या सम्बन्ध है? यदि कोई सम्बन्ध हो तो बतलाओ। देखो सपूत है, पिता का आज्ञाकारी है तो पिता को दुःख है या सुख। दुःख ज्यादा है। पुत्र अगर कपूत है, अन्यायी है तो पिता को दुःख है या नहीं। वह धन बरबाद करने वाला होता है तो अदालत मे लिख दे कि इस पुत्र का हमसे कोई सम्बन्ध नहीं है, मै इसका जिम्मेदार नहीं हूँ। बस, दुःख मिट गया। और यदि लड़का सपूत है, आज्ञाकारी है विनयशील है तो उसके प्रति राग करके बाप श्रम उठायेगा, आराम कहा पायगा? अच्छा यह बताओ कि यदि पुत्र सपूत होगा आज्ञाकारी होगा तो बाप दुःखी होगा या नहीं? दुःखी होगा कैसे? अच्छा देखो—यदि पुत्र सपूत होगा आज्ञाकारी व विनयशील होगा तो उसे सुखी करने के लिए बाप अधिक परिश्रम करेगा व क्लेश मे पड़ा रहेगा। यदि पुत्र कपूत है तो उसके बाबत मे यह प्रसिद्ध करदे कि यह मेरा नहीं है इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा करकर छुट्टी पा लेगा। देखो—दुःख सपूत मे अधिक है कि कपूत मे। यदि पुत्र सपूत होगा तो मोह होगा और मोह से क्लेश अवश्य होंगे। और यदि पुत्र कपूत है तो न मोह ही रहेगा और न क्लेश ही होंगे

तो परमार्थ से शुद्ध, स्वच्छ, ज्ञानस्वरूप है। तेरे में तो क्लेश का नाम नहीं, फिर क्यो जगजाल मे फसकर क्लेश प्राप्त कर रहा है। करने योग्य काम तो तत्वदृष्टि है। सो उसकी ही रुचि करके अपने मे स्वय सुखी होओ।

नाना मतानितत्वेषु विवादे न प्रयोजनम् ।
मुक्त्वाऽन्यत् स्वं तु पश्येय स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वय ।।२-१०।।

अर्थ– तत्वों में नाना प्रकार के मत (मन्तव्य) हैं उस विवाद में कुछ प्रयोजन नहीं है मैं तो परपदार्थों को (लक्ष्य से) छोडकर अपने को देखूँ और अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं।

तत्व मे अन्य-अन्य नाना मत है। कहते हैं कि मुस्लिम तत्व यह है, जैन तत्व यह है, बौद्ध तत्व यह है। अरे यह क्या है। व्यर्थ मे नाना प्रकार के विवाद बढाते है। कोई किसी प्रकार के विचार मानता है कोई किसी प्रकार के । कोई कोई हनुमानजी को बन्दर के मुख वाला व पूछ वाला कहते है। जैन लोग कहते है कि हनुमानजी इतने सुन्दर थे कि उनके समान सुन्दर उस समय कोई नहीं था। जैन सिद्धात मे बताया गया है कि वह तो एक कामदेव पदधारी अतिसुन्दर राजा थे। खैर, विवादो से क्या मतलब। आप अपने को तो देखे कि अपना स्वरूप कैसा है? मैं अपने आपको देखू कि मैं कैसा हूँ? जो मैं हूँ वही समझू, बस इस ही मे कल्याण है। अरे अन्य को देखने से कोई प्रयोजन नहीं है। मेरा प्रयोजन तो अपने आपको देखने का है सो मैं अपने आपको देखू और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

कहीं चले जावो सुख कहीं नही मिलेगा। जैसे यहा वहा रात दिन भटकते फिरते हैं, फिर ९, १० बजे के लगभग आराम करने घर आ जाते हैं, सोते है। इसी तरह वाह्य पदार्थो मे कितना ही भटक ले, फिर अन्त मे अपने घर मे, अपने आपके स्वरूप मे ही आना होगा तब शान्ति मिलेगी। किन्तु खेद है अज्ञान मे जीव वाह्य की व्यवस्था करते है पर अपनी व्यवस्था नहीं कर पाते हैं।

देखो तो मे भैया ! हफ्ते मे एक दिन हाट लगती है ना। सो कहीं देहात में कोई अधवूढ़े आदमी थे। एक दिन हाट मे साग भाजी खरीदने जाने लगे। पडोस की बहुओं ने भी साग खरीदने के लिए दो-दो पैसे दे दिए। बुड्ढा सबके पैसों की सब्जी खरीदता जाता था। पहले पड़ौस की बहुओ के लिए खरीदी, बुड्ढे ने अन्त मे अपने भी दो पैसे की सब्जी मोल ली। आखिर मे खरीदने के लिए सब्जी जो बची वह खराब थी, सडी हुई थी, वह सब्जी लेकर झोली मे डालकर घर गया। जब घर की बहू ने देखा तो कहा कि अरे यह खराब सब्जी है, क्यों लाए? बुड्ढा बोला कि पडौस की बहुओं के लिए पहले अच्छी खरीद ली फिर बाद में जो बची वह मैने खरीद ली। बहू से कहा कि देखो में परोपकार करता हूँ। बहूने कहा कि अरे पहले अपने लिए खरीद लेते बाद मे फिर दूसरा के लिए लेते। सो ऐसे ही भया। अपनी जहा अपने आत्मस्वभाव की उपासना करना है, उसकी दृष्टि रहते हुए परोपकार किया जावे तो वह महत्व की बात है।

हे भाई! अपने स्वरूप की तो खबर नहीं है और दूसरे की ओर आसक्ति से देख रहे हो। हे आत्मन्, पहले अपने स्वरूप को देखो बाद मे फिर अन्य को देखो। अपने को भूलकर द्वन्द्व को देखो इसे आचार्यो ने विवेक नहीं बतलाया है। बाहर मे क्रियाकलाप मे भी रहो, पर उनमे कोई अपना स्वरूप मत समझो। यदि कोई समस्त मतो के विकल्पो को छोड़कर अपने सत्य का आग्रह कर ले कि मुझे जो अपने आप बिना किसी अन्य जल्प के आश्रय के, अनुभूत होगा वह होवो। मै स्वय ज्ञानमय पदार्थ हूँ अत ज्ञान की बात स्वय ही प्रकट हो जावेगी। ऐसे सत्य का आग्रह निष्पक्ष होकर कर ले तो उसे स्वय का दर्शन होगा। जिस सत्य का दर्शन हो फिर उसी का लक्ष्य रखना सो ही शाति का, सुख का मार्ग है। मूल तत्व तो आत्मा है, उस आत्मा के बारे मे ठीक-ठीक निर्णय जब नहीं हो पाता तब उस आत्मा के बाबत व अन्य बातो मे नाना मत बन गए। तत्वो मे जो मत मजहब बन गए उनका मूल कारण यह है कि उन जिज्ञासुओ ने अपने आपकी आत्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं कर पाया। आत्मा का यथार्थ ज्ञान न हो पाने से ही अनेक मत बन जाते है। यह दर्शन का एक गहरा विषय है। वस्तु को जानने का उपाय स्याद्वाद है। किसी वस्तु का सर्वाङ्ग निर्णय करना चाहो तो स्याद्वाद से ही कर सकते हो।

जैसे किसी मनुष्य के सम्बन्ध मे जानकारी करते हो तो कितना-कितना जानते हो। यह पिता है, यह पुत्र है, यह गरीब है, यह धनी है, यह पडित है, अनेक प्रकार की बातो की जानकारी करते हो, जानते हो, अपेक्षा लगाकर कि यह अमुक का पिता है, यह अमुक का लड़का है इन सारी बातो को अपेक्षा लगाकर जानते हो। यदि अनेक बाते जानते हो तब सारी बातो की जानकारी कर पाते हो। इसी तरह आत्मा के विषय मे जब सर्व प्रकार से दृष्टि दोगे तभी आत्मा का पूरा रहस्य समझ मे आयगा। जब जीव के पर्याय मे तथा आत्मा के स्वभाव मे दृष्टि दोगे तभी दोनो मे अन्तर समझ मे आयेगा। जब जीव के मात्र लक्षण मे दृष्टि दोगे तो तुम्हे पता चलेगा कि जीव का लक्षण है चैतन्य, और इस चैतन्यस्वभाव मे दृष्टि दो तो इसमे नाना रूप नही नजर आयेगे। प्रत्युत अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यमात्र अद्वैत समझ मे आवेगा, व्यक्तित्व नजर नही आयेगा। अरे यह चैतन्यस्वभाव अद्वैत है। इसमे किसी दूसरे का प्रवेश नहीं है तब फिर इसका नाना रूपो मे अनुभव क्यो किया जाता है?

भैया! प्रत्येक जीव का अपना स्वरूप न्यारा-न्यारा है। यह बात तो तुम्हे तब समझ मे आवेगी जब कि अपने आनन्दस्वरूप मे दृष्टि दो। इस तरह से जीव के बारे मे नाना बाते, स्याद्वाद से विदित होती है। पर उनमे से किसी एक को पकड़ लो या किसी अपेक्षा मे किसी अन्य अपेक्षा मिलान कर दो तो देखो कि नाना मत बन गए है उन नाना मतो के विवाद मे पडने से केवल कलह ही मत्थे पडेगा। उनसे आत्मा को शाति नहीं मिलेगी। आत्मा को शाति तो अपने आत्मस्वरूप के दर्शन मे होती है। और यदि शाति नहीं मिलती है तो समझो कि कोई उसका निमित्त अन्य है। क्योकि आत्मा तो स्वय के लिए अनाकुलस्वरूप है। यदि आप मे कल्याण की भावना है तो अपने अन्तरग मे स्थित अपने आपको ज्ञान के द्वारा प्राप्त करके कल्याण कर सकते हो।

है? और ससार कहलाता क्या है? क्या ससार इस दुनिया की जगह का नाम है? क्या इस लोक का नाम ससार है? अगर इस दुनिया की जगह का नाम ससार है और इस लोक का नाम ससार है ता इसको छोड़कर कहा जावोगे? क्या कोई अलोक मे पहुच जावोगे? जगत के क्षेत्र का नाम ससार नही है, किन्तु राग द्वेष की जो वासना वनी बस उसी का नाम ससार है। इस ससार का त्याग कर दो। इसका अर्थ यह है कि राग द्वेष की वासनाओ का त्याग कर दो। प्रत्येक जीव भिन्न-भिन्न है, अपने स्वरूप मे ही है। वे अपने आप मे परिणमते रहते हैं। एक का दूसरे से सम्बन्ध कुछ है ही नहीं, फिर किन्हीं परवस्तुओ मे राग द्वेष विकल्प करना क्या यह अज्ञान नहीं है। ज्ञान और अज्ञान का तो यह प्रमाण है कि जहा पर मूढता है वहां पर अज्ञानता दीखती है और जहा पर मूढ़ता नहीं है वहा पर ज्ञान प्रसन्न हुआ दीखता है। जहा पर मूढता हो वहा पर सम्यक्त्व नहीं हो पाता है और जहा पर मूढ़ता है वहां पर मिथ्यात्व ही है। तो यह मिथ्यात्व ही ससार है। जब तक यहा ससार है तब तक जीव को क्लेश है। यदि ससार का त्याग कर दो अर्थात् इन राग द्वेष विकारादि वासनाओ को त्याग दो तो सारे क्लेश समाप्त हो सकते है।

सो भैया! राग द्वेष की वासनाओ का नाम ही ससार है। कोई यहां कहे कि राग द्वेष की वासनाओ को तो ससार कहा। राग द्वेष को ही ससार क्यो न कह दिया? उत्तर इसका यह है कि द्रव्य मे प्रति समय एक एक परिणाम मे पर्याय हो रही हैं। तो जीव मे भी प्रति समय एक एक पर्याय होती चली जाती है। एक समय मे दो समय की पर्याय नही होती, दो समय मे एक पर्याय नहीं, तब राग की पर्याय भी प्रति समय एक-एक चलती जा रही है, यह सूक्ष्मदृष्टि का जिक्र किया जा रहा है। लेकिन एक समय की राग पर्याय अनुभव मे नहीं आती है और एक समय के राग पर्याय से ही जीव क्या राग महसूस कर लेगा, ऐसा नही होता है किन्तु उपाय बहुत समय योग की राग पर्यायो का ग्रहण करता है। इस कारण सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो तो राग की सतान का अनुभव होता है। दूसरी बात यह है कि राग द्वेष मे जो आसक्ति हो जाती है उसको संसार कहा गया है। इसी कारण सम्यग्ज्ञान होने पर कदाचित् राग द्वेप रहते भी है तो भी उनकी गिनती नही की गयी। वे मिट जायेंगे इसलिएवासना को ससार कहते है। इस वासना के विनष्ट होने को ही ससार का त्याग कहते है। ससार के ये प्रत्येक जीव ज्ञायकस्वरूप हैं, परमात्मतत्व स्वरूप हैं, उनका कोई भी अन्य जीव न तो मित्र है और न शत्रु ही है। वह जीव है, ज्ञानस्वरूप हैं, अपने ज्ञान मे परिणमते रहते हैं, उपाधि की विशेषता के अनुसार ही उनके विकार भी होते रहते है, उनमे विकार उनकी ही परिणति से होते है, किसी अन्य की परिणति से नहीं होते हैं। ऐसे स्वय विज्ञानघन जगत् के सब जीव हैं। उनको कैसे माना जाय कि वे शत्रु है? कोई भी मेरा शत्रु नहीं है, कोई ज्यादा विगडता है तो जो उसे विकार बनाना होगा, वह वनावेगा, वह अपने आप मे ही बनावेगा, मेरा वह कुछ नहीं वनावेगा, तब फिर मेरा दुश्मन कौन? कोई नहीं।

भैया! ज्ञानदृष्टि से देखो तो इस जगत् मे मेरा शत्रु कोई नही है। जिस आत्मा का मन ऐसा रहता है कि यह मेरा दुश्मन है तो वह विकल्प उसका दुश्मन बना रहता है, उसका शत्रु बना रहता है, पर परमार्थ से देखो तो इस जगत् मे कोई किसी का शत्रु नहीं। जो दूसरे को शत्रु समझता है, वह विकार कर रहा है। वह विकार अपने को करता है, अपने लिए करता है और अपने द्वारा करता है। मेरा प्रभु तो मैं हूँ, मेरे से बाहर मेरा कुछ

नही है तो फिर मेरे से बाहर मेरा दुश्मन कोई कैसे है? इसी प्रकार जिसको मित्र मान रहे हो, परिवार को इष्ट मान रहे हो वह भी तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा स्वरूप ही तुम्हारा सब कुछ हो सकता है। अपना स्वय मै हू, अपने स्वरूप मे बर्तता हूँ, उपाधि की विशेषता के अनुसार विकार भी करता हूँ, मोह भाव भी करता हूँ, राग भी करता हूँ, किन्तु अपने आपमे करता हूँ।

भैया! गुरुजी एक घटना बताते थे कि एक गाव खुरई सागर के पास है। श्रीमत सेठ वहा पर एक बहुत बड़े आदमी थे, उनके लड़के आज भी है, वे भी सेठ है। वह सेठ बड़े गर्म दिमाग के थे। उनकी स्त्री गुजर गयी थी, उनकी दूसरी शादी हो गयी थी। जब सेठानी शादी के बाद सेठ के घर आयी तो सेठानी की सखियो ने मित्राणियो ने समझाया कि देखो सेठ बड़े गर्म दिमाग के है। अगर कही सेठ बिगड़ जाते है तो मुश्किल पड़ जाती है, सेठानी भी चतुर थी। उसने सेठ के बारे मे तो सुन ही लिया। एक दिन सेठ के सिर मे दर्द था। स्त्री को खबर भिजवाई तुरन्त दवा लाओ। सेठानी के मनमे ऐसा विचार आया कि अगर कही मै अभी से दब गयी तो जिन्दगी भर दबना पड़ेगा। इसलिए आज सेठ को कोई कला दिखाऊ तब तो छूट पाऊगी। बस, सेठानी ने अपने सिर मे दर्द बना लिया। बोली अरे मेरा तो भारी सिर दर्द कर रहा है। मै क्या करू? सेठ जी की नयी शादी हुई थी, उनको अपनी स्त्री की खातिर तो करनी ही थी। इसलिए वह अपने सिर के दर्द को भूल गए और अत्यन्त व्याकुल हो गए। अब सेठ जी अपनी बात तो भूल गए और मोह मे सेठानी जी की सेवा करने लगे। मान लिया कि सेठानी के सिर मे दर्द भी हुआ हो तो क्या सेठ की वेदनाने उसकी वेदना को बनाया? नहीं, उसने तो केवल सेठ के प्रति राग बना लिया था। उस राग ने ही सेठानी की वेदना को बनाया।

कोई जीव कहते है कि हम तुमसे राग करते है, हमारा तुमसे बड़ा राग है। ऐसा करने से वह राग करे तो क्या हमारे राग से राग कर रहा है? नही, वह स्वय ही कल्पनाये बनाकर एक नया राग और खड़ा कर लेता है। किसी जीव की परिणति से किसी जीव को कुछ हो जाय तो यह नही हो सकता है। कितने ही आदमी ऐसे होते है कि वे दूसरे के प्रति रागी है, तो क्या एक का दूसरे मे राग पहुच गया? नहीं, एक दूसरे से सम्बन्ध ही क्या? तो जब प्रत्येक जीव जुदे जुदे है, किसी से किसी का सम्बन्ध नहीं है तो ऐसी स्थिति मे अन्य पदार्थो को अन्य जीवो को उपयोग मे लेकर ख्याल और राग बनाये रहे, इसको मूढ़ता ही कहेगे। मूढ़ता कहा जाय या मोह कहा जाय। दोनो का शाब्दिक अर्थ एक है। अगर मूढ कहे तो ससार के लोग कुछ बुरा मान जावेगे, और यदि मोही कहेगे तो लोग शायद बुरा न माने। बात तो एक ही है, और है भी क्या? समझका फेर, तो बस इतना ही तो जाल है, जाल क्या कही अपनी भूमिका से बाहर है, नही। जितना भी जाल है, द्वन्द है, फन्द है वह सब इस इन्द्र आत्मा मे है। यह तो इन्द्रजाल है। यदि इससे जुदाइगी हो जाय अर्थात् अन्य जीव को अपना उपयोग मे इष्ट अनिष्ट न करे, वाह्य वस्तुओ का ख्याल न करे, राग द्वेष न बनावे तो जाल नहीं है। वह मूढ और मोही नहीं कहा जावेगा।

अरे यह कितना जाल है? बहुत छोटा सा जाल है। केवल समझना भर है। मै हूँ और अपने स्वरूप से हूँ। ऐसा न देखकर यह इसका कुछ है, यह इसका कुछ कर देता है इस प्रकार की जो समझ बन गयी है वस वह समझ ही जगजाल है, जब गृहस्थी का ददफद सिर पर आ जाता है, लडका बीमार है, अमुक बीमार है, अमुक

बीमारी है, यह करना है, अभी दुकान जाना है, मुकदमे कई है। इस प्रकार से कहते हैं कि बड़े जगजाल में फँसे हुए हैं। अरे बाहर कोई जाल नहीं है, न जाल दुकान मे है, न लड़के बच्चो वगैरा मे है, न आत्मतत्व मे है। केवल अपने आपके आत्मस्वरूप को शुद्ध, सबसे निराला उपयोग मे देखता है और बाहर मे ही सुख कर लिया है तो यही तेरा जगजाल बन गया है। भैया! अपनी वाह्य दृष्टि को हटा दे अपनी राग द्वेष की भावना को मिटा दे तो यह तेरा जगजाल मिट जायगा। देखो कितने तो जगजाल है और कितने से उपाय मे मिट जाते है, परन्तु कितना कठिन लग रहा है? कुछ विचार तो करो, उन सब कठिनाइयो का कारण राग द्वेष की वासना है। यह वासना अगर मिट जाय तो क्लेश मिट जाये और अगर यह वासना नहीं मिटती है तो क्लेश नहीं मिटेगे। यह कर्मबन्ध वासना से ही होता है। जिन कषायो का उदय है उन कषायो से होने वाली कर्मप्रकृतियो मे ज्यादा अनुभाग पड जायगा, पर बध सब मे पड़ जायगा।

हे आत्मन्! क्रोध क्यो कर रहे हो? मान, माया, लोभ इत्यादि विकार की वासनाये क्यो कर रहे हो? यदि तू इन वासनाओ से दूर है तो क्लेश दूर है और यदि इन वासनाओ को अपने मे बनाए हो तो आजीवन क्लेश रहेगे। इसलिए इन वासनाओ को मिटाने का उपाय करना चाहिए। गृहस्थी के चरित्र को आचार्य गुणभद्र स्वामी ने बताया है कि वह तो हाथी का स्नान है। हाथी ने स्नान किया और बाहर गया कि धूल को सूड मे भरकरअपने ऊपर डाल लिया। इस तरह से वह फिर गदा हो गया। गृहस्थी भी सीमा बना करके त्याग करते हैं, दस लक्षण के दिन आ गए तो कहते है कि अब हम काम नही करेगे, दुकान मे नहीं बैठेगे, धर्म के काम ज्यादा करेगे, अब हम पवित्र बनेगे, पर यह वासना बनी हुई है कि दस लक्षण के दिन निकाल तो दो, फिर जल्दी मे जाकर दुकान मे बैठेगे, यह खायेगे, वह करेगे। इस प्रकार की वासना मन मे भर लेते है। अरे यह तो वास्तविक त्याग नही हुआ। सीमा बना करके त्याग करना ठीक नही होता है। सप्तमी को नियम कर लिया कि नवमी तक उपवास से रहेगे पर यह वासना बनी हुई है कि नवमी के आठ बजने तो दो जल्दी से खाना बनावेगे, खाना खा लेगे। यह कर लेगे, ऐसी वासना बनी होती है। साधुवो के चरित्र मे देखो तो ऐसी वासना नहीं बनी होती है। उनको यह पता ही नही रहता है भोजन करने जायेगे कि क्या करेगे? उनको यदि भूख लगेगी तो उठेगे नही तो न उठेगे। इसी तरह अनत चौदस का व्रत है, तो गृहस्थी लोग यह वासना बनाए रहते है कि अनन्त चौदस के बाद पूर्णिमा के ७ बजने तो दो। पर यह ख्याल साधुवो को नही होता है। वह साधु तो बच्चो की तरह ही है यदि भूख लगी तो खडे हो जावेगे, नही तो नहीं खडे होगे, पर गृहस्थी ऐसा नहीं कर पाता है। यही तो गृहस्थ और साधु मे फर्क पड़ गया है। साधु के वासना नही होती है और गृहस्थी वासना बनाए रहता है। क्या कारण है? गृहस्थ के आरम्भ व परिग्रह का सम्बन्ध है। तो इस वासना का विनाश कैसे होगा? अपने सहजस्वरूप की दृष्टि से यह मै आत्मा सहज ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञाननहार हूँ, यह ही मेरा स्वरूप है, यह ही मेरा धर्म है, जानन यह अमूर्त है, अनन्तानन्त भावो को लिए हुए है, ऐसे ज्ञानानन्द भावोमय यह मैं आत्मा हूँ, इसमे किसी दूसरे से सम्बन्ध नहीं है, इसके स्वभाव मे विकार नहीं है। रागद्वेष की वासनाये बनाना इसका काम नहीं है। रागद्वेष की तरग यह गड़बड़ बात तो उपाधि के सान्निध्य मे उठ जाती है।

सिनेमा का परदा स्वय चित्रित नहीं होता है। तो कैसे चित्रित हो जाता है? यह देखो सामने फिल्म आ

गया, फिल्म उपस्थित हुआ और फिर वह चला गया। तो परदा अपने आप मे उठकर चित्रित नही हो गया। परदे का चित्रित हो जाने का काम ही नही है, चित्रित तो फिल्म के निमित्त से हो गया है। इसी प्रकार यह आत्मा स्वय राग द्वेष नहीं बनाता। आत्मा का स्वभाव ही राग द्वेष बनाना नही है। कर्म उपाधि का निमित्त पाकर यह चित्रित होता है। इन राग द्वेषो के जो सस्कार बनते है वे इन वासनाओ के कारण ही क्लेश होते है, ये सब क्लेश इस आत्मदृष्टि के द्वारा ही नष्ट हो जाते है, मैं एक ज्ञानस्वभाव हूँ, एकरस हूँ। ज्ञानस्वभावमात्र, सबसे निराला हूँ, ज्ञानमय शुद्ध, दर्शन, ज्ञान सम्यक्त्वमय हूँ, इससे अतिरिक्त मै और कुछ नही हूँ। परमाणुमात्र भी मेरा कुछ और नही है, ऐसा उपयोग बनाने से ही इन रागादिक वासनाओ का विनाश होता है और जब वासनाओ का विनाश होता है तो क्लेश मिट जाते है।

जब कोई राग होता है तो देखने मे आता है कि जल्दी-जल्दी प्रवृत्ति होती है और जब उसकी वासना होती है तो जल्दी की प्रवृत्ति होती है। जब वासना नही होती है तो वाह्य दृष्टि भी समाप्त हो जाती है। जिसके फोड़ा नहीं है वह मलहम पट्टी क्यो लगावे? जिसके बुखार नही है वह पसीना क्यो निकाले? जिसके वासनाये नहीं है वह आकुलताये व्याकुलताये क्यो करेगा? जब वासना का राग होता है तो इलाज करना पड़ता है। जिसकी वासनाये समाप्त हो जाती है फिर इलाज नहीं करना पड़ता है। इन वासनाओ का त्याग तो अपने आपकी दृष्टि से ही होगा। मैं हूँ, अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे हू। पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे मैं नही हूँ। मै हूँ, और स्वय परिणमनशील हूँ, इस कारण निरन्तर परिणमता रहता हूँ, परिणमता ही चला जाता हूँ, इसका दूसरो से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह ज्ञानरूप की परिणति तो अपनी परिणति है। स्वभाव के कारण अपने ज्ञान की परिणति चलती जा रही है। इसका वाह्य पदार्थो से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जैसे चौकी, कमण्डल, आदि पदार्थो का ज्ञान हुआ तो इसका चौकी, कमण्डल किसी चीज से सम्बन्ध नही है। मेरे मे जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसमे इस चौकी और कमण्डल ने कोई मेरी मदद कर दी है क्या? अरे ये कोई भी मददगार नहीं है। खुद ज्ञान की परिणति होती रहती है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। हम लोग तो आवरण लिए है इस कारण ज्ञान की कुछ कमी है और यह आवरण मिट जाय तो ज्ञान सर्वविश्व का उत्पन्न हो जाय। फिर तो सारा विश्व अपने आप मे जानने मे आयगा। तो इस सारे विश्व की मेरे जानने मे कृपा है क्या? सभी द्रव्यो के प्रति ऐसी निगाह रहे तो सम्यग्ज्ञान प्राप्त होने का यह अच्छा उपाय है। तब ससार के क्लेश दूर करने के लिए हमे अपने आत्मस्वरूप की आराधना करना चाहिए और आत्मस्वरूप की आराधना, देव की आराधना, गुरु को आराधना, स्वाध्याय, सयम, तप आदि करना चाहिए। मुफ्त का कूड़ा कवड़ा अपने घर मे आ गया है उसका दान किया जाय, त्याग किया जाय। ये ६ कर्तव्य गृहस्थ के बताए गए हैं।

देखो भाई! कूडा कचडा क्या? धन वैभव ही कूडा कचडा है। उसके प्राप्त करने मे आपकी कोई करतूत है क्या? आपका स्पर्श है क्या? अरे वे तो भिन्न-भिन्न सत्ता वाले है। अगर एक जगह आ गए तो मुफ्त ही तो है, आत्मा का तो आकार अपने ज्ञानपर्याय मे है। इस वैभव मे तुम्हारा क्या गया? कुछ गया तो नहीं। इसलिए यह वैभवविभूति मुफ्त ही तो है। इसलिए यह कूडा कचड़ा कहलाया, धन तो जड़ है। जीव का स्वरूप चैतन्य है, मेरा इसमे कुछ नही है। यदि यह कूड़ा कचड़ा नहीं है तो तीर्थकर चक्रवतीने इसे कैसे त्याग दिया? विभूति

त्याग देना क्या उनकी बेवकूफी समझना चाहिए? इस आत्मस्वरूप को देखने मे और धर्म करने के प्रसंग में निश्चय की ही बात सामने रखी जाती है और उसमे उलझने की बात सामने नही रखी जाती है।

देखो भाई २४ घटे है। २३ घटे का समय तो विकल्पो मे लग गया,पर एक घण्टे का जो समय बचता है उसमे २-४, १०-१५ मिनट का समय तो आत्मस्वरूप के चिन्तन मे लगावो। अपने को सबसे निराला ज्ञानमात्र विकल्प भावो से परे अनुभव करो। यदि इस प्रकार का अपने आपको अनुभव करो तो शान्ति प्राप्त हो सकती है और यदि अपने को लुटेरो सपेरो से मिला हुआ अनुभव करोगे तो शाति नहीं प्राप्त हो सकती है। अपने को ज्ञानस्वरूप, सबसे निराला विलक्षण चैतन्यमय अपने आपको अनुभव करो और २४ घण्टे मे २, ४ मिनट तो अपने आत्मस्वरूप मे दृष्टि दो तो आकुलताये व्याकुलताये नष्ट हो जावेगी।

हम मूर्ति की मुद्रा का दर्शन करते है तो हमे शिक्षा मिलती है कि मूर्ति की तरह ही शात अपने आपको निरखू अपने आपको उस मूर्ति की तरह शात निरखे बिना शाति नहीं मिलती। इस प्रकार से मानो कि वीतराग मुद्रा से अपने को शिक्षा मिलती है।

जहा पर वासनाये है वहा दु ख है, वहा व्यसन है। तो भाई ये व्यसन तो ज्ञान के द्वारा ही नष्ट हो सकते हैं। मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, कृतकृत्य हूँ, परिपूर्ण हूँ, अधूरा नही हूँ, ज्ञायकस्वरूप हूँ, ऐसा ही तुम्हे अपने आपको निरखना है। यही तो इस आत्मा का काम है। इस आत्मा का इसके आगे और कोई काम नहीं है। इसलिए अपने स्वभाव मे दृष्टि हो तो वहा वासनाये समाप्त हो जावेगी, और वासनाओ के समाप्त हो जाने से सारे क्लेश समाप्त हो जावेगे।

कामे बोधरिपावर्थेऽनर्थे तन्मूलधर्मके ।
त्यक्त्वादर स्वमर्चेय स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-१३।।

अर्थ– ज्ञान के वैरी काम में, अनर्थ रूप धन में तथा काम, अर्थ के मूल पुण्य में आदर को छोडकर अपने को पूजू और मैं अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं।

पुरुषार्थ चार होते है–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म के मायने पुण्य करना, परोपकार करना, दूसरो कीसेवा सत्कार करना। व्यवहार से धर्म के मार्ग तो कितने ही है–दान करके, परोपकार करके, किसी भी प्रकार से गरीव पुरुषो को खिला-पिला करके इत्यादि अनेक प्रकार से धर्म किया जा सकता है। अब दूसरी बात है–अर्थ। अर्थ के मायने है धन कमाना। धन कमाने का पुरुषार्थ करना, इसी के मायने है अर्थ पुरुषार्थ। काम पुरुपार्थ के मायने है घर का पालन पोपण करना, समाज तथा देश के बारे मे कुछ सेवाभाव उत्पन्न करना विषयभोग सेवना इत्यादि के मायने हैं काम पुरुपार्थ के और मोक्ष पुरुषार्थ तो मोक्ष ही है। यह मोक्ष पुरुषार्थ अन्य तीनो पुरुपार्थो से अच्छा है। धर्म,अर्थ और काम पुरुपार्थ भी गृहस्थावस्था मे किसी की अपेक्षा कुछ अच्छे हैं, मगर सर्वथा अच्छे नहीं कहेगे।

अव जरा क्रम से एक एक की खबर लो। पहले काम को लो। काम निन्दनीय होता है, काम का अर्थ पालन-पोपण और काम वासना दोनों ही हैं। काम ज्ञान का बैरी है। जैसे विषयो मे आसक्ति है, प्रीति है तो

वहा ज्ञान का काम तो नही चलता है। काम का पुरुषार्थ है ज्ञान का दुश्मन। अब अर्थ पुरुषार्थ को लो। धन तो अनर्थ का मूल है अर्थात् धन से अनर्थ होता है। धन का काम तो केवल अनर्थ है। धन के होने पर यदि विवेक है तब तो धन बनेगा और यदि विवेक नहीं है मोह है तो मोह के होने से प्रकृति ऐसी हो जाती है कि पाप करते है, दूसरो को सताते है, क्रोध करते है, छल दम्भ धोखा इत्यादि करते हैं, धर्म पुरुषार्थ, अर्थ पुरुषार्थ व काम पुरुषार्थ दोनो का कारण है। पुण्य का और क्या काम है? खूब कमाई आ रही है, खूब सम्पत्ति भोग की सामग्री मिल रही है सो पुण्य पुरुषार्थ की यह प्रकृति है कि काम पुरुषार्थ मे और धर्म पुरुषार्थ मे सहयोग दे। पुण्य पुरुषार्थ का और क्या काम है? यहा आत्मधर्म की बात नहीं कह रहे। उसमे यदि रम गए तो इससे अच्छा और क्या काम है? तब तो फिर सारे काम बन गए। यहा तो पुण्य की बात लेनी है। इस पुरुषार्थ से क्या काम बना कि धन सम्पत्ति मिल गयी, मागी हुई सामग्री मिल गयी। यही हुई धर्म पुरुषार्थ की बात और दूसरे पुरुषार्थ की पोल को तो सुन ही लिया। काम ज्ञान का दुश्मन है। अर्थ अनर्थ का मूल है और दोनो ही दुश्मन को बढ़ावा देने वाले है यह धर्म (पुण्य) पुरुषार्थ।

इन तीनो पुरुषार्थो का सम्यग्ज्ञानी पुरुष आदर नही करता है। यदि पुरुषार्थ करना ही है तो ज्ञान का पुरुषार्थ करो। परम पुरुषार्थ का रास्ता ज्ञान है। यदि ज्ञान है तब तो परम पुरुषार्थ हो सकता है। नही तो मोक्ष पुरुषार्थ नही हो सकता है। अभी देखो शान्ति, सतोष, सुख और आनन्द इत्यादि उसी अवस्था मे आते हैं जबकि अपने अन्त करण मे विषयकषायो का अनुभव न हो। यदि कषायो का लगाव-है, धनवैभव का लगाव है तो शान्ति, सुख, आनन्द इत्यादि कैसे प्राप्त हो सकते है? जिनका लगाव इन सबमे होगा, उन्हे दुर्गति का पात्र बनना पड़ेगा। मनुष्य को सकटो से बचाने वाला केवल ज्ञान ही है और इसका कोई शरण नहीं है। घर मे स्त्री के, पुत्र के हजार गुण हो, पर समझो कि कोई देवता हमे नहीं मिल गए है अपने मार्ग मे ही केवल विचार बना लेते हैं कि मेरा अच्छा समागम हुआ, हम लोग सुख से है। देखो भाई इस तरह से अपने परिवार को देखकर और अपने धन को देखकर सुखी हो रहे है।

अज्ञानी जन अपने ज्ञान को इन बाहरी चीजो मे ही फसाए हुए है। वाह्य मे ज्ञान का फसाना ही आस्रव का कारण होता है। सो कहते है कि धर्म, अर्थ, काम ये तीनो पुरुषार्थ वास्तविक पुरुषार्थ नही है। मोक्ष का पुरुषार्थ ऐसा है कि जिससे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। और यदि अपना उपयोग मोक्ष की प्राप्ति का ही बने तो बात उत्तम है! भैया! जो तुम्हे चार पाच आदमी मिल गए है, जिनको तू अपना सर्वस्व समझ रहा है उनसे ही क्या तेरी गुजर हो जायेगी। उस पारिवारिक बधन मे पड़ा हुआ यदि तू मौज करता रहा तो क्या तेरा पूरा पड़ जायगा। तेरा पूरा तो नही पड सकता। शाति नहीं मिलेगी। यह जीव जहा जाता है, पहुचता है वहीं पर रम जाता है। तो और आगे नही पहुचता है।

एक स्थानक मे कहते है कि एक राजा थे। मुनि के दर्शन करने के लिए गए। राजा ने अपने दारे मे मुनि से पूछा कि महाराज मेरा परभव कैसा गुजरेगा, अब मै मरकर क्या बनूगा मुनि ने अवधिज्ञान से सोचा और कहा कि अमुक दिन, अमुक समय मे, अमुक स्थान पर तुम मर कर विष्टा के कीडा बनोगे। अव राजा अपने घर आया। वडा उदास था। अपने लड़के से कह दिया कि बेटा मै अमुक दिन, अमुक टाइम पर, अमुक स्थान

पर मरकर विष्टा मे कीड़ा बनूगा। तुम हमे एक लकड़ी से मार डालना। मै तो राजा हूँ और कीड़ा मकोड़ा बनूगा तो । मै तो इस जगत मे कीड़ा मकोड़ा बनकर न रहूँगा। राजा मर गया और कीड़ा बन गया। लड़का एक लकड़ी लेकर पहुचा। जिस विष्टा मे राजा कीडे के रूप मे बैठा हुआ था उसी मे लकड़ी से लड़के ने मारना चाहा, पर वह कीड़ा उसी विष्टा मे घुस गया। देखो भाई वह कीड़ा मरना नहीं चाहता था। इस जगत मे यह जीव जिस गति मे जन्म लेता है वह वहा से अन्य गति मे नहीं जाना चाहता है।

देखो नाम प्रकृति मे गतियां चार मानी गयी है। नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। इसमे दो गति नरक व तिर्यञ्च पाप है। और मनुष्य व देव ये दो गतिया पुण्य है। तथा आयु की चार प्रकृति है—नरकायु, मनुष्यायु, तिर्यचायु व देवायु। जिसमे आयु की तीन तिर्यञ्च, मनुष्य और देव तो पुण्य प्रकृति मे है। केवल नरकायु पाप प्रकृति है। यह फर्क इनमे कैसे आया? कोई तिर्यञ्च या मनुष्य या देव जीव यह नहीं चाहता कि मै मर जाऊ। तिर्यञ्च नही चाहता कि मै मर जाऊ। तिर्यञ्च को तो आयु प्रिय हो गयी, किन्तु तिर्यञ्च जो अवस्था गुजर रही है उसे वह नहीं चाहता और मरना भी नहीं चाहता। यह जहा जाता है वही मस्त हो जाता है। केवल नारकी जीव ही चाहते है कि मैं मर जाऊ, अन्य कोई भी मरना नही चाहता है। इस कारण नरकायु पाप प्रकृति है बाकी ३ आयु पुण्य प्रकृति है।

हे आत्मन् ! विवेक की पूजा है। जिनको हम भगवान समझकर पूजा करते हैं सदा ध्यान लगाते है, भक्ति करते है उनके कुछ ज्ञान की तरग ही नहीं आती है। कितना ही हम माथा रगड़ते हैं, पर वह हमारी तरफ देखते भी नही। देखो भैया ! बहुत दिन भक्ति करते हो गये, उनकी आराधना करते हो गए फिर भी वे हमारी तरफ देखते भी नहीं याने कुछ भी राग नही करते और भी हम पूजन करते, पाठ भी करते चले जा रहे है। देखो भाई, इतने दिन भगवान का पूजन करते हो गए उन्होने कभी यह भी नही कहा कि चलो यह ले लो। हम कितनी ही भक्ति करे वे तो सकल ज्ञेय ज्ञायक निजानन्दरसलीन है। देखो—प्रभु हमसे बोलते भी नही, बहुत दिन बीत गए, दस वर्ष बीत गए, बीस वर्ष बीत गए, युग बीत गए, हमारे लिए प्रभुने कुछ नहीं किया। अरे थोड़ा सा हमसे बोल दे तो हमारा दिल तो ठडा हो जाय, मगर कुछ नहीं किया ! फिर भी हम उनको पूजते जा रहे हैं। उनके लिए हम न्यौछावर होते चले जा रहे है। कुछ तो बात भगवान मे बड़ी है तभी तो हम उनको पूजते हैं। उन भगवान ने जो कुछ अपने लिए किया है वह ठीक ही किया है। सबसे मोह छोड़कर, ममत्व छोड़कर अपने आप मे स्वय बस गए, अपने को अपने आप मे ही जान लिया, वैभव विभूति को कुछ नहीं समझा। आज प्रभु निष्कम्प निष्काम सर्वज्ञ सर्वदर्शी अनन्तानन्दमय है, सर्वोत्कृष्ट है।

हे आत्मन् ! ये बाहर के पदार्थ भोग साधन है क्या, बतलाओ। एक तराजू मे सेर भर मेढक तोलो तो क्या तौल सकोगे? अरे वे उछल जावेगे। कोई इधर से उछल गया तो कोई उधर से उछल गया। इसी तरह बाहरी पदार्थो की व्यवस्था बनाकर कोई चाहे कि हम आराम कर ले तो कर सकते हैं क्या? नहीं कर सकते है। वाह्य पदार्थो की हालत भी ऐसी ही है कि यह आया, वह गया और वह आया, यह गया। इस तरह वाह्य पदार्थो में अपना उपयोग फसाकर हम आराम से नहीं रह सकते है। और अपनी व्यवस्था बनाकर हम आराम कर ले यह सुगमतया हो जाता है। ज्ञान दृष्टि बना ले फिर आराम से रहे। ये धर्म, अर्थ और कामपुरुषार्थ हमारी विपत्तिका कारण बनते है, हमारी अशाति का कारण बनते है।

ग्रहण करना काम पुरुषार्थ की सिद्धि करना है और आत्मस्वरूप की शुद्धता प्रगट करना मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि करना है। भैया आदर के योग्य तो केवल आत्मधर्म है। कषाय की मदता को धर्म कहते है, किन्तु कदाचित् मदकषाय होने पर धर्म हो या न हो, लेकिन अपने सहजस्वरूप की दृष्टि मे धर्म ही है। इसी धर्म के द्वारा कषाय मद हो जायगा और मोक्षमार्ग भी चलेगा। उस धर्म से सत्य आदर प्राप्त होगा। अपने स्वरूप मे दृष्टि अधिक से अधिक लगे तो वहीं धर्म का धारण है। धन की चीज तो यो ही हो जायगी अथवा धन तो यो ही आता है उसमे कुछ करना नहीं पड़ता है। अभी कोई समय ऐसा सुयोग का बन जावे तो यो ही कमाई हो जावे, अभी अभी २, ४ मिनट मे भी कमाई हो जावेगी। यदि पुण्योदय नही है तो कितना ही खेद करो, उससे कुछ भी न होगा। पुण्य बध होता है विशुद्धि से विशुद्धि होती है धर्मानुराग रूप परिणाम से। भैया ! हमें तो सोचना होगा, श्रद्धा करनी होगी, आचरण करना होगा, अपने मे अपने को लगाना होगा, तभी अपना ठीक होगा। धर्म तो करने से ही होगा। बाकी धन वैभव तो यो ही हो जायगा। सो अब मैं समागत पदार्थ के व अपने पर्याय के आदर को त्याग करके, अपने सत्य स्वरूप को देख करके अपने को ही अवलोक कर अपने मे अपने लिये अपने आप स्वय सुखी होऊ।

सुखारिर्दुर्गतिर्दैन्यं पापं तद्धेतुक ततः ।
दूरं वसानि पापेभ्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-१४।।

अर्थ– दीनरूपभाव, सुख का वैरी है तथा स्वयं दुर्गतिस्वरूप है और पाप (अशुद्धोपयोग) दैन्य का कारण है इसलिये मैं उन पापों से दूर रहूँ और अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊं।

जगत् के सभी जीव सुख चाहते हैं और जितने भी ये यत्न करते है सुख पाने के लिए ही यत्न करते है। ध--न कमाना, देश सेवा करना, विषय साधना करना, भोग करना, आत्महत्या कर डालना इत्यादि सारे के सारे यत्न सुख के लिए जीव करते हैं। उन यत्नो से सुख मिल ही जाय ऐसा तो नही है। यदि वे योग्य काम हैं तो सुख मिलेगा और यदि अयोग्य काम हैं तो सुख नहीं मिलेगा। परन्तु सभी प्रयत्न सुख के लिए करते है। सुख होता क्यों नहीं है? देखो दु ख के जितने कारण हैं, जो कुछ है उनमे विचार करो तो अंत मे एक ही बात मिलेगी। क्या ? सुख का दुश्मन है दीनता का भाव, दीनता का परिणाम, दीनता सुख का दुश्मन है? पञ्चेन्द्रिय के विषय मे जब इच्छा होती है तब दीनता ही रहती है। अपने मे विषयो की चाह है तो दीनता होगी। पर का भाव आ गया, स्त्री के आधीन हो गए या नए नए जो साधन हैं उनके आधीन हो गए। यहा भी दीनता है। गरीब हो गए। अपने बलका कोई मूल्य नहीं करता, यह सब दीनता ही तो है।

यह दीनता सुख का दुश्मन है। दसों तरह के भोजन करनेके परिणाम हो गए। अब यह चीज चाहिए, अब वह चीज चाहिए इत्यादि से वे पराधीन होते हैं। दसो प्रकार के व्यञ्जन रखे हैं, यदि खाने वाले के मन में आ जाय कि यह चीज अच्छी है, बस इतने में ही जीव के दीनता आ जायेगी। चाहे ऊपर से न मागे, पर आशा के परिणाम आ गए तो दीनता है और इस दीनता की बुद्धि में फिर वह मुख से मागने लगता है. . . . . यह दीनता का परिणाम ही मूल में ऐसा है जो सुख का दुश्मन है। इसी तरह मन, चक्षु, श्रोत्र आदि के वशीभूत हुए तो दीनता आ जायगी, और यदि किसी चीज के वशीभूत हुए तो दीनता आ जायगी, और यदि किसी चीज के

वशीभूत नहीं हुए तो दीनता नहीं आती है। जगत् के किसी पदार्थ की चाह नही हैं तो दीनता कैसे आवेगी? एक की बात न देखो। कितने के सामने ये जगत् के जीव दीन बने रहते है। स्त्री के दीन, धन के दीन इत्यादि जिन-जिन बातो मे चाह है, जिन-जिन वस्तुओ से प्रीति है उन सब पदार्थो मे दीन बने रहते है। सुख का अभाव किसने किया, दीनता ने। धनहीन होने को दीन नहीं कहते, क्योकि पर वस्तुओ की चाह करे, भीतर मे लच जाय उसे दीनता कहते है। यह दीनता का परिणाम है सो सुख का दुश्मन है।

एक बार एक राजा जगल से निकला तो वहा एक सन्यासी बैठा था। वह राजा सन्यासीसे आगे निकल गया, नमस्कार भी नहीं किया, बोला भी नहीं, अब वह वहा से वापिस आया। कुछ थका मांदा था सो वह साधु के पास आराम करने के लिए बैठ गया। राजा ने विनय नही की और न कोई सेवा सुश्रुषा की बात की। राजा गर्व से भरा हुआ बैठा था। साधु ने एक श्लोक के द्वारा कहा कि

'वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलै', सम इव परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा, विशाला, मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।।"

अर्थात् यदि तुम रेशम के वस्त्र पहिनकर खुश हो तो हम वृक्ष की छाल और वल्कल पहिनकर खुश है। तुम यदि अर्थ से अर्थात् धन से खुश रहा करते हो तो हम आचार्यो के ऊचे-ऊंचे श्लोको के अर्थ लगाकर खुश रहा करते है। यदि तुम बड़े अच्छे-अच्छे पलग, वाहन, आसनो मे खुश रहा करते हो तो मै पारमार्थिक तत्वो को विचारने मे खुश रहा करता हूँ। हममे और तुममे अतर क्या हैं? कुछ नहीं। पर राजन् दरिद्र वह है जिसके हृदय मे तृष्णा लगी रहती है।

सुख का दुश्मन दीनता है। जब जीवो को क्रोध आता है, उसके मन मे दीनता आती है, घमंड आता है, मायाचार होता है, दूसरो से सम्मान चाहा जाता है तब दीन होता है। सुख का दुश्मन दीनता का परिणाम है। सो भैया! देखो मोही की निर्लज्जता कि इसके दीनता आती है कि दीनता भी आती जावे और सुख भी मिले। यह दीनता होती कैसे है, मिथ्यात्व के पाप से, भ्रम के पाप से। पाप पाच होते है—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ ये पाच ही पाप हैं। हिसा, झूठ, चोरी आदि ये तो लोक दृष्टि से पाप है। जो दूसरो की समझ मे आते, जिनका त्याग लोकव्यवस्था के हेतुभूत हैं, इनमे भी वास्तव मे अन्तर्वर्ती दुर्भाव ही पाप हैं। मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ, इन पापो मे कौन सा पाप छूट गया? हिसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि किए जाते तो इन्ही पाचो की वजह से किए जाते हैं। सो पाप तो वास्तव मे मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ है। उनमे प्रबल है मोह।

आप लाख दर्जे मेरा हित चाहते हैं, किन्तु मुझे भ्रम हो जाय तो आपकी शक्ल देखकर मेरे दुर्भाव के कारण मुझे पाप लग रहे है। मुझे भ्रम हो गया तो मै मरा जाता हू, जला जाता हूँ, भ्रम तो पाप है और धोखा कैसा है? धोखा भी एक पाप है। किसी ने किसी को धोखा दिया तो धोखा देने वाले को टोटा है कि जिसे धोखा दिया गया उसे टोटा है? टोटा तो उसे है जिसने धोखा दिया, जिसको धोखा दिया गया है वह यदि ज्ञान मे हैं तो टोटा नहीं है और यदि ज्ञान मे नहीं है तो सक्लेशभाव होने से टोटा है। जिसने धोखा दिया उसका ऐसा

रुद्र परिणाम है कि वह कठोर बन गया। उसको तो विशिष्ट पाप है। उसका कैसे छुटकारा होगा, वह कैसे पार होगा? जिसने धोखा दिया उसे महा पाप है। जिसको धोखा दिया गया उसकी आत्मा को कितना क्लेश होता है, इसका तो वही अनुभव कर सकता है जिसे क्लेश होता है। जिसको धोखा दिया है उसके मन मे ऐसा तक आता है कि अगर साधन हो तो धोखा देने वाले की जान भी ले ले और यह मिथ्या मोह भी क्या है? पाप ही तो है।

प्रश्न –जिसको धोखा दिया वह इतना सक्लेश करता और हिसा का विचार करता है तो वह भी तो बड़ा पाप करता है। उत्तर–पाप वह भी करता है परन्तु वह अपने अन्य दुर्भाव से करता है। यह मोह भी क्या है? यह विश्वासघात है, मिथ्या है। जैसी बात है, जैसा पदार्थ का स्वरूप है वैसा विश्वास नहीं बना और उसका उल्टा बना बैठा तो यह धोखा है और अपने आपको धोखा दे रहा है तो यह कितना कुयोनियो मे भ्रमण कराने वाला धोखा है? धोखा अपने को देने वाला मै खुद हू, कोई दूसरा नहीं है। अपनी ही कल्पनाओ मे मस्त रहे और यह सोचे कि हम काम ठीक कर रहे है, हमारा यो काम चल रहा है, हम मजे मे हैं इत्यादि। पर वृद्धावस्था मे खबर कुछ और ही होगी कि हाय! हाय! ६०, ७०, ८० वर्ष धोखे मे ही चले गए। अब क्या होगा, करने योग्य समय मे तो कुछ नहीं किया प्राय जिसके जवानी है, बचपन है उसके ज्ञान विकसित नहीं हो रहा है, पर अत मे उसको धोखा है। जब लोगो को कष्ट होने लगता व अधिक कष्ट सहे नहीं जाते तभी ज्ञान होता है। किसी किसी के जवानी या बचपन मे ही विवेक हो जाता है। ये जगत् के प्राणी अपने को धोखा देते जा रहे हैं। अच्छा खाने पीने का ही काम है, सन्तुष्ट होकर खाते हैं। अरे वे इस सुख मे ही मस्त होकर अपने आपको धोखा देते है। ये सब तो नष्ट होने वाले है, उनकी चीजे नही हैं। सुख मे मस्त होना अपने आपको धोखा देना है। भैया! जो सुख आते है उनके भी तुम जाननहार रहो, फिर और यह जो दुःख होते हैं उनके भी तुम जाननहार रहो, फिर और जो विकल्प होते है उनके भी तुम जाननहार रहो। यो सुख मे मस्त हुए जाते हो और दु ख मे घबड़ाए जाते हो। यही तो इस संसार मे विकार है। अरे परपदार्थो मे, पर जीवो मे मस्त न होओ। उनमे मस्त होने से सुख नहीं होता। जिसके लालच है उसके ही दीनता है, और जहा पर दीनता है, वहा पर क्लेश है। जैसे कोई किसी वस्तु मे लालच करे पर वस्तुओ मे दृष्टि दे तो वहीं दीनता है। तो सुख की दुश्मन दीनता है, दीनता का परिणाम है और वह एक बड़ी दुर्गति है, उसका कारण पाप है। पाप करे तो दीनता उत्पन्न होती है। इसलिए पाप से दूर रहना चाहिए, यही मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट विभूति है। जो पुराणो मे लिखे गए महापुरुष हैं उनमे यह विशेषता थी कि वे पाप से दूर रहे, उनकी धर्म मे प्रीति रही। इसी से उनके पुराण बन गए। भक्त लोग उनके चरित्र के पन्ना उलटते हैं और उनके चरित्र पढते हैं। तो हमे भी चाहिए कि पाप से दूर रहें पाप को छोड़ दे।

एक जगह शास्त्र सभा हो रही थी। अनेक लोग शास्त्र मे बैठे हुए थे। एक लकड़हारा भी उस दिन शास्त्र में बैठा था। शास्त्र में चर्चा चली कि हिसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह ये पाच पाप ही दु ख देने वाले हैं, उनको त्यागना चाहिए। यह सुनकर उसने सोचा कि मैं कुछ और पाप तो करता नहीं हूँ केवल जगल मे हरी लकड़ी काटता हूं। अच्छा उसे अब मैं नहीं काटूगा, मैं केवल सूखी लकड़िया बीन लाया करूगा, या किसी सूखे

पेड़ से ही काट लाया करूगा। झूठ का पाप तो और कुछ नहीं करता, मैं किसी से झूठ नहीं बोलता केवल ग्राहक से लकड़ी के ठहराने मे झूठ बोलता हूँ सो यह भी न बोलूगा। आठ आना की लकड़ी लाऊंगा और आठ आना कहूगा। चोरी मैं नही करता कि सिर्फ दो पैसे की चुगी बचा लेता हूँ। अब मैं चोरी भी नहीं करूंगा। मैंने किसी दूसरे की स्त्री पर दृष्टि भी नहीं डाली। अच्छा अब मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य कर लू। स्वस्त्री से भी ब्रह्मचर्य रहेगा। परिग्रह का भी क्या करना है? आठ आने की लकड़ी बेचता हूँ। दो आने धर्म मे खर्च करू, चार आने मे गुजर बसर करू और दो आने जो बचते हैं उन्हें विपत्तियों से बचने के लिए, संकटो से हटने के लिए, विवाह आदि कामो मे लगाने के लिए जोड़ता रहूँ। अपनी कमाई के चार भाग कर लिए। उसके परिग्रह का काम ठीक हो गया। इस तरह से वह अपनी गुजर करता गया। एक दिन लकड़हारा जंगल से लकड़ी काटकर एक सेठ की हवेली के नीचे से निकला। उसी समय सेठ के रसोइया को लकड़ी की जरूरत थी सो उस सेठ का नौकर रसोइया भी निकला, बोला—लकड़ी बेचोगे? हा हा बेचूगा। कितने मे बेचोगे? ८ आने मे। ४ आने लोगे? ६ आने लोगे? नहीं। ७ आने लोगे? नहीं। लकड़हारा चल पड़ा। रसोइया थोड़ी देर बाद बोला अच्छा लौट आवो लकड़हारा लौट आया, लकड़हारे से रसोइया ने फिर कहा—साढ़े सात आना देगे। लकड़हारा बोला—तू किस बेइमान का नौकर है? ऊपर से सेठ सुन रहा था, सेठ ने बुलाया, बैठाया और बोला कि हमे बेइमान क्यों बना रहे हो? कहा—महाराज नौकर भी जैसे सग मे रहता है वैसा ही सीख लेता है। नौकर पहले तो बुलाकर कहता है कि मजूर है फिर बाद मे कहता है कि साढ़े सात आने लोगे। सेठ जी तुम तो रोज शास्त्र में बैठते हो, हम तुम्हें देखते हैं। हम तो केवल एक ही दिन शास्त्र मे बैठे, तब से ही मैंने पाचो पापों का त्याग कर लिया अब मै हरी लकड़ी नहीं काटता, चुगी के पैसे नही चुराता, झूठ नहीं बोलता, हम ब्रह्मचर्य का पालन भी करते हैं। अपनी कमाई का चौथाई भाग धर्म के कामो मे, दो चौथाई गुजारे में लगाता हू और एक चौथाई विपत्तियो के लिए, सकटो के लिए और घर के काम काजो के लिए बचाता हू। सेठ बोला कि अरे लकड़हारे पुण्यवान तो तू ही है। सेठ ने उसका आदर सत्कार किया।

प्रयोजन यह है कि दुर्गति तो पापो से बना करती है। जो पापों को बनाता है वह आदर्श नहीं बन पाता है। और जो पापो से दूर रहता है वह आदर सत्कार प्राप्त करता है, सुखी रहता है। सुखी होने का उपाय है पापो को दूर करना। सो पाप ५ हैं—मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ। इन पापो के जो वशीभूत है वह शाति प्राप्त नहीं कर सकता है। दीनता तब आती है जब अपने को तू तुच्छ समझता है। दूसरों से ही मेरी जिन्दगी है, दूसरो से ही मुझे सुख है, इस तरह के मिथ्या परिणाम रहते हैं तभी दीनता रहती है और यदि ऐसे परिणाम हो कि मै आत्मा शुद्ध, चैतन्यस्वरूप हूँ, ज्ञानानन्दभाव मात्र हूँ, विलक्षण हू, सर्वोत्कृष्ट हू, ऐसा मैं अपनी आत्मा को देखू तो मैं सुखी हूँ, परिपूर्ण हूँ, मेरे में हीनता नहीं है।

दीनता का कुछ मेरे मे काम ही नहीं है। यह तो ज्ञानमात्र भाव है। इसके तुच्छता कहां बसी है? ऐसे परिणाम वाला आनन्द पाता है और जो इस प्रकार से अपने को नहीं देखता है और बाहर मे ही मोह लगाए रहता है उसके दीनता आ जाती है। इस दीनता के मिटाने का उपाय है अपने आप मे दृष्टि करना। जितना भी मुझे सुख मिलता है वह मेरे ज्ञान के विकास से मिलता है। एक मनुष्य भोजन करके अपने आप मे सुख का

अनुभव करता है तो एक योगी उपवास करके, निराहार रहकर अपने प्रभु के दर्शन करके सुख प्राप्त करता है। तब कैसे कहा जाय कि सुख का कारण भोजन ही है। जो भोजन करके सुखी होता है वह अपने ही ज्ञान से सुखी होता है। यदि कोई बहुत बढ़िया-बढ़िया भोजन कराते है और दो-चार चोचले भी करते जाते हैं याने बढ़िया भोजन खूब प्रेम से कराते हैं और खुद भी भोजन करते जाते है और कहते हैं कि खा लो, ऐसा अच्छा भोजन कभी नहीं किया होगा। तुम्हारे बापने भी कभी ऐसा भोजन नहीं खाया होगा। तो इसके बाद वह भोजन विष सा लगता है। खाने वाला कितना दु ख महसूस करेगा? अरे वाह्य वस्तु से तुमने सुख माना है तो सुख ही उससे निकलना चाहिए। तो मतलब यह है कि जो भोजन किया जा रहा हो उस भोजन से सुख नहीं मिलता है, केवल कल्पनाये बना लेने से ही तदनुकूल काल्पनिक सुख मिलता है। सर्वत्र ही जीव को ज्ञान से सुख मिलता है। सुख और दु'ख ज्ञान के ऊपर ही निर्भर हैं। यदि अपने मे ज्ञान है तो वहा दु खो का नाम नहीं है और यदि ज्ञान नहीं है तो आजीवन क्लेश हैं। कल्पनाये बना लेने से दु ख सुख हो जाते हैं। अभी कोई क्लेश है तो अगर सही ज्ञान बना ले कि मैं तो ज्ञानानन्दघन स्वरूप हूँ, मै तो सुखी हूँ तो क्लेश दूर हो जावेगे।

एक मनुष्य को कोई अच्छा काच मिल जाय, उसे यदि कल्पना हो जाय कि वह तो हीरा है, अरे यह तो २०-२५ हजार का कम से कम होगा। बस समझो उसको ठसक आ जाती है। कहीं अगूठी के भीतर कोई काच लगा हो और यह भ्रम हो जाय कि यह तो हीरा है, कम से कम १० हजार का होगा। इतने से ही वह प्रसन्न हो जायगा, सुखी हो जायगा। और यदि हीरा भी हो और जरा देर मे यह समझ मे आ जावे कि यह तो कांच है। तो उसका चित्त बुझा रहता है। वाह्यपदार्थो से कोई सुख नहीं है। पर भ्रम ऐसा बन गया है कि वाह्य पदार्थो से ही सुख है, यही समझ कर वह परिश्रम करता है और उनका सग्रह करता है। जैसे कुत्ते को सूखी हड्डी मिल जाय तो उसको मुह मे रखकर अकेले मे चबाता है। उसके चबाने से दांत मसूड़े फट जाते हैं, खून भी आ जाता है, अपने खून का आनन्द आता है पर भ्रम हो गया कि उसको हड्डी चबाने से आनन्द आता है। यदि कोई दूसरा कुत्ता उसको छीनने के लिए दौड़ता है तो वह गुर्राता है। भ्रम हो गया ना उसे कि यह हड्डी का खून है। उसे इस विकृत ज्ञान से विकृत आनन्द मिला, यह दृष्टान्त है।

इसी तरह जगत के जीव अपने स्वय ज्ञान से, अपने ही आनन्द के विकार से सुखी होते हैं। किन्तु उस समय जिन वाह्य पदार्थो को उपयोग मे लिए हुए हैं उनसे सुख का भ्रम हो गया। सो कोई परवस्तुओ को पकड़ता है और सग्रह करता है और उनके ही पीछे झंझट चलता है। सही पता हो जाय कि मैं स्वय ज्ञानानन्दपुञ्ज, अविनाशी तत्व हूँ। यदि यह पता पड़े तो इसके दीनता न रहे। यह दीन हो जाता है पञ्चेन्द्रिय के विषयो को देख कर। ऐसा दीन हो जाना ही उसके दु ख का कारण है।

हे आत्मन् ! ऐसा अपने आपको निरखो कि मैं भगवान् सदृश ज्ञानमात्र हूँ, इसमे दु'खो का काम नहीं है, इसके सारे प्रदेश में आनन्द भरा हुआ है। आनन्द की मेरे मे कमी नहीं है। मेरा ज्ञान मेरे से बाहर नहीं है और न आनन्द ही मेरे से बाहर है। मैं स्वयं ज्ञानानन्दघन हूँ, यह लक्ष्य हो जाय, ऐसा भीतर से परिचय मिल जाय, दृढ़ प्रतीति हो जाय, ऐसा यह उपयोग बनाने के लिए तैयार हो जाय तो उसको क्लेश नहीं मिल सकते हैं। पर भैया! सम्बन्ध मे हानि ही हानि है। अकेला है तो बड़ा सुख है और यदि दुकेला हो गया, विवाह हो गया तो क्या

मिला कि चौपाया हो गया। दो पैर खुदके, दो स्त्री के हैं। चौपाया जानवर कहलाते हैं। दो हाथ पैर वाला मनुष्य था, अब चौपाया हो गया। बच्चा हो गया तो छैपाया हो गया, भवरा हो गया। अब भंवरे की तरह आवश्यकता की पूर्ति के लिए डोलता फिरता है। बच्चे का विवाह भी हो गया तो अष्ट पाया हो गया अर्थात् मकड़ी बन गया। मकड़ी का जाल होता है। उसने अपने मे जाल बनाया और फस गया। ५०, ६०, ७०, ८० वर्ष तक उनकी ही धुन मे लगा रहता है। कितने ही सकट आवे, घर मे बसने वाले लोगो को मान लिया कि ये मेरे हैं और ये दुनिया के लोग क्या है? ये गैर हैं। ये सब भाव अपने लिए मोह की विपदाये हैं।

भैय्या ! ऐसा भाव अपने मन मे बने कि मै भगवान तुल्य, ज्ञानघन, पवित्र आत्मा, सबसे न्यारा हूँ, तो आत्मकुशलता है, परन्तु ज्ञान मे तो यह आता है कि यह मेरा लड़का है, यह मेरा घर है, और बाकी तो सब गैर हैं। वे चाहे मर जावे, चाहे जो कुछ हो जावे उनसे मेरा कुछ मतलब नहीं, पर अपने घर के जो २, ४ मनुष्य हैं उनको पकड़े हुए है। इन दो चार मनुष्यो का मोह छोड़ो, ये भी सब तेरे कुछ नहीं है। इनके मोह से ही रुलना पड़ेगा। मगर उन्हीं के बारे मे भक्ति है, भावना है व ज्ञान है। दस लक्षण मे दान करेगे, व्रत करेगे पर मोह न करे ऐसे भाव तक का उत्साह भी नही होता । भैया! सबसे बड़ी विपदा यही है कि यह विकल्प हो कि घर मे बसे दो चार को मान लिया कि ये मेरे है बाकी सब गैर हैं । अरे कौन किस गति से आया, यहा कब तक रहेगा, कुछ भी तो सम्बन्ध नही, फिर भी विपरीत बात मन मे आना और जिस कल्पना मे ही रमता, यह कितनी बड़ी भारी विपत्ति है? भगवान् की बात और तो सब मान ली जायेंगी किन्तु मोह त्यागने की बात नहीं मानी जाती तो माना ही क्या? भगवान् का तो मूल उपदेश मोह और मिथ्यात्व न करने का है। जैसे कोई पनाला निकालने की घटना थी। पटेल दूसरे घर के पास मे पनाला निकालना चाहता था, तब पचो ने फैसला उसकी इच्छा के कुछ विपरीत दिया तो पटेल कहता है कि पचो का कहना सिर माथे पर, पनाला यहीं पर निकलेगा। सो भगवान की पूजा मजूर है, दान उपवास आदि मजूर है पर मोह छोड़ने की बात नहीं कर सकते यही सबसे बड़ी विपदा है। मोह ही सब पापो का मूल है। जगत के समस्त क्लेश पापो से आते है। तो मैं इन पापो को अपने से दूर करके अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

कार्य हेतु र्न चान्यन्मे भाति विश्वं स्वसत्तया ।
ज्ञान सुखं परस्मान्न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-१५।।

अर्थ– मेरा कार्य और कारण अन्य कुछ नहीं है विश्व तो स्वयं ही सत्ता से प्रतिभासमान होता है निश्चय से ज्ञान और सुख पर पदार्थ से होते ही नहीं अत मैं अपने में अपने लिये अपने आप ही सुखी होऊं।

प्रत्येक जीव सुख चाहते है। सुख प्राप्त होने का केवल एक ही उपाय है दूसरा नहीं है। वह यह है कि मैं एक स्वतत्र सत् हूँ, मै सबसे निराला एक जुदा पदार्थ हू, ऐसा अपने आप में विश्वास आ जाना यह ही सुख का उपाय है। मै कैसा स्वतत्र पदार्थ हूँ। किसी को धोखा देने के लिए नहीं हूँ, मैं स्वय एक स्वतत्र पदार्थ हूँ और जगत के सब जीव भी स्वतत्र स्वतन्त्र पदार्थ हैं। किसी पदार्थ का दूसरा पदार्थ न कार्य है और न कारण है। इसी प्रकार स्वतन्त्र जानते रहने का उपयोग ही सुख का कारण है, मेरा कोई कारण नहीं है अर्थात् मैं किसी चीज से पैदा हुआ नहीं हूँ। ऐसा निरखना ही ज्ञान है और ऐसा निरखने से ही सुख है। वह मैं किसी दूसरे

पदार्थ से पैदा हूँ ऐसी बात नही है। प्रत्येक पदार्थ अपने आप मे है और अपने आप मे ही परिणमता रहता है। मै ऐसा ही ज्ञानमय हू, सुखमय हूँ जो स्वतन्त्र हूँ और अपने आप मे अपने द्वारा अपनी शक्ति को व्यक्ति मे परिणमाता रहता हूँ। मेरा जो परिणाम होगा वह ज्ञान और सुख का होगा। जैसा आत्मा का स्वरूप है वैसा ही परिणमन होगा।

जैसे आम मे रूप गुण है तो आम मे क्या काम होगा? नीला? पीला हो जाय, लाल हो जाय, रूप बदलता रहेगा। यही तो आम का काम है। आम मे रस है तो रस बदलता रहता है। खट्टा हो जाय, मीठा हो जाय, कैसा भी हो जाय, यही तो रसका काम है। इसी प्रकार मेरा गुण ज्ञान व आनन्द है तो मेरा क्या काम होगा, कभी अपूर्ण विकासी रहे, कभी पूर्ण विकासी रहे, कभी अल्पज्ञ रहे, कभी पूर्ण ज्ञाता रहे, कभी विकृतानदी रहू, कभी आत्मानदी रहू, यही तो मेरा काम है। यहा पर कोई दूसरा काम नहीं है। मेरे गुण से ही ज्ञान और आनन्द वर्तता है। यह मै आत्मा अपने को सोचू कि मै आननदस्वरूप हूँ, स्वतत्र अस्तित्व को लिए हुए हूँ, अपने आप मे हूँ अपने आप से ही ज्ञान व आनन्द मिलता है, किसी दूसरे पदार्थ से ज्ञान व आनन्द नहीं मिलता है। यह आत्मा ज्ञान ओर आनन्द से परिपूर्ण है। मेरे मे ज्ञान व आनन्द किसी दूसरे पदार्थ से नही आता है। मेरे मे जो ज्ञान आनन्द भरा हुआ है वह दूसरे पदार्थो के कारण नहीं है। दूसरे पदार्थ तो मेरे ज्ञान और आनन्द के बाधक बन सकते है, हमारे ज्ञान और आनन्द के साधक नहीं बन सकते। परमार्थ से वाह्य पदार्थ मेरे ज्ञान और आनन्द के बाधक भी नहीं बनते, क्योकि हम स्वय ही कल्पनाये बनाकर विह्वल हो जाते है। मेरे मे तो आनन्द और ज्ञान है, मै आत्मा अपने ज्ञान आनद मे स्वय तृप्त हूँ। यदि किसी वाह्य मे दृष्टि न हो, मोह न हो तो हमारा ज्ञान जितना भगवान का है उतना हो जायेगा मै तो सबसे जुदा हू फिर भी स्वय ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण हू।

मेरी और भगवान की जाति तो एक है पर अन्तर इतना है कि उनके ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण अनन्त हैं और हमारे ज्ञान और आनन्द अल्प है। ऐसा क्यो हुआ ? हममे गल्ती यह है कि हम अपने स्वरूप को न जानकर दीन बने हुए है। यही गल्ती है और यही कारण है। इसी गल्ती के ही कारण दु खी हो रहे है। जानकारी किसी भी चीज की कर ले तो जानकारी करने मे दीनता नहीं आती है। दीनता तो अपने मे आशामयी कल्पनाये बना लेने से आती है। दीनता से क्लेश आ जाते है। यदि आशाये मिट जावे तो दीनता मिट जायेगी। यदि हमे दीनता मिटाना है तो पर की दृष्टि छोड दे। पर की दृष्टि से ही क्लेश होते है। अत यदि पर की दृष्टि छोड दे और अपने आप के महत्व को समझ ले तो दीनता मिट जाती है। यदि अपने मे दीनता का भाव न रहे तो आनन्द ही आनन्द है और अन्य इसका उपाय नही है। कितने उपाय कर डाले, पर अधूरे ही रहेगे। दु ख न हो, अशाति न हो ऐसी अवस्था न हो, ऐसा चाहते हो तो अपने आपको कृतार्थ समझकर अपने आप पर विश्वास करना चाहिए।

विश्वास यह होना चाहिए कि मैं एक सत् पदार्थ हूँ, अपने मे हू मेरे मे ज्ञान अपूर्ण नहीं ज्ञान और सुख से लबालब भरा हुआ हूँ। हालाकि इस समय एक समस्या सामने है कि भूख तो लगती ही है, इससे तो भोजन मे तो दृष्टि देना ही होता है, यह नही कि दृष्टि भोजन ही भोजन मे रहे, उपाय ऐसा बने कि भोजन की इच्छा हीं न

रहे और ज्ञान व आनन्द ही रहे। भोजन तो करते ही जाते और पूरा कुछ पड़ता नही, तब इतना तो करो कि भोजन मे आसक्ति न रखो। अपने पेट की केवल पूर्ति कर लो और अपने भाव निराहार ज्ञायकस्वरूप भाव की प्रतीतिरूप कर लो तो अमर रह सकते हो। यदि भोजन की इच्छा दूर होगी और निराहार ज्ञायकस्वभावमय आत्मतत्व की दृष्टि होगी तो उसका यह परिणाम होगा कि आहार सज्ञा खत्म हो जायगी ओर ऐसी स्थिति आवेगी कि यह शरीर छूट जायगा व इस ससार के सारे झगड़े छूट जायेगे और केवल आत्मा ही आत्मा रह जावेगी। यह स्थिति ही सर्वोत्कृष्ट है। यदि मन मे कुछ लालसा,लालच इत्यादि करने की भावनाये बने तो फिर ऐसी स्थिति कैसे आ सकती है ? लालसा करो तो करो यथार्थ दृष्टि की, अपने आप मे लाने की, अपने आप मे झुकने की, विकल्पो से छूटने की ओर अपने आप की आत्मा की सेवा करने की, किन्तु ऐसी लालसा करना कि २ लडके हो जावे, ४ लड़के हो जावे, मेरी ऐसी स्थिति बन जाये, धन हो जाय इत्यादि, ऐसी लालसा करने से तो ठीक नहीं होगा। अरे इससे पूरा नही पड़ेगा। ऐसा करने से कोई न कोई काम, विपदा, सकट खड़े ही रहेगे। अब यह है, अब वह है, अब यह चाहिए ओर अब यह मिले, इस तरह से अनेक विकल्प खड़े ही रहेगे। यो तो विकल्पो से आकुलता ही आकुलता आयगी।

हे प्रभु, हे निजनाथ ! मेरे मे ऐसा बल भरो कि केवल अपने आप की शक्ति आवे, किसी भी वाह्य पदार्थ के विकल्प न बने। वाह्य पदार्थो को मुझे सोचना ही न पड़े। वाह्य मे सोचने से कुछ लाभ भी नहीं है, सोचते होगे कि हम लड़के को पढ़ाते है तो पढ़ता है। अरे लड़के का भाग्य है। अपने भाग्य से ही वह पढ़ता है। लड़के की सेवा करते हैं, खुशामद करते हैं तो यह बतलावो कि आपका भाग्य बड़ा है या उस लड़के का भाग्य बड़ा है, जिसकी सेवा करते हो, पढाते-लिखाते हो, खिलाते-पिलाते हो, भारी सेवाये करते हो, बताओ उस लड़के का भागय अच्छा है कि आपका अच्छा है ? अरे जिसका भाग्य अच्छा है उसकी चिता करते हो और अपने भवितव्य के प्रति चिता नही करते हो। ये सब काम होते हैं और अपने आप होते रहेगे। सबके भाग्य व काम जुदा-जुदा है। क्यो चिता करते हो ? चिता से पूरा भी नही पड़ेगा। ऐसी वाह्य चिन्ताओ से फायदा नहीं है। अपने आपका चितन करो कि मै शुद्ध,, ज्ञानभाव, ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। केवल आत्मदृष्टि का ज्ञान होने का ही स्वाद लेकर यह अनुभव करो कि मै आनन्दमय हूँ। यदि वाह्य वस्तुवो की, विषयो की स्थिति मे रहे तो आनन्द नही है। आनन्द है तो केवल अपने आप के ज्ञानस्वरूप की दृष्टि मे है।

भैया ! जिनकी हम पूजा करते है, जिनका आदर करते है, जिनका चरित्र पढते है उन्होने अपने आप पर विश्वास किया, वाह्यदृष्टि खत्म की और अपने ही ज्ञानरस का स्वाद लेकर रहे तथा इसके परिणामस्वरूप चरमविकास प्राप्त किया, इसलिए उनका हम आदर करते है, उन्हे पूजते हैं। जीवन मे एक महान् उद्देश्य यह बनाना चाहिए कि मेरी वह स्थिति आवे जिसमे केवल अपने ज्ञानस्वभाव का ही अनुभव करता रहूँ और ज्ञानस्वरूप का ही स्वाद लेता रहूँ। अपने आप मे यह विश्वास हो कि मैं सबसे निराला स्वतत्र पदार्थ हूँ। मेरे मे दूसरा कुछ फेर बदल नही कर सकता है। मैं दूसरे लोगो का कुछ फेर नहीं कर सकता हूँ। सब सत् हैं और अपने ही सत् के कारण वे परिणमते रहते हैं। मैं किसी का कारण नहीं जो किसी का कुछ कर देता हूँ। मै किसी का कार्य नहीं कि दूसरे लोग मुझे कुछ कर देते हो। सब अपने-अपने सत् के मालिक हैं। ऐसी दृष्टि यदि अपने

मे हो तो निश्चित मुक्ति का मार्ग है। समस्त जगत् के जितने पदार्थ है वे सब अपने-अपने सत् मे रहते हैं और कोई भी अपने-अपने स्वरूप से आगे नही जाते है।

हे आत्मन्! ऐसा अपने आप मे विश्वास तो कर कि जो मैं कर सकता हूँ वह अपने को ही कर सकता हूँ, दूसरे को कुछ नहीं कर सकता हूँ, व भोग सकता हूँ तो अपने ही स्वरूप को भोग सकता हूँ। हाय, विषय कषायो के परिणामो मे पड़कर जगत् के सब जीव बरबाद हो गए हैं। मेरा भगवान् तो अनन्त आनन्दमय है। इन सर्व परपदार्थो से कुछ सम्बन्ध नहीं, कुछ लेना देना नहीं, सब अपने-अपने मे है, सब कुछ न्यारे-न्यारे हैं फिर भी वाह्य पदार्थो के बारे मे यह कल्पनाये उठ जाती हैं कि यह मेरी है, यह उसकी है, यह बहुत बड़ी विपत्ति छायी है। इन वाह्यपदार्थो मे मेरा कुछ नहीं है। यदि वाह्य पदार्थो मे दृष्टि होगी, वाह्य की आशा होगी तो अनन्त दु,ख होगे। सुख का उपाय अपनी स्वतन्त्रता का विश्वास है। जगत् के सभी पदार्थो को अपनी स्वतन्त्रता का विश्वास हो तो क्लेश नही हैं और यदि अपने स्वरूप से हट गए तो क्लेश ही रहेगे, दूसरे पदार्थो मे ही लगे रहे तो आकुलताये आयेगी। सो यह सुख और दु ख किसका फल है? यह दु ख सुख तो मोहका ही फल है। जगत् के जीवो को देखो मोह करके दु खी और सुखी होते है। ये उनके मोह और मिथ्यात्व के ही परिणाम हैं। मै अपने आपको यह अनुभव करू कि मेरा तो मात्र मै ही हूँ, मेरे मे ममता का परिणाम नहीं है। यदि अपने आप मे ऐसी भावना बने तो वही कल्याण का मार्ग है।

भैया! कोई एक शराबी था। वह एक शराब की दुकान पर गया, बोला कि हमे अच्छी शराब दो। उसने बतलाया कि यह बहुत बढिया है इसे ले लो। कहा नहीं, नही हमे बहुत बढ़िया चाहिए, तब दुकानदार ने कहा देखो हमारी दुकान पर जो पाच, सात लोग पड़े हुए हैं उनसे तुम अन्दाज लगा सकते हो कि शराब बढ़िया है या नहीं। ऐसे ही भैया! अपनी बात सोचो मोह मे क्या हुआ करता है? मोह मे आकुलताये होती हैं, मगर देखते हैं कि ये जगत् के सब जीव वाह्यपदार्थो मे ही चिन्ताये किया करते है, दु,खी होते जाते है, मोह किया करते हैं यही तो सब मोह मदिरा का परिणाम है। फिर भी मोह के नशा के दुष्परिणाम का विश्वास यह मोही नहीं करता।

भैया! अपने मोह की बेवकूफी देखना कठिन है तो दूसरे लोगो के मोह की बेवकूफी देखकर बेवकूफीका स्वरूप जान लो। व्यर्थ ही लोग विकल्प करके परेशान होते है और व्यर्थ ही तुम विकल्प करके परेशान होते हो। जिसे तुम अपना लड़का कहते हो बताओ उससे तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? वे तो सब जुदा-जुदा हैं। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि तुम्हारे घर मे दूसरा कोई पैदा होता तो उससे तुम मोह करने लगते। अरे जो पैदा हुआ उसका तुम कुछ कर लेते हो क्या? यह मेरा है, यह आशय आना ही दु ख का कारण है, दूसरा कुछ दु,ख का कारण नहीं है। अपने बारे म यह विश्वास करो कि मै अपने आप मे हूँ, स्वतत्र हूँ मै ही अपना कारण हूँ, मैं ही अपना कार्य हूँ मैं जो कुछ कर सकता हूँ अपने को ही कर सकता हूँ, मै ही अपने को ही भोग सकता हूँ, अपने स्वरूप से बाहर दूसरे को कुछ न कर सकता हूँ और न भोग सकता हूँ और दूसरे लोग भी मेरा कुछ नहीं कर सकते है। सब वस्तु अपने-अपने स्वरूप मे हैं। ऐसा यदि अपने आपका विश्वास हो तो वह अमृतभाव का पान कर सकता है जिसने इस अमृत भाव का अमृत पान किया, उसको भी तो आनन्द है, उसका ज्ञान

दूसरे पदार्थो से नही आता। शिष्य को गुरु ज्ञान देता है तो गुरु केवल शिष्य के निमित्त होता है। ज्ञान तो उस शिष्य की आत्मा से ही प्रकट होता है गुरु से ज्ञान नही प्रकट होता है अगर गुरु दूसरोको ज्ञान देने लगे तो बीस, पच्चीस शिष्यो को ज्ञान देने के बाद मे गुरु खुद कोरा रह जावेगा। यदि गुरु दूसरो को ज्ञान दे दे तो गुरु मूर्ख बन जावेगा। शिष्य मे खुद ही ज्ञान भरा हुआ है, सो गुरु का निमित्त पाकर वह ज्ञाता बन गया। देखो कोई बालक बुद्धिमान होता, किसी को एक बार मे ही याद हो जाता तो किसी को मुश्किल से याद होता है। क्या कारण है? यह कारण है कि वह स्वयं ज्ञानमय ही तो है। पूर्वजन्म की तपस्या के तारतम्य से

हम रात दिन दूसरो का ख्याल रखकर, दूसरो का विकल्प बनाकर परेशान रहा करते हैं। हम सबमे से केवल एक बात नही जा रही है कि किसी भी परपदार्थ का ख्याल करना, अटपट कल्पनाये करना और परेशान होना। इतना ही काम प्राणियो का अब तक चला आ रहा है। कोई किसी का ख्याल करता, कोई किसी का ख्याल करता, मगर दु खी होने की एक यह ही पद्धति सबके अन्दर पायी जाती है कि वे दूसरो का ख्याल करते, इष्ट अनिष्ट का ख्याल करते और परेशान होते है। योगियो मे, ससारी प्राणियो मे और भोगी प्राणियो मे इन ही बातो का अन्तर है। योगी सम्यग्ज्ञान की ही पद्धति से चीजो को जानते है, इष्ट अनिष्ट को नही जानते है और अपने ही स्वरूप मे मग्न रहते हैं। इस तरह से वे योगी सदा प्रसन्न रहते है और हम जगत् के जीव पर वस्तुओ के विकल्पो को लिए हुए रात दिन परेशान रहते हैं।

वस्तुओ का स्वरूप देखो, प्रत्येक पदार्थ केवल अपने स्वरूप मे उत्पाद और व्यय करता है। अगुली चाहे अपने आप टेढ़ी हो, चाहे दूसरे मनुष्य अगुली को दाब दे, पर अगुली मे टेढ़ापन बना है वह अगुली की ही परिणति से बना है। वह इन ही स्कन्धोकी परिणतिसे बना है। उस अवस्थाका करने वाला कोई दूसरा नहीं है। एक निमित्त की बात को देखकर यह प्राणी गर्व करता है कि मैंने यह काम किया। जैसे अभी हारमोनियम बज रही थी तो वह कैसे बज रही थी ? इन भाई की आत्माकी बात देखो तो यह आत्मा तो इच्छा, ज्ञान कर रहा था जिसके निमित्त से योग भी हो रहा था। इससे आगे इस आत्मा का काम नहीं। हारमोनियम मे पीतल के तार है, उसमे हवा दी जाती है तब वह स्वर देती है। इतने पर भी वह स्वर शब्द तार से नही प्रकट हुआ, भाषा वर्गणा के स्कन्धो से प्रकट हुआ है।

इन जगत् के प्राणियोको देखो, इच्छा और योग अपने आप मे कर रहे है। इसके अतिरिक्त और कुछ नही कर रहे है। इच्छा हो रही है, ज्ञान हो रहा है, अभिलाषा हो रही है। उनका निमित्त पाकर उनकी आत्मा के प्रदेश मे कम्पन हो जाता है। इच्छा जिसके होती है उसकी आत्मा मे कम्पन हो जाता है। जैसी अनुकूल इच्छा इस आत्मा मे है उसी के अनुकूल हलन इस शरीर मे है। योग का निमित्त पाकर शरीर मे जो वायु है, सो वायु चली, वायु मे कम्पन हुआ, फिर बात का निमित्त पाकर इस शरीर के अग चले, अगुलिया चलीं। ऐसा स्वय हो गया। इसी तरह शरीर मे वायु चली और फिर अग भी चल पड़े । उसके निमित्त से दबाव हुआ सो हवा को निकलने का अवकाश मिला। देखो ये काम सबके अपने आपमे हो रहे है। जहॉ हवा का पास होना हुआ और वहा आवाज का निकलना हुआ। इस पर भी पीतल से शब्द प्रगट नही हुआ। किन्तु भाषावर्गणा से शब्द प्रकट हुआ। कोई किसी अन्य का कुछ नहीं हुआ। सब पदार्थो के जुदा- जुदा काम हो रहे है, पर निमित्त उनका एक दूसरे मे है जिससे यह भ्रम हो जाता है कि अमुक ने यह काम किया।

वस्तुओ के स्वरूप को देखो तो परवस्तुओ मे स्वतत्रता से उनका अपने आपके परिणमन से खुद काम हो रहा है। ऐसी स्वतत्रता की दृष्टि आती है तब ज्ञानी जीव जगत के पदार्थो के परिणमन को देखकर न हर्ष करते है और न विषाद करते हैं। अब यह देखिए कि हम पेरशान हो रहे हैं तो किसलिए परेशान हो रहे हैं? उनमे परेशान होने से क्या कुछ लाभ बना दोगे ? प्रथम तो ऐसा ही सोचे यत्न करे

नहीं हो रहे है। अब इन पुद्गलोकी बात देखो, ये दृश्य तो हैं, मगर ये जड़ बुद्धिहीन, कुछ कार्य न कर सकने वाले, कुछ ज्ञानकी कलाको न समझने वाले ऐसे तो ये जड़ पुद्गल है। इनसे तुझे कुछ मिलता भी नहीं है। इनसे न तो कुछ सुख है और न ज्ञान ही आता है। उनके पीछे हम क्यो बरबाद होते है।

मानो वे ज्ञानी मनुष्य इस कमरे मे न बैठे होते, केवल दस बीस चौकी और दो चार टेबुल इत्यादि अजीव पदार्थ रखे होते तो वहा कौन बोलेगा, कौन व्याख्यान देगा और कौन सुनेगा? अरे उन अजीवोसे लेना देना कुछ नही है, वे अपने आपमे है। उनसे भी बरबादी नही है। इनसे भी क्या होगा? हा, इनके विषयमे विकल्पचक्र मे पडनेसे बरबादी होती रहती है। मै बरबाद होता रहता हू तो अपने आप बरबाद होता रहता हू। दूसरोके द्वारा मै बरबाद नही होता हू। दूसरोके पीछे विकल्पमे पडनेसे परेशानी होती है और अपना ज्ञान बनानेमे सुख होता है। जैसे पताका अथवा झडा वायुसे भर जाता है तो फड़फड़ाने लगता है, उलझ जाता है तथा सुयोगसे यदि हवा बन्द हो जाय या अनुकूल वायु हो तो सुधर जाता है अथवा फडफड़ाना बन्द हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञान और अज्ञानका निमित्त पाकर यानि अज्ञानका निमित्त पाकर स्वयमे उलझ जाता है और ज्ञानके सुयोगको निमित्त बना लिया तो ज्ञान सुलझ जाता है। आपको परेशान करने वाला इस दुनियामे है कौन? ये खुद बाह्य पदार्थो का निमित्त पाकर परेशान होते है। यह परेशान शब्द उर्दू का शब्द है। इसे सस्कृतके शब्दमे ले लो तो इसमे २ शब्द हैं– (१) पर और (२) ईशान। पर जिसका ईशान बन जाय, ईशान कहते है स्वामीको, यदि दूसरेको हम अपना मालिक समझ बैठे तो यही परेशान शब्द का अर्थ है और इसे परेशानी कुछ नहीं है। दूसरेको अपना मालिक समझ लेना, खुद को परका मालिक समझ लेना, बस यही परेशानी की जड़ है। परेशान के भावको परेशानी कहते है।

धन्य है वह परिस्थिति, धन्य है वह अनुभूति जिसको केवल सहज ज्ञान रसका अनुभव आ रहा है। परमे विकल्प न हो तो परिस्थिति धन्य है। उसकी अनुभूति का नाम दुर्गा है। दु खेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा।' जो बडी कठिनाइयोसे पूर्ण होता है उसे दुर्गा कहते है। यह स्वानुभव बड़ी कठिनाइयोसे प्राप्त होता है।

भैया! अपने आपमे ऐसा उपयोग बन जाय कि कोई बाह्य पदार्थ उपयोगमे न हो, केवल शुद्ध ज्ञानरस का अनुभव होता रहे, ज्ञानदृष्टि होती रहे, तब तो जीवन सफल है। यह शरीर जड है, हड्डी और माससे बना है। इस शरीरमे फोडा फुसी हो जावे, अनेक परेशानिया आवे, इसमे कोई सार नहीं नजर आता है। इस शरीरको असार झौंपडी समझ लो और अपने आपको समझो कि मुझमे शुद्ध ज्ञानस्वरूप चैतन्यमय सारतत्व मौजूद है। जैसे किसी गाडी मे गधा और ऊट जोत दो या हाथी और गधा जोत दो तो जैसी स्थिति होगी ऐसी ही स्थिति मेरी भी बनाई जा रही है। कहा तो ऐसा शुद्ध परमात्मतत्व मै हूँ और कहा इस असार शरीरका बन्धन बधा है। फिर भी मैं अलग रहता हूँ। एकका अनुभव करते हो तो कितने उत्कृष्ट भाव बनते हैं। मैं तो पवित्र, ज्ञानमात्र, शुद्ध चैतन्यपदार्थ केवलज्ञानमय, केवल ज्ञानानन्दमय हूँ और ये पुद्गल असार हैं, अहित हैं, उनसे सम्बन्ध हो रहा है, फिर भी सम्बन्ध ही नहीं यह भीतरके अपने

आपके स्वरूपको ताकता नहीं और बाहरमें असारको देख कर सर्वस्व मान रहा है। ऐसी दृष्टि हो रही है।

हे नाथ! धन्य वह क्षण है जब सबको छोड़कर अपने आप पर शुद्ध नजर करोगे। यदि बाह्य ही पदार्थ मे फसे रहे तो बरबादी होगी। इन जीवो मे जिसके पीछे पड़ रहे हो वे अशुद्ध जीव पदार्थ है। वे अपने आपके स्वार्थके लिए अपनी चेष्टा कर रहे है। इस मायामय जगके पीछे मोहमे पड़कर मोही व्यर्थ बरबाद हो रहे है अर्थात् अपना ख्याल बनाकर, अपनी कल्पनाये बनाकर ही दु खी हो रहे हैं। तो जगतका स्वरूप जब जान लिया तो फिर कष्ट ही क्या है? जो जैसा है वैसा जानते जाये तो स्वरूपरमण होना सुगम ही है। सो अब मेरी ऐसी ही भावना हो कि अब मै तो अपने ही स्वरूप की रुचि करके अपने लिए अपने आपको पाकर विश्राम पाऊँ और सुखी होऊ।

मेरा मात्र मै ही हूँ। मेरा अन्य कोई कुछ नहीं है। किसीके पीछे दु खी होना क्या है, हठ हो रहा है। जगतके कौनसे ऐसे विषय है जो मेरी इस आत्माका पूरा पाड़ देगे ससारके लुटेरे घटेरो मे चिन्ताये करना, हठ करना, यह मेरी है, यह उसकी है, यह सब क्या है, पुण्यके उदयका ऊधम है। बड़ा सोच करते है कि यदि हठ नहीं करे तो ससारके लोग क्या कहेगे? भैया! मायाके हठसे इज्जत नहीं बढ़ती। हिसा करे, मान करे, अन्याय करे, द्वेष करे, परिग्रह करे तो क्या जीव महान् हो गया? क्या जीवकी इज्जत हो गयी? अरे पाप किया और मर गए, मरकर कीड़े-मकोड़े हो गए तो फिर क्या इज्जत रह गयी? अपने धर्म से न चिगना यह सबसे बड़ी कमाई है। जिससे परिपूर्ण आनन्द मिले उससे बढ़कर और क्या हो सकता है? इससे इस लोकमे सुख है और परलोक मे भी सुख रहेगा अन्यथा बाह्य मे दृष्टि हो तो तुच्छ तुच्छ बातोमे भी यह प्रभु फस जाता है।

आपने देखा होगा कि उनमे क्षमा कर देने का माद्दा, दूसरो को माफ कर देनेकी बात बहुत अधिक होती है, जो बडे घराने के लोग होते है। वहा उपद्रव और ऊधम इत्यादि ज्यादा होते है तो भी वे धीर रहते है। यह ज्ञान की ही बात तो है। खराब प्रकृति के जो लोग होते है वे छोटी-छोटी बातो मे अड़ जाया करते है। जैसे कहते है, ना घर मे सूत न कपास कोली से लट्ठम लट्ठा।

तो ये जगत के प्राणी व्यर्थ की बातो मे विवाद खड़ा कर देते हैं। घर की बात देख लो। घर मे तो गुजारा करना ही पड़ता है। कई बातो के लिए लड़ाई लड़नी ही पड़ती है। फिर भी एक लक्ष्य हो जाने से शाति हो जाती है। धर्म से ही काम हो तो धर्म के प्रसग मे भी विवाद खत्म हो। धर्म के कामो मे लगे और विवाद हो यह तो आश्चर्य की बात है। अरे ये सब क्या है? अपने धर्म को छोडकर कहा दृष्टि डाल रहे हो? धर्म अपने आपकी आत्मामे है। अपने आपके स्वरूप मे दृष्टि हो तो धर्म है। धर्म वाह्यदृष्टिसे, वाह्यमे मोह करनेसे नहीं मिलेगा। शुद्ध परिणामसे ताल्लुक रखो तो धर्म होगा। अगर क्रोध आदि कषाय का बन्धन होगा तो धर्म नहीं होगा। अरे मै चेतन पदार्थ किन पदार्थो के पीछे वरवाद हो गया, जिसमे कोई सार नही है। इस जग मे जो जीव हैं वे दिखते नहीं हैं और जो अजीव हैं और जड़

हैं वे दिखते हैं, और जो जानने वाले, समझने वाले हैं वे दिखते नही और जो समझते नहीं, वे दिखते हैं। भाई जो रफ्तार चल रही है उसमे फर्क करना चाहिए। अपने को अपने आप मे झुका लेना, बस इसी से शान्ति का मार्ग मिलेगा, अन्यथा ससार मे रुलना ही पड़ेगा। जब तक हम अपने आपसे मुड़कर विमुख रहेगे तब तक शान्ति नही आयेगी, अपने को शान्त रखने के लिये समर्थ ज्ञान है, स्वाध्याय है, आत्मचितन है। यदि अपने ज्ञान मे ही सही ध्यान बने तो अपने आप शान्ति प्राप्त होगी और अपने आप मे सही ज्ञान न बना तो अशाति ही रहेगी। अतः ज्ञान बल से अपने आपको मेटकर, मैं अपने आपको देखकर अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ। सुखी होने का उपाय अन्य नहीं है। आत्मदर्शन ही सुख का उपाय है।

ॐ शान्ति ॐ शान्ति , ॐ शान्ति

पर कोऽपि हितो मे नो यो हितोऽह न मूर्तिक ।
चिन्तने कंस्य नश्यानि स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-१७।।

अर्थ– परपदार्थ कोई भी मेरा हितरूप नहीं है। जो हित रूप स्वरूप है वह मैं ऐसा मूर्तिक नहीं अत· किसके चिंतन में बरबाद होऊं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

अब तक भी जिन जीवो से सम्बन्ध हुआ उस प्रयोग को याद कर लो। क्या उनसे कुछ भला हुआ, उनसे कोई हित है ? अबसे १० वर्ष पहले २० वर्ष पहले जो सग था, परिचय था उस प्रसग मे कितना लाभ पाया था ? इस बात का भी ध्यान कर लो। जो भी सम्बन्ध हुआ उनमे यह जीव पछताता ही रहा है व पछतावा करता है, लाभ कुछ नहीं मिलता है। परिस्थितिया सब अलग-अलग है, लेकिन तरीका एक ही सबका है सम्बन्ध हुआ, राग किया, द्वेष किया, घटनाये बनायीं, कार्य किए। जिन जिनसे परिचय हुआ उनसे क्लेश ही मिला, पछतावा ही मिला, अशान्ति ही मिली और यहा भी देखो तो जो जीव मोही हैं, वह तो झूर झूरकर पछताता है, राग मे पड़कर तड़पकर व्याकुल होता और परेशान होता है। मगर जो ज्ञानी जीव है वे राग मे नहीं पड़ते, समय के अनुकूल ही अपनी अवस्था गुजार देते हैं, उन्हे कोई परेशानी नहीं होती। अज्ञानी जीव अपने आत्मतत्व को नहीं समझ पाता है, वह अपना जीवन यो ही गुजार देता है। अज्ञानी दूसरो से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। इस सम्बन्ध का फल पछतावा होता है, इसका कोई निर्णय नहीं करता। जिनका सम्बन्ध अन्य जीवो से है वे भले ही माने कि हम सुखी हैं, मौज मे है, परन्तु अन्त मे इसका फल अत्यन्त पछतावा ही होता है। इस कारण कोई भी परपदार्थ मेरा हितरूप नही है।

मैं मैं ही हूँ अर्थात् मै अपने मे यथार्थ हूँ , मै स्वतत्र हूँ, सत् हूँ, चित् प्रतिभासमात्र चैतन्यस्वभाव मात्र, जिसका काम केवल देखना और जानना है, ऐसा मै ही हूँ। अपने आप मे हूँ, यह मै आत्मा हितरूप हूँ। यदि इसी तरह मैं अपनी आत्मा मे देखू तो मैं हितरूप हूँ, सो ऐसा हितरूप मूर्तिक पदार्थ मैं नहीं हूँ। जो आत्मा को देखा जाय, पकड़ने से जो पकड़ा जाय, नाक से सूघा जाय, ऐसा मै मूर्त पदार्थ नहीं

इसी तरह इस जगत् के जीव इस सडक के बीच कैसे पड़े हुए है ? चारो तरफ से इस जगत् मे जीव आ रहे है, कोई कही से कोई कही से आ रहा है। यह पागल प्राणी मान लेता है कि यह मेरा है, यह उसका है इत्यादि। तो ऐसा सोचने से उसका क्या हो गया ? अरे जो आए है, मिट जावेगे। उनका अस्तित्व भिन्न- भिन्न है पर इसे मोही जीव ने मान लिया कि ये मेरे है। सो वे अपने परिणमन से आए है और अपने परिणमन से जावेगे। जब जाने का टाइम होगा तब चले जावेगे और यह व्यर्थ जानकर दु खी बनेगा। यह मोही प्राणी उनके ही पीछे पागल हो रहा है, दु खी हो रहा है। यह मेरा था और चला गया। इस तरह के व्यर्थ विकल्प से ही मोही दु खी होते है। जरा अन्तर्दृष्टि तो दो हमारा इस जगत् मे है क्या?

अरे प्रियतम ! यह मै तो केवल ज्ञानमात्र हूँ, सबसे निराला हू सबसे जुदा हूँ, ऐसी दृष्टि बने तो आत्मज्ञान मै पा सकता हूँ, नहीं तो आत्मा का ज्ञान पा सकना बहुत मुश्किल है। इस आत्मा को स्वलक्षण की दृष्टि से देखो तो कि मै आत्मा ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानमय हूँ, यह आत्मा ही मेरा धन है, यही मेरा निजी घर है, यह आत्मा ही मेरा निजी परिवार है। इस मेरी निजी आत्मा मे जानन की ही व्यवस्था है, जानन के अतिरिक्त मेरा कही कुछ नहीं है, ऐसा मात्र जाननस्वरूप अपने को निरखो तो वहा न तो भोग का पता रहता है और न जगत् का पता रहता है, किन्तु ज्ञानमात्र का ही अनुभव करना व भोगना रहता है। यही सिद्ध योगियो की स्थिति रहती है, जिसमे विवेक है, ज्ञान है, समझदारी है तो वे ससार के दु खो से दूर रहते है, और जिसके भ्रान्ति है, अज्ञानता है वे ही इस ससार मे पडे रहते है, दु ख उठाया करते है, उनकी उन्नति नहीं हो सकती है। हे आत्मन् ! इन बाह्यो मे कौन सा सार है, उनमे पडने से तुम्हे क्या लाभ मिलता है ? अरे इन बाह्यो से कुछ नहीं मिलेगा। यदि अपने मे ऐसा ज्ञान बनाओ, ऐसी हिम्मत बनाओ जिससे तुम स्वय स्थिर हो सको तो मुक्ति का मार्ग मिल जायगा नहीं तो नही मिलेगा।

प्रभो ! मुझे मुक्ति मिले या न मिले, किन्तु इतना बल तो होवे कि राग मे पड़कर अधा न बनू, द्वेष की ज्वाला मे न जलू। राग द्वेष करना ठीक नही, किन्तु इतनी बात हो जावे तो मुक्ति का मार्ग तो मिलेगा ही। राग द्वेष मे पड़ने से कुछ लाभ नहीं हो सकेगा। राग जिनसे करते हो उनको सामने लेकर प्राइवेट बात कर लो। उनके पीछे पड़कर क्यो रातदिन चितन किया करते हो ? इतना ही ध्यान रखो कि वे मेरे किस हित मे काम आ सकते हैं ? मेरे कल्याण मे कैसे साधक हो सकते है ? जब तक हम जानते हैं कि उनसे हमारा कल्याण होता है तब तक हम भूले हुए है। अरे उनसे हमारा भला नहीं होगा। उनके सम्पर्क मे तो हम जहा के तहा ही हैं और वहा से भी कुछ नीचे है। कौन से पदार्थ हितरूप है निर्णय करो और निर्णय आ जाय तो परपदार्थो से उपेक्षा भाव कर लो। कोईमेरा हितरूप नही, इसलिए किसकी चिन्ता करके, किसका विचार करके अपने आप को बरबाद करे ? सबसे हटकर केवल ज्ञानमात्र, ज्ञानमात्र मै हूँ, ऐसा दृढ़ सत्य का आग्रह करके मैं अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

भैया ! सुखी होने का दूसरा उपाय अन्य नहीं है। मैं ही मान जाऊ कि मै सब कुछ हूँ, परिपूर्ण हूँ, अधूरापन मेरे मे नहीं है, मेरा बाहर मे करने का कोई काम नहीं है, मै हूँ, ज्ञानमय हूँ, ज्ञान मे ही वर्तता रहता हू, इसके आगे मेरा काम नही है। अन्य को मान लू कि यह मेरा काम है तो इसमे गलती

है, दु ख होना प्राकृतिक बात है। हम तो भगवानस्वरूप है। जैसा जानन भगवान का है तैसा ही मेरा है। मगर हम तो बहुत सी बाते बनाकर जानते है, जैसा है वैसा नहीं जानते है। सो देखो उनसे भी बढ़कर बन गए है। कोई छोटा आदमी किसी बडे आदमी से स्पर्धा करे, हिम्मत करे कि मैं इससे बढ़कर बन जाऊ तो इसका फल पतन है। हम भगवान से बढ़कर बनना चाहते है। भगवान नहीं जानता है कि यह मेरा घर है, यह फलाने लाल का घर है, यह मेरी चीज है और यह फलाने की चीज है। मगर हम कहते है कि यह मेरा घर है, यह फलाने लाल का घर है, ये मेरी चीज है, यह फलाने की चीज है। वह भगवान तो शुद्ध है, सीधा-साधा सही जानता है, अक्लमद नहीं बन रहा है। जैसे वह इस मकान को ऐसा जान रहा है जैसा कि यह परिणमता है, रूप रस गध, स्पर्श वाला है, पुद्गलो का स्कन्ध है। जैसा है तैसा इसे जानता है, प्रभु की यही जानन है। और यह मै, जो नही है उसे भी जानने का विकल्प करता हूँ। मोही यह जानता है कि यह अमुक लाल का घर है, अमुक लाल की चीज है, परन्तु प्रभु तो जो है उसे ही जानता है और जो नही है उसे नही जानता है। हे आत्मन् ! २४ घटे के समय मे कुछ ही समय मे यथार्थ जानकारी कर लो, सम्यग्ज्ञान कर लो। अपने से अलग चीज मे लगने से कोई फायदा नही है। अगर स्वच्छ उपयोग को जान जावो तो रोज-रोज लाभ ही मिलता रहेगा और जो मोह मे ही रहेगा तो उसे अन्त मे मिलेगा कुछ नही। जाना पडेगा अन्त मे अकेला ही। मुट्ठी बाधे आया है और हाथ पसारे जावेगा, जब बच्चा पैदा होता है तो मुट्ठी बाधे ही रहता। कवियो की ऐसी कल्पना है कि जो पूर्वजन्म मे पुण्य किया है उस पुण्य को ही वह मुट्ठी मे लिए हुए है। जन्म के समय उस बच्चे के पास सब पुण्य होता है परन्तु ज्यो-ज्यो आयु बढती है विषय कषायो के भाव बढते हैं, पुण्य खुलता है, त्यो-त्यो हाथ खुलते जाते है। वह मरते समय तक सब पुण्य खत्म कर चुकेगा विषय कषायो मे रत होकर।

भैया ! जिन्होने बचपन मे ज्ञान नही किया, जवानी मे विषयो से उपेक्षा नहीं की और चाहे जो कुछ जीवन मे धर्म किया हो, व्यवहार किया हो वह कुछ नही रहना है। केवल विषय कषायो की आकुलनाये ही रहती है। जन्मते समय बच्चा कहा-कहा बोलता है ? कवियो की कल्पना है कि बच्चा सोचता है कि मै रहा था और कहा आ गया ? कैसा सुख से था और अब कहा दु ख मे आ गया। बचपन मे मा-बाप ने खूब लाड प्यार किया, खूब मौज किया विवाह हो गया स्त्री प्रसग किया और अनेक कल्पनाओ मे लगा रहा एक क्षण को भी अपने आत्मस्वरूप पर ध्यान न दिया तब जब वृद्धावस्था आयी, दु खो से घिरे तब पछतावा करते है। विषय कषायो की भावनाये रखने का ही कुफल इस वृद्धावस्था मे मिलता रहता है। अगर बचपन से ही अपने आपके स्वरूप के अध्ययन पर ध्यान लगाता धर्म के काम करता तो ऐसी परेशानी वृद्धावस्था मे नहीं आती।

के चक्र मे ही पड़े रहते है। अनेक प्रकार के शरीरो मे जन्म ले-ले करके इस मनुष्य जन्म मे आते हैं। जिन्होने अपने को उत्तम सत्य यथार्थरूप मे जानकर अपने भविष्य को बनाया, अपने को अपने आपके उपयोग मे लगाया उनकी सद्गति होती है और भविष्य उज्ज्वल होता है। अगर अपने भविष्य को खराब किया, अपने आत्मतत्व को न समझ पाया तो उनका पतन होता है। हमे अपनी जिम्मेदारी अनुभव मे लानी चाहिए और वह जिम्मेदारी यह है कि भाई हजार पाच सौ कम आते है तो कम आने दो, नष्ट होते है तो नष्ट होने दो। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही है, मेरा सम्बन्ध तो मेरे परिणाम से है। यदि मेरा परिणाम मेरे स्वभाव मे है तो उत्तम है और यदि प्रतिकूल है तो दु ख होगे।

भाई ! अपने पर्याय के गर्व मे आकर अपने को महान् समझना और दूसरो को तुच्छ समझना, इससे तो कोई लाभ नहीं है। यदि ऐसे ही विचार बने रहेगे तो अपने सही स्वरूप का पता नहीं हो पायगा और यदि यथार्थ विचार बनेगे तो उपद्रव नही होगा और न दु ख ही होगे। सब ज्ञानी है ऐसी दृष्टि रहे और जिस दृष्टि के प्रताप से बड़ा न्यायपूर्ण व्यवहार बनता है वह व्यवहार भी रहे तो लाभ रहे और न रहे तो मोह का स्वप्न है। जो चाहो विकल्प कर लो, मगर फल खराब ही रहेगा। यह उपयोग सिहासन ऐसे स्वच्छ भाव का है कि जिस पर ज्ञानमय प्रभु विराजमान रहते ही है। चाहे प्रभु का ज्ञान हो, चाहे अलौकिक ज्ञान हो, ऐसे आसन पर मोही जीव मोही जीवो को बैठाकर जगत मे रूलने वाले अज्ञानी जीवो को बैठाकर गदा कर रहा है ना। मै अपने आप को गदा न करू तो स्वच्छ बना रहूँ। अपने आपको शुद्ध एव स्वच्छ बनाओ। यही तेरा सर्वस्व है, और यही तेरा सिहासन है। अपने आपको यह समझो कि मै सबसे निराला ज्ञानानन्दघन, भावात्मक चैतन्यस्वरूप पदार्थ हूँ, इस प्रकार की दृष्टि अपने निज प्रभु पर रहे तो यही यथार्थ ज्ञान है। राग, द्वेष, विकार इत्यादि की तरगे तेरे मे न हो, ऐसा यह तेरा प्रभु ही यानि तेरा स्वरूप ही उत्कृष्ट है। ऐसा यदि उपयोग प्रभु के प्रति लगाए रहे तो हमारा उपयोग स्वच्छ रहता है और अशुभ उपयोग पाप, अज्ञान और मोह इत्यादि से ससार मे रुलना ही बना रहता है। अगर इस ससार मे ही भटकते रहे तो सदैव अपवित्र ही बने रहेगे। इस जगत के प्राणी को अपवित्र रहना ही सुहावना लग रहा है। इसमे ही विपत्तिया है, दु ख है। यदि यह प्राणी अपने उपयोग से पर-लगाव को टाल दे तो प्रकाश मिलेगा, ज्योति मिलेगी और मुक्ति का मार्ग मिल जायगा।

भैया ! अपने को बरबाद क्यो किए जा रहे हो ? अपने आप के अतरग मे दृष्टि नहीं लगाते हैं, यह एक बड़ा भारी सकट है। अरे इनको क्या सकट माने कि १० हजार का नुकसान हो गया, अमुक गुजर गया, इनमे तू सकट मानता है। मेरी आत्मा जाननस्वरूप है, जानन को ही लिए हुए है, स्वच्छ है। जिनका सयोग होगा, उनका रोकने वाला कोई नहीं है। अपने स्वरूप को देख, तू सर्वदा पूर्ण है। ज्ञानी होगा तो वह सदैव ही आनन्दमय होगा और प्रसन्नचित्त रहेगा, परन्तु यदि अज्ञानी है तो निरतर दु खी ही रहेगा। इस तरह अगर बाह्यपदार्थो मे ज्ञान आता है कि यह मेरा है यह उसका है तो यह एक वडा भारी सकट है। इन सकटो का करने वाला मैं ही हू। मेरे मे सकट इन बाह्य पदार्थो के उपयोग से ही आते हैं। जो साधुजन है, योगीजन हैं, प्रभु के भक्त हैं वे बाह्य मे अपने को नहीं फसाते हैं। यही

कारण है कि उनके पास सकट नही आते है। जिन बाह्य को अपने उपयोग मे लाकर सकट रहते हो, मौज माने जाते हो वे सकटो को बढ़ाने वाले है, सकटो को हटाने वाले नही है। अरे सकटो को बढाने वालो से इतना मोह और हटाने वालो से इतनी विमुखता। जो सकट देते है उनसे इतनी प्रीति है। ये चेतन अचेतन वैभव जो मिलते है उनसे मोह अधकार मिलता है, राग मिलता है, जिसका फल क्लेश ही है सो क्लेश सहते जाते और उसी मे मौज मानते जाते।

जैसे मिर्च खाने की आदत हो जाती है, खाते हैं, सी सी करते है, आखो से आसू गिरते जाते है, दु खी होते रहते है, फिर भी खाना नहीं छोड़ते है। ये सब बाहरी पदार्थ है, इनमे तू निज बुद्धि करेगा तो उपदव प्राप्त होगा, दु ख होगे, सकट होगे। सकट सहते जाते है और प्रीति करते जाते है । बच्चो से, स्त्री से, घर के लोगो से राग के झगड़े चलते रहते है, रिसा जाते है, रूठ जाते है, और लो फिर शाम को अपना लिया। इस तरह से इन मोहियो का काम चलता रहता है, गृहस्थी मे रहे और परिवार के लोगो को छोड़कर रहे यह तो नही हो सकता है, रहो, पर भीतर से ज्ञान साफ होना चाहिए।

मेरा मात्र मै ही हूँ, मेरा सर्वस्व हितकर मै ही हूँ, इसलिए अपने आप मे साफ बना रहता हूँ, अगर मै अपने आप मे मौजूद हूँ तो किसी की ताकत नहीं कि दु खी कर दे। ऐसी ताकत अपने आप मे बना लेने से दु ख नहीं बन सकते है। ये जगत् के पदार्थ परमाणुमात्र भी मेरे नही है। ऐसे भिन्न भाव अगर बन जावे तो दु खी नही हो सकते है। महिमा तो ज्ञान की है और तो फिजूल है। महिमा तो एक ज्ञान मे ही है। शुद्ध ज्ञान है तो विजय है और नहीं तो मलीन है और मलीन होने से सर्वत्र सकट ही सकट है। ये सकट कोई दूसरा नही लाता है। खुद अज्ञानी है तो सकट मे फसे। अपने को सकटो से बचाना है तो उपाय सही बने और आत्मस्वरूप ही ज्ञानमात्र है, आनन्दघन है, अपने आप मे परिणमता रहता है, इसके बाहर मै कुछ नही हूँ ऐसा उपयोग बने।

अरे सेवा करता कौन है ? भीतर से कषाय की प्रवृत्ति हो जाती है, उससे प्रेरित होकर सेवा करते है। अपने भीतर ऐसा ज्ञान जगे कि मै ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानानन्दघन हूँ, मैं अपने परिणमन के अतिरिक्त कुछ भी नही करता हूँ, यदि ऐसा ज्ञान जगे तो वह सुखी रहेगा।

एक आदमी था। वह अच्छे घराने का था। किसी कारण से उसको कैद हो गयी। कैद मे चक्की पिसवाई जाती थी। चक्की पीसता रहता था। कभी-कभी यह ख्याल आ जाता कि अरे मै तो अच्छे घराने का हूँ और चक्की पीसना पडता है। वह यह नहीं सोचता कि यह जेलखाना है, चक्की पीसनी ही पडेगी। वह यह सोचकर कि मै अच्छे घराने का हू, चक्की पीसनी पड रही है, दु खी हो जाता है और कपाय भी आ जाती है। यह सोच-सोचकर दु ख बढते ही जाते हैं। उसे यदि यह मालूम हो जाय कि यह जेल खाना है, चक्की पीसनी ही पडती है तो उसका दु ख चौथाई रह जायगा और यदि रईसी के ख्याल के परिणाम मे रहे तो दु ख चौगुना आ जाते है।

अगर यह परिणाम बने कि मै ज्ञानमात्र हू तो ऐसा ज्ञान करने पर प्रसन्नता ही रहेगी। आकुलताओ

का नाम नही रहेगा। मै अपने ज्ञान से ही यथार्थ को समझू और अपने मे अपने लिए आप स्वय सुखी होऊ। जैसा मैं हूँ वैसा न सोचकर औपाधिक नाना मायारूप सोचता हूँ तो दु ख व सकटो के पहाड टूट पड़ते हैं। ये दु ख सकट के पहाड़ भी मायारूप है, केवल काल्पनिक है।

यावत्प्रवर्तन लोके तत्तेषामज्ञताफलम् ।
निवृत्तिर्ज्ञानसाम्राज्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-१८।।

अर्थ– लोक में जितनी प्रवृत्ति है वह उनकी अज्ञता का फल है और निवृत्ति ज्ञान के साम्राज्यरूप है अत अपने साम्राज्यके द्वारा अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊ।

लोक मे जितनी भी प्रवृत्ति है वह सब अज्ञान का फल है अर्थात् जितने भी काम किए जाते हैं, जितनी चेष्टाये की जाती है, जितने व्यवहार किए जाते है, सब अज्ञान से होते है। ज्ञान का फल नहीं है। बोल, सम्बन्ध, रिश्ता मानना, देश का काम, जाति का काम, धर्म का काम, व्यवहार का काम, चलना, उठना, बोलना, चर्चा करना, गृहस्थ धर्म पालन, साधुधर्म पालन, यावन्मात्र जितनी भी प्रवृत्ति है। सब अज्ञान का फल है। ज्ञान का फल तो निवृत्ति है। प्रवृत्ति अज्ञान का फल है। यहा शका हो सकती है तो धार्मिक प्रवृत्ति मे भी क्या मूल अज्ञान हो सकता है ? हम मित्रो को जानते है तो यह ज्ञान का फल है या अज्ञान का फल है। तत्वदृष्टि करके देखो तो अज्ञान का फल है। कैसे ? सोचो कि हम ज्ञान का फल उत्पन्न करते है कि अज्ञान का ? यदि मात्र जानना हो तो ज्ञान का फल है, किन्तु इष्टपने का भाव होना तो अज्ञान है।

भैया ! बहुत भीतर की सूक्ष्म बाते कही जा रही है। हमारे मे भाव मे हिसा न हटे तो ज्ञान का फल है कि अज्ञान का फल है। अच्छे धर्म के कितने काम बताए जाते है, कितने व्यवहार धर्म के करते है, आसन लगाते है, पच परमेष्ठी की उपासना करते है, मालाये है, यह सब लोकदृष्टि मे भले ही ज्ञान है पर है अज्ञान का फल। ज्ञान कहते किसे है ? ज्ञान का उगना क्या है ? ज्ञान एक प्रतिभास सही जाननहार है। उसके होने से आत्म मे कुछ भी तरग कहा रहेगी ? यह तो है ज्ञान का फल और किसी भी काम को करना चाहिए, स्वाध्याय होना चाहिए, जानन होना चाहिए, साधुसेवा होना चाहिए, देशसेवा, समाजसेवा के अन्य कार्य होने चाहिये आदि कुछ भी जिनका लगाव है वह है अज्ञान का फल और सर्व परभाव से जो निवृत्ति है वह ज्ञान का फल है।

एक उदाहरण लो। एक रस्सी सामने पडी हुई है, कुछ उजेला अधेरा है। यह भ्रम रस्सी को देखकर हो जाय कि यह तो साप है। इस भ्रम के होने का फल क्लेश प्रवर्तन है। वह भ्रम मे पडकर घबडा जाता है, डर जाता है और अगर सोचे कि आखिर चलकर देखे तो कि कौन सा साप है ? वहा गया तो गौर से देखा, गौर से देखने पर पता चला कि यह तो कोरी रस्सी है इतना ही जानने से उसकी घबडाहट छूटी, कुछ चैन मिली। यह चैन माना, वह भी उसके अज्ञान का फल है। तो ज्ञान का फल क्या है? अन्य रूप जानना मिट गया, भ्रम व घबडाहट मिट गयी, यह तो ज्ञान का फल है और जितना फल

है उसका लगाव अज्ञान है। अज्ञान को छोड़ो तो वस्तु का स्वरूप समझ मे आयगा। हम सत्सग मे बैठे है तो राग मे बैठे है, अज्ञान मे बैठे है। ज्ञान से नही बैठे है, क्योकि ज्ञान का फल कही बाहर से नहीं आता है।

हे आत्मन् ! ज्ञान अपने आत्मस्वरूप से ही आता है। भगवान की पूजा करू, साधुओ की सेवा करू तो ये सब राग है। राग ज्ञानस्वरूप नही होता सो वह अज्ञान का फल है, अज्ञान से पैदा होता है। ज्ञान कितने मर्म की चीज है? हम इस ज्ञान को जानते है, इस ऊपरी सतोष से काम नहीं चलेगा, इसकी परख कर लो। केवल बाहरी दैहिक प्रवृत्ति मे सतुष्ट हो जाना, कुछ ज्ञान हो चुकने के बाद सतोष कर लेना लाभकर नही है। ज्ञान तो और इससे बढ़कर अन्तर मे रहता है। ज्ञानदृष्टि का फल निवृत्त होना चाहिए। यह शुद्ध केवल ज्ञान की चर्चा है। यदि ऐसा ज्ञान आ गया तो इसके कारण हम पर क्या गुजरेगा ? केवलज्ञान। जाननमात्र ही ज्ञान का फल है। ज्ञान के उपासक प्रभु के इस स्वरूप मे झुकेगे, तो ज्ञान का फल है कि राग का ? ज्ञान की मूल मे प्रेरणा है, फल राग का है। इसका यह ज्ञानस्वरूप हम और आपके भीतर जो है उसको यह मोही जीव नही देखता है। परपदार्थो मे ही पड़कर मुसीबते सह रहा है। यह भी अज्ञान का फल है। इसी तरह उन सबकी प्रवृत्ति मे व्यवहार मे भी अज्ञानता ही है।

भैया ! गति, इन्द्रिय, कषाय, योग, विषय इत्यादि को उपेक्षित करके मात्र ज्ञान किया जाय तो वह प्रकाश है । यह प्रकाश यदि नही है तो कर्म सचित हो जाते है, उस ज्ञान के होने से ही ये कर्म भस्मीभूत हो जाते है। तब तो बतलाओ, कोई पुरुष साधु होकर भी, मुनि होकर भी यह ख्याल करता रहे कि मै मुनि हूँ, मै साधु हूँ, मै ऐसा हूँ, मै कैसा हूँ, यह तो मिथ्यात्व होगा ना। कोई गृहस्थ यह विश्वास करे कि मैं गृहस्थ हू, मै बाल-बच्चो वाला हू, मै दुकानदार हूँ इत्यादि , ये सब मिथ्यात्व है, अज्ञानता है। लो उस साधु ने भी अपने आप यह सोच लिया कि मै साधु हू, जैसे कि गृहस्थ ने अपने आप मे यह सोच लिया कि मै गृहस्थ हूँ, पर्याय की पकड दोनो मे है सो दोनो आशय परसमय के है। पर यह आत्मा न तो साधु है और न गृहस्थ है। वह तो ज्ञानानन्दघन, चैतन्यस्वरूप, एक पदार्थ है। वे सब अपने आप मे है। अपने आप ही परिणमते रहते है, यह कैसे मान लिया जाय कि मै अफसर हूँ, मै दुकानदार हूँ। मै फला हूँ, अरे ये सब कुछ तू नहीं है, तू तो ज्ञानानन्दघन चैतन्यस्वरूप एक स्वरूप एक पदार्थ है।

देखो भाई ! प्रतीति की बात चल रही। विश्वास की बात बोल रहा हूँ कि तुमको यह विश्वास है कि मै गृहस्थ हूँ, इसमे तो मोह होगा। गृहस्थ का यह विश्वास है कि मै गृहस्थ हूँ, साधु का यह विश्वास कि मैं साधु हूँ तो मोह मे दोनो दब गए। अरे मै तो एक चेतन पदार्थ हूँ, अगर गृहस्थ बन गया, साधु बन गया तो यह आफत है। अरे अज्ञान और मोह से कुछ फायदा नहीं हो सकेगा। जो कुछ कह रहे है वे सब उल्टी-उल्टी बाते मालूम होती होगी। मगर ये सब विश्वास की बाते है। इस लोक मे बहुत सी कलाये लोगो ने सीख ली है – कोई सगीत की कला, कोई नृत्य की कला, कोई बोलने की कला,

कोई भाषण देने की कला इत्यादि सीख लेते है। ऐसी कला को जानने वाले लोग अपने मन मे सतोष रखते है कि मै बहुत बुद्धिमानी का काम कर रहा हूँ। मै देश की सेवा, समाज की सेवा करता हूँ। भाषण देने वाले जानते हैं कि मै ढग से बोल रहा हूँ, समाज को, देश को रास्ते मे लगा रहा हूँ। सो इतने से क्या किसी ने शान्ति पाई ? ऐसी दृष्टि द्रव्यलिगी साधु पुरुष की भी हो रही है। देखो उन साधुओ मे मोह कितना अन्तर मे होता है ? जैसे कहते है कि वे मुनि शत्रुओ से भी विरोध नही करते है, आराधना करते है और मोक्षमार्ग मे लगू ऐसी चाह लिए हुए होते है यानि कुछ द्रव्यलिगी साधु ऐसे भी होते है जो यह समझते है कि मै तो साधु हूँ, मेरा यही काम है। सो भैया ! पर्याय मे आपा बुद्धि होने से यह मिथ्यात्व है, मेरे मे यह ज्ञान आना चाहिए कि मै ज्ञानमय एक तत्व हूँ, मेरा तो ज्ञानदृष्टि मे रहने का काम है। जैसे गृहस्थ का गृहस्थी धर्म का कार्य आफत है वैसे ही मेरे को सर्वप्रवर्तन आफत है। ज्ञानी को यह विश्वास होना चाहिए कि मै गृहस्थ नहीं हू, मै तो ज्ञानानन्दमय एक तत्व हूँ, चैतन्यस्वरूप हूँ, इसके अतिरिक्त मै और कुछ नहीं हूँ। यदि ऐसा विश्वास हो जाय तो वही ज्ञान का मार्ग है, जितनी लोक मे प्रवृत्ति है, झुकाव है वह सब अज्ञान का फल है। अगर हममे यह बुद्धि आ जाय कि हमने यह कर लिया तो यह अज्ञान है। हमारा यह विश्वास होना चाहिए कि मै चैतन्यमात्र हूँ, केवल जानन ही जानन हूँ।

जैसे कोई आदमी अपराध मे पकड़ा गया या व्यापार के किसी अनियम मे पकड़ा गया। उस पर १००० रु० का जुर्माना कर दिया गया। अब उसने गिड़गिड़ाना शुरू किया। कोशिश करने पर ५० रु० जुर्माना के रह गए और ६५० रु० छोड़ दिए गए, ५० रु० वह इसी खुशी से दे रहा है, १००० रु० देने थे और ५० रु० ही रह गए। हाथो से दे रहा है, मगर सकल्प मे यह लग रहा है कि ये भी न देने पड़ते तो ठीक था, ५० रु० खुश हो करके दे रहा है। मगर भीतर मे यह बात बनी है कि ये भी न देने पड़ते तो अच्छा था। इसी तरह ये सब जुर्माना है, यह प्रवृत्तिया मानो १००० रु० का जुर्माना है, गृहस्थ धर्म मे केवल ५०० रु० का जुर्माना है। साधु धर्म मे केवल ५० रु० का जुर्माना है, तो वह गृहस्थ यह सोचेगा कि यह जुर्माना रागप्रवृत्ति से हुआ। अगर ज्ञाता द्रष्टा मै रहता तो ठीक था। यह तो अज्ञान का फल है, ज्ञान का फल है निवृत्ति। यावन्मात्र जो प्रवृत्ति है वह राग का फल है। साधु पुरुष भी आहार, चर्चा इत्यादि करने जाते तो उसमे राग है या नही । जो राग के काम है वे राग से होते है। ज्ञान से आनन्द और राग से प्रवृत्ति होती है। गृहस्थ अपने को गृहस्थ अनुभव करता है और साधु अपने को साधु पर्यायरूप अनुभव करता है तो मोह दोनो मे हुआ। इस ज्ञानमात्र मुझ आत्मतत्व का जो जानन का काम है वह मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्ग इस आत्मस्वरूप के भीतर भरा हुआ है। पुरुष के हाथ और पैरो मे मोक्षमार्ग नहीं भरा हुआ है।

और देखो एक दृष्टान्त है कि एक सेठ था। वह चावल बेचने का काम करता था। वह ठेलो धान खरीदता था और उन धानो से चावल निकालकर दो चार ठेला चावल बेचता था। एक आदमी उसके पीछे लग गया। सोचा कि जैसा सेठ करता है, जिससे कि यह धनी हो गया है, वैसा मै भी करूगा।

वैसा करने से मै भी सेठ जैसा धनी बन जाऊगा। देखा कि सेठ ने कुछ सामान खरीदा। चावल के ऊपर के छिलके तो मटमैले ही थे सो पिछलगे व्यक्ति ने देखा और उसने भी मटमैली चीज २, ४, मोटर भर ली। वह लेकर बेचने गया। ठीक जैसे सेठ करता था वैसे ही वह व्यक्ति भी करता था। मगर सेठ को तो नफा हुआ, और उस व्यक्ति को टोटा आ गया। अरे धानो के अन्दर जो चावल होता है उसकी महिमा होती है धान के छिलके की महिमा नहीं होती है। इस बात का उस पिछलगे व्यक्ति को पता ही न था।

इस ही प्रकार शुद्ध धर्म की जानन परिणतिरूप इस धर्म के सग से धर्म क्रियाओ की महत्ता है, उसकी महिमा ज्ञानदृष्टि के कारण है, और इस ज्ञान दृष्टि की ऐसी प्रवृत्ति न हो तो बाह्यक्रियाओ की महिमा कुछ नही रहा करती। ज्ञान दृष्टि के कारण ही धर्म प्रवृत्ति की महिमा हो जाती है। वह ज्ञानमात्र है, उसका फल निवृत्ति है। ज्ञान का साम्राज्य निवृत्ति है। यह सब ज्ञान का फल है। अब हम इतने बड़े महिमानिधान ज्ञान के बीच मे रहते है। बाहर से देखो तो नाना प्रकार की विषयो की बाते चारो तरफ घूम रही है। जब ज्ञान जगता है और बाहरी फैली हुई दृष्टि का सकोच होता है तो स्थूल पापो का त्याग होता है । जिस प्रवृत्ति के बीच इतना गृहस्थ धर्म बन गया है सो उसमे जो राग का अश रहा करता है तो वह पाप ही कहलाएगा। इसका जितना निवृत्ति का अश है वह धर्म है, जितना वहा प्रवृत्ति का अश है वह अधर्म है, वही अज्ञान कहलाया। जैसे विवाह कर लिया। एक स्त्री से सतोष हुआ तो हजार स्त्री से छूटे । क्या आपका धर्म है लौकिक कि एक स्त्री मे लगे रहे ? नहीं, अनेक स्त्रियो के विकल्प से छूटने के लिए वह उपक्रम है। जितना हटाव है वह ज्ञान है। उस एक की ओर झुकाव और लगाव तो अधर्म का काम है। व्यवहार धर्म का काम, अधर्म का काम, राग का काम, कही जुटाने का काम जितने भी है, जितनी भी प्रवृत्तिया है, वे सब अज्ञान से है।

अच्छा अब गृहस्थ धर्म भी छोडा, आरम्भ छोडे, परिग्रह छोड़े, शुद्ध मार्ग की दीक्षा ले ली, शुद्ध चर्या मे रहने लगे। इस साधु प्रवृत्ति मे भी गृहस्थ का परिग्रह हट गया, तो धर्म का काम है। शुद्ध चलने लगे, शुद्ध उठने लगे, शुद्ध खाने लगे तो ये सब राग के काम है। जितना निवृत्ति का अश है वह ज्ञान है और भी देखिए भैया ! जैसे गृहस्थ के योग्य शुद्ध व्यवहार, शुद्ध चर्चा मे रहते हुए भी वह गृहस्थ उस व्यवहार से विरक्त रहा करता है, इसी तरह साधु भी शुद्ध सम्यग्ज्ञान के अनुकूल व्यवहार करते हुए भी व्यवहार से विरक्त रहा करता है। एक ज्ञानी गृहस्थ अपने कुटुम्ब परिवार मे रहते हुए भी अपने को भिन्न समझता है, न्यारा समझता है, अहितरूप है ऐसा जानकर परिवार से विरक्त है। तब साधु भी अपने शुद्ध काम करते हुए साधु रहते हुए भी उस प्रसग से विरक्त है।

शुद्ध ज्ञान के काम की यह बात चल गयी और लम्बी खिच गयी। प्रयोजन यह है कि जितना हटे उतना धर्म है और जितना लगे उतना अधर्म है। ज्ञान का काम मात्र निवृत्ति है – इतना ही ध्यान मे लाना है। यह निवृत्ति ज्ञान का साम्राज्य है। यदि मै अपने साम्राज्य की ओर अर्थात् निवृत्ति का उपयोग कर मैं प्रवृत्ति से हट जाऊ तो मै सुखी होऊ। देखो जितने भी सुख मिलते है, वे हटने से मिलते हैं, लगने से नहीं मिलते हैं। गृहस्थी मे रहते हुए भी उससे हटकर रहने मे जो आनन्द मिलता है वह

आनन्द उसमे लगने से नही मिलता है। आनन्द इच्छा के अभाव से मिलता है। इच्छा की पूर्ति व इच्छा का अभाव कहो एक ही है बात । हटना ज्ञान का काम है और लगना अज्ञान का काम है। आनन्द भी जितना होता है वह हटने से होता है, लगने से नही होता है।

जैसे एक मित्र का पत्र आए कि १० बजे की गाडी से हम आ रहे है। बस पत्र के पाते ही सब तैयारी मे लग गए, वह इसलिए कि मेरा मित्र आ रहा है, मै अपने मित्र से मिलूगा। वह मिलने के प्रयोजन से ही जल्दी-जल्दी काम करता है और भी जितने काम है जल्दी -जल्दी कर लिये। देखो यह सब व्याकुलताये क्यो की जा रही है ? इसलिए कि मित्र से मिलन के काम मे अपना लगाव रखा, १० बजे स्टेशन पहुचे, पूछते है कि गाडी लेट तो नही है। यदि कोई कह दे कि अभी १० मिनट लेट है तो बस दु खी हो गया। गाड़ी आते ही झट इस डिब्बे मे देखा, उस डिब्बे मे देखा, मित्र मिल जाता है तो आनन्दमय हो जाता है। अच्छा, अब यह बताओ कि उसे आनन्द मिलने से आया है कि मित्र के मिलने का आनन्द है तो मित्र से डिब्बे के अन्दर मिलता ही रहे। इधर-उधर डिब्बे के बाहर झाके। गाड़ी चलने वाली है तो वह बाहर को झाकता है और बाहर क्यो झाके ? यदि मिलना है तो मिलता ही रहे। मित्र से मिलने का काम समाप्त हो गया, इससे तो आनन्द आया, किन्तु अब उसे घर जाने का लगाव हो गया तो दु खी हो गया। उसे लगाव से दु ख है, उसका जितना भी दु ख है , लगाव का है। मित्र मिलने की इच्छा हो गयी। इस दु ख से दूर होने के लिए ही वह मित्र से मिलने गया, क्योकि उसको विकल्प सता रहा था। क्यो जी ! यदि विकल्प स्वय ही पहले से न रहे तो क्या आनन्द न आवे ? आनन्द अवश्य आयगा। यदि ऐसी भावना हो कि विकल्प सता रहा था इसी कारण से ही अपने दु खो को दूर करने के लिए अपने मित्र से मिलने गया, तो प्रकाश मे भीतर उसे शान्ति रहती ।

भाई विकल्प न करो वहा क्या रखा है ? उनसे इच्छा न करो। इस तरह मिलन की इच्छा ही न हो तो वह वहा भी अनाकुलता है। जो इच्छाये हो उन्हे समाप्त कर लो। इन्द्रियो के विषयो मे बरबादी है। यह एक अन्तर के मर्म को देखकर कह रहा हूॅ। अरे विषयो मे अगर लग गए तो समझो विषयो मे ही जल गए और मिट गए, तो इच्छाओ का अभाव कैसे हो सकेगा? विषय बुद्धि के होने से इच्छाओ का अभाव नही हो सकता है। विषय प्रवृत्ति अधर्म है। अगर विषयप्रवृत्ति न हटेगी तो लगाव भी नहीं हटेगा और आनन्द भी नहीं आयेगा। अपने ज्ञान को अन्य के लगाव मे लगाना ही अज्ञान का फल है। निवृत्ति तो फल ज्ञान का है और प्रवृत्ति फल अज्ञान का है।

मेरा काम क्या है ? देखना ? नहीं, बोलना चालना ? नही, हाथ जोड़ना ? नही, और और करके अपनी बातो मे लपेट लेना? नही। जितने काम लगाव के है, व्यवहार के है वे सब जानन, जानन, जानन, केवल जानन, ज्ञान का काम है, ऐसा साम्राज्य हो और स्वय की पहिचान हो तो उसे मोक्ष का मार्ग प्राप्त होगा, नहीं तो उसे शिवपथ नहीं प्राप्त हो सकेगा।

कर्मकर्त्रादिकल्पा स्युर्देहादिष्वनुबन्धिन ।
पूर्यते तैर्न कश्चिन्मे स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-१९।।

अर्थ– मैं इसको करता हू, नहीं करता हू , आदि विकल्प शरीर आदि में सम्बन्ध परम्परा करने वाले होते हैं उनसे मेरा कोई भी पूरा नहीं पडता मैं तो अपने में अपने लिये स्वय अपने आप सुखी होऊं।

मै आत्मा जो हूँ वह हूँ जैसा स्वरूप है, उस ही स्वरूप मे हूँ। मै अन्य सब पदार्थो से विलक्षण,जानने, देखने की स्वभाव कला मे तन्मय हूँ। यह एक भावात्मक पदार्थ है। जिसमे रूप नहीं, रस नही, गध नहीं, स्पर्श नही केवल चिदानन्दघन, चैतन्य स्वरूप मात्र एक विलक्षण सत् है। इस ही को ब्रह्म कहते है क्योकि ब्रह्म नाम उसका है जो ज्ञान से बढ़ता हुआ रहे। अपने ज्ञान को बढाने की कला इस आत्मा मे है। पुद्गल तो बाह्य है। पुद्गल के गुण का ऊचे से ऊचा विकास हो तो क्या होगा? रूप का क्या होगा? परन्तु आत्मा के ज्ञान गुण का विकास ऊचा क्या होता, वह कहा जा सकता है। आत्मा के ज्ञानका विकास हो तो सभी कुछ ज्ञानमे आयगा। उसका स्वभाव बढ़ने का है। जैसे कोई स्प्रिग होती है उसे दबाये तो दब जायगी और छोड़ दे तो स्वत उठी रहेगी। इसी प्रकार यदि ज्ञान को विषयकषाय परिणामोके द्वारा दबावे तो दब जायगा और यदि दबाये नहीं तो ज्ञान फैलता ही जायगा। ज्ञानके फैलने का तो स्वभाव ही है। ये विषय कषायोके परिणाम रागद्वेषादिक भाव इस ज्ञानको दबानेके कारण है। जब तक ये विकार रहेगे तब तक ज्ञान दबता ही रहता है। विरोधीपन हटे, आत्मतत्वका विकार मिटे तो यह विकसित हो जाता है। क्योकि आत्माका स्वभाव ही ऐसा है कि अपने ज्ञानसे वह वर्धनशील रहे, बढ़ता हुआ ही रहे। इसलिए आत्माका नाम ब्रह्म है।

इस ज्ञानस्वरूप आत्माको कहा जा रहा है। यह आत्मा विष्णु कहलाता है क्योकि विष्णु उसे कहते है जो व्यापक हो। जिसका स्वभाव ही ऐसा हो कि सर्वत्र व्यापक ही होता रहे वही विष्णु है। ज्ञानघन कहलाता है वह जिसमे बीचका कोई हिस्सा न छूटे। जैसे किसी टकी मे पानी भर दिया जाय तो पानी लबालव भरा हुआ है। उस पानी मे ऐसा नही है कि कही एक इन्च पानी न रहे। जो पानी भरा हुआ है वह पूर्ण रूपसे भरा हुआ है। इसका कोई भी स्थान खाली नहीं रह सकता है। इसी तरह इस ज्ञानका फैलाव है कि यह ज्ञान सर्वत्र फैल जाता है। किसी जगह खाली नहीं रह जाता है कि लो मै अमुक को नही जानता। जैसे टकीके बीच कोई चीज आ जाय जिसमे कुछ टोला सा हो तो वहा पानी नही पहुच सकेगा। पर पानी अपने स्वभावके कारण न पहुच सका ऐसी बात नहीं है किन्तु वहा कोई चीज ऐसी आ गई है जिससे रुकावट आ गयी है। इसी प्रकार से ज्ञान मे विषयकषायो की आड आ जाती है जिससे ज्ञान के विकसित होने मे रुकावट पैदा हो जाती है। यदि कही ज्ञान न पहुचा नो वहा पर ज्ञानके स्वभाव के कारण नही पहुच सका ऐसी बात नहीं है। ज्ञान के विकसित होने मे रागादि भाव रुकावट पैदा करने है, उसी मे ज्ञान वहा नही पहुच पाता है। ज्ञान का स्वभाव सर्वत्र फैल जानेका है, सब जगह व्याप जाने का है। ऐसे ज्ञान का स्वभाव सर्वत्र फैल जाने का है। ऐसे ज्ञान का स्वभाव व्याप्त होता रहना ही है, इसलिए ज्ञान ही विष्णु है।

यह ज्ञान जिन है अथवा जितेन्द्रिय है। जिन कहते उसे है जो समस्त बाह्य पदार्थो को जीत ले, खत्म कर दे और स्वय शुद्ध, स्वच्छ बना रहे। जिन ज्ञान ही है सो भावात्मक तत्व है, ज्ञान ज्ञान ही है, जानन जानन ही है, जानन ही काम है, यह मेरा ज्ञान स्वच्छ है, इसमे दूसरे का प्रवेश नही है, यह अपने ऐसे ही स्वच्छ ज्ञानकी बात कर रहा हूँ। जिस ज्ञानका काम सुन्दर, शुद्ध, प्रतिभास को बार-बार पैदा करते जाना है। कब तक ? अनन्त काल तक। जो इस ज्ञान को स्वच्छ, शुद्ध, सुन्दर एक दृष्टि करता रहे वह ज्ञानी है। जो ज्ञान अपनी सृष्टि करता हो, चाहे वह बिगड़ जाय, रूठ जाय, गुस्सा हो जाय, मलीन हो जाय, आपसे बाहर हो जाय तो भी यह पूर्ण ही रहता है, पूर्ण ही परिणमता है। यह जगत जितना दिखता है उस रूप मे रचना हो जाय, यह भी ज्ञानमय आत्मदेव की सृष्टि है ऐसा यह ज्ञानतत्व भीतर का है। यह ज्ञानतत्व मलीन हो जाय, काबू मे न रहे तो बिगड़ा हुआ प्रभु ऐसी सृष्टियो को कर डाले, ऐसी ज्ञान की महिमा है। यही ज्ञान पदार्थ, वृक्ष आदि रूप मे आ जाता है। मनुष्य,पशु, पक्षी, जीव-जन्तु भी है उन सबके रूप मे यह ज्ञान आता है।

यह ज्ञान ही ब्रह्म है। इसका ऐश्वर्य विलक्षण है। शुद्ध सृष्टि करे, अशुद्ध सृष्टि करे सब ज्ञान की महिमा है। उसके ऐश्वर्य का पता लगा लेना विरले ही सूक्ष्मदृष्टि, ज्ञानी, योगी का काम है। कैसा है? वह कुछ नहीं है और सब कुछ है। ज्ञानतत्व है, जिसके अन्तरग मे कुछ नही है-और सब है। कुछ बचा नही है और है। कुछ पिड ऐसा नही है। ऐसा जाननहार यह आत्मतत्व विलक्षण ऐश्वर्य वाला है। इसका काम जानन है सो अपनी ही कला से, अपनी ही लीला से अपना काम कर रहा है। इसका काम केवल जानन है– जान लेना। इस ज्ञान मे सुख दु ख नही। जाननका काम केवल जानन ही है। जान लो फिर उसके बाद महान् आनन्द आता रहता है। जैसे प्रयोजन अशुद्ध है तो वहा सकट है और जहा प्रयोजन अशुद्ध नही है वहा सकटो का नाम नही है। जाननका प्रयोजन शुद्ध होना चाहिए, क्या ? कि जान लिया। किसलिए जान लिया ? जानन के लिए जान लिया।

मिला हुआ दूध और पानी एक पात्र मे है, पर दूध अलग है और पानी अलग है। दूध के कण दूध मे है और पानी के कण पानी मे है। दूध मे पानी मिला होने पर भी दूध मे दूध है और पानी मे पानी है। यह सारा विश्व ज्ञानमे आवे। फिर भी विश्व और ज्ञान अलग-अलग है हम और आप लोगो को तो इतनी चीज जानने मे आ रही है, फिर भी जो यह है वह मै नही हूँ। जानन मे जानन है, पदार्थो मे जानन नही। जानन की ओर ही जानन है। जाननमे ही जानन बना रहता है। बाह्य पदार्थो मे जानन नहीं बना रहता है। जाननमे ही जानन बना रहता है। ऐसी विचित्रताओ और ऐसे ऐश्वर्य का पता योगी और ज्ञानी पुरुषो को ही हुआ करता है। विलक्षण ऐश्वर्य को जानकर ही उन योगियो और ज्ञानियो का मन प्रसन्नचित्त रहता है।

भैया ! जगल मे योगी जन एकान्तचित्त रहते है। गृहस्थी को ऐसा लगाता है कि जगल मे रहने वाले लोग कैसे रहते हैं? उनसे कोई पूछने वाला नहीं है, नौकर नहीं है, साधन नही है, खाने-पीने का काम चलता होगा? परन्तु उनका काम अद्भुत रूप से चलता रहता है। वे अपने ज्ञान का रस का स्वाद

लेकर ही आनन्दमग्न हो जाया करते है। यही उनका ऐश्वर्य है। वे अपने अमृत मे ही छके हुए रहते है, इसलिए वे सदा प्रसन्न रहते है। अत इस ज्ञान का नाम ही ईश्वर है। आनन्दमय, कल्याणमय, सर्वोत्कृष्ट सार की चीज दुनिया के अन्दर क्या है? मोही जीव अपने सारसे अलग होकर बाहर को निरखा करते है। सारभूत चीज क्या है? महान् हो गया, बाल बच्चे हो गए, मित्र लोग हो गए, ऐसी कल्पनाओ मे ही वे मोही बाहर-बाहर ही घूमा करते है। सार को ढूढ़ने के लिए वे जगह-जगह मारे-मारे फिरा करते है। योगियो को अपने ज्ञान का पता है कि दुनिया मे सार की चीज कोई मिलती नही है। सार वह खुद ही है। इसका जो सहजस्वरूप है, अपना अस्तित्व है, वह ज्ञानमय है, प्रकाशमय है, कल्याणमय है। सार को, कल्याण को, उत्कृष्ट को शिव कहा करते है। यह ज्ञानमय ही शिव है।

राम किसे कहते है ? राम उसे कहते है जिनमे योगी पुरुष रमण किया रकते है। जिसमे योगीजन, ज्ञानीजन रमण किया करते है उसे राम कहते है। वह राम मेरा कौन है? मै अनादिसे अनन्त तक सदा अपने आपमे रमण किया करता हूॅ। यह तो लोगो को भ्रम है कि मै घरमे रमता हूॅ, दुनियावी कार्यो मे रमता हूॅ, खुद ज्ञानमय हू, चारित्रमय हूॅ, स्वय ही स्वयके स्वरूपमे रमा करता हू, खुद ही रमा करता हूॅ। कोई अपनी दुकान मे ही रमा करता है, कोई विकल्पो मे रमा करता है, कोई जानकार विद्वान् विकल्प करता है वह उनमे रमता है और ज्ञानी योगी पुरुष अपने ज्ञानस्वरूप मे रमते है और प्रसन्न होते है। मै अपने ज्ञान मे रमा करता हू, तात्पर्य यह है किं कोई कैसे रमता है, कोई कैसे ? मगर सभी अपने आपमे रमते है। बाह्य पदार्थो मे कोई रम नहीं सकता है, कोई बाह्य मे लग नही सकता है, परन्तु कोई मान ले कि मै बाह्य मे रमता हूॅ। तो वह परेशान हो जायगा। पर न कोई बाह्य मे रम सकता है और न बाह्य मे लग सकता है। तो मै रमता हूॅ और अपने आपमे ही रमता हूॅ। तो ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ही राम है।

यह प्राणी अपनी शरण बाह्य मे ढूढता है, बाह्य मे ही हित और अहित ढूढने का प्रयास कर रहा है। परन्तु कही बाहर शरण नही है। यह प्राणी इधर-उधर भटकता है, परन्तु यह शरीर देवता इसकी रक्षा नही करता है। यह ज्ञानस्वरूप ही हमारा सच्चा देव है,रक्षक है, अपने आपके लिए स्वय सर्वस्व है। जिस प्रकार का हममे सर्वस्व है उस ही प्रकार की बाते करे तब तो ठीक है। परन्तु हे आत्मन् ! यह प्राणी शुद्ध प्रवृत्ति नही करता है। यह तो उल्टी अटपटी बाते करता है। यह जैसा शुद्ध है, स्वच्छ है, चैतन्यस्वरूप है वैसी बाते नहीं करता है।

हे आत्मन्, अपने आप पर दृष्टि दो तो अपना प्रभु अपने को ही मिल जायगा। यह प्रभु ही तेरे पापो को हर सकता है। पाप क्या है ? विकल्प और कल्पनाये ही पाप है। ये बाहर के जो पाप है, झूठ बोल दिया, जान ले ली, परिग्रह किया, यही बाहरी बाते पाप है। ये पाप होते भी कैसे है? यो ही कल्पनाये उठती है तब इन पापो को करता है। इन पापो के कारण ही उसे दु ख मिला करते है। तो इन पापो को हरेगा कौन ? इन पापो को मेरा प्रभु ही हरेगा। इन पापो से उत्पन्न दु खो को मेरा प्रभु ही मिटायेगा। जो पापो को हरे वही हरि कहलाता है। हम अपना प्रभु कैसे ढूढे। हमारी शरण, हमारा

रक्षक, हमारा हितू यह प्रभु ही है। इस एक अपने स्वरूप पर ही ध्यान हो तो सर्व सफलता है। मै तो यथार्थ हूँ, कृतकृत्य हूँ, स्वभावमात्र हूँ। यह लोक धन कुछ महत्व नहीं रखता है। यह धन पिड रूप है। धन पुद्गल है, इन पुद्गलो मे सार नही दिखता है। ऊचे-ऊचे महल, बडे-बडे धन वैभव आदि इनमे कोई महत्व की चीज नही दिखती है। यह ज्ञानी जब ज्ञान दृष्टि से देखता है कि मै सबसे निराला हूँ, ज्ञानमयवस्तु हूँ तो अनुभव रस का स्वाद मिलता है अन्यथा जिसके बारेमे जैसा विचार किया वैसा ही उसको समझ लिया और वैसा ही उसका वर्णन कर दिया। सो इसी के अदर्शनके फलमे बौद्ध हूँ, भट्ट हूँ, नैयायिक हूँ। मीमासक साख्य इत्यादि नाना प्रकार के दर्शन बन गए पर जिसपर समस्याये खड़ी हुई है वह दर्शनका मूल आधार यह स्वय ज्ञानतत्व है, ऐसा यह मै ज्ञानतत्व हूँ।

मेरा काम केवल जानन ही जानन है। बाह्य पदार्थो को करनेका इस ज्ञानमात्र भावात्मक आत्मपदार्थ का काम नहीं है, किन्तु अज्ञानी मानता है कि हम करने वाले है, मै अमुक का करने वाला हूँ, मै दुकान करने वाला हूँ इत्यादि ये मिथ्यात्व है। ये विचार धर्ममे ले जाने वाले नही है। ये सब मिथ्यात्व है। तू है और परिणमता रहता है। इतना ही तेरा काम है। तू पूराका पूरा है। पाप बने चाहे न बने, तू पूराका पूरा है। जैसे जैसे लोग कहते है कि तू तो अधूरा है, तेरी आत्मा अधूरी है। अरे तेरी आत्मा अधूरी नही है। तू तो एक सत् है, सत् अधूरा नही होता है। अधूरापन तो दुनियामे होता ही नहीं है। यह ऐसी मानी हुई चीज है कि जैसे अनेक चीजे मिली होती है, कुछ यहा हटा दिया, कुछ वहा हटा दिया तो लोग कहते है कि आधा कर दिया। जो चीज है वह पूरीकी पूरी है।

ये स्कन्ध है, ये दिखते है। ये सब चौकी, पुस्तक, कमडल इत्यादि एक एक चीजे नहीं है। ये अनेक पुद्गल परमाणुवो से मिलकर बने है इसमे आधी-आधी चीजे कुछ नहीं है। उनमे जो एक एक चीज है वे सब पूरे के पूरे है। इसी तरह जगत के जितने जीव है वे सब पूरे के पूरे हे। अगर बिगड़ गए तो पूरे के पूरे बिगड गए और अगर बन गए तो पूरे के पूरे बन गए। आधा न तो बिगड़ेगा और न बनेगा। प्रत्येक जीव परिणमता है। अगर कोई परिणमता है तो अपने ही पणिमन से परिणमता है दूसरेके परिणमनसे नहीं। अगर मै विकल्प कर रहा हू तो अपना ही विकल्प कर रहा हूँ, दूसरोका विकल्प मै नही कर रहा हूँ। मै परिणमता हूँ अपने आपमे ही परिणमता हूँ, ऐसा अगर ज्ञान हो तो अमृतका पान है। जिसने अपने स्वरूपको लक्ष्य मे लिया, अपनेको ही कर्त्ता धर्ता माना तो समझो कि दूसरी दुनियामे चला गया, अपने स्वरूपसे हट गया। यदि वह अपनेसे हट गया तो समझो कि उसके ऊपर दु खो की परम्परा आ गयी, क्योकि अपनेको भूलकर कही भी लगे, सर्वत्र क्लेश ही क्लेश है।

हे आत्मन्! अपने स्वरूपसे विमुख होना विकल्पोकी परम्परा बढाना है। मै इसको करता हूँ– ऐसा सोचना रागोको वढ़ाना है और यह अज्ञान का काम है। मै इसको नही करता हूँ, मेरा यह करने का काम नही है ऐसा विचारना ज्ञानका काम है। इसका न तो करनेका स्वभाव है और न मना करनेका स्वभाव है। मना करनेमे क्लेश है और करनेमे क्लेश है। क्लेश दोनोमे है। अहकारको देख लो उससे भी दु ख आते हैं। अहकार करना या न करना बल्कि उसके प्रति विकल्प करना ही दु ख है। इससे अपना पूरा

नही पड़ेगा। मै तो केवल अपने ज्ञानस्वरूपको देखूँ जिसका काम केवल जानन है, ज्ञानमात्र है, जान लो तो भाई फायदा उठाओ। अरे इतना ही फायदा है, इसके आगे किया तो नुक्सान है। भगवान् सारे विश्वको जान गया। पर अब फायदा तो उठाओ। सट्टेका सार तो जान गए पर अब फायदा तो देखो। अरे जानन ही बना रहे तब तो भगवान् फायदेमे है। अगर जाननसे आगे आ जाय तो साधारण जीवोकी तरह दु ख होगे। भगवान् अपने स्वरूपको भूलकर अन्य कुछ नही करते। यदि कोई इस जाननके आगे, कुछ फायदा सोचता है तो उसीसे ससारमे रुलना पड़ता है। केवल जाननमात्रका फायदा रह जाय और कर्म चेतना व कर्मफल चेतनासे जुदा रहे, ऐसी दृष्टिसे आनन्द होता है। वह सब सहज परमार्थिक आनन्द है।

सो हे आत्मन्, तुम बाह्य मे कुछ न करो। तुम हो और परिणमते रहते हो। इतना ही तेरा काम है। इसके आगे तेरा कोई काम नही है। अपने आपको देखो तो देतेसे दु ख दूर ही हटेगे और फिर समाधि का अनुभव करेगे। यह आत्मा आनन्द व ज्ञान विकासमे जब बढता जायगा, बढ़ चुकेगा तो प्रभु हो जायगा। अपने स्वभाव से हटकर बाह्यको कुछ निरख कर बाह्य से लाभ देखकर बाह्य मे जा पडते है तो उनको टोटा पड़ता है, नुकसान होता है। ये भोग पुण्योदय से प्राप्त है, निकट है, जरा मुड़े और भोग लिए ऐसे सुगम है सो ये भोग बडे सस्ते लग रहे है, किन्तु ये बडे महगे पडेगे। जैसे खेतोमे कोई चला जा रहा है, खेतमे एक बेरका पेड मिले। किसी तरहसे बेरोको तोड़ लिया। इतना काम तो बड़ा सस्ता लगा पर यदि उस खेतका मालिक आ जावे और उसे मारे तब कितना महगा पड़ेगा? इसी तरह से ये मोह रागादिभाव सस्ते लगते है पर यह नही जानते है कितने महगे पडते है? जरा सी देरमे जो कुछ करलो, सस्ते है, मगर स्वभाव दृष्टि से हटा हुआ रहता है ना। कर्मो के तीक्ष्ण बन्धन होते रहते है जिनके उदयमे महान् क्लेश हो जाते है। यह ज्ञान की बात, साधना की बात, स्वरूप निरखनेकी बात इत्यादि महगी पड़ रही है।

अरे जरा सा दिमाग लगाना पड़ेगा फिर वह सस्ता है अर्थात् सस्ता ही पड़ेगा। जब चाहे अपने स्वरूप को देखो। ऐसा ज्ञानस्वरूप देखो तो सुखी रहोगे, मेरी शरण यह मै स्वय ही हूँ। जैसा मैं हू उसी रूप मे अपने को देखू तो मेरा कल्याण हो जायगा। यह आत्मा तो जिन शिव, ईश्वर, ब्रह्म, राम, विष्णु आदि रूप है। सब ज्ञान इसी के अन्दर है। ऐसा महानिधान, आनन्द निधान यह मै स्वय हूँ। अपने आपको समझता हूँ और जानन स्वभाव लिए हुए हूँ। मेरे मे विपदाये नहीं है। विपदाये तो मात्र भ्रम मे, विकल्प मे है।

इच्छा बन्धो न मे हानिर्ज्ञानमात्रस्य दर्शिन।
पूर्यते ज्ञानमात्रेण, स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-२०।।

अर्थ– इच्छा ही बन्धन है ज्ञानमात्र दृष्टा होते हुए मेरे कोई हानि नहीं क्योंकि ज्ञान मात्र भाव में ही मेरा तत्व पूर्ण होता है इसलिये ज्ञान स्वरूप अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

हम और आप सभी आत्मा परिपूर्ण है, सब प्रकार ज्ञान और आनन्दमय हैं। सब बाते इस अ मे ठीक है। केवल एक गडबडी इस आत्मा के अन्दर है जिससे सारा बिगाड हो गया। वह

है ? वह गड़बड़ी यह है कि इस आत्मा मे इच्छाये भरी हुई है। चाहे सारी बाते रहे, हम किसी को मना नही करते। मगर एक इच्छाओको ही निकाल दो तो सारे सकट समाप्त हो जावेगे। इच्छाके समाप्त होनेपर कषाय भी किस पर नखरे करेगे? इच्छाये ही एक बन्धन है जो जीवोको बाधे हुए है। इन पुरुषोको कौन बाधे हुए है? इनमे कैसे गाठ लगी हुई है। अरे ये सब न्यारे-न्यारे है, मगर अपनी-अपनी इच्छाये बनाकर बन्धनमे पडे हुए है। कोई किसीसे बधा हुआ नही पड़ा है। इच्छाओने ही बाध रक्खा है।

सुकौशल कुमार विरक्त हुए । लोगो ने बहुत समझाया, अरे राजकुमार अभी तुम्हारी कुमार अवस्था है। अभी कुछ वर्ष हुए शादी हुई है, स्त्रीके गर्भ है, उत्पन्न होने वाले पुत्रके लिए राजतिलक कर जावो, फिर बादमे चाहे चले जाना। कौशल कहते है। पिड बचानेके लिए कि अच्छा जो गर्भमे है उसे मैं राज्यतिलक दिए देता हूँ। कौशलको बधनेकी इच्छा न थी तो उनके कोई बन्धन न था। इच्छाये है तो बन्धन हैं। गृहस्थीमे क्या बन्धन है। अरे नही गृहस्थी मे बन्धन कहा है? केवल इच्छाओ के कारण ही वे फसे हुए है। हमे तो बाल बच्चो की फिक्र है, घर-द्वार कुटुम्ब-परिवार की फिक्र है, इसी से हम फसे हुए है।

भैया ! अपन तो स्वतत्र है परन्तु बाल बच्चो मे मोह होने से ही अपने मोह से फस गए हैं। यदि हम उनमे ही फसे रहे तो क्या उम्मीद है कि हम इन बधनो से निकल पायेगे? जो जो व्यवस्था हम सोचे हुए है क्या इनको पूरा करके विश्राम पा लेगे? देखो मेढक इधर-उधर उछलेगा, कोई उधर उछलेगा। वे तोले नहीं जा सकते है। इसी तरह क्या अपने परिग्रह मे रहकर अपनी व्यवस्था बना सकते हो? कितनी ही व्यवस्था बन जायगी तो फिर सामने कोई नई बात खड़ी हो जायगी। क्योकि बात बाहर खडी नहीं होती, अन्दर मे ही खडी होती है। सो वर्तमान अन्तर उपादान अयोग्य है ही। जब तक इच्छाये समाप्त नहीं होती तब तक बधन रहेगे।

भैया ! एक घटना सोचो कि बगीचे मे एक चिडीमार जाल फैलाए हुए है। जाल के नीचे थोडे से चावल या गेहूँ, के दाने डाल दिए है। अब चिडिया आती है, उस जाल मे फस जाती है। देखने वाले दो चार लोग आपस मे चर्चा करते है कि देखो चिड़ीमार ने चिड़ियो को फास लिया। दूसरा बोला– नहीं, नही चिडियो को स्वय जाल ने फास लिया है। तीसरा बोला नही, नही, जाल ने चिडियो को नहीं फासा है, चावल और गेहूँ के दानो ने चिड़ियो को फास लिया है। चौथा बोला नही, नही, चिडियोने स्वय दाने चुगने की इच्छा की, इसलिए स्वय ही वह बधन मे फस गयी है।

प्रभु मे और आत्मा मे भेद कहाँ ? सब लोग चिल्लाते है कि प्रभु और आत्मा मे भेद नही है। कहते ना कि आत्मा सो परमात्मा । भेद कुछ नही है आत्मा है हम और परमात्मा है कोई निर्दोष, सर्वज्ञ, शुद्ध, ज्ञानी आत्मा। उसके स्वरूप मे और इसके स्वरूप मे कोई भेद नहीं है। इतना समझकर आगे इतना और समझ लो कि मेरे आत्मा मे अनादि अनन्त अहेतुक नित्य प्रकाशमान सहज चैतन्यस्वरूप है, वह परमात्मतत्व है ऐसा मैं सहज परमात्मतत्वरूप हूँ। सारा मामला तैयार है, केवल इच्छाओ को निकाल दो, जिनसे कि बाह्य पदार्थो से कोई मतलब नहीं है। जो जैसा है तैसा ही है, किसी के करने से कुछ होता

नहीं है। मेरे सोचने से बाहर कुछ नहीं होता है। सब अपने-अपने स्वरूप के धनी हैं, अपने-अपने सत् के स्वामी है। केवल ये व्यर्थ की इच्छाये उत्पन्न करते है और दु खी होते है। रात दिन के कार्यो के अन्दर अपने को देखते जावो कि मेरे लिए लोग बन्धन है या काम बन्धन है या इच्छाये बन्धन है। इच्छाये न करो तो सुख है। अच्छा देखो शुद्ध किसे कहते है? शुद्ध उसे कहते है जो इच्छाओ का सयम लिए है अथवा इच्छाये रंचमात्र भी नही है। इच्छाओ के होने न होने पर ही सुख-दु ख निर्भर हैं। अन्य पदार्थो के सयोग मे सुख नही है, दु ख ही है। ससार मे दृष्टि पसार कर देखो तो सब दु खी ही नजर आ रहे है, सबको कष्ट है और किसी को यहा कितना भी आराम मिले फिर भी यहा कष्ट ही है। जितने दीन को कष्ट है उतने ही धनी को भी कष्ट है। यद्यपि जितनी असुविधाये दीन को है धनी को नही है, फिर भी धनी को भी उतने ही कष्ट होते है, कहीं-कहीं उससे भी अधिक।

अरे सुविधाओ से सुख नही होते है और न सम्पदाओ से ही सुख होते हैं। इज्जत से भी सुख नही होता। इच्छाये यदि न रहे तो सुख होता है। तो कैसी भी परिस्थिति आ जाय, इच्छाये कर लिया तो दु ख हो गया। इच्छाये ही एक बन्धन है। इन शिशु बालको को देखो कैसे आजादी से फिरते हैं, कोई फिक्र नही है। कैसे सुखी रहते है? पर भाई जैसे-जैसे अवस्था बढ़ती जाती है वैसे-वैसे इच्छाये भी बढ़ती जाती है और इच्छाओ के बढ़ने से दु ख भी बढ़ते जाते हैं। तो भाई दु खो का कारण इच्छाये है। पर बड़ा कठिन प्रश्न है कि इच्छाओ को कैसे दूर किया जाय ?

भैया ! गृहस्थो के द्वारा भी इस बारे मे दो काम तो किए भी जा सकते है। एक तो यह कि मैं आत्मा इच्छारहित हूँ, ज्ञानस्वभाव वाला हूँ, मेरा स्वभाव इच्छारहित रहने का है, मैं आत्मा ज्ञानमय हूँ, आनन्दको लिए हुए हूँ, मै इच्छाये नहीं करता, इच्छाये न रखने से मेरा कुछ मिट नहीं जायगा, मेरा तो ज्ञानस्वभाव है, जानन ही मेरा काम है, मेरा जाननहार मै ही हूँ, एक तो यह काम गृहस्थी मे भी किया जा सकता है। पर इसे ज्ञानी गृहस्थ ही कर सकते हैं। यह केवल कहने की बात नही है। सत्य बात कही जा रही है, पर ऐसा किया जाने मे कुछ अभ्यास होना चाहिए, ज्ञान दृष्टि होना चाहिए, ससार से मुक्ति की भावना होनी चाहिए। यदि ये बाते हो सकती हैं तो गृहस्थ एक तो यह काम कर सकता है। भैया ! बात भी यही सही है– मेरा इच्छारहित स्वभाव है, जानन ही मेरा स्वभाव है। जानन अगर मिट गया तो मै मिट जाऊगा, इच्छाये अगर हो गयी तो मैं बरबाद हो जाऊगा। इच्छाओ के मिट जाने से मै मिट जाऊगा, ऐसी बात नही है। इच्छाओके मिटनेसे मैं नहीं मिटता बल्कि इच्छाओ के मिट जाने से मुझे आनद है। ये इच्छाये मेरा स्वभाव नहीं, मैं तो स्वभाव मात्र हूँ, भीतर मे एक ऐसा विश्वास लेवो। एक तो गृहस्थ यह कर सकता है, दूसरे यह कर सकता है कि इच्छा माफिक यदि काम नहीं है तो इससे नष्ट हो जाऊगा यह शका रच भी न करे। अरे मैं तो वही सत् का सत् हू। यदि ऐसा होगा तो क्या, न होगा तो क्या यह दूसरी बात भी गृहस्थ कर सकता है। बाह्य की यदि इच्छा बन गयी तो क्लेश ही क्लेश है ? ये इच्छाये ही बन्धन है। यदि मैं इच्छाये न रक्खू, ज्ञाता दृष्टा रहूँ ज्ञानमात्र रहूँ तो मेरी हानि नही है। इच्छाओ से ही हानि है। मेरा पूरा इच्छाओ मे नहीं पडेगा, इच्छाओसे तो मुझे दु ख ही

मिलेंगे। मेरा पूरा तो ज्ञानमात्र भावो से ही होगा। मैं जितना हूँ, स्वय हूँ। इससे ही मेरी ठीक व्यवस्था बनेगी। इसलिये इच्छाओ को दूर करके ज्ञानमात्र रहकर मै अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

देखो हाथी, मछली, भवरा प्रत्येक जीव बन्धन मे पड़ जाते हैं, जाल मे बध जाते है, शिकारियो के चगुल मे फस जाते हैं। उनकी इच्छा नहीं होती तो वे बन्धनमे नहीं पड़ते। मनुष्य भी रग ढगसे चलते हैं, दूसरो से मनमानी अन्याय की प्रवृत्ति नहीं कर पाते तो इस ससारी व्यवस्था का निदान भी इच्छा है। इससे एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के बन्धन मे पड़ जाता है। पुत्र की इच्छा है कि मैं ठीक रहूँ, मेरा बढ़िया गुजारा बने, मेरी उन्नति बने, ऐसी इच्छाओ के कारण ही वह पिता के साथ मे रहना स्वीकार कर लेता है। यह मेरा बच्चा बुढ़ापे मे काम आयगा, मेरी सहायता करेगा, इच्छाओ के कारण ही वह पुत्र से मिला हुआ चलता है। इसी प्रकार स्त्री की इच्छाये अपने पति के प्रति, पति की इच्छाये अपनी स्त्री के प्रति होती हैं, इस तरह से वे सब एक दूसरे के बन्धन बन जाते है। नौकर अपने मालिक के प्रति तथा मालिक नौकर के प्रति बधन मे है। इसी प्रकार बड़ा छोटे के बन्धनमे है । तथा छोटे बड़े के बन्धन मे है। इसलिये इच्छाये ही बन्धन है।

सीता जी अग्नि परीक्षा मे सफल हो गयी तो रामचद्र जी विनयसहित खड़े हुए बोले देवी माफ करो, आपको बहुत कष्ट पहुचा, चलो अब महल चलो। लक्ष्मणने भी हाथ जोड़े, और सब लोगों ने भी हाथ जोड़े। भला सोचो कि सीता जी ने मृत्यु से भेट कराने वाली अग्नि परीक्षा के बाद क्या अपने मनमे इच्छा के भाव बनाए होगे ? क्या सीता जी के मोह की प्रवृत्ति हो सकेगी? नहीं । इसीसे तो सीताजी को वैराग्य उमड़ा, ज्ञान का विकास हुआ तो सीता जी के लिये कुछ भी अन्य बन्धन नहीं हुआ। विरक्त हो गयी, तपस्या मे लग गयीं, जब तक इच्छाये थीं तब तक बन्धन था। इच्छाये खत्म हो गयीं तब उनका बन्धन भी खत्म हो गया।

अब घर में ही देखो लोगो की इच्छा नहीं रहती है इसलिये वे व्यावहारिक सम्बन्धी भी होकर जुदा हो जाते हैं, तलाक दे देते है। परमार्थ से तो जब इच्छाये नहीं है तब मोह के बन्धन भी हट जाते हैं हमको बाधने वाले कोई पदार्थ नहीं हैं। हम बाह्य पदार्थो को अच्छा या खराब करने की इच्छा करते हैं तो अपने आपको ही बेड़ियों मे जकडते हैं, दुःखी होते हैं।

बडे-बड़े रईस लोग आजकल भी अपने बच्चे-स्त्री-धन-वैभव इत्यादि को छोड़कर अलग हो जाते हैं, विरक्त हो जाते हैं, यह क्यों? यों कि इच्छा का बन्धन उनके नहीं रहा, इच्छा तक साम्राज्यो से लगाव था। इच्छाओं के समाप्त होते ही वे बड़े-बड़े साम्राज्य छोड देते हैं। कहते हैं कि फलाना आदमी मोहप्रवृत्ति से अलग हो गया । अरे अलग हो गया तो अपने को बधन मे बाधने की इच्छा नहीं थी इसलिए अलग हो गया। बन्धन तो इच्छा से हो जाते हैं। किसी को अपना मानना कि यह मेरा है, यह अमुक का है, यह फलाने का है इत्यादि ही तो विपदाये हैं। दूसरो से लाते घूसे मिला करते हैं पर कहते हैं कि मेरा है। परको अगीकार करने से ही सुख-दुःख हो जाते हैं।

यह जीव किसी-किसी बात से मौज मानता है और किसी बात से दु खी होता है। जिन चीजो से मौज मानता है उन चीजो के साथ-साथ दु.ख ज्यादा आते है। रात दिन के २४ घटे के अन्दर यह बताओ कि बहुत बढ़िया मौज कितने मिनट तक रहती है ? रात दिनमे २, ३ मिनट के लिए मौज आ जाती होगी बाकी समय मे कष्ट ही रहते है। कभी कोई बच्चा हो गया उसकी प्रवृत्ति को देखकर दो एक मिनट के लिए मौज हो गयी, बाकी समय मे दु ख ही रहते है। दुकान पर बैठे है कोई ग्राहक आ गया तो सौदा पटने पर दो एक मिनट के लिए मौज आ गयी सौदा न पटा, ग्राहक चला गया तो फिर दु खी हो गए और ग्राहक की अपेक्षा मे तो पहले से भी दु खी बैठे थे। मौज और दु ख मे अन्तर देखो कि मौज तो राई के समान और दु ख पहाड़ के बराबर है और दु खो को फिर देख लो दु ख तो सारे साचे हैं मगर मौज जो दो मिनट का है झूठा है। मोज झूठा हो गया और दु ख साचे हो गए। इन सबका क्या कारण है ? देखो भाई क्षणिक मौज मानने से ही दु खो से दब जाते है। इस मौज मानने का कारण इच्छाये ही है। इन इच्छाओ से ही दु ख हो जाते है। जैसे कोई कहे कि साहब अपनी दु खो की कहानी सुनाओ। अच्छा सुनो, ५ मिनट तक सुनाया तो उसमे यही पावोगे कि इसकी इन विषयोमे इच्छा है। उसका निर्णय करो कि उसमे अमुक की इच्छा है। उन सब इच्छाओ से दु ख होते हैं, क्लेश होते हैं।

सारी बाते ठीक हैं ना, सारी बाते समझ मे आयी है ना। सारी बात समझ मे क्या सिर पर ही तो आ रही है। भैया अब समझते है यह कि ऐसा कोई उपाय बन जाय कि सारी समस्याये समाप्त हो जावे। हम कहते है कि जिनमे मोह है, जिनमे इच्छाये है उनको सभी सुख नहीं हैं, न सफलता है इतना निश्चय तो कर ही लो। एक इच्छा न हो तो आनन्द ही आनन्द है। इच्छा मिटी फिर क्या है ? तो ये इच्छाये मिटे कैसे ? अरे इन इच्छाओ के मिटने की तरकीब है – जो शास्त्र पूजे जा रहे है, उनमे इच्छाये मिटाने की तरकीबे लिखी होती हैं, इसी से हम शास्त्र के पन्ने आदर से पलटते हैं, पूजते हैं, उनका मान करते है और यह भगवान् की मूर्ति मन्दिर मे विराजमान है, परमात्मा अरहत जिनेन्द्र की मूर्ति विराजमान है, उसकी उपासना उन्हे आदर्श मानकर ही तो करते हैं। इच्छाये प्रभु के समाप्त है। सो निरीह को पूज करके हम अपनी इच्छाओ को नष्ट करे। हम गुरुओ के सत्सग करते है, गुरुओ की उपासना करते है, उपासना करे क्योकि इच्छाओ के मिटाने की तरकीब उनके सत्सग से मिलती है। जैसी इनकी वृत्ति है ऐसा बनाकर मै प्रसन्न होऊगा।

जिसके इच्छाये होती हैं और बाह्य से ही मौज किया करते हैं उन्हे क्लेश ही रहते हैं। देखो भाई जिसके पास आनन्द है उसके पास हम नहीं जाते हैं और जिसके पास आनन्द नहीं है उसके पास हम जाते हैं। जिनके पास जाने से अपने को क्लेश हैं उनके पास हम जाते हैं। जिसके पास जो हैं उसके पास जाकर उसे पाना चाहिए। दरिद्रता मे दु ख है यह सोचकर जिनके दरिद्रता नहीं, ऐसे धनी के पास जाते हैं लोग, जिनसे उन्हे कुछ मौज मिलता है उनके पास जाते हैं। जो जानते है वे इच्छाओ से दु खी हैं जिनको ये दु ख न हो उनके पास जाते हैं। इसी तरह इच्छाओ से दु ख है। परन्तु मोही दुनिया में चिपटते हैं और जिनके पास दु ख नहीं हैं उनके पास ये मोही नहीं जाते हैं। देखो जैसे मिल चल रहे

हैं खटपट खटपट। न पेच पुरजो को चैन, न चलाने वालो को चैन। वैसी ही चीज यहा बन रही है। देखो इस हृदय मिल के अन्दर कैसी खटपट-खटपट हो रही है। एक इच्छा यह हुई उसके बाद दूसरी इच्छा। कभी किसी की वासना, कभी किसी का ख्याल, कभी किसी का उपयोग तो कभी कोई व्याकुलता। इस तरह से ही इच्छाओ की खटपटी से भरी यह वासना मशीन कैसी चला करती है ? जितने दु ख होते हैं वे सव इन इच्छाओ के द्वारा ही होते हैं और इन अटपट इच्छाओ मे पडने से क्लेश ही क्लेश रहेगे।

भैया ! इन इच्छाओ को हटा दो। इनसे कोई मतलब नही निकलता। कुछ भी इच्छा करो उससे लाभ नहीं मिलने का है। इच्छाओ का पता भी नहीं अब क्या इच्छा उत्पन्न हो जाय। जैसे ऊट का पता ही नहीं रहता कि वह किस करवट बैठे ? बैठते भी यह पता नहीं रहता कि वह किस तरफ को वैठ रहा है। पहले तो वह जरा सा झुकेगा फिर पैर लगाकर बैठ जाता है। जब वह बैठ जाता है किसी तरह से तो फिर पता लगता है कि ऊट किस करवट से बैठा ? पुद्गलो का ऐसा अन्जान मामला नहीं है। पुद्गलो के चाहे लट्ठ चलो चाहे तलवार, अटपट वहा कुछ नहीं होगा और मनुष्य की तरफ जरा देखो। इस मनुष्य का पता ही नहीं कि इसका एक मिनट में ही क्या दिमाग बदल जाय या कुछ समय बाद क्या बदले ? उसका कुछ पता नहीं रहता है। वह अपनी भूल के कारण ही गलतिया कर डालता है। इन गलतियो के कारण ही इच्छाये हो जाती है। इन इच्छाओ की गलतियो को अगर अपने से निकाल दें तो दु ख के बन्धन छूट जायेगे। दु ख तो इच्छाओ से ही होते हैं। इच्छाये न हो केवल ज्ञातादृष्टा मात्र मैं होऊ तो उस ज्ञान से ही मेरा पूरा पड़ेगा। इच्छाओ से मेरा पूरा नहीं पड़ेगा। देख लो सब ठीक है, परन्तु कोई इच्छा हो गयी तो बैठे ही बैठे विपदाओ से दब गए।

जव वच्चे थे तब भी इच्छा इज्जत की थी। नीचे नहीं बैठते थे, गोद मे ही बैठते थे। जब थोड़ा बड़े हुए तो यह ले, वह खा ले, यह खेले आदि इच्छाये भी हुई और तनिक बड़े हुए तो अन्य अनेक इच्छायें आ गयीं, पढ़ेगे, परीक्षा देगे, यह करेगे, वह करेगे आदि । तनिक और बड़े हुए तो शादी की, विवाह किया, पुत्र हुए। देखो अन्य अन्य ढग की बाते हो रही हैं। तो इच्छाओं ने आराम नहीं लिया। इच्छाये मेरे मन मे वहुत सवार हुई इन इच्छाओं ने ही हमे बहुत सताया, फिर भी हम इनका आदर करते जा रहे है। अरे ये इच्छायें वेकार की है, व्यर्थ की है, इनसे कोई मतलब नहीं, कुछ प्रयोजन नही। भला सोचो तो सही इस शरीर का तो मरण होगा ही, इस शरीर की क्या दशा होगी ? खाक कर दिया जायगा, भस्म कर दिया जायगा। ३४३ घन राजू प्रमाण लोक में पता नहीं कि वह किस जगह जायगा? फिर उसके लिए कानपुर नहीं होगा । उसका हिन्दुस्तान नहीं होगा, उसका घर द्वार इत्यादि कुछ भी नहीं होगा। वह तो ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूप में अगर विश्वास कर ले तो सुखी हो जावे। तो ऐसा ही अव जान लो कि मेरा कहीं कुछ नहीं है। जो कुछ भी हो धर्म कर लो तो उसका फल है । शरण कोई नहीं होगा। इसलिए मैं इस अपने ज्ञानमय आत्मा को देखू और अपने में अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

ॐ शान्ति, ॐ शान्ति, ॐ शान्ति

नाना चेष्टै न मे लाभश्चेन्न चेष्टै न मे क्षति।
ज्ञानमात्रैव चेष्टा मे स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-२१।।

अर्थ– मैं नाना प्रकार चेष्टा करूँ तो मेरे लाभ नहीं, न चेष्टा करूँ तो मेरी हानि नहीं क्योंकि मेरी चेष्टा तो ज्ञानमात्र ही है अत ज्ञानस्वरूप निज में निज के अर्थ स्वय सुखी होऊं।

कुछ भी चेष्टाये करने पर भी जैसे के तैसे ही खाली हाथ रहते हो। किसी भी प्रकार की चेष्टाये करो–दुकान की, घर की, सत्सग की, रहने की, पढ़ने की, सोसायटी की, समाज की सेवा की, रहोगे वैसे के वैसे खाली हाथ। इस आत्मा मे कुछ भर जाता है, बन जाता है, बड़ा हो जाता है, क्या ? कुछ नहीं होता बल्कि उन चेष्टाओ से कुछ खाली हो जाता है। नाना प्रकार की चेष्टाये करो, मगर कुछ लाभ नही मिलेगा।

अगर मै कुछ चेष्टाये न करू तो स्वच्छ बना रहूँ। चेष्टाये न करने से कोई हानि नहीं है। मेरी तो वास्ततिक चेष्टा ज्ञानमात्र ही है। भीतर के स्वरूप को देखो तो यह केवल जाननहार एक आत्मा है। अपने आपके स्वरूप मे घुला मिला है। मुझ आत्मा का काम केवल ज्ञानस्वरूप है, केवल जानन का काम है। इसके आगे और कोई काम नही है। इसके आगे अगर और कुछ करने का स्वरूप माना है तो धोखा है। यह तो जाननहार है, जानन ही इसका काम है। ऐसा मात्र ज्ञान मैं अपने को देखू। भीतर मे यह प्रवृत्ति बन जाय कि मै तो सबसे निराला, भिन्न तत्व हूँ। इसका किसी से सम्बन्ध नहीं है। किसी के कुछ करने से हो जाय या किसी को मै कुछ कर दू ऐसी बात नहीं है। सब पूरे के पूरे हैं, परिणमनशील है। अपने आप मे परिणमते रहते है। परिणमना ही तो इसका काम है। इसको कहते हैं कि 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्।' जो बन जाय, बिगड़ जाय और बना रहे वही तो सत् है। यह प्रत्येक पदार्थ का स्वभाव है। मैं किसी को बना दू सो बात नही है। मै किसी से बन जाऊ यह भी बात नहीं है। मेरा स्वभाव ही नहीं है पर से बिगडना और बनना। यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य की कला स्वय प्रत्येक पदार्थ में है। दुनिया के लोग नहीं समझते है, सो उनकी यह बुद्धि बन जाती है कि ये चीजे बन जाती हैं तो कोई बनाने वाला अवश्य है उस बनाने वाले का नाम ब्रह्मा है। देखो कोई चीज बिगडी, खत्म हो गयी तो ऐसा करने वाले महेश है। ऐसा उत्पाद व्यय हो जाने पर भी कुछ रहा करता है उसका नाम विष्णु है।

भैया ! प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक है। मोही जीव पदार्थो के स्वभाव तो देखता नहीं, अपने स्वरूप को तो समझता नहीं, केवल बाहर मे ही देखकर कल्पनाये बनाकर कहता है कि मैं अमुक को बना दू, बिगाड दू, अमुक को कुछ कर दू अथवा मेरा कोई दूसरा ही बिगाड दे । इन शकाओं से सदैव दुखी रहता है। अरे मै तो स्वच्छ हू मेरा कोई कुछ नही कर सकता। उत्पादव्ययध्रौव्य मे पडा हुआ मैं स्वय अपने स्वरूप को जानता, देखता हूँ। मेरी जानन मात्र ही चेष्टा है, बाकी काम नहीं है। सो मैं अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा मे रहकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

तत्वज्ञो जायते मूको लुब्धैस्त्यक्तमिदं छ्लात्।
शांतिस्तु तत्वतस्तत्वे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-२२।।

अर्थ– तत्व का जानने वाला मूक (गूगा) हो जाता है इस छ्ल से मानों विषय लोलुपी प्राणियों ने यह तत्व उपयोग से अलग कर दिया है परन्तु वास्तव में तत्व में ही शांति है इसलिए तत्ववान इस अपने में अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

यह अन्तर की बात, तत्व की बात इसको जो जानता है वह मूक हो जाता है। बोल नहीं सकता मौन हो जाता है। जैसे कोई किसी को कोई चीज समझावे और वह समझता है, पर ऐसा नहीं समझता है तो समझाने वाला बराबर समझता है, पर समझने वाले की समझ मे नहीं आता है। जब समझने वाला यद्यपि जानता है सब पर बता नहीं पाता है या सुनने वाला समझ नहीं पाता है तो बोलने वाला टेबुल मे हाथ मार कर यो ही रह जाता है, क्या समझाया जाय, बताया नहीं जा सकता है। अच्छा मिश्री तो सबने खायी होगी। कोई भाई खड़े होकर मिश्री के स्वाद का वर्णन कर दे । अरे भई आप जान रहे हैं मिश्री के स्वभाव को, पर बताते कोई नही हैं। जानते सब हैं, पर बता कोई नही सकता। अगर कोई कहे कि उसका स्वाद मीठा होता है तो उत्तर मे यह आता है क्या रसगुल्ले, पेड़े, बर्फी इत्यादि का स्वाद जैसा होता है। जानते सब है पर वर्णन कोई नहीं कर सकता है। ज्ञानस्वरूप कैसा है कोई बतावेगा ?

जो तत्व का जानने वाला है वह मूक हो जाता है ठीक है। जो तत्वज्ञ है वह वचन-व्यवहार मे क्यों पड़ेगा ? परन्तु मोही जीवो ने मानो एक छल पकड़ लिया कि जिस तत्व के जानने मे गूगा हो जाता है उस तत्व से हमे क्या प्रयोजन ? २०-२५ वर्ष पहले धर्म पढ़ने का रिवाज था। लड़के विद्यालय में सस्कृत पढने के लिए जाते थे। घर मे मा बाप कहते कि अरे देखो सस्कृत पढ़ने से कोई पडित हो गया, कोई घर छोड़कर चल दिया,तो ऐसा पढाने से क्या लाभ ? लडके को न पढ़ावे, नहीं तो हाथ से ही चला जायगा। सस्कृत पढाने से कोई फायदा नहीं है, ऐसा मा-बाप लड़को के प्रति सोचते थे। अरे मर्म के तत्व को जिसने समझ लिया वह अगर घर से चला जाय तो उसे उत्सव मनाकर भेजो। जो ज्ञानी ध्यानी निर्णय कर रहा है कि यह तो अपने आपका कल्याण करता है और दूसरो का भी कल्याण करता है, तो उसका गौरव होना चाहिए। मान लिया कि आपने दुकान कर ली, बहुत सा साम्राज्य कर लिया तो उससे क्या होगा, बतलाओ। अरे ये तो विकल्प सर्वसाधारण के हैं ही। अगर जीव का उद्धार हो जाय तो खुशी होनी चाहिए।

भैया ! देखो– यह मूर्ख पुरुष छल करता है कि मेरे को उस तत्व से क्या लाभ होगा ? अरे भाई ऐसे तत्व मे , उपयोग में ही शान्ति है, बाहर मे शान्ति नहीं है। बाहरी कामो में तो अशान्ति ही अशान्ति है। अपने उपयोग मे लगने से शान्ति ही रहेगी। अशान्ति का कोई काम नहीं है। क्या आप बतला सकते हैं कि किसमे शान्ति है ? शान्ति क्या सर्विस में है ? क्या दुकान में है, क्या दुनिया के और कामो में हे ? अरे शान्ति कहीं नहीं है। केवल अपने आपके स्वरूप को देखो तो वहा पर शाति ही शाति मिलेगी।

वहा अशान्ति का नाम नही है। अशान्ति कितने प्रकार की होती है? एक-एक आदमी मे कम से कम एक-एक हजार अशान्ति होगी। एक आदमी मे इतने प्रकार की अशान्तिया है तो दूसरो मे भी ऐसी नाना अशाति है। ये अशान्तिया भी एक दूसरे से मिलती नही इनको और तरह की अशान्ति, इनको और तरह की अशान्ति । कितनी तरह की अशातिया है, कोई हद नहीं है। मगर शान्ति का जो रूप होता है वह केवल एक है और अशान्ति के रूप करोड़ो है। शान्ति अगर मिले तो उसका केवल एक ढग है। अगर मान लिया इन लौकिक मौजो मे कि हमे शान्ति मिली तो वह शान्ति नही हुई। शान्ति तो केवल एक प्रकार की है। तो यह तत्व जो अपने आप मे विराजमान है उस ओर दृष्टि हो तो शान्ति है। तो ऐसे तत्व को जानकर मैं अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

तत्त्वज्ञ आलसो भूतो लुब्धैस्त्यक्तमिदं छलात् ।
नैष्कर्म्य एव शांतिस्तु स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-२३।।

अर्थ– तत्व का जानने वाला आलसी हो जाता है इस छ्ल से मानों विषय लोलुपी प्राणियों ने यह तत्व उपयोग से अलग कर दिया है परन्तु शांति नैष्कर्म्य अवस्था में ही है अत· नैष्कर्म्य रूप अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊं।

ओह, एक मनुष्य बोल रहा है कि उस तत्व के जानने से क्या फायदा ? जिस तत्व के जानने से ज्ञानी आलसी हो जाता है, तत्व को जानने वाला आलसी होता है, ऐसा आलसी होता है कि पलक गिराने मे भी आलस्य आता है। ऑखो के पलक अगर गिरे तो उठाने को आलस्य आया है। और की बात तो दूर रही, जिनको योगी कहते है उनकी भी अगर पलक गिर जाती है तो उठाने मे आलस्य होता है। और अगर नजर उठी तो पलके बन्द करने मे आलस्य है याने बाह्य मे दृष्टि नही करता। ऐसे तत्व को जानने का हमे क्या प्रयोजन है ? और ज्यादा बढ़े तो ऐसे प्रश्न हो जाते हैं कि हम भी मुक्त हो गए तो दुनिया कैसे चलेगी ? दुनिया के क्या हाल होगे ? अरे ऐसे सब कहा बन जायेगे ? सब तो नहीं बनेगे मगर अनन्ते बन जावेगे। अनन्ते बनने पर भी अनन्तानन्त ही रहेगे। अगर बाह्य मे ही दृष्टि गयी तो वहा शान्ति नहीं मिलेगी।

भैया ! शान्ति तो वहा है जहा बाहर मे दृष्टि न हो। कुछ मत सोचो , कुछ मत बोलो, कुछ मत करो। देखिए कल्पना, जल्पना, चलपना क्या है ? कल्पनाओ के सम्बन्ध मन से होते है, जल्पना का सम्बन्ध वचनो से होता है जिससे जल्प व गल्प बने और चलपना उठकर चल दे यह चलपना हुई । न कोई चलपना हो. न कोई जल्पना हो, न कोई कल्पना हो, केवल स्वरूप का ही परिग्रह हो, तत्वज्ञान की प्रवृत्ति बढे, शाति तो वहा है। लोग कहते है कि उस तत्व के जानने से क्या फायदा जिसको जानकर आलसी हो जाते है। भैया ! शान्ति तो उस निर्विकल्पतत्व मे ही है। मै अपने ही तत्व को निरखकर उसमे ही उपयोग देकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

मनो मे न स्वभावोऽहं मन कार्यं न तत्फलम्।
औपाधिकमसत्स्वेऽत- स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-२४।।

अर्थ– मन मेरा स्वभाव नहीं और मैं मनका कार्य भी नहीं अथवा मन का फल भी नहीं, मन तो औपाधिक है और वह निज में किसी गुणादि रूप नहीं अत उपाधि रहित अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊ।

मन मेरा स्वभाव नही,मेरी वस्तु नही, मै तो मै ही हूँ। मेरे स्वरूप का मुझे पता न हो , यह कैसी अनहोनी बात है ?

एक राजा था। घोडे पर चढ़ा जा रहा था। दीवान के घर पर से निकला। दीवान बुद्धिमान था। राजा बोला – दीवान ! मुझे यह समझा दो कि आत्मा क्या चीज है और परमात्मा क्या चीज है ? जो प्रसन्न होता है वह बड़ी बाते करता है। राजा भी प्रसन्न थे, घोड़े पर बैठे हुए दीवान से बाते कर रहे थे। बड़े आदमी प्राय जब प्रसन्न होते हैं तो बहुत बोलते है। राजा बोला –जल्दी समझा दो कि आत्मा क्या चीज है और परमात्मा क्या है ? दीवान बोला– अच्छा, समझा दूगा। राजा बोला – नही, ५ मिनट मे ही समझा दो। दीवान बोला – राजन् माफ करो तो मै ५ मिनट मे नहीं आधा मिनट मे ही समझा दूगा कि आत्मा क्या है और परमात्मा क्या है ? सो राजा का कोड़ा उठाया और ४-६ कोड़े राजा के जमा दिए। राजा बोले – अरे भगवान्, अरे भगवान् ! दीवान बोला – जिसको तुम अरे अरे कहते हो वह है आत्मा और जिसको भगवान् कहते हो वह है परमात्मा।

हे आत्मन्, अपने से बाहर न जाओ, अपने से बाहर दु ख हैं। खुद के जानने मे ही सुख है। सबको मानो कि भगवान सबमे है। अत्यन्त यथार्थ रूप मे आत्मा है। यदि उस अपने यथार्थ रूप को देखो तो तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे सामने है।

यत्रैव भाति रागादि सोऽह रागादि नैव हि।
रागादौ निर्ममस्तस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-२५।।

अर्थ– राग आदि भाव जहा प्रतिभासमान होता है वह तो मैं हू परन्तु रागादि मैं नहीं हू इसलिये राग आदि भावों में ममता रहित होता हुआ अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊ।

जहा यह रागादिक प्रतिभासित हो वह तो मैं हूँ, किन्तु रागादिक मैं नहीं हूँ। मैं तो एक ज्ञानमात्र आत्मतत्व हू। इस ज्ञानमात्र आत्मतत्व का जब नयो से हल न हो सका तो एक-एक एकान्त दर्शन बन गया। सब प्रकार से देखने पर आत्मतत्व का सही ज्ञान हो सकता है कि मैं आत्मतत्व यह हूँ, निज उपादान वाला हूँ, किन्तु माने यह कि मै अमुक के कारण सुखी हूँ तो इसी को कहते हैं निमित्तदृष्टि और जो दृष्टि अपने आपके लिए अपनी जुम्मेदारी लिए हुए होती है इसी को कहते हैं उपादान की दृष्टि ।

एक पुस्तक है, उसमे एक गधे की कहानी लिखी है। मैंने बचपन मे ही उसे पढा था। अब चाहे दूसरा एडीशन तैयार हुआ हो या नहीं, उस कहानी की पुस्तक मे बहुत सी शिक्षाये थीं। एक उपकहानी

यह है कि एक धोबी के पास एक गधा था और एक कुतिया थी। कुतिया के बच्चे २०, २५ दिन के हो गए। धोबी कुतिया के बच्चो को उठा भी लेता था, प्यार भी करता था। वे पिल्ले अपने पजे मारकर धोबी को प्रसन्न करते थे। कभी मुह मे धोबी के हाथ पैरो को भर लेते थे। वह धोबी उस कुतिया के बच्चो से बहुत प्यार करता था। गधे ने यह देखा कि धोबी कुतिया के बच्चो से तो प्यार करता है जो बिल्कुल काम नही करते है और हम तो बहुत काम करते है फिर भी हमसे प्यार नही करता है। उसने इस बात को सोचा कि आखिर हमसे प्यार क्यो नही करता है ? सोचा तो गधे ने समझ लिया कि पिल्ले धोबी को लाते मारते है और दातो से काटते है इस वजह से वह उनसे प्यार करता है। चलो ऐसा हम भी करते है तो हमसे भी मालिक प्यार करेगा। गधा अपने स्थान से चला और धोबी के पास पहुच गया। सोचा कि लाते मारे तो शायद मालिक खुश होगा सो यह सोचकर खूब लाते मारने लगा, खूब दातो से चबाने लगा। अब धोबी ने डडा उठाया और पीटना शुरू किया। उस गधे ने सोचा कि अरे पिल्ले तो जब लाते मारते है तब प्यार करता है और हम जब लाते मारते है तब हमे पीटता है।

तो भाई सबकी बाते न्यारी-न्यारी है, उपादान न्यारे-न्यारे है। कोई जीव किसी तरह की पीड़ाओ मे रहकर शात हो सकता है तो कोई अशान्त हो सकता है। इसकी परख बाहरी बातो मे नही होती, भीतर तत्व मे होती है। ऐसा उपादान तत्व अगर समझ मे आ गया तो सब कुछ ठीक है और जिसकी समझ मे न आया तो मोह होगा। जैसे कोई नाव से नदी मे जावे, कभी इस दिशा मे कभी उस दिशा मे तो लक्ष्य बिना भटकता ही रहता है। उसी तरह इस जगत के जीव, जिनका कोई शुद्ध लक्ष्य नहीं है वे भटकते ही रहेगे। इतना धन चाहिए, इतनी इज्जत चाहिए, बाल- बच्चे चाहिये। अरे ये सब क्या हैं? वे भी बूढ़े होगे और मरेगे। क्या ज्ञानस्वरूप यह आत्मा यहा से निकलकर नहीं जायगा ? यहा कौनसी चीज सारभूत है, जिसमे गड़े हुए है। सारी चीजे छोड़कर जाना पड़ेगा, यहा कुछ रहता नहीं है।

एक सेठ था, उसके चार लड़के थे। अपनी चाबी किसी को वह सेठ देता नहीं था। अपने पेट मे चाबी को बाधकर वह सेठ रखता था। किसी बच्चे पर वह विश्वास नही करता था। सेठ जब खत्म होने लगा, गुजरने लगा तो बच्चो से बोला बच्चो ! लो चाबी ले लो ? बच्चे कहते है कि नही पिता जी, चाबी हमे नहीं चाहिए, आप अपने साथ मे लेते जाइए।

शाति का मार्ग प्राप्त कर ले, ऐसी कोई चीज दुनिया मे है क्या ? बाहरी बात कुछ भी हो उसमे तो असतोष न करो। अरे भोजन करते है तो पूछते है कि क्या बना दे ? तब पुरुष उत्तर देता है कि कुछ भी बना दो। उड़द की दाल बनाओ, चाहे मूग की बनाओ, चाहे मसूर की बनाओ, चाहे चने की बनाओ, चाहे अरहर की बनाओ, जो होगा सो खा लेगे।

भाई ! जैसे खाने मे सतोष है उसी तरह यदि बाहरी व्यवस्थाओ से सतोष हो तो ठीक है। सतोष तो अत मे सब करते ही हैं। कोई गुजर जाता है तो कहते हैं कि इतनी ही अवस्था थी। यदि भेदज्ञान से सतोष करे तो लाभ है। ४-६ हजार का टोटा पड़ जाय तो वहा यो सतोष करते हैं कि हमने तो

किसी से कर्जा लिया था सो चुक गया। अरे धन आए तो क्या न आए तो क्या ? वह सब तो सर्वथा भिन्न है। इस भेदज्ञान से ही सतोष करे तो ठीक है। उसमे भेद तो रहता है, जबरदस्ती में क्या है ? भैया ! बात तो भेदविज्ञान की ही एक पक्की है और वही रोज-रोज चल रही है। अब कुछ भाइयो की मर्जी है कि भक्तामर स्तोत्र का अर्थ एक हफ्ता चले। ठीक है, चलेगा, किन्तु भैया, बात पक्की भेदज्ञान की ही है। एक कथा याद आ गयी।

एक रगरेज था। बहुत बढ़िया पगड़ी रगता था। आसमानी, लाल रग की पगड़ी रगना बहुत बढ़िया जानता था। कोई उससे आकर बोलता कि हमारी पगड़ी हरी रग दो, कोई बोलता कि सुनहरी रग दो इत्यादि। रगरेज सब पगड़ी रख लेता है और कहता है कि अच्छी रग तो देगे, किन्तु रग आसमानी ही ठीक खिलेगा। सो भाई कुछ भी पढ़ लो आनन्द तो भेद विज्ञान से ही मिलेगा। चमत्कार तो तभी बनेगा जब ज्ञानस्वभाव के विकास की पूजी हो। सो मैं अपने आप मे स्वय निधि रूप हूँ, ज्ञानानन्द घन हूँ अथवा शरण हूँ। अगर यह समझ मे आ जाए तो मेरा भविष्य सफल है।

अन्यथानुपपत्ते स्याद्रागादे. कर्म कर्तृ हि।
तत्कर्मव्याहतिर्ज्ञप्तौ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-२६।।

अर्थ– अन्यथा अर्थात् अभाव में न होने से कर्म (क्रिया) रागादि का कर्त्ता होओ परन्तु निश्चय से निज क्रिया जो ज्ञप्ति है उसमें उस क्रिया का अभाव है इसलिये मैं ज्ञप्ति मान इस अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

ऐसी दृष्टि बनाकर कि कोई समय आयगा जबकि यह मै आत्मा इस शरीर से न्यारा होकर चला जाऊगा । उस शरीर की क्या स्थिति होगी ? मिल जुलकर यह मित्र मण्डल इसे खाक कर देगा। इस शरीर से जीव निकला उस समय क्या स्थिति होगी ? ज्ञान ज्योतिमात्र यह आत्मा इस स्थूल शरीर से रहित होगी । उस समय तो यह शरीर छूट गया, दूसरा शरीर मिला नहीं तो जो बीच के क्षण हैं वे क्षण किस प्रकार के होवेगे ? एक ज्ञानानन्दघन का पिड जैसा उस समय मे परिणमता है वैसा ही परिणमता हुआ होऊगा। एक भावस्वरूप पदार्थ होऊगा। ऐसा भाव पदार्थ रूप मै शरीर मे हूँ, अव भी हूँ, दूसरे शरीर मे जब जाऊगा तब भी मै भावस्वरूप पदार्थ ही रहूँगा। शरीर मे रहकर भी मैं शरीर से न्यारा हूँ। मुझमें जो परिणमन तत्व है वह भी चितूस्वभाव मात्र मुझसे न्यारा ही स्वरूप रूप रहेगा। उन परिणम तत्वो की याने रागद्वेष की छाया न हो, शुद्ध ज्ञानमात्र सवसे न्यारा मैं होऊ।

ये रागादिक ऐसे कैसे हो गए हैं ? मुझमे स्वभाव से ही ये रागादिक नहीं हैं। मेरा स्वभाव तो रागादिक करने का नहीं, केवल जानन का है। जैसे पानी का स्वभाव वहने का है याने द्रवता का है, पर ठडा होने व गर्म होने का नहीं है। ठडा करने से पानी ठडा हो जाता है और गर्म करने से पानी गर्म हो जाता है। पर पानी सर्वत्र द्रव ही है, वहने वाला है। पानी अपने स्वभाव से न तो गर्म ही होगा और न ठडा ही होगा। पानी तो कूलर या ठडा करने वाली मशीन से ठण्डा होगा और अग्नि के द्वारा गर्म होगा। ऐसी स्थिति में भी पानी द्रव है, वहने वाला है। इसी तरह यह आत्मा चाहे क्रोध परिणमन में रहे, चाहे

लोभपरिणमन मे रहे, चाहे विषयकषाय रूप परिणमता रहे, पर अपने ज्ञानस्वभाव को नहीं छोड़ता। केवल जानने के स्वभाव मे रहता है। इसी कारण विषयकषाय यद्यपि आ जाते है तो भी जानन रहता है। तो जानने वाला नहीं है उसमे विषयकषाय के परिणमन नही आते। ये विषयकषाय मेरे स्वभाव से नही आ रहे है बल्कि उपाधि पाकर आ रहे है। क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि हो जाते है तो उनका भी करने वाला मै नही हूँ।

जैसे एक दर्पण सामने है। दर्पण का स्वभाव तो केवल स्वच्छता है, केवल झलक है, झिलमिलाते रहने का स्वभाव है। अपनी चमक बनी रहे यही उसका काम है। जो चीज सामने लाकर रखो तो उसकी छाया दर्पण मे सही-सही पड़ती है। दर्पण मे ही प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। अगर मुक्का बनाओ तो मुक्का ही दर्पण मे दिखाई देगा। इसी तरह होठ तो होठो का प्रतिबिम्ब भी सामने आ जायगा। आखे तिरछी बनाओ तो आखो का प्रतिबिम्ब सामने आयगा। दर्पण क्या करे ?

इसी तरह क्या तेरी आधीनता की बात है कि क्रोध कर ले, मद कर ले। मै अपनी आधीनता से यह कुछ नही कर पाता हूँ किन्तु जैसी उपाधि सामने आती है वैसा कर डालते है। इसी तरह दर्पण का परिणमन केवल शुद्ध स्वच्छ है। आत्मा के परिणमन मे राग द्वेष नही, विषयकषाय नही केवल शुद्ध, स्वच्छ एव ज्ञानस्वरूप है। हे आत्मन्! मलीन बंनने का तेरा काम है क्या ? आत्मा का उत्तर है कि मेरा काम नही। मेरा काम तो प्रभु की तरह शुद्ध ज्ञान मे परिणमते रहने का है, पर क्या करू ? जब यह उपाधि का उदय होता है तब खुद की अशुद्ध योग्यता मे यह मै परिणम जाता हू। अशुद्ध विकारमय, रागादिक, क्रोधादिक है तो मै इनको करता नही हूँ, इनके करने वाले तो कोई दूसरे ही है। इस बुद्धि से अपने को ज्ञानस्वरूप की ओर ले जाया जाता है, इसका कर्त्ता तो कर्म है, मैं तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही हू मै तो जाननस्वरूप हूँ। मेरे मे रागादिक भाव नही। विपरीत परिणमन मे बडी विचित्रताये हैं। उनका कर्त्ता कर्म है। प्रकृति कहो या कर्म कहो। जैन सिद्धान्त मे प्रकृति भी कहते हैं और कर्म भी कहते है। अपने को शुद्ध स्वभाव की ओर ले जाने वाली इस दृष्टि मे कितना आराम मिलता है? विषय कषाय होते है वे कर्म के उदय से होते हैं। यह मेरा काम नहीं है। मेरा काम तो ज्ञानस्वरूप मात्र होने का है, जानन का है। जिनमे मेरा अधिकार नहीं उन्हे मै अगीकार नहीं करता। ये रागादिक होते हैं होने दो, इन्हे होकर मिटने दो। इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नही। उन बाहरी विषयो का, वस्तुओ का, ज्ञान तो हो जाना मेरा काम है पर विकल्प मेरा काम नही। जब अपने को ज्ञानमात्र का अनुभव होगा तो ये रागादिक कर्म नष्ट हो जावेगे। सो मै ज्ञानमात्र अपने स्वरूप को देखू और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

जागृति शयन पानमत्तिर्वाग्दर्शन श्रुति।
ज्ञप्तिक्रियस्य किंकृत्य स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-२७।।

अर्थ– ज्ञप्ति ही है क्रिया जिसकी ऐसे मुझ आत्मा के जागरण शयन पान भोजन वचन दर्शन श्रवण आदि क्या कृत्य हैं ? नहीं तब, फिर मैं तो अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

कहते हैं कि मेरा काम तो जानन है, मैं कितना क्या हू, अपने को देखने से ही पता पड़ेगा, मैं तो जानन मात्र हूँ। ये विकल्प की तरगे उपाधि के कारण आती हैं। मेरा काम विकल्प करना नहीं है। जगत के जीव तो विकल्पो के कारण है उनसे मेरा क्या ताल्लुक है। मै तो ज्ञानमात्र हूँ जानन मात्र रहना ही मेरा काम है। बिगड़ रहे है। ये रागादिक उठते है तो उठे। उनसे मेरा क्या काम है, जानन ही मेरा काम है। मुझ आत्मा मे न जागरण है। न सोना है, न वचन बोलना है, न खाना है, न पीना है। मेरा काम तो यह है कि मै जानन मात्र हूँ, ज्ञातादृष्टा हूँ। कर्त्ता भोक्तापन की ख्याति तो दड के लिए है। उसका चाव करना तो विपत्ति है।

जैसे कभी स्कूल मे बच्चे से कोई काम बिगड़ जाय तो उस बिगाड़ने वाले बच्चे का पता लगाने के लिए मास्टर उस काम की प्रशसा करता है। मास्टर यह कहता है कि वाह यह तो बड़ा अच्छा काम किया है, बडी बुद्धिमानी का काम किया है। इतना सुनते ही जिस बच्चे ने काम बिगाड़ दिया है वह झट कह देगा कि मास्टर साहव मैने यह काम किया है। मास्टर तो केवल यह जानना चाहता था कि किस लडके ने काम बिगाडा, इसलिए प्रशसा करता था पर बच्चो ने समझ लिया कि मेरी तारीफ मास्टर कर रहा है, सो भ्रम मे आकर बच्चा अपराधी हो जाता है।

इसी तरह से जगत् के जीव मास्टर बने रहते हैं, प्रशसा दूसरो की किया करते है। जैसे वाह, यह तो बडी बुद्धिमानी का काम है, यह तो बड़ा ही सुन्दर काम है, यह भी बड़ा ही सुन्दर काम है आदि। यह पता नहीं है कि प्रशसा के फल मे मेरे को विपदा ही आवेगी। बाल बच्चो को पढ़ा लिखा दिया। अरे उन बच्चो के जीवनभर दास बने रहे, उनकी सेवा की, उनको खिलाया पिलाया, उनका क्या किया? अरे वे तो स्वय ज्ञानमात्र आत्मतत्व है। केवल जानन ही उनका काम है। जगत के दस बीस हजार आदमियो के बीच मे जरा अच्छा सुन लिया तो क्या इज्जत बढ़ गयी ? यदि यहा न रहते, अन्यत्र कहीं रहते तो यह समागम मेरे को क्या था? अगर कहीं कीड़े-मकोडे होते, पेड़ वनस्पति होते या अन्य किसी पर्याय होते तो इस ढग का ख्याल भी आता ? अरे मनुष्य हो गये तो अपने को समझो कि अपने कार्यके लिए पैदा हुए हैं। हम दूसरो की दिखावट के लिए बनावट के लिए तथा सजावट के लिए नहीं पैदा है। हम कहीं अन्यत्र पैदा हो गए हो तो ऐसा तो नहीं है। यह मै किसी भी क्षण अपने विकल्पोको छोड़कर अगर काम करू तो अपने आप मे आनन्दमग्न हो सकता हूँ। यदि मैं विकल्परहित होकर कार्य करता हूँ तो ठीक है, नहीं तो सब दुर्दशा हो जायगी। इस जगत् में कोई किसी का मोह करता, कोई किसी का मोह करता पर मोही प्राय सभी है। इसी कारण दु खी भी सभी है। देखो थोड़ा ही ज्ञान हो, पर सही ज्ञान हो तो ठीक है। पर हो तो वहुत ज्ञान किन्तु आत्मा में विवेक न हो तो ठीक नहीं है। उल्टा ज्ञान हो तो विकार है। थोड़ा ज्ञान हो, पर सही ज्ञान हो तो सबसे न्यारा, ज्ञानमात्र अपने आपमे समझ रहती है। वहुत से शास्त्रो का ज्ञान हो, तीन लोक की रचनाओ का ज्ञान हो, बहुत ज्ञान हो पर विचार उल्टा हो, विवेक साथ न हो तो सही ज्ञान नहीं है।

एक बुढ़िया के दो लडके थे। दुर्भाग्य से उन दोनों लडकों की आखों में रोग था। एक को कुछ

कम दीखता था और एक को ज्यादा दीखता था पर पीला दीखता था। दोनो बच्चो को बुढ़िया वैद्य के पास ले गयी। वैद्य ने दोनो की एक ही दवा की। कोई सफेद सफेद भस्म सी थी। कहा कि चादीके गिलास मे गाय के दूध मे इस पुड़िया को इतनी-इतनी खुराक दवा मिला कर देना। दोनो ही ठीक हो जावेगे। बुढ़िया दवा लेकर गयी। दोनो को चादी के गिलास मे गाय के दूध मे भस्म हो डालकर देने लगी। पहले उस लड़के को दिया जिसको पीला दीखता था। लड़के ने कहा– मा, 'क्या हम ही तुम्हारे दुश्मन है? इस पीतल के गिलास मे जहर डालकर हमे दे रही हो। हम तो नहीं पीवेगे। अब उस लड़के को दिया जिसे कम दीखता था। उसने देखा कि चादी का गिलास है, दूध है, भस्म पड़ी हुई है। उसने उस दवा को पी लिया। उस दवा के पी लेने से ही आखो का रोग दूर हो गया। जो ज्यादा देखता था, ५० हाथ, १०० हाथ दूर तक देखता था, उसकी उल्टी दृष्टि थी इसलिए दवा नहीं पी और उसका भला नहीं हुआ।

जिसका ज्ञान ज्यादा है मगर प्रयोग व उपयोग उल्टा है तो भला नही होगा। मेरा भला तो निजी आत्मा के अनुभव से होता है। जो सही ज्ञान है, जो ज्ञान ज्यादा है पर सही नही है तो उससे भला नहीं हो सकेगा। जिसकी अपनी दृष्टि होती है, अपने चरित्ररूप परिणमन की दृष्टि होती है वह ही दृष्टि सही मानी जाती है। ज्ञानी पुरुष यह सोचता है कि जानन ही मेरा काम है। सोने, उठने, बोलने इत्यादि का मेरा काम नही है। ये मेरा काम सर्वत्र जानन ही जानन है। केवल जानन ही इस मुझ आत्मा का काम है। मै करूगा क्या ? अरे इस आत्मस्वरूप को उपयोग मे घोल लो। इसको देख लो । देखोगे कि यह आत्मा तो केवल जानन का ही काम कर रहा है। जानन सबमे रहता है। केवल जानन ही मेरा काम है। मै सब ओर से जानता हूँ। सर्वत्र ऐसी ही पद्धति जाननस्वरूप की है।

ससुराल जाने वाली बहुत सी लडकिया हसी-खुशी से जाती हैं। मगर रोना पड़ता है। भीतर से तो यह होता है कि घर ठीक करना है, श्रृगार करना है, यह करना है, वह करना है, कुछ खुशी होती है। मगर यह जानती है कि रोना चाहिए, यही ठीक है। इसी तरह दुकानदार का मुनीम ग्राहको से ये बात करता है कि तुम पर मेरा इतना दाम गया है। इस तरह मेरा भी कह रहा है परन्तु श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नही है, यह सब सेठ का है। अरे मेरा यह काम नही, मेरी यह ड्यूटी नही। यह तो सेठ का काम है। और भी देखो विवाह इत्यादि मे पड़ौस की स्त्रिया बाजा बजानेके लिए आ जाती हैं। गाने गाती है, मेरे बना सरदार, राम जैसी जोड़ी आदि सो तो ठीक है। अगर कहीं दूल्हा की घोड़े से गिरकर टाग टूट जाय तो उनको कोई दर्द नही होगा और अगर मा को पता लग जाय तो वह कितना दु ख करती है ? उसके दु ख का ठिकाना नही रहता है।

सो भैया अगर परपदार्थो को मान ले कि मेरे है तो तो दु ख होगा और अगर यह समझ मे आ जाय कि मेरे नही हैं तो दु ख न होगा। मेरा काम केवल जाननमात्र है। ऐसे जाननमात्र स्वरूप वाले आत्मा का काम ही केवल जानन है। हे प्रभो, मैं जानन के काम में ही सतोष पाऊ और अपने में अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

सकल्पेऽजनि संसारो ज्ञाने नश्यति कल्पित.।
निर्विकल्पे रतो भूत्वा स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-२८।।

अर्थ- सकल्प में ही ससार पैदा हुआ और कल्पित वह संसार, ज्ञान होते ही नष्ट हो जाता है इसलिये निर्विकल्प स्वरूप ज्ञान में रत होकर मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ।

अहा हा, यह सारी दुनिया, यह मेरा सारा ससार सकल्प मे ही उत्पन्न हो गया व कल्पना मिटते ही नष्ट हो गया। यह मेरा है क्या ? ससार केवल कल्पनाओ रूप ही बना हुआ है। कल्पनाओ से ही यह उत्पन्न हुआ और यहा से मरकर अकेले ही चला जायगा। मैं इस शरीर मे हूँ यह मेरा है, यह उसका है, इस सकल्प मे ही मै ससारी बन गया हूँ। केवल सकल्प ही हो गए है। यह मेरा मकान है, यह मेरा परिवार है आदि। जब ये जुदा हो जावे तो फिर दुनिया भर को पता चल जाय। ज्ञानस्वरूप आत्मा इस देह से निकल जाता है। यह तो सबसे न्यारा है, पर महसूस करता है कि मेरा है, यही तो सकल्प है। यह सारा ससार सकल्पो मे ही बैठा हुआ है। अरे सारे सस्कार ज्ञान होने से ही नष्ट हो जावेगे।

एक बुढ़िया का छोटा बेटा मर गया। उसी छोटे बेटे को वह सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छोटा पुत्र मर गया तो वह बुढ़िया उसे जलाने नही देती। उसको अपनी छाती से लगाए रही। उस बुढिया को एक जगह साधु मिला। साधु से बुढ़िया ने बताया कि महाराज मेरा पुत्र मर गया है, जिन्दा कर दीजिए। साधु बोला कि अच्छा जिन्दा हो जायगा । मगर एक काम यह करो कि जिस घर मे कोई मरा न हो उस घर से पाव भर सरसो के दाने ले आवो। बुढिया जल्दी से जल्दी दूसरे घर गयी। बोली कि हमे एक पाव सरसोके दाने दे दो। घर वाले बोले, हा हा एक पाव नही ५ सेर ले लो। बुढ़िया ने पूछा,मगर यह तो बताओ कि इस घरमे कोई मरा तो नहीं है। घर वाले बोले कि मा इस घरमे तो बहुत लोग मर गए। दादा मर गए, भाई मर गया, बहिन मर गयी आदि। बुढ़िया बोली, तो हमे यह सरसो नहीं चाहिए। अव बुढ़िया तीसरे घर गयी बोली, एक पाव सरसो चाहिए। घर वाले बोले हा हा १० सेर ले जाओ। बुढिया वोली, मगर यह तो बताओ कि कोई इस घरमे मरा तो नहीं है। वे बोले, अरे यहा तो वहुत मर गए हैं। इसी तरह से बुढिया ने १०-२० घर ढूढ़ लिए। सभी जगह वही एक उत्तर मिला।

इतना पूछने के बाद उसके ज्ञान जगा कि अरे सारी दुनिया मे यही हाल है। इतना ज्ञान जब बुढ़िया के जग गया तो वह प्रसन्न हो गयी। वह बोली, कि अरे ये तो सब न्यारे-न्यारे पदार्थ है, न्यारे के वियोग होने का क्या विषाद करना ? बुढ़िया प्रसन्न चित्त होकर साधु के पास गयी और साधु को नमस्कार किया। साधुने पूछा, मा। तुम प्रसन्न दीखती हो, क्या तुम्हारा वच्चा जिन्दा हो गया ? बुढ़िया ने उत्तर दिया कि हा हमारा वच्चा जिन्दा हो गया वात क्या हुई, आपको सुनाया था पहले कि सारी बातो मे तीन प्रकार हुआ करते हैं- (१) शब्द,(२) अर्थ, (३) ज्ञान। जैसे पुत्र तीन है-शब्दपुत्र, अर्थपुत्र और ज्ञानपुत्र । अगर शब्दपुत्र कहो तो वह यह है जो केवल पुत्र शब्द लिखा हुआ है। अर्थपुत्र वह है जो दो हाथ पैर वाला है। घर में वेठा हो या कहीं हो और जो पुत्र के वारे मे ज्ञान होता है वह ज्ञानपुत्र है। तो हुआ

क्या कि बुढ़िया का पहले ज्ञानपुत्र मरा था और अब वह जिन्दा हो गया। साधु से बुढ़िया बोली कि मेरा तो ज्ञानपुत्र था, ज्ञानपुत्र की ही मृत्यु हो गयी। वह अब जिन्दा हो गया है। वह तो मेरे अपने आपमे है, वह जीवित हो गया है। सो भाई इस सारे विश्व मे मेरा कुछ नही है। यह बात सत्य मानो, नहीं तो धोखा ही धोखा है। जगत की व्यवस्था यह है कि कोई किसी की चीज बनकर नही रहती और न छुड़ाई जा सकती है। तब सोच लो कि बाहर मे मेरा कही कुछ नही है। इतना सोच लेने से ही क्या बिगाड़ हो जायगा? जैसे बुढ़िया को ज्ञान आ गया कि ये मेरा ज्ञानपुत्र है वह सावधान हो गयी। सो बोली महाराज मेरा ज्ञान पुत्र जिन्दा हो गया है। मै भी ठीक हूँ, मेरा ठीक करने वाला जगत मे अन्य नही है। यह ध्यान अपने आपमे रखना चाहिए कि मेरा मात्र मै ही हूँ। ये जगत के सारे पदार्थ हमसे छूट जावेगे, मेरा कोई इस जगत मे नही है। यह मै सदा ज्ञानमात्र स्वत परिपूर्ण हू। मै जैसा हू तैसा ही हूँ। इस प्रकार सच्ची दृष्टि के बल से मै अपने आपमे अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभवूँ और सहज सत्य आनन्द से ओतप्रोत होऊ।

परायत्ता परार्था स्वायत्त ज्ञानस्य वेदनम्।
पराप्तये न धावानि स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-२६।।

अर्थ– पर पदार्थ उन्हीं पर के अधीन हैं ज्ञान का वेदन स्व के अधीन है इसलिए मैं परपदार्थ की प्राप्ति के लिये नहीं दौड़ू और अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊ।

अपने आपको छोड़कर बाकी जगत के जितने भी पदार्थ है वे पदार्थ क्या आपके आधीन है? वे आपके आधीन नही है। वे स्वय सत् है, उनके चतुष्टय मे उनका परिणमन होता रहता है। वे तो आपके आधीन हो ही नही सकते है। यदि कुछ आपकी इच्छा के अनुकूल हो गया तो वह काकतालीय न्याय है।

जैसे कोई नारियल का ऊचा पेड है, नारियल लगे हुए हैं। पथिक ग्रहण करना चाहता है तोड़ने का साधन नही है। इतने मे एक कौवा नारियल के पेड़ पर से उड़ता है। उसके उड़ते समय ही नारियल नीचे गिर पड़ा तो वह ऐसा सोचता है कि कौवे ने नारियल को गिराया। अरे वह तो अपने आपसे गिर गया है। कौवे के गिराने से नही गिरा है। एक दफा अगर ऐसा समय आ गया तो बार-बार नहीं आता है। कोई कभी आपके माफिक काम बन गया, आपके मित्रजन आपके अनुकूल हो गए, आपके परिवार के लोग आपके अनुकूल हो गए, ऐसी बात तो शायद ही कभी हो जाय, नहीं तो सर्वथा आपके अनुकूल कुछ नहीं होगा। देखो भाई उस नारियल के गिर जाने मे क्या कौवे की करतूत थी ? नहीं, वह तो स्वय ही गिरा था। मगर लोग कहते है कि कौवे के चले जाने से गिरा। सो भाई परपदार्थ स्वय परिणमते है। जितने भी परपदार्थ है, वे किसी दूसरे के आधीन नही, बल्कि स्वय ही अपने आधीन हैं। बडो-बडो के भी ऐसा नहीं हो पाता कि जैसे वे चाहे वैसा अन्यत्र परिणमन हो जावे।

जिन लड़को बच्चो से तुम प्रेम करते हो, वे आज्ञाकारी भी हैं, फिर भी वे अपने विषयकषायो

को लिए रहते है। वे अपने स्वार्थ के लिए आज्ञाकारी बने हुए है। वे मेरे आधीन नहीं है। भाई कोई किसी के आधीन नही है। वे स्वय ही परिणमते रहते है। मेरे आधीन मेरा ज्ञानस्वरूप है। मै अपने ज्ञानस्वरूप को जानू तो मेरी रुकावट करने वाला कोई नहीं है। हम ही स्वय विषयकषायो मे पड़कर अपने ज्ञान मे रुकावट पैदा करते है। बाहरी पदार्थो मे पडने से ज्ञान की रुकावट होती है। कभी किसी चीज की इच्छा हो जावे कि अमुक चीज खा ले, अमुक चीज खा ले। न जाने कौन विघ्न आ जाये कि वह चीज कही न मिले। भाई परपदार्थो के सयोग मे नाना विघ्न होते है।

भैया ! मेरे काम मे दूसरे पदार्थ कोई बाधा नही डाल सकते है। हम स्वय अपने कामो मे बाधा डाल लेते है। जैसे बाय वाला पुरुष खुद ही खटिया से उठकर बाहर को भागता है। इसी तरह विषयकषायो की वेदना से हटकर बाह्य मे भागते है। बाह्य के उपयोग से ही विषयकषाय बन गए और दूसरी बात नहीं है। अरे तू तो अत्यन्त स्वाधीन है। तू अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव तो कर। लोक के व्यवहार की सारी वाते पराधीन है। तू अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव तो कर। लोक के व्यवहार की सारी बाते पराधीन हैं। स्वाधीन तो केवल अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव है। लेकिन देखो जो स्वाधीन बात है, सरल बात है, निर्विकल्प बात है उसकी ओर तो दृष्टि ही नही जाती। जो पराधीन है, दुर्गम है, जिनमे विघ्न ही भरे होते है, ऐसे बाह्य पदार्थो के सयोग के लिए कमर कसे है ? भैया ! अपने को ज्ञानानन्दमय स्वय सर्ववैभव सम्पन्न समझकर बाह्यपदार्थो को उपयोग मे न लाकर अपने आप मे ही विश्राम पाकर अपनेमे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

राज्ये क्लेश क्षण यत्न भिक्षा वृत्तौ तु तत्त्वत ।
तत्वं हि नोभयत्रास्ति स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-३०।।

अर्थ– राज्य में महान् क्लेश है और भिक्षावृत्ति में क्षणमात्र का प्रयत्न है परन्तु वास्तव में तत्व दोनों जगह नहीं है अत मैं तो अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

देखो राज्य मे महान् क्लेश है। राज्य का मतलब केवल राज्य से न लो। राज्य का मतलब दुकानसे, व्यापार से, आजीविका इत्यादि से है। ये सव बाहरी बाते है। इनमे पड़ने से क्लेश ही क्लेश है। भाई करोडो रुपयो का धन एकत्रित कर ले तो उससे भी क्लेश ही कलेश हैं। धन कमाने मे, रोजगार करने मे, राज्य करने मे हुकूमत करने मे देखो कितने क्लेश हैं। अनन्त क्लेश उन्हे हो जाया करते है। अव योगी सन्यासियो भिक्षावृत्ति वालों को देखो, कोई पुरुष ज्ञान उत्पन्न करके अन्तर से विरक्त हो जाय, अपने ध्यान मे लीन हो जाय, वह योगी सन्यासी है। उसे कभी क्षुधा लगे तो उन्हे क्लेश नहीं होते । क्योकि जव भूख लगे तव वह वच्चो की भाति एषणाको निकलता है। वह किसी गाव मे निकल जाय, यदि कोई आदर से बुलाए, कुछ खाने को मिल जाय तो खाले, नही तो सतोष करे, यही भिक्षावृत्ति कहलाती है। भिक्षावृत्ति में केवल क्षणमात्र का यत्न है। फिर भी तत्व तो इन दोनो मे भी नहीं है।

बड़े बडे राजा महाराजा २४ घण्टे क्लेश ही उठाया करते हैं पर एक सन्यासी मुश्किल से पौन घंटे में ही अपना काम कर लेता है। उसे कोई क्लेश नहीं होते हैं। ऐसा काम तो वे ही कर सकते है

जिनके पास हिम्मत है। आहार मिले तो ठीक है और न मिले तो ठीक है। दोनो मे राजी होवे तो काम चलेगा नही तो नही चलेगा। भाई भिक्षावृत्ति से तो क्लेश नही होगे पर बड़े बड़े धन वैभव के होने पर क्लेश ही रहेगे। परन्तु परमार्थ से शाति न तो भिक्षावृत्ति मे है और न धन वैभव से है वरन् अपने-अपने ज्ञानस्वरूप के दर्शन मे है। भाई जब ज्ञान का अनुभव हो तभी स्वाधीनता है। जब इच्छा हो तब ज्ञान का अनुभव कर लो। ये प्रत्येक पदार्थ अगर तुम्हारे सयोग मे है तो यह पराधीनता है। मै किसी भी धन वैभव, परिवार इत्यादि के साथ न रहूँगा, क्योकि ये सब मिट जावेगे। आज न तो राम ही दिखते है, न तीर्थकर ही दिखते है, और न कृष्ण ही दिखते है। जो महान् पुरुष अभी १००-२०० वर्ष पहिले पैदा हुए थे वे भी नहीं दिखते है, ऐसी ही जगत की स्थिति है।

भैया ! देखो जो इस समागम मे रहते है, समागम मे ही मस्त है, उन्हे यह खबर नही रहती कि इससे क्लेश होगे। इन समागमो से अचानक वियोग ही होता है। इन समागमो से ही बड़े-बड़े क्लेश उत्पन्न कर लेते है। ये सब पदार्थ जुदा-जुदा है, उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नही है, कुछ भी तो गुजाइश नहीं कि कोई परपदार्थ मेरा हो जावे, मै तो जाननस्वरूप हूँ। जितनी भी चीज है वे सब अपने धर्म मे है। मेरा किसी भी पदार्थ से सम्बन्ध नहीं है। यदि मेरा उपयोग बाह्य मे होगा तो मुझे सुख नही होगा। देखो भैया ! यदि इन समागमो के बारे मे यह विश्वास हो जाय कि इनका वियोग होगा तो उनके वियोग से दु ख न होगा। जैसे कोई मित्र ऐसा हो कि जिसके प्रति यह ख्याल आ जाय कि यह तो धोखा देने वाला है। ऐसा ख्याल उसका पहिले से ही बन गया है। यदि वह मित्र उसे धोखा दे देवे तो उसे ज्यादा दुःख नही होगा! क्योंकि पहले से ही मालूम था और जिसके प्रति कोई शका नही वह अचानक ही धोखा दे देवे तो उसे बहुत क्लेश होगा। बाहरी पदार्थो का जो समागम है वह भिन्न है, अहित है, विनाशक है ऐसा जाने तो क्लेश न होगा। वस्तुत मै तो केवल अपने आत्मा के अन्दर स्थित तत्व को जानता हू। सो मै ज्ञानमात्र का अनुभव करके स्वय सुखी होऊ।

देखो यह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान से ही इसकी रक्षा होती है। सहजस्वरूप आनन्द ही इसमे भरा हुआ है। इसमे कोई अधूरापन नही है। ज्ञान का नाम ही आत्मा है। आनन्दमय ही यह आत्मा है। कोई पिडरूप चीज तो मै नही हूँ, जो पकड़कर दिखाया जा सके। भैया ! जो मेरा स्वरूप है वह जानन है। इसी के मायने आत्मा है। ज्ञानमात्र भाव को छोड़कर अगर हम बाह्य मे झुके तो दु ख ही मिलेगे। हम तो बिल्कुल ठीक है, हमारेमे कोई कमी नहीं है! मामला बिल्कुल तैयार है। खाना बिल्कुल तैयार है, खाओ चाहे न खाओ, यह तुम्हारे विवेक की बात है। सारा मामला तैयार है, मगर तुम इस अपने आत्मस्वरूप को नही देखते हो। अरे ये बाह्यपदार्थ जो मेरे कुछ नहीं है, जिनसे मेरा ताल्लुक नही है, अपने स्वरूप को न देखकर उन बाह्य मे दृष्टि लगने से बरबादी ही बरबादी है। उन्ही की ओर झुकना यह अपने प्रभु पर न्याय है। अगर अपने स्वरूपको देखना चाहो तो देखो और अगर न देखना चाहते हो तो न देखो, यह तुम्हारे विवेक की बात है। अधूरापन तो कुछ है नही। मामला तो पूर्ण अनादि से है।

परस्थिते. परं स्थानं पराभावो हि स्वस्थिते।
तत्वं तु नोभयत्रास्ति स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-३१।।

अर्थ– परपदार्थ में उपयोग द्वारा ठहरनेसे परस्थान प्राप्त होता है और निज में उपयोग ठहराने से पर का अभाव होता है परन्तु तत्व दोनों प्रयत्नों में नहीं है इसलिये उपयोग ठहराने के प्रयत्न को छोड़कर मैं अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊ।

जिस पदार्थ मे यह जीव अपना उपयोग देता है वही पदार्थ इसको मिल जाता है। कभी बैठे-बैठे अनुभव किया होगा कि कोई नींबू बड़ा हो एक आने का एक वाला, उसकी छोटी-छोटी फाके करो। ऐसा उपयोग मे सोचो और उसके स्वभाव की कल्पना करो तो नीबू की खटास गले मे उतरती है। जिसे कहते हैं कि मुह मे पानी आ जाता है। तो क्या आपने नींबू के रस का स्वाद लिया, इसलिए गले मे खटास आयी। नहीं, नींबू के प्रति ज्ञान किया, ध्यान किया तो उससे गले मे खटास आयी। बाहर मे से इस आत्मा को कुछ नहीं मिलता। स्वय मे ही कुछ मिलेगा, क्या मिलेगा ? जो सोचोगे वह मिलेगा। वह अपने ज्ञान की चीज है। पदार्थो मे लोग मान लेते है,परन्तु पदार्थो के उपयोग से कुछ नही मिलता है। केवल अपना ज्ञान परपदा. ।. के जानने मे लगता है। सो उसके लगाने से स्वयं मे ही कुछ मिलता है। मेरा आत्मा मे किसी चीजका प्रवेश नहीं है। परपदार्थो के उपयोग से तो परस्थान ही प्राप्त होता है और निज के उपयोग से परका अभाव होता है। इसने तो बाहरी पदार्थो को सोच लिया तो खुद का उपयोग नहीं रहेगा। अपने आपको यदि सोचो तो परिणाम अच्छा रहेगा। अब यह विवेक कर लो कि कहा उपयोग लगाना चाहिए? अगर इज्जत चाहोगे तो मोह मे फसे रहोगे। मोह मे फसने से पराधीन रहना पड़ेगा। पर मे लगने से देख लो लाभ है क्या ?

भैय्या ! परपदार्थों से कोई लाभ नहीं है। अरे समागम मे फसा रहा तो पराधीन होना पड़ेगा सब अपनी-अपनी भावनाओ से पर की आधीनता का विकल्प करके रहते। ये सब न जाने किस किस गतिसे आकर एक ही जगह पर इकट्ठा हो गए है। किसी दिन ये सब यहा से चले जावेगे। इस भव मे जिसने जन्म लिया है, क्या यहा कोई रह जावेगा ? नहीं, इस जगत् के प्राणी अपने अपने सत् से हैं, अपने आपमे ही परिणमते रहते हैं। उससे किसी भी पदार्थ का रचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। वे सब इस जगत् मे स्वय ही आये हैं और स्वय ही विमुक्त हो जावेंगे। देखो यह पर्याय ही मिटेगी। सत् तो शाश्वत् ही रहता, मगर उसे जानता बिरला ही कोई है। इस जगतमे कोई किसी गति से आया है, कोई किसी गति से आया है। कितना समय इन प्राणियों का यहा गुजर गया। इस ससार मे प्राणियो ने अपने विवेक को भुला दिया है। इस ससार के समागमों को अपना लिया है। अपने को समागम में ले जाने मे कोई विवेक नहीं है। इन सव समागमों से हटकर मैं अपने उपयोग को अपने ज्ञानमात्र, ज्ञायक स्वरूप मे लगाऊ, यही विवेक है। मैं निज जानन मे रमू, यही प्रभु का दर्शन है। अपने सत्य का आग्रह हो तो सत्य का दर्शन होगा ही।

देखो भाई ग्वाला सत्य का आग्रह लेकर बैठा था कि पहले मै भगवान को खिला दूगा, फिर बाद मे मै खाऊगा। इसलिए भगवान न सही तो किसी ने भी प्रत्यक्ष तो दर्शन दिए।

मै अगर सत्य का आग्रह करके रहूँ कि मेरा ज्ञानस्वरूप एक सत् पदार्थ है, मै ज्ञानमय हूँ, मेरा प्रभु मै ही हूँ, मेरा अन्य से कोई वास्ता नही है। मै यथार्थ रूप हूँ, नाना रूपो मे नही हूँ। मेरा काम तो केवल जानन का है, मै अपने ज्ञान तत्व मे रहता हूँ। ऐसा यदि सत्य का आग्रह होगा तो यहा बैठे ही अपने प्रभु का दर्शन होगा। अन्यथा अपने प्रभु के दर्शन होना असम्भव है। मै अपने को यह विश्वास न करू कि मै बाल बच्चो वाला हूँ, परिवार वाला हूँ, नष्ट हो जाने वाला हूँ, पराधीन हूँ। ऐसे विचार यदि होगे तो ये तो खोटे विचार है, खोटे परिणाम है, मोह है, मिथ्यात्व है। इस प्रकार का असत्य का आग्रह करने से अपने निज प्रभु का दर्शन नही हो पायगा। आजीवन क्लेश ही नजर आवेगे। इस प्रकार के यदि विचार रहे तो ससार मे रुलना ही पड़ेगा।

भाई ! अपना शुद्ध आग्रह करो तो भला होगा नही तो भला नहीं होगा। परपदार्थो का आग्रह करने पर अशाति प्राप्त होगी, अपने आत्मस्वरूप का अनुभव नहीं हो पायगा । अपने उपयोग मे लगने से ही भलाई है। मै अपने आपके स्वरूप मे ही अपना उपयोग ठहराने की कोशिश करू तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा नही होगा। जैसे कहते है ना कि वहा न जाओ, वहा पर क्लेश ही क्लेश है। ऐसे ही परपदार्थो मे न जाओ वहा विपदा ही विपदा है। तो मै आत्मा अपने आपके सत्य के आग्रह को ठहराने की कोशिश करू और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

मै सकल्प विकल्पो को दूर करू तो मेरा कल्याण होगा अन्यथा नहीं। जैसे कहते हैं ना कि कौवे के कोसने से ढोर नही मरते। जैसे कौवा मास खाना चाहता है तो कौवे के कोसने से क्या गाय मर जायगी? इसी प्रकार मेरे सोचने से क्या पर का वैसा परिणमन होगा? नहीं। सो मैं अपने को अपने उपयोग मे लगाने की कोशिश करू तो शाति प्राप्त हो सकती है। इस आत्मा मे किसी बाह्य चीज का प्रवेश नही। मेरा आत्मस्वरूप ही मेरी दृष्टि मे रहे जिससे मै अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

जनौघे वाड्मन कर्म चैकाग्र्यावसरोवने।
तत्व तु नोभयत्रास्ति स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-३२।।

अर्थ- मनुष्य के समूह होने पर वचन मन की प्रवृत्ति होती है व वन में एकाग्रता का अवसर होता है परन्तु तत्व दोनों स्थान में नहीं हैं इसलिए आवास के विकल्प को छोडकर अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊ।

मै कहा रहूँ तो सुख हो सकता है। इस प्रश्न के कितने ही उत्तर हो सकते हैं।

बहुत से मनुष्योंके बीच मे रहे, मित्रमडली के मध्य मे रहे, सब लोगो के अनुकूल अपने आपको बनाए रहे, उन सबसे मिल जुलकर रहे, सबकी वाणी सुने तो सुख मिलेगा, यह भी एक उत्तर हो सकता है। परन्तु यह उत्तर गलत है, सो स्पष्ट ही है। मनुष्योके मध्यमे रहने पर मन, वचन कार्य की चेष्टा

तो करेगा ही। जब बहुत से मनुष्यो के बीच मे है तो मनुष्यो से वचनो से बोलेगा ही मन से सोचेगा ही, शरीर से चेष्टाये करेगा ही, अन्यथा मनुष्यो के बीचमे रहने की वृत्ति बने ही क्यो? फिर कहा रहा जाय तो सुख हो सकता है। तब तो जगल मे ही रहा जाय, जहा पर कोई नहीं है, तब मन, वचन, कार्य की चेष्टाये न आवेगी। ध्यान को एकाग्रचित्त मे रखने का अपने को अवसर मिलेगा। उस वन मे भी रहकर क्या लाभ उठा सकेगा कोई ? जिसका उपयोग अपने स्वरूप मे नहीं लग सकता। वह बाहर मे बहुतसे विकल्प किया करेगा। यहा अमुक अमुक सुविधाये नहीं हैं। इसी तरह के कितने ही विकल्प बनाए जा सकते है। इस वन के बीच मे बैठे ही मित्रो का ख्याल कर, घर का ख्याल कर दु:खी रह सकते हैं।

जैसे एक कथानक आता है कि पुष्पडाल मुनि पूर्वमित्र श्री वारिषेण मुनि को आहार कराकर पहुचाने गए, वन तक पहुच गए। वहा मित्र जैसी वृत्ति बनाकर आत्मकल्याण का भाव हो गया। वे मुनि हो गए। साधु होते हुए भी पुष्पडाल के यह चिन्ता रही कि मेरी स्त्री (जो कानी थी) अब वह क्या कर रही होगी? वन के अन्दर रहकर भी विकल्प बनाया तो वन मे रहना किस काम का है ? तब फिर कहां रहा जाय? मनुष्यो के समुदाय मे रहते है तो वहा भी दु ख है और जगल मे रहते है तो वहा भी दु:ख है। तब फिर कहा रहा जाय तो सुख हो सकेगा। निज तत्व मे। अपने आनन्द की बात दोनो जगह नहीं मिलती। तब फिर आनन्द कहा मिले। आनन्द तो अपने आप मे मिलता है, अन्यत्र नहीं मिलता है। निर्जन स्थान मे रहना एक सहायक वातावरण है। निर्जन स्थान मे आत्मतत्व मिलता ही हो ऐसी बात नहीं है।

आत्मतत्व तो अपने ज्ञानस्वरूप मे मिलता है। तब मै कहा रहूँ तो सुख हो सकता है। भाई ! अपने ज्ञानस्वरूप को ही उपयोग मे लाऊ तो सुख हो सकता है। वह मेरा स्वरूप क्या है? वह स्वरूप क्या वह है जो कि मै मिट जाऊ ? कोई यह नहीं चाहता है कि मै मिट जाऊ जो मिट जाने वाला है वह मै नहीं हूँ। मै कही ले जाया जाऊ ऐसा किसी से बधा हुआ नहीं हूँ। मेरा मिटने का स्वभाव नहीं है। मैं वह हूँ कि कभी नष्ट नहीं हो सकता। मै कभी नष्ट नहीं हो सकता वह मै क्या हू? विचार कीजिए– क्या ये पर्याय जो अनेक द्रव्य कहलाते हैं वह मैं हू। पशु, पक्षी, जीव जन्तु, कीड़े मकौड़े, पेड़ पौधे इत्यादि क्या मैं हूँ? अरे यह भी मिट जाने वाले है। मैं मिट जाने वाला नहीं हूँ। तो अन्तरमे जो सूक्ष्म स्कन्ध भरे हुए है, कार्माणशरीर, विस्रसोपचय, मन, वचन, काय इत्यादि क्या मैं वह हू ? वह पर हैं, भिन्न हैं, मैं भिन्न हूँ, स्वय हू। तव क्या मान, माया, मोह , लोभ इत्यादि मैं हूँ ? अरे ये सब मैं नहीं हूँ। ये सव तो नष्ट हो जाने वाली चीजें है। चीजो का जो स्वरूप है वह चीजो के सकट के लिए नहीं होता। विषयकषाय इत्यादि जो विकार है उन रूप क्या मैं हूँ? नहीं, उन रूप भी मैं नहीं हूँ, ये विषयकषाय इत्यादि तो मेरे दु ख के लिए ही हो रहे हैं। यह परिणाम मेरा नहीं है क्योकि ये सब मिट जाने वाले है। दूसरे मेरे सकट के लिए हों ऐसी बात नहीं है। मेरे लिए मैं ही सब कुछ हूँ। फिर जो भिन्न चीजो से ज्ञान हुआ? फुटकर ज्ञान हुआ तो यह जाननस्वरूप है क्या? ये भिन्न-भिन्न चीजे तो मिट जाने वाली होती है। यह चौकी है, यह अमुक चीज है।

भैया ! जो मिट जाने वाला है वह मै नही हूँ। जो बाह्य की जानकारिया है वह भी मै नही हूँ। तब फिर मै क्या हूँ? जो निजस्वरूप भगवान् का ज्ञानस्वरूप है वह मै हूँ। पूर्ण विकासरूप केवल ज्ञान पर्याय भी मै नही हूँ। अन्य की तो बात ही क्या कहे? यद्यपि यह पूर्णविकासमय तत्व मेरे स्वरूप मे विकासमय है तथापि सूक्ष्मदृष्टि से देखो वह विनाशीक है। प्रतिक्षण सदृश परिणमन होता रहता है।

जैसे एक दीपक ८ बजे जलता है ६ बजे तक दीपक जला। देखने वाले लोग कहते है कि दीपक ने वही काम किया जो ८ बजे किया सवा आठ बज गए, साढ़े आठ बज गए, पौने नौ बज गए, नौ बज गए, वही काम दीपक कर रहा है। अरे वह एक समान परिणमन है पर प्रकाशमय परिणमन तो न्यारा न्यारा है। प्रत्येक तेल की बूदो से अलग-अलग परिणमन होता है। मगर लगातार बूदो का परिणमन चल रहा है। परिणमन प्रत्येक बूद का न्यारा न्यारा है। और काम सब बूदो का प्रकाश देना होता है। प्रकाश समान हो रहा है और नया नया हो रहा है। प्रत्येक बूद का खर्चा हो रहा है और काम हो रहा है।

इसी तरह ज्ञानका काम जानन है। नया नया परिणमन है। तब तो मैं चेतनस्वरूप वाला हूँ। मैं वह तत्व द्रव्य हूँ जिसका परिणमन लगातार चलता रहता है। जानन चित् स्वभावमात्र मै आत्मतत्व हूँ— ऐसा विचार यदि मै बना लू तो सुखी हो सकता हूँ। और अगर अपने स्वरूप से बाहर दृष्टि रहे तो जगह जगह विपत्तिया है। जगह जगह क्लेश है सो अपने आपके स्वरूप मे ही मेरा सर्वस्व नजर आए, अपने आपके प्रभु पर ही विश्वास हो तो मुझे आनन्द है। बाह्य पदार्थो मे विकल्प कर लेना यह ओछी बात है। जिन पदार्थो से लेना देना नही, जो अपना अस्तित्व जुदा रखते हैं उनसे दृष्टि लगाकर यह प्राणी एक जगह बैठे बैठे ही व्यर्थ की कल्पनाये कर लिया करता है। अरे बाहर के पदार्थ तो असार होते हैं। उनमे कोई सार नही होते है। उनमे पड़ने से कोई लाभ नहीं है। मै इन बाह्य पदार्थो से परमाणुमात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता हूँ। भाई! यह है सम्यक्त्व की बात। यदि सम्यक्त्व हो गया, सम्यग्दर्शन हो गया तो अपना भला होगा। भला करने वाले पुत्र मित्र परिवार आदि कोई नहीं होगे। इनसे सम्बन्ध बना लेने से तो क्लेश ही रहेगे। वे हमारे तड़फाने का कारण ही बने रहेगे। ये मेरी शान्ति के कारण नहीं हो सकते हैं। आत्म शाति का कारण तो अपने आपके स्वरूप का परमात्मतत्व है। ऐसी दृष्टि अगर बन जाय तो सम्यग्दर्शन है। ऐसा सम्यग्दर्शन है तो मनुष्य का जीवन सफल रहेगा, अन्यथा जीवन सफल न हो सकेगा।

इस प्राणी का धर्म के कारण ही महत्व है। यदि धर्मशील न हो तो मनुष्यो से पशु पक्षी ही श्रेष्ठ हैं। धर्मशील होने के कारण ही मानव की प्रशसा है। मनुष्य की श्रेष्ठता तो केवल धर्मके ही कारण है। मनुष्य की चाम किसी काम मे आती है? बतलाओ। मनुष्य का कोई भी अग क्या किसी काम मे आयगा? मनुष्य का शरीर भी किसी काम मे आयगा ? इन मनुष्यो को मन, वचन, काय आदि मिल गये हैं, कुछ साहित्यिक ढग आ गये है कुछ बोलने-चालने का ज्ञान आ गया है, इसमे छल करने की निपुणता हो गयी है। जो कोई ज्ञान की बात जानते हैं वे विकास नहीं कर पाते हैं। इस मनुष्य का पता ही नहीं कि वह कैसा है? मरखना बैल तो मालूम हो जाता है, इसलिए १०-२० हाथ दूर से निकल जाते

हैं, पर इस मनुष्य का पता ही नहीं कि यह कब क्या कर दे? मनुष्य की श्रेष्ठता केवल धर्म के कारण है। धर्म कहीं बाहर नही होता है। धर्म से बाहर रहने पर दु ख ही दु ख है, वाह्यकी जितनी कल्पनाये होती हैं वे सब धर्मके पोषण के लिए है। भगवान् की पूजा अथवा शास्त्रो का पढ़ना, उपदेश सुनना, सत्सग को जाना, धर्म के काम करना तथा जीवो के प्रति दया का भाव होना ये सब आत्मविकास के वाणको को दूर करने के लिए हैं। धर्म है वीतराग परिणाम। सारी विपदाये इस धर्म से ही दूर हो जाती हैं। ऐसी योग्यता रहे, ऐसे धर्ममे रहे तो यही धर्म है, हाथ जोड़ना धर्म नहीं। पर हाथ जोड़ने के लायक रहेगा तो धर्म हो सकता है। अपने धर्म की ओर झुकाव ही तो सुख हो सकता है।

ज्ञानं दृष्टौ क्व मोक्षाध्वा क्वार्थ. काम क्व धर्मक ।
सहजानन्ददृष्टि सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-३३।।

अर्थ– ज्ञानदृष्टि होने पर कहाँ तो मोक्ष का मार्ग है (खोज का कष्ट है) कहा धन है कहां काम है कहाँ पुण्य है ज्ञानदृष्टि तो सहज आनन्द स्वरूप है अत सहज आनन्द की दृष्टि वाला होता हुआ मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

ऐसी ज्ञानदृष्टि यदि होगी कि मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ, इसमे न पिड है, न कोई पकड़ने की चीज है, यह न चखने की चीज है, न सूघने की चीज है, यह तो एक जाननमात्र है, जानन ही इसका स्वरूप है, ऐसा मैं एक सत् पदार्थ हूँ, ऐसे जानन कीं जिसमे शक्ति आ गयी उसको मोक्ष का मार्ग प्राप्त हो सकता है। मोक्ष के मार्ग को खोजने मे कष्ट कहा है ? वह तो मोक्षमार्ग मे स्थित है और आनन्दमय बर्तता है। ऐसा न सोचो कि मोक्षमार्ग कहा है ? कहा चलू ? ज्ञानदृष्टि कीजिए, इससे ही आनन्द का अनुभव है। ज्ञान के उदय के साथ आनन्द का अनुभव अविनाभावी है।

एक वेदान्त कथा टीका मे आती है कि सास बहू थी। बहू के गर्भ था, बच्चा होने को था। अब बहू घबडा गयी कि बच्चा होने मे तो बड़ी तकलीफ का काम है। किसी किसी को तो जान भी चली जाती है, सो बहू बोली-मा जब बच्चा हो तब जगा देना। सास बोली कि बेटी घबड़ाओ नही, जब बच्चा होगा तो वह जगाता हुआ ही होगा। किसी दूसरे को जगाने की जरूरत नहीं है। सो जब सत्य ज्ञान उत्पन्न होता है तो शुद्ध आनन्द को जगाते हुए ही पैदा होता है। ज्ञान मुझे सही हो जाय और फिर आनन्द की खोज मे रहूँ ऐसा होता ही नहीं है। यदि ज्ञान कर ले और सुख न मिले तो ऐसा होने की शका ही नहीं है। सही ज्ञान है तो आनन्द अवश्य है। ज्ञान तो वही है जिसमे मोह न हो। जिस ज्ञान मे मोह हो वह ज्ञान नहीं है। चाहे सत्य ज्ञान कर लो, चाहे मोह के थपेड़े सह लो।

मै अमुकचद हूँ, मेरा काम ठीक चलता रहे, मोह का काम भी मेरा चलता रहे, घर का काम भी चलता रहे और मोक्ष का मार्ग भी मिल जाय सो दोनों काम नहीं हो सकते। इन मोह के थपेड़ों मे सार नहीं। मोहदृष्टि हटते ही सर्वप्रकाश हो जाता है। मोह दूर होने पर ही राग दूर हो सकते हैं। मोह का काम अलग है और राग का काम अलग है। मोह का काम यह है कि इससे अपने मे और दूसरे में भेद

नही नजर आता है। यह तो हुआ मोह का काम। राग का काम यह है कि पदार्थ सुहावना लगता है। ये जीव जितने है सब भिन्न है। फिर भी परिस्थिति ऐसी होती है कि राग करना पड़ता है। इस राग का काम बेवकूफी से होता है। मोह को दूर करने पर राग कब तक रहेगे ? जैसे वृक्ष की जड़ काट देने पर वृक्ष कब तक हरा रहेगा ? वृक्ष हरा नही रह सकता है। राग से, मोह से पूरा नही पड़ेगा इनसे सुख नही हो सकता है। अत मे इन्हे छोड़ना ही पड़ेगा। अगर शुद्ध आनन्द मिलेगा तो राग मोह आदि को छोड़कर ही मिलेगा।

भैया ! जब घर मे तुम्हारा भाव रहता है तो धन वैभव, ईटे, पत्थर, दो चार लोगो मे ही तुम फंसे रहते हो, उन्हे तुम अपना समझते हो। अरे कोई ऐसी क्या व्यवस्था है जिससे कहा जाय कि यह आपका घर है, यह आपकी वस्तु है। आप कहते है कि मेरा घर है, कोई कानूनी गुञ्जाइश ऐसी निकले कि यह मेरा ही घर है तो बताओ। हम आत्मा के कानून की बात कर रहे है, नगरमहापालिका की बात नहीं कर रहे हैं। अब कौन सी ऐसी उक्ति है कि आप कह सके कि यह मेरी पूजी है, यह मेरा घर है। अरे इस ज्ञानस्वरूप अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के चतुष्टय मे रहने वाले का इस ज्ञानस्वरूप से बाहर कुछ वास्ता नही है, कुछ ताल्लुक नहीं है। मोह की नींद मे ही लोग कहते हैं कि मेरा घर है। अरे मोह हट गया तो जीवन सफल है, अन्यथा दुर्गति ही दुर्गति है। फुटबाल की तरह एक लात सहकर दूसरी जगह भग गया, दूसरी जगह पर लात सहने पर फिर दूसरी जगह चला गया। फुटबाल है किसलिये? वह लातें सहने के लिए है। इसी तरह हम और आप ससारी प्राणी फुटबाल बने रहते है। जिसके पास शरण के लिए पहुच गए वहा भी शरण नही है। वहा पर विपदाये ही विपदाये है। फिर दूसरे के पास शरण के लिए पहुंच गए, वहा भी शरण न मिली। लाते ही फुटबाल की तरह सहता हुआ यह प्राणी नजर आता है। कही किसी के द्वारा कष्ट हुआ, कहीं किसी के द्वारा कष्ट हुआ,शान्ति नही मिलती । शान्ति तो अपनी ही निजदृष्टि मे मिलेगी अन्यत्र कही शान्ति नहीं मिलेगी। परमार्थदृष्टि होने पर मोक्षमार्ग प्राप्त होगा। ज्ञानदृष्टि तो सहज आनन्द को लिए हुए है। वहा पर न तो विकल्प है और न क्लेश है। ऐसे सहज आनन्द को प्राप्त कर मै अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ ।

किं कृत्यं क्व रमै चित्तमस्थिरं चाहितं जगत्।
ज्ञानमात्रे रतो भूत्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-३४।।

अर्थ– मुझे यहाँ करने योग्य कार्य क्या है कहाँ चित्त लगाऊं यह जगत् तो अस्थिर और मेरे हितरूप नहीं है इसलिये मैं तो ज्ञानमात्र में लीन होकर अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

मेरा यहा करने योग्य क्या काम है ? मैं अपना चित्त कहा लगाऊ ? इन दो बातो की खोज मे निकलो। मेरा यहा काम क्या है ? जिसके करने से सदा के लिए सतुष्ट हो जाऊ। फिर कोई बाधा ही न रहे ऐसा करने योग्य काम क्या है, बतलाइए।

यह मकान चार पाच माह मे बन जायगा तो क्या मकान बन जाने से आपकी समस्त बाधाये

हट जावेगी ? मकान बन जाने से क्या आपकी इच्छाओ की पूर्ति हो गयी ? क्या मकान बन जाने के बाद बाधाये न रहेगी ? कौन सा ऐसा काम है जो कर ले और सदा के लिए झझटो से मुक्त हो जाये। इन पचेन्द्रियो के विषयो मे ऐसी कोई चीज है जिसके भोग से सदा के लिए दु ख मिट जाये ? नही। तो फिर क्यो आशा की जाती है कि अमुक बात मिल जाय, कुछ मिल जाय तो क्या कुछ ऐसा है कि जिसके मिलने से, करने से झझट न रहे। ऐसा जगत् के परपदार्थो मे कुछ भी नहीं है कि जिसके कुछ हो जाने से सारे झझट खत्म हो जाये।

भैया ! सारभूत बात एक निज है। उस एक की दृष्टि हो जाय तो मौज हो जाय। बचपन मे बच्चे को कितनी चाह है, परीक्षा हो जाये, पास हो जाये, डिग्री मिल जाय, अफसर हो जाये, सब काम हो जावे, फिर यह करना है, वह करना है आदि। कौन सा काम ऐसा दुनिया मे है जिसको एक बार कर लेने से सारे झझट न रहे, कौन से ऐसे पदार्थ हैं जिनको अपना चित्त दे दे, अपने स्वभाव को सौंप दे और फिर सारे झझट समाप्त हो जावे, कोई भी पदार्थ ऐसे नहीं है। यह सारा जगत् अस्थिर है, अहितरूप कल्याणरूप नहीं है। इन बाह्यपदार्थो मे उपयोग होने से शुद्ध जानन का काम नही होता है। अशुद्ध दृष्टि हटे और शुद्ध ज्ञान हो जाये तो जानन का काम कभी खत्म नहीं होगा। शुद्ध जानन का ही काम ऐसा है फिर और कुछ नहीं करना पड़ता। ज्ञानदृष्टि रहने पर झझट नहीं रहेगे। राग द्वेष मे झझट ही झझट हैं।

श्री कुन्दकुन्द भगवान ने कहा है कि 'जो जीव राग करेगा वह बन्धेगा और जो राग न करेगा वह कर्म से छूट जायेगा।' अत किसी कर्म मे राग न करो। जिसमे राग नहीं उसमे क्लेश नहीं व जिसमें राग हैं उसमें क्लेश हैं। राग के फदे मे कष्ट जरूर है। क्योकि जिस काम को वह राग से करेगा उस काम मे वह घुल जायगा। राग यदि नहीं है तो कुछ भी करते रहे क्लेश नहीं है। वे तो उस ही प्रत्येक वस्तु की परिणति है। मेरे अनुकूल बाह्य मे नहीं होता है, तो काम मे मैं बाधा मान लेता हूँ। उसमे बाधा मानकर मैं दु खी होता हूँ। दु ख न तो मेरे स्वरूप मे है और न मेरे ज्ञान का काम है। केवल सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र करने लायक हैं, बाकी सब दु ख हैं। सो सब पदार्थो से हटकर मैं अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होता हूँ।

कर्तृत्वं न स्वभावो मे क्रिया एता उपाधित ।
वातवच्छुष्कपर्णस्य स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-३५।।

अर्थ– मेरा कर्तापन स्वभाव नहीं है ये क्रियायें उपाधि से होती हैं जैसे सूखे पत्ते में स्वय क्रिया नहीं परन्तु वायु के आघात से सूखा पत्ता भी गतिशील होता है इसलिये जानने की क्रिया वाले अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

पदार्थ तो सब अपनी-अपनी सत्ता लिए हुए अलग-अलग हैं। इसी कारण कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ में परिणति नहीं करता। जैसे मान लिया कि दोनों हाथों की अगुलियों ने किसी सींक को तोड़ दिया तो लोग कहते हैं कि अगुलियों ने सींक तोड़ दिया। पर ऐसा नहीं है। सींक स्वय इस प्रकार की

चेष्टा करती हुई अगुलियो का निमित्त पाकर टूट गयी है। अगुलियो ने मात्र चेष्टा की अपनी। बीच में सीक थी सो उस सयोग का निमित्त पाकर सींक ने अपनी परिणति कर लिया। इसी तरह प्रत्येक जीवमात्र अपने जानन की चेष्टाये करेगा, दूसरो की जानन की चेष्टाये कभी नही करता है। ऐसा सत्य ज्ञान हो तो सम्यक्त्व है। यहा के परपदार्थो से क्या कोई वास्ता दीखता है। सम्यक्त्व मे ही आनन्द है। कर्तापन से मेरा स्वभाव नहीं है। पर यह जीव मानता है कि मैने किया। जो ऐसा मिथ्या मानता है वह भी पर को नहीं करता है। मिथ्यादृष्टि कर्तृत्व परपदार्थो के करने की मान्यता की दृष्टि से है। जिसकी जो परिणति होती है उसकी परिणति उसमे ही रहती है। इस जीव मे जो कुछ भी कार्य होते है वे सब अपने आप होते है। कोई किसी को कुछ करता नही है।

जैसे कोई १० हाथ की दूरी पर है। कोई किसी को अगुली दिखाकर चिढ़ाए तो वह अंगुली देखकर अपने आप ही यह कल्पनाये बना लेता है कि यह तो मुझे चिढ़ा रहा है। यह देखकर वह दु खी हो जाता है। चिढ़ाने वाला तो अपने आप ही अपनी अगुलिया चलाता है पर चिढ़ने वाला अपने आप ही कल्पनाये बनाकर चिढ़ता है।

तीन चोर थे। चोरी करने गए। एक नया चोर रास्ते मे मिला। वह चोरी करना नही जानता था। पर वे सब चोरी करने चले। अब चार चोर हो गए। चारो चोर एक गाव मे जाकर एक बूढ़े आदमी के घर मे घुसे। कुछ देर बाद घर के अन्दर उस बूढ़े आदमी ने खास दिया। तीन चोर तो भाग गये। एक जो नया चोर था वह भाग न सका। घर मे ऊपर एक टाड़ी मे जाकर बैठ गया। अब गाव के बहुत से आदमी इकट्ठे हो गए। कोई पूछता था क्या चला गया, कोई पूछता कैसे क्या हुआ? दसों प्रकार के प्रश्न पूछे गए। उस घर के बूढ़े आदमी ने झुझला कर कहा कि हम क्या जाने ऊपर वाला जाने। ऊपर वाले का मतलब यहा पर भगवान से था। पर चोर ने समझा कि मेरे लिए कह रहा है। बोला कि अरे मै ही क्या जानू, वे तीन क्यो न जाने ? अब तो वह चोर पकड़ा गया। मारा पीटा गया, सजा हो गयी।

भाई ! कोई हमे आपको दु खी नही करता। केवल कल्पनाये बनाकर ही हम दु खी हो जाते हैं। दूसरे जीव जो कुछ करते है वे अपने आपका करते है। उनका किसी दूसरे से कुछ सम्बन्ध नहीं है। वे स्वय ही कल्पनाये बनाकर फस जाते है। कोई भी परपदार्थ किसी को दु खी नहीं कर सकता है। कहीं आग नीचे जल रही है। ऊपर बटलोही मे पानी रखा हुआ है। ऐसी स्थिति मे पानी गर्म हो जाता है तो पानी को आग गर्म नहीं करती, पानी स्वय आग के निमित्त से गर्म हो जाता है। पर ऐसे सयोग को देखकर लोग कहते है कि आग ने पानी को गर्म किया। पानी स्वय आग के निमित्त को पाकर अपने ठडे पर्याय को छोड़कर गर्म पर्याय मे आ गया। इसी को कहते हैं कि पानी गर्म हो गया तो आग ने गर्म किया । पानी मे गर्म होने की योग्यता थी। आग का निमित्त पाकर गर्म हो गया।

यदि हाथ की अगुलियो की छाया कहीं पर पड़े तो क्या वह अगुलियो की छाया है ? नहीं। वह

तो अगुलियो की छाया नहीं है। वह तो छाया पृथ्वी की है। अगुलियो का निमित्त पाकर वह छाया हो गयी है। वह छाया अगुलियो की छाया नहीं है। उस छाया पर अगर चाकू मारा जाय तो क्या कुछ असर अगुली पर पड़ेगा ? उस अगुली पर असर कुछ न पडेगा जिसकी छाया है उस पर ही असर होगा। पृथ्वी की छाया है तो पृथ्वी पर असर होगा। अगर किसी से पूछे कि यह छाया किसकी है तो कहेगे कि हाथ की है। पर है क्या हाथ की छाया ? नही, वह तो पृथ्वी की छाया है। इसी तरह यदि किसी पेड़ की छाया को देखते हैं तो लोग कहते है कि यह पेड़ की छाया है। अरे यह छायारूप परिणति वृक्ष की नहीं है, वह छाया तो पृथ्वी की है। केवल पेड़ को निमित्त पाकर यह छाया हो गयी है।

और भी देख लो। दीपक के प्रकाश का निमित्त पाकर कमरे मे पड़ी हुई वस्तुये प्रकाशित हो जाती हैं। तो क्या वह पडा हुआ प्रकाश दीपक का है ? यह बात बहुत मर्म की कह रहा हूँ। यहा प्रश्न हो सकता है कि दीपक निमित्त है तभी तो ये पदार्थ चमकते है। ठीक है, पर यह प्रकाश उन वस्तुओ का है जो प्रकाशित हो रही है अन्यथा यह बताओ कि दर्पण अधिक क्यो चमकता है ? अन्य घट-पटादिक क्यो कम चमकते है ? इनमे योग्यता के अनुकूल प्रकाश मय बनने की सामर्थ्य है। दीपक का प्रकाश निमित्त है और ये सब वस्तुएँ निमित्त पाकर प्रकाशित हो गयी। देखो दीपक अपने आप मे प्रकाश से जगमग है, जलता है, पर ये पदार्थ उसके प्रकाश की सन्मुखता पाकर याने दीपक का निमित्त पाकर प्रकाशित हो जाते हैं।

अब और इसके आगे चलो जिसमे बिल्कुल हैरानी हो जायगी। यह सूर्य है, प्रकाशमान चीज है। देखो दिन मे ये सारी वस्तुये प्रकाशित हो जाती है। लोग कहते है कि इन वस्तुओ को सूर्य ने प्रकाशित किया, पर सूर्य तो अपने प्रकाश मे है। उस सूर्य का निमित्त पाकर प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार प्रकाशित हो गए। इसकी बढिया एक उक्ति यह है कि अगर सूर्य इन पदार्थो को प्रकाशित करे तो सारी वस्तुएँ एक सी प्रकाशित होवे, पर ऐसा नही है। कोई वस्तु किसी प्रकार प्रकाशित है तो कोई किसी प्रकार प्रकाशित है ? अगर सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते तो एक ढग से प्रकाशित होते? अब देखिये दर्पण को। वह भी तो प्रकाशित है , पर उसका प्रकाश अधकार मे भी फोकस पहुचा सकता है तो भाई यह फर्क किस बात का है ? सूर्य का निमित्त पाकर ये स्वय प्रकाशित होते है । दर्पण तो तेज योग्यता वाला है, इसलिए यह अधिक प्रकाशित होता है। घटादिक कम योग्यता वाले हैं सो ये कम प्रकाशित होते हैं। अपनी- अपनी योग्यता के अनुसार ये पदार्थ प्रकाशित होगे।

यह वस्तुस्वतत्रता की बात कही जा रही है, जो ज्ञान की मौलिक बात है। दर्पण को आगे करके मुह देखा गया तो दर्पण मे जो प्रतिबिम्ब छाया रूप है, क्या वह मुह की छाया रूप है, दर्पण की छायारूप है ? अगर मुह की छाया होती तो हम बिना मुख के हो जाते। क्योकि हम तो शीशे के अन्दर चले गए। अब अलग जगह हम क्या रहे ? सो भैया ! वह प्रतिबिम्ब तो दर्पण का है, मुह का प्रतिबिम्ब नहीं है। हमारा मुह निमित्तमात्र है। परिणमन दर्पण का है, मेरा नहीं है, पर किसी से पूछो तो यह कोई नहीं कहेगा।

यह दृष्टि करना मात्र कि हमारा नित्य का काम है इसलिए जाते है तो वह तो प्रवृत्ति की दृष्टि से सब चीजे व्यर्थ की है।

सो भैया ! अपनी दृष्टि को सोचो दृष्टि को ठीक करो तो ठीक है। हम भगवान के दर्शन के लिए दर्शन करते हैं तो वह प्रवृत्ति हुई। इससे कुछ लाभ नही होगा और अगर रागद्वेष त्यागने की दृष्टि हुई तो यह निवृत्ति हुई । अत यदि मैं निवृत्ति से देखू तो लाभ मिलेगा वरना कुछ नही मिलेगा। अब आप लोग भोजन बनाते हैं। यदि वहा अतिथि साधु जनो के आहार दान की दृष्टि है तो इस शुद्धदृष्टि होने के कारण आप धर्म ही कर रहे है। बाह्य वस्तुओ मे यह दृष्टि न रहे कि यह मेरी वस्तु है यह उसकी वस्तु है ऐसा परिणाम होने से भला नहीं होगा। यदि प्रवृत्ति की दृष्टि हो तो तप आदिक भी व्यर्थ है और अगर निवृत्ति की दृष्टि है तो लाभ है।

रस्सी मे जब तक साप का भ्रम था तब तक घबड़ाहट थी, पर जब रस्सी को रस्सी जान लिया तब घबड़ाहट दूर हो गयी। यथार्थ जानन हो गया तो इसी के मायने निवृत्ति है। यथार्थ बात को जानना ही कटाव कहलाता है। यथार्थ बात को जानकर मै अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

परे दृष्टे न दृष्ट स्व· स्वे दृष्टे न विकल्पना।
अविकल्पे न सताप स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-३७।।

अर्थ– पर के देखे जाने पर स्व देखा रहा नहीं रहता। स्व के देखे रहने पर अन्य कुछ भी कल्पना नहीं रहती। कल्पनाओं के अभाव में सन्ताप नहीं होता इसलिये निर्विकल्प स्वरूप अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊ।

परपदार्थो को ही देखो तो निजपदार्थ समझ मे नहीं आ सकता है। और निज पदार्थ को देखो तो विपयकषायो की कल्पनायें नहीं बन सकती है, विकल्प नहीं रह सकते हैं। सो जो देखना चाहो वह निर्णय कर लो। अगर निजपदार्थ देखना चाहते हो तो निजपदार्थ देखो और परपदार्थ देखना चाहते हो तो परपदार्थ देखो। अगर अपने आपके पदार्थ को देखो तो सकल्प-विकल्प न रहेगे और परपदार्थ को देखो तो क्लेश ही रहेगे, सकल्प, विकल्प, मान ,माया, लोभ इत्यादि ही रहेगे। अब यहां उपयोग लगाना हो सो निर्णय कर लो।

मै अपने आप मे हूॅ। मेरे मे किसी अन्य चीज का प्रवेश नहीं है। मैं तो अपनी आत्मा की इज्जत चाहता हूॅ। आत्मा की इज्जत यह है कि अपने आपका जैसा स्वरूप है तैसी ही दृष्टि रहे। यही स्वय की इज्जत है। परपदार्थो को देखने से वेइज्जत एक दु ख है। परपदार्थो को जहा देखो, कल्पनाये उन वस्तुओं के प्रति वनी तहा दु ख आ जाते हैं। जहा पर निर्विकल्पभाव हो वहा पर सुख हो सकता है।

अरे इतनी अवस्था ४०-५० वर्प की विकल्पो मे ही गुजर गयी। क्या परपदार्थ तुम्हारे साथ में जावेगे ? नहीं । ज्यो ज्यों विकल्पों में आसक्ति है त्यों त्यों आनन्द दूर है। परपदार्थो के अनुराग से विकल्प ही होते हैं। इसलिए भीतर से यह इच्छा होनी चाहिए कि मेरा ज्ञान का उपयोग बने किसी परपदार्थ

को अपने उपयोग मे न लाऊ । अपने आप मे भाव ऐसा होना चाहिए कि मै ज्ञान मे ही रहूँ, ऐसी भीतर मे उत्सुकता रहनी चाहिए। यदि यह भी ध्यान हो कि मै इस समय ज्ञानस्वरूप मे नही हूँ, तो भी यही समझिए कि ज्ञानस्वरूप सामने है। जैसे मान लो कि कल जो रसगुल्ले खाये थे वैसा स्वाद आज रसगुल्ले खाने मे नही आया। तो ऐसा ख्याल आपका हो जायगा कि जो स्वाद कल के रसगुल्लो मे था वह आज के रसगुल्लो मे नही है। इस ख्याल से बढ़िया रसगुल्ला उसके दिमाग मे सामने है।

जैसे किसी से कहे कि भाई चौकी पर समयसार पुस्तक रखी है सो ले आओ। वह गया वहां पुस्तक नहीं थी सो वह कहता है कि वहा समयसार नहीं है। देखो पुस्तक वहा पर है भी नहीं तब भी फोटो उस पुस्तक का उसके सामने आ गया।

जैसे कहे कि भाई तिजोरी मे गहना रखा है, ले आओ। यद्यपि वहा पर गहना है भी नही, तब भी गहने का फोटो तो आपके सामने आ गया। भाई परपदार्थो मे आनन्द नही है। परपदार्थो से अगर मै आनन्द प्राप्त करता हूँ तो वह वास्तविक आनद नही है। आनन्द तो तभी है जबकि अपने आपके स्वरूप की प्रतीति रहेगी तो चाहे बाहर मे भी रहना पड़े, पर प्रसन्नता बनी रहेगी।

एक कथानक है कि बादशाह और वजीर बैठे थे। बादशाह ने कहा कि वजीर, आज मैने एक स्वप्न देखा कि अपन दोनो घूमने जा रहे थे। मार्ग मे दो गड्ढे मिले, एक शक्कर का और एक गोबर का। मै शक्कर के गड्ढे मे गिर पड़ा और आप गोबर मे गड्ढे मे गिर पड़े। वजीर बोले– हजूर, मैने भी स्वप्न ऐसा ही देखा, पर इसके आगे थोड़ा सा और देखा कि मैं आपको चाट रहा था और आप मुझे चाट रहे थे याने मै तो शक्कर चाट रहा था और आप गोबर चाट रहे थे।

इसी तरह गृहस्थ लोग गृहस्थी की गदगी मे पड़े रहकर भी अपने ज्ञान का स्वाद ले। इसमे उनका क्या बिगाड़ ? इसके लिए ज्ञान ऊचा होना चाहिए। घरद्वार, मित्रजन, परिवार ये सब मोह के निमित्त अर्थात् आश्रयभूत कारण है। स्वय के स्वरूप को देखने मे कल्याण है। सो अब मैं स्वय के स्वरूप को देखकर अपने मे अपने लिये अपने आप स्वय सुखी होऊ।

मयि सौख्य मया ने मत् ज्ञप्तिभिन्न न साधनम्।
आगृहानि कथं वृत्तौ स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-३८।।

अर्थ– मेरा सुख मेरे द्वारा मुझ से मुझ में है उसका साधन जानने की क्रिया से भिन्न और कुछ नहीं है तब मैं वृत्ति में क्या आग्रह करू। अपने में अपने लिये स्वयं सुखी होऊं।

मेरा सुख मेरे मे है और मेरे द्वारा होता है। क्यो[illegible] [illegible]तने भी जगत् मे पदार्थ हैं वे सब अनन्तशक्ति से सम्पन्न है एव अपनी-अपनी शक्तियो के [illegible] हैं। इसी प्रकार मैं भी एक वस्तु हूँ, कैसी वस्तु हू अद्भुत वस्तु हूँ। ज्ञानानन्दरस निर्भ[illegible] जिसके अन्दर अन्य कोई पदार्थ नहीं, ऐसा मै ज्ञान भावात्मक तत्व हूँ। मैं कोई [illegible] सकू, कोई रूप, रस इत्यादि नहीं कि जो इन्द्रिय के द्वारा जाना जा सकू, [illegible] [illegible]नन्दस्वरूप हूँ ? दो ही तो इसके

मुख्य धर्म हैं – ज्ञान और आनन्द। ज्ञान किसे कहते है ? जो जाननकार्य करे, जिसका अविनाभावी आनन्द हो ऐसा ज्ञानानन्दघन आत्मतत्व हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ। लोगो ने जानन को ब्रह्म का स्वरूप बताया है, किन्ही ने ब्रह्म को आनदस्वरूप बताया है।

ऐसा ही मैं आत्मतत्व हूँ। मै ज्ञानमात्र हूँ, मेरा आनन्द मेरे से ही प्रकट होता है। उस आनन्द को प्रकट करने के साधन क्या है ? क्या रसोई बन जाय तो आनन्द है ? क्या रसोई से आनन्द मिलता है ? क्या घर, परिवार, मित्रजन इत्यादि से आनन्द आता है ? नहीं, ऐसा नही है। ज्ञान को छोड़कर अन्य कोई साधन नही है आनन्द के लिए। मात्र जानन ही आनन्द का साधन है। जिसका उपयोग बाह्य मे है, जिसमे राग द्वेष आदि हैं उसको आनन्द नहीं मिलता है। जहा पर केवल जानन हो, मोह न हो तो वहा पर आनन्द मिलता है। जब मात्र जानन ही आनन्द का साधन है तो फिर प्रवृत्ति मे आग्रह क्यो करू ? प्रवृत्ति चलती है तो चले, पर उसमे आग्रह क्यो हो ? मोही लोग ऐसा आग्रह करते ही है, उन्हे ऐसा किए विना चैन नहीं आती है। कौन ऐसे पदार्थ है जो मेरे लाभकारी है, जिनसे मेरा कल्याण हो जाता है। ऐसी जगत् मे कोई चीज नही है। सो भैया ! किसी चीज मे आग्रह नही होना चाहिए। प्रवृत्ति का आग्रह न करो। बल्कि उस अपने आनन्दस्वरूप को देखो और यह विश्वास रखो कि मै आनन्दस्वरूप हूँ। मेरा आनन्द तो मेरे द्वारा ही प्रकट होता है। मेरे आनन्द का अन्य कोई साधन नही है। मात्र जानन ही आनन्द का साधन है।

जीव मे ज्ञान गुण है जो कि खूब अनुभव मे आ रहा होगा कि आत्मा मे एक ऐसी शक्ति है जिसके कारण जानन वृत्ति होती है, वह ही तो आत्मतत्व है और दूसरे पदार्थ नही जानते है, क्योकि आत्मा मे ज्ञान शक्ति मौजूद है और किसी दूसरे मे ज्ञानशक्ति नहीं है। आत्मा मे ज्ञान होता रहता है, ज्ञानकारियां होती रहती हैं। इसी तरह आत्मा मे एक आनन्द शक्ति है और पदार्थ तो आनन्द नही मना सकते। क्या चौकी, टेवुल, घडी इत्यादि आनन्द मनावेगे ? आनन्द तो मनाने वाला एक जीव ही है। क्योकि उसमे आनन्द की शक्ति है। जैसे ज्ञान शक्ति जीवो मे है तैसी ही आनन्दशक्ति भी जीवो मे है।

भैया ! जैसे ज्ञानशक्ति की पाच परिणतिया है– मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान व केवलज्ञान। इसी तरह आनन्दगुण की तीन परिणतिया होती हैं– १ सुख, २ दु ख और ३ आनन्द। इनमे सुख और दु ख विकृत परिणमन हैं और आत्मीय आनन्द शुद्ध परिणमन है। विकृत परिणमन सुख और दु ख क्यो हैं ? यो कि सुख तो वह है जो इन्द्रियो को असुहावना लगता है। यह विकार स्वय नहीं होता किन्तु कर्मोदय का निमित्त पाकर होता है। केवल आत्मा तो शुद्ध है, शुद्ध परिणमन का आनन्द भगवान् का है। सुख सदा नहीं रहता है और न दु ख ही सदा रहता है। सदा की बात छोड़ दो। २४ घटे मे शायद आधा घटा मिलजुल कर समय सुख से व्यतीत होता हो, शान्ति प्राप्त हो जाती हो, बाकी साढे तेईस घटा दु ख ही दु ख रहते हैं। तो आनन्दशक्ति का जो शुद्ध विकास है वह आनन्द है। उस आनन्द के लिए लोगों को आग्रह करना चाहिए। प्रवृत्ति के लिए आग्रह नहीं करना चाहिए।

किन्ही-किन्हीं जगहो मे तो देखो लोग धर्म प्रवृत्ति मे कलह करते लोग व्यवहार मे मिले-जुले रहते, विवाह के समय तो लोग मिल-जुलकर हंसी खुशी से रहते, पर धर्म के कामो मे उनमे आपस मे लड़ाई होती है। अरे धर्म के कामो मे तो सबको आपस मे मिलकर काम करना चाहिए और विवाह आदि मे चाहे लड़े, पर देखो कितना उल्टा काम करते है ? क्यो ऐसा उल्टा होता है ? क्योकि वास्तविक धर्म से रुचि नही है। धर्म एक है, शास्त्र एक है, गुरु का स्वरूप एक है, पूजा की पद्धति एक है। जितने व्यवहार धर्म है उनकी पद्धतिया सब एक है। तो फिर झगड़ा किस बात का ? प्रवृत्ति चाहे धर्म विषय की भी हो वहा भी मतभेद है परन्तु निवृत्ति मे क्या मतभेद ? निवृत्ति ही एक ऐसा धर्म है जिसकी कोई बराबरी नही। निवृत्ति का मतलब हट गया, अलग हो गया।

कोई साधु एक पुस्तक बाच रहा है। किसी ने पूछा कि कौनसा ग्रन्थ यह पढ़ रहे है। दूसरे का मनोभाव व उपकार जानकर साधु वह पुस्तक उसे पढ़ने को दे देगा। यही उसकी निवृत्ति होगी। वह अपने आपको अपने आप मे विश्राम पाता हुआ देखकर आनन्द पा लेगा, अपने आपके ही आनन्द मे मस्त हो जायगा क्योकि उस साधु को प्रवृत्ति का आग्रह रचमात्र भी नहीं है। प्रवृत्ति मे आग्रह न रहे तो वही साधु है। गृहस्थी की तो प्रवृत्ति की बात होती है पर साधुओ की नहीं होती है। साधु जानते हैं– मेरा आनन्द मेरे से ही प्रकट होता है आनन्द का साधन तो केवल ज्ञान है, ओर कोई दूसरा अन्य साधन आनन्द का नही है। सो मै स्वयं मे रमकर ही अपने आप सुखी होऊं।

नाहं देहो न जातिर्मे न स्थानं न च रक्षकाः।
गुप्तं ज्ञानं प्रपश्यानि स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-३६।।

अर्थ– मैं देह नहीं हूं मेरी जाति नहीं है मेरा स्थान नहीं है और मेरे रक्षक भी कोई नहीं हैं। मैं तो अपने गुप्त अर्थात् जो दूसरों के द्वारा जाना नहीं जा सकता ऐसे ज्ञान को देखूं और अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

मै शरीर नही हूँ, यहा भीतर मे देखो, क्या है ? यह कौन सुखी दु खी हो रहा है ? शरीर या जीव। कल्पनाये और द्वन्द्व कौन कह रहा है ? जीव कर रहा है या शरीर कर रहा है ? शरीर नहीं कर रहा, जीव कर रहा है। शरीर भी मैं नहीं हूँ, फिर जाति मेरी कहा हो जायगी ? मैं खडेलवाल जाति का हूँ, मै अग्रवाल हूँ इत्यादि, ये जातिया कैसे बन गयीं ? कोई कहता है कि हम ब्राह्मण हैं, कोई कहता कि हम बनिया हैं। ये जुदा जुदा वर्णव्यवस्थाये शरीर के आधार पर हैं। मैं तो शरीर नहीं हूँ और न शरीर मे हूँ। तो मेरा स्थान कहा है ? मेरे रहने की जगह क्या है ? मेरा स्वरूप ही मेरे रहने की जगह है। मेरा रक्षक कौन है ? किसी मे मेरी रक्षा करने की ताकत है ही नहीं। कोई भी जीव मेरी रक्षा करने की ताकत रखता है, ऐसी आशा करना व्यर्थ है। क्या मेरी रक्षा माता-पिता, दादा-दादी इत्यादि करेगे? देखो वे गुजर गए पर उनका मेरी तरफ ध्यान भी नहीं है। अगर वे जिन्दा ही होते तो क्या मेरी रक्षा कर सकते थे ? मेरी रक्षा तो मै ही कर सकता हूँ। इस जगत मे मेरी रक्षा कोई दूसरा नहीं कर सकता है। मै अपने गुप्तज्ञान को देखकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी हो सकूंगा।

मेरा ज्ञान गुप्त है। कोई दूसरा जाननहार, पहिचाननहार नही है। अगर कोई पहिचाननहार बन जाय तो वह ज्ञाता दृष्टा बन जायगा। उसमे रागद्वेष करने का लगाव नही रहेगा। मै ऐसे ज्ञानस्वरूप को देखू और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

केवलज्ञानमात्र के अनुभव के तरीके को पाकर अन्य सबको छोड़कर मै यह विचार बनाऊ कि मै ज्ञानस्वरूप हू, मेरा स्वरूप ज्योतिमात्र है प्रतिभासमात्र है, आकाश की तरह अमूर्त है, किसी से पकड़ा जा सकने वाला नहीं है, किसी से छेदा नहीं जा सकता है, भेदा नही जा सकता है, इस पर तलवार नहीं चलाई जा सकती । मैं तो निर्लेप आकाश की तरह शुद्ध, स्वच्छ चैतन्यस्वरूप हूँ। केवल जानन जानन ही मेरा स्वभाव है। इस पद्धति को जब मै देखता हूँ तो आत्मानुभव की पहिचान होती है। मै अपने इस गुप्त ज्ञान को देखकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

क्वान्योऽहं क्व च चिंता क्व क्वैकाग्र्य क्व शुभाशुभम्।
इमे स्वस्माच्च्युतेस्तर्का स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-४०।।

अर्थ– कहा अन्य है कहां मैं हू और कहां चिता कहा एकाग्रता कहा शुभ कहा अशुभ ये सब अपने आपसे च्युत होने से तर्क होते हैं मैं तो अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

कहा तो अन्य हैं, कहा मैं हूँ ? देखो प्रत्येक पदार्थ मे कितना फर्क है। प्रत्येक पदार्थ अपने आप मे झुके हैं। प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी ओर ही मुड़े है। प्रत्येक पदार्थ का उसमे ही सत्व निहित है। परपदार्थ तो हमसे अत्यन्त जुदा है। उनसे हमारा कोई सम्बन्ध नही है। कोई परपदार्थ यदि हमसे १०० कोस की दूरी पर रहे तो १०० कोस का अतर है। ऐसा क्या जो मेरे क्षेत्रावगाह मे पर है उसमे अन्तर नहीं। वे भी हमसे जुदा हैं। जितना जुदा दूर का पदार्थ है उतना ही जुदा समीप का पदार्थ है।

दूध और पानी अलग-अलग गिलास मे दूर-दूर पर रखे है। दूध और पानी मे अन्तर समझ मे आ रहा है। पर दूध और पानी दोनो को मिला दिया जाय तो क्या दोनो एक हो गए ? नही, दूध मे दूध है और पानी मे पानी है। अगर किसी से पूछा जाय तो यही कहेगे कि दूध और पानी एक मे मिले हुए हैं। पर ऐसा नहीं है। दूध मे दूध है और पानी मे पानी है। इसके जाननहार परीक्षक हैं। परीक्षक यत्रों के द्वारा जान लेते हैं कि दूध मे दूध है और पानी मे पानी है। वहुत भीतर सूक्ष्म अशो मे परीक्षा करने वाले ही यह अन्तर जान पाते हैं। दूध मे पानी नहीं है और पानी मे दूध नहीं है। देखो और भी भेदविज्ञान की बात। दूध में दूध है और पानी मे पानी है, वे एक नहीं होगे। दूध मे घी है पानी में घी नहीं है। अन्तर पूरा का पूरा है। इसी प्रकार इस शरीर मे और इस जीव में कितना अन्तर है ? अगर कोई यहा का लड़का हो और कोई दूसरा इग्लैण्ड का हो तो क्या भिन्न होने मे उनमें कोई अन्तर है ? अन्तर कोई नहीं है। पर लोग लडकों मे अन्तर मानते हैं। वस्तु तो जैसी है वैसी ही है। सव कुछ तो ज्ञान की कलापर ही निर्भर है।

भैया ! स्वरूपस्मरण ही वास्तविक सगुन है। सगुन तो कहते हैं पवित्र वीतराग को। मोहीजन

पति सहित स्त्री को तो सगुन मानते हैं और पतिरहित स्त्री को असगुन मानते हैं। अरे देखो भैया लोग कितना उल्टा कर रहे हैं ? जो स्त्री पतिरहित है, तपस्या करती है, आराधना करती है उसको लोग असगुन कहते या मानते है और जिसमे राग है उसे सगुन मानते हैं। अरे राग करने का क्या फायदा पावोगे, कोई कठिन अवस्था होगी, मरण सम्मुख रहेगा। इन रागों से आत्मा को कोई चीज मिलती हो तो बतलाओ। कुछ भी तो नहीं मिलता है।

अरे बाह्यक्रिया तो धर्म करने के लिए आलम्बन मात्र है। भगवान् अरहंत की मूर्ति को देखकर जिसको उनके स्वरूप की मुद्रा की खबर न हो, तो वह मूर्तिदर्शन नहीं है। अरे इस मूर्ति को देखकर अगर स्वरूप का ज्ञान आ जाय तो चारो ओर तुम्हे वैसा ही सब दिखाई देगा। शारीरिक वैभव आत्मप्रसाद पर निर्भर है। पूर्ण निर्मल अरहत प्रभु हैं उनका परमौदारिक शरीर है जिनसे उनके चारो ओर मुख दीखते हैं, है नहीं। पूर्ण निर्मल भगवान् के चार मुख हो जावें ऐसा नहीं है। मुह आगे पीछे ही अगल-बगल हो, ऐसा नहीं है। जैसे स्फटिक मे दर्शन करने से स्फटिक मूर्ति के दोनो और एक सा मुख दीखेगा। एक मुख आगे नजर आयगा, एक पीछे। प्रभु के पवित्र शरीर मे इससे भी अनुपम स्वच्छता है। उनका मुख चारो ओर से दीखता। आगे से पीछे से और दो मुख अगल-बगल नजर आवेगे। जिनका शरीर पवित्र होगा उनको जहा से देखो तहां से ही उनके मुख दिखाई देगे। देखो भैया ! यदि प्रभु का यह अतिशय न होवे तो दर्शको मे झगड़ा हो जावे और यह भावना हो जाय कि हम आगे बैठेगे तो कलह ही तो होगा। किसी ओर बैठो तो क्या विवाद है क्योकि दर्शन तो चारो ओर होगे। तभी तो कहीं भी बैठ जाते है किसी को भी दर्शन मे कोई रुकावट नहीं होती है। इन्द्र की रचना, कुबेर की रचना अद्भुत है तभी तो झगड़े का नाम नहीं है। यदि भगवान् के स्वरूप की ठीक-ठीक दृष्टि हो जाय तो यह शुभ काम कहलाता है। अगर ज्ञानी पुरुष को शुद्ध ज्ञान का अनुभव है और कदाचित् अपने स्वरूप से हटे तो यह अशुभ की बात है। स्वय के स्वरूप मे न शुभ है न अशुभ, न सगुन न असगुन। स्वरूप मे तो शुद्ध ज्ञान है जो कि परम आनन्दमय है।

अरे यह प्रभु तो ज्ञानस्वरूप है। अपना ही अनुभव कर रहा है। भगवान के दर्शन करने का प्रयोजन राग न रहे, ऐसा ध्यान न करो। अगर मिथ्यादृष्टि हटे, सम्बन्ध बुद्धि हटे तो शुद्ध विकास के कारण परमात्मस्वरूप का ध्यान हो जायेगा। आत्मा का स्वरूप तो शुद्ध ज्ञान है। यह स्वरूप स्वय आनन्दमय है। मै इस ही आत्मस्वरूप मे रमकर स्वय आनन्दमय होऊ।

को दूरे कश्च सामीप्ये को बाह्य को मयि स्थित ।
ज्ञानमात्रमहं यस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-४१।।

अर्थ- कौन दूर है और कौन समीप है और कौन मुझ में स्थित है क्योंकि मैं तो ज्ञान मात्र हूं और इसीलिये मैं निज में निजार्थ स्वयम् सुखी होऊ।

कौन मुझसे दूर है और कौन मेरे नजदीक है ? ज्ञानस्वरूप आत्मा को लक्ष्य में लेकर सोचो कि

कौन दूर है और कौन नजदीक है ? जब इतना ध्यान है कि ये जीव और शरीर जो मिले-जुले हैं वे भी अत्यन्त भिन्न हैं तब कौन दूर है और कौन समीप ? मुझ मे तो मैं ही हूं, देह भिन्न है। मेरे अन्दर केवल जाननहार आत्मा है जो कि विलक्षण पदार्थ है। इस आत्मतत्व की जिसे पकड़ होगी उसका जीवन सफल रहेगा। खूब धन वैभव बढ़ा लेने से कुछ नहीं मिलेगा। प्रवृत्ति का आग्रह नहीं छूटता!

भैया ! कहा क्या प्रवृत्ति करते हो ? अपने स्वरूप से सब अलग हैं। फिर हमसे क्या दूर है ? और क्या नजदीक है ? क्या हमसे दूर इलाहाबाद है और कानपुर नजदीक है ? अरे जिस शरीर के अन्दर हम रहते हैं वह भी अत्यन्त भिन्न है। अच्छा हम पूछते हैं ? बतलाओ कि क्या हम कानपुर मे रहते हैं ? क्या हम हिन्दुस्तान में रहते हैं। नहीं, हम अपने आपके प्रदेश मे रहते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप में है। कोई पदार्थ किसी जगह नहीं है। हम आकाश मे भी नहीं हैं। आकाश मे हमारा होना तब कहलाता जब हम पहिले तो आकाश से बाहर होते फिर आकाश में आते । तो भाई हम आकाश मे भी नहीं हैं।

मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसी अपने आप मे अपने ही स्वरूप की खबर रहे, अपने ही स्वरूप की पकड़ रहे, अपने ही स्वरूप का अनुभव रहे तो मैं अत मे अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी हो सकता हूँ।

संचितं कर्म चेदस्तु तेन स्पृष्टोऽपि नो ह्यहम्।
अद्वैतोऽहमयं तस्मात्स्यां स्वस्मै सुखी स्वयम्।।२-४२।।

अर्थ– सञ्चित हुआ कर्म है तो होओ निश्चय से मैं उसके द्वारा छुआ हुआ भी नहीं हूं यह मैं तो अकेला अद्वैत हूं इसलिये मैं अपने आप अपने में अपने लिये सुखी होऊं।

इस आत्मा के साथ बहुत से कर्मो का बन्धन हो गया है। कहते हैं कि कर्मो का बन्धन है तो बना रहे पर हम उन कर्मो से छुवे हुए ही नहीं हैं, उनसे जुदा ही है। अच्छा बताओ, आकाश भीत से छुवा है क्या ? कैसे छुवा जा सकता है। यह भीत तो मूर्त है और आकाश अमूर्त है। एक मूर्त वस्तु अमूर्त वस्तु से छुई हुई नहीं हो सकती । मूर्त अमूर्त की बात तो दूर रही मूर्त मूर्त से भी छुवा हुआ नहीं होता। यह पुस्तक क्या चौकी से छुई हुई है ? अरे यह पुस्तक अपने स्वरूप में है और चौकी अपने स्वरूप मे है। इसी तरह परमार्थदृष्टि से देखो विशिष्टाद्वैत कर्मो का सचय आत्मा मे है तो रहे, मैं कर्मो से छुवा हुआ नहीं हूँ। मैं तो अद्वैतस्वरूप हू। किसी भी पदार्थो के बारे में विकल्प किया कि अच्छा है, लो हम फस गए। अपने उपयोग से आप ही हम फस गए। मैं तो कर्मो से छुवा हुआ नहीं हू। सो मैं इस अद्वैत स्वरूप को देखकर अपने में अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

ये कर्म क्या चीज हैं? कार्माणवर्गणायें सूक्ष्म भरी हुई हैं। जब कर्मबन्धन होता है तो वे कार्माणवर्गणायें कर्मरूप हो जाती हैं। मैं उन कर्मों से छुवा हुआ नहीं हूँ। मैं अद्वैतरूप हूँ, सो मैं इस अद्वैतरूप को देखकर अपने में अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

ग्रामे वने निवासो मे विकल्पोऽनात्मदर्शिन ।
स्वे ज्ञाने ज्ञस्य वासोऽत्र स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-४३।।

अर्थ- मेरा ग्राम में निवास है यह विकल्प अनात्मदर्शी (अज्ञानी) के होता है निश्चयसे आत्मदर्शी का निवास ज्ञानमय स्वय में होता है इसलिये मैं इस ही ज्ञानमय स्वमें स्व के लिये स्वयम् सुखी होऊं।

मेरा ग्राम मे निवास है अथवा मेरा वन मे निवास है, ऐसा विकल्प कौन करेगा ? जिसकी अनात्मदृष्टि है। पर ज्ञानी देखता है कि मेरा तो ज्ञान मे निवास है। लोक भी अनादि से है और हम भी अनादि से है। मै कैसे लोक मे हूँ। अरे मै तो अपने ज्ञानस्वरूप मे हू। ये दुनिया भरके जितने समागम मिलते है, अत मे कुछ रहने का नही है। भैया ! जब इन समागमो को त्यागोगे तभी मुनाफा मिल पायगा अन्यथा इस ससार मे ही भटकना बना रहेगा। तुम अपने स्वरूप को देखकर बतलाओ कि तुम कहा रहते हो ? अरे यह कहीं नही रहता। यह अपने ज्ञानस्वरूप मे ही रहता है। इस ज्ञान के स्वरूप मे जिसकी नजर रहती है उसके परपदार्थो से मोह नही रहता है। तब ग्राम मे निवास हो कि वनमे निवास हो ? ऐसा विकल्प अनात्मीय जीव के होता है। ज्ञानी तो अपने ज्ञानस्वरूप को देखकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होता है। तब मै अन्यत्र हू ही नही केवल ज्ञान मे ही रहता हू। ऐसा मानकर सारे विचार खतम करो और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

उसे अपना हाथ हिला-हिलाकर रोकना चाहते हैं। गेद अपने आप आगे बढ़ती जा रही है पर बच्चे हाथ हिलाहिला कर उसे रोकना चाहते हैं। गेद इस तरह से तो नही रुकेगी। कोई खाता हो और खाते मे गले मे उसका लगता हो तो माँ भी गले मे ठसका लगाने लगती है। और माँ के गले मे ठसका लगने से क्या उसके गले का ठसका ठीक हो जायगा। नहीं, फिर भी कर्तृत्वबुद्धि के ये नाच होते है। अरे ये तो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। किसी के कहने से कुछ होता है क्या ? केवल विकल्प किए जाओ। भैया ! अपना किसी भी परपदार्थ से सम्बन्ध नहीं है। अत मैं अपने मे ही रहकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

व्यवहारे परावस्था निश्चये ज्ञानमात्रता।
ज्ञानमात्रे पराशांति स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-४५।।

अर्थ– परपदार्थ की अवस्था अथवा आत्मा की विभाव अवस्था या आत्मा की क्रियाकारक दशा व्यवहार में ही है निश्चय में तो ज्ञानमात्र अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

परकी अवस्था विभाव की अवस्था जो है वह व्यवहार से मानी गयी है। निश्चय मे तो ज्ञानमात्र आत्मा है। पदार्थो का किससे निर्माण होता है? स्ट्रक्चर क्या है आत्मा का और किससे इसका निर्माण है, इस बात को तो देखो। भैया! ऐसा विचित्र गुण आत्मा का है जो अन्यत्र कही नही मिलता है। ज्ञानरूप परिणमन रहता है। मेरी ज्ञानमात्र अवस्था है। यह जीव ज्ञानस्वरूप है सो ज्ञान से ही निर्मित है, अनादि से निर्मित है स्वभाव से निर्मित है। गति, इन्द्रिय, काय, योग, विषय कषाय इत्यादि ये सब व्यवहार से माने गए है। ये सब आत्माका स्वरूप नहीं है। आत्मा का स्वरूप तो ज्ञानमात्र अवस्था है। ये जो व्यवहार मे रूप,रग,इज्जत, क्रोध, मान, कपाय, राग, द्वेष आदि हैं ये सब मेरे मे नहीं है। मेरा स्वरूप तो केवल ज्ञानमात्र है। अपने स्वरूप का पता लग जाय तो कहना चाहिए कि समीचीन दृष्टि हो गयी। अपना स्वरूप अन्य सर्व अचेतनो से न्यारा है, यदि यह समझ मे आ जावे तो आकुलताये मिट जावेगी। निश्चय से मेरा स्वरूप ज्ञानस्वरूप है। तो उत्कृष्ट शाति तो स्वरूप के देखने मे है। किन्तु मोह मे कैसी कैसी विचित्र परदृष्टिया है।

यथार्थ जीव का क्या स्वभाव है ? इसको पहिचानो और बाह्यपदार्थो से हटकर अपनी यथार्थ बुद्धि मे आवो। मेरा यहा क्या ? मेरा यहा क्या हो सकता है? मैं यहा क्या कर सकता हूँ? केवल ज्ञान की वर्तना ही ज्ञान का आत्मा का स्वभाव है। यहा जितने कषायोका परिणमन है वह कुछ भी इस ज्ञानस्वरूप मे नहीं होता है। शान्ति तो ज्ञानमात्र के दर्शन मे ही है। क्यो शान्ति है? ज्ञानमात्र मे ज्ञानमात्र स्वरूप को सोचो कि मै केवल जाननमात्र हूँ जानन ही मेरा कार्य है तो वहा विकल्प नहीं हो सकते। सो शान्तिका मार्ग शीघ्र मिल जायगा। अपने आपको जैसा मानता है तैसा ही वन जाता है।

इन्द्रिय विपय शाति के लिए हो तो वतलाओ। लोग यद्यपि साधारणतया जानते हैं कि सव मिट जावेंगे फिर मोह करते है। अगर मोह वाह्य से है तो ज्ञान कैसे प्राप्त होगा ? अव भीतर से वोध हो तब तो भीतर वह असर करता है। मैं कुछ नहीं करता। मेरा कोई काम नहीं है। मेरा काम तो शुद्ध

होनेका है, निर्विकल्प होने का है। यदि यह विचार न बना तो ससार मे भटकना ही पड़ेगा और ऐसा ज्ञान बने कि मेरा काम शुद्ध होने का है, निर्विकल्प होने का है तो शान्ति मिल सकती है। सो मैं अपने ज्ञानमात्र स्वरूप को देखकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

रागादिवर्णत प्रत्यग्ज्ञाते ते प्राप्स्यामि शंशिवम्।
विकल्पो विघ्नकृद्यातु स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-४६।।

अर्थ– रागादि विभाव व वर्णरसादि से भिन्न मेरे जान लिये जाने पर शिव स्वरूप सुख प्राप्त करूंगा विघ्न करने वाला विकल्प जाओ हटो मैं तो स्वयम् स्व के लिए स्व में सुखी होऊं।

पदार्थ स्वय अपने आप जैसे हैं वैसे ही रूप मे उनका ज्ञान हो जाना, यही ज्ञानयोग है, समाधि है, कल्याण है। मैं आत्मा अपने आप स्वय अपनी सत्ता से क्या हूँ, इस बात की समझ ही सर्व शिव है। जगत मे क्या क्लेश होगे ? परपदार्थो के परिणमन चलते हैं उनको लक्ष्य मे लेकर, ध्यान मे लेकर बहिर्मुख बनकर यह आत्मा अटपट ख्याल बनाया करता है– इतना ही तो दु ख है। इसके आगे हम और आपको क्या दु ख है ? ख्याल बनाना इतना ही हमारा ऊधम है। परपदार्थो का ख्याल कर लिया और दु खी हो गये। कुछ करने को काम पड़ा है, इतनी पर्यायबुद्धि की कि विवश हो गए। इसीलिए भाई ! पर्यायबुद्धिता हो तो दु खी होना ही पड़ेगा। अभी देखो प्राय. प्रत्येक बन्धु अपने भीतर बड़ी-बड़ी अटक बनाए हुए हैं। घर की अटक है, रोजगार की अटक है, इज्जत की अटक है और नहीं तो दु:ख कहां है ? दु ख नाम की चीज क्या बताओगे ?

कुछ सोच लो, देख लो, बता दो कि वास्तव मे दु ख क्या है ? जिन युक्तियो से अच्छी तरह बताया जा सके कि भाई यह दु ख है। भाई इन समस्त दुखो का एक ही आधार है। वह आधार है अज्ञान।

जब एक अपने आपके सही स्वरूप का पता पा लिया तो बाह्य मे कुछ हो, ज्ञानी तो अन्तर मे प्रसन्न रहता है। जब यह समझ मे आ जाय कि मैं क्या हूँ तब धर्म का मार्ग भी प्रकट होता है। यथार्थ ज्ञान किये बिना अपने आपके दिल को जबरदस्ती कही लगाओ, व्रत, तप आदि मे लगा लो, केवल जबरदस्ती की बात है। आपने अगर अपना उपयोग धर्म मे लगाया तो यह सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व के सीधे रास्ते की बात यह है कि अपने आपकी सहज स्वरूपसत्ता को पहिचान लो। इसी से सब ठीक हो जायगा। मोक्ष का मार्ग प्राप्त हो जायगा ।

केवल एक अपने आपके स्वरूप का पता सही नहीं है, बाह्यपदार्थो मे अपना उपयोग लगा रहे है, और धर्म के कार्य भी कर रहे हैं। कार्य क्यो कर रहे है ? वह धर्म के वास्ते दिनचर्या बन गयी है।

सत्य की झलक आ जाय, आनन्द का अनुभव हो जाय तो सारी परेशानियो की झलक विलीन हो जायगी। जब तक अपने सत्यस्वरूप का अनुभव नहीं है, अपने सही स्वरूप का परिचय नहीं है, यह नहीं पता है कि मैं क्या हू तो उसे क्लेश ही रहेगा।

भैया ! परपदार्थो का अवलम्बन छोड़ दो तब आत्मस्वरूप का अनुभव कर सकोगे। मैं अपने आप क्या हूँ, यह जानना चाहू और बाह्यपदार्थो का अवलम्बन राग द्वेष बनाए रहूँ तो अपने आपके स्वरूप का पता नहीं चलेगा। सबसे बडा और मोटा काम जल्दी कर लेने का यह है कि पर को पर जानो, अहित जानो और पर से उपेक्षा करो। परपदार्थो को अपने उपयोग मे लाने की जरूरत नहीं। इतना करने पर अपने भीतर मे दृष्टि डालो तो अपने स्वरूप का पता लग जायगा। बाह्यपदार्थो को अपने उपयोग मे लाने की जरूरत नहीं। भीतर मे ज्ञान और शान्ति का अथाह सागर लहलहा रहा है बाह्यपदार्थो को अपने उपयोग से छोड़ोगे, उन्हे पर जानोगे तो अपने आपके स्वरूप का पता सुगमतया लग जावेगा, कल्याण होगा। परको अपनाना और शान्ति पाना दोनो एक साथ नही हो सकते।

एक कथानक आता है कि दो चींटी थी। एक रहती थी शक्कर के बोरो मे, खूब शक्कर खाया करे और दूसरी चींटी एक नमक की दुकान मे रहती थी, वह भी जब भूख लगती तो जो कुछ नमक मिलता वह खा लेती थी। किसी तरह से नमक आदि से अपना पेट भर लेती थी। एक बाद शक्कर के बोरों में रहने वाली चींटी नमक की दुकान मे रहने वाली चीटीं के पास गयी। बोली कि बहिन! यहा तो तुम्हे बड़ा दु ख है। यहा पर खारा खाना है, मैं तो यहा पर एक घटा भी नही ठहर सकती। नमक की दुकान मे रहने वाली चींटी बोली – क्या कहती हो, यहा तो बड़ा आनन्द है, मौज है। अरे यहा से ज्यादा आनन्द वहा है जहा पर मैं रहती हूँ। यह बताकर शक्कर के बोरो मे रहने वाली चीटी नमक की दुकान मे रहने वाली चींटी को लेकर अपने यहा गयी। नमक की दुकान मे रहने वाली चींटी को यह विश्वास न हुआ कि वहा पर कोई बढ़िया चीज मिलेगी सो अपने मुह मे नमक की डली दबाकर चली। इस तरह अपना दिन का नाश्ता साथ मे ले लिया। शक्कर मे रहने वाली चींटी ने कहा कि बहिन! विलक्षण आनन्द आया यहा या नहीं ? फिर पूछा कि क्या आनन्द आया तो नमक की चींटी बोली कि कोई आनन्द नहीं आया। शक्कर की चींटी बोली कि तुम चोच मे क्या लिए हो ? बोली कि नमक की डली। अरे तुम तो नमक की डली दवाए हो इसलिए आनन्द नहीं आया। नमक की दुकान मे रहने वाली चींटी बोली कि मैंने सोचा था कि शायद वहा कुछ न मिले इसलिए उसे साथ मे ले लिया था। शक्कर मे रहने वाली चींटी बोली कि अरे इसे हटा दो। अपनी चोच को साफ कर लो, तब शक्कर के कणों को खावो तो आनन्द आयेगा।

तो हम करते हैं धर्म मे क्या कि मन्दिर रोज जाते है और अपनी चोच मे, अर्थात् अपने दिमाग मे बाह्य चीजो को बसाए हुए रहते हैं। अगर हम बाह्य चीजो को मन्दिर मे दर्शन करने मे भी बसाए रहते हैं तो उससे कोई लाभ नहीं होता है। न तो शान्ति ही प्राप्त होती है और न आनन्द ही मिल पाता है। प्रभु के दरबार मे आए है, प्रभु की भक्ति को तैयार हैं तो एक बार तो हृदय साफ होना चाहिए।

दिमाग दिल की सफाई यही है कि अपनी सहज सत्तास्वरूप मे अपने को देख लो। जिसमे अपना चतुष्टय हो, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव हो, अन्य सबसे जो विविक्त हो उस अपने आपको जानो कि मै क्या हूँ ? पर को जानने से कोई प्रयोजन नहीं। परपदार्थो से तुम्हारा नाता ही क्या है ? जिनका जैसा स्वरूप

है वैसा ही मानना, ये ही ज्ञान है। ऐसी हिम्मत करो, ऐसा साहस करो, ऐसा उपयोग बनाओ, ऐसी स्वच्छ, साफ निर्लेप भूमिका बनाओ कि बहिर्मुखी दृष्टि हट जाय तो अपने आपके स्वरूप का पता लगाना सुगम है। अपने आपको यह पता लग जायगा कि मै क्या हूॅ ? मै एक ज्ञानमात्र विलक्षण वस्तु हू, दुनिया मे सब पदार्थो से विलक्षण, समस्त जीवो मे एक रस, चैतन्यमात्र हूॅ, ऐसी जब जीव के स्वरूप की दृष्टि पड़ती है तो बाह्य चीजो से कुछ लगाव नहीं रह जाता है। तो जब मै अलग हूॅ तो मेरा जगत् मे कुछ नही रहा।

जब मै भीतर मे उठने वाले रागादिक भावो से न्यारा होऊ, परपदार्थो से प्रकट न्यारा होऊ और अपने आप मे यह भाव बने कि मै केवल जाननमात्र हूॅ, जानन ही मेरा स्वभाव है। जानन के अतिरिक्त मेरा कोई काम नहीं है। मै एक हूॅ , अछूता हूॅ, ऐसा विलक्षण पदार्थ मै एक चेतन हूॅ, ऐसा ज्ञान यदि अपने आप मे आवे तो शान्ति प्राप्त होगी, अनुपम आनन्द प्राप्त होगा। यदि मैंने इतना अपने आपको जान लिया तो शुद्ध स्वरूप की पहिचान पूर्णरूपेण हो सकती है। विघ्न डालने वाली चीज केवल विकल्प है।

भैया ! ये विकल्प सताने के लिए आते है, विघ्न डालने के लिए आते है। ये विकल्प ही दु खों की परम्परा को बनाया करते है। सो अपने सहज स्वरूप का विचार कर विकल्पो से रहित तथा रागादिक भावो से रहित अपने आपको देखू व यह अनुभव करू कि मै केवल ज्ञानमात्र हूॅ। अपने को केवल ज्ञानस्वरूप नजर आए तो अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी हो सकते हो। अगर अपने इस स्वरूप का पता नहीं है तो जगत् मे रुलना ही बना रहेगा, शान्ति नहीं मिल सकेगी। यदि अपने स्वरूप की दृष्टि रहे इस दुनिया मे अपने आपके स्वरूप को जान लिया तो असीम आनन्द प्राप्त होगा। यदि व्यर्थ की बाते सोचते रहे तो सदा दु ख ही प्राप्त होते रहेगे। बाह्य वस्तुए मायामयी चीजे हैं। उन बाह्य वस्तुओं से पूरा नहीं पड़ने का है। यदि अपने स्वरूप को जान लिया तो मैं सुलझ गया फिर कष्ट मुझे सता नहीं सकते। इतना साहस हो जायगा कि यदि कभी कष्ट आ जाये तो उनको झेलने के लिए तैयार हो जाऊगा।

यह सब अपने ज्ञानस्वरूप के कल्याण का प्रताप है। अगर ज्ञान है तो सब कुछ है और अगर ज्ञान नही है तो कुछ नही है। जन्म हुआ, फिर मरण हुआ। फिर वही शरीर आ गया। फिर वही हाल हो गया। इस जन्म मरण के चक्र से मुक्ति के लिए स्वाधीन उपाय करने का काम है, भीतर मे ज्ञान उत्पन्न करने का काम है। बनावट, दिखावट, सजावट इत्यादि का काम नहीं है। जिसमें अपने कल्याण की भावना हो गयी है वह छिपे छिपे ही अपने आप सुखी हो जाता है अपना शुद्ध धर्म कर लेता है।

एक बुढ़िया थी। उस बुढ़िया का एक छोटा लड़का रुलिया था। रुलिया से बुढ़िया ने कहा कि बेटा जा बाजार से साग खरीद ला। रुलिया बोला कि बाजार मुझे न भेज, क्योकि बाजार मे मैं रुल जाऊगा।

बुढिया बोली कि अच्छा बेटा ! लो यह धागा कलाई मे बाध लो तब फिर तुम नहीं रुलोगे। मा बोली– बेटा, अब तुम नि शक होकर जाओ। जब तक यह धागा कलाई मे है तब तक नहीं रुलोगे।

अब वह रुलिया धागा बाधकर बाजार चला। भीड़ भड़क्का मे वह धागा, कच्चा होने के कारण टूट गया। अब तो रुलिया रोने लगा। बोला – देखो मा मैने तुमसे कहा था कि मुझे मत भेजो, मै रुल जाऊगा। लो अब मैं तो रुल गया। बुढ़िया बहुत परेशान हुई। बुढ़िया बोली – अच्छा बेटा तू सो जा, थक गया होगा । रुलिया के सोते मे ही बुढ़िया ने धागा कलाई मे बाध दिया। जब सोकर रुलिया जगा तो बुढ़िया बोली कि देख बेटा तेरा धागा कलाई मे है तो। रुलिया बोला कि हा मा! मेरा मैं मिल गया।

देखो जैसे रुलिया धागे को न देखकर अपनी मा से कहता है कि हाय मैं तो रुल गया, उसी प्रकार से ये जगत् के मोही प्राणी अपने चैतन्यस्वरूप को न देखकर कहते हैं कि हाय मैं तो रुल गया। भैया! परवस्तु मे ज्ञान आनन्द ढूढ़ना ही तो रुलना है। हम चेतन पदार्थ हैं, हमारा यह कर्त्तव्य है कि जो यह उपयोग तूफान मचा रहा है उसको अपने चित् स्वरूप से बाधे रहो।

हम अपने ज्ञानस्वरूप को खोल ले और अपने आपको यह अनुभव करे कि मैं आनन्दमय हूं, विलक्षण पदार्थ हूँ, किन्तु सर्व जीवो मे एकस्वरूप ज्ञानमात्र पदार्थ हूँ। दृष्टान्त के अनुसार यहा समझो कि जिनवाणी माता ने मुझ बच्चे के उपयोग रूपी कलाई मे चैतन्यस्वरूप का धागा बाध दिया है। देखो वह मा तो बुढ़िया थी पर अब यह मा भी वर्द्धमान याने बढ़ी हुई सर्वोत्कृष्ट हो गयी है। अब तो मा तुमको समझा रही है। धागा बाधती है, बार-बार प्यार करके कह रही है कि जिसमे चैतन्यस्वरूप है वही तू है। जब चैतन्यस्वरूप की दृष्टि टूट जाती है तब तू रुलता फिरता है। सो अब अपने को देख और सुखी हो।

मैं अपने आनन्द की तलाश मे इधर-उधर घूमता हूँ, फिर भी आनन्द नहीं मिलता है। अरे मैं तो स्वय आनन्दमय हूँ। मेरे मे आनन्द कहीं बाहर से नहीं लाना है। मै तो ज्ञान और आनन्द को लिए हूँ। ऐसा ज्ञानमात्र, सबसे निराला जाननस्वरूप हूँ, ज्ञानन ही मेरा काम है। जानन के अतिरिक्त मेरा अन्य कोई काम नहीं है। मैं सबसे अछूता एक विलक्षण पदार्थ हूँ। इतना पता होने से मेरा कल्याण हो सकता है।

देशो देहश्च भिन्नात्मा विकारस्तस्य योगतः।
सर्वे भिन्ना स्वतस्तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-४७।।

अर्थ– देश, देह और परमात्मा तथा पर के आश्रय से होने वाला विकार ये सब निज आत्मा से भिन्न है इसलिये पर दृष्टि को छोडकर स्वय ही अपने में अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

देश और देह ये भिन्न स्वरूपी हैं। इनसे मेरा सुधार बिगाड़ नहीं है, किन्तु उनके योग से अर्थात् उनको विषयभूत बनाकर इस आत्मा में विकार ही उत्पन्न किये जाते हैं। ये सबके सब मुझ इस स्व से भिन्न हैं। मैं यह स्व केवल चैतन्यस्वरूप हूँ। इसमें तो विकार को भी अवकाश नहीं है, इसी कारण स्वरसत आत्मा मे आत्मा के स्वरूपास्तित्व के कारण विकार नहीं होते । विकार होते है, किन्तु ये दर्पण मे प्रतिबिम्ब छाया कि तरह होते हैं ये अपने आधार में जमाव नहीं रखते। इन परभावों को अपनाने

के ही अपराध मे यह विकार बढ़ता रहता है। यह विकार कैसे मिटे, तो इसका प्रारभ ज्ञान से ही होता है और ज्ञान भी ऐसा ज्ञान जो ज्ञान के स्वरूप के ही जानने मे समर्थ हो जाय। यह बात भी तब हो पाती है जब हम ज्ञानातिरिक्त भावो के स्वरूप का परिचय पा ले। पृथक् प्रदेशवान् देह देशादि की तो कथा ही क्या की जावे, जब तक आत्मभूमि मे प्रतिभास विकार भावो का भी अगीकार है तब तक यह अज्ञानी है।

देखो भैया ! प्रत्येक मनुष्य मे यह इच्छा होती है कि मै पदार्थो का सही-सही ज्ञान करू। किसी भी मामले मे जब तक यह शक होता है कि जो मै जान रहा हू वह सच है या नहीं। इसमे ही उसे आकुलताये हो जाती है और जब तक ये आकुलताये रहती है तब तक उसे चैन नही मिलती है। उसे चैन तब तक नही मिलती है जब तक कि पदार्थो को सही न जान जाय। इस कारण पदार्थो को सही सही जानना ही आनन्द प्राप्त करने का उपाय है। पदार्थो को सही सही जानने की तरकीब क्या है ? इस तरकीब को जैन सिद्धान्त ने स्याद्वाद याने अपेक्षावाद माना है। अन्य वैज्ञानिक विद्वानो ने भी अपेक्षावाद नाम से कहा है। जैसे हम किसी मनुष्य के बारे मे सही जानकारी करना चाहते है तो उस मनुष्य के बारे मे नाना अपेक्षाओ से ज्ञान करेगे। यह जानेगे कि यह अमुक का पिता है, अमुक का लड़का है, अमुक व्यापार करने वाला है, अमुक सभा सोसायटी का मेम्बर है आदि अनेक बातो की जानकारी करनी पड़ती है। बीसो बाते उसकी जानकारी के लिए ज्ञात करनी पड़ेगी। ये ज्ञान अपेक्षा लेकर है। जैसे यह पिता है तो सबका पिता नही है, यह पुत्र है तो सबका पुत्र नही है। यह पुत्र तो अमुक बुड्ढे का है। पीछे अपेक्षा की बात लगा लगाकर इसकी बात कही जा रही है। जैसे चौकी को जानना है तो कहेगे कि यह चौकी कैसी है ? तो यह ५ फिट लम्बी है, ३ फिट चौड़ी है और २ फुट ऊची है तो ५ फिट लम्बाई की अपेक्षा है, ३ फिट चौड़ाई की अपेक्षा है और २ फिट ऊचाई की अपेक्षा है। किसी अन्य पदार्थ की जानकारी करना होती है तो नाना बाते जाननी होती हैं। कैसे सही जानू और कैसे बात मैं स्वय समझू ? इसका किसी एक हठ से ज्ञान नहीं होता है।

जैसे एक दृष्टान्त है कि ४ मनुष्य जो अधे थे एक हाथी की परीक्षा करने को चले। एक अधे ने पैर पकड़ा तो बोला कि अरे यह तो खम्भा जैसा है। एक अधे ने कान पकड़ा तो बोला कि यह तो सूप जैसा है । एक ने पेट पकड़ा तो बोला कि यह तो मोटे ढोल जैसा है। एक अधे ने पूछ पकडी तो बोला कि हाथी तो कटीला होता है। चारो के भिन्न-भिन्न उत्तर आए। चारो मे विवाद हो गया, लड़ाई हो गयी, मार पीट हो गयी। पेट पकड़ने वाला अधा बोला कि हाथी तो ढोल का जैसा है पैर पकडने वाला अधा बोला—नही यह तो खम्भा जैसा मोटा है, पूछ पकड़ने वाले अधे ने कहा—नहीं, नहीं यह तो कटीला है, कान पकड़ने वाले अधे ने कहा कि अरे नहीं यह तो सूप जैसा है। इस तरह से चारो अधो मे लड़ाई हो गयी। बाद मे कोई सूझने वाला आया, बोला— हा , भाई सबकी बात ठीक है। उन्हे अपेक्षा समझा दी अन्य अगो का स्पर्श करा दिया। इसी तरह भैया ! किसी पदार्थ के बारे मे सच्चा निर्णय जव अनेक अपेक्षाओ से किया जाता है तब सच्चा निर्णय कहलाता है।

अब भैया ! आत्मा के सम्बन्ध मे जानकारी करना हो तो स्याद्वाद का प्रयोग करना कि यह आत्मा क्या पदार्थ है ? जिस आत्मा मे ज्ञान और आनन्दभाव ही नजर आता है। ज्ञान और आनन्दस्वरूप को जानने से ही आत्मा की जानकारी होती है सो यह ज्ञानानन्दघन आत्मतत्व के बारे मे प्रश्न किया जाता है कि बतलाओ यह आत्मा नित्य है या अनित्य, अर्थात् आत्मा सदा रहने वाली चीज है या मिट जाने वाली चीज है ? क्या उत्तर आयेगा ? आत्मा एक सत् है जो सदा रहने वाला है, कभी नाश नहीं होता है इस दृष्टि से तो आत्मा नित्य है। कोई भी वस्तु हो वह सदा रहती है सिर्फ शक्ल बदल जाती हैं। हवा का पानी बन जायगा, पानी की हवा बन जायगी, हवा गैस बन जायगी। कुछ भी परिवर्तन हो मगर जो चीज है उसका कभी नाश नहीं होता है। जो सत् है उसका विनाश नहीं होता है। यह आत्मा सदा रहने वाला है, अविनाशी है। मगर एक ओर से देखो जो चीज होती है उसका प्रतिक्षण दशा मे परिवर्तन हुआ करता है। जैसे कि वर्तमान समय मे आदमियो की कई शक्ले है। हम और आप मे देखो कितनी शक्ले बनी रहती है। विषयकषायो मे रत रहते है। पशु-पक्षी इत्यादि नाना योनियो मे भ्रमण किया करते हैं। यही उनकी परिणतिया है। जो बात उनकी अब हम देखते है वह सदा नही पायी जाती है। जब परिणति के आधार को देखो तो अनेक परिणतियो मे रहकर भी अपनी स्वरूप सत्ता मे चलते है।

जैसे एक अगुली को कोई पूछे कि कैसी है तो कहेगे कि अगुली सीधी है, टेढ़ी है, नाना रूपो मे बन जाती है, तो नाना रूपो मे अगुली बदलती है, सो ठीक है। मगर नाना रूपो मे बदलने वाली अगुली एक है कि नाना है वह तो एक है। जो पर्याय है वह माया है, अनित्य है और जो एक कुछ है वह परमार्थ है। परमार्थ से ब्रह्म और व्यवहार से माया मे कैसा सम्बन्ध है कि ब्रह्म के बिना माया नहीं ठहरती और माया बिना ब्रह्म नही ठहरता। सत्य के समय मे असत्य भी है और असत्य के समय मे सत्य भी है। असत्य तो यह विकल्प ससार है। तो आत्मा क्या है? सत्य दृष्टि से देखो तो आत्मा नित्य है और परिणति की दृष्टि से देखो तो आत्मा एकरूप मे टिकने वाली नहीं, अत आत्मा अनित्य है।

अब बताओ आत्मा एक है कि नाना है। आत्मस्वभाव को देखो तो आत्मा एक है, किन्तु जब पर्याय दृष्टि से देखो तो नाना छायारूप बनाने वाले नाना रूपो के कारण बन गए और चतुष्टय की अपेक्षा से भी आत्मा नाना हैं। इस कारण आत्मा के बारे मे पूछो कि यह आत्मा एक है कि अनेक है तो उत्तर दोनो होगे। आत्माका स्वरूप चैतन्य है, चित्स्वभाव है। उस चिदानन्द शक्ति मे दृष्टि दो तो आत्मा एकस्वरूप मालूम होता है, कोई अन्य रूपो मे नहीं मालूम होता है। देखो भैया, इन शक्लो का भारी अन्तर पाया जा रहा है ? आपका दिमाग और प्रकार है, इनका दिमाग और प्रकार का है। भिन्न-भिन्न परिणतियॉ लिए हुए हैं। परमार्थ दृष्टि से देखो तो ये सब एकस्वरूप है। आत्मा केवल नजर नहीं आता है। जो उसका स्वरूप है वही स्वरूप मेरा है। जो आपका स्वरूप है वही सब जीवो का स्वरूप है। स्वरूप की दृष्टि में एक का दूसरे से कोई अन्तर नहीं नजर आता है। जिस दृष्टि से स्वरूप मे अन्तर नहीं नजर

आता है उस दृष्टि से अहकार मिट जाता है। इज्जत और पोजीशन अहकार बढ़ाते है। इसी से योगीजन पोजीशन का विकल्प छोड़कर अपने आत्मस्वरूपमे रमते है।

'रमन्ते योगिनो यस्मिन्नति राम '–जहा पर योगी जन रमते है वही राम है। इसे ही आत्माराम कहते है। आत्मा के साथ राम शब्द लगा हुआ है। वह आत्मा स्वरूप से एक है, परन्तु जब अनुभव से देखते है, परिणति से देखते है तो सुख, दु ख, भ्रम ,शाति सबके न्यारे-न्यारे अलग-अलग होते रहते है, जुदा-जुदा अनुभव होता रहता है। जब परिणति की दृष्टि से देखते है तो आत्मा अनेक नजर आते है। अपनी आत्मा के बारे मे यह प्रश्न है कि आत्मा एक है कि अनेक है ? उत्तर मे आता है कि स्वरूप दृष्टि मे तो आत्मा एक है और अनुभव की दृष्टि से आत्मा अनेक है।

भैया? आत्मा के बारे मे जितने अधिक से अधिक धर्म जान सके उतने अधिक धर्म जानने चाहिये। फिर जानने के बाद उन सबको छोड़ देना चाहिए और अपने आप मे अनुभव आवे कि मै आत्मा ज्ञायकभावमात्र हूँ। आत्मा की पहिचान के नाना उपाय है। नाना उपायो से जानो और जब जान चुको तो विकल्प छोड़ दो, फिर आनन्द प्राप्त करो। जैसे भोजन बनाते समय कितना ख्याल रखना पड़ता है ? घी इतना हो, शक्कर इतनी हो, हलुवा इतना बने आदि विकल्प हर तरह से कर लेते हो, पर खाते समय यह ख्याल न रहे कि यह ऐसा बना है, यह ऐसा बनना चाहिए था। वहा तो केवल स्वाद का ही अनुभव रहे। उस स्वाद के अनुभव मे नाना जानकारिया करनी होती है। उसी तरह आत्मा के जानने के लिए नाना जानकारिया करनी पड़ती है। यदि बाह्य की उपेक्षा रहे, सबको भूलकर अपने मे रमता रहे, ज्ञानज्योति का अनुभव करता रहे, तो आत्मा को यथार्थ जान जायगा वह कभी मुक्ति प्राप्त कर लेगा।

यह तो अन्तर वृत्ति रहे और बाह्य मे हमारी वृत्ति क्या होनी चाहिए तो इसके लिए आवश्यक ६ कर्तव्य है– गृहस्थी का पहला काम क्या है कि हृदय मे प्रभु की भक्ति रहे। प्रभु की भक्ति बिना हृदय साफ नही होगा। राग द्वेष आदि ऐबो से परे केवल ज्ञानमात्र उत्कृष्ट, परमपावन प्रभु उपयोग मे रहे। प्रभु का ही ध्यान करे तो हृदय स्व्च्छ होता है, पवित्र होता है। इससे गदगी दूर होती है और फिर धर्म के आचरण मे मन होता है। यही है तुम्हारी प्रभु भक्ति। गृहस्थी का दूसरा काम है गुरु की उपासना करना। प्रत्येक गृहस्थ को अपने गुरु की उपासना करनी चाहिए। ऐसा निर्णय करे कि किसी भी प्रकार की वाह्य भाववृत्ति न रहे सो शान्ति का मार्ग है। ऐसी वृत्ति से रहने वालो के सग मे ऐसी ही शिक्षा मिलती है। तीसरा काम है स्वाध्याय प्रत्येक गृहस्थ मे ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न होना चाहिए। राग द्वेष हटाने का उपदेश करना, ध्यान करना, पुण्य करना, पाठ करना, यही तो स्वाध्याय है।

चौथा काम है गृहस्थ सयम से रहे। जो मन के विचारभावो मे न बह जाय। मन अगर सोचे कि इतनी सम्पदा चाहिए, इतना वैभव चाहिए । इन विचारो मे अगर ढल गए तो यह तो असयम है, यह तत्व की बात नही है। सयम मन का निरोध मे है सो मन पर कन्ट्रोल रखना चाहिए। भैया । किसको खुश करनेके लिए इतने यत्न करते हो, अपने आपको खुश करो।

एक कथा आती है कि वाप वेटा कही जा रहे थे। साथ मे एक घोड़ा था। बाप घोड़े पर बैठा हुआ चल रहा था और बेटा पैदल चल रहा था। दोनो जिस गाव से निकले, उस गाव के लोग बोले कि देखो वाप कितना बेवकूफ है कि आप तो घोड़े पर जा रहा है और बेटे को पैदल चला रहा है। वाप वेटे से बोला कि अच्छा अब तू बैठ, मै पैदल चलूगा। अब बेटा घोड़े पर बैठ गया और बाप पैदल चलने लगा। दूसरे गाव से निकले तो गाव के लोग यह देखकर बोले कि देखो बेटा कितना असभ्य है। आप तो हट्टा-कट्टा घोडे पर चल रहा है और बाप को पैदल चलाता है। अब तो दोनो घोडे पर बैठ गये। तीसरे गाव से निकले। गाव के लोग बोले कि मालूम होता है कि घोड़ा घर का नहीं है। दोनो ही वड़े निर्दयी हो गये। इस तरह से दोनो का नाम धर दिया। अब तो दोनो ही पैदल चलने लगे। चौथे गाव से निकले तो गाव के लोग देखकर बोले कि देखो दोनो ही बेवकूफ है। अरे जब पैदल ही चलना था तो घोडा साथ मे क्यो लिया ? सो भैया ! अच्छा कहने वाले बहुत कम है और बुरा कहने वाले बहुत है। उनका विकल्प करना मूढ़ता है। अब यह सोचो कि मेरा कर्त्तव्य क्या है? लोग कैसे खुश होगे? इससे क्या ? भलाई तो अपनी प्रसन्नता से है। तो भैया ! गृहस्थी का चौथा कर्त्तव्य है सयम। शुद्ध खाना खाओ, न्यायवृत्ति से रहो। जो कुछ भाग्यवश प्राप्त हो जाय उसी को प्राप्त कर सतोष करो। जितना कमाओ उसका कुछ हिस्सा दान मे खर्च करो, और कुछ हिस्सा अपनी गुजर के लिए रखो। अत्याचार और विषयकषाय न हो यही सयम है।

गृहस्थका ५वा कर्त्तव्य है तप करना, तपस्या करना। गृहस्थ को जो भाग्य से मिले उसके यह ४-६ हिस्से कर ले। एक हिस्सा अपने गुजर बसर के लिए रखो, एक हिस्सा अपनी विपत्तियो के लिए रखो। अपने कमाए हुए धन के थोडे से हिस्से से गुजर बसर करो। तृष्णा न करो, यही तप है। यहा खूब सोच लो। परिवार के लोग, मित्रजन आदि ये कोई साथ नहीं देगे। यदि अपने आप मे रमो, तप करो तो कल्याण हो सकता है।

गृहस्थ का छठवा कार्य है दान करना। गृहस्थ को दान करने की रुचि रखना चाहिए तभी उपयोग योग्य रह सकता है और कल्याण हो सकता है। ये सव आवश्यक कर्त्तव्य करे, किन्तु अन्तर मे भेद विज्ञान की भावना वनाये रहे। देश और देह ये सब मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। देश के कहने से वे सब पदार्थ आ गये जो पदार्थ भिन्न क्षेत्र मे है और देह के कहने से वे सब पदार्थ आ गये जो मेरे एक क्षेत्रावगाह मे है। सो इन समस्त परपदार्थो से मैं भिन्न हूॅ। इस एकत्व विविक्त निजआत्मतत्व में ही सन्तुष्ट होऊ, तृप्त होऊ। यही मात्र एक मेरा कर्त्तव्य कृत्य रह गया। इसके वाद तो मैं व्यक्त कृतार्थ हूँ, उक्त ६ कर्त्तव्यों में से देवपूजा का सम्वन्ध तो देव से है और शेष ५ कर्त्तव्यो का सम्वन्ध अथवा सहयोग गुरुविहित है। देवपूजा का रहस्य भी गुरुप्रसाद से प्राप्त होता है। शिष्य और गुरु का सम्वन्ध पिता और पुत्र के सम्बन्ध से भी अधिक महत्वपूर्ण है। जवकि पिता पुत्र को उत्पन्न करे और उसकी देह की रक्षा करे, फिर भी उतना सम्वन्ध नहीं जितना कि साक्षात् शिष्य और गुरु का विलक्षण सम्वन्ध है। गुरु शिष्य को ज्ञानी वनावे, पवित्र बनावे, जीवन किस तरह से व्यतीत हो यह शिक्षा देवे। यही गुरु के कर्त्तव्य हैं। तभी तो

शिष्य और गुरु का पवित्र सम्बन्ध है। इतिहास मे देखो बहुत सी शिष्य और गुरु के प्रति घटनाये है। गुरु द्रोणाचार्य और अर्जुन के सम्बन्ध मे बडी-बड़ी घटनाये मिलती है। और और प्रकार के भी अनेक उदाहरण है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध बहुत ही पवित्र है। शिष्य का कर्त्तव्य होता है कि योग्य बने। शिष्य योग्य तभी बन सकता है जबकि तीन बातो का पालन करे। वे तीन बाते हैं विद्या विनय और ब्रह्मचर्य। इन तीनो बातो का पालन करे। जीवन नियम से उच्च बनेगा। (इस बीच मे भोला बिगड गया सो उसे दूर यहा वहा हटाया जा रहा था तब महाराज भी बोले कि देखो गडबड हुआ यह भोला यह शिक्षा देता है कि जो गडबड करता है उसकी यही दुर्गति होती है।)

नाकारो न विकल्पो न द्वैविध्य न विपत्तय ।
स्व स्व एव शिवस्तस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-४८।।

अर्थ- स्व में स्वय कोई आकार नहीं न विकल्प है न द्विविध भाव है न विपत्तिया हैं स्व में तो शिवस्वरूप स्व है इसलिये मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

इस मुझ आत्मतत्व मे न तो आकार है, न विकल्प है, न द्विविधा है और न कोई विपत्तिया है। यह मै स्व तो मै स्व ही हूँ, स्वय शिवस्वरूप हूँ, आनन्दस्वरूप हू, मै अमूर्त हूँ, रूप रस गध स्पर्श रहित हूँ। अत मुझ मे आकार कैसे हो सकता है ? प्रदेशविस्तार की अपेक्षा भी स्वय मेरा आकार नही है। ससार अवस्था मे तो देह का आश्रय आकार है और मुक्त अवस्था मे कम बढ़ होने का कारण न होने से त्यक्त देह के प्रमाण आकार रह जाता है। मेरे मे स्वय कुछ आकार नहीं है।

विकल्प एक औपाधिक विकार है, ये मेरा स्वरूप नही है, कर्मविपाक का निमित्त पाकर आत्मभूमिकामे विकल्प तरग उठती है। उसका अन्वयव्यतिरेक कर्म विपाक के साथ है, सो यह विकल्प भी मुझमे नहीं है। जब विकल्प भी मेरे मे नही है तो द्विविधा और विपत्तिया मुझमे हो ही कहा से सकती है। आत्मातो अपना एकत्व लिये हुए है उसमे द्वैत की तो सम्भावना भी नहीं और दूसरी वस्तु की सम्भावना के बिना विपत्तिकी भी सम्भावना नही।

यह आत्मा तो स्वय साक्षात् धर्मस्वरूप है। धर्म के विषय मे समन्तभद्राचार्य ने यह बताया है कि "ससारदु खत सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे" जो प्राणियो को ससार के दु खो से छुडाकर उत्तम सुख मे धारण करता है उसको धर्म कहते है। लौकिक जनो की दृष्टि केवल इस भव तक रहती है। इस भव मे मजा मौज कैसे रहे? इस ओर दृष्टि रहती है तो विवेकी, ज्ञानी, साधु पुरुषो की दृष्टि अपने आत्मतत्व पर रहती है। मोही जन केवल इस नरपर्याय को ही अपना पूरा काल समझते है तो ज्ञानी जीव अपने को अनादि अनन्त समझते है। इस कारण ज्ञानी धर्म की रुचि करते है, धर्म धारण करते है जिससे ससार के दु खा मे छूटकर उत्कृष्ट आनन्द प्राप्त करते है।

धर्म क्या है ? 'अहिसा परमो धर्म'। अहिसा ही उत्कृष्ट धर्म है और हिसा अधर्म है। अहिसा क्या चीज कहलाती है ? इस अहिसा का परमार्थस्वरूप क्या है? जो परिणाम अपने आपके ज्ञान और अनुकूलता मे पहुचावे उस परिणाम का नाम अहिसा है। हिसा न करने का नाम ही अहिसा है।

अहिसा क्या है ? अपने प्राणो को दु खो मे न डालना विषयकषायो को अपने मे न बसाना अहिसा है। परमार्थ मे हिसा और अहिसा का अभिप्राय यह है कि रागादि विकार होना हिसा है और रागादि विकार न होना अहिसा है और व्यवहार मे किसी जीव को न सताना अहिसा हुई और जीवो को सताना ही हिसा हुई। व्यावहारिक हिसा और अहिसा का स्वरूप लोक मे अत्यधिक प्रचलित है। वास्तव में अपने ज्ञान को निर्मल रखना अहिसा कहलाती है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि परिणामो का करना हिसा कहलाती है। हम अहिसा कर सकते है तो अपने मे ही कर सकते है। अगर हिसा कर सकते है तो अपने

मे ही कर सकते है। दूसरो पर हिसा और अहिसा नहीं की जा सकती है। यह अपने वास्तविक स्वरूप की बात कह रहा हूँ। कोई मनुष्य दूसरे जीवको सताए दु खाए और यह कहे कि मेरे परिणाम तो निर्मल है, मेरा सताने का भाव नहीं है तो यह नहीं माना जा सकता है। जो अपने स्वरूप रो हटकर वाह्य मे प्रवृत्ति करता है, दूसरो का दिल दुखाता है वह स्वय अपने परिणाम मलिन करता है। दूसरो को कोई दु ख दे नहीं सकता है। जिसने अपने परिणामो को मलिन किया, दूसरो का दिल दुखाया, उनको कहते है हिसक।

जो अपने ज्ञानको मलिन बनाए, दूसरो को सताए उसे हिसक कहते है। जो हिसा करता है वह अपने आप पर करता है, जो अहिसा करता है वह अपने आप पर करता है। हिंसा करने वाला अपने ही ऊपर अपना घात करता है, अपने को ही बरबाद करता है। जगत् के जजालो मे अपने आपको फसाता है।

हिसा ४ प्रकार की होती है– (१) सकल्पी,(२) आरम्भी,(३) उद्यमी और (४) विरोधी। सकल्पी हिसा वह है जिसमे इच्छापूर्वक अभिप्राय से किसी जीव को दु खी किया जाय, सताया अथवा मारा जाय। जैसे लोग शिकार खेलते है, किसी जीव को मारते है। दूसरी हिसा है आरम्भी। रसोई करने मे पीसने मे, कूटने मे,घर के आरम्भो मे जो हिसा होती है उसे आरम्भी हिसा कहते है। तीसरी हिसा है उद्यमी। सावधानी रखकर नीति का विचार करके रोजगार किया जाय फिर भी उसमे हिसा हो जाय उसे कहते है उद्यमी हिसा। कोई मनुष्य जान लेने आ जाये अथवा अपने परिवार मे किसी का शील भग करने आ जाये ऐसे प्रसग मे दुष्ट का मुकाबला किया जाता है। उससे मुकाबला करने मे जो घात हो जाये उसे कहते है विरोधी हिसा।

इन चार प्रकार की हिसाओ मे गृहस्थ सकल्पी हिसा का त्यागी बन सकता है। तीन हिसाओं का त्यागी नही बन सकता है। घर मे रहते तो चक्की चूल्हे आदि घर के कामो को करने पड़ते है। कुछ उद्यम करते है। कोई दुष्ट प्राणी आक्रमण करने आवे तो उसका मुकाबिला करना पड़ता है सो गृहस्थ तीन प्रकार की हिसाओ का त्याग नही कर पाता है। इस कारण तीन प्रकार की हिसाओ का दोष नही लगता। यह नही कहा जा सकता है कि गृहस्थ को तीन हिसाओ का दोष नही लगता। वे दोष करते है मगर हिसा का त्याग नही है। चार प्रकार की हिसाओ का त्याग साधुजन कर सकते है। साधुजन केवल अपने ज्ञान की रक्षा मे लगे रहते है। उनको अपने प्राणो की परवाह नही रहती है किसी आरम्भ और उद्यम की चिन्ता मे नहीं रहते।

उनका वध हो जाय तो यह भी विरोधी हिसा ही है। मनुष्य की शोभा दया की मूर्ति बनने मे है। दयावृत्ति मे ही मनुष्य की शोभा है। और दया तब प्राप्त हो सकती है जब व्यसनो का त्याग हो।

द्यूत च मास च सुरा च वेश्या, पापर्द्धि चौर्या पर दार सेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि, घोरातिघोर नरक नयन्ति।।

जुवा खेलना पहिला और सब व्यसनो मे लगा देने वाला व्यसन है। मनुष्य को इस व्यसन का त्याग अवश्य करना चाहिए। चाहे जुवा खेलने मे हारे चाहे जीते कदर कुछ नही रहती है। सदा हैरानी ही रहती है। देखा होगा कि बहुत से लोग सट्टा खेलते है। जुवा व सट्टा खेलने वाले रात दिन चितित रहते है। पाडवो को देखो वे तो द्रोपदी को भी हार गये फिर क्या हुवा सब जानते है। तो भैया ! इस जुवा का त्याग करनेसे ही भलाई है। दूसरा व्यसन है मासभक्षण। जीवो पर दया किये बिना धर्म नहीं होगा। मासभक्षण का अवश्य त्याग होना चाहिये। शराब, मदिरा आदि का पान करना यह तीसरा व्यसन है, सुरा शराब तो महुवा, जौं, अगूर आदि को सडाकर बनाई जाती है। पहले उसमे कीड़े (बैक्टीरिया) पैदा किए जाते है फिर वैज्ञानिक तरीके से उनका रस निकालकर उसमे मादकता उत्पन्न की जाती है। तम्बाकू, भाग, जरदा, चरस, गाजा, अफीम आदि मे तथा शराब मे निरन्तर जीवो की उत्पत्ति होती रहती है। ये मादक पदार्थ चित्त को भ्रमित करते रहते है।

एक सच्ची घटना है। सप्तव्यसन का त्यागी एक जैन था, उसको नशा करने का त्याग था पर आलू खाने का शोकीन था उसके मित्र जो व्यसनी थे एक दिन उसकी बहस हो गई आप मुझे नशा नही करा सकते मित्रो ने एक तरकीब निकाली एक आलू की टिकिया बेचने वाला उनकी सर्राफा की दूकान पर आता था और सयोग से वह जैन भी उस रोज वहा बैठा था सो सेठ टिकिया वाले को आलू मे भग मिलाने का इशारा कर आया और जैन भी स्वाद-स्वाद मे खाता ही चला गया। खैर बात दोपहर २ बजे की थी सब यार दोस्त रातको दस बजे तक साथ रहे। जैन रात को कुछ अन्न नही खाता था अत रात्रि दस बजे जब वह घर लौटा तो बच्चो के लिए बाजार से रबडी लेता आया। घर पर बालक और पत्नी सो गए थे अत उसने रबडी खुद खाली। बस रबड़ी का खाना था कि उसकी हॅसी छूट पड़ी और इस कदर हॅसा कि वह अपनी मॉ व पत्नी से यह भी न कह पाया कि मैने दोपहर मे कुछ खाया है मा समझ गई और उसने नीबू खिलाया तथा सिर मे तेल वगैरा मला तब कही जाकर वह मरणासन्न कुछ नींद मे आया और कई दिन मे ठीक हुवा। बाद मे वही जैन इस कुसग से सप्तव्यसन का सेवी हो गया। चौथा व्यसन वेश्या सेवन है। कितना खोटा व्यसन है। धन हीन होने पर भी जूतो मे पडा रहना पसन्द करता है। चारुदत्त की कथा सुनी होगी । धनहीन होने पर किस प्रकार लैट्रीन मे फैंक दिया गया। अजन चोर को चोरी भी करना पड़ी। पाचवॉ व्यसन पापर्द्धि यानी शिकार भोले भाले निर्दोष पशुओं का किस प्रकार शिकार किया जाता है किसी से छिपा नहीं है। जिनकी उड़ान मीलो की है उन्हे छोटे-छोटे पींजरो मे रोका जाता है।

कष्टे प्राणानुपेक्षन्ते ज्ञान रक्षन्ति योगिन ।
ज्ञान ज्ञाय प्रिय तत्स्वे स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-४६।।

अर्थ– योगीजन कष्ट उपसर्ग होने पर प्राणों की उपेक्षा करते हैं। और ज्ञान को रक्षित करते हैं निश्चयसे ज्ञानी के लिये ज्ञान ही प्रिय है वह ज्ञान अपने में ही तो है इसलिये अब अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

योगीजन कष्ट आने पर प्राणो की भी उपेक्षा कर देते है, लेकिन ज्ञान की रक्षा करते है सो यह स्पष्ट जाहिर है कि ज्ञानी को ज्ञान ही प्रिय है। ज्ञानप्रिय होना भी चाहिये, क्योकि एक तो ज्ञान शाश्वत सम्पदा है और दूसरी बात ज्ञान आनन्द का अविनाभावी है। पौराणिक दृष्टान्त भी अनेको मिलते है जिनसे उक्त बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है।

राजकुमार सुकौशल, गजकुमार आदि अनेको युवक चढ़ती जवानी मे राज्यपाट वैभव का त्याग कर ज्ञान की उपासना मे लग गये थे। उपासना काल मे उन पर अन्य जीवो के द्वारा बड़े कष्ट किए गये। यदि वे चाहते तो जरासे ही बल प्रयोग मे आक्रान्ता को भगा सकते थे किन्तु उन्हे विकल्प पसन्द न था। विकल्प न हो, ज्ञान ज्ञानस्वरूप मे स्थित रहे ऐसी स्थिति के एवज मे यदि प्राण जाते हो तो जाये ऐसा उनका दृढ सकल्प था। प्राण तो औपाधिक विकारी तत्व है इनसे तो आत्मा की बरबादी ही है। ज्ञान ज्ञानस्वरूप मे रहे यह आत्मा की आवादी है । आत्मा की इस आबादी मे इतनी समृद्धि है कि सर्वज्ञता आनन्दमयता, निर्विकल्पता आदि सव ही कल्याणपूर्ण प्रगट हो जाते है।

भैया ! जगत् मे जितने भी दु ख होते है वे मात्र कल्पना से है। मनुष्यो मे देखो हर एक जगह दु ख ही दु ख नजर आते हैं। अपनी बाते खुद सब देखते है। दूसरे को तो लगता है कि ये सुखी होगे। यह बहुत सलोना है, यह बहुत बढिया है, यह बडे मजे मे होगा ऐसे दूसरो मे लगता है मगर अपने आपको देखो तो दु ख नजर आते है। अपने स्वरूपसे चिगे तो वहा दु ख ही दु ख नजर आता है। जो बात सही नहीं है और उसे सही मान ते तो दु ख मिलेगे। प्रत्येक मनुष्य का जी किसी न किसी मे फसा हुआ है, किसी न किसी की मोह ममता मे है तो इसी से दु ख आते है। कोई किसी गति से आया जिस पर भी ये जीव तो यहा से जायेगे ही, उन सबसे एक दूसरेका कोई सम्बन्ध नही। सब अपने अपने चतुष्टय मे है, न्यारे न्यारे है आप आप है, वे वे हैं, कोई गुजाइश नही, पर मानते है कि यह मेरा है। इसी कल्पना से दु ख पैदा हो रहे हैं।

यदि मैं निज ज्ञानानन्द घन के उपयोग मे बना रहूं, अपने ही स्वरूप के दर्शन करू तो परमात्मा के दर्शन कर सकता हूँ। परमात्मा दर्शन मे ही शान्ति मे रह सकता हूँ, आनन्द से रह सकता हूँ। भीतर ही सारा वैभव है उसको छोडकर बाहर में ही ढूढने लगे तो दु ख प्राप्त होगा। जितने भी सत हुए हैं, वे ही स्वरूप मे रत रहते थे। अपने से बाहर की चिन्ता नहीं करते थे। ज्ञानरूप अपने को ही मानते थे । ऐसे वे सत थे। वे किसी भी मोह ममता में नहीं रहे। इसी कारण आनन्दमग्न थे।

दु ख तो स्त्री पुत्रादि के मोह मे ही है। यदि स्त्री पुत्रादि के मोह मे रहकर दु ख कम हो जाये तो बतला दो। दु ख कम नही होगे, दु ख तो बढ़ ही जावेगे। अरे स्त्री से मोह किया तो दु·ख है, स्त्री ने अपना मुह फेर लिया तो दु ख। यदि स्त्री रूपवान है तो उससे दु ख मिलेगे कि नहीं । बहुत दु ख मिलेगे। यदि स्त्री रूपवान है तो मोह होगा, उसके पीछे अनेक परेशानिया होगी। यदि पुत्र कुपूत होगा तो उससे मुख मोड़ लोगे, पर यदि पुत्र सुपूत हुआ तो उसके पीछे मर मिटोगे, जिन्दगीभर श्रम न छोड़ोगे। बाहरी चीजे जितनी मिलेगी वे सब दु खो के कारण ही होगी, बाहरी चीजे सुख का कारण नही हो सकती है। आज आपने धन पाया, लाख का धन पाया, करोड़ का धन पाया, राज पाट पाया, बहुत सी पूजी पायी। इन सबको चिपकाये रहने से इन सबको ही अपना सर्वस्व मानने से क्या क्लेश मिटेगे? नहीं, इनसे तो क्लेश ही बने रहेगे। दु खो को करने वाला भैया कोई दूसरा नही है। खुद ही सत्य बन जावो तो दु ख सब समाप्त होगे।

मान लिया कि १०-२० लाख रुपया का धन हो गया, कुटुम्ब परिवार हो गया, नाते रिश्तेदार हो गए तो क्या शान्त हो जावोगे ? नहीं। तब इन सबको पराया जानो और सुखी होओ। ये तुम्हारे सुख के साधन नही होगे। इनसे तो क्लेश ही प्राप्त होगे। दु ख तो सब जीवो ने अपने स्वरूप से चिगकर व्यर्थ ही मोल ले रखा है। देखो सबकी अलग-अलग दुनिया है, जैसा जिसका लगाव है, वैसा उसका चित्त है ? है कुछ नही।

तो भाई दु ख कहा से मिले? दु ख तो बाहर की दृष्टि से ही मिले। दु ख अपनी कल्पनाओ से मिले, अपने ख्याल से मिले, अपने भ्रम से मिले। अगर यह भ्रम छूट जाय तो अभी दु ख मिट जावेगे। पर यह भ्रम सब अपने अपने मे लिए हुए है। ऋषियो ने बताया है कि प्राणियो की आत्मा का आदर तो विवेक से है। जैसा मै हूँ तैसे सब है। सबमे साधारण स्वलक्षण अवगम हो यही ज्ञानका प्रकाश है। मै शुद्ध चैतन्यस्वरूप हू। यदि कीड़े-मकोड़े पशु पक्षी इत्यादि कोई भी जीव नजर आवे तो वे सब चैतन्यस्वरूप है, ऐसा तुम्हारा दृढ़ विश्वास हो तो यही ज्ञान है। योगी वह है कि किसी का घट बढ़ विकृत परिणमन भी यदि हो रहा हो मगर वह अपनी ही तरह सबको शुद्ध चैतन्यस्वरूप मे देखे यही प्रभुपना है। सब जीवोमे वही प्रभु का रूप देखे कि यह भी प्रभु का रूप है, यह भी शुद्ध चेतन है, ऐसा जो सब जीवो मे देखे वही योगी है।

भैया ! हम क्या है ? इसको हम माप न सके, जान न सके, अपना महत्व न जान सके। अपने मे जो प्रभुता विराजमान है, उसको जाने बिना क्लेश कैसे मिट सकेगे ?

भैया ! जिन्दगी भर मोह किया, लड़े भिडे, मोह करके रहे, राग द्वेष करके रहे तो बतलाओ कौनसी शान्ति पैदा करने की चीज हुई ? ये सब कोई सुख के कारण नहीं है। कहते हैं कि धन हमे बहुत बढ़ाना है। अरे बतलाइए लखपति हो गए तो क्या आपका मरण नही होगा। क्या उससे ही शान्ति प्राप्त हो जावेगी और गुजारा तो किसी तरह हो सकता है, पर वस्तुत धन की चाह जीवन के गुजारने के लिए

नहीं है। जो यह कहे कि मुझे सेठ बनना चाहिए, मुझे इज्जत वाला बनना चाहिए बस इन्हीं विचारो से तो वह प्रभु से दूर होता चला जा रहा है। इस दुनिया मे जो मोह करके उनसे लिपटे हुए चल रहे हैं वे भी अपने को अपने प्रभु से दूर कर रहे हैं। अरे ये ससारी मोही, कलकित, मलीन लोगो से लिपटे हुए चले जा रहे हैं तो बतलाओ दु ख कैसे न हो? प्रिय आत्मन्! अपने प्रभु की ओर आओ। इन परिवार के लोगो की आसक्ति छोड़ दो। उन्हे यह समझो कि अब ये गले पड़ गये हैं। सो गले पड़े बजाये सरे, करना पड़ता है, किन्तु यह काम नहीं है कि मैं उनका पालन पोषण करू। मेरा तो काम यह है कि अपने प्रभु के भजन करू। अपने स्वरूप मे ही बसना है, ऐसा जानकर सतोष प्राप्त करे, यही ज्ञान है।

वास्तव मे यह जानो कि सब जगत् के जीव एक-समान है। यही आत्मस्पर्शी ज्ञान है। यह मै हूँ, ऐसे ही ये है, ये सब प्रभु के रूप है– ऐसा जानकर जगत के सब जीवो से प्रेम करो। यही प्रभु से प्रेम उत्पन्न करने का उपाय है। मैं यहा पर जो कुछ देखता हू सब जीव उस प्रभु के ही रूप हैं।

ज्ञानमस्तीति कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च ततोऽन्यके।
त्रिकालेऽपि न तत्तस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-५०।।

अर्थ– ज्ञान है यह ही तो कर्तृत्व है और ज्ञान है यह ही भोक्तृत्व है उससे भिन्न अन्य पदार्थों में तीन काल में भी वह अर्थात् कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं है इसलिये स्वय ही मैं अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊ।

यहा जीवो मे कर्तापन क्या है और जीव मे भोक्तापन क्या है ? यह कहा जा रहा है यानी जीव करता क्या है ? अन्य पदार्थ तो अन्य ही हैं, उनकी सत्ता तो जुदा है। परपदार्थो मे यह जीव कुछ कर नहीं सकता है। जैसे कोई आदमी दूसरे आदमी को कितना ही डाटे, गुस्सा करे फिर भी उस आत्मा का कुछ कर लेगा क्या ? उस आत्मा का कुछ नहीं कर लेगा। जो कुछ करेगा वह अपना ही करेगा। कोई दूसरे का कुछ नहीं कर सकता है। घर के बाल-बच्चो पर कितना ही नाराज हो जावे, कितना ही गुस्सा हो जावे पर उनका कुछ कर लेगे क्या ? उनका कुछ न कर सकेगे। घर के बाल-बच्चे कहना कुछ मान गए तो क्या तुमने कुछ दिया। अरे उनके मन मे आ गया तो कर दिया और यदि मन मे न आवे तो न करेगे। कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्त्ता नहीं है। तुम तो केवल अपना ज्ञान बनाते रहते हो। कभी तो तुम सही ज्ञान बनाते रहते हो और कभी विकृत बनाते रहते हो। ज्ञान बनाया, जानकारी की, इतना ही मात्र कर्तापन है और बतलाओ ज्ञान से भोग किसका किया ? जानकारी कर ली उस रूप परिणम गये यही भोगा। ये जो विकल्प उत्पन्न होते हैं वे ज्ञान के ही विगड़े रूप हैं। यह अनुभव ज्ञान से ही किया करता है ना ? ज्ञान होता है तो इतना ही तुम्हारा कर्तापन है। जितना ज्ञान होता है उतना ही भोगते हैं।

भैया! परके कर्तृत्व की दृष्टि हटाओ। मकान बनवाना है, दुकान बनवानी है, लड़कों का पालन-पोषण करना है आदि ये सब मिथ्यात्व बुद्धिया हैं। तुम तो केवल अपना परिणमन करने वाले और भोगने वाले हो। अपने को भूलकर तुम कुछ भी हित नहीं कर सकते हो। अपने आपको समझो तो ज्ञान का दीपक

जल जायगा याने अपनी ओर उपयोग लगाओ तो दुनिया से निराले ज्ञानमय निज को पहिचान लोगे। इससे ही ज्ञान होता है। बस इतना ही तो कर्तापन है। जितना ज्ञान होता है उतना ही भोक्तापन हुआ। जब तुम भोजन खाते हो तो स्वाद मे आनन्दमग्न हो जाते हो। जब उस भोजन मे आपने ज्ञान बनाया कि भोजन बढ़िया है, मीठा है तो उस ज्ञान मे आनन्द मिला कि भोजन मे आनन्द मिला ? आनन्द तो उस स्वाद के अनुभव से ही मिला। तीन कालो मे भी तुम अन्य पदार्थो के न कर्ता हो और न भोक्ता हो। अरे वाह्यपदार्थो के करने की बुद्धि मिटाओ। यह विश्वास हो जाय कि मै दूसरे का कुछ कर नहीं सकता हूँ तो स्वतन्त्र आत्मतत्व के दर्शन सकता हू।

अरे जब दूसरे पर मेरा अधिकार नही तो मै उनका कुछ कर ही क्या सकता हूँ ? फिर क्रोध करना नादानी ही तो है। दूसरे तो दूसरे ही है, वे अपने विचार मे मग्न है, हम अपने विचार मे चल रहे है। फिर घमड करने का क्या काम ? दूसरे तो दूसरे ही है वे हमसे जुदा है, उनका तो मै कुछ कर ही नहीं सकता हूँ। तब फिर छल-कपट करने की बात ही क्यो है ? चाहे जितना ही धन जोड़ लेवे, मगर सुखी न हो सकेगे। कितना ही धन का सग्रह कर ले, पर शाति न प्राप्त हो सकेगी। हम अपने ही कर्ता है और अपने ही भोक्ता है। सो तृष्णा करना भी व्यर्थ है। इस कारण भैया ? सार इसी मे है, कल्याण इसी मे है। सारे पदार्थो से हटकर अपने ही स्वरूप को देखकर, अपने मे ही रत होकर सुखी होओ।

दृश्यं न दर्शनकस्तत्त्वमुभे सयोगजे दशे।
किन्तु ज्ञायकभावोऽह स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-५१।।

अर्थ– न तो यह दृश्यमान् जगत तत्व है और न ऐसा देखने वाला तत्व है दोनों संयोग से उत्पन्न होने वाली दशाए हैं किंतु मैं तो ज्ञायकभावस्वभावी हू सो ज्ञायक स्वरूप अपने आत्मा में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

देखो देखने वाली और दिखने वाली ये दो चीजे है। तो ये दोनो हीं तत्व नहीं है। दुनिया मे ये दृश्य और ये दर्शक दोनो ही सार की चीज नही है। देखने वाले है ये, ये भी सयोगजन्य दशा है और दिखने मे जो आ रहा है वह भी सयोगजन्य दशा है। ये जो देखने वाले है और जो दिखने मे आ रहे है वह सब अनेक पदार्थो के सयोग से उत्पन्न दशा है। तत्व नही है, परमार्थ नहीं है, वास्तविक नहीं है। सब सयोग से उत्पन्न हुए है। जीव और कर्मो के सयोग से यह शरीर बन गया। परमाणु और परमाणु का सयोग हो तो दिखने वाले ये भौतिक बन गए। तो दिखने मे जो भौतिक आ रहे है वे और देखने वाले असमानजातीय पर्याय ये सब सार चीजे नही है। मिट जाने वाली है। देखने वाले जो मनुष्य हैं, पशु-पक्षी है वे सब जीव सयोगजन्य है ये सब शुद्ध तत्व की चीजे नहीं हैं। जीव और कर्म के सवध से ही यह शरीर बन गया।

भैया ! तीन चीजे द्रव्यकर्म, भावकर्म और नौकर्म इनका समुदाय भूत यह सब जीव समूह नजर आ रहा है। इन्हीं को कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर कह लो। भावकर्म हुए, रागद्वेष हुआ,

इसके कारण बना द्रव्यकर्म और इन दोनो का फल मिला शरीर। यह सब निमित्तनैमित्तिक भाववश हो रहा है। इसमे शुद्धतत्व क्या क्या करे ? तब फिर किसी पर क्या आपका वश चल सकता है ? क्या शरीर को मिटाने का वश चल सकता है ? नही चल सकता है। इसी प्रकार कर्मो के मिटाने का वश नहीं चल सकता है। रागद्वेषो के मिटाने का वश चल सकता है। तो भैया ! कर्मो के कारण भूत ये ही कारण शरीर है, शरीर के कारण द्रव्यकर्म है, द्रव्यकर्म के कारण भूत भावकर्म है। अपना परपदार्थो पर कोई वश नहीं है। सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर तथा अन्य ये दिखने वाले जो कुछ है उनमे कोई तत्व की चीज नहीं है और देखने वाले जो लोग है उनमे कोई तत्व की चीज नही है। वह सब तो सयोगजन्य दशा है। परन्तु मै तो स्वत सत् हूँ, स्वत सिद्ध हू, ज्ञायकभावरूप हूँ, ज्ञानज्योमिमात्र हूँ। ऐसा ज्ञानमात्र अपने आपको निरखकर, अपने उपयोग मे लेकर अपने आप सुखी होओ। बाहर मे सुख की आशा करना व्यर्थ है। तृष्णा करना व्यर्थ है। उन गदे नाक बहाने वाले स्त्री-पुरुषो मे ही अपने को फसाये रहने से कुछ मिलने का हो तो बतलाओ। ज्ञानस्वरूप मे परमात्मतत्व है, उसका ध्यान न हो तो मनुष्य जन्म बेकार है। अपनी जिम्मेदारी अपने मे समझो। अपना शरण अपने को ही समझो। इस जीव का सार तो निश्चय मे आत्मा है और व्यवहार मे प्रभु भक्ति है। प्रभुभक्ति और आत्मानुभव हो तो अपना आत्मा ही शरण है। आत्मा मे प्रभुभक्ति है। प्रभु भक्ति कारण है और आत्मभक्ति कार्य व ध्येय है। आत्म भक्ति करना यही सुख का मार्ग है।

यदा देहोऽपि नैवाह नृस्त्र्यादेस्तर्हिका कथा।
ज्ञानमेवास्ति देहो मे स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-५२।।

अर्थ– जब देह ही मैं नहीं तब मनुष्य स्त्री आदि होने की तो कथा ही क्या है । मेरा तो ज्ञान ही देह है इसलिये ज्ञान शरीरी निज आत्मा में निज के अर्थ अर्थात् निज ही जिसका फल पा सकता है स्वय सुखी होऊं।

जब मै देह मे ही नहीं हूँ तब फिर मैं यह सोचू कि मै मनुष्य हूँ, स्त्री हूँ तो बड़ी गलती है, क्योकि पुरुप और स्त्री के अवयव, अग व चिन्ह शरीर मे ही है और शरीर मै नहीं हूँ तब फिर मै स्त्री हूँ , पुत्र हूँ यह कैसे हो सकता है? आत्मा की बात कही जा रही है, जो इस देह के अन्दर की आत्मा है, जीव है वह न स्त्री है और न पुरुप है। इसका सारस्वरूप तो ज्ञान ही है। ज्ञान के सिवाय आत्मा में और क्या पाया जाता है ? ज्ञानमात्र मैं हूँ ऐसा विश्वास न होने के कारण इस जीव की बाहर मे दृष्टि फैल गयी है और अपने को नाना रूप मानते हैं। सो जरा-जरासी बातो मे विकार होता है, छल-कपट आदि की बाने सूझती है। पुरुप व स्त्री के वेप मे आने का कारण अपने स्वरूप का अज्ञान है। भैया! अमृतमय तो यह खुद है, आननदस्वरूप तो यह खुद है, पर इसकी अपने स्वरूप मे दृष्टि नहीं रह जाती सो दु खो की बहार छा जाती है। देखो दु ख है केवल ख्याल भर। ख्याल के सिवाय और कोई दु ख नहीं है। दु ख आते है क्या अन्य कहीं से ? ख्याल बनाया, दु ख हो गए और अच्छा विचार बना लिया, दु ख मिट गए। दु खी होना, सुखी होना अपने ज्ञान पर निर्भर है। मगर ऐसा ज्ञान सर्वसाधारण मे पाये

कहा ? जिस ज्ञान से आनन्द आता है वह ज्ञान बना रहे यह बात हो कैसे किसकी शरण जाये, किसको अपनी शरण माने, किसकी बात करे कि हमे ज्ञान की ही प्रेरणा मिले। जगत मे ऐसे मिलने वाले कठिन है. नहीं मिलते है। जिससे बात करे वे रागद्वेष बढ़ाने की ही बात करेगे। समता और ज्ञान की सहज भी बात नहीं करेगे। तव फिर क्या शरण रही ? किसके पास जाकर कहे, रोवे कि मेरे ज्ञान की कुजी ठीक कर दो ताकि मै सुखी हो जाऊ।

भैया ! ज्ञान सही बनाए बिना सुख नही हो सकता है। अपने से बाहर न देखो, सुख तो अपने शुद्ध ज्ञान से ही मिलता है। यहा बैठना है, वहा उठना है, मै धनी हू, मै गरीब हूँ, मै सुखी हूँ, मै दु·खी हूँ, ये सारे विकल्प अज्ञान है, और इन दशाओ रूप अपने को माना तो मिथ्यात्व है। इससे आनन्द की आशा कहा है सो सुख के वास्ते लोग घर बसाते है, परिवार बढ़ाते है, दुकान, मकान आदि ठीक करते है। सब कुछ श्रम शान्ति के ही लिये करते है, मगर शान्ति नही मिलती है। आप लोगो को यह अनुभव भी है कि शान्ति प्राप्त करने का यह उपाय ही नहीं। शान्ति का उपाय केवल आत्मस्वरूप का सही ज्ञान करना है। ब्रह्म का ज्ञान कहो, परमात्मा का ज्ञान कहो, आत्मा का ज्ञान कहो यही शान्ति का उपाय है। शान्ति का स्वसवेदनातिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। अगर यथार्थ ज्ञान बन जाय तो यह इस जीव की सबसे अधिक विभूति है। ज्ञान जाग जाय इससे बढ़कर अन्य कोई वैभव नही है। इसके भीतर लालसा की व्याधि नही होती। लालसा बाहर ही बाहर है। यह परिवार मेरा है, यह धन मेरा है, ऐसे मोह मे जो आसक्ति हो गयी है वह ठीक नहीं है। इस मोह मे ऐसा साम्राज्य छाया है कि जगत् के जीवो को सुख नहीं नजर आता है।

जो भाव परपदार्थो को अपना माने उसे मोह कहते है। जो इस देह से मोह करता है वह भी मोह ही है। यह शरीर तो जला दिया जायगा, नष्ट हो जायगा। यह आत्मा यहा से चला जायगा। कहा चला जायगा, यह इस जीव की करतूत पर निर्भर है। जिसने जिन्दगी मे कुकर्म किए उसकी दुर्गति है और जिसने सत्कर्म किए वह सद्‌गति मे जायगा। मै तो ज्ञानमात्र हू। यह ज्ञानस्वरूप ही मेरा शरण है। इस कारण इस ज्ञानमात्र अपने स्वरूप को देखो और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

यत्र वासो रतिस्तत्र तत्रैकत्वं ततो निजे।
उषित्वा ज्ञानदृष्ट्याह स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-५३।।

अर्थ– उपयोग-स्वरूप आत्मा का जहाँ वास होता है वहाँ रति हो जाती है जहाँ रति होती है वहाँ एकपन हो जाता है इसलिये मैं निज आत्मा में ज्ञान दृष्टि के द्वारा निवास करके अपने में अपने अर्थ स्वयम् सुखी होऊ।

जहा पर उपयोग का निवास होता है वहा रुचि होती है और जिसमे रुचि होती है उस ही मे तन्मयता होती है, ऐसी बात है ना। जिसमे ज्ञानी का चित्त बसा रहता है वही स्वरूप ब्रह्म होता है और जिसमे रुचि है उसमे ही तल्लीनता होती है। जगत् के वाह्य पदार्थो मे बहुत बसे और फल कुछ प्राप्त नहीं हुआ,

उल्टा घाटे मे ही रहे। अच्छा बतलाओ ५० - ६० वर्ष घर की सेवा मे ही रहे, बूढ़े हो गए और बूढ़े होने के वाद देख लिया ना, कितना लाभ पाया ५० - ६० वर्ष घिसटे। परिवार, दुकान आदि मे मोह किया। अत मे रहा क्या इसके पास देख लिया ? ऐसे ही समझ लो कि अत तक जो-जो करते है मोह के, राग के, द्वेष के काम कर डाले, पर अत मे रहेगा क्या इसके पास ? तो यह वाह्य जगत् बसाने लायक नहीं। उससे हटकर अपने निजस्वरूप मे ही निर्वाह करो।

निजस्वरूप मे निर्वाह क्या है ? अपने ज्ञानस्वरूप को जानते रहो कि मै ज्ञानमात्र हूँ। ऐसा ही निरतर ध्यान करो।

भैया ! घर मे, परिवार मे तथा शरीरादि मे न मोह करो। परिवार, घर आदि मे क्षण भर भी अपने चित्त को न उतारो, कुछ समय बाद मे ही वे सब मिट जायेगे। दो मिनट तो अपने ज्ञान के प्लेटफार्म को साफ कर लो, अज्ञान का विकट आवरण इन मोही प्राणियो के पड़ा हुआ है। अगर तू अपने यथार्थ स्वरूप के परिचय का यत्न करते-करते मोह और अज्ञान को दूर कर ले तो कल्याण निश्चित है। बाहर की चीजे आयीं, गयी फिर आयीं, फिर गयी इस तरह से मिट जाने वाली है। मै तो सबसे निराला हूँ, मै सब जीवो से न्यारा हूँ, ऐसा अपने आपका ख्याल करो उनकी चाह क्यो करता है जो दु ख देने वाले हैं ? धन-वैभव सम्पदाये अपने आप मिलती है और एक दिन उनका वियोग जरूर होगा। चाहे इसी जन्म मे वियोग हो जाय, चाहे वह सम्पदा यहा धरी ही रहे और स्वय मर जाय इस तरह वियोग हो जाय। इस सम्पदा का वियोग जरूर होगा और जब वियोग होगा तब क्लेश जरूर होगे। ऐसी वाह्य सम्पदाओ की आशा करने मे क्या सार है ?

अच्छा भैया ! सम्पदा प्राप्त कर ली, सुख देख लिया तो खूब सोच लो कि सम्पदा पाने से क्या सुख मिला या मिलेगा ? सुख नहीं मिलेगा वल्कि केवल दु ख मिलेगा। अपने आगे सम्पदाये लग जाये तो दु ख, सम्पदाये यही धरी हैं और स्वय मर जाये तो दु ख। इस दुनिया मे जो दु ख होते है वे सम्पदा के पाप के कारण ही होते है। तो फिर उन सम्पदाओ को चित्त मे लाने से कौन सा लाभ हुआ ? वाह्य को चित्त मे वसाने से कोई लाभ नही हो सकता है। अपने ज्ञानस्वरूप को ही अपने चित्त मे लावो। अपना ज्ञानस्वरूप अपने चित्त मे आवे तो उसका वियोग होता ही नहीं, सो आनन्द ही रहेगा। यदि मेरा ज्ञान लौकिक वैभव सम्पत्तियो मे लगा तो सदा क्लेश ही रहेगे। यदि अपना शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही नजर आये तो आनन्द ही आनन्द है। वाह्य सम्पदाओ से मोह छोडकर अपने अतरग मे जो सम्पदा है उसमे चित्त दो। यह चीज आपकी खुद आत्मा की वात कही जा रही है। यहा वहा की चर्चा, गप-शप मे तो शान्ति नहीं मिलेगी। शान्ति तो मिलेगी अपने ज्ञान को सही वनाने मे ही। अपने ज्ञान को सही वनाना एक तपस्या है। अगर अपना ज्ञान सही नहीं है तो वाह्य वासनाये सताती है।

ये मोही प्राणी अपने आप से निकल-निकलकर वाहर दौड़ते हैं। उस दौड से हटकर अपने आपको सही मार्ग मे केन्द्रित करो यही वडी तपस्या है। स्वाधीनता मे रत रहने से ही आनन्द है। सो भैया !

उन सब पदार्थो से हटकर अपने आपके स्वरूप मे ज्ञानदृष्टि दो और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ। अपने सुख के लिए दूसरो की आशा न करो। दूसरो से सुख नही मिलेगा। दूसरो की आशा करने पर, दूसरो की प्रतीक्षा करने पर तो दु ख ही आ पड़ेगे। इन प्राणियो के ऊपर जो दु ख आ जाते है वे दु ख कही बाहर से नही आ जाते है। वे स्वय ही खोटी कल्पनाये करके दु खी हो जाते है। तो अन्य सब ख्याल छोड़ दो और अपने प्रभु के शुद्ध ज्ञानस्वरूप को देखो तो आनन्द है।

भैया ! वाह्यरुचि छोड़कर साधु की तरह केवल अपने आत्मा राम से रिश्ता जोड़ो तो तुम्हारी शोभा है। ज्ञानी जीव तो लोक वैभव में खेद करते है, दु ख मानते है कि हाय मेरा ऐसा परिणाम हो रहा कि अनहोनी बात की कल्पना की जा रही है। वाह्यपदार्थो के सचय से मुझे लाभ नहीं हो रहा है, वे सब आनन्द की बाते नहीं है, उनसे हटकर ज्ञानमात्र अपना स्वरूप अनुभव मे आवे तो यह ही आनन्द का उपाय है। दुनिया मे मेरे लिए मै ही हूँ। आखिर अपने ही दिल से समझ लो और दु ख मिटा लो। दु ख मिटाने का और कोई उपाय नहीं है। वह उपाय खुद का स्वरूप ही है। रागादिक चलते है चलने दो, उनमे लगे न रहो। प्रवृत्ति तेरे उपयोग से न होनी चाहिए। इन सब बातो से खेद ही मानना पड़ेगा। वाह्य मे लगने से खेद ही मानोगे। विषयों मे खुशी मानते हो और शान्ति चाहते हो तो वह बच्चो का तो खेल नही । खेद की बात है कि मोह मे ही लगे रहते हो। बाहर मे ही खिचाव रहता है, तो ये तो मिटने की बाते है। अपने को मोह से हटाओ। मोह मे ही अपना विनाश है। तो भैया ! वाह्य पदार्थो मे अपने चित्त को न बसाओ। यदि वाह्य मे अपना चित्त लगाओगे तो अपने ज्ञानस्वरूप को खो बैठोगे। भैया ! अपने ज्ञानस्वरूप मे ही बसो। दु ख बुरे नहीं होते है। उन दु खो से न घबड़ाओ। यदि दु ख आ रहे है तो प्रभु के स्मरण का अवसर चल रहा है। आनन्दघन अपने आपके वाह्यस्वरूप की ओर झुको तो आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा। सुखो मे मत फूलो। ये सुख प्राणी को पतन की ओर ले जाते है। इस अपने चित्त को विषयो मे न बसाओ, अपने ज्ञानस्वरूप मे रुचि करो कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। ऐसा अपने आप मे ज्ञान बनाओ। और ऐसा ज्ञान बनाने के लिए व्यवहार मे न्याय प्रवृत्ति करना होती है। अपने चित्त को अपने स्वरूप मे लगाओ। कदाचित् कुछ करना पड़े तो न्याय की प्रवृत्ति हो। बस यहा शान्ति प्राप्त करने का एक यही उपाय है।

यज्ज्ञानेन जगन्मन्ये तत्र मे किं तदादृति ।
स्वादृति सा स्ववृत्तिर्हि स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।२-५४।।

अर्थ– जिस विशेषज्ञान के द्वारा मैं जगत को मान रहा हूँ वह ज्ञान ही मेरा सहज भाव नहीं है तो फिर क्या जगत् में आदर हो ? और स्व का आदर वह ही है जो स्व में वृत्ति हो इसलिये नियम से अव मैं अपने में ही रहकर अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊ।

जिस ज्ञान के द्वारा मै इस सारी दुनिया को देखता हूँ, इष्ट अनिष्ट मानता हूँ, उसमे आदर नहीं होना चाहिए। जिस ज्ञान के द्वारा हम कुटुम्ब. परिवार, धन, दौलत को देखते है उस ज्ञान का आदर नही होना चाहिए। घर मिला, परिवार है, कुटुम्ब है, सम्पदा है ये सब तुम्हारे दु खो के कारण है। वह

ज्ञान तुम्हारे दु ख के लिए बना। विकृत ज्ञान के द्वारा जिस जगत को देखते है उस जगत मे आदर नहीं है। ये घर, परिवार, मित्र जन आदि सुख के कारण नहीं हैं। सुख के मायने वह असली सुख है जो इस आत्मा मे स्वत भरा है। भैया ! आनन्द बाहरी चीजो मे नहीं मिलता है, किन्तु मोह की महिमा विचित्र है। सो इस जगत की उपेक्षा करके और अपने आपकी ओर दृष्टि करके अपने आप सुखी होओ।

क कस्य कीदृश क्वेति देहमप्यविशेषयन्।
सहजानन्दसम्पन्न. स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।२-५५।।

अर्थ– कौन ? किसका ? कैसा ? कहाँ ? इस प्रकार देह तक में भी विशेषण न करता हुआ मैं स्वाभाविक आनन्द से युक्त होता हुआ अपने में अपने अर्थ स्वयम् सुखी होऊ।

यह देह क्या है, यह शरीर क्या है, यह शरीर कैसा है, मै कैसा हूँ ? किसी प्रकार की विशेषता न कर। मैं तो सबसे न्यारा ज्योतिस्वरूप हूँ। मेरा स्वरूप आनन्दमय है। आत्मा का स्वरूप ही आनन्द है। सो उस आनन्दस्वरूप को ही निरखो और सुखी होवो। भैया ! एक कहावत है कि लेवा मरे कि देवा, वल्देवा करे कलेवा। अरे ये जो मिले है – घर, दौलत, स्त्री, पुत्र इत्यादि इनके पीछे अपने ऊपर कितने दु ख आते है। यह सब अपने आपको न देखने से अशान्ति है, आकुलताये है। यदि जीव विषयो की वासना रखे तो वह भगवान का भक्त नहीं है। भगवान की भक्ति और गुरुओ की सेवा, ये दोनो करते रहो, मोह और ममता की बाते कम करते जाओ। मोह से, ममता से पार न लगेगा। जितना स्त्री से, पुत्रादि से मोह करोगे उतना ही क्लेश बढते जावेगे। जितना ही बाल-बच्चो से, स्त्री-पुरुष आदि से मोह करोगे उतने ही क्लेश लगेगे। अपने ही आनन्द स्वरूप को देखो आपका स्वरूप ही आनन्दमय है। कहीं भी बैठे हो, कहीं भी रहते हो, कैसी भी स्थिति हो पर अपने आत्मस्वरूप को देखो। मै सबसे निराला हूँ, ज्ञानानन्दघन हूँ ऐसा मनन कर अपने आप मे रमकर सुखी हो जाओ।

हिसा करना, झूठ वोलना, चोरी करना, दूसरे की स्त्री को ताकना, अन्याय करके धन कमाना आदि ये पाप हैं इन्हे न करो। कोई दयाहीन जन किसी जीव को मार डाले तो उसे क्या कष्ट नहीं होते होगे ? अगर जरासी सुई चुभ जाती है तो कितना कष्ट होता है ? फिर जब दूसरे जीवो को मारा जाय तो उन्हे कितना कष्ट होता होगा ? ये वाते तो तव दूर हो सकती हैं जव वे लोग मास खाना छोड़ दे। जव तक मास का विल्कुल त्याग नहीं होगा तव तक ये बाते दूर नहीं हो सकती है। चाहे पगत मे मास खाते हो, चाहे देवी-देवताओ मे वलि चढ़ाते हो, जव तक इनका त्याग नहीं होगा तव तक धर्म के स्वरूप का दर्शन भी नहीं होगा। तो भैया ! इन चीजो का त्याग होना जरूरी है। जो लोग सुखी होना चाहते हैं उनका सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि "आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्।" यदि ऐसा सद्व्यवहार कर लिया जाय तो आत्मोन्मुखता का अवसर होगा। यदि ज्ञानमार्ग प्राप्त हो गया तो सवसे विविक्त निज आत्मतत्व में रमकर स्वय ही स्वय मे स्वय के लिये सुखी हो सकते हैं। सो भैया ! सुख के लिये सम्यग्ज्ञान पाने का यत्न करो।

अध्याय ३

नश्वरे चेन्द्रियाधीने सुखे सारो न विद्यते।
का रतिस्तत्र विज्ञस्य स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-१।।

अर्थ– क्षण भंगुर और इन्द्रियाधीन सुखाभास में सार कुछ भी नहीं है फिर भी ज्ञानशील मेरे को उसमें क्या रति हो मैं तो स्वयम् स्वयम् के अर्थ स्वय में सुखी होऊं।

ये ससार के सुख जिनके लिए जगत् के प्राणी दु खी है, पराधीन है, परिणाम करते है उस ससार के सुखो मे प्रथम ऐब तो यह है कि ये विनाशीक है। कौन सा सुख जान रहे हो, अपने-अपने समय की याद कर लो। कौन से सुख सदा रहे है ये तो विनाशीक ही है। आज जिनसे सुख मिलता है वे भी नष्ट होगे। सो इन इन्द्रिय सुखो मे बड़े दु ख है। यही तो ऐब है। ये सुख ६ प्रकार के है। एक तो सुख है स्पर्शन का, कर्मो मे, विषयसेवन मे, मैथुन मे ये प्रथम इन्द्रियो के सुख है। दूसरा लोग सुख मानते है स्वाद का, खाने-पीने का भला लग गया, मीठा लग गया आदि। तीसरा सुख माना जाता है सूघने का, वाह्य चीजे सूघने मे आये तो उनमे मोह है। चौथा सुख माना जाता है देखने का। देखने मे कोई सुन्दर रूप आ जावे, कलात्मक चीज देखने मे आ जावे उसको देखकर खुश हो रहे है। पाचवा सुख है राग रागानुभावो की आसक्ति का। छठवा सुख है मन का। कीर्ति चाहिए, प्रशसा चाहिए, इज्जत चाहिए, सम्मान चाहिए। ये ६ प्रकार के सुख दुनिया मे है। ये ही सब ६ प्रकार के सुख विनाशीक है। वास्तविक जीव की बात कही जा रही है। इन सुखो मे भैया ! दूसरा अवगुण है कि ये सुख इन्द्रियो के आधीन है, पराधीन है। इन सुखो मे लगने से ये सभी जीव बरबाद हो जाते है। जिस्वा के द्वारा मीठा लग गया, कटु लग गया आदि जो सुख है वे वास्तविक सुख नहीं है। ये सुख पराधीन है। आनन्द तो तब है जब स्वाधीन हो, जब अधिकार की बात हो ये सारे सुख इन्द्रियो के आधीन है। इनमे सार नही है कोई कहे पराधीन हो तो होने दो सुख तो कुछ क्षण को मिल जाता है। सो भैया ! ये सुख जितने क्षण हो उन क्षणो मे भी उन सुखो मे सार कुछ नहीं है, हित की बात कुछ नही है। उन सुखो मे पड़ने से परिणाम केवल पछताना ही मिलेगा। इन ससार के सुखो मे पड़ने से केवल जीवन भर पछताना ही बना रहेगा जिनका उन सुखो से सम्बन्ध है वे पछताते ही तो होगे। सुखो के सम्बन्ध को निकाल दो, यदि कुछ कल्याण न किया, इन सुखो मे ही पड़े रहे तो इस ससार मे पछताना ही बना रहेगा।

इन ससार के सुखो मे सार रच भी नही है। हे आत्मन् ! देख तो तू ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमय है, ज्ञान ही तो तेरा काम है। ज्ञान के अतिरिक्त और तेरा कोई काम ही नहीं है। यदि ससार के सुखो से ही प्रीति रही तो ससार मे रुलना ही बना रहेगा। हे आत्मा ! तू ज्ञानमय होकर भी यदि ससार के सुखो से प्रीति करे तो बेकार है यह जीवन। भैया ! इन ससार के सुखो की प्रीति छोड़ दो, तू तो स्वय ही आनन्दस्वरूप है। पर की ओर दृष्टि जाये तो विघ्न ही है। ससार के सब सुखो से अपने उपयोग को बाहर हटाओ। केवल अपने स्वरूप को ही देखो तो वहा क्लेशो का नाम ही नहीं है। दु ख तो ससार

के सुखो के ही भोगने के कारण ज्यादा भोगने पड़ते है। तू इन्द्रियज सुखो की प्रीति को तज। यदि तजते नही हो तो तुम भक्ति के काबिल नही हो।

यदि स्त्री प्रसग ज्यादा करते हो तो कहीं बीमार हो गए, कही डाक्टर वैद्यो की शरण मे पड़े रहे दु ख भोगोगे। रसना इन्द्रिय के वश होकर मात्रा से अधिक खा लिया तो फिर डाक्टर वैद्य तो मूग की ही दाल को पाच सात दिन तक खिलायेगे। यदि सुखो मे ही आसक्त रहे तो धर्म के पात्र नही रहोगे। गधी की दुकान मे नाक मे दम हो जाता है। यदि सुख ज्यादा भोगोगे तो सुख भोगने के काबिल न रह जाओगे। एकाकी नाटक, थियेटर, सिनेमा आदि को टक-टकी लगाकर देखोगे तो आखे कमजोर हो जावेगी। वार-वार देखने से वह अरुचिपूर्ण मालूम होगा। इसी तरह वही भजन उसी राग से बार-बार सुना तो कह देगे कि बस रहने दो, बद कर दो। कहा तक सुनेगे ? इन सुखो से प्रीति करने मे हित नहीं है। इसलिए यही निर्णय करो कि ससार के सुखो मे मनुष्य देह बड़ी दुर्लभता से मिलती है, इसे पाकर विषयो मे मत लगा लेना।

एक दृष्टान्त आता है कि एक सिर का खिजैला अधा आदमी था। उसने सुन लिया कि इस नगरी मे जो अधा आयगा वह जो मागेगा वही मिलेगा। यह सुनकर वह अधा उस नगरी मे जाना चाहता है। नगरी मे एक कोट फैला हुआ था। वह अधा कोट पर हाथ धरे चलता जाता है जहा दरवाजा मिलता है वहीं वह खाज खुजाने लग जाता है। वह उस कोट को छुवे हुए चला जा रहा है। जिस वक्त दरवाजा आया उस वक्त वह अपने हाथो से अपना सिर खुजलाने लगा। अब तो वह दरवाजा निकल गया। इसी प्रकार फिर आगे जव दरबाजा आया तब फिर अपने हाथो से खुजलाने लगा। इसी प्रकार यह जगत् का प्राणीं ८४ लाख योनियो मे अनेक बार चक्कर काटता आया, भ्रमण करता आया, मगर जब मनुष्य जन्म पाया तव अपने हाथो से अपना सिर खुजाने लगा। अब वह मनुष्य योनि भी बीत गयी और दूसरी योनियो में यह जीव चला गया। अरे भैया, जरा इस मन को तो वश मे करो। यदि अनर्गल में पड़ गए तो यह उचित काम नहीं। इस ससार के सुखो मे न पड़कर प्रथम कर्तव्य यह है कि अपने ज्ञानस्वरूप को देखो, प्रभु के स्वरूप को देखो, अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप की ही शरण गहो, इसमे ही सुख प्राप्त होगा।

यतोऽन्ते क्लेशदा सर्वे सम्बन्धा विपदास्पदा।
तत सग परित्यज्य स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।३-२।।

अर्थ– **जिस कारण कि सर्व ही सम्दन्ध विपत्ति के स्थान हैं और अन्त में क्लेश देने वाले हैं इसलिये परिग्रह के सग को छोडकर मैं अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊं।**

दु खो की जड क्या है ? सव दु खो की जड़ है दूसरो से सम्वन्ध । जहा सम्वन्ध जुड़ा तहा क्लेश उत्पन्न हुए। ये सम्वन्ध ही क्लेशो के देने वाले है। पति-पत्नी के सम्वन्ध से सुख दोनो को ही न मिलेगा। ऐसा तो कोई प्रोग्राम होगा नहीं कि दोनो एक साथ ही मर जावें, तो सम्वन्ध की वात देखो समस्त क्लेशों

के देने वाले है। यदि पत्नी गुजर गयी तो उसके वियोग मे पति दु खी होगा और यदि पति गुजर गया तो उसके वियोग मे पत्नी दु खी होगी। तो ये स्त्री, पुत्र वैभव इत्यादि जीवन मे दु ख देने वाले ही हुए। इनके सम्बन्ध तो क्लेश ही देने के मुख्य कारण है। कौनसा सम्बन्ध और समागम है जो क्लेश न दे।

भैया ! भले ही थोड़ा सा मौज मान ले, मगर अन्त मे ये सग क्लेश ही देते है। कोई सम्बन्ध ऐसा नहीं जो अन्तरमे दु ख न देगा। सब अन्त मे नियम से क्लेश ही देने वाले है। इस कारण इस समागम को पाकर ऐसा विचार रखो कि ये विनाशीक है और अन्त मे क्लेश ही देने वाले है। ऐसे विचार बने रहे तो जीवन मे सन्तोष होगा। यदि ममता की कुबुद्धि ही बनी रहे तो जीवन मे सदा दु ख ही बने रहेगे। यदि किसी चीज को यह मान ले कि मेरा है तो मन मलीन हो जायेगा और उससे क्लेश ही बने रहेगे। इसलिए यदि जिनके वियोग का दु ख न उठाना हो उनके सयोग समय मे हर्ष न मानो, फूले फले न फिरो। अगर सयोग मे हर्ष मानोगे तो क्लेश ही रहेगे। तो ये समस्त सम्बन्ध अन्त मे क्लेश ही देने वाले हैं, विपत्तियो के ही साधन है। केवल एकाकी शुद्धस्वरूप की श्रद्धा कर सको तो मुक्ति का मार्ग मिलेगा और यदि किसी से सम्बन्ध बनाए रहे तो उससे क्लेश ही मिलेगे।

दो भाई थे। उन दोनो मे बड़ी ही मित्रता थी। एक साथ ही वे दोनो स्वाध्याय करते थे। एक भाई ने दूसरे से कहा कि जो पहले मर जावे वह दूसरे को मन्दिर मे शिक्षा देने अथवा ज्ञान देने के लिए आवे। एक भाई गुजर गया वह देव हो गया। अब देव भाई ने आकर दूसरे से कहा कि भैया ! ये ससार के जो सुख है, परिवार के जो लगाव है, स्त्री पुत्र इत्यादि के जो मोह है वे बड़े ही दु खदायी है। उन्हे तो त्यागना ही चाहिए। दूसरे ने कहा वाह, मेरी स्त्री बड़ी ही आज्ञाकारी है, मेरा पुत्र बड़ा ही विनयशील है, वे मुझे जीवन भर सुख देने वाले है। बोला– अच्छा कल १२ बजे तुम बीमार बन जाना, मै तुमको ज्ञान देने के लिए वैद्य बनकर आऊगा, तभी तुमको बता दूगा। वह भाई बीमार बन गया और दूसरा देव भाई वैद्य बन गया और गाव की गलियो मे दवा बेचने लगा। घर वाले लोग बोले इसे ठीक कर दो। वह वैद्य पुकार रहा था कि लो भाई दवा खरीदो। मेरे पास अत्यन्त पेटेन्ट दवा है। अब उस बीमार व्यक्ति के घर वालो ने उसे बुला लिया। वैद्य बोला कि एक गिलास जल मगा दीजिए। एक गिलास जल आ गया। वैद्य ने अपनी झोली से झूठ मूठ की दवा निकाली, मानो राख हो उसे उस एक गिलास के पानी मे मिला दिया। घर वालो से कहा कि लो दवा पियो। घर के लोग बोले– अरे बीमार कौन है, और दवा किसको पीने के लिए कह रहे हो ? वैद्य ने बताया कि यह दवा ही ऐसी है कि जो पियेगा वह मर जायेगा और इसके बदले मे वह ठीक हो जायगा जो कि बीमार है। पहले उसकी मा से कहा कि लो दवा पियो। मा ने सोचा कि मेरे अभी तीन लडके है। यदि मै मर गयी तो इन तीनो लडको का सुख न देख सकूगी। बाप से भी कहा गया तो उसने भी इसी प्रकार सोचा। स्त्री से कहा तो उसने भी सोचा कि अभी हमारे तीन लडके है यदि मै मर गयी तो उनका सुख न देख सकूगी। इस तरह सोचकर घर के किसी भी सदस्य ने वह पानी नहीं पिया। वैद्य ने कहा कि क्या मै पी लेऊ तो घर के लोग बोले कि हा हा पी लेवो। उस वैद्य ने दवा को पी लिया। अब तो वह बीमार व्यक्ति उठकर खडा हो गया

और समझ लिया कि वास्तव मे मेरी शरण अन्य कोई नही है। जगत के जितने भी सम्बन्ध है वे सब विपत्तियो के ही साधन है।

तो भैया ! इन सम्बन्धो को छोडो। छोडने का मतलब यह नही कि अपना घर त्याग दो। मै यह नहीं कह रहा हूँ, पर सम्बन्ध छोड़ने का मतलब यह है कि किसी अन्य से सम्बन्ध की बुद्धि न हो। ऐसा विश्वास हो और अपने अन्तर से मोह को हटाओ तो शान्ति प्राप्त हो सकती है। ऐसे शुद्ध ज्ञानमात्र की प्रतीति रखो, अज्ञानता को हटाओ, अपने ज्ञान के उपाय जुटाओ और शास्त्र पढ़ो। अपने समस्त वाह्य उपयोगो से चित्त को हटाकर विश्राम मे ठहर जाइए।

यौवन जरया व्याप्त शरीर व्याधिमन्दिरम्।
समृत्यु जन्म क सार ? स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-३।।

अर्थ– यौवनावस्था बुढापे कर व्याप्त है अर्थात् जवानी के बाद बुढापा ही आता है। शरीर रोगों का घर है जन्म मरण कर सहित है उनमें अर्थात् जवानी, शरीर व जन्म में सार क्या है? मैं तो स्वय सार रूप अपने में अपने अर्थ स्वय सुखी होऊ।

वतलाओ इस लोक मे सार चीजे क्या है? यौवन है तो वह बुढापे के साथ लगा हुआ है। शरीर है तो व्याधि का घर है। जन्म है, मृत्यु भी साथ मे ही है। कौनसे ऐसे पदार्थ है जो सारभूत है। सो बाहरके कोई भी पदार्थ हो, पैसा हो, धन हो, मित्र हो, परिवार हो कोई भी इस लोक मे हितरूप नहीं है। उनमे कुछ है तो केवल क्लेश ही है। उनमे अगर आसक्ति है तो दुनिया भरके झगड़े, विवाद आदि खडे हो जाते हैं। यदि सच्चा ज्ञान नहीं है तो हमे ही वे दु ख उठाने पडेगे। दु ख भीतर स्वभाव मे नहीं होते है, केवल ख्याल बनाकर ही दु ख होते है।

सोचो यहा सार चीज क्या है? सारकी चीज यहा कोई नहीं है। सभी मोह की चीजे है। इन झूठे मोहो मे तो क्लेश ही क्लेश बने रहेगे। मान लिया कि ये हमारे बच्चे हैं, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, हम सम्पन्न हैं तो ये सब मोह की बाते है। कौनसा सुख होता है मोह करके सो बतलाओ। तुम सुख की तलाश मे फिरते हो बाहर ही बाहर, तो यह तो क्लेश का ही उपाय है।

धन का मोह किया, हर प्रकार की चोटे सहीं, पराधीनता की चोटे सही तो कितना पछताना पड़ेगा? मोह मे फस गए इसी से दु ख हो गए, नहीं तो दु ख कहा है ? मोह के मायने है अज्ञान । इस मोह से तो सही ज्ञान नहीं रह सकता। सही ज्ञान का न रहना ही मोह कहलाता है सो मोह से अशान्ति के अलावा और कुछ नहीं मिलता है। यह मेरा है, यह पराया है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है इत्यादि ही मोह है। अरे जीव जीव सब एक स्वरूप है, उनमे छटनी करने से क्या लाभ है?

यह मेरा है, यह पराया है ऐसी छटनी करने का नाम ही मोह है। जैसे स्वप्न मे देखी हुई चीज झूठी नही मालूम होती है उसी तरह मोह की नींद मे जो कल्पनाये पैदा होती है वे भी झूठी नही मालूम होती है। यह मेरा ही तो लडका है, यह मेरी ही तो स्त्री है, यह मेरा ही तो परिवार है इत्यादि ही मोह

की झूठी कल्पनाये है। अरे वे तेरे कुछ नही है, वे सब न्यारे न्यारे है। ये मोही अशाति के तो काम करते है और शान्ति चाहते है तो यह कैसे हो सकता है ? तो इन विकल्पो से तो दु ख ही सदा रहेगे। सो कहते है कि सारभूत चीज क्या है? सारभूत चीज कुछ भी तो नहीं है।

सारभूत चीज तो आत्मा ही है और आत्माकी खबर दिलाने वाली प्रभु की मूर्ति है। उस भगवान की शान्तिपूर्ण मुद्रा के दर्शन करे तो शान्ति का मार्ग प्राप्त हो सकता है। अपने आत्मस्वरूप मे ही रमो तो शान्ति का मार्ग प्राप्त कर सकते हो। शाति का मार्ग प्राप्त करने का उपाय तो अपने आत्मस्वरूप का दर्शन ही है। भगवान की शान्तमूर्ति के दर्शन करके अपने आत्मा की खबर होती है। सो यह प्रभु की भक्ति तुम्हारी शरण है। हम सब जीवो का धर्म ही शरण है और धर्म ही सार है। धर्म के सिवाय हितरूप और कुछ नही है सो अपनी अपनी बाते तोल लो। ये जो परिवार के लोग है उनसे मोह न करो। अपने प्रभु का ही स्मरण करो तो शाति प्राप्त हो सकती है। यदि अपने प्रभु को भूल गए तो ससार मे रुलना ही पड़ेगा। सत्य की झलक न मिलेगी, जीवन की बरबादी ही होगी। यदि कुटुम्ब, परिवार आदि का भाव आवरण होगा तो ज्ञान ढक जायगा, सोये हुए ही रहोगे। इन मोह की चीजो मे सार कुछ नहीं है, लाभ कुछ नहीं मिलेगा इसलिए हित चाहने वाले का कर्तव्य यह है कि वह परपदार्थो के मोह का त्याग करे अपने सहज स्वरूप का दर्शन करे तो अपने आप मे आ जायगा और अपने आपमे ही नियम से सुख होगा।

येषा योगो वियोगो हि नियमेनभविष्यति।
तेभ्यो नु कि मुधाऽखिन्दम् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-४।।

अर्थ– जिन पदार्थो का सयोग होता है नियम से निश्चय से उनका वियोग होवेगा फिर मैंने उन पदार्थो के लिये व्यर्थ क्यों खेद किया मैं तो अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

जिन पदार्थो का सयोग होता है उनका नियम से वियोग होता है। बतलाओ ऐसी कौनसी चीज है जो मिल जाती हो, पर कभी अपने से जुदा न होती हो। क्या कोई ऐसा पदार्थ है ? अरे औरो की तो बात ही क्या जो शरीर मिला है वह भी इससे जुदा हो जाता है। फिर मिली हुई चीज का क्या हर्ष करना, क्या फूले समाना। उसका तो वियोग जरूर होगा। और वियोग जब होगा तो वियोग होने पर कठिन खेद करना भी तो होगा। ससार की रीति ही है ऐसी कि सयोग होना है तो उसका वियोग जरूर होगा।

जिन महापुरुषो के हम नाम सुनते है वे महापुरुष भी जब नही रहे, जो निर्वाण को भी प्राप्त हो गए, स्वर्ग गए उनका तो यहा अस्तित्व है ही नहीं। वे तीर्थकर हो, वे नारायण हो वे चक्रवर्ती हो। कोई महापुरुष भी जब एक जगह कायम नहीं रह सके फिर हम और आपकी तो बात ही क्या है? जिसका सयोग होता है उसका नियमसे वियोग भी होगा।

सो भैया ! ज्ञान बिना पूरा नही पड़ेगा। कुछ भी ख्याल बना लो, कुछ भी धन जोड़ लो, पर दु ख

नही मिटेंगे। जब तक हृदयमे ज्ञान नहीं पैदा होगा। यहा कोई सहाय नहीं रखा है। जब तक पूछने वाले मिलते हैं, मन बहलाने वाले मिलते है, पर कोई शरण नही है। शरण तो मेरा ज्ञान ही होगा। ज्ञान बिना मेरा कोई भी शरण नहीं होगा, जो जैसा है उसे वैसा ही जानना ज्ञान है। बाकी तो सब बखेड़ा है, मिट जाने वाला है, पर लोग मानते है कि वैभव सदा मेरे पास रहेगा। सो अपने भीतर के ज्ञान से नेत्रो को खोलो और यह तो अन्तर मे मान जावो कि जिन पदार्थो का सयोग होता है उनका नियम से वियोग होगा।

चाहे इन पदार्थो से मेरा सम्बन्ध मिट जाय, चाहे इनके रहते हुए मै मिट जाऊ, पर होगा वियोग जरूर। ऐसा मानते ही आधा दु ख मिट जायगा। तो भाई चाहे धन हो, चाहे परिवार हो, चाहे शरीर हो ये सब मिट जाने वाली चीजे है। जो मिट जाने वाली चीजे है उनका हथियाना, अगीकार करना तो मोह है, अविवेक है। इस मोहसे तो केवल क्लेश ही रहेगे। सो उनके वास्ते खेद मत करो।

'उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम्' जिसका चित्त उदार है यथार्थ स्वरूप ज्ञान मे आ गया उसकी सारी पृथ्वी कुटुम्ब बन जाती है। इस जगत् के सब जीवो का स्वरूप भी मेरे ही स्वरूप के समान है। मै तो ज्ञानानन्दघन हूँ, फिर उनमे से कुछ जीवो को २-४ जीवो को अपना लेना जो घर मे आए है और बाकी को तो गैर समझ लिया है। ऐसी बुद्धि जो घुसी हुई है वह सब मोह का नमूना है। चित्त को पसारकर दुनियामे देखो तो सब जीव तेरे जीव के ही समान है। सकुचित दायरा जो कर रखा कि ये चार आदमी मेरे है तो उनके वियोग होने से दु ख होता है। सो दु खो का फल जो मोह है उस मोह को मिटावो। मिट तो जाता ही है, पर ढग से मिटावो तो फल मिल जायगा। अगर जबरदस्ती मिट गया तो दुर्गति ही मिलेगी।

एक घटना है कि राजा भोज के समय मे कवियो को राजा भोज ने बड़ा इनाम दिया। देहाती गावो के चार आदमी जो लठैत थे वे भी कविताये सुनाने के लिए राजा भोज के दरबार मे जाने की सोचने लगे। उन देहाती आदमियो मे बुद्धि नहीं थी तो उन चारो मे से एक ने कविता बना ली जब बुढिया को रहटा कातते हुए देखा – वह कविता क्या थी कि 'चनर मनर रहटा भन्नाय।' दूसरे ने कोल्हू के बैल को भुस खाते देख कविता बनायी कि 'कोल्हू का बैल खडो भुस खाय।' तीसरे ने क्या कविता बनाई, पींजना धरे धुनिया को देखकर कहा कि 'कहा से आ गए तरकसबन्द।' अब चौथे व्यक्ति को भी वे कहते हैं कि कविता बनाओ वह कहता है कि मै राजा भोज के सामने ही तुरन्त कविता बना लूगा। सो अब वे चारो देहाती राजा भोज के दरबार मे पहुचे। वे चारो देहाती द्वारपाल से बोले कि राजा भोज से कह दो कि चार महा कवीश्वर आये है। सो राजा भोज ने कहा– अच्छा, बुलावो। वे चारो राजा भोज के सामने बुलाए गए। उन चारो ने क्रम से अपनी कविताये सुनाई। वे क्रम से बोलते है कि 'चनर मनर रहटा भन्नाय, कोल्हू का बैल खडो भुस खाय, कहा से आ गये तरकस बद, तो चौथा बोला कि राजा भोज है मूसरचन्द।

अब राजा भोज अन्य विद्वानो से पूछते हैं कि इन कविताओ का अर्थ तो लगावो। कविता मे कुछ दम था नहीं यह तो लट्ठमार थी। एक विद्वान् खडा होकर बोला कि पहला तो कह रहा है कि 'चनर

मनर रहटा भन्नाय' जिसका अर्थ यह है कि यह शरीर तो रात दिन रहटे के [illegible]
पुरुषों को देखो वे भी कुछ न कुछ किया ही करते हैं। सुबह उठकर झट [illegible]
व्यापार किया, बीज बोया, खाया, पिया, गप्प हांकी आदि आदि और स्त्रियों को देखो तो वे भी [illegible]
कुछ किया ही करती हैं। सुबह उठकर झट चक्की पीसना, बर्तन माजना, खाना पकाना, [illegible]
सफाई धुलाई आदि इस प्रकार से ये मनुष्य रहटा सा चनर मनर भन्नाया करता है और दूसरे ने कहा
कि 'कान्ह का बैल खडो भुस खाय।' तो ये पुरुष अपना तो रूखा सूखा खाकर बसर करते हैं और
बच्चों को शोभा से खिलाते पिलाते रहते हैं। तीसरे ने कहा कि 'वहा से आ गये तक्कस चन्द' अर्थात्
वहां से यमराज आ गए, मृत्यु आ गयी। तो चौथे ने कहा कि फिर भी राजा भोज मूसरचंद (मूरखचंद)
हैं, ये अपने कल्याण की बात नहीं करते, तो राजा भोज ने कहा कि कैसी बढ़िया कविता है।

तो हम अपने लिए क्या करते हैं। जो अत्याचार करता है उसका फल वही भोगेगा जो अत्याचार
करता है। सो भाई जिनका संयोग होता है उनका वियोग जरूर होगा। ~~उसके विकल्प छोड़कर अपनी~~
आत्मा का ज्ञान करो, अपनी आत्मा में ही लीन होवो, इससे ही आनन्द मिलेगा, बाह्य दृष्टि से तो आनन्द
नहीं मिलता है।

इन जीवो मे से हर एक जीव पूर्वभव मे तुम्हारा कुछ न कुछ होगा नाते रिश्तेदार, कुटुम्ब परिवार आदि। फिर किसे पराया जानकर आज के मिले हुओ मे मोह करते हो अथवा यह व्यवहार दृष्टि छोडकर भीतर अपने स्वरूप को देखो। मेरा स्वरूप तो केवल ज्ञानस्वरूप है। ज्ञायकस्वभाव, ज्ञानमात्र जाननस्वभाव है। यही स्वरूप तो सब जीवो का है। सब जीवो का स्वरूप भी मेरे स्वरूप के समान है। फिर उनमे मेरे और पराये का ख्याल मत करो। यह जानो कि ऐसा करना पडता है। यह हमारी व्यवस्था है ठीक है पर भीतर मे ऐसी श्रद्धा मत रखो कि यह मेरा है। अरे तुम्हारा तो यह शरीर भी नही है, फिर और चीजे तुम्हारी कैसे हो सकती हैं ? ऐसा अगर इन पदार्थो मे सच्चा ज्ञान रखो तो उसका मोह दूर होगा। कामववासना को दूर करके ही भोगो की बात दूर होगी। गुस्सा, छल, तृष्णा आदि सब दूर होगे। तीसरे यह देह भी मेरी नही। यह देह तो मुझसे जुदा है। भैया ! ममता छूटते ही सब गुण अपने मे अपने आप आ जाते हैं तो इस शरीर मे, इस देहमे राग न करके अपने भीतर मे बसो और अपने परमात्मस्वरूप को देखो। ऐसा करने के लिए व्यवहार न्यायपूर्ण होना चाहिए। जो अपने को प्रतिकूल लग जाय, अपनेको बुरा लग जाय तो वह दूसरो के लिए कुछ नहीं करना चाहिए। यदि कोई प्राण दु खाता है तो बुरा लगता है ना। तो दूसरो के भी प्राण न दुखाओ। अपने से कोई झूठ बोल दे तो बुरा लगता है तो दूसरो के लिए भी झूठ न वोलो। जो बात अपने को बुरी लगे वह बात दूसरो के लिए भी न करनी चाहिए। अपने को काटा चुभ जाने पर कितने क्लेश होते हैं, फिर दूसरो की जान लेने पर उन्हे कितना दु ख होता होगा, जैसा अपनी जान समझते हो वैसा ही दूसरो की जान भी समझो। चाहे गाय हो, चाहे भैस हो, चाहे बैल हो, चाहे वकरी हो सबको अपना ही जैसा समझो। वे सब जीव तुम्हारे ही समान हैं। किसी भी जीव की हिसा न करो।

भैया! अपने दूसरे भाइयो को समझाओ कि वे मास मदिरा इत्यादि का प्रयोग न करे। अगर वे समझ जावेगे तो उन्हे बडा पुण्य होगा। अभी आज सुवह तीन चार हरिजन भाइयो ने मास न खाने का नियम लिया। उन्होने भैया बड़ा ही अच्छा काम किया। दो भाइयो ने खुद कहा कि मेरा मास न खाने का दृढ नियम है। जो खुद कहे कि मास न खाने का दृढ नियम करता हूँ तो वे बडी ही तारीफ का काम करते हैं।

जिसका हृदय साफ हो तो तभी वह ऐसा कह सकता है। यह तो उसकी वड़ी ही प्रशसा की बात हे। वैसे तो साल में दो ही चार वार मास खाते है । वह त्याग दे तो आजीवन का पुण्य होगा। अगर मास न खावे तो क्या बसर नहीं हो सकता है? मास खाते हो तो भैया! वे मास का त्याग कर दे। उसमे कुछ नहीं रक्खा है। उस मास मदिरा आदि मे कुछ स्वाद भी तो नही रहता है। स्वाद तो अन्न मे होता है। अन्न मीठा होता है। लोग व्यर्थ मे ही इन गदी चीजो का प्रयोग करते है और अपने दिमाग को गदा बनाते हैं। मास मदिरा का त्याग करने के लिए भी बुद्धि चाहिए। जो मास मदिरा इत्यादि का त्याग कर दे वह भगवानका प्यारा बन जाय। अगर मास खाने वाले मास का त्याग कर दे तो उनका हित है ।

विषं पीत्वाऽपि जीवेच्चेन्न भुक्त्वा विषयं सुखी।
विरज्य भोगतस्तस्मात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं। ।३-६।।

अर्थ– यदि विष को पीकर भी कोई जीवे तो जीवे परन्तु विषय को भोगकर कोई भी जीव सुखी नहीं हो सकता इसलिये भोग से दूर रहकर मैं अपने में अपने लिये अपने आप स्वयम् सुखी होऊं।

जगत के हम और आप सब जीव जिस धुन मे रमे रहते है, जिनकी कोशिशो मे चल रहे हैं वे परिणमन उल्टे ही रास्ते पर लिए जा रहे है। उनके लिए विषयो के साधन जुटाते हैं। इन विषयो के भोग से क्या शान्ति मिल सकती है? जो उम्र अधिक हो गयी है, बीत चुकी है उस उम्र मे बहुत विषयो के साधन किए है और भोग किए है उनका फल केवल रज है, शोक है, दुर्बलता है। इन विषय भोगो मे कोई सुख नही हो सकता है। चाहे विषयो को पाकर जिन्दा कोई रह जाय यह तो सम्भव है, पर विषयो का भोग करने से कोई जीव सुखी नही हो सकता है। वे विषय क्या हैं? वे विषय स्पर्शन इन्द्रिय के विषय ही है। स्त्री को पुरुष इष्ट हो और पुरुष को स्त्री इष्ट हो, उनका आपस मे प्रेम हो, विषयो मे ही फसे हो तो ये ही स्पर्शन इन्द्रिय के विषय है। उन विषयो के भोग करने से किसी भी पुरुष और नारी को शान्ति नही मिल सकती है। हमको एक अग्रेजी फिल्म की सच्ची कहानी बताई एक कन्या का विवाह गिरजा मे हुवा। विवाहोपरान्त वर-वधू मौज मस्ती के लिए घूमने गए वहा वे एक निर्जन पहाड़ी पर प्राकृतिक सौन्दर्य के आनन्द मे मग्न थे कि इतने मे चार गुडे वहा आए और उन्हे अकेला पाकर उसकी नवविवाहिता पत्नी को छीनना चाहा पति ने विरोध किया तो उसे तो जान से मार दिया और जो कुछ हुवा वह तो हुवा ही वधू को भी जख्मी हालत मे छोड़कर भाग गए। देखो भैया ये भोग तो आदि मे भी दुख के कारण है और अन्त मे भी। और अब तो भैय्या माता पिता ही हनीमून के लिए सीटे बुक कराते है। इसलिए स्वाभाविक है कि ये सन्तान भी भोग प्रधान तो होगी ही।

भोजन के करने पर, भोजन के चखने पर कुछ इच्छा की तृप्ति हो सकती है। यद्यपि यह बात भी सदा के लिए नही होती, कुछ घटो के लिए ही होती है, मगर विषयो के लोभी मनुष्यो को इन्द्रियविषयो से तो केवल आकुलताये ही रहती है। विष को पीकर कोई जिन्दा रह जा सकता है, मगर भोगो मे ही रहकर कोई सुखी नहीं रह सकता है।

रसना इन्द्रिय को देखो, गले से कोई लड्डू उतार दे तो उसका स्वाद थोड़े से समय के लिए रहता है। थोड़े समय के स्वाद के लिए वे गले से लड्डू उतार कर अपने को कष्ट देते हैं। यह रसना इन्द्रिय के विषयो का प्रताप है।

नाक तो एक बेकार सी चीज है। उससे तो कोई फायदा ही नहीं जचता है। और इन्द्रियो से तो कुछ फायदा उठा सकते हो, हाथ पैर इत्यादि से तो दीन-दुखियो की सेवा कर लो। तो देखो स्पर्शन इन्द्रिय से लाभ उठा लिया। जिह्वा से प्रभु की भक्ति के गुणगान किया तो लाभ उठाया। अब रह गयी नाक, इससे तो कोई लाभ ही नही है। आख से अब देखो, अगर प्रभु की मूर्ति का दर्शनकर लिया, गुणियो

का दर्शन कर लिया और अपने हृदय को स्वच्छ बना लिया तो इन नेत्रो से भी लाभ है। कर्ण इन्द्रिय से अगर प्रभु की भक्ति के उपदेश सुने तो कर्ण इन्द्रिय से भी फायदा पहुच गया। इस नासिका से तो कोई लाभ ही नहीं नजर आता है। फिर भी मोही जीव भिन्न-भिन्न प्रकार की सुगन्धो को सूघ-सूघकर अपने मन को भरा करता है। इससे तो आकुलताए जरूर हो जाती हैं।

आखो से क्या कर लिया कि सुन्दर रूप देख लिया, कुछ चित्र सिनेमा आदि देख लिए और अपने मन को खुश कर लिया। इस वाह्यदृष्टि से अपने को कितना खुश किया, इसका मोहीजनो को कुछ अन्दाज नहीं रहता है। अटपट बाते करके अपने दिल को भरते है। ये अटपट बाते भी जीव को अहित ही करने वाली हैं। विषयो का भोग करके कोई जीव सुखी नहीं रह सकता है। जो विषयो के साधन तुम्हे प्राप्त हो उन्हें प्राप्त ही न करो, उन्हे तो विनाशीक समझो, अहितकारी समझो, उनसे कोई लाभ भी तो नहीं है। कर्णइन्द्रिय के विषय मे भी क्षोभ ही है।

जिन्दगी मे करने योग्य काम यही है कि इन विषयो से हटकर अपने ज्ञानस्वरूप प्रभु की भक्ति मे लग जावो। जितना ही अधिक समय प्रभु की भक्ति मे लगे, प्रभु के स्मरणमे लगे उतना ही अपने जीवन को सफल मानो। और बाकी समागमो को पाकर उनमे ही लिप्त होकर अपना समय गुजार दो तो व्यर्थ की ही चीज है।

जगत मे अपनी शरण कोई नहीं है। अपना शरण खुद ही है। कुछ दर्द हो जाय, पीड़ा हो जाय तो खुद को ही भोगना पड़ता है, दूसरा कोई सहाय नहीं होता है। और अपने सहजस्वरूप का सवेदन हो जाय तो खुद सहाय हो जाता है।

एक कथानक है कि एक जगल मे एक राजा चला जा रहा था। उसको एक साधु मिला। वह राजा उस साधु के पास बैठ गया। थोडी देरमे उस साधु की आखे खुलीं। राजा बोलता है महाराज, आप इस निर्जन जगल मे अकेले ऐसे दु ख क्यों भोग रहे है ? आपके पास नौकर चाकर नहीं, खाने के लिए कोई साधन नही, इतने कष्ट आप यहा पर क्यो भोग रहे हैं ? आप कौन हैं? साधु कहता है कि मैं अनाथ मुनि। राजा वोला—महाराज आप अपने को अनाथ क्यो समझते हैं ? मेरे घर चलो, खुद आराम से रहो, किसी भी प्रकार का कष्ट न होगा। मनमाना खाना, मनमाना पहिनना, मनमाना घूमना। हे महाराज, आप अपने को अनाथ न समझे, साधु कहता है कि तुम कौन हो? राजा बोला कि मैं इस देश का राजा हूँ। मेरे पास नौकर चाकर हैं। अपना वैभव बताने लगा तो मुनि कहते हैं कि राजन्, ऐसा तो पहले मैं भी था। इतनी वात सुनकर राजा की आखे खुलती हैं। राजा कहता है कि महाराज आप राजा थे तो अपने को आप अनाथ क्यों कहते हैं ? साधु बोला —सुनो, एक बार हमारे सिर में दर्द हुआ। वहुत से डाक्टर वैद्य हकीम वगैरा आये, पर सिर का दर्द ठीक न हुआ। हमारे परिवार में कोई हमारे उस दु ख को वाट न सका, तो हमारे चित्त मे आया कि हमारे दु खों का वाटने वाला कोई नहीं है, मैं अनाथ हूँ।

देखो भैया ! इस जगत् मे तुम्हारा कोई शरण नहीं है। हमे लोग चाहते है, सब आज्ञाकारी है, उनसे मुझे सुख मिलता है यह सोचना अज्ञान है। प्रत्येक जीव न्यारे-न्यारे है, सबके कर्म जुदे-जुदे है , सब अपने-अपने कषाय से आकुलताये प्राप्त किया करते है। अपने को अकेला जानकर, अपने को अपना ही जिम्मेदार समझकर अपना कल्याण किया जा सकता है। सो अब इन भोगो से विरक्त होकर अपने प्रभु की भक्ति मे ही रत होकर अपने आप मे आवो और अपने आपमे ही सुखी होवो। हम और आप क्या चीज हैं। अगर अपने इस आत्मस्वरूप को देखे तो न गध मिलती है, न रस मिलता है और न बू मिलती है। आत्मा तो केवल ज्ञानानन्दस्वरूप है। इस आत्मा मे केवल आनन्द ही भरा हुआ है। ज्ञान और आनन्द वाली जो वस्तु है वह यही आत्मा ही है। आखो से देखी जाने वाली चीजो मे क्या कोई जानकारी समझ मे आती है? इसमे न तो ज्ञान ही है और न आनन्द ही है। ज्ञान और आनन्द को छोड़कर इसमे कुछ नही भरा हुआ है परन्तु जब अपने को भूल जाते है, इन परपदार्थोसे ही आनन्द मानते है तो इसे ही अज्ञान कहते है तो दूसरो से आनन्द की आशा करना ही अज्ञान है। जब कभी अपने को दु ख होते है तो अपनी ही गलती से होते है। राग द्वेष करने से ही दु ख होते है, पर नाम लगाते है दूसरो का। अपने कुटुम्ब परिवार की आशा न करो। ये लोग अपने लिए हितरूप नही है, कुटुम्ब परिवार इत्यादि को अपना मानने से ही दु ख है।

अब देखो एक दृष्टान्त द्वारा समझो कि एक जानवर होता है कुत्ता और एक जानवर होता है सिह। इन दोनो मे फर्क देखो कितना है? कुत्ते को एक दो रोटी के टुकड़े खाने के लिए दे दो तो वह आपका कितना बड़ा भक्त हो जाता है। रात मे आपके घर की रखवाली करता है। कोई विपत्ति अगर मालिक के ऊपर चढ़ गयी तो वह उसे बचाता है। तो कुत्ता उपकार करने वाला है कि नहीं ? शेर की बात देखो वह कुछ उपकार नही करता । शेर तो अगर दिख जाय तो दिल काप जाय। यदि कच्चा दिल हो तो हार्ट फेल हो जाय। शेर अनुपकारी जानवर होता है और कुत्ता उपकारी जानवर होता है। कुत्ता तो आज्ञाकारी होता है, पर शेर विनाशकारी होता है। किन्तु उनका फर्क एक मिसाल द्वारा देखो। कोई अगर किसी की प्रशसा करे कि अमुक तो बड़े उपकारी है, क्या कहना है ? कुत्ते के समान हैं। कुत्ते से तो भले और अच्छे की उपमा दी गई, पर सुनने वाले लोगो को बुरा लगता है। अच्छा बताओ बुरा लगता है कि नही ? बुरा लगता है, मगर कोई कह दे कि तुम तो शेर के समान हो। हालाकि शेर के समान (खतरनाक)होना बुरी बात है, फिर भी सुनने वाले लोग खुश हो रहे है। शेर दूसरो के प्राण हरता है इसलिए उस व्यक्ति की भी निन्दा की जा रही है। मगर वह व्यक्ति सुन-सुनकर खुश हो रहा है। यह फर्क क्यो आ गया है? यह फर्क आ गया है मोह और अज्ञान से । शेर विनाशकारी है तो भी उसमे विवेक है, ज्ञान है। इसलिए शेर की तरह होने की बात सब सुनना चाहते हैं। कुत्ता बड़ा आज्ञाकारी है फिर भी उसमे अविवेक है। इसलिए कोई कुत्ते की उपमा नहीं सुनना चाहता है। कुत्ते के अगर लाठी मारी जाय तो लाठी को वह मुह मे भरता है। वह समझता है कि हमे लाठी ने ही मारा है, वह यह नहीं जानता कि किसी मनुष्यने मारा है। यही समझकर वह लाठीपर हमला करता है, मनुष्य पर हमला

नहीं करता है। परन्तु कोई शेर को लाठी मारे तो वह लाठी पर नही आक्रमण करता है, बल्कि मनुष्य पर ही आक्रमण कर देता है। वह समझता है कि इस मनुष्य ने ही हमे मारा है, लाठी ने नहीं मारा है। तो शेर अनुपकारी और कुत्ता उपकारी जानवर होता है। तो भी विवेक का फर्क है।

इसी तरह ज्ञानी और अज्ञानी की बात है। अज्ञानी तो कुत्ते की तरह निमित्तदृष्टि वाला है और ज्ञानी शेरकी तरह उपादानदृष्टि वाला है। अज्ञानी समझता है कि मुझे कुटुम्ब ने फसाया, इसने हमे गाली दी, इसने हमारा अपमान किया आदि। परवस्तुओ को अज्ञानी यह समझता है कि मेरी है। ऐसे ही ख्याल बन गये है इसी से यह अज्ञानी दु खी बना रहता है। मै स्वय ख्याल करके दु खी होता हूँ, इसका भान नहीं, किन्तु ज्ञानी को यथार्थ ही भान है।

भैया ! इन भोगो से प्रीति हटाओ। इन समागमो मे तृष्णा न करो। यदि इनका सयोग होता है तो उनसे वियोग जरूर होगा। कोई वाह्य अर्थ प्रीति करने के लायक नहीं है। भोगो से हटकर अपने आपके स्वरूप से प्रीति करो और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

देही कश्चिन्न यो मृत्यु न प्राप्तस्तर्हि को मम।
त्राता स्ववृत्तिरेवात स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-७।।

अर्थ– ऐसा कोई भी देही नहीं हुआ जो मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ तब फिर मेरा ही कौन रक्षक हो सकता ? निश्चय से आत्मा में स्थिति ही मेरा रक्षक है इसलिये मैं अपने में अपने लिये स्वयम् सुखी होऊ।

इस दुनिया मे कोई प्राणी ऐसा नजर नही आता है जो मृत्यु को न प्राप्त हो। कोई समय ऐसा आयेगा कि हमे भी मरना पडेगा। मेरा यहा कोई रक्षक नहीं है। केवल अपने आपके स्वरूप को देखो, वह स्वरूप ऐश्वर्य से भरा हुआ है, परमात्मतत्व रूप है, ज्ञानानन्दमय है। ऐसा ही अपने आपके स्वरूप को देखो, कल्पनाओ को त्यागो तो तुम्हारा रक्षक तुम्हीं हो सकते हो।

एक कथा है कि ब्रह्मा ने चार जीव बनाये। उल्लू, कुत्ता, गधा और मनुष्य। चारो को ४०-४० वर्ष की उम्र दी। ब्रह्मा बोला जावो हमने तुम्हे पैदा किया। उल्लू ने कहा महाराज मेरा काम क्या है? ब्रह्मा ने कहा कि अधा वने बैठे रहना, जो कुछ मिल जाय उसी को खा लेना, यही तुम्हारा काम है। उल्लू बोला हमको कितने वर्ष जिन्दा रहना होगा तो ब्रह्मा बोले कि ४० वर्ष तक। उल्लू बोला महाराज हमारी उम्र आधी कर दीजिए तो ब्रह्मा ने उसकी २० वर्ष की उम्र कर दिया। २० वर्ष तिजोड़ी मे रख दिये। कुत्ते ने कहा महाराज हमारा क्या काम है तो ब्रह्मा वोले कि तुम्हें जो कोई रोटी का टुकड़ा दे दे उसी की भक्ति करना, उसकी ही सेवा करना। वस यही तेरा काम है तो उम्र मेरी कितनी दिया? वोले ४० वर्ष। तो कुत्ते ने कहा, महाराज हमारी उमर कम कर दीजिए तो उसकी भी २० वर्ष कम कर दिया। २० वर्ष तिजोरी मे रख लिये। गधे ने कहा महाराज मेरा क्या काम है ? तो ब्रह्मा वोले कि तू बोझा ढोना और जो कुछ रूखा सूखा भूसा मिल जाय उसी को खा लेना। गधा वोला, महाराज हमारी कितनी

उम्र दिया तो ब्रह्मा बोले ४० वर्ष। कहा, महाराज हमारी उम्र आधी कर दीजिए तो आधी उम्र कर दिया। अब की बार मनुष्य ने कहा— मेरा काम क्या है तो ब्रह्मा बोले कि तेरा काम है भोगविलास करना, मौज मनाना, खुशिया मनाना। मनुष्य ने कहा— महाराज, हमारी क्या उमर दी ? ब्रह्मा बोले —४० वर्ष। मनुष्य ने कहा, उम्र और बढ़ा दीजिए। ब्रह्मा ने कहा देखो खजाने मे देखता हूँ, अगर गुजाइश होगी तो बढ़ा दूगा। देखा तो बीस बीस का जुम्ला लगाया तो ६० वर्ष की उम्र बच रही थी। तो वह सभी उम्र मनुष्य को दे दी। अब तो मनुष्य १०० वर्ष का हो गया।

सो देखो मनुष्य ने हसी खुशी से ४० वर्ष बिता दिये। खूब चैन से, आराम से ४० वर्ष बीत गये। इतनी उम्र तक तो माता-पिता की सारी जिम्मेदारी रही। इतनी उम्र तक खूब आराम किया, बच्चो को देखा, देखकर रहे, भोग विलास किए। पर ४० से १०० वर्ष तक की उम्र तो कुत्ता, गधा और उल्लू जैसी रही। असली उम्र तो ४० वर्ष ही थी। अधिक कमाना पडता, लडकी हुई तो उसकी शादी करनी है सो धन जोड़ने की फिक्र हुई, इधर भागा, उधर भागा। इस तरह से और गधे की जैसी उम्र ६० तक गयी, अब ६० के बाद शक्तिहीन हो गये। सो पुत्रो के आधीन हो गये। शहरों और नगरो मे तो जिसके नाम जायदाद है उसी के नाम रहती है जब तक कि वह मर नहीं जाता पर देहातो मे तो जहा बूढ़े हुए बच्चो के वश हो जाना पड़ता है। बच्चो को खिलाते पिलाते हैं, उनका पक्ष करते हैं, उसमे ही अपना समय व्यतीत करते है। ८० वर्ष के बाद १०० वर्ष की उम्र तक उल्लू की उम्र रहती है। न तो आखो से दिखाई पडता, न कानो से सुनाई पडता। बहू बेटियो ने खाने को बुला लिया तो खा लिया, नहीं तो न खाया। छोटी अवस्था मे ही आकर स्वाधीन अपने को कर लिया तो भला है। ज्ञान अगर सही है तो सब ठीक है। अपना शुद्ध ज्ञान बना रहे तो समझो अपना कल्याण हो गया और यदि ऐसा न कर सके तो भला नही होगा। अपनी भलाई का काम तो एक यही है कि सच्चा ज्ञान बना रहे। मोह ममता मे न पड़ो। केवल शुद्ध, स्वच्छ, ज्ञान ज्योतिर्मात्र अपने आपको निरखो और अपने ज्ञानस्वरूप मे रमकर स्वय सुखी होवो। यदि ऐसा कर मके तो जीवन सफल है।

बाहर से दृष्टि हटाओ, अपने स्वरूप मे ही लगे रहो, अपना स्वरूप ही निज का घर है। आहार तो पशु पक्षी भी कर लेते हैं, इसमे कौनसी विशेष बात है ? पशुओ और मनुष्यो मे कौन सी विशेपता है? यदि विशेषता है तो केवल जप, तप और सयम की है। यदि ऐसा नहीं है तो पशु मनुष्य से अच्छे है। अगर मनुष्यो मे धर्म न हो तो पशु इस मनुष्य से अच्छे हैं। अभी किमी के म्वर की तारीफ की जाती है तो कहते हैं कि उनका स्वर कोयल के कठ की तरह है। यदि किसी की नाक की उपमा देना है तो कहेगे कि इनकी नाक सुवा की नाक की तरह है। यदि किसी मनुष्य की चाल अच्छी है तो कहेंगे कि अमुक व्यक्ति की चाल हस की चाल की तरह है। यदि कोई बहादुर व्यक्ति है तो कहेंगे कि अमुक व्यक्ति शेर की तरह बहादुर है। यदि किसी के नेत्र अच्छे हैं तो कहेंगे कि अमुक के नेत्र हिरण के नेत्रों के समान है। यदि कोई मनुष्य जागती हुई नींद मे सोता है तो कहेंगे कि अमुक व्यक्ति कुत्ते की जैसी नींद सोता है तो जिसकी उपमा दी जाती है वही बड़ा हुआ ना ? सो मनुष्य से तो पशु-पक्षी अच्छे हैं।

यदि मनुष्यो मे धर्म है, पर की सेवा का भाव है, दया है, उपकार है तो वह आनन्द से रहेगा। अन्यथा उसे जीवन मे कभी शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती ।

जो घर के लोग हैं, स्त्री, पुत्र, भाई, बहिन आदि ये ही मेरे सर्वस्व है—यह सोचने वाले तो वे अंधेरे मे ही हैं। जगत के अन्य जीवो का स्वरूप भी वही है जो मेरा है। उनके और मेरे स्वरूप मे कोई अन्तर नहीं है।। ऐसा यथार्थस्वरूप जानकर आत्मधर्म की दृष्टि करो, धर्म की ओर मुख मोड़ो। प्रभु की भक्ति मे, गुरुओ, सज्जनो के सत्सग मे, दीन-दुखियो के उपकार मे तन, मन, धन को लगाओ। शरीर भी नष्ट हो जायगा, मन भी नष्ट हो जायगा और धन भी नष्ट हो जायगा, वचन भी नष्ट हो जायगा, पर धर्म शाश्वत है—धर्म की इस ओर से अपना मुख न मोड़ो। अरे जो नष्ट हो जाने वाली चीजे है वे हमे मिली हैं, अरे इन नष्ट हो जाने वाली चीजो के नष्ट हो जाने पर, वियोग होने पर क्यो दु ख किया जाय ? नष्ट हो जाने वाली चीजो के वियोग पर विषाद करना आसान है। पवित्रता, स्वच्छता प्राप्त कर लो यही तुम्हारा कर्तव्य है। इस दुनिया मे कोई दूसरा रक्षक नही है, ऐसा यदि विश्वास कर लो तो दु ख नहीं होगा।

बालवृद्धयुवाग्रासे यमस्य समता भवेत्।
साम्यपुञ्जस्य मे किं न स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-८।।

अर्थ– बालक हो युवा हो वृद्ध हो सभी के ग्रास (मरण) में यमराज (आयुक्षय) के हो समता हो जावे और समता के पुञ्ज मुझ आत्मा में क्या समता न हो मैं तो समतामय स्वभावी अपने में अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं।

अव्वल तो हम और आप यह निश्चय नहीं कर सकते हैं कि कितना जीना है ? कब तक हम आप जिन्दा रहेगे, इसका निर्णय हम आप नहीं कर सकते है। हम देखते हैं कि छोटे छोटे बच्चे, जवान और बूढ़े सभी गुजर जाते हैं। उस यमराज मे बहुत बड़ी क्षमता है जो सबको उठा ले जाता है। चाहे बूढ़ा हो, चाहे जवान हो, चाहे बच्चा हो, सबको एक समान समझकर ही वह उठा ले जाता है। उस यमराज मे बहुत बड़ी समता है, रागद्वेष उसमे नहीं है अर्थात् वह सबको एक दृष्टि से निरखकर मार डालता है। किन्तु हम और आपके बड़े खेद की बात है कि समता नहीं उत्पन्न होती है। हम अपने इस नर जीवन को अमूल्य समझें। ८४ लाख योनियों में भ्रमण करके कभी यह भव प्राप्त होता है। इस नरभव में अच्छे काम करने से अच्छी गति प्राप्त हो जाती है और बुरे काम करने से बुरी गति प्राप्त हो जाती है। लोकोत्तर सद्गतियो में जाने का मौका तो इस नरभव में ही प्राप्त होता है। इस भव से ही धर्म की प्रीति बढती है। धर्म के बढ़ाने से भव हटते हैं, पाप समाप्त होते है। यदि हम मोह ममता मे पड़ें तो हमें दु ख ही उठाने पड़ेगे। यह सत्य बात कही जा रही है कि जो भाव मोह लिए हैं, वह कषायों से निवृत्त नहीं हैं। यहा कोई शरण नहीं है, किन्तु उनका ख्याल करके पाप कमाते चले जा रहे हैं। सो अब अपनी दृष्टि अपने आप मे करो तो तुम्हारा हित है, तुम्हारा कल्याण है। मोक्षमार्ग के लिए

यही एक कल्याण की बात है, यही एक आनन्द का उपाय है। हम पढ़ते हैं, सुनते है। पढ़ने से सुनने से हम भीतर का हृदय ऐसा बनाये कि मोह ममता इत्यादि न रह जावे। मोह ममता इत्यादि से तो पूरा नही पड़ेगा। अपने आपका ज्ञान कर बाहरी पदार्थो से दृष्टि हटावो तो पढ़ने लिखने से लाभ है।

एक पजाबी था, उसके घर मे एक तोता था। उस तोते को उसने यह कहना सिखा रखा था कि "इसमे क्या शक" एक ब्राह्मण उसके घर आया, बोला—तोता तो बड़ा सुन्दर है हमे इसे खरीदना है। बोलो—क्या कीमत है ? पजाबी ने कहा—क्या बतलाऊ कि इसकी क्या कीमत है ? कहा--नहीं, नहीं सच बतलावो इसकी क्या कीमत है ? पजाबी बोला कि १००) कीमत है और कहा—तोते से ही पूछ लो कि क्या तुम्हारी १००) कीमत है ? ब्राह्मण ने पूछा कि ऐ तोते ' क्या तुम्हारी १००) कीमत है ? तोता क्या कहता है कि इसमे क्या शक ? तो उत्तर तो फिट बैठता है। ब्राह्मण ने १०० रु० दे दिये और खरीद लिया। ब्राह्मण घर मे तोते के सामने रामायण खोलकर बैठता है, बोलता है कि तोते बोलो राम राम। तोता बोला—इसमे क्या शक ? कोई रामायण का छद ब्राह्मण बोलता है तो तोता कहता है कि इसमे क्या शक ? ब्राह्मण बोला—ब्रह्म एक है, आनन्दघन है। तोता बोला—इसमे क्या शक ? ब्राह्मण बोला—अच्छा, यह बात छोडो जो ब्रह्मस्वरूप मे रमेगा उसको सतोष होगा और सुख होगा। तोता बोला—इसमे क्या शक। अब तो उसने भी शक कर लिया कि क्या मैने अपने रुपये पानी मे मिला दिए। तोते को केवल क्या इतना सिखाया गया है कि इसमे क्या शक, सो ब्राह्मण ने पूछा कि क्या मेरे १००) पानी मे गये। तोता बोला—इसमे क्या शक ? सो जैसे भोग विषय मे, बाहरी बातों मे या ममता मे क्लेश मे समय गुजर जाता है तो समझो कि इतना जीवन यो ही चला गया। केवल बात रटने से कल्याण नही होगा।

भला बतलाओ, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का आदर नहीं कर सकता हो वह तो प्रभु के स्वरूप का अपमान है। सबका रूप प्रभु के रूप के ही समान है। फिर बतलावो जगत में कौन सी ऐसी सारभूत चीज है जिसमे राग किया जाय। यदि अपने स्वरूप से बाहर दृष्टि है तो उस वृत्ति की कीमत न समझो। इस सहज आत्मा का मूल्य समझो। दूसरो का निरादर न करो, सगठन बनाये रखो, ऐसा यत्न करो जिससे दूसरे जीव सुखी रह सके। यही हमारा करने का कर्तव्य है। यदि इससे चूके तो काम नहीं चलेगा। अपने आप मे ज्ञान बनाओ, सब जीवो के सुखी होने की भावना बनाओ। यदि भावना तुम्हारी इस प्रकार की है तो पुण्य उत्तरोत्तर होता चला जाता है। यदि तुम्हारी भावना पापों की है तो पाप ही करते चले जावोगे, कोई दूसरा जीव तुम्हारा शरण नही होगा। दूसरे दुराचार ही तुम्हे दु खी करते हैं। इन दुराचारो से बचने के लिए उसमे होने वाले व्यसनो का त्याग बताया गया है। जुवा खेलने का त्याग, मास मदिरा खाने का त्याग और किसी जीव के घात करने का त्याग चोरी का त्याग, शिकार खेलने का त्याग, परस्त्री व वेश्यागमन का त्याग—इनका त्याग बहुत ही जरूरी है। जीवो को बन्दूक से मार दिया, लाठी से मार दिया और उससे मौज माना यह तो ठीक नहीं है। परस्त्रीगमन करने का त्याग होना, और अनेक व्यसन है उनका त्याग होना बहुत ही जरूरी है। मास मदिरा वगैरह मनुष्य के भोजन नहीं हैं। भोजन तो मनुष्य

का अन्न ही है। जो मास मदिरा खाते पीते है उन्हे मास मदिरा वगैरह तो महीने मे एक आध बार मिलता होगा। सो भैया ! यदि इसे त्याग दो तो जिन्दगी भर के लिए आत्मा पवित्र हो जायगी। जीव धर्म पालने के लिए मास मदिरा का त्याग होना ही चाहिए मास मदिरा वगैरह का त्याग करने से ही भला होगा। जो भी यहा वैठे हैं उन्हे चाहिए कि वे मन से ही मास मदिरा का त्याग कर दे। यदि वे अपने मन से ही कह देवे उन्हे पुण्य है। भैया ! केवल अपने चैतन्यस्वरूप की बात जग जाय तो जीवन सफल है और तो वाकी सव असार है। रागद्वेपमोह आदि मे फसकर गुजर गये तो क्या है ? घर मे रहते हुए भी कमल की तरह निर्विकल्प, निर्मोही रह सकते है और अपने आप मे ही वे सुखी हो सकते है।

रागद्वेषौ हि ससार ससारो दुःखपूर्णिम ।
ससारतो विरज्यात स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-६।।

अर्थ– निश्चय से राग और द्वेष संसार है और वह ससार दुःख से व्याप्त है इसलिये ससार से अनुराग न करके मैं अपने में अपने आप सुखी होऊ।

राग द्वेषो का नाम ही ससार है। इस दुनिया मे जो राग द्वेष है उन्ही का नाम ससार है। कहते हैं कि ससार दुःखो से भरा है, इसका अर्थ है कि रागादिक भावो से जो ऐसा भरा है उसमे दुःख भरे हैं। अगर लोक के क्षेत्र का नाम दुनिया कहेगे तो बतलावो भगवान् कहां रहता है ? वह भगवान् भी इसी लोक मे रहता है। इस ससार मे रहते हुए जीव को पाप नहीं है। जीव के रागद्वेष बने तो पाप है। राग द्वेषो का नाम ही प्राणिमात्र का ससार है। जीव मे ससार बसे तो पाप है तो उस ससार को पृथक् करना है याने धन, वैभव, घर, परिवार आदि ही क्लेश के साधन है, उनसे विरक्त होना है। केवल वात ही नहीं करना है। वे पदार्थ हैं उनमे ज्ञानदृष्टि रहे कि जो चीजे हैं वे ससार नहीं। उनमे जो रागद्वेष है वह ससार है। मन मे ऐसा जो रागद्वेष उत्पन्न होता है उनसे विरक्त होओ, रागद्वेषो मे रत न होओ। ये मेरे स्वरूप मे नहीं आते, ये मेरे करने से नहीं होते है। अवश उपाधिवश हो जाते हैं। कर्मो का उदय आता है। उनका उपादान ही ऐसा है कि रागद्वेष हो जाते हैं। वह तो मेरा स्वरूप नहीं है, उनसे मेरा हित नहीं, ऐसा जानकर उन रागादिको से विरक्त होना चाहिये।

जो रागद्वेपो से विरक्त हुआ वह अपने ज्ञानस्वभाव मे आया। मै ज्ञानमात्र हूँ। केवल जाननस्वरूप ही हूँ। इस स्वरूप का जव उपयोग लगेगा तव जानो कि अव रागद्वेप आदि नहीं आते हैं। यह जीव अगर रागादिक मे लगेगा तो यह अज्ञान है और यदि अपने ज्ञायकस्वरूप मे लगे तो यह ज्ञान है। यदि अपना ज्ञानस्वरूप अनुभव मे आवे तो ज्ञान पल्ले पडेगा और अगर वाह्य मे ही पड़े रहे तो कुछ पल्ले नहीं पडेगा। देखो ४०-५० वर्प की उम्र हम और आपकी हो गयी, इतनी उम्र मे क्या क्या नहीं किया होगा। वाहर की आशा किया होगा न जाने किन किन से ममता किया होगा, रागद्वेप किया होगा पर क्या कुछ पल्ले पड़ा। कुछ भी तो हाथ नहीं लगा।

हे आत्मन् ! तू तो अकेले ही वैठा हुआ है। मान लिया घर में सव लोग हैं पर उन सवकी सत्ता

न्यारी न्यारी है। यहा तो हम और आप अकेले अकेले ही विकल्प कर डालते है कि ये जीव ये वैभव हमसे मिले जुले है। अरे इन रागादिको मे पडने से तो पूरा नही पड़ेगा। पूरा तो तब पडेगा जब अपने स्वरूप से न फिरो। यहा ये व्यवहार की चीज बोलता हूँ। चाहे मोही उनकी प्रशसा कर दे। मोह करते है, वचन बोलते है, हिलमिल कर रहते है वे सब माया है, मोह के स्वप्न हैं। जैसे स्वप्न मे देखी बात सच मालूम होती है उसी तरह मोह की बाते सच लगती है। क्या आपका भाई, क्या आपका रिश्तेदार, क्या आपके मित्रजन जो हिलमिलकर रहते है ? खुश हो रहे है वे सब मोहवश ऐसा कर रहे है। अरे ये तो स्वय ही ससार ताप मे जल रहे है, इनमे कुछ तत्व नहीं, कुछ धर्म नही। तत्व की बात तो ज्ञानस्वरूप की दृष्टि मे ही है। ये जो आपके मित्रजन है, कुटुम्ब परिवार इत्यादि के जो लोग है उनमे से तुम्हारी मदद करने वाला कौन है ? कितने ही काम मोह द्वारा किए जा रहे है। अच्छा बतलावो, किसी का नाम भी लो कि जिससे मिल-जुलकर तुम्हारी आत्मा को कुछ मिलेगा। दान भी देते चलो जिससे कुछ सुविधा हो जायगी। देखो भैया स्थिति का क्या विश्वास ? कोई भिखारी इसी जीवन मे बन जाता, कोई राजा बन जाता। समागम का कुछ विश्वास नही तो यह सोचना चाहिए कि हमे अपने लिए क्या करना चाहिए? ऐसी बात यदि समझ लीजिए तो ज्ञाता दृष्टा बन जावोगे। ऐसी शुद्ध ज्ञान दृष्टि रहे कि जो वर्तमान चीज है उसमे तो रहना ही पड़ता है, किन्तु उस दशा से पृथक् ज्ञानानन्दमय आत्मतत्व की ओर झुकाव हो तो सुविधा है। अपने को राग द्वेषो से निकाल सकते हो। रागद्वेषो मे पड़ने से प्रगति का कोई रास्ता नहीं है। काम करना ही पड़ता है, किन्तु काम मेरा स्वरूप नही ऐसा मानो, अगर सच्चा ज्ञान जग गया तो उसकी विजय है।

भैया ! घर छोड़ने को तो नहीं कहा जा रहा है। बाल-बच्चो मे रहते हुए कुटुम्ब परिवार मे रहते हुए भी अगर ज्ञान जग गया तो सम्यक् निर्जरा होती है। ये प्रशसा करने वाले, बहुत बड़ा व्यवहार करने वाले आपकी कोई सहायता करने वाले नहीं हैं। वे सब अपनी-अपनी सत्ता मे हैं। देखिए श्रेयास कुमार जी एक योग्य सज्जन मित्र ही तो थे। उनका अब पता ही नही है कि किस गति को गए हैं ? अव उनके नाम को कौन याद करता है ? क्या ऐसा नही हो सकता है कि वह न गुजर गए होते, उनकी जगह पर हम आप ही गुजर गए होते तो क्या पता रहता कि कहा चले गए हैं ? कोई नाम भी न लेता। कितने ही ऐसे मौके हो गए जिनमे मरने का पूरा खतरा था। रोगो की बीमारी मे फसे रहने से सारी उम्र गुजर गयी। ५०-६० वर्ष की अवस्था गुजर गयी। इन रागद्वेषो मे ही रहकर जीवन मे कभी शाति न मिल सकी। सदा दु ख ही बने रहे। कोई हमे मत जाने, हम किसी को मत जाने। हम आत्मपोषण करते है यदि ज्ञानस्वरूप को निहारकर शाति की पुष्टि करते है। हमारा यहा क्या काम है ? ऐसा भीतर मे विश्वास हो, प्रोग्राम हो।

दुनिया मे शाति तो पैसा बढ़ाने से नहीं होती, रिश्तेदार बढ़ाने मे नहीं होती, मित्रता के कोई काम करने मे नहीं होती। मान लिया पैसा खूब बढ गया तो उससे शाति की किरणे तो निकलती ही नहीं। इन मित्रजनो से भी शाति नहीं मिलती है। इन मित्रो से भी निरपेक्ष बनाओ अपने को। प्रभु ही एक

निरपेक्ष मित्र है जिसके स्मरण से ही हम और आपको शाति मिल सकती है। बाहर मे दृष्टि पड़ती है अनेक काम बाहर के विकल्प के ही करते हो। अरे! किसलिए बाहर के विकल्प के काम करते हो औ प्रसन्न होते हो? कोई हमारी मदद करने वाला नही, ऐसा जानकर अपने हितकर प्रोग्राम बनाओ। विभूति तो पुण्य के उदय की बात है स्वत आ जायगी। जो कुछ अल्प परिश्रम से मिलता है उसमे ही गुजारा करना है, अन्याय धोखा आदि करने से क्या लाभ? जो कुछ मिल जाय भाग्यवश उसी मे बसर करो। हमारी चार आदमियो मे बडाई हो जाय तो इससे क्या होगा? ऐसा उपयोग यदि भीतर मे बने तो शान्ति प्राप्त हो सकती है। जितने क्षण व्यतीत हो गए वे फिर नहीं आयेगे। फिर समय के हिसाब से ही अपने हित की बात सोचो। विपरीत मार्ग की ओर जा रहे हो, नाजुक की ओर ही जा रहे हो। रही सही जो आयु है उसमे ही ज्ञान करके अपना कल्याण कर लो। ज्ञान की ही बात करो, भीतर मे ममता न रखो। जो मोह कर रहे है उनका ऐसा ही विश्वास हृदय मे बने तो वे अपने आप सुखी हो सकते है।

यहा मेरी क्या खूब परीक्षा कर लो। यदि तुम्हारा कुछ नही है तो राग द्वेष न बनाओ। दु ख देने वाले ये रागद्वेष ही है। ऐसी कल्पनाये न उठे कि अमुक भैया यो नही करते इसलिए दु ख होते है। ये मेरे इष्ट हैं, ये मेरे अनिष्ट है ऐसा ख्याल बनाने से तो दु ख ही प्राप्त होगे। मेरे दु ख तो अज्ञानता के ही कारण है। स्वाधीनता न रखने से ही दु ख हो जाते है। उन दु खो से यदि दूर रहना है तो अपने ज्ञान मे सबकी स्वाधीनता रखना चाहिए। सब जुदा-जुदा है, अलग-अलग है ऐसा ही देखना चाहिए। ऐसा ही अनुभव करने से शाति मिलती है। बाहर मे दृष्टि न फसायी तो शाति का प्राप्त करना सरल है। मुख्य बात तो यह है कि जो रागद्वेष उत्पन्न होते है उनसे विरक्त होवो। रागद्वेष उत्पन्न करना मेरा काम नहीं, मेरा स्वरूप नहीं, मेरा स्वभाव नहीं। मेरा क्या स्वरूप है? मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, केवल प्रतिभासमात्र हू मै जानने के ही काम में लगू। रागद्वेषों के कामो से अलग रहूँ। भैया! तुम तो व्यर्थ की कल्पनायें कर रहे हो। मैं तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा जानकर ससार के रागद्वेषो से विरक्त होओ। घर छोड़ दो इसके मायने विरक्त नहीं। अपने अन्दर जो रागद्वेष के भाव हो उनकी विरक्ति कर दो। रागद्वेष करना तो मेरा स्वभाव ही नहीं है, मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा भीतर मे स्वरूप की रुचि करके मै अपने स्वरूप मे ही रत होऊ और अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

करने का काम इतना ही है कि मैं अपने को सबसे न्यारा मानता रहू। यदि अपना स्वरूप न्यारा समझ में आयगा तो शाति प्राप्त हो सकती है। ऐसा अपने स्वरूप को देखने के लिए ही भगवान् के लोग दर्शन करते हैं।

ससारजो हि पर्याय संसार उपचारत ।
त्यक्त्वा तन्मूलसंसार स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-१०।।

अर्थ- निश्चय से ससार (रागद्वेष मोह आदि विभाव) से होने वाली व्यक्त पर्याय तो उपचार से ससार कहा जाता है मैं तो उसके मूलभूत ससार को ही उपयोग से हटाकर अपने में अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं।

नगर कोई ससारियो से अलग चीज नहीं है। ये भ्रमने वाले जो जीव हैं इन जीवो का समूह ही ससार कहलाता है। सो ये जो पर्याय हैं मनुष्य हैं पशु-पक्षी हैं कीड़े मकोडे हैं यही ससार है, यही है ससार की मूर्ति और जो भगवान् की मुद्रा है वह है मुक्ति। ससारी हम और आप ही कहलाते है। हम और आप ही तो ससारी बने हुए हैं। रुलने वाली चीजे रहना ही मोह है। इस जीव का किसी दूसरे जीव से कोई नाता नहीं है कोई सम्बन्ध नहीं है। जो घर मे पैदा हुआ पुत्र है वह भी अपना नहीं है, न्यारा है। उसका भी मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

भैया ! सभी जीव न्यारे-न्यारे हैं, फिर भी उनसे रागद्वेष मोहवश सम्बन्ध माने है उसी से क्लेश होते हैं। दूसरे कोई दु ख के देने वाले नहीं है। एक यह ही बात मन मे आ जाय तो ज्ञान जग गया। यह ही बात बैठ जाय कि मेरा दु ख देने वाला दुनिया मे दूसरा नही है। इतना ही जो राग परिणाम है, परवस्तुओ मे जो आकर्षण है, बस ये ही भाव दु ख देने वाले है। और धर्म की बात तपस्या की बात, व्रत की बात वह भी सवर है। किन्तु आत्मा की बात जो न बनी तो अन्य सब करना न करना सब बराबर है। परन्तु इतनी ही बात पकड मे आ जाय कि मुझको दु ख देने वाला मेरा राग द्वेष मोह ही है, दूसरा और कोई मुझे दु ख देने वाला नहीं है। अगर हृदय मे यह बात बैठ जाय तो बस यह ज्ञान तरने के लिए पर्याप्त है। मेरा दु खी करने वाला मोह परिणाम ही है दूसरा और कोई जीव मुझे दुखी नही कर सकता। दूसरे लोग भी अपना-अपना स्वार्थ लिए हुए है, अपना अपना सुख चाहने वाले है, अपनी-अपनी धुन मे है। सो अपनी धुन मे रहते हुए भी इन्हे यह समझ ले कि मेरा किसी से सम्बन्ध नही है, पर हम ही स्वय मूर्ख बनकर बाहर मे दृष्टि डालते है, परिवार के लोगो को अपना मानते है, इसी से दु खी होते है।

भैया ! दूसरे जो है वे खुद दु खी है, वे स्वय अपने ही अनुसार चलते है। हम कोई विरोधी हो सो बात नही हमारा कोई बिगाड़ करने वाला हो सो बात नही। जीव सब है, अपनी-अपनी धुन मे रहते है। जैसा उनका परिणाम है वैसी ही परिणति है। हम ही ख्याल बना लेते है कि यह मेरा अनिष्ट है, इष्ट है और दु खी होते है। मुझको दु ख देने वाले ये रागभाव के परिणाम ही है, यह ज्ञान की बात है। अज्ञान मे उल्टा सूझता है। इन्होने मेरा बिगाड किया, इन्होने विरोध किया आदि। वास्तविकता यह है कि जीव अपना स्वार्थ चाहते है सो अपना स्वार्थ चाहने मे जो उनसे बन पड़ता है सो करते है। कोई किसी दूसरे का कुछ नही करता है। एक यह ही ज्ञान समा जाय कि मुझको दु ख करने वाला कोई दूसरा नही है, मेरे राग परिणाम ही मुझको दु खी करते है। सो ज्ञान के होने पर सब कषायो मे फर्क आ जायगा, क्रोध भी न रहेगा, मान आदि भी न रहेगा।

ज्ञानी जीव की निर्मलता देखो कि युद्ध मे भी जाना पड़ता है तो वहा भी वह सैकड़ो को मार गिराता है। इतने पर भी ज्ञानी जीव का परिणाम निर्मल है। वह ४१ प्रकृतियो का बध नहीं कर रहा है। उसके ऊपर तो किसी ने हमला किया, आक्रमण किया तो उससे वह अपनी रक्षा के लिए अविरत भाव मे मुकाबला कर रहा है। उसका पाप करने का जरा भी विचार नहीं रहता है। उस ज्ञानी जीव

की निर्मलता देखो। धन्य है वह ज्ञान। चाहे राजा हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे कुछ भी हो, निर्मलता अन्तरग मे आवे यही ज्ञान है। ज्ञान जग जाय तो उसको दु खी करने वाला कोई दूसरा नहीं है। मेरे राग ही मुझे दु ख देते है ऐसा यदि ज्ञान हो गया तो क्रोध मे अन्तर आ जाता है। अनन्तानुबधी क्रोधी नहीं होते है। युद्ध मे भी वे रहे तो घमड नहीं आयेगा, छल कपट न करेगा। तो मुझे दु खी करने वाला कोई दूसरा नहीं है। केवल मेरे रागभाव ही मुझे दु ख देते है। दु ख तो राग के, मोह के कारण ही है। सो अपने इस अज्ञान को मिटाओ और अपने आप सुखी होवो।

यन्न रागवश प्राप योनिदेशकुल न तत्।
मुक्त्वा रागमत स्वस्थ स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।३-११।।

अर्थ– वह (ऐसा कोई) योनिदेश व कुल नहीं है जिसे राग के वशीभूत हुए मैंने न प्राप्त किया हो इसलिए राग को छोडकर स्व में स्थित होता मैं अपने आप अपने में अपने लिये सुखी होऊ।

देखिए इस जीव ने इस दुनिया मे कितने चक्कर लगाये है ? कोई जमीन ऐसी नही बची, कोई इन्चभर भी जगह ऐसी नही बची जहा यह जीव अनन्त बार पैदा न हुआ हो और मरण न किया हो। आज जैसे खिसनी मे पैदा हुए, तो जानते है कि हम खिसनी के है। अरे हम तो सारी दुनिया के है और कही के भी नहीं। दुनिया मे ऐसी कोई जगह नही बची जहा पर हम पैदा न हुए हो। आज यहा पैदा हुए तो कल दूसरी जगह। ८४ लाख योनियो मे भ्रमण करके आज खिसनी ग्राम मे पैदा हुए है, फिर कहीं दूसरी जगह पैदा होगे। इस दुनिया मे सभी जगह पैदा हुए, अनन्तो बार राग के वश होकर सर्वत्र भटककर इस मनुष्यभव मे जन्म लिया और मरण किया। इस मनुष्य का पूर्वभव मे जिसका राग था वह अब कहा है ? पता नहीं कौन पिता था, कहा घर था या किस योनि मे थे ? यह मेरी सम्पदा है, यह मेरा घर है, यह मेरा परिवार है, इसी विकल्प मे मनुष्य पड़ा रहता है और अन्त मे मरकर किसी दूसरी योनियो मे चला जाता है। इस प्रकार का जो मनुष्य शरीर मिला है उसमे अगर धर्म नही किया तो कुछ भी नहीं किया। यदि धर्म नही किया तो कहते है कि गैर की तरह आया और चला गया। आज यहा तो कल और जगह गया। यह ठाठ तो इसी तरह चलता ही रहता है। इसका कही कुछ वैभव नहीं है। अगर कुछ इसका वैभव होता तो साथ ले जाता । सो जैसा आया वैसा ही चला गया। यह मनुष्य नए नए राग बनाता रहता है और ये राग ही उसे मिटाते रहते है।

भैया! ऐसा जगत् मे कोई प्रदेश नहीं बचा जहा पर यह जीव राग के वश होकर पैदा न हुआ हो। कोई कुल नहीं बचा जिसमे यह जीव अनन्तो बार पैदा न हुआ हो। भैया ! उस भटकने का कारण है राग। राग छोड दो अभी सुखी हो जावो। देखा होगा कभी-कभी बच्चो मे खाने पीने वाली चीज मे जब लडाई हो जाती है। जिस बच्चे के हाथ मे खाने वाली चीज है उसे दूसरे बच्चे छीनने के लिए झपटते है, उसे मारते है, पीटते है। अगर वह बच्चा उस चीज को फेक दे तो वह मजे मे हो जाय। यह जानो कि जीव केवल रागद्वेषो से दु खी है। दु ख दूर से आया हुआ नही है। दु ख तो हम और आप मे ही बैठा हुआ है। किसी को कोई कुछ कह रहा हो, कोई टोटा हो रहा हो, धन न हो तो यहा

क्या हुआ ? उसे कोई सता तो नहीं रहा है, बल्कि वह अपने राग से ही दु खी हो रहा है। दु खी करने वाला कोई दूसरा नहीं है। हम स्वय ही राग करते है और दु खी होते है। वे राग व्यर्थ के राग है। राग गृहस्थ को करने पड़ते है। गृहस्थ राग कर ले फिर भी भीतर मे सच्ची बात तो जगाना चाहिए। सच्चे ज्ञान का प्रकाश तो रहना ही चाहिए। उसका राग करना व्यर्थ, उसका मोह करना व्यर्थ। करना पड़े तो बात अलग है, पर ध्यान मे मोह की बात न आवे तो यही मुक्ति प्राप्त करने का उपाय है। ये मोह राग आदि अकल्याण के करने वाले है। न भीतर ज्ञान जगे तो देख लो, वही का वही है। यदि कोई बैठा रहे बैठे-बैठे ही क्रोध करता रहे, गुस्सा करता रहे तो वह अपने को ही बरबाद कर रहा है। यदि यही जिन्दगी रही तो ज्ञान भीतर मे न जगेगा। दु खो के मिटाने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। मोह छोड़ना ही एक दु खो के छोड़ने का उपाय है।

जैसे मानो कोई सेठ कमरे मे सो रहा हो और स्वप्न ऐसा आ जाय कि उसको गर्मी बडे जोरो की लगे। सो यह इच्छा चल जाय कि चलो समुद्र मे नाव मे बैठकर घूमे। समुद्र की ठडी हवाओ से गर्मी शात करे। वह समुद्र मे नाव द्वारा सैर करने चला। यह स्वप्न की बात कह रहा हूँ। जब वह चलने लगा तो घर वाले पुत्र तथा स्त्री आदि बोले कि हमे भी गर्मी लग रही है, हम भी सैर करने चलेगे। अब सब समुद्र मे नाव मे बैठे हुए चले जा रहे है। समुद्र मे ही एक तूफान ऐसा आया कि नाव का सम्भालना कठिन हो गया। तो मल्लाह बोला कि अब नाव डूबे बिना रह नही सकती । मै तो किसी तरह से तैर करके निकल जाऊँगा। तो सोचो वह सेठ ख्याल बनाकर कितना दु खी होता होगा ? कहा तो सेठ जी पलग पर सो रहे है, नौकर-चाकर आराम देने का काम कर रहे हैं कि सेठ जी सोकर जगे तो कुछ बात करे, किन्तु सेठ जी स्वप्न मे ही ख्याल बना-बनाकर दु खी हो रहे है। सेठ के दु ख को मिटाने वाला साधन कठिन है बताओ। सेठ के दु खो को दूर करने वाला कोई नहीं है। केवल एक उपाय है। वह उपाय यह है कि सेठ जी की नीद खुल जावे। अगर सेठ जग जावे तो दु ख कहा है। वह तो पलग पर सो रहे है, ठाट से कमरे मे सो रहे है। यदि सेठ जग जावे तो उसके दु ख दूर हो जाये।

इसी तरह यहा जीव मोह की नीद मे सो रहे है। यह मेरा है, यह उसका है, यह भला है, यह बड़ा अच्छा है। पर वस्तु को चिपकाये है, राग कर रहे है, इससे सुख तो मिल ही नहीं सकते हैं। अच्छा बतलाओ यदि कोई अपनी स्त्री के सम्बन्ध से, अपने पुत्र के सम्बन्ध मे सुखी रह सका हो तो बतलाओ। अगर स्त्री खोटी निकली तो लडोगे, गुस्सा करोगे, दु ख होगे। और अगर स्त्री गुणकारी हुई, गुण वाली हुई तो यही बना रहेगा कि मै इसके लिए क्या ला दू कैसे इसको सुखी रक्खू कैसे यह बढिया रहे ? इस प्रकार से परिश्रम करके दु खी रहते है।

मे है। अपनी ओर रमने मे ही सुख है। बाहरी पदार्थो मे मोह करके सुख नही है। सो कहते है कि ऐसा कोई देश नहीं बचा जिसमे हम और आप अनन्तो बार पैदा न हुए हो। क्यो भटक रहे है आज तक? केवल राग के कारण और मोह के कारण। मोह, ममता और अज्ञान ही दु खो का कारण है। 'निज को निज पर को पर जान।' यही सुख शाति पाने का उपाय है। मै सबसे न्यारा हूँ । यह जीव सबसे न्यारा है। कोई किसी से मिला नहीं है और न मिल सकता है। जो जैसा है उसे वैसा न मानना यही अज्ञान है, यही जीव को दु ख देता है। यदि मोह छोड दो तो सुखी हो सकते हो।

कीटो भूपो नृप कीटो जायते विषमे भवे।
स्वास्थ्यमेव स्थिर स्थान स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-१२।।

अर्थ– इस विषमभव में कीडा तो राजा हो जाता है और राजा कीडा हो जाता है। इस ससार में कोई स्थान स्थिर नहीं है किंतु स्व आत्मा में स्थित रहने रूप स्थान ही स्थिर है इसलिये मैं स्व में हीं स्व के अर्थ स्व में स्थिर होऊ।

यह दुनिया बडी विषम है। कहो कीडा मरकर राजा बन जाय और कहो राजा मरकर कीड़ा बन जाय। ये जो अज्ञान विचार वाले है, जीवो का वध करते है अथवा मास खाते है, प्राणिघात करते हैं, शिकार खेलते है और मौज मानते है, हर्ष मानते हैं। तो क्या यदि कोई यह समझे कि मै मनुष्य हूँ तो मनुष्य ही रहूँगा, ऐसा तो नहीं है। यह भव बडा विषम है। जिन जीवो की हम हत्या करते है तो हम प्राय वे ही जीव बन जाते है। यदि बन गये तो उनके ही द्वारा सताये जा रहे होते । कोई मुर्गा है वह मर जाता है, मार डाला जाता है तो कितना बडा पाप है ? अरे इन समस्त जीवो पर दया करना प्रधान काम है। किसी जीव का दिल न दु खाना चाहिए यह सब आचारो का आचार है। इसमे ही मनुष्य की शोभा है।

भैया ! अपने मे अगर दु ख पहुँचते हो तो सहन कर लो, पर दूसरो का चित्त न दुखाना चाहिए। ५ मिनट मे बात को समझाया जा सकता है। दूसरे पर क्रोध न आवे। क्रोध आ जाने से दु ख नहीं मिट सकते है। सो यह चाहिए कि किसी जीव का घात न करो। सकल्पी, आरम्भी, उद्यमी और विरोधी इन चार हिंसाओ मे से सकल्पी हिसा का तो पूर्णतया त्याग होना चाहिए। भीतर से यह ज्ञान हो कि देवी देवताओ मे बकरा चढाते है तो बकरे चढ़ाने से, अशुद्ध काम होने से कोई लाभ नहीं मिलेगा। अरे देवी-देवता तो वैक्रियक शरीर वाले है, सुन्दर है। उन्हे मास तो चाहिए ही नही, मुख से चबाकर कुछ खाने की जरूरत ही नही पडती। उन पशुओ के काटे जाने से उन देवी-देवताओ की तृप्ति नही होती है। वे देवी-देवता तो स्वय समर्थ है। उनके कठ से तो अमृत झरता है। उस अमृत से ही वे तृप्त हो जाते है। अगर अपना काम बनाना है तो सब लोग अच्छे कार्य करे। सब जीवों पर दया करो, सकल्पी हिंसा यही कहलाती है कि किसी जीव को मार डालना । उद्यम करने से जो हिसा हो जाती है वह उद्यमी हिंसा कहलाती है। अगर कोई शत्रु हमला करे उससे बचाव करने मे जो हिसा होती है वह विरोधी हिसा कहलाती है। घर के काम-काज करने मे जो हिंसा हो जाती है वह आरम्भी हिसा कहलाती है।

इन चार हिसाओ मे से गृहस्थ एक हिसा का त्याग कर सकता है। बाकी ३ हिसाओ का त्याग गृहस्थ नही कर सकता है। गृहस्थ का तीन हिसाओ का त्याग नही है। पर साधु जनो को सब प्रकार की हिसाओ का त्याग होता है। सो भैया ! कहते है कि किसी भी जीव की हिसा न करो। किसी के बारे मे झूठी गवाही मत दो। अगर अपना चरित्र अच्छा है तो सब धन पास है। झूठ बोलने की आदत न डालो तो भैया किसी की झूठी गवाही न दो, अहित की बात न करो, यही सदाचार है। कोई चीज बिना पूछे न लावो, किसी दूसरे की स्त्री पर कुदृष्टि न डालो। मन मे यह भाव कभी न लाओ कि धन-वैभव जोड़ू । अरे भाग्य से जो कुछ आता है वही ठीक है। अपने मे तृष्णा का भाव न रहे, यही सदाचार है। अगर ऐसा रहा तो समझो कि काम बन गया। यदि आचरण ठीक नही है तो देवी-देवता काम कर दे, भगवान काम कर दे यह नहीं हो सकता है। तो सुख और दु ख दोनो ही हमारे हाथ है। जैसे हमने अपना परिणाम सुधारा तो काम सुधर गया और अगर परिणाम बिगाड़ा तो काम बिगड गया। अगर किसी की तारीफ कर रहे है कि वह तो बडा ही सज्जन है, दूसरो के काम मे आता है तो इतने से उसे क्या मिल गया ? सभी द्रव्य स्वतत्र है, ऐसा ज्ञान बनाना यही विवेक है। विवेक से रहना इसमे ही भलाई है। सो भैया! यदि कोई जीव खुद विवेक करता है, मास मदिरा इत्यादि का सेवन नही करता है तो उसका जीवन सफल है। सब जीव एक समान है। उन जीवो पर आघात न करो ऐसा सोचने मे व ऐसा ही दया परिणाम करने मे ही आनन्द है।

देखो भैया ! यदि कोई मास मदिरा इत्यादि का भक्षण करता है तो बड़ा पाप है। जो खाते हैं वे त्याग दे तो बड़ा ही पुण्य होगा। इससे त्यागने वाले की आत्मा का बड़ा सुधार होगा। यदि अच्छा आचरण रखे तो बड़ा सुख मिलेगा। सुख-दु ख देने वाला कोई दूसरा नही है। मेरा सुख-दु ख परिणामों पर ही निर्भर है। ऐसा जानकर अपने परिणाम शुद्ध करो। अपने आप मे रमकर अपने आप सुखी होओ।

प्राप्ता ये दुर्गते क्लेशा भ्रान्त्या भ्रान्त्वा मयैव ते।
मुक्त्वा भ्रान्तिमत कालात् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-१३।।

अर्थ– दुर्गति के जो क्लेश प्राप्त किये हैं वे भ्रम से परिभ्रमण करके मैंने ही तो प्राप्त किये हैं अब इस समय से भ्रान्ति को छोडकर मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊँ।

जितने भी दुर्गति के क्लेश है वे भ्रम से लोक मे भ्रम-भ्रम कर मैंने ही तो प्राप्त किये हैं। अब इसी समय से भ्राति को छोड़कर मै अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

भैया ! जहा स्वतन्त्रता का परिचय है वहा ही सच्चा ज्ञान है। हम आप एक-एक पृथक् पृथक् आत्मा है। यह आत्मा एक द्रव्य है, इसमे अनन्त गुण है और उन सब गुणो की परिणतिया होती रहती हैं। जैसे जानन तो पर्याय होगा और जानने की जो शक्ति है वह गुण होगा। जैसे इसको चौकी जाना। अन्य अन्य पदार्थो को जाना, अनेक बाते जाननीं, यह तो आत्मा का गुण नहीं है। ये नष्ट हो जाने वाली

वृत्तिया है। चौकी को जाना तो यह जानना नष्ट हो जायगा और कोई नया जानन हो जायगा। तो यह जानना आत्मा का गुण नहीं है, वह तो पर्याय है।

जानने की जो शक्ति है वह गुण है। जो भी परिणमन होता है उनका जो आधारभूत है वह शक्ति है, वह गुण है। क्रोध, मान, माया, लोभ और अशाति ये सब पर्याय है और इसकी जो शक्ति है वह आत्मा का गुण है वह है चारित्र गुण। सुख होना, दु ख होना यह तो पर्याय है। ये मिट जाने वाली चीजे हैं। सुखी-दु खी होने की जो शक्तिया हैं वह है आनन्द नामक गुण। ऐसी परिणति व ऐसी शक्ति की जो समुत्पात्मक चीज है उसे द्रव्य कहते है। द्रव्यात्मक वस्तु परमार्थभूत चीज है, ध्रुव है, उसे न जानकर वर्तमान दशा को ही सर्वस्व माने बस यही भ्रम है। यह भ्रम क्या है ? जिसके मूल मे यह आत्मा चक्कर लगाती है। भ्रम यह है कि पर्याय को द्रव्य मान लेना ही भ्रम है। यहा जो देखते है वे क्या चीजे है? यह कौनसा द्रव्य है बतलावो ? तो किसी ने कहा – यह पुद्गल द्रव्य है। अरे ये पुद्गल नहीं है, ये पुद्गल द्रव्य की व शक्ति की दशा है। पुद्गल की दशा को मान लिया पदार्थ कि यही द्रव्य है यह मिथ्यात्व है। यह सैद्धान्तिक भाषा मे मै कह रहा हूँ।

जैसे किसी ने कहा कि घबडाओ मत हम आ रहे है। अगर कोई पानी मे डूब रहा है तो कहते हैं कि घबडाओ मत हम आ रहे है। इस शरीर के ढाचे को कह रहे है कि हम आ रहे है। अथवा और भीतर दृष्टि जाय तो भी भीतर विकल्प करता रहता है, उसको कहते हैं कि यह मै आ रहा हू। देखना, जानना, सुनना, विचार करना– ये सब पर्याय है। इनको 'मै' यह मोही जगत कह रहा है। पर्याय को द्रव्य मानना ही भ्रम है, मै आत्मा क्या हूँ ? क्या यह जो पर्याय है, शरीर का ढाचा है क्या वह मै हूँ? नहीं, यह मै नहीं हूं। यह पर्याय है। तो क्या भीतर जो रागद्वेष दु ख-सुख होते है वह मैं हूँ ? नहीं, वह भी मै नही हू। वह भी पर्याय है। वे भी मिट जाने वाली चीज है। मिट जाने वाली जो चीज है वह पर्याय है और जो न मिट जाने वाली चीज है वह द्रव्य है या गुण है । अर्थात् गुण का व द्रव्य का नाश नहीं होता है। इन जीवो ने पर्याय को द्रव्य मान लिया यह भ्रम है। भीतर मे जो रागद्वेष उत्पन्न होते है क्या वे मैं हूं। नही, वे भी मै नहीं हूँ।

जब मै किसी पर्याय मे पहुचा तो जिस पर्याय मे हूँ, उसी मे मै अपने को मानता हूँ। यदि मैं पक्षी हो गया तो माना कि मैं पक्षी हू। यदि मै मनुष्य बन गया तो कहता हूँ कि मै मनुष्य हूँ। यह सब भ्रम है और इस भ्रम के ही कारण ससार मे भटकना पडता है। यदि धनी बन गये तो मैं धनी हूँ ऐसा मानना यह भ्रम है। अथवा यदि धन नहीं है तो गरीब मानना यह भी भ्रम ही तो है। परिवार कुटुम्ब, बच्चे इत्यादि जुड गये तो मै परिवार वाला हू, ऐसा मानना भ्रम है। परिवार न रहे तो वह मानते है कि हाय मै अकेला हूँ यह भी भ्रम है।

क्यो जी कोई पूजा कर ले, कोई विधान कर ले, कोई बाल-बच्चो वाला हो जाय तो यह भी तो भ्रम है। कोई जीव किसी जीव पर दया करने वाला यदि यह समझ ले कि मैं दया करता हू तो यह

भी भ्रम है। पर्याय को द्रव्य मानना सो ही भ्रम है। साधु बन जाय, मुनि बन जाय, वह ऐसा सोच ले कि मुझे देखकर चलना चाहिए आदि तो यह सोचना भी भ्रम है। किसी भी दशा मे पर्याय को द्रव्य मानना भ्रम है। मुनि है वह पर्याय है कि द्रव्य है ? पर्याय है। पर्याय को मान लिया कि यह मै हूँ। मुनि को मुनि मानना पर्याय है और पर्याय को यह मान ले कि यह मै हूँ तो भ्रम है।

मै एक ज्ञायकस्वरूप हू, केवल चैतन्यस्वरूप हूँ, यह माना तो भ्रम नही है। जैसे किसी ने माना कि मै मनुष्य हूँ तो मनुष्य तो आत्मा नही है। अगर अपने को मनुष्य माना तो भ्रम है। किसी ने मान लिया कि मै गृहस्थ हूँ तो गृहस्थ तो आत्मा नही है। अगर गृहस्थ अपने को माना तो भ्रम है। आत्मा तो एक ज्ञानस्वरूप वस्तु है। गृहस्थ नही है और मान लिया कि मै गृहस्थ हूँ। तो यह भ्रम हो गया कि नही हो गया ? इन सब भ्रमो के कारण इस जगत् के जीव ससार मे रुलते ही रहते है, मोही जीव इस जगत् मे भ्रमण करते-करते बड़े-बड़े क्लेश पाया करते है। मै इन समस्त भ्रमो से मिटकर अपने स्वरूप को देखकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

आपत्पूर्णे भवे ह्येको भ्राम्यामि तत्त्वतो निजे।
उपयोगे तत. स्वस्थ स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वय।।३-१४।।

अर्थ– आपत्तियों से भरे हुए ससार में मैं एक याने अकेला भ्रमण करता हू और वास्तव में अपने उपयोग में भ्रमण करता हू इसलिए स्व अर्थात् निरपेक्ष उपयोग में स्थित होता हुआ मैं अपने में अपने लिये स्वय सुखी होऊँ।

आपत्तियो से भरा हुआ यह ससार है। मै इस असार ससार मे अकेला ही भ्रमण करता हूँ। अपने स्वरूप से हटकर बाहर मे उपयोग फसाये है, ये तो सब आपदाये है ऐसा ज्ञानी जीव समझता है। अज्ञानी जीव तो इन बाह्य सम्पदाओ को ही वास्तविक सम्पदा समझते है, पर ज्ञानी जीव निर्वाण की अवस्था को ही सारी सम्पदा समझता है। आखिर यह भव छूटा तो फिर पशु बन गये, दुर्गति हो गयी तो कौनसा आनन्द बाह्य पदार्थो के उपयोग से हुआ ? आनन्द की वस्तु तो वही है कि मिले और फिर मिटे नही। जिसके पाने के बाद वह मिटे नहीं वह वास्तविक वस्तु है। इस आत्मा की विभूति का चमत्कार आत्मा मे है। अगर यहा लाखो जोड़ लिया, ऊची-ऊची उपाधिया प्राप्त कर लिया, पदविया प्राप्त कर ली तो ये उपाधिया क्या है ? आखिर ये सब छोड़ना ही पड़ेगा ।

कोई धन मे बड़ा है, कोई पूजा मे बड़ा है, कोई ज्ञान मे बड़ा है, कोई तप मे बड़ा है पर सभी उस अरहन्त भगवान् की मूर्ति के आगे सिर झुकाते है। सो यह अरहन्त भगवान् बडो से भी बड़ा है। तभी तो समस्त लोक इस अरहन्त भगवान् के सामने झुकते है। यह अरहन्त भगवान् क्यो बड़ा है ? इसका स्मरण रहने से अपनी आत्मा की विभूति नप्ट नहीं हो सकती है। स्मरण हो आता है मैं यह आत्मा कौन हूँ, ज्ञान और आनन्द स्वरूप का भण्डार हूँ तो मैं केवल अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव करू तो अद्भुत आनन्द प्रकट होता है। सारी कल्पनाओ को त्यागकर अपनी जिन्दगी मे अपने आपका ही अनुभव

हो जाय तो अपने आप के ज्ञान मे जिन्दगी सफल है। अनेक उपायो को करके किसी भी प्रकार अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव हो जाय तो उन उपायो को करना चाहिए। हम यह नहीं कहते कि आप अपना घर छोड़ दे वरन् अपने कल्याण की बात मिल जाय, प्रभु के दर्शन हो जाये, आत्मस्वरूप का अनुभव हो जाय तो यही मुक्ति का मार्ग है।

देहान्तर व्रजाम्येको देहमेकस्त्यजाम्यहम्।
परदृष्टिं हि तत्स्वस्थ. स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-१५।।

अर्थ– मैं एक याने अकेला ही तो शरीरान्तर को जाता हूॅ और अकेला ही शरीर को छोडता हूॅ अथवा परदृष्टि को छोडता हूॅ। इसलिये परदृष्टि को छोडकर स्वस्थ होता हुआ अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊॅ।

यह में अकेला ही दूसरे शरीर मे जाता हूॅ और यह मै अकेला ही इस शरीर को त्यागता हू। कोई केसा प्रेमी हो, मित्र हो, किसी से कहो कि हम तुम्हारे जीवन भर साथी रहे, सगी रहे, अब हम दूसरी नयी देह मे जावेगे तो तुम भी हमारे साथ मे चलो तो वह नहीं जा सकता है और मान लो जब भी कषाय आ जाय और मरते समय साथ मे ही मर जाय, याने जिस समय वह मरता है उसी समय वह भी मरता है पर मरते मे भी शरीर के साथ चला जाय तो यह असम्भव है। वह एक शरीर मे भी मान लो पहुच जाय निगोदिया बनकर तो भी अनुभव अलग ही अलग है, अनुभव मे एक नहीं हो सकेगे, तथा सूक्ष्म शरीर तो फिर भी अलग है। यह तो मै अकेला ही नये शरीर को धारण करता हूॅ और यह मै अकेला ही इस शरीर को छोडूॅगा।

भैया ! शरीर जीव के साथ दो तरह के लगे हैं – एक सूक्ष्म शरीर और एक स्थूल शरीर। जो हम सब लोगो को दिखता है वह तो है स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर वह है जो स्थूल शरीर के त्यागने पर भी जीव के साथ जाता है। वह सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर के होते हुए भी साथ में लगा हुआ है। स्थूल शरीर का तो कुछ क्षण के लिए बिलगाव भी हो सकता है। मर गये सो शरीर तो छूट गया, पर बीच की स्थिति को जिसे विग्रह गति कहते हैं उस स्थिति मे स्थूल शरीर नहीं रहता मगर सूक्ष्म शरीर उस बीच की स्थिति में भी रहता है और स्थूल शरीर धारण किए हुए है उस समय मे भी रहता है। सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध आज तक एक क्षण भी नहीं टूटा और स्थूल शरीर का सम्बन्ध तो दो तीन समय तक को छूट भी गया पर सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध अब तक कभी नहीं हटा।

वह सूक्ष्म शरीर क्या है ? तैजस और कार्माण। उस सूक्ष्म शरीर में दो तरह की निमित्त दृष्टि से कला का निर्णय कीजिये एक शरीर की तो यह कला है कि जिस स्थूल शरीर के पास यह सूक्ष्म शरीर है उस स्थूल शरीर में तेजी आ जाय याने मर जाने पर कहते है ना कि इस पर मुर्दायी छा गयी तो वह मुर्दायी क्या चीज है ? तेज निकल गया। जीव मे रहता हुआ उसमे तेज था सूक्ष्मशरीर के कारण। सो जीव के निकलने पर वह सूक्ष्मशरीर भी निकल गया और तेज भी निकल गया। जब स्थूल शरीर के पास है तब तेज रहता है। और दूसरे शरीर मे एक कला यह है कि उसका विपाक काल आया तब जीव मे रागद्वेष की वृत्ति स्वय हो जाती है। उस सूक्ष्मशरीर में यह दो प्रकार का निमित्तपना है। उसका

निमित्त है तैजस शरीर और कार्माण शरीर। तैजस शरीर के निमित्त से तो स्थूल शरीर मे तेज आता है और कार्माणशरीर के निमित्त से जीव की भूमिका मे राग द्वेष आदि विकार उत्पन्न होते है। सो वह दोनो ही प्रकार के सूक्ष्म शरीर मर जाने पर भी साथ जाते है और स्थूलशरीर यही पड़ा रह जाता है।

भैया ! मै अकेला हू, देहातर को प्राप्त करता हूँ और अकेले ही देह का त्याग करता हूँ। और जितने भी सुख-दु ख ढोता है, यह जीव उन सबको भी अकेला ढोता है। सो पर की ओर की दृष्टि को त्यागकर अपने आपके शरीर मे उन्मुख होकर यह मै अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ। देखो यह विग्रह गति मे जीव जब होता है तब यह जीव स्थूल शरीर से तो रहित है पर सूक्ष्म शरीर से समवेत है। और ऐसी स्थिति इस जीव की अधिक से अधिक तीन समय तक होती है। चौथे समय मे नई देह अवश्य प्राप्त कर लेता है। ऐसा नहीं है कि यह जीव कई दिन तक घूमता फिरता हो अपने जन्म को ढूढने के लिए, ऐसा नही है। अधिक से अधिक तीन समय की स्थिति है और जहा पैदा होता है उस ओर ही जीव मरने के बाद जाता है। यह नहीं है कि मरने के बाद कुछ थोड़ा डोल-डाल ले, फिर जन्म-स्थान पर पहुचे।

जैसे कभी-कभी कोई साधु चौमासे भर भी रहे और चौमासे के बाद भी अगर महीने दो महीने रहता है तो एक रात उस जगह से कही चला गया और आहार लेने फिर वहीं का वहीं आ गया। कहे कि चौमास खत्म हो गया और रीति अदा कर लिया और फिर वही का वही आ गया तो भाई तुमने रीति तो अदा कर ली मगर उस आत्मा मे तो नहीं परिवर्तन कर दिया उसका वही राग है, वही परिचय है, और उसी राग और परिचय के कारण अपने मे क्षोभ कर रहे है। सो ऐसा नही है कि वह जीव डोलता फिरे कोई बहाना करे कि चलो पगत कर दे, तेरही कर दे तो यह जीव जन्म के स्थान पर पहुच जाय – ऐसा कुछ नहीं है। वह तो मरने के बाद ही तुरन्त पैदा हो गया। दो तीन समय की क्या गिनती है ?

जैसे आख खोलते है और पलक गिरा कर आख बन्द कर लेते है। तो इसमे कोई देर नहीं लगती है। पलक को कोई देर से भी नही गिरा सकता है कि चलो धीरे-धीरे पलको को गिराये। जब पलक गिराते है तो तुरन्त गिर जाते है। उस एक पलक के पतन मे अनगिनत समय लग जाते है, कोई गिनती नही, जितना कोई गिन सके, नही, उससे भी अधिक बढ़कर जो असख्यात का प्रमाण कहा जाता है उसके बराबर। सो तीन समय तक ही यह जीव बीच मे विग्रहगति मे रहता है और चौथे समय मे तो अवश्य ही जन्म होने की जगह मे पहुच जाता है। तो सर्वत्र यह जीव अकेला है। जब यह देह है तब यह जीव अकेला है। जब इस देह को छोड़कर चले तब भी अकेला है जब सुख साधन है तब भी अकेला है और जब उपसर्ग है सुख साधन नहीं है तब भी यह जीव अकेला ही जन्म मरण करता है। इसका कोई दूसरा सहाय नही। यह विडम्बना क्यो हो रही है कि इस जीव को अपने एकाकी स्वरूप का पता नही है। यदि उस अपने एकत्वस्वरूप का पता लगाये, मिथ्यात्व को हटाये तो यह जीव अपने आप अपने मे ही सुखी हो सकता है।

वियोगयोगदु खादौ किंचिन्मित्र न तत्वत ।
स्वाविष्ट स्वस्य मित्र स्व स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।३-१६।।

अर्थ– वियोग-सयोग दु ख आदि में कोई भी मेरा मित्र नहीं है परन्तु वास्तव में निज आत्मा में लीन हुआ मैं ही स्व स्व का मित्र हू इसलिये स्व के अर्थ सुखी होऊ।

जव वियोग होता हो, जव सयोग होता हो, जब कोई सकट आते हो तब भी वास्तव मे इस जीव का कोई दूसरा मित्र नहीं है। किन्तु अपना मित्र कौन है ? अपने आपकी आत्मा मे बसा हुआ यह जीव ही अपना मित्र है सो कुमित्र की प्रीति छोड़ो और निज मित्र का आदर करो। निज मित्र है अपना ज्ञान जो सदा सीधी शिक्षा देगा, वह ज्ञान है अपना मित्र। सो अपने अविनाशी स्वत सिद्ध ज्ञानमात्र पर दृष्टि दो। ज्ञान ही असली मित्र है। बुरी परिस्थिति मे जब विपत्ति सिर पर आ जाती है तो ऐसी परिस्थिति मे ज्ञान ही इस जीव को सकटो से बचाता है। सकट दुनिया मे क्या होते है ? केवल मान लेने के तो सकट है। जैसे परिवार का वियोग हो गया, धन की हानि हो गयी, कोई दूसरे पुरुष ने मेरा ही लक्ष्य करके गाली दे दिया, इन्ही को ही लोग विपत्ति मानते है। सो मानो, परन्तु विपत्तियो से बचने का उपाय मात्र सम्यग्ज्ञान है।

भैया ! प्रत्येक अवस्था मे चाहे वह सुख सपदा का साधन हो और चाहे विपत्ति विडम्बना का साधन ही पर हर एक स्थिति मे यह जीव यदि अपने आपके सत्यस्वरूप का ध्यान करेगा तो उसके सुखी होने मे कोई वाधा नही डाल सकता । हम अपने आप ही अपने ही ऐबो के कारण दु खी हो रहे है, नहीं तो दु ख का काम क्या है ? यह मै हू, ठीक हूँ, इसमे क्या दु खो का काम है ? सो ऐसा एकाकीपना विचार कर आत्मा के अद्वैतपने की वात जानकर भय छोड़ देवे। उससे क्या होगा कि उसका जीवन निष्पाप होगा। फिर उसका कोई साथी सगाती होगा कि नहीं होगा ? अरे तू भला तो जग भला और तू भला नहीं तो तेरे लिए जग भला नहीं है। सो सर्व चिन्ता छोड़ मात्र अपने आपको ही जानो और अपने आप मे ही रमकर अपने आप स्वय सुखी होओ।

देखो भैया ! पर की आशाये करो तो भी क्या कोई सहायक वन जावेगा। तुम तो सर्वत्र अकेले ही हो। जिस समय किसी पदार्थ का वियोग होता है उस समय कोई सहायक नहीं होता और जब कोई सयोग होता है तो सयोग के समय मे भी वास्तव में कोई मित्र नहीं होता। अव भी अपनी कल्पनाओ मे अपना-अपना अनुभव होता है। कोई दु ख आ पडे तो उस दु ख मे भी कोई सहाय नहीं होता। सर्वत्र केवल अपना-अपना सुख-दु ख परिणमन भोगा जाता है। तो वास्तव मे मेरा मित्र कोई नहीं है। मुझे ही बाहर की भेदबुद्धि हटाकर अपने आपके अभेद चैतन्यरस मे लीनता हो तो मैं खुद ही मित्र हूँ । इस स्थिति मे ही कर्म झडते है। जैसे कोई धोती गीली है सूखने के लिए डाल दिया तो वह गिर पड़ी तो उसमें धूल चिपट जाती है। जव कोई आदमी उसे उठाकर उस धूल को छुटाने लगता है तो विवेकी पुरुष मना कर देता है कि मत छुटावो। ऐसे ही सूखने के लिए डाल दो। जव सूख जायगी तव जरासा झिटकने

से छूट जायगी। और गीली धोती मे अगर छुटाया जाय तो छूटने के बजाय चिपट जायगी और सूख जाने पर झिटकने से नही छूटेगी।

इसी तरह आत्मा कषायो से गीली है सो इसके साथ कर्मो का जमाव है, अगर कर्मो से हटना है तो क्या उपाय करो कि आत्मा को रूखा कर दो याने कषाय आत्मा मे न रहने दो, मिथ्यात्व न रहने दो। जो अपने को रूखा कर देगे उनके कर्म यो ही खत्म हो जावेगे। तो रूखा तब होगा, जब यह आत्मा कषायरहित जिन चैतन्यस्वभाव मे उपयोग देगा। इससे कषायो का गीलापन मिट जाता है और इस ही दृष्टि के प्रसाद से भव–भव के बधे हुए सब कर्म भी खिर जाते है। इस कारण से अपना मित्र केवल आत्मा ही है जो आत्मा अपने आपके उन्मुख हो रहा है वह आत्मा ही अपना मित्र है। सो उस ज्ञायकस्वभाव आत्मतत्व मे स्थिर होकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

यदन्येषां कृते चेष्टै एकौ भुञ्जे हि तत्फलम्।
स्वस्मै तत्रापि चेष्टासीत् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-१७।।

अर्थ– **अन्य प्राणियों के लिये मैं जो चेष्टा करता हूँ निश्चय से उसका फल मैं ही भोगता हूं क्योंकि वहाँ भी चेष्टा मेरे लिये ही थी इसलिये अन्य के विकल्प को छोडकर मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।**

मै जो दूसरे प्राणियो के लिए चेष्टा कर रहा हूँ सो उस चेष्टा का फल केवल मै ही अकेले भोगता हूँ, मै दूसरे के लिए क्या करता हूँ ? दूसरो का मै कोई काम नहीं करता। न उनके हाथ छूता, न पैर लगाता, न अन्य कोई काम करता, केवल दूसरो का लक्ष्य बनाकर अपने विकल्प करता हूँ। मै विकल्पो के सिवाय अन्य कुछ काम नही करता। तो जो विकल्प मैंने दूसरो के बनाए है उन विकल्पो का फल केवल मैं ही अकेले भोगूगा। यह तो मै एक चेतन सत् हूँ और परिणमता रहता हूँ। सो मेरा परिणमना इस प्रकार से है कि उपाधि की सन्निद्धि नही होती तो शुद्ध चेतनात्मक परिणमूगा और उपादान सामने हो तो मै विकल्पात्मक परिणमूगा, चाहे विकल्परूप परिणमू चाहे निर्विकल्परूप परिणमू पर चैतन्यात्मक ही मेरा परिणमन होगा। सो दूसरो के लिए जो मेरी चेष्टा है वह विकल्प रूप चेष्टा है। उस विकल्प रूप चेष्टा का फल केवल यह मै ही अकेला भोगता हूँ नरक जाने जैसा तो खुद ने परिणाम किया तो क्या नरक कोई और दूसरा जायगा। मायाचार के जिन्दगीभर परिणाम रखा अब उसके फल मे क्या कोई दूसरा प्रवेश करेगा ? उसी को ही तिर्यञ्च होना होगा और कोई व्रत तप सयम करे और शुद्ध प्रवृत्ति से चले तो उसका फल वही अकेले भोगेगा, कोई दूसरा उसका फल नहीं भोग सकता। सो यह तो केवल भ्रम की बात है। जो कोई यह सोचे कि मैने तुम्हारे लिए क्या–क्या किया ? तुम्हारी, लोगो की व्यवस्था के साधन जुटाये, अमुक-अमुक दुकान इत्यादि के साधन जुटाये, मैने तुम्हारे लिए क्या-क्या किया ? सोचते रहे, पर उन्होने कुछ नही किया। वहा पर जो कुछ किया वह अपने लिए किया। हर जगह जो कुछ कोई करता है वह अपने ही लिए करता है दूसरो के लिए कुछ नही करता है।

आप घर मे रहते हैं, सोचते तो यह हैं कि मैं लडको के लिए यह ठीक व्यवस्था बनाता हूँ, पर आप लडकों के लिए कुछ नहीं करते, वहा भी आप जो कुछ कर रहे है वह अपने लिए कर रहे हैं। यह तो सोचना भ्रम है कि मैं लडकों के लिए कुछ कर रहा हूँ। लड़के का आश्रय किया। उसको विषय बनाया और अपने मे विकल्प बनाया। यह जीव हर हालत मे अकेला है। जैसे लोग समझते है कि यह वडा घराना है, यह घर बडा है। अरे वे तो बिल्कुल अकेले ही है और वे बडे झझटो मे पड़े हुए हैं, वे तो क्षमाके पात्र है। है तो कुछ नहीं मगर उपयोग मे कुछ बसाकर हैरान हो रहे है, परेशान हो रहे हैं, शल्य बढा रहे हैं। वे तो दया के पात्र है। तो जितनी भी मेरी चेष्टाये आज तक हुयीं उनमे ख्याल तो यह रक्खा कि स्त्री के लिए यह कर रहा हूँ, पुत्रो के लिए यह कर रहा हूँ, समाज के लिए यह करता हूँ, मगर कहीं भी यह दूसरे के लिए कुछ नहीं करता। जो कुछ किया सो अपने लिए किया।

भैया! कोई सा काम देख लो प्रत्येक परिणामो का फल केवल अपने आपको मिलता है इस आत्मा के स्वरूप पर नजर करके देखो केवल यह आत्मतत्व शुद्ध जाननस्वरूप है। परिवार के लिए ही अपना शरीर लग गया पर उसका फल अपने आपको ही मिलता है। बाल्मीकि ऋषि की कथा है कि एक जगल मे रहते थे और डाकू का काम करते थे। एक बार एक साधु वहा से निकला तो उस साधु को भी बाल्मीकि ने पकड लिया और कहा कि कहा जाता है ? जो कुछ हो रखो, तुझे पता नहीं कि यहा बाल्मीकि रहता है। कमण्डल डडा धरा लिया। साधु कहता है कि भैया कमण्डल डडा तू ले जा पर घर से एक बात पूछकर तो आ। वाल्मीकि वोले क्या ? साधु बोला यह पूछकर आवो कि हम जितना अन्याय करते हैं, मुसाफिरो को लूटते है तो उसमे जो हमे पाप लगते है कोई हमसे उन पापो को बाट लेगा क्या? केवल इतनी वात पूछ करके आवो और जो कुछ उत्तर वे दे हमे सुनाना। बाल्मीकि घर गये, बात पूछने के लिए सो स्त्री से पूछा, मा से पूछा और जो जो भी था सबसे पूछा लेकिन पाप की बात इतनी खराब लगती है कि किसी को यह कहने मे भी डर लगता है कि तुम्हारा पाप मैने लिया।

एक घटना है गुरुजी के वारे मे। पहिले वे बडे पडित जी कहलाते थे। उस समय ७वीं प्रतिमा रही होगी तो जिस धर्मशाला में ये रहते थे उसी मे एक भाय जी रहते थे। तो वे भाय जी एक दिन उपवास करें और एक दिन भोजन करें, मगर जिस दिन भोजन लेते पूरा वह एक दिन वनाने खाने मे लगता था। वह धीरे धीरे खाते थे। कहीं सामायिक करके खा रहे है कभी पहिले खा रहे है। मगर उनका नियम था कि हरा साग न छौंकना सो साग बनाकर रख लिया और अब बाट हेरे कि कोई अच्छा आदमी मिल जाय तो उसके हाथ से साग छोकाले। तो वडे पडित जी इतने मे मदिर से धर्मशाला आये तो भाय जी को दिख गये। भाय जी बोले पडित जी साग छौंक दो। गुरुजी बोले तुम क्यों नहीं छौकते, कहा हमारा त्याग है। पडित जी ने कहा कि छौंक तो दे मगर हम यह कहते हुए छौंकेगे कि इस छौंकने में जो पाप लगे वह भायजी को लगेगा। तो भाय जी कहने लगे वाह तुम्हारे छौकवाने से फायदा ही क्या जो पाप लगे। भाय जी बोले हमे नहीं छौकवाना है, हम किसी और को ढूढ लेगे। पडित जी बोले अच्छा लावो छौंक देंगे। साग छौका तो यह भी बोल दिया कि जो पाप लगे सो भाय जी पर लगे, सो भाय जी उछलकर दौड पड़े, बोले लो मेरी प्रतिज्ञा तोड दी है।

भैया ! सोचो तो जरा कहने से पाप नही लगता करने से लगता है। मगर पाप का नाम इतना बुरा है कि कोई आदमी अपने से यह नही कह सकता कि तुम्हारा पाप मैने लिया। किसी को यह हिम्मत नही कि कहे कि तुम्हारा पाप हमने लिया। सब घबड़ाते है कि यह पाप हमीं पर लग जायगा। सो बाल्मीकि ने अपने घर मे सबसे पूछा कि हम जो अन्याय करते है, पाप करते है तो यह पाप तुम बाट लोगे? तो उस फैमिली के सब लोगो ने मना कर दिया कि पाप कैसे बटेगा? पाप तो जो करता है उसके ही सिर रहता है। इतनी बात सुनकर बाल्मीकि जी को तो ज्ञान जग गया। अहो किसी का साथी कोई दूसरा नहीं है । सब अपने-अपने ही कर्मो को बाधते है और अपने ही कर्मो के फल को भोगते है। हमने अपनी जिन्दगी मे अब तक कितनो को ही कष्ट दिया, कितनो को ही लूटा, कितनो को ही दु खी किया। बाल्मीकि जी को बड़ा पछतावा रहा, बड़े-बड़े प्रायश्चित के मनसूबे बाधते हुए साधु के पास गये। साधु से बोले, हमे आपका कमण्डल डडा नही लेना है और न कोई चीज लूटना है। बस इतना यह निर्णय है कि हमने अपने आप ही सारे पाप बना लिए सो बोले कि अब मेरा ठगाई का त्याग है, लूटने का त्याग है और बाह्य वृत्ति भी कोई नही करेगे सिवाय भगवत् भक्ति के सो उन्होने सन्यास का व्रत लिया और सब तरह के विकल्पो को तोड़कर वे अपने भावो के अनुसार समाधि मे लीन हो गये, यत्न किए और इतने बड़े ऋषि माने गये कि आज भी बहुत से लौकिकजन उनको बाल्मीकि ऋषि के नाम से कहते है।

बाल्मीकि जी ने सबसे पहिले रामायण बनायी थी, जिसके बाद फिर तुलसी दास जी ने बनायी। मगर रामायण की बात ऐसी है कि प्रारम्भ मे तो जैनसिद्धान्त से रामायण बनी जिसका नाम है स्वयम्भू कविकृत रामायण और वह प्राकृत भाषा मे है। उसमे ५ छद है और १ दोहा है फिर ५ प्राकृत छन्द एक दोहा है और तुलसीदास जी ने अत मे यह लिखा कि मैने स्वयभू के प्रसाद से यह रामायण बनायी। स्वयभू कवि की कृति को इन्होने देखा और ढाचा समझमे आ गया-५ छद और एक दोहा। खैर तो बाल्मीकि अत मे यही निर्णय करके कि मेरा सहाय कोई नहीं है, साधु हो गये। अपनी ही बात देख लो, अपना भी सहायक कोई दूसरा नहीं है। हर जगह हम मात्र अपनी चेष्टा करते है। दूसरो का कुछ नही करते है। दूसरो का तो केवल ख्याल ही बना है मगर करते अपना ही काम है। सो ऐसा जानकर कि हम दूसरो का कुछ नहीं करते है तो दूसरो का ख्याल ही करके उनका विकल्प क्यो करे ? उस ओर से मुख मोड़ लो तो निर्विकल्प स्थिति को पावोगे और उसमे जो आनन्द आयेगा वह कही नही आयेगा सो अपने आपके स्वरूप मे रत होकर अपने आप ही सुखी हो सकता हूॅ।

कारणं सर्वदु खानां स्वज्ञानाभाव एव हि।
येनैको वञ्चितस्तस्मात् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-१८।।

अर्थ- समस्त दु खों का मूल कारण निश्चय से अपने आत्मज्ञान का अभाव ही है जिससे एक अद्वैत होता हुआ भी मैं ठगाया गया इस कारण अब मैं अपने को जानकर अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

जगत मे जितने भी दु ख हैं उन सब दु खो का कारण आत्मा के ज्ञान का अभाव है। आत्मा किस चीज से बना है ? इसमे क्या भरा है? यह अनुभव करने से ज्ञात होता है कि आत्मा और कुछ नहीं बल्कि जो जानन है, जो आनन्द है इस भाव का नाम ही आत्मा है। यह ज्ञान और आनन्द ये दोनो भाव निराधार नहीं है। इन दोनो भावो का जो आधार है वह ही आत्मा है, आत्मा तो आनन्दमय है। इसके स्वरूप मे ही दु ख नहीं है। इस कारण आनन्द ब्रह्मवाद मे कहा है कि ब्रह्म का स्वरूप आनन्द है और आत्मा का स्वरूप आनन्द है। इस आत्मा मे तो दु ख है ही नहीं।

यह प्राणी अपने ही स्वरूप से चिगता है और स्वय ही कल्पनाये बनाकर दु खी हो जाता है। दु ख बनाने से होते हैं, पर आनन्द बनाने से नहीं होता है। फर्क इतना ही है कि आनन्द तो आत्मा मे स्वयमेव है और दु ख बनाने से होते हैं। अभी देखो घर के जिन दो चार मोही जीवो मे फसे हुए हो। वे जीव आपके कुछ हैं क्या? अरे ये किसी गति से आए है और किसी गति को चले जायेगे। फिर और भी सोचो कि ये चार जीव न हो, इनके बदले मे और कोई चार जीव होते तो क्या उनसे मोह न करने लगते ? ये तेरे हैं? इनसे हमारा यह सम्बन्ध है ऐसा मोह करने की इस जीव मे आदत हो गयी है। सो जो आता है उससे ही मोह करते है। जैसे ये जीव है तैसे ही सब जीव है, कोई वस्तुत विशेष नहीं। यदि यह माना जाता है कि वे मेरे हैं तो यह बड़ा अपराध है। सब दु खो का कारण आत्मा के ज्ञान का अभाव है।

मै कैसा हू? मेरा सही स्वरूप क्या है ? इसका जब पता नहीं रहता है तो बाहर मे ही दृष्टि जाती है, बाहर मे ही सम्बन्ध मानते हैं। सो इस मान्यता से भी जीव दु खी होता है। इसी ज्ञान के अभाव के कारण यह मै आत्मा विचित्र होता हूँ। सो हम जो पग-पग पर ठोकर खा रहे है, वह ठोकर अज्ञान से ही आ रही है। किसी से सम्बन्ध कुछ नहीं रचमात्र भी नहीं , यह बात भीतर मे ज्ञान मे आये ओर भीतर के स्वरूपमे ही दृष्टि होकर ऐसा ज्ञान आवे कि सारे जीव स्वतत्र है, किसी का किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं है, मैं भी अपने स्वरूप में स्वतत्र हूँ। मैं हूँ, वस इतना ही मेरा काम है। किसी से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। परपदार्थ हैं और परिणमते हैं इतना ही मात्र वस्तु का रूप है। मै हूँ और बदलता रहता हूँ। मेरा बदलने वाला और कोई दूसरा नहीं है। वे स्वय ही बदल रहे हैं। भले ही कोई दूसरा निमित्त हो, मगर सब हैं और स्वय बदलते रहते हैं। इसी प्रकार मैं हूँ और बदलता रहता हूँ।

कभी-कभी गुस्से में किसी प्रकार का विकार आ गया, विकल्प आ गया तो यह पर को निमित्तमात्र पाकर खुद आ जाते हैं और इस परिणमन में मै खुद पराधीन हू। मै देखता हू दूसरे को पराधीन, पर हम स्वय पराधीन हो जाते है। ऐसा निर्णय सर्वप्रथम रक्खो कि अगर कोई दु.ख आते हैं तो समझो कि मेरी ही कोई गलती है जिससे दु ख हुआ है, दूसरे की गलती से तुझे दु ख नहीं होता है। अगर कोई मनुष्य किसी बात के बिना भी पीटने लगता है तो उस पर भी समझो कि हमारी ही कोई गलती है। अपने दिल में एक यह बात भी उतार लो कि जब कभी भी दु ख आते हैं तो समझो कि हमारी ही कोई गलती है। जिसके कारण दु ख आये हैं यह बात बिल्कुल पक्की है, निर्णीत है । इसलिए कहा

जा रहा है कि यह बात लेकर निर्णय मे चलो। फिर देखो कि कितना प्रकाश मिलता है और कितनी शाति मिलती है? किसी भी समय मे दु खी हूँ तो अपनी ही गलती से दु खी हू, कितनी ही बात तो स्पष्ट हो जाती है, निर्णय के लिए एक दो बाते और लो, हम बड़े आचरण से चलते है, बड़े शुद्ध न्याय और व्यवहार से रहते है फिर भी कुटुम्ब या पड़ौस के लोग मुझे सताते हैं, बदनामी करते है, निन्दा करते है, उससे मुझे दु ख होता हैं। यहा कोई यह कहे कि अरे बतलावो इसमे हमारी क्या गलती है? इस तरह न्याय से चलते है, सबका भला सोचते है फिर सताने वाले बहुत है, निन्दा करने वाले बहुत है। अरे इसमे भी तुम्हारी ही कोई गलती है बिन तुम्हारी गलती के दु ख नहीं हो सकते है। अपनी दृष्टि बिगाड़ रखी है यही सबसे बड़ी गलती है।

कोई गाली दे रहा है, कोई निन्दा कर रहा है तो वह अपनी ही तो चेष्टा कर रहा है। अपने ही कषायो से अपने परिणाम हो रहे है। भाषावर्गणाये अपने ही रूप तो चल रही है। उनसे तेरा क्या नाता है ? उनके कारण तेरे मे कोई परिणति होती है क्या ? उनसे कोई सम्बन्ध तो नही है। स्वय स्वतत्र पदार्थ है। फिर भी इतनी गलती कर डाली। एक नहीं दो गलतियां कर डालीं। पहली गलती तो यह कर डाली कि मुझको कहा, उसने मुझको जो माना इस पर्याय मे सो यह तो मै नहीं हूँ। मै तो चिदानन्द मात्र हूँ। वह तो मेरी निगाह मे है ही नहीं, उस दूसरे की निगाह मे है। मेरी निगाह मे तो यह असमान जातीय पर्याय है, मुझको कहा, इसने कहा। अरे अपने मे वह है ही नही। बाहरी तत्व मे आत्मा मान लिया पहला अज्ञान तो यह है और दूसरा अज्ञान यह है कि इसने मुझको दु ख दिया यह भाव बनाया। अरे इस जगत के जीव अपना ही काम कर पाते है मेरा कुछ नही कर पाते हैं। मैं स्वय कल्पनाये करके दु.खी होता हूँ।

भय्या! जरा सोचो दो बच्चे लगभग २० हाथ की दूरी पर खड़े हैं। एक बच्चा दूसरे को देखकर अगुली मटकाता है तो दूसरा बच्चा उसको देखकर दु खी होता है। अब हमे यह बतलावो कि २० हाथ की दूरी पर खड़े हुए बच्चे के अगुली मटकाने से क्या दूसरे बच्चे मे कुछ घुस गया। अगुली मटकाने वाला अपना काम कर रहा है, और चिड़ने वाला अपना काम कर रहा है। एक दूसरे का कोई कुछ नहीं कर रहा है, पर वह अपना ख्याल बनाकर दु खी होता है। उसी रास्ते मे दो सज्जन गुजरे। एक तो चिढ़ाने वाले को डाटता है, अरे तू व्यर्थ मे क्यो चिढ़ा रहा है? यदि वह यो जवाब दे कि यह तो मेरी चीज है, यह तो मेरी अगुली है, मै कैसे भी मटकाऊ तो क्या जवाब देगा? दूसरा सज्जन चिढ़ने वाले को समझाये कि अरे क्यो चिढ़ता है ? वह अपनी ही तो जीभ मटकाता है अपनी ही तो अगुली मटकाता है। अगर उसकी समझ मे आ जाय तो समझने वाले को भी कुशल और समझाने वाले को भी कुशल।

सो भैया! यही बात जीवन मे उतार लो कि मुझे दु ख होते हैं तो दूसरो के द्वारा नहीं होते हैं मेरी ही गलती से होते है। दूसरो से मुझे दु ख हो जाय यह कभी नहीं हो सकता है। दूसरे जो करेगे वे अपने लिए करेगे मेरे लिए कोई चेष्टा न करेगे। मैं क्या हूँ? मेरा स्वरूप क्या है इसका यथार्थ ज्ञान होने से ही सब दु ख समाप्त हो जाते हैं। मुझे दु खी करने वाला अन्य कोई नहीं है, अज्ञान से ही मैं स्वय दु खी

हो रहा हूँ,यहा कोई शरण नहीं है। अगर कोई दया भी करता है। दूसरो के लिए दया नहीं करता है। आपका परिणमन हुआ आपने किया और मेरा परिणमन हुआ मैंने किया। कोई किसी का कुछ नहीं करता।

एक जज था। कचहरी जा रहा था। रास्ते मे एक सूकर कीचड़ मे फसा था। उस जज से न देखा गया। झट मोटर से उतरकर उस सूकर को अपने हाथो से पकडकर निकाल दिया। सिपाहियो ने बहुत कहा– हजूर हम निकाले देते है आप रहने दे, पर जज साहब नहीं माने। जज के कपड़ो मे कीचड़ के छींटे लग गये। समय ज्यादा न था। उसी सूरत मे जज साहब अदालत पहुचे, अदालत किया। कुछ लोग कहते हैं कि आज जज साहब की क्या हालत हो गयी है ? तो सिपाही कहते है कि आपको पता नहीं है, यह जज साहब बडे दयालु हैं। एक सूकर कीचड़ मे फसा हुआ था उसको निकाल दिया। इतने मे जज साहब कहते है कि भैया ! मैंने सूकर पर कोई दया नहीं की, मैंने तो उस समय भी अपने ऊपर ही दया की। क्योकि देखो यदि मैं सूकर को न निकालता और अदालत मे बैठा होता तो जब इसकी याद आती तो दु ख होता कि नहीं ? दु ख बहुत होता, पर मैने उसे निकाल दिया है अब सारा दु ख दूर हो गया है। तो मैंने अपना दु ख मिटाने के लिए यह काम किया। मैंने सूकर पर कोई दया नहीं की। हर जगह यही बात समझ लो। वस्तुस्वरूप की बात समझ लो। व्यवहार की बात व्यवहार मे होती है। पर यथार्थ मे मैं क्या हू इसको तो समझ लो।

अज्ञान ही यथार्थ हिसा है। अपने परिणाम मे राग द्वेष करना, मोह करना हिसा करना ही है। मोह करनेसे जीव अपनी ही हिसा करते हैं। दूसरे की तो वे हिसा ही नहीं कर सकते हैं। परमार्थस्वरूप से देखो तो वे अपनी ही हिसा करते हैं। दूसरो की हिसा नहीं कर सकते हैं। मेरा स्वरूप क्या है ? ज्ञान और आनन्द ही मेरा स्वरूप है। ज्ञान न होने से मै ठगाया गया हूँ। अब ज्ञानी होकर मैं अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ ऐसी भावना अपने मे हो।

असकृतेर्हि वस्तूनां स्वेनैव बद्धता।
स्वेक्षणे बद्धता नात स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-१६।।

अर्थ– पदार्थो की असंकरता होने से निश्चय से स्व का स्व से ही बन्धन है परन्तु निज आत्मा के दर्शन में बन्धन नहीं है इसलिये मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

वस्तु का साकर्म कभी नहीं होता अर्थात् कोई पदार्थ मे तन्मय हो जाय ऐसा नहीं होता है। जैसे एक गिलास में पानी और दूध बराबर-बराबर डाल दिये जायें और गिलास मे फेट दिया जाय, फिर भी पानी के स्वरूप मे पानी है और दूध के स्वरूप में दूध। उस मिले हुए दूध और पानी मे दूध अलग है और पानी अलग है यत्रों मे अथवा गर्म करके देखें तो दूध अलग और पानी अलग है। उस मिली हुई हालत पर भी दूध मे पानी नहीं गया और पानी मे दूध नहीं गया। भौतिक पुद्गल शरीर और यह जीव एक ऐसा क्षेत्रावगाह हो रहा है कि दोनो अवस्था में पराधीन हो गए। अभी आपसे कहे कि अकेले आइए तो नहीं आवेंगे। आप इन पुद्गल परमाणुओं को साथ लेकर आयेगे। हम इस शरीर को तो नहीं बुला रहे हैं। हम तो आपकी आत्मा को बुला रहे हैं। इस हालत में भी आत्मा है और पुद्गल मे

पुद्‌गल है। समझने मे भले ही कठिन लगे। कुछ लोगो को तो दूध और पानी की बात कठिन लग रही होगी। खैर, यह आत्मा अपने स्वरूप मे है और शरीर अपने स्वरूप मे है। भला वास्तव मे जब इस शरीर से भी मेरा बन्धन नहीं है तो अन्य पदार्थो से मेरा बन्धन कैसे होगा?

मेरा शरीर से भी कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह तो निमित्तनैमित्तिक बात है। जैसे गैया के गिरावा का बन्धन है तो क्या आपने गैया के गले को गिरमा से बाधा,आपने तो गिरमा को ही गिरमा से बाधा, अगर गैया के गले को बाध दो तो वह मर न जाये। गिरमा को मरोड़ते है फिर उस गिरमा से ही गिरमा को बाधते है और कहते है कि गैया को बाधते है। अरे गिरमा के छोर को दूसरे छोर मे बाधते है। गैया तो ज्यो की त्यो है, गिरमा ने गैया पर आक्रमण नहीं किया। मगर गिरमा का निमित्त पाकर गैया बधी है। वे तो पुद्‌गल पुद्‌गल् की चीजे है । गैय़ा भी पुद्‌गल है और गिरमा भी पुद्‌गल है। मगर आत्मा की बात तो और गहरी है। आत्मा से कर्म क्या बधते है ? आत्मा तो अमूर्त है रूप, रस, गध, स्पर्श आदि से रहित है।

फिर कर्मो से जीव कैसे बध गया भैया ! बात यह है कि वस्तुत भावकर्मो से ही जीव बधता है। और यहा पुद्‌गल कर्मो से पुद्‌गल कर्म बध जाता है। इसमे परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव है। यह जीव तो बुरा ही रहा है, इसका उपादान खोटा है, मोह, राग, द्वेष मे बधा है इसलिए भावकर्म का निमित्त कर द्रव्य कर्मो से बध पाकर यह भी बध गया। घर की स्त्री हो, पुत्र हो जो भी स्नेह से उन्हे मानता है वह बध जाता है। स्नेह दिखाने वाले अपनी ही जगह पर है, पर ये अपना ही ख्याल बनाकर स्वय दूसरो के पराधीन बन जाते है।

पुराणो मे कहते है कि राजा जनक के पास एक गृहस्थ पहुचा। बोला– महाराज मुझे गृहस्थी ने बाध रखा है, कुटुम्ब ने मुझे जकड़ रखा है। कोई ऐसा उपाय तो बताओ कि मै इस फसाव से अलग हो जाऊ। राजा जनक ने और कुछ न किया। एक नीम के पेड़ को अकबार मे भर लिया और कहते है कि अरे ठहरो ठहरो, मुझे इस पेड़ ने पकड़ लिया। पेड़ मुझे छोड़े तब मै आपको उत्तर दू। वह बोला– आपको बुद्धिमान समझकर मै तो आपसे उपाय पूछने आया,पर आपकी तो साफ बेवकूफी जाहिर होती है। अरे तुमको पेड़ ने पकड़ लिया कि तुमने पेड को पकड लिया। राजा जनक कहते है कि बस यही तो तुम्हारा उत्तर है। अरे तुमने कुटुम्ब को फास रखा है कि कुटुम्ब ने तुम्हे फास रखा है।

देखो इतने भैया बैठे है। कौन अपनी स्त्री से बधा है ? कौन अपने पुत्रो से फसा है ? केवल ख्याल बनाकर ये स्वय फस रहे है। अरे वह पर के द्वारा तुम्हारे मे टस से मस नही हो सकता। तुम्हे कोई दूसरे बाधने वाले नही है। वस्तुवो का साकर्य दोप नही है कि वस्तु स्वय मिल जाय, तन्मय हो जाय। तुम्हारा जो बधन है वह तुम्हारे द्वारा ही बन्धन है। विचित्र कर्मो का उदय है दूसरो की करतूत से बन्धन नही। यदि सत्य स्वरूप देखने मे आ जाय तो बन्धन नहीं रहता है। अपना सत्य स्वरूप देखने मे न आवे, बाहर बाहर ही दृष्टि लगी रहे तो अपने ही अपराध का बन्धन है। दूसरो से बन्धन कहा, क्लेश कहा ? सब मेरे ही बन्धन से क्लेश हैं।

भैया ! शाति तो अपने ज्ञानस्वरूप मे है। शान्ति के लिए लाख यत्न बाहर मे किए जाये, कितने ही पुत्र, परिवार, मित्र जन देख डाले, पर शान्ति कही नही मिलेगी। अपना बब्बा देख लिया, धन वैभव जोड लिया, पुत्र मित्र जोड़ लिये, पर शान्ति उनसे कभी न मिलेगी। चाहे जितना धन वैभव जोड़ लें, चौगुना, अठगुना, दसगुना पर शाति उनसे कभी न मिलेगी। शान्ति का सम्बन्ध तो परपदार्थ से है ही नही। अगर परपदार्थो से शाति होती तो तीर्थकर और चक्रवर्ती इत्यादि बड़े पुरुष धन वैभव इत्यादि को क्यो न त्याग देते ? धन वैभव से तो बधन ही है, शान्ति तो रचमात्र भी नहीं है। बन्धन तो मेरी बाह्यदृष्टि से हो रहे है। मै अपने आपको सभालू तभी अपने मे अपने लिए अपने आप मे सुखी हो सकता हूँ। यदि मै अपने को न सम्भाल सका तो दु ख हो जाते हैं। दु ख करने वाला कोई दूसरा नहीं।

बन्धैकत्वेऽपि देहादेर्भिन्न एव स्वभावत ।
परभिन्नात्मवृत्ति' शं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-२०।।

अर्थ– बन्ध अवस्था से एकत्व होने पर भी स्वभाव से देह आदि पर पदार्थ से भिन्न ही मैं हू और परपदार्थ से भिन्न निज आत्मा में वर्तन होना सुख है इसलिये मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

यह शरीर और यह जीव बन्धा है और इस बध के कारण इन दोनो मे एकता भी है परन्तु परमार्थ से इनमे एकता नहीं रहती है। यह जीव अलग नहीं हो पाता, यह देह अलग नही हो पाती, फिर भी यह जीव स्वभाव से ही इस देह से भिन्न है। सो इस देह को त्यागकर अपने ज्ञानस्वरूप को देखे तो यह वृत्ति यह काम मेरी शाति को उत्पन्न कर सकता है। बाहर दृष्टि रहने से तो कुछ शाति नहीं मिल सकती है। निमित्त दृष्टि करके इष्ट अनिष्ट माना, सो इस ही से विपदा आती है।

यह एक चौकी है। देखने मे लगती है कि यह एक चीज है मगर एक नहीं है। यह चौकी अनन्त पुद्गल परमाणुओ से बनी है। उनका इस प्रकार का प्रचय है कि बीच मे अन्तर नहीं मिलता। मगर यह चीज एक नहीं है। एक चीज तो वह होती है जिसका दूसरा टुकडा नही होता है। क्या एक नये पैसे का आधा हो सकता है ? नहीं हो सकता है ? नहीं हो सकता है। जैसे १ रुपया है वह एक चीज नहीं, वह तो १०० पैसो का समूह है। अगर हिसाब लगाओ और आधा नया पैसा बैठे तो एक नए पैसे का आधा नहीं दिया जा सकता है। यदि उसको कौडी मान लो तो एक कौडी यूनिट हो गया उसका आधा नहीं किया जा सकता है। जो अविभागी हो उसे एक कहते हैं।

इस चौकी के अनेक टुकडे कर लो, १० टुकड़े कर लो, ५० कर लो। चौकी अनन्त परमाणुओ की चीज हे। इस चौकी के एक-एक परमाणु मे भी एक परिणाम में दूसरा परिणाम घुस नहीं गया है तो फिर बतलाओ जीव की तो बात बहुत जुदा हे, यह तो भिन्न-भिन्न स्थानो मे है। यह एक कैसे हो सकता हे ? यह आत्मा इस बध अवस्था मे एक होकर भी देह इत्यादि सबसे पृथक् है। सो सब पदार्थो से भिन्न जो आत्मतत्व है उसमें वृत्ति हो तब वह शान्ति का मार्ग पा सकता है। सबसे बडा सकट जीव को है तो मोह का सकट है, दूसरा सकट नहीं है बेप्रयोजन, कोई लेना नही, देना नहीं, भिन्न-भिन्न जीव है, भिन्न-भिन्न पदार्थ है, सब अपने-अपने स्वरूप मे उत्पाद व्यय कर रहे हैं, किन्तु स्वरूप ध्रुव है। इस

कारण किसी भी पदार्थ का किसी अन्य पदार्थ से जरा भी सम्बन्ध नहीं, फिर भी यह जीव वस्तुस्वरूप के खिलाफ मानता है कि यह मेरा है, इसलिए ही विकल्प बना रहता है। यही इस जीव पर बड़ा सकट है। इससे बढ़कर और कुछ सकट इस जीव पर नही।

भैया! इस निजप्रभु पर ऐसा गजब उपद्रव छाया हुआ है कि मरकर पशु-पक्षी बन जाते है, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे आदि बन जाते है, फिर भी ये जीव मौज मानते हैं,खुशिया मनाते है, मोह करते है। मरकर अगर पशु बन गये, वृक्ष बन गये तो फिर कि ये पुकारा करेगा कौन तुम्हे पुकारेगा ? इस जीव का शरण है तो केवल भेदविज्ञान है। तुम जो कुछ करते हो वह अपने लिए करते हो। उसका फल तुम्हे ही भोगना पडेगा। मै जो कुछ करता हूँ वह अपने आप भोगता हूँ। इसके आगे मेरा कुछ कर्त्तव्य नही है कर्त्तव्य तो यह है कि मेरा जो सबसे निराला रूप है उसका अनुभव करू, उसमे ही रमू। इसी को कहते है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। यह स्व की वृत्ति ही मेरी शरण है अन्य कोई मेरे लिए शरण नही है ऐसा जानकर अपने ज्ञान मे लगना चाहिए।

देखो सबसे बड़ा सौभाग्य तो जैनदर्शन को पाना है जिसमे वस्तु के स्वरूप को युक्तियो से सुसिद्ध किया है और उसका प्रतिवाद न करके भी ऋषिगण यह कहते है कि आप के अनुभव मे आये तो मानना। हम अपने अनुभव मे उतारे कि प्रत्येक वस्तु स्वतत्र है ना, प्रत्येक वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है ना। पर का चतुष्टय न्यारा-न्यारा है ना। देखो कही-कही यह कहा गया है कि सारा जगत् ब्रह्म है, एक सत् है। अच्छा यह बताओ कि मनुष्य एक ही तो है। मनुष्यत्व की दृष्टि से देखो तो एक है और भिन्न-भिन्न अनुभव से देखो तो अनेक है। इसी तरह चेतन और अचेतन पदार्थ भी एक होगे। ये सब सत् है इस दृष्टि से चेतन अचेतन सब एक है। ये बाहर के पुद्गल भी सब एक है। भिन्न-भिन्न दृष्टि से वे भिन्न-भिन्न प्रदर्शन है। सो अनेक नयो से वस्तु स्वरूप को पहिचानो।

इसके आगे ऊपर चलने का यह भी उपदेश है कि यथार्थज्ञान करके फिर सबको भूल जाये केवल अपने ज्ञानस्वरूप मे रमे यही अन्तिम शिक्षा है। बीमार को समय पर योग्य दवा मिलना जरूरी है। इसी तरह इन जीवो मे अनेक प्रकार की योग्यता वाले जीव हैं सो सब वर्णन इस जैन धर्म मे मिलते हैं। देखो सौभाग्य की बात है कि हमे उत्तम कुल मिला है जिसमे सप्त व्यसन की परम्परा नहीं और ऐसे व्रत विधान परम्परा है जो एक पवित्र भाव को लिए हुए है। अनेक योग्य वृत्तिया घर के परिवार मे स्वत है। अब मोह मे दिल लगाकर सब सुविधाओ को बिगाड़ देना तो ठीक नहीं। अपने आनन्द के लिए अपने आप पर ही अपनी जिम्मेदारी समझना चाहिए।

देहादेव यदा भिन्न कथ बन्धुभिरेकता।
विभक्तस्य सदा सौख्य स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-२१।।

अर्थ– जब मैं देह आदि से भी भिन्न हूँ तब बन्धुजनों से मेरी एकता कैसे हो सकती है ? अर्थात् किसी भी परवस्तु से मेरा एकपन नहीं हो सकता सर्व से भिन्न स्व के द्रष्टा के सदा निराकुल सौख्य होता है इस कारण मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

यह मैं आत्मा देह से भी भिन्न हूँ, यह बात अनुभव से मालूम पड़ती है कि मैं शरीर से न्यारा हू फिर और बन्धुओ के साथ एकता कहा से हो ? जब शरीर ही मेरा साथी नहीं है तब और बन्धुओ के, कुटुम्ब, परिवार के साथ एकत्व कैसे हो सकता है ? ऐसा मानो कि मैं सबसे न्यारा हूँ । अपने आपको न्यारा देखने मे ही आनन्द है। जिसने दूसरो से मिला हुआ अपने को देखा उसे आकुलताये ही होती है। अभी ये बच्चे लोग सुखी नजर आते हैं, दौड़ते है, फिरते हैं, खेलते-कूदते है। इसलिए ये सुखी नजर आते है कि इनके किसी प्रकार का मोह नहीं लग पाता है। उनके स्त्री नहीं होती सो स्वतन्त्र है इसलिए वे सुखी नजर आते है। जिस दिन विवाह हो गया उसके दूसरे दिन से ही वे दु खी दिख पड़ेगे। और सग बढा, पुत्र बढे, उनसे मोह किया, अब दु खो का क्या ठिकाना ? देखो बच्चो से भी मिलता क्या है ? बच्चे बडे हो गये, विवाहित हो गये ? स्त्री मे लीन हो गये तो पिता, मा की अवहेलना करते है। वे बैठे-बैठे ही मन मे कुढ रहे है, अपनी स्त्री से स्नेह करते है, अपने पुत्रो से स्नेह करते है और मा-बाप का अपमान करते हैं, मा-बाप दु खी होते है और दु ख क्या होता है बतलाओ ? पुरुष अपनी स्त्री का पक्ष लेता है और मा का दोष बतलाता है। किसी काम से सास-बहू मे झगड़ा हो गया। पति ने स्त्री का पक्ष लिया और मा का दोष बतलाता है। तो बताओ मा को कितना दु ख होगा ? मा सोचेगी कि यह मेरा बच्चा है, मैने इसे पाला-पोषा है, खिलाया-पिलाया है, पर आज मुझे ही दोषी बता रहा है। स्त्री का पक्ष ले रहा है और मेरा निरादर कर रहा है। इससे तो मा का दु ख और बढ़ता है। ये मोही जन अपने बच्चो से ही मोह करते हैं, २४ घण्टे उन्हीं के पीछे पड़े रहते है और दु ख प्राप्त किया करते हैं।

अरे नीति की बात है कि पुत्रो मे ही रत रहने से, स्त्री मे लीन रहने से, राग, द्वेष, मोह बढ़ाने से तो बरबादी ही है। उनसे मोह हटाने से सब दु ख खत्म हो जायेगे, सारा भय खत्म हो जायगा। आपके ये बच्चे आपकी इज्जत न रख सकेगे। वे आपके बच्चे ही आपका अपमान करेगे, आपकी इज्जत न रख सकेगे। यदि आपने उन बच्चो से अधिक मोह किया तो वे समझ जावेगे कि ये मा-बाप मुझे चाहने वाले है, मुझ पर फिदा है, मुझ पर आसक्त है तो फिर वे बच्चे आपकी इज्जत न करेगे। घर मे रहते हुए भी बच्चो से अपने को जितना बाहर बनाओ, बाहर रखो उतनी ही इज्जत रहेगी, उतनी ही विनय रहेगी, उतना ही सत्कार रहेगा। यही तो आनन्द की बात है। मगर भीतर मे इस मोह का रखना पाप है। क्योकि इस मोह का फल केवल अशान्ति है। जब अपना शरीर ही अपना साथी नही है तो फिर अन्य कोई अपना साथी कैसे हो सकेगा ? कौन चाहता है कि मैं बूढ़ा बन जाऊ, मगर बूढ़ा बनना ही पडना है। यदि जिन्दगी रही तो बूढ़ा होना ही पडता है। कौन चाहता है कि आत्मा इस शरीर से निकलकर भाग जाय। कोई बहुत ही अधिक वृद्ध बुढिया है वह देखती है कि बच्चो से मुझे दु ख है तो वह भगवान् से प्रार्थना करती है कि हमे वह उठा ले। उठाले के माने मैं मर जाऊ। अगर कोई साप निकल आवे तो वह पुकारती है कि अरे बेटा दौडो, बचाओ। बच्चा दौडा आवे और कहे कि तुम तो रात-दिन यह करती थी कि भगवान् मुझे उठा ले और अब हमे पुकारती है। तो इस शरीर को चाहे जितने दु ख हो

देहोऽणुव्रजज स्वात्माऽतीन्द्रियो ज्ञान विग्रह ।
स्वात्मन्येव स्थिरस्तस्मात् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वय।।३-२२।।

अर्थ– शरीर परमाणुओं के समूह से जायमान है निज आत्मा अतीन्द्रिय तथा ज्ञान ही जिसका शरीर है ऐसा है इसलिये निज आत्मा में ही स्थिर होता हुआ मैं अपने में अपने द्वारा अपने लिये अपने आप सुखी होऊ ।

यह शरीर क्या है और आत्मा क्या है ? इन दोनो के लक्षणो को इसमे बतलाया जा रहा है। शरीर क्या है ? पुद्गल परमाणुओ के समूह से उत्पन्न हुआ यह ढाचा है। शरीर कोई एक चीज नही है। एक चीज तो अखड रहती है। अगर यह शरीर एक चीज होता तो अगुली न टूटती , पैर न टूटते। एक के टुकडे नही होते। इस शरीर के तो टुकडे-टुकड़े हो जाते है। शरीर एक चीज नही है। शरीर है नाना परमाणुओ का समूह और वे नाना परमाणु सब जड है। वे परमाणु सब मिल-जुल गए है। तो यह शरीर परमाणुओ के समूह से उत्पन्न होता है। मगर आत्मा अतीन्द्रिय है, इन्द्रियो के द्वारा जानने मे नहीं आता , न कर्णो से सुनने मे आता, और बात तो जाने दो। असली चीज जो आत्मा है वह आत्मा मन के द्वारा भी समझ मे नही आता, इन्द्रियो के द्वारा जानने मे नही आता। मन का ऐसा काम नहीं है कि मन के द्वारा कोई आत्मा का अनुभव कर ले। मन इस आत्मा के बारे मे कुछ सोच सकता है। आत्मा मे न तो रूप है, न रस है, न गध है और न स्पर्श है। वह तो ज्ञानमात्र है, ज्ञानमय है, ज्ञानदर्शनमय है। उस आत्मा का साक्षात् अनुभव भी मन नही करता। आत्मा तो मन, इन्द्रिय और कषायो से परे है।

जैसे कोई राजा के पास जाने को तत्पर है तो द्वारपालो का अर्थात् पहरेदारो का काम यह है कि दरवाजे के भीतर जाने दे और चलकर थोडी दूर पहुचा दे। वह राजा के पास बैठकर बात करे यह खुद को करना पडेगा। द्वारपालो का काम केवल यह है कि आगन तक पहुचा दे पर राजा से मिलने का, बात करने का काम तो तुम्हारा ही है। इसी तरह यह मन चौकीदार की तरह है, द्वारपाल की तरह है। वही आत्मा का परमार्थ स्वरूप है, जो प्रभु का स्वरूप है ऐसा विचार बना दिया मन ने। तो मन का कितना काम है ? मन का उतना ही काम है कि आत्मा के आगन तक पहुचा देवे अर्थात् आत्मा की जहा चर्चा चलती है, आत्मा का जहा वर्णन चलता है उस आत्मा मे दर्शनार्थ ले जाय। यह जड मन आत्मा से न मिलेगा इस आत्मा से भिन्न होकर आत्मा के विचार का कारण भर बनेगा, यह उपयोग खुद मिलेगा मन नहीं मिल सकता। इतना परे है यह आत्मा। आत्मा मे सार है क्या ? ज्ञान ही इसका सार है। आत्मा को सरल शाति चाहिए। ऐसी दृष्टि बनाओ कि यह मै आत्मा ज्ञानमात्र हूँ जानन ही प्रतिभास है, जानन ही इस आत्मा का प्रकाश है। यही मात्र मै हूँ। इस ज्ञान प्रकाश के साथ इस ज्ञान को जोडो, यह ज्ञान के ही स्वरूप को देखे। ज्ञान का प्रकाश ही अपने स्वरूप को मानो और सारी बाते भूल जावो। किसी का परिवार कहा है, किसी का स्थान कहा है इत्यादि बातो को भूल जाओ केवल अपने ज्ञानस्वरूप को देखो तो अपने आत्मा के सुख का अनुभव हो जाय। ऐसी आत्मा को ज्ञानविग्रह कहा

है। ज्ञान ही इस आत्मा का सार है। ऐसी आत्मा में अगर कोई स्थिर हो जाय तो उससे ही अपने आपका अनुभव हो सकता है। आत्मा का श्रद्धा, आत्मा का ज्ञान और आत्मा मे रमना इसी से आत्मा शुद्ध हो सकती है।

येरर्थैर्मम सम्बन्धस्ते स्वरूपात्पृथक् सदा।
तत्स्वदृष्ट्याऽसुखं तेन स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयं।।3-23।।

अर्थ– जिन जिन अर्थों के साथ मेरा सम्बन्ध है वे सब स्व के स्वरूप से सदा भिन्न हैं उनमें आत्मा की दृष्टि से दुःख होता है इसलिये मैं अपने में अपने द्वारा अपने आप सुखी होऊं।

जिन-जिन पदार्थों से मेरा सम्बन्ध है अर्थात् अपनी कल्पनाओं से जिन-जिन पदार्थों को हम अपना मानते हैं वे समस्त पदार्थ मेरे स्वरूप से बिल्कुल पृथक है। अपने सत्व को निरखकर निर्णय करो कि जितने भी निकट और बाहर के सम्बन्ध हैं, जितने भी पुद्गल पिंड हैं वे सबके सब मेरे स्वरूप से बिल्कुल अलग है और जितने भी जीव हैं वे सब जीव मेरे स्वरूप से बिल्कुल पृथक् है। सो यह निर्णय कर लो कि उनसे मिलता क्या है ? आपके माने हुए घर वैभव, पुत्र, परिवार इत्यादि आपसे कितने बाहर है? बिल्कुल पृथक् है।

की परिणति से क्रोधी हो गया। क्योकि कोई दूसरे पर क्रोध नहीं कर सकता। क्रोध करने वाला खुद क्रोध करता है। कषाय करने वाला, विषयो मे आसक्ति रखने वाला स्वय ही अपना ख्याल बनाकर ऐसा बुरा बन जाता है। प्रत्येक कोई किसी दूसरे को बुरा भला नहीं बनाता। कोई क्रोध नहीं करता, खुद ही ख्याल बनाते और इस रोग के बीमार बनते रहते है। आत्मा मे तो स्वभाव से राग नहीं रहता है। आत्मा तो एक अमूर्त है। ज्ञान और आनन्दस्वरूप को लिए हुए मात्र है, इसमे अन्य कुछ पिडरूप चीज नहीं है। इसमे कोई भार भी नही है। यदि कोई भार हो तो बतलावो। इस आत्मा मे कोई भार लादा है क्या? कोई भार तो इस जीव मे नहीं करता है। खुद ही भीतर ख्याल बनाकर इतना भार लादा है कि उठ नही पाता, आराम से बैठ नही पाता। ख्याल बनाकर इतना बोझ लादा है कि खुद शान्ति से बैठ नहीं पाता। इस जीव ने स्वय अपनी जिद से अपने को दु खी कर दिया। दूसरा कोई दु खी करने वाला नहीं है।

एक बादशाह था। वह पशुशाला मे घूम रहा था। वहा घोड़ा बधा था। पास मे ही बैल बधे थे। घोड़ा बैलो से बोला– तुम लोग बेवकूफ हो इसलिए बोझा लादते हो। बैल बोले तो फिर क्या बुद्धिमानी करे कि बोझा न ढोना पडे। वे तो हमे पकड़ लेते है और जोत लेते है। घोड़ा बोला कि हम तुम्हे एक बुद्धिमानी की बात बताते हे कि जब कोई बोझा ढोने के लिए तुम्हारे पास आवे तो तुम पेट फुलाकर पैर पसारकर लेट जाना। ऐसा करने से तुम्हे बोझा नही ढोना पड़ेगा। राजा सब बाते सुन रहा था कि घोडे ने बैलो को यह समझाया है। दूसरे दिन जब बैल जोतने वाले बैल के पास पहुचे तो मरा सा पाया उन्हे। राजा के पास बैल वाले पहुचे, बोले– महाराज, बैल तो मर गए अब किसको जोते ? राजा बोला कि अच्छा पास वाले घोडे को जोत ले जाओ।

बैलो का बोझा घोडा कहा सहन कर सके ? वह हाफता हुआ किसी तरह से अपने स्थान पर पहुचा। अब उस घोडे ने बैलो को समझाया कि देखो दूसरे दिन पेट फुलाकर नही लेट जाना, नही तो डडे और कोडे खाओगे। राजा भी वहा घूमने गया था। घोडे की बात राजा ने सुनी। राजा ने सोचा कि देखो कल तो बैलो को इस तरह से समझाता था कि पेट फुलाकर लेट जाना तो बोझ नही ढोना पड़ेगा, पर आज यह यह समझा रहा है कि अगर पेट फुलाकर पैर पसारकर लेट गए तो डडे खाओगे। राजा थोडी देर बाद रानी के यहा गये। वहा मन मे राजा ने कहा कि कल तो यो समझाया, पर आज यो समझाया घोडे बदमाश ने ऐसा सोचते ही राजा को हँसी आ गयी। राजा की यो हँसी को देखकर रानी पूछती है कि तुम्हे हँसी कसे आयी ? राजा ने कहा कि देखो यह तुम्हारा घोडा बदमाश है, कल बैलो को समझाता था कि पेट फुलाकर पैर पसारकर लेट जाना तो बोझा न ढोना पडेगा, पर आज यो समझाया कि दूसरे दिन से पेट फुलाकर पैर पसारकर नहीं लेट जाना, नही तो चमडी उधेड़ी जायगी। रानी ने राजा से पूछा कि तुम घोडे की बोली समझना किसने सिखाया ? हमे भी सिखवादो राजा ने कहा कि सिखाने वाले ने कहा था कि अगर स्त्री जाति को सिखाया तो तुम मर जाओगे। राजा को यह भय लगा कि अगर सिखा दूगा तो मर जाऊगा। रानी ने बहुत हठ किया तब राजा ने कहा कि अच्छा दो दिन बाद मे सिखा

देगे। अब तो सभी पशु यह जान जाते है कि हमारा राजा दो दिन बाद मे मर जायगा। बैल, घोड़ा, कुत्ता सभी उदास हो गये, यह सोचकर कि हमारा राजा तो दो दिन बाद मे मर जायगा। मगर मुर्गा-मुर्गी सब खेल रहे थे। कुत्ता बोला – ऐ मूर्खो तुम्हे यह पता नहीं कि अब खेलना ठीक नही है क्योकि राजा मर जायेगा। मुर्गा-मुर्गी कहते है कि हम इसलिये नही खेलते कि राजा मर जायगा किन्तु इसलिए हँसते है कि राजा अपनी बेवकूफी से मर रहा है। कुत्ता बोला बेवकूफी क्या है ? मुर्गा-मुर्गी बोले बेवकूफी यह है कि अपनी गलती से ही स्त्री को सिखाने के लिए तैयार हो गया है। अगर वह रानी के हठ करने पर डण्डे मारने को तैयार हो जाता तो उसे अभी मरना न पड़ता। उसकी ही तो गलती है। राजा यह भी सुन रहा था अब उसकी समझ मे आ गया। राजा दो दिन बाद रानी के घर तो गया किन्तु साफ कह दिया कि जा नहीं सिखाना। तो सोचो कि सम्पदा, घर बार बच्चे कोई भी मुझे दु खी नहीं करते है, कोई दूसरा दु ख करने वाले नही है, स्वय ही मोह करके, ममता करके ये दु खी हो रहे है। दु ख को दूर करना हो तो सच्चा ज्ञान जगालो। सच्चा ज्ञान जगाने से ही दु ख दूर होगे। अगर कोई चीज बन गयी तो उससे मुझमे क्या बन गया और अगर कोई चीज बिगड़ गयी तो उससे मुझमे क्या बिगाड़ हो गया ? यह सम्यग्ज्ञान की बात कह रहा हूँ। सम्यग्ज्ञान की बात कही जाने पर भी ये रागो मे ही गोते लगा रहे है।

इन रागो मे लगाव होने पर भी यदि सच्चा ज्ञान जगता है तो आकुलताये नही होती है। इतना फर्क हो जाता है। मिथ्यादृष्टि मे तो राग भी रहता है और राग मे भी राग रहता है। सम्यग्दृष्टि भी करते है कोई राग, किन्तु वे राग से राग नहीं करते है। इसका वे अन्दर से दु ख ही मनाया करते हैं। वे तो सब बाते यथार्थ समझते हैं, फिर भी रागपरिणति देखकर दु खी होते है। भैया ! यह ज्ञानमात्र सबसे निराला अपने को समझो, केवल कर्त्तव्यमात्र समझो कि यह मै इस दशा के कर्त्तव्य ही करता रहता हूँ। जिन पदार्थो से मेरा सम्बन्ध है वे सब पदार्थ मेरे स्वरूप से जुदा हैं, बिल्कुल जुदा हैं। पूर्वजन्म के कौन से वैभव साथ आये और जगत् के इस जन्म मे भी कौन से वैभव साथ ले जाओगे? ये तो सब ख्याल बनाकर ही दु खी हो रहे हैं। अच्छा ज्ञान जग गया वस्तु के स्वरूप अनुरूप तो अच्छा है और यदि अपने स्वरूप से हट गए और कुबुद्धि आ गयी तो ठीक नहीं होगा। पर की परिणति का अपने पर बोझ लादना भ्रमवश ही होता है। एक धुनिया पानी के जहाज से चला आ रहा था। उस जहाज मे हजारो मन रुई लदी थी। उसको देखकर वह मन मे कहता है कि हाय ! इतनी रुई कौन धुनेगा? हम ५ सेर रुई तो एक दिन मे धुन पाते हैं तो यह हजारो मन रुई धुनने मे तो हाय हम मर जायेगे। ऐसी कुबुद्धि आ गयी, हाय हम मर जायेंगे। अब तो वह बीमार हो गया, तेज बुखार चढ़ आया। चार दिन हो गये, ६ दिन हो गए। बहुत से डाक्टर आये, पर कोई ठीक न कर सका। एक बुद्धिमान आया। बोला– हम ठीक कर देगे। धुनिया बोला– अच्छा महाराज, ठीक कर दो, मैं हजार रुपये भेट करूगा। उस बुद्धिमान व्यक्ति ने धुनिया से पूछा– कहा से चले ? बोला– फला जगह से, विलायत से। किससे चले, पानी के जहाज से। उसमे कितने आदमी थे, बोला आदमी तो दो तीन थे, पर हजारो मन रुई

तदी हुई थी। अब तो वह खुद ही समझ गया कि उतनी रुई को देखकर इसके हाय हो गया है कि इसे कौन धुनेगा ? बोला– अरे जहाज तो आगे समुद्र के किनारे आते ही उसमे आग लग गयी और सारी रुई जल गयी, सारा सामान जल गया। अब तो वह इतना सुनते ही चगा हो गया, बीमारी दूर हो गयी, सारे क्लेश खत्म हो गये।

सम्पदा बढाना है, रुपया बढाना है, इतने और बढ़ाना है, यह करना है, वह करना है, इस प्रकार के ख्याल बनाकर मनुष्य बीमारी मे पडे हुए हैं। अभी देख लो इनमे दु खी हैं कि नही, आकुलताये हैं कि नही। और आपके ये आचार्य समझाते है कि जिस दुनिया मे , जिन-जिन पदार्थो के बीच हम बसे रहते हैं वे पदार्थ तेरे स्वरूप से तो बिल्कुल अलग हैं। उनका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उनमे है, उनकी परिणति उनमे है उनका प्रदेश उनमे ही है। तेरी सब बाते तेरे मे ही हैं। तेरा काम तेरे से बाहर नहीं होता है, तेरी कोई परिणति तेरे से बाहर नहीं होती है। तू परपदार्थो मे कुछ नही करता है, ऐसी भावना न रहेगी तो सयोग की कल्पना होगी। बाह्यपदार्थो के सयोग से तो दु ख ही रहेगा। बाह्यपदार्थो के सयोग से अपना हित कुछ न तो वर्तमान मे ही कर सकते हैं और न भविष्य मे ही कर सकेगे। त्याग से ही पुण्य की वृद्धि है। धन-वैभव से सुख होता तो बड़े-बड़े महापुरुष क्यो इस लोक वैभव को त्याग देते? हम और आप क्या, जिनकी सेवा इन्द्रादि देव करते थे, जिनके चरणो मे बड़े-बड़े मुकुटधारी राजा आते थे उन्होने बड़े धन-वैभव राज-पाट सबको छोडकर अपने आपके स्वरूप मे आनन्द प्रांप्त किया। तो आनन्द के पाने का केवल एक ही उपाय है। इस जगह समझो कि निजस्वरूप के देखने से ही सुख है।

पलास्थिरुधिरे देहे स्वबुद्धया क्लेशभाग्भवेत् ।
तत्र रागे न को लाभ स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-२४।।

अर्थ– मास, हड्डी, रुधिर (खून) आदि हैं जिसमें ऐसे इस देह में स्व आत्मा की बुद्धि करने से प्राणी क्लेश का पात्र होता है उस देह में राग करने से कोई लाभ नहीं है तो अपने द्वारा अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

देखो यह शरीर मास, हड्डी, खून आदि अपवित्र वस्तुओ का समूह है। इस देह में इस शरीर को देखो कितना अपवित्र है, मूल मे क्या शरीर अपवित्र है। यह शरीर तो आहारवर्गणाओं से बना है। वे वर्गणा तो पवित्र हैं। जब तक इन परमाणुओं मे यह जीव नहीं आता तब तक पवित्र है और जब यह जीव आया और उनको शरीर रूप बनाया, देहरूप बनाया तो यही वर्गणाये अपवित्र हो गयीं। तो मूल मे अपवित्र कौन रहा ? यह जीव अपवित्र रहा कि शरीर ? यह ससारी जीव ही गदा रहा जिसके कारण यह शरीर गदा हो गया। जब तक यह जीव नही आया तब तक यह शरीर अच्छा था, भला था। और भी आगे देखो– जीव क्या गदा रहा ? जीव ने रागद्वेप किया, मोह किया तो ऐसा मोही, रागी, द्वेषी जीव ही आया तब ही तो इस शरीर ने सारी वर्गणायें ग्रहण कीं और इससे अपवित्र हो गया यह शरीर। तो जीव भी अपवित्र नहीं रहा। ये रागद्वेप मोह ही अपवित्र रहे। दुनिया में सबसे गदी चीज क्या है, राग द्वेप ! और इनका मूल क्या है ? मोह। सो मोह ही गदा है। अरे गली में दुर्गन्ध देने वाली चीजें

क्या है, कीड़े मकौड़े, मास इत्यादि खराब चीजे ही दुर्गन्ध देने वाली बन गयी। उनमे यह जीव आया, तब न त्रस बना यह पिण्ड, फिर जीव के जाने पर सड़ा व गदा हुआ। तो गदा कौन हुआ ? गदा तो यह मोही जीव ही हुआ। और जीव के गदा होने का कारण मोह रागद्वेष है। परम्परा से चलते-चलते यहा तक नौबत आई कि शरीर गदा हो गया। तो मूल मे सबसे गदी चीज है मोह। इस जगत मे सबसे गदी चीज मोह की चीज ही मिलेगी। अगर मोह है तो सब गदा और अगर मोह नही है तो कुछ भी गदा नही है। भगवान् तीर्थकर ने सबसे मोह त्यागा। वे वीतराग हुए तो उनका शरीर परमौदारिक हुआ। उनके शरीर मे कोई अपवित्रता नही रहती। स्फटिक के समान पारदर्शी पवित्र शरीर हो गया। पवित्र क्यो हो गए कि शरीर मे बसने वाला जीव निर्मोह हो गया, रागद्वेष मोह आदि से वे रहित हो गये। शरीर को गदा रखने वाले तो ये दोष ही थे। दोष मिट गये तो यह शरीर पवित्र हो गया। यह बीमारी जिनमे ये मोही प्राणी मर रहे है उनका मूल कारण यह मानसिक रोग है। बड़े आदमी, रईस लोग बड़ी बाते करने वाले जिन्हे शारीरिक रोग नही है। डाक्टर आ रहे है, चार आदमी हिले-मिले सेवा कर रहे है, पर यहा तो रोग हार्टफेल होने का है। बड़ा नुकसान हो गया, हाय मेरी इज्जत धुल मे मिल गयी इत्यादि मानसिक खराबियो से वे परेशान हो जाते है। अरे वे राग की ही तो परिशानिया है। कोई दो चार लाख का धन अगर देवे तो वे फिर उसी समय ठीक हो जाते हैं। यह तो अज्ञान की ही बात है। एक और बात देखो, इन्हे न तो कोई मारता है, न पीटता है, न घसीटता है, न भूखो मरते है, न किसी प्रकार के सकट है फिर भी उनके दिल मे उड़ान बनी रहती है, और दु खी होते हैं। केवल ख्याल ही तो करके दु खी होते है। उपयोग मे तो वही आधा सेर भोजन ही आयगा। तन के कपड़े उपयोग मे आयेगे। पर अनेक ख्याल बनाकर वे दु खी होते है। उन ख्यालो को मिटाने की औषधि तो वस्तुस्वरूप का ज्ञान है। इस शरीर मे आत्मबुद्धि करके तो लाभ कुछ नही मिलेगा। इस शरीर मे राग करके तो बरबादी ही है। दूसरे के शरीर मे राग करने से, विषयभोग कामवासनाये इत्यादि जागृत होती है। मोह करना, यह मेरा है, यह उसका है, यह फला का है इत्यादि से तो दु ख ही मिलता है। आत्मा से किसी को राग नही है और शरीर से भी कोई राग नहीं करता। अगर आत्मा निकल जाय तो फिर उस शरीर से राग रखे कोई तो क्या राग रखता है। आत्मा को तो ये कोई जानते ही नहीं है, राग क्या करे उससे फिर भी अगर वे राग करते हैं तो स्वय को ही जलाते है। परमार्थ से तो आपकी आत्मा मे राग नहीं है, पर ख्याल बनाकर राग बना डालते है। इन रागो के कारण ही आप दु खी होते हैं। दु ख तो केवल ज्ञानस्वरूप के अनुभव से ही दूर होगे। सो अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव करना चाहिए। ज्ञानस्वरूप का अनुभव करके ही शाति प्राप्त की जा सकती है, अपने शातस्वरूप के दर्शन भी ज्ञानस्वरूप के अनुभव से ही होगे। यदि अपने मे शाति बन जाय तो यह जीव सभी जगह प्रसन्न रह सकता है।

देहो न शुद्ध्यते सिन्धोर्वारिभि शुद्ध्यते त्वयम् ।
स्वात्मा स्वात्मधिया तस्मात्स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।३-२५।।

अर्थ– शरीर समुद्र के समस्त जल से भी शुद्ध नहीं हो सकता परन्तु यह निज आत्मा निज आत्मा में बुद्धि के द्वारा शुद्ध हो जाता है इसलिये मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

शरीर और आत्मा की बात कह रहा हू कि यह शरीर समुद्र के सारे जल से भी शुद्ध किया जाय तो भी शुद्ध नहीं होता। कितना ही समुद्रभर पानी डाल दिया जाय, पर शुद्ध नहीं हो सकता है, क्योकि भीतर तो सारा मल भरा हुआ है, नाक मे नाक भरी हुई है पीप, हड्डी, मास आदि से यह शरीर बना हुआ है। समुद्र के जल से भी शुद्ध किया जाय तो शरीर शुद्ध नही किया जा सकता है और आत्मा के शुद्ध करने के लिए किसी परवस्तु की भी दरकार नही है। अपने आपकी आत्मा की बुद्धि से ही शुद्ध हो जाता है। आत्मा की बुद्धि क्या है ? मेरा ज्ञायकस्वभाव है, ज्ञानमात्र स्वभाव है, ऐसी दृष्टि आ जाये तो यह जीव अन्तरात्मा बने, फिर इसी ज्ञान की स्थिरता से परमात्मा हो जाय। मै केवल अपने स्वरूप मे हूँ, इसका अनुभव हो जाय, मेरे मे किसी का बोझ नही लदा, जितने भी परिवार के लोग है उनके कर्म अलग-अलग चलते है, उनके उदय के माफिक उनका काम चलता है, उनका मुझ पर कोई भार नहीं। घर के लड़का-लड़की है उनके कर्म अलग-अलग है और उन कर्मो के उदयो के अनुसार उनका फल कुफल चलता है। उनका मुझ पर कोई भार नहीं है। उनका अगर उदय ठीक है तो उनका फल ठीक है और अगर उदय ठीक नहीं है तो उनका फल भी ठीक नहीं है। यहा एक प्रश्न होता है कि हम भाग्य पर ही रहे तो निकम्मे हो जाते है। अरे दूसरो के भाग्य के अनुसार उनके काम होते है। हम उनमे विकल्प ही करते हैं और कुछ नहीं करते हैं। मोक्षकी बात, भाग्य की बात और ससार की बात, ये तीन बाते हैं। इनमे जो मोक्ष की बात है वह है पुरुषार्थ। ससार का जो काम है वह सम्पदा मिले, विपत्ति मिले। सो इन बातो मे है भाग्य की मुख्यता और पुरुष की गौणता। जैसे ये लकड़हारे, घसियारे आदि लोग कितना परिश्रम करते है, पर मुख्य चीज भाग्य है उनका सहयोग नहीं है। रात दिन परिश्रम करते हैं तो भी उनकी सफलता नही रहती अव बात यह चली कि बहुतसे लोग बी ए , एम ए कर लेते हैं, पर रिक्शा चलाते हैं। भैया! ऐसा है कि जो बिल्कुल पढे लिखे नहीं होते वे भी बहुत कमाते हैं। ससार में मनुष्यो की भाग्य की विषमता है, भाग्य की बात है। ससार के कामो मे मोक्ष के कामोमे पुरुषार्थ क्या होता है कि अपनी आत्मा मे ज्ञान किया, अपनी आत्मा मे ही शान्त हो गये। जिसने इच्छाये नहीं कीं, बल्कि अपने ज्ञानस्वरूप की उपासना की तो यही है मोक्ष का पुरुषार्थ। सो मोक्षके लिए पुरुषार्थ की मुख्यता है।

भाग्य कहते हैं जो पूर्वजन्म मे परिणाम हुआ हो। पूर्वजन्म मे परिणाम होने के कारण जो कर्म हैं वे बध गए। उनके उदयकाल मे सम्पत्ति विपत्ति आती है जिसको कहते हैं कर्म। कर्मो के मोक्ष का पुरुपार्थ तो यह है कि इस आत्मा के स्वरूप में ही हम झुके। यही है पुरुपार्थ। भाग्य अच्छा आये विना सम्पदा नहीं मिलती है। इस भाग्य के ही कारण वैसा ही पुरुपार्थ वना, वैसे ही कर्म वने, वैसी ही चीजें परिणम गयीं। वर्तमान मे हम जैसे परिणाम कर रहे है, उनका फल आगे मिलेगा। तो अच्छे परिणामो के बिना कर्म नहीं मिटेंगे। एक जीव कसाई है, वह हत्या करता है पर देखा जा रहा है कि वह लखपति है, उसके पास सम्पदा है, पूजी है, पर वे पूर्वजन्म के ही लाभ ले रहे हैं। अव इनसे जो खोटे कर्म वन रहे हैं उनको आगे ले चलेंगे। कोई अगर यह कहे कि मुझको दु ख हो रहे है तो परमार्थ को देखो तो

कुछ दु ख नही है। वर्तमान मे जैसा परिणाम कर लिया वैसा फल है। जितना जीवो मे धर्म है उतनी ही शान्ति है, उतना ही धर्म है। गृहस्थी मे तो भैया! थोड़ा धन होना चाहिए, गुजारा होना चाहिए, बस उसी मे ही सतुष्ट रहो और धर्म धारण के लिये जीवन समझो। इसमे ही तुम्हारी शान्ति है। देखो लखपति, करोड़पति, अरबपति भी तो नजर आते है। अगर वे मर जाते है तो पता ही नहीं चल पाता है कि कैसे यकायक मर गए। कही ट्रेन मे चलते चलते मर गये, ट्रेन पर ही यकायक हार्टफेल हो गया। धन मे क्या शान्ति है ? पूर्ण शान्ति तो धर्म मे ही होती है, धर्म से जो शान्ति होती है वह तत्काल होती है। आत्मा की दृष्टि हो तो वही धर्म कहलाता है। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है वही उपयोग मे रहे वही धर्म कहलाता है। यदि धर्म करता हो अर्थात् ज्ञानस्वरूप को अपने उपयोग मे लिए हो तो यह जीव सुखी हो सकता है। जिस काल मे जो जिस जीव ने अपने ज्ञानस्वभाव को लिया है तो समझो उसने अपने प्रभु की उपासना किया है। जो अपने ज्ञान को पकड़े रहता है उसको दु ख नहीं हो सकते है। यदि अपने ज्ञानस्वरूप से बाहर हुए तो दु ख ही दु ख आ जाते है।

बाहरी पदार्थो मे लग गये, बाह्य मे ही लग गए, बाह्य मे ही मौज माना तो समझो ज्ञान करते हुए भी उसको शाति नही मिल सकती है। धर्म मे शान्ति है और अधर्म मे अशान्ति है आत्मा की पवित्रता धर्म से होती है। आत्मदृष्टि से ही यह आत्मा शुद्ध होती है। परन्तु यह शरीर तो बड़ा बेशर्म है। हम इस शरीर मे कितनी आसक्ति रखते है। लोग आत्मा से आसक्ति रखने मे शर्म करते हैं। अरे हमे तो इस शरीर से घृणा होनी चाहिए। इस शरीर मे ऊपर से अन्दर तक देखो सब घृणित चीजे ही नजर आती है। ऊपर से तो यह शरीर भला लग रहा है पर बहुत ही गदा यह शरीर है। नाक मे देखो तो नाक भरी रहती है, पेट मे देखो कितना विकार भरा रहता है। मास, खून, हड्डी इत्यादि से बना हुआ यह शरीर कितना अपवित्र है ?

इस शरीर को अगर समुद्र के पानी से पवित्र करे तो भी पवित्र नहीं हो सकता है। यह तो हुई शरीर की बात, मगर आत्मा को अगर शुद्ध करना चाहते हो तो कहते हैं कि अगर कर सकते हो तो दूसरे पदार्थो की ओर न झुको। इतने मात्रसे ही अपनी आत्मा को शुद्ध कर लोगे। गिरी हुई वातो को तो सब तरह से कर सकते हो, पर यदि आत्मा को शुद्ध कर लिया, तो समझो जीवन सफल है। जो ज्ञानानन्दघन अपने आपको देख ले तो वही शुद्ध रहेगा, वही पवित्र रहेगा। भव-भव के पाप आत्मा की दृष्टि से तत्क्षण नष्ट हो जाते है। तो आत्मदृष्टि मे इतनी ताकत है। आत्म दृष्टि से ही आनन्द प्राप्त होता है। यह आनन्द अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है। इस विषय मे क्या आनन्द है कि रात दिन बाह्य मे ही पड़कर तृष्णा किया करते हैं। ऐसी कोशिश रक्खो कि आत्मा की महिमा सबसे पहिले रक्खो।

झूठ बोलकर, छल कपट आदि करके धन आ जावे ऐसा विचार न रक्खो। शुद्धभावना को अन्तरग फकीरी कहते है। इस फकीरी मे आ जावो तो सारा काम बन जाय। न्याय से प्रवृत्ति होना चाहिए, धर्म की दृष्टि होनी चाहिए, उस परिवार के पीछे आत्मा पर आघात नहीं करना चाहिए। जो परिवार के लोग हैं उनका भी कर्मोदय है, उनकी भी हित अहित की व्यवस्था है। यह अपनी देह तक तो रहेगी नहीं फिर

दूसरों से अधिक तृष्णा क्यो रक्खो? अपनी आत्मा का हित देखना चाहिए। आत्मा का हित इसी मे है कि न्याय से रहे, पवित्रता से रहने के लिए अपना तन, मन, धन तक न्यौछावर करने के लिए तैयार होना चाहिए यह भी निश्चय होना चाहिए कि हम झूठ न बोले,दया का व्यवहार रखे, गलत व्यवहार से पैसा न आवे। गलत व्यवहार से पैसा आनेसे अन्याय से धन आने से तो इन्कम खत्म हो जावेगी। अगर साख अच्छी है, व्यवहार अच्छा है, न्याय का व्यवहार करते है तो इन्कम बढ़ जाती है।

कहते हैं कि रूस, चीन आदि के लोग सुखी है। अरे वहा के भी लोग सुखी नही हैं। वहां भी कोई हुक्म करते हैं, कोई हुक्म मानते हैं, हुक्म मानने वाले दु खी है। हुक्म मानने व हुक्म करने वाले दु खी हैं, हुक्म करके वहा पर भी बहुत दु ख है। चाहे साम्यवाद कह लो, चाहे भाग्यवाद कह लो। जो पदार्थ जैसा है वैसा न मानने से ही अपने मे विकल्प बन गये। धर्म नहीं बदला जा सकता है, मगर सुख की वाह्य व्यवस्थाये बदली जा सकती है। बड़े आदमी दु खी होते है, उनके पास यद्यपि दु ख नहीं है, पर ख्याल बनाकर वे दु खी होते रहते हैं।

इस ख्याल को मिटाने का उपाय तो केवल ज्ञान है। इस ज्ञान मे ही समाने से मोक्ष मार्ग प्राप्त होता है। ख्याल वना लेने से तो जो इन्द्रसम हैं वे भी दु खी हो जाते हैं। ससार मे रहने से तो दु.ख नहीं मिट सकते हैं। दु ख तो केवल अपने ज्ञानस्वरूप की दृष्टि से ही मिट सकते हैं।

दु खाश्रयो हि देहोऽयं देहतो व्यसनानि वै।
विरज्य देहतस्तस्मात्‌ स्या स्वस्मै स्वेसुखी स्वयम्‌।।३-२६।।

अर्थ– नियम से यह देह दु ख का आश्रय है और देह से निश्चयत आपत्तियॉ होती हैं इसलिये देह से विरक्त होकर अपने में अपने लिए अपने आप सुखी होऊं।

लोग देह की व्यवस्था में जुटे हैं। साम्यवाद करना चाहते है तो इस देह की व्यवस्था के लिए ही करना चाहते हैं। अन्य जितने भी काम हैं वे सब भी इस देह की व्यवस्था के लिए ही किए जाते हैं। जितने भी दु ख हैं उन दु खों का कारण भी यह शरीर है। मेरा अपमान हो गया, मुझे भोजन नहीं मिला, मुझे यह करना है आदि आदि से ही अपने शरीर का ख्याल बनाकर दु खी हो जाते हैं। अगर किसी ने गालिया दे दीं तो दु खी हो जाते हैं। जो अपमान के दु ख हैं उनका भी कारण यह शरीर है, जो मानसिक दु ख हुए उनका भी कारण यह शरीर है। यह शरीर ही सारे दु खों का आश्रय है। इस शरीर से ही सारी विपदायें हैं। एक दूसरे का कोई दुश्मन नहीं होता। इस शरीर को देखकर ही दुश्मन बन गए। इस आत्मा में दु ख नहीं है। तुमको तो केवल शरीर ही नजर आता है। यह अमुक व्यक्ति है, इसका यह नाम है इत्यादि। सो इन झझटो का कारण शरीर है। ये जो व्यसन आते हैं। वे भी इस शरीर के ही कारण आते हैं। इसलिए इस देह से विरक्त होना ही ठीक है। देह से विरक्त होने का मतलव यह समझो कि मैं यह देह नहीं हूँ, देह तो पौद्गलिक है। यह देह तो जड़ है, मैं मैं हूँ, चेतनस्वरूप हूँ, मैं सबसे जुदा हूँ ऐसा यथार्थ अपने को जान लो। इस देह के ससर्ग से तो दु ख ही है, इस देहसे ससर्ग रखने से तो पूरा नहीं पडेगा।

यथार्थज्ञाता बनना ही इस देह से विरक्त होना है। अपना ज्ञान सही रखो, रागद्वेष, मोह आदि को त्यागकर अपने ज्ञानानन्दघन स्वरूप को देखो। अपने आपको यह समझो कि मै यह देह नही हूँ, यही समझना सम्यग्ज्ञान है, यही देह से विरक्ति है, विरक्ति और ज्ञान अन्य कुछ नहीं है। ज्ञान को ही विरक्ति कहते है और विरक्ति को ही ज्ञान कहते है। ज्ञान और वैराग्य की लीला परमार्थ से एक ही स्वरूप बन गयी है। ज्ञान के होने का नाम ही रागो का मिटाना है और ज्ञान होने का नाम ही वैराग्य है। वह जो कुटुम्ब परिवार इत्यादि के लोग है उनसे मेरा कोई सम्बन्ध ही नही है। मै तो उन सबसे जुदा हूँ, केवल ज्ञानमात्र हूँ, ऐसे ज्ञान का होना ही वैराग्य है। धन, सम्पदा इत्यादि तो दुर्गति के कारण होते है। इस कारण अन्य सबसे विरक्त होकर अपने मे बसा अपना स्वभाव, इस कारण धर्म मानना ही वैराग्य है। यह मैं हू, यह मेरा है, यह उसका है ऐसा मानने से ही व्याकुलताये हो रही हैं। मै मै हूँ, वह वह है, ऐसा मानना ही वैराग्य है। पर को पर समझो। जिसमे वैराग्य का अंश नहीं है वह ज्ञान नही है। सम्यग्ज्ञान के साथ चरित्र न हो ऐसा नही होता, स्वरूपाचरण तो होता ही है और चारित्र हो तो शान्ति नही हो सकती है। सम्यग्ज्ञान होते ही बाहर की कोई भी चीज हो उससे प्रतीत्या राग हट जाता है। पर से राग हो गया तो फिर वह स्थिर न रह सकेगा। यह स्वरूपाचरण वाला ज्ञान यदि नहीं है तो बरबादी ही है। इस स्वरूपाचरण के मायने है अपने स्वरूप की ओर झुको। जितना ही ज्ञान होगा उतना ही अपने ज्ञानस्वरूप की ओर झुकाव होगा। मोह न रहे, राग मे राग न रहे, अज्ञान का राग न रहे, प्रीति का राग न रहे। भैया! ये सब जितने व्यसन है वे सब इस देह के ही कारण है। सो इस देह से विरक्त होकर अपने ज्ञायकस्वरूप को देखकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होओ।

इस ससार के जितने भी जीव है वे चाहे मनुष्य हो, चाहे पशु हो, चाहे पक्षी हो, चाहे जो कोई हो सब अपनी-अपनी जगह पर दु खी हो रहे है। किसी को दु खी करने वाला कोई दूसरा जीव नहीं है। अपना ही ख्याल करके, विचार बनाकर विकल्प करके खुद दु खी हो रहे हैं। क्यो दुःखी हो रहे हैं कि इस जीव को अपने आपके स्वरूप का पता नहीं है कि मैं क्या हूँ ? कौन हूँ ? पर ऐसा ही तो मानते है ना सब कि मै इस घर वाला हूँ, मै इतने खेतो वाला हूँ, मैं इतने पुत्रो वाला हूँ, मैं अमुक हूँ, मेरा ऐसा मामला है, मै बड़ा हू, मैं छोटा हू ऐसा ही तो सब लोग मान रहे हैं। पर ये सब ऐसा है क्या? अरे आत्मा क्या कोई जाति मे है ? क्या आत्मा का कोई कुल है ? इसका तो किसी से सम्बन्ध नहीं है। अगर अपने ब्रह्मस्वरूप का पता नही है, इन पर्यायो को ही मान रहे हैं कि यही मैं हूँ तथा भगवान की भक्ति करे, पूजा करे, आरती करे, पर यह पता न रहे कि मेरा भगवान कैसा है, क्या है, वल्कि उल्टा यही रटन लगा रखे कि भगवान है, वही हमे दु खी-सुखी करता, लड़के बच्चे देता, धन दौलत देता यही रटन लगा रखी है। पर भगवान असली है क्या इसका विचार न हुआ तो कुछ जीवन का सार नहीं है। भगवान का ब्रह्मस्वरूप है, सोई ब्रह्मज्ञान है जो आत्मा का स्वरूप है सोई भगवान स्वरूप है।

जैसे रामचन्द्र जी हुए, श्री महावीर जी हुए, ये भगवान क्यों कहलाये आखिर वे भी तो इसी देश मे ही हुए थे। वे भगवान यो हुए कि उन्होने अपना ब्रह्मस्वरूप पहिचाना, जो सब जीवों मे एकस्वरूप

को मानो। वे देवी-देवता भी तो भगवान के ही सेवक है। श्रीराम भगवान का कितना उत्कृष्ट जीवन था। मर्यादा पुरुषोत्तम थे, प्रजा के रक्षक थे। अत मे उन्होने सन्यास मार्ग को बतलाया और खुद त्याग तपस्या करके ब्रह्म मे लीन हुए। प्रभु का ही तो आदेश है कि जीवो पर दया करो। बात तुम्हे चाहे कठिन मालूम पड रही हो , पर किसी समय यह तो ख्याल आता ही होगा कि अकेले ही पैदा हुए और अकेले ही मर जावेगे। तो इन जीवो का हित सोचो, इन जीवो पर दया ही करो। अगर दूसरे जीवो को सताया तो तुम भी सताये जावोगे। सो भैया ! अपना अन्तरमे ज्ञान जगाओ। आत्मज्ञान करके ही तुम्हारा सुधार होगा। हम तो केवल कह रहे है, मानो चाहे न मानो। अभी सवेरा होते ही चले जायेगे।

अभी रास्ते मे एक गाव मिला था। वहा पर सब चमार लोग ही थे। वहा पर सब लोगो ने मास,मदिरा, जीवहत्या इत्यादि सबका त्याग किया। तो भैया! आप लोग भी त्याग दे, इससे कोई फायदा नहीं है। इस बीच बलि करने और मास खाने का त्याग इन लोगो ने किया–

बैजनाथ काछी, रददू काछी, मसल्ती अमान काछी, गोबरे नाई, पचम काछी, हरप्रसाद लौहार, कल्लू काछी।

सो तो मै कह रहा था कि इस ससार मे जीव जो दु ख पा रहे है वे अपने आप मे ज्ञान न होने से ही दु ख पा रहे है। मै कौन हूँ और क्या हूँ– इस बात को समझो और जो ऊपर से समझ रखा कि मै अमुक हू, इतनी पूजी वाला हूँ ये सब झूठी बाते है। हम तो भगवान के स्वरूप है। हममे और भगवान मे फर्क नहीं है। झूठ बोलकर, उल्टा बोलकर, खोटे विचार करके हम सब इतना भगवान से जुदा हो गये कि भगवान तो तिर गये और हम सब जगत् के प्राणी जन्ममरण के चक्कर मे पड़ गए है। अपनी आत्मा को ऐसी समझो कि इसके लिये यही बडी महान् है, परमात्मा से कम नही है। इस मोह मे क्या रखा है ? भीतर मे ऐसा ज्ञान जगाओ कि यह मोह मेरा भला नहीं कर सकता है। तो स्वय मे एक क्रान्ति लावो और ऐसा निश्चय कर डालो कि मेरा मोह पाप ही करेगा, भला नही करेगा, ऐसा मन मे पक्का निश्चय कर लो फिर अपने धर्म पर अटल रहो। कुछ ऐसे भी लोग है जिनके परिवार के लोग भी गुजर गये, और और भी परेशानिया आ रही। मगर अपने धर्म से नहीं हटते। तो बतलावो इसी दुनिया मे कौरव पाडव हुए, इसी दुनिया मे राम राघव इत्यादि प्रभु हुए, रावण आदि भी यहीं हुए, इसी दुनिया मे कृष्ण गोपाल आदि हुए। उनमे से कोई स्वर्ग गया, कोई नरक गया। उनमे से भी कोई यहा नहीं रहा। इस दुनिया मे जितनी भी चीजे है सभी नष्ट हो जावेगी। इस दुनिया मे जो आता है वह जाना अवश्य है। फिर भी बाह्य चीजो को कहते है कि यह मेरी है, यह उसकी है। जो इस प्रकार से मानते है उन्हे पछताना ही पडेगा। जिनके कारण पाप किए जाते है वे कोई साथी नहीं होगे, सब बिछुड जावेगे। नरक का रास्ता उसे ही देखना पडता है जो पाप करता है, सो भैया ! किसी जीव के प्रति यह भावना न करो कि यह दुखी हो। सबको समान मानो, किसी को अपना दुश्मन न समझो। कोई बैरी नहीं है, कोई पराया नही है, किसी को बुरी बात न कहो। मनुष्य का धन तो यह वचन ही

है। वचन से ही पहिचाना जाता है कि यह मनुष्य भला है कि बुरा है। वचनो से ही झगड़ा खड़ा हो जाता है और वचनो से ही मेल हो जाता हे। सारा दारोमदार इन वचनो पर ही तो है। अपनी वाणी अत्यन्त मीठी होनी चाहिए, दूसरो के हित की होनी चाहिए जिससे कोई जीव अप्रसन्न न हो सके। सो जब अपना स्वरूप समझ मे आ जाता है तो ये सब बाते आसान हो जाती हैं। धर्म करना, भक्ति करना, भगवान का ख्याल रखना, दूसरो की सेवा करना इत्यादि सभी बाते आसान हो जाती है। तो जब इस ससार मे कोई नहीं रह जायगा तो अपना यह शरीर दूसरो की सेवा मे लगा दो तो क्या घटता है? जितना भी बन पड़े दूसरो की सेवा करो। दूसरो की सेवा करने से कुछ घटता नहीं है, बल्कि बढ़ता ही है। बढ़ता क्या है कि दूसरे लोग भी इज्जत करने लगते हैं। आलसी न बनो। अगर कोई गिर रहा हो तो उसे ऊचा उठाओ। कोई अगर दु खी है तो उसे दु खी रहने दो, ऐसा न सोचो बल्कि उसे दु ख से बचा लो, उसकी सेवा करो। ये सारी चीजे तो मिट जाने वाली है। इस शरीर को तो जितना ही परसेवा मे लगाओगे उतने ही सबके प्यारे बनोगे। अब की दुनिया मे तो सेवा का ही मूल्य रह गया है। धनी को कोई नही पूछता। सेवा करने वाले ही कोई मिनिस्टर बन गये, कोई नेता बन गये, पर धनी को कोई यहा पद नहीं मिलता है। पद तो सेवा करने से ही मिलता है । धन जोड़ लेने से ही कोई बड़ा नहीं बन जाता, अगर दूसरो की सेवा मे लग गये तो बडे बन गये। बहुत से लोग गरीब थे, फिर भी बहुत बड़े-बड़े ओहदो पर पहुच गए। यह सेवा करनेका ही तो परिणाम है। यह जो शरीर मिला है, विनाशीक है, इसको तो सेवा मे लगाओ। इसी तरह जो भी धन मिला है वह विनाशीक है, उसे भी दूसरो की सेवा मे लगाओ। दूसरो की सेवा मे धन लगाने से धन घट नही जाता है। यदि धन की रक्षा करके यह सोचो कि यह सदा मेरे पास रखा रहे तो यह नहीं हो सकता है। वह धन तो जैसे आता है वैसे ही चला जाता है।

एक सेठ थे। सो ऐसे पापो का उदय आया कि उसका सब धन खत्म हो गया। धन खत्म हो जाने पर उसने अर्जीनवीसी का काम कर लिया। अर्जी वगैरा लिख दिया करता और ८-६ आने अपनी गुजर के लिए कमा लेता। एक दिन वही सेठ अटारी पर से उतर रहा था कि वहा ऐसी आवाज आयी कि मै आऊ। कई दिनो तक फिर ऐसी आवाज आयी कि क्या मैं आऊ? तो उस सेठ ने जाकर सेठानी से यही बात बता दी। सेठानी ने समझ लिया लक्ष्मी कह रही है कि क्या मै आऊ? सेठानी ने कहा कि इस बार अगर कहे तो कह देना कि मत आवो। ऐसा ही सेठ ने कह दिया। अब सेठ सेठानी से बोला कि बहुत साल हो गये गरीबी मे रहते-रहते सो अब कह दे क्या कि अच्छा आवो। सेठानी ने कहा कि अब कह देना कि अच्छा आओ, मगर आकर जाना न हो तो? दूसरे दिन फिर उसी प्रकार की आवाज आयी। बोला—अच्छा, यदि आकर जाना न हो तो आओ। लक्ष्मी ने कहा कि यह तो नहीं हो सकता है एक जगह तो रह नहीं सकती । मै कैसे कह दू कि आ करके जाऊंगी नहीं? यही बात सेठानी से कह दी। सेठानी ने कहा कि कह दो कि अच्छा आवो किन्तु जब जावो तब कहकर जाना, लक्ष्मीने कहा– मन्जूर है लक्ष्मी आ गयी। देखो इस प्रकारसे लक्ष्मी आती है

वहा का राजा गया था परदेश। रानी ने राजा को बुलवाने को पत्र उससे लिखवाया। पत्र लिखवाने मे एक अशर्फी दी। उस अर्जीनवीस ने ऐसा पत्र लिखा कि कोई नहीं लिख सकता। तभी से लक्ष्मी आने लगी। राजा जब परदेश से लौटकर आया तो राजा ने उस लेखक को वजीर बना दिया। मत्री के पास बहुत सा धन आ गया। मत्री १०-२० हडो मे सोना चादी भरता गया और हडो का मुह ताबा व जस्ते से जडकर घर मे गडवा दिये। कुछ दिन बाद मे राजा शिकार खेलने गया, वजीर को भी साथ मे ले गया। दोनो एक पेड के नीचे बैठ गये। वजीर ने राजा को अपनी जाघ पर सिर रखकर लिटा लिया। राजा सो गया। अव देखो स्त्री के रूप मे वह लक्ष्मी आती है, कहती है कि मै जाती हूँ। वजीर ने कहा कि नहीं जा सकती हो, वजीर को गुस्सा आ गया, तलवार खींच ली। अब तो राजा की नीद खुल गयी। वजीर ने सोचा कि अब मैं राजा को क्या जवाब दू कि इस कारण से तलवार खीची। राजा ने जब वजीर के हाथ मे तलवार देखी तो समझ लिया कि मुझे ही मारना चाहता था। उसने वन मे तो कुछ नहीं कहा, चुपचाप दरवार मे पहुचा। अब तो राजा ने आदेश दे दिया कि वजीर को सपरिवार देश से निकाल दो। तो भैया ! देखो धन सव वहीं पड़ा रहा, धन का विश्वास नहीं है। भैया ! देह भी यहीं खाक कर दिया जायगा। सो भैया ! धन को व इस शरीर को दूसरो की सेवा मे लगावो। इससे ही प्रसन्नता रहेगी। अपने हृदय में प्रभु की भक्ति रखो और इस जगत के जीवो पर दया करो तो क्लेश नहीं रहेंगे।

निंद्ये देहेप्युषित्वात्मसिद्धि शक्या वसन्नपि।
विरज्य देहतस्तस्मात् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।३-२७।।

अर्थ– इस निंद्य देह में भी वसकर आत्मा की सिद्धि हो सकने योग्य है इसलिये शरीर में रहता हुआ भी शरीर मे विरक्त होकर मे अपने में अपने आप अपने लिये सुखी होऊं।

यह शरीर निन्दनीय है, निन्दा के योग्य है, इस शरीर मे कुछ सार तो नहीं है। ऊपर से अन्दर तक कितनी खराब चीजे इस शरीर मे भरी हुई है। नाक, मल, मूत्र, खून, हड्डी इत्यादि सब खराब ही खराब चीजे इस शरीर के अन्दर भरी हुई है। फिर भी इस शरीर से लोग कितना मोह करते है। अरे अपने आत्मा मे दृष्टि करो तो कुछ कल्याण हो सकता है। अपनी दृष्टि बाहर मे रखने से अपने भीतर के ज्ञानस्वरूप का अनुभव नहीं किया जा सकता है। यदि बाहर की समस्त चीजो को छोड़कर अपने अपके शुद्ध ज्ञानस्वरूप का अनुभव किया तो अपने ज्ञानस्वरूप की खबर रहेगी। अपने आप मे दृष्टि देकर ही आत्मा को शुद्ध किया जा सकता है। जीव मे सबसे बड़ा सकट मोह का है। कोई लेना नहीं, देना नहीं, सब जुदे है फिर स्त्री पुत्र वगैरह मे मोह लगाये हुए है। यही इस जीव का सबसे बड़ा मोह है। कोई घर का पुत्र गुजर गया तो कहते कि घर का दीपक बुझ गया। घर का शिखर चला गया। इस प्रकार से ये मोह करते और दुःखी होते है। अरे ये जो आये है क्या सदा रहेगे ? यहा कोई नहीं रहेगे सब जग से चले जायेगे केवल अपना जो ज्ञानस्वरूप है वही साथ मे रह जायगा और पाप का सस्कार भी पीछे जायेगा। देखो कोरी लोग जो कपड़ा बुनते है, वे भी अन्त मे ४ अगुल छोरा बुनते

से छोड़ देते हैं, किन्तु यहा तो मनुष्य मरते समय तक भी मोह नहीं छोड़ता। भैया! जगत के मोही प्राणी कुछ छोड़ना नहीं चाहते है, पर उन्हे मरते समय तो सब छोड़कर जाना ही पड़ेगा। आखिर छोड़ने तो सब पड़ते ही है, पर हम अपने मन से छोड़े तो लाभ है। इसलिए कहते हैं कि विषयो के मोह मे प्रवाह न हो। शरीर मे मोह करना, अज्ञान करना यह सब अन्धकार है। यदि इस देह मे ही आसक्ति रही दूसरो की सेवा न कर सके तो सब कुछ होते हुए भी यह मनुष्यभव पाना व्यर्थ है। भैया! अब अशात न रहो, अपने ज्ञानस्वरूप को देखो, स्वाध्याय कर लो, व्रत कर लो, तप कर लो, पर इस देह मे आसक्ति हुई तो कुछ भी पुण्य न होगा। पर मे आसक्त होने से कुछ नहीं मिलेगा। इस मोह ममता को छोड दो यही सबसे बड़ा तप है। इस देह मे बसकर भी इससे प्रीति न करो। सब दु खो की जड़ तो यह शरीर ही है। अरे अपने उस आत्मस्वरूप का अनुभव करो। वह आत्मा तो आकाश की तरह अमूर्त निर्लेप है, इसमे दु ख कहा से आ सकते है? अरे अनुराग करो तो उस आत्मा से करो, शरीर से क्यो मोह करते हो? यह शरीर ही तो विपदा की जड़ है। यह शरीर तो मिट जाने वाली चीज है। किसी दिन यह जला दिया जायगा, जला देने से वह खाक हो जायगा। आत्मा तो आकाश की तरह निर्लेप है। आत्मा अमूर्त है, कोई पकड़ने वाली चीज नहीं है यह आत्मा। इस आत्मा मे रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि भी नहीं है। यह आत्मा प्रकाशवान है, ज्ञान स्वभाव है, इसके अतिरिक्त और कुछ इस आत्मा मे नहीं नजर आता है। सब माया है इस जगत मे जो दिखता है। परमार्थ से तो यदि अन्तर्दृष्टि देकर अपना स्वरूप ही ज्ञान मे आये तो अपने आत्मा का सही अनुभव हो सकता है। जो कुछ भी इस जगत मे अनुभव मे आ रहा है वह सब माया जाल से हटकर मै अपने आत्मस्वरूप को देखू और अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

मनोवाक्कायिकी चेष्टेच्छातो दु ख ततस्तत ।
हत्वेच्छा प्रज्ञया भित्वा स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-२८।।

अर्थ– इच्छा से मन वचन काय सम्बन्धिनी चेष्टा होती है और उस चेष्टा से दु ख होता है इसलिए भेदविज्ञान के द्वारा चेष्टा से व इच्छा से अपने को पृथक् करके–इच्छा को नष्ट करके मैं अपनेमें अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

ने इसे नहीं फॉसा है, इन गेहूँ, चावल के दानो ने इसे फॉस लिया है। चौथा बोला कि इन चावलो और गेहूँ के दानो ने भी इसे नहीं फास लिया है उस कबूतर ने तृष्णा के कारण स्वय अपने को फास लिया है। तो भैया यह तो कथानक रहा, पर इस जगत मे कोई किसी को दु ख दे ही नहीं सकता है। सब शुद्ध है, परमात्मास्वरूप है पर अपने आपमे ख्याल बनाकर कल्पनाये करके दु.खी हो जाते है, फस जाते हैं। भैया ! इन ख्यालो को मिटाओ तो सारे सकट दूर होगे। ये बच्चे लोग कहानी कहा करते है कि स्यार स्यारनी थे, स्यारनी गर्भिणी थी। बच्चा जनने के लिये वे एक शेर की गुफा मे रहते थे। कई बच्चे भी हो गये थे। स्यार ने स्यारनी को सिखा दिया कि जब कोई शेर की परेशानी हो तो बच्चो को रुला देना। जब कभी शेर आता तो स्यारनी बच्चो को रुला देती। स्यार पूछता कि बच्चे क्यो रोते है ? स्यारनी बोलती कि बच्चे शेर का मास खाना चाहते है। इस तरह से शेर भाग जाता । जगल के अनेक शेरो ने सभा की, सबने सोचा कि ऊपर भींत पर जो बैठा है उसी की सारी करतूत है, उसे मारना चाहिए। सभी शेर आ गये। उनमे एक लगड़ा शेर भी था। तय हुआ कि लगड़ा शेर तो ऊपर चढ़ नहीं पायेगा, इसलिए नीचे रखो। एक के ऊपर एक सब चढ़ गये। स्यारनी ने झट बच्चो को रुला दिया। स्यार पूछता है कि बच्चे क्यों रोते है ? सो स्यारनी बोली कि बच्चे लगड़े शेर का मास खाना चाहते है। लगड़ा शेर खिसका सो सब गिर गये। ऐसे ही सकटो का मूल मोह मिटे कि सब सकट नष्ट हो जाते है।

इस तरह सब सकट टलेगे और शान्ति मिलेगी तो भैया यह अपना ज्ञान जगाओ। तुम स्वय ज्ञानस्वरूप हो, बाहर मे इच्छाये न करो तो अपने आप सुखी हो सकते हो। लोक मे जितने भी जीव है, उन सबकी माग है कि आनन्द मिलता रहे, शान्ति मिलती रहे और जितने भी जीव जो प्रयत्न परिणमन करते है वह इसलिए कि आनन्द प्राप्त हो। यहा तक कि अगर कोई किसी से लड़े, झगड़े भी तो उस लड़ने झगड़ने वाले का लक्ष्य यह है कि आनन्द उसे मिले और यहा तक कि कोई तेज कषायो के वशीभूत होकर आत्महत्या भी करने का यत्न करे तो वहा भी उसका लक्ष्य है कि आनन्द मिले और जो धर्म कार्य करते है, व्रत करते हैं और तपस्या करते है, वे भी इसलिए करते है कि उन्हे आनन्द प्राप्त हो। यह सब जीवो का लक्ष्य है कि उन्हे आनन्द मिले। परिणमन बहुत कर डाले, राज्य कर लिया, आरभ कर लिया, परिग्रह कर लिया, स्नेह कर लिया फिर भी कहते है कि हमे शान्ति नहीं मिली। इसका कारण यह है कि शान्ति पाने का उपाय है आकुलताये न बनाना। परन्तु अशान्ति के उपाय को करके यह मोही मान रहा कि हम शान्ति के उपाय को कर रहे हैं। शान्ति का उपाय क्या है ? उपाय जो है सो है, पर यह तो जानना चाहिए कि शान्ति चाहने वाला यह भी भीतर मे है कौन? जो शांन्ति चाहता है वह है क्या चीज ? इसका उत्तर बडा कठिन है और बड़ा सरल है। जब हम बाहर देखा करे तो उत्तर देना बड़ा कठिन है और जब बाहरी चीजो को त्यागकर अन्तर की ओर रहे, अपने आत्मस्वरूप मे विश्राम करके रहे तो उत्तर देना बड़ा सरल है। प्रयोजन यह है कि अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव न किया तो कुछ नही किया। यदि अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव हो जाय तो शान्ति प्राप्त हो जाय। यह मै क्या हूँ ? जिसके जानने पर फिर अशान्ति न रहे। वह मैं क्या हूँ ? उसका उपयोग किसी इन्द्रिय द्वारा नहीं लगता। मन से भी जब

तक काम लूगा तब तक भी अनुभव न कर पाऊगा। जो इन्द्रिय मन द्वारा अगम्य है, चित् है, वह मैं हूँ। इस मुझमे न रूप है, न रस है, न गध है न स्पर्श है, यह मेरी आत्मा तो ज्ञानरूप ही नजर आती है। मेरे मे ज्ञान और आनन्द भरा है। ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण यह मै आत्मा हूँ।

ऐसा उपयोग हो तो अहकार मिट जाता है। भिन्न-भिन्न चीजे मै नही हूँ। यदि हम अहकार करते हैं और अहकार मे ही प्रवृत्ति रखते है तो शान्ति नहीं मिलती है। शान्ति के लिए तो परपदार्थो मे अहकार न करो। शान्ति प्राप्त करने के लिए तो शुद्ध ज्ञान करना होगा। जैसी जो चीज है उसे वैसा जान लेने से ही आकुलताये समाप्त हो जाती है। ये समस्त जगत की चीजे विनाशीक है, सब नष्ट हो जाने वाली हैं। अपने घर मे ऐसी जो चीजे मिली है सब नष्ट हो जाने वाली है। जिसका समागम है उसका वियोग भी जरूर होगा। जिसका सयोग है उसका वियोग जरूर होगा। आप जरूर जानते रहे कि जहा सयोग है नियम से वियोग जरूर होगा। सयोग मे भी अशान्ति है और वियोग मे भी अशान्ति है। जो मनुष्य २४ घटे मोह मे राग मे पड़ा रहता है उसको आर्जीवन अशान्ति ही रहती है। दो महीने पहले से अगर किसी व्यक्ति को हम जानते है कि यह बीमारी असाध्य हे इसकी तो मृत्यु ही होगी और जब वह मर जाता है तो उसके मर जाने पर ज्यादा दु ख नही उत्पन्न होता है। आप तो पहिले से ही जानते थे कि वह गुजर जायगा, इसलिए ज्यादा दु'ख नहीं होता है। इसी प्रकार इस असार जगत मे हम यथार्थता को जान जाये कि ये समस्त चीजे भिन्न है, जुदा चीजे है, भीतर मे ऐसा उपयोग बने तब शान्ति मिलती है, नही तो शान्ति नही मिलती है। जो जैसी चीज है उसे वैसा मानना यही धर्म है।

अभी देखो बहुत से लोगो को जरा-जरासी बातो मे गुस्सा आ जाता है। बच्चे ने कुछ कह दिया, बच्चे ने मेरा कहना नही माना इसी से गुस्सा आ गया। कुछ कहना चाहते हैं कहते है और वह वैसा नही कर सका तो गुस्सा आ गया। उसके ऐसी बात पैदा हो गयी बस वह दु खी हो गया। क्यो दु खी हो गया ? इसलिए कि उसने कहना नहीं माना। भैया ! क्यो दु ख मानते हो ये जीव सब स्वतन्त्र हैं, अपने विचार के अनुसार चलते है, अपने ही परिणमन से चलते हैं तुम वस्तुस्वरूप के विरुद्ध भाव क्यो बनाते हो ? इनकी जुदी-जुदी सत्ता है और ये समझ रहे है कि मै इनमे मिल गया हूँ तो जो चाहूँ सो होना चाहिए। ऐसी बात को मान रखा है। यदि ऐसी बात नही होती तो ये दु खी हो जाते हैं । जो जैसा है उसे वैसा मानने से ही दु ख है।

देखकर स्त्री कुछ तो कहेगी। स्त्री को तब पीट लूगा। पर स्त्री ने ऐसा मौका नहीं आने दिया। उसने समझ लिया कि आज पीटने के डोल-डाल मे है। वह बेवकूफ न थी, बोली, चाहे सीधा जोतो चाहे टेढ़ा, इससे मुझे क्या मतलब, मेरा तो काम केवल खाना देने का है यह कहकर खाना देकर चली गयी।

किसान देखता ही रह गया। वह अब भी न पीट सका। तो भैया! यहा कोई किसी को दु खी नही करता। ये जीव खुद ही ख्याल बनाकर दु खी होते है। अगर वे अपना ख्याल बनाना छोड़ दे, और अपना सच्चा ज्ञान कर ले तो सुखी हो जायेगे। शान्ति का कारण क्या है ? जो चीज जैसी है उसे वैसा ही मानना शान्ति का कारण है। घर के ये जो जीव है वे आपके नहीं हैं। कोई बतला दे ये स्त्री पुत्र आदि मेरे है। कोई युक्ति बतला दे कि ये मेरे ही है। अरे वे सब जुदा-जुदा हैं, भाग्य जुदा-जुदा है। उनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। वे अकेले ही आये हैं और अकेले ही चले जावेगे। सच तो यह है कि इस आत्मा का दूसरा कोई नहीं है। इस आत्मा का तो आनन्द ही स्वरूप है। यथार्थ बात तो यह है कि भीतर मे ऐसा ख्याल बने कि मै आत्मा आनन्दस्वरूप हू, मेरा स्वरूप ही आनन्दमय है, मेरा स्वरूप ही सारा वैभव है, ऐसा विचार बने तो यही शान्ति का मार्ग है। यदि ऐसा विचार नहीं बनता है तो यही अशान्ति का कारण है। मोह करते है और चाहे कि शान्ति हो जाय तो शान्ति नहीं हो सकती है। मोह गृहस्थी का छूट नही सकता क्या ? मोह छूटता है और राग रहता है। मोह और राग मे अन्तर है। मोह तो अज्ञान से सम्बन्ध रखता है और राग प्रीतिपरिणाम के मायने है। ज्ञान होते ही मोह मिट जाता है। ज्ञान को लक्ष्य मे लेकर यह मै हूँ, यह मेरा स्वरूप है, ऐसा यदि भाव लिए रहे तो इसे ही यथार्थज्ञान कहते हैं। राग करना तो राग है और राग मे राग करना मोह है।

जैसे एक रईस पुरुष बीमार पड गया तो उसे कैसा-कैसा आराम देते है। सजा हुआ कमरा, सुन्दर पलग-कोमल गद्दा। जो कोई आते है अच्छी तरह से लोग उससे बोलते हैं। किस प्रकार उनसे बात कहे जिससे इनका मन बहले, ऐसा सोचकर लोग अनेको यत्न करते है, मन को बहलाते है। ऊपर से देखा होगा, कितना आराम रहता है। रईस के पास औषधि भी रखी है। यदि उनके पास सुन्दर गद्दा न हो तो वे आराम से सो नहीं सकते हैं, देखने मे यह मालूम होता है कि रोगी यह आराम चाहता है पर आराम को नहीं चाहता। अगर इनसे पूछा जाय तो कहेगे कि बीमारी हटे, हमे दवा नहीं चाहिए, यह आराम नहीं चाहिए मैं तो चलना-फिरना चाहता हूँ। उसे आराम मे राग नहीं है। गृहस्थ भी केवल मोह से, राग से दु खी है। गृहस्थी मोह करते हैं, घर के बच्चो का पालन-पोषण करते हैं, अनेक विषयो की बाते आती हैं। किन्तु ज्ञानी गृहस्थ इनमे फसकर भी अन्तर मे इन्हे नहीं चाहता है। ये रागद्वेष बने रहते हैं, इसी से मेरे मे अशान्ति रहती है, इसका स्पष्ट विश्वास रहता है। जैसी जो बात है वैसी न समझना बस इसी मे अशान्ति है। अब देखिये यह देह मेरी चीज है क्या ? यह देह अगर मेरी होती तो मरने पर मेरे साथ जाती कि न जाती। जहा २०-४०-६०-७० वर्ष हुए यह शरीर छूट जाता है और जला दिया जाता है। शरीर मेरी चीज नहीं। मै तो ज्ञानरूप हूँ, यह शरीर तो जड़ रूप है। यह मेरा नहीं है। यदि मै मान लू कि यह शरीर मेरा है तो अशान्ति का कारण है। किसी ने गाली दी, गाली बहुत खराब लग

गयी, क्यो खराब लग गयी ? देह को माना कि मै हूँ, और इसने मुझे गाली दी। जब देह को मानू कि मै हूँ तो देह मे अइकार किया, तभी तो दु ख महसूस किया। तो जितना दु ख होता है वह सब अज्ञान का होता है। ज्ञान को बढ़ाने की कोशिश करना है, मिटाने की कोशिश नहीं करना है। सब चीजे स्वतन्त्र है, अलग है, भिन्न है, उनको कैसे मानू कि मेरी है? उन पदार्थो मे मोह ममता करने से ही अशान्ति हो जाती है। यदि इस मोह ममता को त्याग दिया जाय तो अशान्ति दूर हो जायगी तो भीतर से इस अशान्ति को मिटाना चाहिए और उसको मिटाकर नीति मे आना चाहिए। जो अपने प्रतिकूल है दूसरो के प्रति भी वह न करो। अपने को अगर कोई बुरा कहता है तो बुरा लगता है तो तुम भी बुरा न कहो। हम अगर किसी को झूठ कहे तो बुरा लगता है अत तुम भी किसी को झूठ न कहो। तुम्हारी मां-बहिन को बुरी दृष्टि से कोई देखे तो बुरा लगता है तो तुम भी किसी की मा-बहिन को बुरी दृष्टि से न देखो। हमे किसी भी प्रकार से किसी को धोखा नहीं देना चाहिए। विषयो मे तृष्णा करना यही विपदा है।

एक लकड़हारा था। ऐसी ही सभा थी, ५ पापो के त्याग का उपदेश था– (१) हिसा,(२) झूठ, (३) चोरी, (४) कुशील, (५) परिग्रह। ये पाप है। किसी को न सतावो, झूठ न बोलो, चोरी न करो, किसी भी स्त्री को बुरी दृष्टि से न देखो, ब्रह्मचर्य से रहो।

उस लकड़हारे ने यह सुनकर सोचा कि मै हिसा तो नहीं करता। हा हिसा केवल करता हूँ तो जगल मे गीली लकड़ी काटता हू, अच्छा अब मैं सूखी ही लकड़ी काटूगा। झूठ तो मै बोलता नही। केवल भाव मे १० आने, ६ आने, ८ आने बोलता हू। अच्छा मै ८।। आने की लकड़ी बेचूगा और एक ही ।।) की बात बोलूगा। चोरी तो मै करता नहीं, हा केवल २ पैसे चुगी मे बचा लेता हूँ, तो अब मै नहीं बचाऊगा। अणु ब्रह्मचर्य से रहता ही हूँ, किसी दूसरे की स्त्री पर बुरी दृष्टि नहीं डालता । अच्छा अब मै सदा पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करूगा। अपनी स्त्री से भी ब्रह्मचर्य का पालन रखूगा। परिग्रह की बात यह है कि रोज आठ आने कमाऊगा। २ आने धर्म के लिए, २ आने आफत से बचने के लिए और ४ आने मे गुजर बसर करूंगा। अब वह जंगल से सूखी लकड़ी लाए और उनको बेचकर गुजर बसर करे। एक दिन वह लकडहारा एक सेठ की हवेली के नीचे से निकला। सेठ के यहा रसोई मे लकड़ियो की जरूरत थी। रसोईया घर से निकला, बोला– कितने दाम लोगे ? बोला– ८ आने। तो रसोइया बोला –५ आने लोगे, नही ८ आने, ६ आने लोगे ? नही। चल दिया। कुछ दूर गया, नौकर बोला अच्छा, अच्छा लौट आवो। लौट आया। बोला–७ आने लोगे, ७।। आने लोगे। लकड़हारे ने गुस्से मे आकर कहा – किस बेईमान का तू नौकर है ? सेठजी सुन रहे थे कि हमको बेईमान कहता है। सेठ ने पूछा कि हमको बेईमान क्यो कहता है ? तब उसने कथा सुनायी। बताया मैंने ५ पापो का व्याख्यान सुना, इसलिए इस तरह से रहता हूँ। मैने जो बेईमान कहा सो इसलिए कि जो जिसके सग मे रहता है वह वैसा ही हो जाता है। मुझे बुलाया कि अच्छा-अच्छा लौट आवो। इसका अर्थ यही हुआ न कि ८ आने मे मजूर है। फिर कहता कि ७ आने लोगे, ७।। आने लोगे। सेठ ने सोचा कि मैं भी व्याख्यान मे जाता था, पर कुछ न किया। यही सोचकर उसने लकड़हारे का सम्मान किया और बोला– तुम देवता हो,

देवता के माने यह कि जिसका हृदय शुद्ध हो गया, किसी से विरोध नही है, समान भाव से रहता है, वही देवता है। वह सेठ उस लकड़हारे को काफी दूर तक छोड़ने भी आया। वहा पर यह बतलाया कि जितने भी जीव है सब जीवो को समान दृष्टि से देखो तब ज्ञान मे प्रगति होती है। जैसे कहते है कि सब मे भगवान है। सब जीवो मे दया का भाव लावो, किसी भी जीव को तुम शुद्ध चैतन्यस्वरूप की दृष्टि से देखो। जो गड़बड़ हो गया है, पर्याय मे रहता है, जो जन्म-मरण के चक्कर मे रहता है, किसी तरह की अटपट करतूत करता है ये सब भ्रमवश विपत्तियो की बाते है। ये सब जीव प्रभु के जैसा स्वरूप वाले है। उन सब जीवो का लक्षण शुद्ध चैतन्यस्वरूप है और जितने भी ये नृत्य है वे सब उपाधि की वजह से है। इसलिए पेड़, पत्ती , पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सबमे देखो वही शुद्ध चैतन्यस्वरूप समाया हुआ है। यदि अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप देखने मे आ जाय तो उसी को कहते हैं है सही ज्ञान। सबमे समानता का भाव अविरोधका भाव जागृत हो, उसी मे देवता का निवास है। यह तो लोक प्रतिष्ठा की बात नहीं, यह ज्ञान के आश्रित की बात है। अपने आपको अपने आप मे मोड़ लो तो समझो कि सब कुछ वैभव पाया। यदि यह न हो सका, बाहर मे ही भटकते रहे तो ज्यो थे त्यो ही रह जावोगे। बाहर मे कितना ही अनुभव कर लो कोई तुम्हारी चीज नही है। आत्मस्वरूप की रुचि होना चाहिए। वाह्य समागमो की भीतर मे रुचि न होना चाहिए। अपने आपके हित की बाते न की तो आनन्द नही रहेगा।

एक बाबू साहब कलकत्ता जा रहे थे। एक स्त्री बोली– हमारे मुन्ना को एक खिलौना ले आना, स्त्री ने यही कहा। इसी प्रकार से ३-४-१० स्त्रियो ने यही कहा। एक बुढ़िया आयी। कहा– बाबूजी २ पैसे लो, हमारे मुन्ना को एक मिट्टी का खिलौना ले आना। बाबूजी कहते है कि बुढ़िया मा, मुन्नों तेरा ही खिलौना खेलेगा। ५-७ स्त्रिया आयीं, किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ पर यों ही हवाई बाते उड़ाती रहीं, नकद तो तुमने ही दिया। इसी तरह ज्ञान को बना लो, उसमे ही आनन्द मिलेगा। यदि ज्ञान न बना सके तो आनन्द न मिलेगा। वाह्यपदार्थो मे कितना ही भटक लो पर ज्ञान के सिवाय किसी मे आनन्द न रहेगा। भोजन करते है तो उसके स्वाद से आनन्द नही मिलता है। आनन्द भोजन करने वाली चीज से नहीं मिलता है। उस चीज के प्रति ज्ञान बना लेने से आनन्द मिलता है।

जैसे कोई भोजन करता हो, सुख मानता हो तो भोजन करने से आनन्द नही आता। उस भोजन के प्रति ज्ञान करने से आनन्द आता है। परमार्थ मे तो कल्पनाओ से भी आनन्द नहीं मिलता है। जो शुद्ध दृष्टि है, वह आनन्द की जननी है। वह ज्ञान से ही रहती है । ज्ञान मे ही आनन्द है, नही तो वडे-वड़े महापुरुप ६ खण्ड की विभूति को त्यागकर जगल मे क्यो चक्कर काटते ? इसलिए एक ही निर्णय करो, अपने आपको देखो तो शान्ति मिलेगी, सच्चे ज्ञान सें ही आनन्द होगा। सच्चा ज्ञान अपने स्वरूप मे है।

मास, मदिरा एव वलि देने का त्याग मुकुन्दी लाल हरिजन, पल्टूलाल हरिजन, गोविन्दे हरिजन, पन्नालाल जी यादव ने किया।

शुभः कषायमान्द्येनाऽशुभस्तीव्रकषायत.।
अकषायेन शं नित्यं स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-२६।।

अर्थ– कषाय की मन्दता से शुभ प्रवर्तन अथवा शुभबन्ध होता है और तीव्र कषाय से अशुभ प्रवर्तन अथवा अशुभबन्ध होता है और अकषाय भाव से आत्मा के निज सहज सुख विलास को प्राप्त होता है इसलिये कषाय रहित होकर मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हैं। क्रोध गुस्से को कहते है, मान घमड को कहते हैं, माया छल-कपट आदि को कहते है और लोभ तृष्णा को कहते है। ये ४ तरह के कषाय हैं, जो इस ससारी जीव मे पाये जाते है। यह अन्दाज कर लो, क्रोध करना सब जानते है, घमंड भी सब करते है, छल-कपट भी क्षण-क्षण मे करते हैं। किसी मे कम कषाय हो, किसी मे ज्यादा कषाय हो, पर ससार मे रहने वाले हम और आप सभी जीवो मे ये ४ कषाय है। ये चारो कषाय जब अनन्तानुबधी होते हैं तो स्वय गुस्सा अधिक तेज होता है, घमड अधिक होता है, छल-कपट भी तीव्र होता है, लोभ की मात्रा भी बढ़ी हुई होती है तब उपयोग अशुभ होता है, खोटा होता है और इस तेज कषाय का क्या काम होता है ? गुस्सा हो तो लड़ाई करना, दूसरो को दबाना, मारना, पीटना तथा और-और भी बातें होती है ना। जब घमड अधिक होता है तो दूसरो को नीचा दिखाना, आप ऊचा बनने की कोशिश करना तथा ज्ञान न आना, ये सब बाते होने लगती है।

जब छल कपट होता है तो किसी का ऐसे ही दिल दु खे, किसी का काम बिगड़े इसकी परवाह ही नहीं होती, बस, अपना काम बन जाय, ऐसे खुदगर्जी बन जाती है। मोह मे भी यह बात होती है तो ये तो सब खोटे उपयोग है, अशुभ उपयोग हैं। कषाय की तीव्रता से अशुभ उपयोग होता है। इस अशुभ उपयोग का फल सकट दुर्गति ही होता है। ये सब जो दीन-दु खी असज्ञी आदि प्राणी हैं, अशुभ उपयोग करने के फल है। जब ये कषाय मद होते हैं तो कषायो से कुछ प्रवृत्ति हटती है। भगवान् की भक्ति करना, सयम करना, उपकार करना, दयाभाव रखना, दूसरो की सेवा करना ये सब कषाय मदता मे होते है। कषाय की मदता मे होने वाली इन प्रवृत्तियो को शुभ उपयोग कहते हैं। कषाय जब तक हैं तब तक फल मे इस प्रकार का विकार होता है। शुभ उपयोग भी विकार है और अशुभ उपयोग भी विकार। अशुभ परिणाम मे विशिष्टता रहती है और शुभपरिणाम मे सक्षिप्तता रहती है।

आपके शुभोपयोग का फल है देव बनना, सुमानुष बनना सो शुभोपयोग के फल मे हुआ क्या? देव आदि भी तो ससार मे ही है। कषाय का फल है भगवान् से न मिलने देना, पर जब अपने स्वभाव मे दृष्टि जाय तो भगवान् से भेट हो। स्वभाव से ही आत्मा का काम कषाय करना नहीं है। जीव किसी दूसरे का निमित्त पाकर कषाय करता है । किसी दूसरे का निमित्त पाये बिना कषाय नहीं करता है। यह आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञानस्वरूप स्वय ज्ञानस्वरूप है। उसे कषाय रहित कह लो चाहे कषाय रहित स्वभाव कह लो तो उससे इस तरह बुद्धि जगेगी कि आत्मा मे कषाय थी और अब नहीं है, सो

देवता के माने यह कि जिसका हृदय शुद्ध हो गया, किसी से विरोध नही है, समान भाव से रहता है, वही देवता है। वह सेठ उस लकड़हारे को काफी दूर तक छोड़ने भी आया। वहा पर यह बतलाया कि जितने भी जीव है सब जीवो को समान दृष्टि से देखो तब ज्ञान मे प्रगति होती है। जैसे कहते है कि सब मे भगवान है। सब जीवो मे दया का भाव लावो, किसी भी जीव को तुम शुद्ध चैतन्यस्वरूप की दृष्टि से देखो। जो गड़बड़ हो गया है, पर्याय मे रहता है, जो जन्म-मरण के चक्कर मे रहता है, किसी तरह की अटपट करतूत करता है ये सब भ्रमवश विपत्तियो की बाते है। ये सब जीव प्रभु के जैसा स्वरूप वाले है। उन सब जीवो का लक्षण शुद्ध चैतन्यस्वरूप है और जितने भी ये नृत्य है वे सब उपाधि की वजह से है। इसलिए पेड़, पत्ती , पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सबमे देखो वही शुद्ध चैतन्यस्वरूप समाया हुआ है। यदि अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप देखने मे आ जाय तो उसी को कहते हैं है सही ज्ञान। सबमे समानता का भाव अविरोधका भाव जागृत हो, उसी मे देवता का निवास है। यह तो लोक प्रतिष्ठा की बात नहीं, यह ज्ञान के आश्रित की बात है। अपने आपको अपने आप मे मोड़ लो तो समझो कि सब कुछ वैभव पाया। यदि यह न हो सका, बाहर मे ही भटकते रहे तो ज्यो थे त्यो ही रह जावोगे। बाहर मे कितना ही अनुभव कर लो कोई तुम्हारी चीज नही है। आत्मस्वरूप की रुचि होना चाहिए। वाह्य समागमो की भीतर मे रुचि न होना चाहिए। अपने आपके हित की बाते न की तो आनन्द नही रहेगा।

एक बाबू साहब कलकत्ता जा रहे थे। एक स्त्री बोली— हमारे मुन्ना को एक खिलौना ले आना, स्त्री ने यही कहा। इसी प्रकार से ३-४-१० स्त्रियो ने यही कहा। एक बुढ़िया आयी। कहा— बाबूजी २ पैसे लो, हमारे मुन्ना को एक मिट्टी का खिलौना ले आना। बाबूजी कहते है कि बुढ़िया मा, मुन्नो तेरा ही खिलौना खेलेगा। ५-७ स्त्रिया आयीं, किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ पर यों ही हवाई बाते उडाती रहीं, नकद तो तुमने ही दिया। इसी तरह ज्ञान को बना लो, उसमे ही आनन्द मिलेगा। यदि ज्ञान न बना सके तो आनन्द न मिलेगा। वाह्यपदार्थो मे कितना ही भटक लो पर ज्ञान के सिवाय किसी मे आनन्द न रहेगा। भोजन करते है तो उसके स्वाद से आनन्द नही मिलता है। आनन्द भोजन करने वाली चीज से नहीं मिलता है। उस चीज के प्रति ज्ञान बना लेने से आनन्द मिलता है।

जैसे कोई भोजन करता हो, सुख मानता हो तो भोजन करने से आनन्द नहीं आता। उस भोजन के प्रति ज्ञान करने से आनन्द आता है। परमार्थ मे तो कल्पनाओ से भी आनन्द नही मिलता है। जो शुद्ध दृष्टि है, वह आनन्द की जननी है। वह ज्ञान से ही रहती है । ज्ञान मे ही आनन्द है, नही तो वडे-वड़े महापुरुप ६ खण्ड की विभूति को त्यागकर जगल मे क्यो चक्कर काटते ? इसलिए एक ही निर्णय करो, अपने आपको देखो तो शान्ति मिलेगी, सच्चे ज्ञान से ही आनन्द होगा। सच्चा ज्ञान अपने स्वरूप मे है।

मास, मदिरा एव बलि देने का त्याग मुकुन्दी लाल हरिजन, पल्टूलाल हरिजन, गोविन्दे हरिजन, पन्नालाल जी यादव ने किया।

शुभः कषायमान्द्येनाऽशुभस्तीव्रकषायत.।
अकषायेन शं नित्यं स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।3-26।।

अर्थ– कषाय की मन्दता से शुभ प्रवर्तन अथवा शुभबन्ध होता है और तीव्र कषाय से अशुभ प्रवर्तन अथवा अशुभबन्ध होता है और अकषाय भाव से आत्मा के निज सहज सुख विलास को प्राप्त होता है इसलिये कषाय रहित होकर मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय हैं। क्रोध गुस्से को कहते है, मान घमड को कहते हैं, माया छल-कपट आदि को कहते है और लोभ तृष्णा को कहते है। ये ४ तरह के कषाय हैं, जो इस ससारी जीव मे पाये जाते हैं। यह अन्दाज कर लो, क्रोध करना सब जानते हैं, घमंड भी सब करते है, छल-कपट भी क्षण-क्षण मे करते हैं। किसी मे कम कषाय हो, किसी मे ज्यादा कषाय हो, पर ससार मे रहने वाले हम और आप सभी जीवो मे ये ४ कषाय है। ये चारो कषाय जब अनन्तानुबधी होते हैं तो स्वय गुस्सा अधिक तेज होता है, घमड अधिक होता है, छल-कपट भी तीव्र होता है, लोभ की मात्रा भी बढ़ी हुई होती है तब उपयोग अशुभ होता है, खोटा होता है और इस तेज कषाय का क्या काम होता है ? गुस्सा हो तो लड़ाई करना, दूसरो को दबाना, मारना, पीटना तथा और-और भी बातें होती है ना। जब घमड अधिक होता है तो दूसरो को नीचा दिखाना, आप ऊचा बनने की कोशिश करना तथा ज्ञान न आना, ये सब बाते होने लगती है।

जब छल कपट होता है तो किसी का ऐसे ही दिल दु खे, किसी का काम विगड़े इसकी परवाह ही नहीं होती, बस, अपना काम बन जाय, ऐसे खुदगर्जी बन जाती है। मोह मे भी यह बात होती है तो ये तो सब खोटे उपयोग है, अशुभ उपयोग हैं। कषाय की तीव्रता से अशुभ उपयोग होता है। इस अशुभ उपयोग का फल सकट दुर्गति ही होता है। ये सब जो दीन-दु खी असज्ञी आदि प्राणी हैं, अशुभ उपयोग करने के फल है। जब ये कषाय मद होते हैं तो कषायो से कुछ प्रवृत्ति हटती है। भगवान् की भक्ति करना, सयम करना, उपकार करना, दयाभाव रखना, दूसरो की सेवा करना ये सब कपाय मदता मे होते है। कषाय की मदता मे होने वाली इन प्रवृत्तियो को शुभ उपयोग कहते हैं। कपाय जव तक है तब तक फल मे इस प्रकार का विकार होता है। शुभ उपयोग भी विकार है और अशुभ उपयोग भी विकार। अशुभ परिणाम मे विशिष्टता रहती है और शुभपरिणाम मे सक्षिप्तता रहती है।

आपके शुभोपयोग का फल है देव बनना, सुमानुष बनना सो शुभोपयोग के फल मे हुआ क्या? देव आदि भी तो ससार मे ही है। कषाय का फल है भगवान् से न मिलने देना, पर जव अपने स्वभाव मे दृष्टि जाय तो भगवान् से भेट हो। स्वभाव से ही आत्मा का काम कषाय करना नहीं है। जीव किसी दूसरे का निमित्त पाकर कषाय करता है । किसी दूसरे का निमित्त पाये बिना कषाय नहीं करता है। यह आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञानस्वरूप स्वय ज्ञानस्वरूप है। उसे कषाय रहित कह लो चाहे कषाय रहित स्वभाव कह लो तो उससे इस तरह बुद्धि जगेगी कि आत्मा मे कषाय थी और अब नहीं है, सो

आत्मा मे कषायस्वभाव ही नहीं है। उसको कषाय सहित भी नहीं कहते और कषाय रहित भी नहीं कहते। आत्मा का स्वभाव न कषाय करना है, न कषाय रहित है किन्तु ज्ञानस्वभाव है। जानने का ही काम है। जो है उसे ही बताना चाहिए, उसे सब कुछ कहा जाता है। जो नहीं है उसे बताने से वस्तु का स्वभाव नहीं जाना जाता है। जो है वह पदवी दी जाती है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान है जो कि कषाय रहित स्वतन्त्र ही है। कषाय इसमे है ही नहीं। इसलिए कषायरहित आत्मा के स्वभाव के दर्शन होना, अवलम्बन होना, उसकी ओर झुकना तो कषाय रहित प्रवृत्ति हो जायगी और कषायरहित परिणमन हो जायगा। शुद्ध उपयोग होता है तो शुद्ध उपयोग होने से उसे निर्वाण मिलता है, मोक्ष मिलता है। तीन प्रकार का उपयोग होता है। अशुभ उपयोग तो तीव्र कषाय कहलाता है। जैसे घर के बच्चो से प्रीति पैदा होती है, घर की स्त्री मे ही दिल लगा रहता है, अनेक घातक व दुराचारमय परिणाम होते हैं। शुभोपयोग मन्दकषाय कहलाता है। भगवान् की पूजा करना, स्वाध्याय करना, तपस्या करना यही सब मदकषाय का फल है, कषाय की मदता का फल है। विषयभोगो मे ही प्रवृत्ति रहे यही कषायो की तीव्रता का फल है।

जो सत्पुरुष होते हैं, वे सब कषायो से दूर रहते है और अपने को कषायरहित जानकर ज्ञानमय अनुभव करते हैं। ऐसी निज आत्मदृष्टि का होना, शुद्धस्वभाव का आश्रय करना शुद्ध उपयोग है। देखो आप सोच सकते है कि जो लोग घर मे रहते हैं उनका समय किसी तरह से कट जाता है। बच्चे हैं, उनको खिलाया पिलाया, बड़े हुए, उनको पढ़ाया लिखाया, उनका सारा समय यो ही निकल जाता है, वे अपने ज्ञानस्वरूप की परख नहीं कर पाते हैं और मौज मे समय गुजार देते है। वे व्यक्ति जो जगल मे रहते हैं उनका जीवन व समय भी अच्छी तरह से कैसे कट जाता है तो उनके पास क्या चीज होती है जिससे उनका जीवन अच्छी तरह से कट जाता है? उनके पास है उनके ज्ञानस्वरूप की परख। वे अपने आनन्दमय स्वरूप मे डूब जाते है और अपने ज्ञानस्वरूप का परिचय कर लेते है। वे जगल मे रहने वाले भोजन करके प्रसन्न नहीं रहते हैं, वे अपने आत्मस्वरूप को ही देखकर प्रसन्न रहते है। वे अपने ज्ञानस्वरूप को देखते रहते हैं, केवल देखन जाननहार ही वही रहते हैं।

अपने ज्ञानस्वरूप का परिचय होने पर, ज्ञानस्वरूप को ही निरखने पर वे आनन्दमग्न हो जाते है। देखने वाले लोग कहते हैं कि वे जगल मे कितनी कठिनाइयो से रहते है, उनका जीवन कैसे पार होता होगा ? अरे अपने आनन्दमय स्वरूप को देखो और अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होओ। एक ज्ञान की यह बात है, यह विश्वास होना चाहिए कि जगत मे जितने भी दु ख होते हैं वे सब ख्याल बनाने से, कल्पनाये करने से होते हैं । बच्चे, स्त्री इत्यादि ने कहना नहीं माना, काम बिगड़ गया, भीतर मे ऐसी कल्पनाये करके वे दु खी होते हैं। किसी दूसरे की चेष्टाओ से कोई दु खी नहीं होता है, वह अपने आप मे ही ख्याल बनाकर दु खी हो जाता है। अरे तू तो स्वय आनन्द स्वरूप है, आनन्द भी कहीं बाहर से नहीं लाना है। प्रेम व्यवहार करने से आनन्द आता है, यह बात न सोचो। आनन्द केवल मेरे विचारो से ही मिलता है। हम अपने विचारो के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाते। अशुद्ध विचारो से ही दु ख मिलता है। दु ख देने वाला दूसरा कोई नहीं है। केवल ख्याल बनाकर ही दु खी होते है । वह सब ज्ञान

की ही कल्पनायें है, ज्ञान का ही चमत्कार है, ज्ञान की ही लीला है। सुखी दुःखी होना, पुण्य पाप करना सब ज्ञान पर ही निर्भर है, ज्ञान का ही सारा चमत्कार है, दूसरे कोई कुछ नहीं करता। इसलिए अपने आपके ज्ञानस्वरूप को देखो तो आनन्द प्राप्त हो सकता है।

बाहरी चीजो मे ही ज्ञान बढ़ाना, बाहरी चीजो मे ही ठकना यह तो व्यर्थ है। बाहर की दृष्टि मे तो मिलेगा कुछ नही, केवल आकुलता ही भोगने को मिलेगी। एक पुराण मे दृष्टान्त आता है कि एक भाई गुरु के पास पहुचा। बोला— महाराज, मेरी आत्मा को ज्ञान करा दीजिये। गुरु कहते है कि उस नदी मे जावो, एक मगर रहता है, वह तुम्हारी आत्मा का ज्ञान करा देगा। नदी मे मगर के पास जाकर वह कहता है कि भाई मुझे मेरी आत्मा का ज्ञान करा दीजिए।

ही है। चाहे जितनी जगह डोल आवो शान्ति और आनन्द कही बाहर मे नहीं मिलेगा। भैया! यदि धर्म साधना करो तो तिरोगे। भगवान की सच्ची भक्ति हो तभी धर्मसाधना बढ़ सकती है।

मनोवाक्कायवृत्तीना निवृत्तेरुपदेशनम्।
स्वस्थित्यै स्वस्थितौ शान्ति स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-३०।।

अर्थ– मन वचन काय की प्रवृत्तियों की निवृत्ति का उपदेश स्व आत्मा में स्थिति के लक्ष्य के लिये होता है और स्वात्मा में स्थिति होने में ही शांति है इसलिये मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

मनोवाक्कायवृत्तिश्चे च्छुभैवास्तूपदेशनम्।
स्वस्थित्यै स्वस्थितौ शांतिस्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-३१।।

अर्थ– मन वचन काय की प्रवृत्ति होती हो तो शुभ ही होओ तथैव उपदेश स्वकी स्थिति के लक्ष्य से होओ निश्चय से शांति स्वकी स्थिति में ही है इसलिये मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

दु खो का कारण मन, वचन, काय की प्रवृत्ति है। मन की प्रवृत्ति से, वचन के व्यवहार से और शरीर की चेष्टाओ से कोई न कोई प्रकार के क्लेश होते है। इसलिए ऋषि देवो ने इन तीनो प्रवृत्तियो को हटाने का उपदेश दिया है। मन का निरोध करना, वचनो का बन्द करना, शरीर की चेष्टाये बन्द करना, इस तरह से जो तीन उपदेश दिये है वे इसलिए दिये हैं कि यह आत्मा बाहर की बातो से हटकर अपने आप मे रम जाय। गृहस्थी को उपदेश है कि वह मन से प्रीति चाहे रखे, बच्चो से व्यवहार चाहे रखे, पर वे दूसरो की सेवा और दया करे, सबका भला सोचे। मन की वृत्ति अच्छी क्या कहलाती है कि सब जीवो मे सुखी होने की भावना हो, सब जीवो मे सद्‌बुद्धि उत्पन्न होने की अभिलाषा हो, सब जीव सुखी हो, सब जीवो मे सद्‌बुद्धि हो और समता जगे, ऐसी भावना करने का नाम मन की वृत्ति का अच्छापन कहलाता है। सद्‌बुद्धि बिना ही जगत मे विवाद और कलह उत्पन्न होते है। राष्ट्र की कलह हो, समाज की कलह हो, घर की कलह हो ये सब सद्‌बुद्धि के अभाव से होते हैं। जब किसी के मन मे दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है तब ईर्ष्या और क्रोध उत्पन्न होता है। सो दुर्बुद्धि वाले चूकि अपनी-अपनी बुद्धि को खो बैठे हैं इसलिए उनपर ही विपत्तिया आती हैं। इसी कारण लोक मे यह प्रसिद्धि है कि जो दूसरो का बुरा विचारता है उसका बुरा पहिले होता है। यह बात बिल्कुल ठीक है क्योकि दूसरो का बुरा विचारने से दुर्बुद्धि हुई, सद्‌बुद्धि नहीं हुई। दुर्बुद्धि होने से आत्मा का भविष्य खराब होगा। चाहे लोक दृष्टि से पुण्य का उदय होने के कारण दूसरो पर अन्याय अत्याचार करे और उसमे सफलताये मिले, पर अन्तिम परिणाम इसका पतन कार्य ही है। दुर्बुद्धि होने पर अपनी सद्‌बुद्धि नष्ट हो जाती है यही सबसे बडा टोटा है, सबसे बड़ा नुकसान यही है। इसलिए अपनी सुख शान्ति के वास्ते यही आत्मदेव से प्रार्थना करो कि हे प्रभु मेरी सद्‌बुद्धि जागृत रहे। बुद्धि बिगडी कि सब बिगडा। तो अपने मन का विचार ऐसा बनाओ कि जगत के सभी जीव सुखी हो, उनमे सद्‌बुद्धि जागृत हो, सब न्यायपूर्वक रहकर सुख प्राप्त करें, इसे ही कहते हैं मन की सद्‌बुद्धि। राष्ट्र क्यो दु खी है कि मन मे असद्‌भावनायें घर

कर गयी है। अधिकतर मनुष्यो का मन दुर्भावनाओ से ग्रस्त हो गया है, इस कारण सब मनुष्य भयशील है। यदि लोगो का विचार शुभ स्वच्छ हो तो विपदाओ का कोई कारण नहीं है। घर मे हो, गाव मे हो हम आपके प्रति बुरा विचारते है, आप हमारे प्रति बुरा विचारते है, मन से मन नही मिलता, एक दूसरे को नही सुहाते—ऐसी दृष्टि आपकी हो जाती है तो सब अपने अपने से बैठे हुए दु खी हो रहे है। मिलता क्या है दूसरो का बुरा विचार करने से, केवल अहकार। जब तक दूसरो का बुरा विचारोगे तब तक लाभ कुछ भी नही मिलेगा। दूसरो का बुरा सोचने से कोई मुनाफा मिलेगा क्या ? कोई भी तो मुनाफा नहीं मिलेगा। उल्टा मन बिगाड़ लेने से तो अपने को विपत्तियो मे फसना होगा, कर्म बन्धनो मे फसना होगा। कर्म बन्धनो मे फसने से आकुलताये आयेगी। इसलिए अपने को पवित्र रखने के लिए अपने प्रभु के स्वरूप को समझो। प्रभु के स्वरूप के समान अपने स्वरूप को भी समझो। इसमे किसी प्रकार का दुर्भाव न आये, ऐसा मन मे भाव बने, यही बात की बात है। ऐसा ज्ञान गृहस्थी के भी होता है। यदि कोई शत्रु बनकर तुम्हारा जान, धन हड़प करने आवे तो उसका भी मुकाबला करो। दुश्मन का मुकाबला करते हुए उसके प्राण चले जाये तो भी सम्यग्दृष्टि की भावना बुरी नही होती है। इतना तक कर लेने पर भी अन्तर मे उसके प्रति सद्भाव ही रखा है। श्रीराम भगवान गृहस्थावस्था मे रावण से लड़ रहे थे और काफी विजय प्राप्त कर ली, रावण असहाय हो गया, तब राम ने यह कहा कि ऐ रावण ! अभी कुछ नही बिगड़ा, सीता को वापिस कर दो और तुम अपना राज्य करो। मगर रावण की बुद्धि खो गयी, दुर्बुद्धि ने मन को जकड़ लिया। वह अहकार से परिपूर्ण था। रावण अपने मन मे कहता है कि यदि राम को जीते बिना सीता को यो ही दे दिया तो लोगो मे मेरी इज्जत खराब होगी। लोग यह समझेगे कि घबड़ा-कर, परास्त होकर, हार मानकर रावण ने सीता को वापिस कर दिया। उसका उस समय यह भाव हो गया था कि राम को जीत लू, राम पर विजय प्राप्त कर लू, राम हार जाए, ऐसी स्थिति करके फिर मै सीता को वापिस दू तो मेरी दुनिया मे बड़ी इज्जत रहेगी। ऐसा सोचकर सीता को वापिस देने के लिए राजी नही हुआ। अन्त मे क्या हुआ कि रावण की मृत्यु हो गयी।

जब दुर्भाव से मन जकड़ जाता है तो सही रास्ता क्या है इसका ख्याल भी नहीं आता है। यह अपने आपको बिल्कुल भूल जाता है। इसलिए सबसे बड़ा धन है बुद्धि का व्यवस्थित रहना। कोई मनुष्य पागल हो, दु खी हो, अटपट बकता हो, यहा वहा दौड़ता फिरता हो। क्यो इतना अटपटा हो गया है इसलिए कि अपने को बिगाड़ लिया है। उसमे खराबी क्या आयी कि बुद्धि बिगड़ गई, बुद्धि चचल हो गयी, अव्यवस्थित हो गयी, इसी को कहते है पागल होना। पागल होने मे कितने दु ख हैं इसका तो देखने वाले अन्दाज कर सकते हैं। जिसका ज्ञान ठिकाने नहीं है वह अपना भी दु ख क्या जाने ? केवल भोगते ही बनता है। पागल का जीवन तो बेकार है। सभी लोग अनुभव करते हैं कि पागल है, सिरी है, उसका जीवन बेकार समझते हैं। सो भैया ! यदि किसी का जीवन अधिक अव्यवस्थित हो गया तो उसने भी पागल का रूप ले लिया। बुद्धि जरा कम व्यवस्थित है, बुद्धि बिगडी हुई है, दुर्बुद्धि है, उसका जीवन बेकार है। कोई बहुत बेकार है तो कोई इसमे थोड़ा बेकार है। सबसे बडा धन है अपना ज्ञान सही बनाकर

रखना। यदि अपना ज्ञान अपने काबू मे है, अपने मे सयत है तो हम उस ज्ञान से अपनी इच्छा से चल सकते है। ऐसे सुधार मे हम प्रसन्न रहते है। सो भाई मन को स्वच्छ रखना, सब जीवो को एक समान समझकर सबके सुखी होने की भावना रखो, यही गृहस्थी का कर्त्तव्य है। दूसरे अपने वचनो का व्यवहार शुद्ध रखना, मनुष्यो का धन वचन ही तो है। वचनो से ही मनुष्यो की सारी परख होती है। वचनो से ही इस जीव को सुख बन गये है और वचनो से ही दु ख बन गये हैं।

एक पडित जी सुनाते थे कि कोई भाई देहात का हरिद्वार यात्रा करने गया। सो वहा बड़ा बीमार हो गया, वह अकेला था, कुछ कम बुद्धि का था। बीमार हालत मे वह यहा वहा देखता है, सोचता है कि यहा कोई सहारा नही मिलेगा। खोह मे एक झौंपड़ी थी, झौपड़ी मे एक बुढ़िया मा रहती थी। वह बोला मा, मैं बीमार हूँ मुझे शरण चाहिए। मा बोली– बेटा जो पथ्य हो बताओ। क्या खिचड़ी बना दू, खिचडी भी तैयार कर दी। बुढ़िया खिचड़ी बना रही थी और वह कहता कि मा क्या तुम अकेली ही हो ? हा बेटा, अकेली ही हूॅ। तो तुम्हारे कोई नही है, लड़का तो है परदेश मे रहता है। तो मा वह मर जाय तो क्या करोगी ? अरे यह तो असगुन की वार्ता करता है। यो ही वह कम बुद्धि का था। बोली– ऐसी अटपट बात क्यो करता है ? तो मा तुम्हारे यहा कोई नहीं है। तो क्या तुम्हारा विवाह करा दे। ऐसी ही एक आधी बात और खोटी बुढ़िया को कह दी। अब तो बुढ़िया ने उसको निकाल दिया। तो इन वचनो से ही परदेश मे आराम से रह सकते हैं। और इन्हीं वचनो के दुर्व्यवहार से घर मे भी सुख से नही रह सकते हैं। वचन बाण अगर लग जाये तो यह बिध सकता है। वचन बाण से लगा हुआ दिल का घाव कठिन हो जाता है। हथियार का घाव तो भर जायेगा। वचन-बाण जिसके दिल मे लगता है तो उस जगह का घाव फिर नहीं भरता है। इसलिए वचन बहुत सभालकर बोलना चाहिए। धनुष से छोड़ा गया बाण जो घाव करे उसको भरा जा सकता है, पर वचनो से निकले हुए बाण के घाव करने पर नहीं भरा जा सकता है। वचनो के बाण से वो लड़ाई ही बढ़ेगी। यह मनुष्य का शरीर पशुओ के शरीर से भी गया बीता है। पशुओ की चाम, बाल, हड्डी इत्यादि काम आती है, पर मनुष्य की चाम हड्डी, बाल इत्यादि कोई भी चीज काम नहीं आती है। मनुष्य का शरीर किसी काम में नहीं आता है तो यह पशुओ के शरीर से भी गया बीता शरीर है। इसीलिए यह शरीर जला दिया जाता है। जल जाने पर तो खाक ही हो जाता है। मतलब यह है मृत्यु के बाद यह शरीर उपयोग मे नहीं आता है। ये मन, वचन व शरीर इनको पूर्ण रूप से रोक दो। यह पूर्ण विरोध साधु महात्माओ का कार्य है। गृहस्थी का क्या कर्तव्य है कि वह मन से व्यवहार अच्छा रखे, वचन, वाणी का व्यवहार अच्छा रखे और शरीर से दूसरो की सेवा करे। हम अगर इस लायक हो सके तो अपने आप मे रम सकते हैं। अपने आपके ज्ञान को सही रखो। अपने ज्ञान को सही बनाने मे ही शान्ति है। अपने आपकी व्यवस्था बनाकर स्वय सुखी होओ।

शुद्धोपयोगलक्ष्येनात्मा स्वयं रक्ष्यते तदा।
स्वस्मिन् स्वमेव वेत्यस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।३-३२।।

अर्थ– शुद्ध उपयोग के लक्ष्य से आत्मा स्वयम् रक्षित हो जाता है और उस समय वह आत्मा अपने में अपने को जानता रहता है अतः शुद्ध उपयोग स्वभावी मैं अपने में अपने अर्थ अपने आप सुखी होऊं।

यह परमार्थ की बात कही जा रही है किन्तु आजकल कुछ दुर्भाग्य से कहिए चीन और भारत के बीच मे युद्ध का वातावरण ठन गया। जितनी बेचैनी यहा पर है उतनी ही बेचैनी चीन मे भी होगी। जितना डर और भय यहा है उतना ही वहा भी होगा। ऐसे वातावरण मे जरा कठिन बात है कि ब्रह्मस्वरूप की चर्चा मे बैठने मे अपना उपयोग लगावे। यह देह मायारूप है, गृहस्थी मे रहने के नाते कुछ अगर कर्तव्य है तो करना पड़ता है। अगर चौबीस घटे मे दस पन्द्रह मिनट आधे घटा ऐसा समय बीते, आत्म तत्त्व की चर्चा मे जावे, फिर देखना अपना आत्मबल का बोध होता है। बाहरी बातो मे पड़कर अपना आत्मबल घटा लेते है। अगर हम बाहरी बातो मे उलझ जायेंगे तो हमारा आत्मबल घटेगा । आत्मबल इससे बढ़ेगा नहीं। हमको अपने आत्मतत्त्व मे रमने का यह कर्तव्य है कि हम अपने वस्तुस्वरूप की चर्चा मे आवे और अपने उपयोग को शान्तिमय बना ले।

जो भी शक्ति है वह ज्ञान की ही शक्ति है। विज्ञान मे जो भी बात होती है वह ज्ञान की ही शक्ति है। जो पौद्गलिक चीजो को बनाता है वह ज्ञान मे ही तो बनाता है। जो कुछ चमत्कार है वह इस ज्ञान का ही है।

अपने ज्ञान को सही रख सके, ऐसा वातावरण बनाने की चेष्टा करो। यदि हमने अपनी बुद्धि को खो दिया तो सब कुछ खो दिया। सो अपना आत्मबल बढ़ाने के लिए देखो कि यह मै आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप केवल ज्ञान और आनन्द का ही काम करता हूँ। इसके आगे आत्मा का कोई कार्य नही है, ऐसा जानकर सबसे विकल्प हटाकर परमविश्राम मे रहूँ तो एक बल उत्पन्न हो जिससे बुद्धि व्यवस्थित रहती है। मेरी यथार्थव्यवस्था हो तो मेरा सब काम ठीक है। यह प्रार्थना करो कि हे प्रभु! मेरी बुद्धि व्यवस्थित रहे।

नश्येते निर्ममत्वेन रागद्वेषी तत सुखम्। 78 गाथा
निर्ममत्व विचिन्त्यात स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-३३।।

अर्थ– ममता रहित परिणाम से रागद्वेष नष्ट हो जाते हैं और उस स्थिति से सुख होता है इसलिये ममता रहित परिणाम का विशेष चितन करके मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

यदि रागद्वेष मिटते है तो निर्ममता से मिटते है। अर्थात् मोह ममता न हो तो रागद्वेष मिट जाते है। जैसे हरे वृक्ष की जड़ कट जाने पर पेड़ सूख जाता है। उसी प्रकार मोह के मिट जाने पर सब रागद्वेष सकट नष्ट हो जाते है, मिट जाते है। क्योकि रागद्वेष का आधार है अज्ञान। आपके सामने यदि अधेरा रहता है कि जो परवस्तु है उसमे ही मै हूँ, ऐसा पराधीन होता है तो यह आवश्यक ही है कि उसमे रागद्वेष आवे और भक्ति के विरुद्ध व मुक्ति के विरुद्धभाव उत्पन्न हो। राग और द्वेष आत्मा मे मिले होते हैं, उपाधि के निमित्त से होते है इस कारण पृथक् है। जीव स्वय ज्ञानमय है सबसे न्यारा है। केवल अपने ही स्वरूप मे है, ऐसा भिन्न एकत्व न सोचने के कारण जीवों की बाह्य मे दृष्टि हो जाती है और वे इन बाह्य पदार्थो मे ज्ञान और आनन्द प्राप्त करने की आशा करते है। जैन धर्म ने सब मूल बाते बतलाई है। हम अपने मोह को छोड़े तो शान्ति रहेगी। मोह कैसे छोड़ा जा सकता है? इसकी युक्ति वस्तुस्वरूप का ज्ञान बताया है। समस्त वस्तु अपने अपने स्वरूप मे है अपने अपने गुण पर्याय मे है। किसी वस्तु का किसी दूसरी वस्तु से कोई सम्बन्ध नही है। किसी वस्तु का पर्याय किसी दूसरी पर्याय मे नहीं है। ऐसे स्वतत्र स्वतत्र सब पदार्थो को देखो अपने एकत्वस्वरूप का दर्शन आवे तो जीव का मोह खत्म हो जाता है। भाई ! फिर मोह कैसे रहता है ? किसी चीज को जुदा मान लिया तो मोह कैसे रहा? यह समझो कि सब जुदा-जुदा हैं।

सब अपने अपने उत्पादव्ययध्रौव्य मे रहते हैं, सब पदार्थ स्वतन्त्र स्वतन्त्र है। अपने स्वत्व को नहीं छोडना है। जो चीज सत् की है वह सदा के लिए रहती है। वस्तु का प्रतिक्षण एक-एक परिणम रहता है। वस्तु प्रत्येक समय परिणमती रहे यह वस्तु का खास काम है कि वह सदा परिणमती रहे। परिणमन

ही वस्तु का स्वभाव है। नई शक्ल बनाना और पुरानी शक्ल बदलना यही तो वस्तु का स्वभाव है। पदार्थ परिणमनशील है वे निरन्तर परिणमते ही रहेगे। जो निरन्तर परिणमते है उनमे नई शक्ल आती और पुरानी बदलती रहती है। जो नई परिणति होती है उसे उत्पाद कहते है और जो पुरानी परिणति विलीन होती है उसे कहते है व्यय। पर पदार्थ सदा रहता है इससे पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यमय है। जो स्वरूप वस्तु का है वह बना रहता है फिर भी वह अपने आप बदलता रहता है, ऐसा ही सब पदार्थो का ढग है। प्रत्येक चीज की परिणति है। कोई चीज अपनी मानने से हो जाय तो यह नही हो सकता है, क्योकि यह तो स्वरूप से बाहर की बात है, किसी चीज को मान लिया कि हमारी है तो यह मन की बात है। पदार्थो का परिणमन जाना ही काम है। पर वे पदार्थ तुम्हारे बन जाये ऐसा नही हो सकता है। क्योकि यह स्वरूप से बाहर की बात है। मुझ पर तुम्हारा बस नही हो सकता है, ऐसा जब ज्ञान मे आता है कि परपदार्थ जुदा है, स्वतन्त्र है, किसी का किसी से कोई सम्बन्ध नही है ऐसा यथार्थ ज्ञान हो जाने से सम्यग्दर्शन होता है। इससे मोह नष्ट हो जाता है। जैसे वृक्ष की जड़ कट जाने पर पेड़ कब तक हरा रहेगा इसी प्रकार मोह के दूर होने पर, अज्ञान के नष्ट होने पर ये रागद्वेष कब तक रहेगे ? ये तो मिट जायेगे। मोह के मिटने पर रागद्वेष मिट जाते है। दु खो के देने वाले ये रागद्वेष ही है। दु ख देने वाले दूसरे पदार्थ नही है।

यदि रागद्वेष मिट गए तो दु ख मिट गए। यहा बैठे-बैठे ही सुखी बन सकते हो। भीतर मे शुद्ध दृष्टि बन जाय तो आनन्दमग्न हो सकते हो। तो राग द्वेषके मिटने से ही सुख होते है। इस कारण अपने आपको निर्मम ही विचारना चाहिए। ममता करना एक पौद्गलिक परिणमन है, कर्मो के अनुसार होने वाली चीजे है। वे मेरी हो ही नही सकती है, मेरा स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द को लिए हुए है बाकी तो कषाय है दूसरो मे मोह वाली परिणति है। ऐसा विचारकर मै अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

मुक्त्वेद कल्पनाजाल मनोऽदो निश्चल भवेत्।
न क्लेशो निर्विकल्प सन् स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-३४।।

अर्थ– इस कल्पना जाल को छोडकर यह मन निश्चल हो जावे फिर लेशक्लेश नहीं है इसलिये निर्विकल्प होता हुआ मैं अपने में अपने अर्थ स्वयं सुखी होऊ।

कहते है कि इन कल्पनाओ को छोड़ दो तो यह मन निश्चल हो जाता है, किसी का मन चलायमान हो तो आकुलताये उत्पन्न होती है। आकुलताये यदि दूर करनी हो तो मन को निश्चल बनाओ। आकुलताये जड़ से समाप्त करने का उपाय सम्यग्ज्ञान है। जब तक सही ज्ञान न हो तब तक आकुलताये होना, समाप्त नहीं होती है। सो भाई सम्यग्ज्ञान करके कल्पनाओ को मिटाना चाहिए। कल्पनाजाल के मिट जाने पर ही यह मन निश्चल हो जाता है। इस मन के निश्चल हो जाने पर कोई क्लेश न रहेगे। अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप का अनुभव रहेगा। इससे ही यह जीव निर्विकल्प हो जाता है, निर्विकल्प होने पर इस

शरीर के सारे क्लेश मिट जाते हैं। देखो जीव को यहा सुख है क्या ? कही आराम से बैठ नही पाता है आराम नही मिलता है तो भैया यह रागद्वेष है इसलिए आराम नही, आकुलताये है। सो यह जीव आकुलताये ही तो करता है, और मोह भी व्यर्थ का ही है। मोह करने से अपने को कुछ मिल जाता हो सो मिलता भी कुछ नही है। हजारो को देख लिया है, कितने ही मुर्दे जला चुके होगे, किसी किसी को ४०-५० मुर्दो के जलाने का नम्बर आया होगा, किसी किसी को कम, तो ख्याल रखो कि उन्होने आजीवन मोह किया था पर मिला क्या ? इस जीवन मे मोह से कुछ नही है जिन्हे मोह है उन्हे लाभ कुछ नहीं मिलता। कितने ही घर के लोग गुजरे होगे, रिश्तेदार गुजरे होगे, उनका ख्याल तो कर लो। उन्होने मोह किया था कि नहीं, राग किया था कि नही ? तो जो मर गये उन्हे क्या मोह से कुछ लाभ मिला ? उनको कोई लाभ नहीं मिला। लाभ तो केवल जुदा रहने मे है। जिसमे ये जीव भला समझते है उसमे टोटा ही पड़ता है। मन जब निश्चल नही होता है तो विकल्प उत्पन्न होते है, आकुलताये होती है। विपदा से न घबड़ावो, विकल्प न करो, सब जीव हैं, सबके साथ कर्म लगे हुए है। उनका ही कर्म उनके जीवन मे रक्षक है। किसी का भाग्य बन गया है तो अपने आपके उदय से बन गया। तो उनका फल उनमे ही है। हमारा फल हम मे ही है। जिन भाव कर्मो के निमित्त से कर्मबन्धन हुआ था उन कर्मों के अनुसार तुम्हारी व्यवस्था चलती रहती है। इसी तरह से सब जीवो के साथ कर्म लगे है। इसलिए उनकी कर्मो के अनुसार व्यवस्था चल रही है। दूसरो का भार अपने मे न लाना यही मन को निश्चल बनाने का उपाय होगा और इससे ही स्वय निर्विकल्प हो सकेगा। दु खो की जड़ तो मोह ही है। तो इस मोह को त्यागकर अपने स्वरूप को देखो और अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी होओ।

ज्ञान ज्ञान न कोपादि तत्तज्ज्ञान सुस्फुटम्।
स्वस्मिन् ज्ञानेस्थिरीभूय स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-३५।।

अर्थ– ज्ञान ज्ञान है क्रोधादिक नहीं होता और क्रोधादिक क्रोधादिक है ज्ञाननहीं होता यह निर्विवाद प्रकट है इसलिये ज्ञानस्वरूप स्वमें स्थिर होकर मैं स्वय अपने में अपने लिये सुखी होऊ।

देखो जैसे एक दर्पण है तो दर्पण का स्वरूप दर्पण ही है। जो स्वरूप अपने आप दर्पण मे है वह उस दर्पण का स्वरूप है। जैसे स्वच्छता झलझलाहट आदि के दर्पण के स्वरूप है किन्तु सामने कोई चीज आ जाय तो दर्पण मे उसकी छाया पड़ती है तो भेद करके बताओ–दर्पण का स्वरूप स्वच्छता है कि प्रतिबिम्ब ? दर्पण का खुद का स्वरूप झलझलाहट हैं, प्रतिबिम्ब पराई बात है, वह दर्पण का स्वरूप नहीं है। इसी तरह आत्मा का स्वरूप केवलज्ञान है। जान लो, शुद्ध जान लो यही आत्मा का स्वरूप है पर जब कर्मोदय सामने होता है तो इस जीव के क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि उत्पन्न हो जाते है। यह तो बतलावो कि क्रोधभाव भी इस जीव का स्वरूप है या मात्र ज्ञान ही इस जीव का स्वरूप है ? जीव का स्वरूप क्रोधभाव है कि ज्ञानभाव है? जीव का स्वरूप ज्ञानमात्र है। क्रोध प्रकृति के उदय का निमित्त पाकर ये क्रोध भरे हुए हैं। क्रोध मेरा स्वरूप नहीं है। मैं तो मात्र ज्ञानस्वरूप ही हूँ, ज्ञान तो ज्ञान ही है इससे क्रोध नहीं बन जाते है। ज्ञानस्वरूप तो मेरा ही स्वरूप है। इस ज्ञानस्वरूप की ओर ही झुकाव

हो तो वह ज्ञान मे समाता जायगा। ज्ञानका सुधार अपने आपसे ही होगा। अपने ज्ञान का सुधार हो ऐसा यह केवल अपने आपके समाधान पर निर्भर है। अपने आपका स्वयं अनुभव करो। जिसके ज्ञान होता है उसके क्लेश खत्म हो जाते है और उसे मोक्ष के मार्ग मे आना पड़ता है। सबसे प्रथम कर्तव्य यह है कि अपने ज्ञान से अनुभव बनाकर अपने आपमे यह अनुभव करते रहो कि मै तो ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप ही हूँ ऐसा जब अनुभव बन जायगा तो अपने आपमे स्वाद आ जायगा और उस जीव को मोक्षमार्ग मिल जायगा। मोक्षमार्ग मे मिलना मेरा काम है क्योकि शुद्ध बात मेरे स्वरूप मे ही मिलेगी। सबसे बड़ा महत्व लोग देहरक्षा का समझते है तो क्या देह रक्षा से आत्मा के स्वरूप का अनुभव होगा? नही, क्यो जी, यहा से मरकर चीन मे ही अगर पैदा हो गए होते तो उनके उल्टे विचार होते, यह सब मोह का स्वाड्.ग है। अपना लक्ष्य केवल अपने आत्मा की ओर होना चाहिए। आत्मा का जो स्वरूप है उसका अनुभव करना बस इससे ही आनन्द है। शरीर तो मुझसे पृथक् है। देखो भैया! सब आकर इस मूर्ति के दर्शन करते है। और इस मूर्ति के दर्शन करने से ही भगवान के दर्शन होते है। यदि भगवान के स्वरूप का स्मरण होगा तो आत्मा के स्वरूप का भी स्मरण होगा। आत्मा का स्मरण होने से मोक्षमार्ग निकट है। सारे विकल्पो को छोड़कर अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव करो इसी मे कल्याण है। यदि इतना कर सके तो यही धर्म है, अपना परम कर्तव्य है। अपने आपको सम्भालने के ६ कर्तव्य है– (१) भगवान की पूजा करना, (२) अपने गुरु का सत्कार करना, (३) स्वाध्याय करना, (४) नियम सयम करना , (५) इच्छाओ का निरोध करना, (६) यथाशक्ति दान देना।

ये ६ काम रोज के है। इन बातो को करते हुए अपना स्वरूप लक्ष्य मे लेना, यही अपने जीवन को सफल बनाने का उपाय है।

तप इच्छानिरोधोऽत· कर्म निर्जीर्यते तत ।
तपस्तप्त्वा च शुद्ध सन् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।३-३६।।

अर्थ– इच्छा रोकना अर्थात् दूर करना तप है इससे कर्म निर्जीण होता है उसी कारण से मैं तप को तपकर अर्थात् इच्छा को दूरकर शुद्ध होता हुआ अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

इच्छाओं के निरोध करने का नाम तप है। इच्छाओ का निरोध प्रत्येक कल्याणार्थी को करना चाहिए, चाहे वह गृहस्थी हो, चाहे साधु हो, अपनी अपनी पदवियो, अपनी योग्यता के अनुसार इच्छाओ का निरोध करना चाहिए। गृहस्थी इच्छाओ का निरोध कैसे करे ? उनकी इच्छानिरोध की मुख्य बात यह है कि गृहस्थी का सम्बन्ध है कमाई से, धन के उपार्जन से, सो जितनी आय उनकी हो उस आय के चार छ भाग कर उसमे एक भाग विद्यादान के लिए रखो, धर्म करने के लिए रखो, दो तीन भाग अपने समस्त खर्चे के लिए रखो, एक दो भाग विवाह आदि समयो के लिए सचित रखो।

इस प्रकार के बटवारे मे जो भी भाग प्राप्त हो उसमे ही अपनी गुजर बसर करना, उससे अधिक भाग की इच्छा न करना यही गृहस्थी का तप है। गृहस्थी की तपस्या की मुख्य बात यह है कि दूसरों

के भोग को देखकर गृहस्थ ललचा न जावे। इन इच्छाओ का निरोध करने मे गृहस्थ अपने अन्तर मे ऐसी हिम्मत रखता है कि चाहे कैसी भी परिस्थिति आवे, चाहे सूखे चने ही खाकर गुजर करना पड़े, पर अपने धर्म को न छोडूगा । अब यहा व्यवस्था बनाना कठिन है, वे बाते आ नही सकती। कभी वह जमाना था कि द्वार खोलकर भी कहीं चला जाय विश्वास के कारण तो सुगम व्यवस्था बनी रहती थी। फिर भी व्यवस्था मे हम सच्चाई और ईमानदारी की अधिक से अधिक व्यवस्था करे तो लोकधर्म का पालन है। जब तक इच्छाओ का निरोध नहीं होता तब तक सच्चाई का पालन होना कठिन है। पर जिसका आत्मा से प्रेम है आत्मकल्याण से प्रेम है, ऐसा पुरुष अन्य तृष्णाओ की उपेक्षा कर देता है और अपने धर्म पालन मे दृष्टि रखता है, मेरा पूरा तो मेरी आत्मा से ही पड़ेगा। फिर इस जीवन मे आराम के लिए किसी भी प्रकार का अन्याय या अत्याचार करके, धन सचित कर ले, यह तुम्हारा विवेक नहीं है।

जैसे कोई सन्यासी था। प्राणायाम करके दो दिन तक सन्यासी के ही रूप मे समाधि बना लेता था। एक बार राजा ने कहा कि महाराज, मेरे सामने समाधि लगावो। समाधि ठीक होगी तो मुह मागा इनाम दूगा। सन्यासी ने समाधि लगायी। समाधि तो लगा ली, पर उससे पहले यह इच्छा आयी कि समाधि करके मै राजा से पारितोषिक मागूगा। राजा के घुडसाल मे एक घोड़ा बधा था, उसके मन मे आया कि मैं यह घोड़ा ही मागूगा। तो वह घोड़ा उसके हृदय मे समा गया। समाधि छोडते ही एकदम बोला – अब लावो काला घोड़ा। तो भैया ! बताओ यह समाधि है क्या ?

अग्निना काञ्चन यद्वत् तप्यमानस्तपोऽग्निना।
शुद्धीभूय लभै स्वास्थ्य स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-३७।।

अर्थ– अग्नि के द्वारा सुवर्ण की तरह तप रूपी अग्नि के द्वारा तपता हुआ शुद्ध होकर स्वास्थ्य अर्थात् स्वकी सहज स्थिति को प्राप्त करू और अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

लोग दु खो से घबडाते है, पर यह अनुभव करे कि मेरी प्रगति होगी तो इन दु खो के प्रसाद से ही होगी। विषय भोगो के सुख के प्रसाद से किसी ने प्रगति नही की। ससार मे ये दु ख और सुख एक के बाद एक लगे रहते है। कोई ससारी जीव ऐसा नहीं मिलता कि जिसको निरतर रात-दिन दु खी ही दु ख रहते हो, और ऐसा भी कोई ससारी जीव नही मिला जो निरन्तर रात-दिन सुखी ही सुखी रहता हो। बीच मे कितनी ही बार सुख आता है और कितनी ही बार दु ख आता है। इन सुख दु खो मे से देखा जाय हमारे उद्धार के कारणभूत दु ख तो हो जायेगे, किन्तु ये विषय भोगो के सुख नहीं होगे। इन इन्द्रिय जन्य सुखो से जो प्रीति करते हैं वे अपने ज्ञान को पहिले विगाड लेते है। उनमे समता नहीं रहती, धैर्य नही हरता, शाति नहीं रहती । वे क्षुब्ध हो जाते है और विषय सुखो मे ही लालायित हो जाते हैं, विषयाध बन जाते है, उनसे प्रगति किसी की नही । तो हम दु ख का तो स्वागत करे और सुख आता हो तो आवे और न आता हो तो न आवे, दु ख तो केवल कल्पना मात्र से ही आते है, बाहर के पदार्थो से दु ख नहीं आया करते हैं। जैसी परिणति है, उनसे क्लेश नहीं आते है। क्लेश तो अपनी

कल्पनाओ का जाल है। अपना ख्याल बनाते है और दु खी हो रहे है। सो उन दु खों को समता से सह लेना भी तप है। अतरग मे इच्छाओ का न होना भी तप है। इस तपस्या के प्रसाद से, इस सहनशीलता के प्रसाद से यह आत्मदृष्टि होती है, आत्मा प्रबल होती है।

जैसे अग्नि के द्वारा तपाया गया सोना मैल छोड़ देता है, शुद्ध निर्मल हो जाता है इस प्रकार से तपो के द्वारा यह आत्मा शुद्ध हो जाता है। और शुद्ध होने का यह फल है कि यह जैसा है तैसा ही अपने स्वरूप मे रह जाता है। इसी को कहते है परमस्वास्थ्य। स्वास्थ्य का अर्थ है कि स्व मे रहकर आत्मा मे ठहर जाये, रम जाने का नाम ही स्वास्थ्य है। शरीर के तन्दुरूस्त होने को स्वास्थ्य नहीं कहते है। ऐसा है कि आत्मा अगर स्वस्थ है तो शरीर भी स्वस्थ होता है। इस कारण शरीर की तदुरूस्ती को ही स्वास्थ्य नही कहते है, शुद्ध पुण्य का फल स्वय स्वास्थ्य है। राम अपने आप सिद्ध हो जाते हैं। वे अपने से पर की परवाह नही करते । तो भैया ! अगर पर मे उपयोग होगा तो आकुलताये होगी। हम यदि आकुलताये न बनाये तो आनन्द मिलता है। हम अगर शुद्ध आनन्द चाहते हैं तो कर्मो की निर्जरा चाहिए। ससार के दु खो से अगर मुक्ति चाहते है तो हमारा यह कर्तव्य है कि अपने सत्यस्वरूप को जानकर उसमे ही लीन हो जावे। जैसे कोई धन चाहता है तो जो धन की चर्चा है, जो धन पाने के सोर्स हैं उनको अपनाता है। जैसे कोई मिनिस्टर बन जाय, कोई राजा बन जाय, कोई कुछ बन जाय। उनसे इस तरह से धन पाने का उपाय बन सकता है। धन पाने का उपाय यह है कि पहिले धन के सोर्स को, मनुष्य को जानें उस राजा की श्रद्धा करे, हम उसकी रुचि के अनुकूल आचरण बनाये तो धन प्राप्त हो जाता है। इसी तरह जिसको अपनी आत्मा को प्राप्त करना हो तो आत्मा के ज्ञान मे आत्मा की श्रद्धा करे और जैसा आत्मा का स्वरूप है तैसा ही अपने आपको बनाये तो निश्चय है कि आत्मसुख आत्मतत्व प्राप्त हो सकता है। इस स्वास्थ्य की ही वृद्धि से यह जीव आनन्दमग्न हो सकता है सो अपने आप मे रमकर अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होऊ।

विरागपरिणत्या मे जायते कर्मणा क्षय ।
रागभिन्नमतो विन्दन्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-२८।।

ही प्राप्त होते हैं। रागी है और दु खी हो रहे हैं। अधिक आय हो और दु ख बन जाये तो वहा भी यह दु ख राग का ही कारण है। भैया ! यदि राग है तो समझो विवाह बधन मे बध गया। जिसके कोई राग नहीं है वह आनन्दमग्न है। यदि राग न हो तो दु ख समाप्त है। जो रागी व्यक्ति होता है वही कर्मो को इकट्ठा कर लेता है। मेरी विराग परिणति हो मायने ज्ञान दृष्टि रहे। ज्ञानदृष्टि के बिना आत्मशान्ति तो नही प्राप्त हो सकती।

एक सेठ सेठानी थे। सेठ कपडे की दुकान वाला था, जिसे बजाज कहते है। सेठानी जरा गर्म मिजाज की थी और सेठ शात था। जब सेठजी भोजन करने आते तो सेठानी भोजन के समय ही रोज चर्चा छेड़ देती थी, अमुक चीज अभी नही बनवाया, कान की कुण्डल, नाक की बाली और गले की माला इत्यादि सोने चादी की चीजे नहीं बनवाई, बहुत दिन हो गए। रोज वही चर्चा छेड़ देती थी। एक दिन सेठ अटारी पर से कपड़े पहिनकर सीढ़ी से नीचे उतर रहा था। सेठानी ने क्रोध मे क्या किया कि जो दाल का धोवन था उसको सेठ की पगड़ी के ऊपर डाल दिया। अब तो सेठ सेठानी से बोले कि गरजी तो बहुत थी पर बरसी आज हो। सेठ जी बडे प्रेम से उत्तर देते है। शाति का यह प्रताप हुआ कि सेठानी सेठ के चरणो मे गिर पडी और बोली कि तुम देवतास्वरूप हो, तुमको जो कुछ परेशान किया, माफ करो।

रागद्वेष मोह की जो विशेष परिणति है उस परिणति से मुक्ति नही मिलती, आनन्द नहीं प्राप्त होता, शाति नही प्राप्त होती है। विराग परिणति से कर्मो का क्षय होता है। तो रागो से भिन्न अपने आपको निरखकर अपने आत्मस्वरूप मे रमण करो। राग छोड़ने का उपाय यह है कि आत्मस्वरूप का अनुभव करो कि मै राग द्वेषो से भिन्न केवल ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरी वाणी आदि कुछ नही है, मेरा ढाचा केवल ज्ञानस्वरूप है। ऐसा विलक्षण यह आत्मतत्व पदार्थ है कि वह सर्वत्र ज्ञान से ही रचा गया है। वह अज्ञान तो रागद्वेषो के रहने से है। अपने को रागद्वेषो से भिन्न अनुभव करो। देखो जितना कषाय उत्पन्न होता है वह अपने अज्ञान से अर्थात् अपने को और-और रूप मानने से होता है। मै धनी हूँ, मैं त्यागी हूँ, मैं गाव का मुखिया हूँ, मै अमुक हूँ, इस प्रकार की भिन्न-भिन्न कल्पनाये रहने से ही कषायभाव उत्पन्न होते है। उन कल्पनाओ के योग्य जब लोगो से व्यवहार नहीं पाते है तब उनमे गुस्सा आ जाता है और दूसरा कारण गुस्सा होने का क्या है ? तो अपने आपको और और रूप मानना यही पाप का बीज है। अपने को यदि ज्ञानस्वरूप माने तो यही उत्थान है सो अपने आपको रागादिक भावो से भिन्न अनुभव कर ज्ञाता दृष्टामात्र रहकर अपने मे अपने आप स्वय सुखी होऊ। बाह्य पदार्थो मे हठ करना तो क्लेश का ही कारण है। यह यो नही चलता, वह यो नहीं करता इत्यादि अनेक प्रकार के हठ करने से तो विपत्तिया ही आती है। अहकार विपत्तियो का ही कारण है।

आप को एक चुटकले की वात सुनाये कि किसी घर मे पति-पत्नी थे। पत्नी हठीली थी। प्राय स्त्री जाति का स्वभाव ही हठ करना होता है। यद्यपि स्त्रियो की चलती नही है, पर उनका स्वभाव कुछ हठ करना होता है। एक दिन सास वहू का झगडा हो गया। वहू ने सोचा कि सास को कुछ मजा चखाना

उन सब जीवो की अपेक्षा यह मनुष्य का जन्म कितना श्रेष्ठ है ? ये पशु-पक्षी बेचारे तो बोल भी नहीं सकते, एक दूसरे की बात भी नहीं समझ सकते । कही रोग हो जाए पेट मे और दवा लोग करे मुह मे, दर्द तो उनके है पेट मे और दवा करे मुह मे उनके मुह को दागे तो वे बेचारे बोलकर अपने दर्द को नहीं बता सकते।

इन कीड़े-मकौडो को तो पूछता ही कौन है ? चलते हुए मे नजर से देखकर कौन चलता है ? इन कीड़े-मकौड़े इत्यादि से हम कितना श्रेष्ठ है ? इसका अदाज तो लगाओ। हम अपनी बात दूसरो से कह सकते हैं, दूसरो के हृदय की बात हम समझ सकते हैं। इससे अधिक और बात क्या होगी कि हम धर्म की बात भी जानते है, करते और समझते है। यह श्रेष्ठ जीवन इसलिए नही मिला कि परिवार के मोह में पड़े रहें या अपनी इन्द्रियो के विषयभोगो मे ही बने रहे, इसके लिए यह जीवन नही मिला। यदि ऐसा ही जीवन रहा तो पशुओ के जीवन से क्या अन्तर है ? पशु भोजन करते है, मनुष्य भी भोजन करते हैं, मनुष्य सोते है, मनुष्य विषयभोग करते है, पशु भी विषयभोग करते है, पशुवो को डर है तो मनुष्यो को भी डर है, पशुवो से मनुष्यो मे श्रेष्ठ बात क्या आयी ? ये मनुष्य तो पशुवो से भी गये बीते है। पशुवो का अगर पेट भर जाता है, घास दो चाहे खाना, रख देगे, खावेगे नहीं। मनुष्य के तो तृष्णा हो जाती है। कितना भी मनुष्यो का पेट भरा हो, मिठाई, चटपटी वगैरा आ जाय तो तुरन्त खा लेगे। चाहे तोला भर ही खावे, पर खा लेगे। यह उन मनुष्यो की चर्चा चल रही है जो धर्म से बाहर हैं। निद्रा लेने मे देखो तो पशु-पक्षी सब बहुत थोड़ी निद्रा लेते है। आप लोगो ने पशु पक्षियो को सोते हुए नहीं देखा होगा, जब देखो तब वे जगते हुए ही मिलते है। जहा पर जरा सी भी आहट न हो वहा पर जरा सी निद्रा लेते हुए पशु पक्षियो को देखा होगा। मनुष्य को तो नींद मे खबर ही नहीं रहती है। चाहे जितना हल्ला मचावो वे जगते ही नही है। तो नीद मे भी मनुष्यो से पशु-पक्षी ठीक है।

विषयभोगो की बात देखो तो देखने , सुनने, सूघने मे देखो तो मनुष्यो के तृष्णा है कि नही? विषयभोगो की बात देखो तो सालभर मे १-२ बार ये पशु-पक्षी विषयभोग करते है और शात हो जाते हैं। पर मनुष्यो को देखो बारहो महीने, न कोई पर्व समझते है, न रात, न दिन समझते है, कामवासनाये बनाए रहते हैं। अब यह बतलावो कि मनुष्य श्रेष्ठ हुआ कि पशु श्रेष्ठ हुए ? अभी तक तो पशु ही श्रेष्ठ मालूम हुए। अगर कोई मनुष्य धर्म से प्रीति करे, धर्म की ओर झुके तो उसकी श्रेष्ठता मालूम होगी। यह जीव अनादिकाल से कर्मो के बधन मे फसा हुआ चला आ रहा है और साथ ही साथ कभी कुछ बना, कभी कुछ बना और अपने आपको दु खी करता चला आ रहा है। यह जीव यदि सूकर बन गया तो उनके बच्चो से जिन्हे घिटला कहते है प्रेम करने लगता है। इसी प्रकार यह जीव गाय बन गया तो बछड़े से, पक्षी बन गया तो अडो से, मनुष्य बन गया तो कुटुम्ब परिवार इत्यादि से, बच्चे बच्चियो से प्रेम करने लगा। इसका है कौन ? जिस भव मे जाता है उससे सग से प्रेम करने लगता है। अगर इस भव से छूट गये तो फिर कौन किसकी खबर लेता है ? ये बच्चे भी छूट जायेगे। आपने यह मनुष्य जीवन पाया है, थोड़े दिन का सम्बन्ध है, इस जीवन में यदि कुछ कर लिया कि जिससे कर्म कट जाये,

जिनसे ससार के क्लेश मिट जाये तो सफलता है और अगर इन इन्द्रियविषयों में ही लग रहे तो जीवन बेकार है। और भी देखो मनुष्यो को छोड़कर और जीव यदि विषयो मे लगते हैं तो उनकी एक विषय मे ही प्रवृत्ति होती है मुख्यता से। जैसे हाथी की मुख्यता होती है स्पर्शन इन्द्रिय के विषय से। विषय से हाथी पकड़ा जाता है। गड्ढे मे बास पाट करके शिकारी लोग ऊपर कागज की एक हथिनी बना देते है। जब हाथी जगल से उस कागज की बनी हुई हथिनी को देखता है तो उसके पास आता है। जब उसके पास आता है तो बासो के द्वारा पड़े हुए गड्ढे मे गिर जाता है। फिर वे पकड़ने वाले ८-१० दिन बाद जब वह हाथी शिथिल हो जाता है तो उसमे गैल बनाकर अकुश लेकर उसके सिर पर बैठकर निकाल लेते है। तो हाथी एक इन्द्रिय के विषय मे आकर फंस गया, बन्धन मे पड़ गया। दूसरे इन्द्रिय मे रसना है जीभ। इस रसना इन्द्रिय मे ही पड़कर मछलिया पकड़ी जाती है। इनके पकड़ने वाले कोई मास वगैरा का टुकड़ा या कोई खाने के अनाज वगैरा की चीजे डालकर पकड़ लेते है। तो उन मछलियो ने प्राण गवा दिए तो उस रसना से ही तो।

यह चर्चा हो रही है कि विषय से अपने प्राण गवा देते हैं। भवरा काठ को भेद देता है, पर गन्ध के लोभ मे पड़कर कमल के फूल मे रात को बन्द हो जाता है। देखो भवरे मे इतनी ताकत होते हुए भी वह मस्त होकर कमल के फूल मे बध जाता है। देखा होगा रात मे पतगे दीपक मे जलकर मर जाते हैं। उन पतगो को नेत्र इन्द्रिय का विषय तेज लगा, जिससे वे उस दीप की लौ को दूर से न देख सके, उस ही मे पड़ गये। उनको वही लौ पसद लगती है, उसी मे ही वे जल जाते हैं। हिरन और सापो को देखा होगा पकड़ने वाले बीन बजाकर और कई सुन्दर राग करके उनको वश मे कर लेते हैं। ये जीव १- १ इन्द्रिय के वश होकर अपने प्राण गवा देते हैं। पर मनुष्य देखो यह पाचो इन्द्रियो के वश मे पड़ा हुआ है। पचेन्द्रिय के आधीन होकर यह मनुष्य अपना जीवन गवा रहा है। उन्हे तो यह चाहिए कि वे धर्म करे, दया करे, प्रभु की भक्ति करे, तपस्या करे, सयम करे, ऐसा भाव बना ले जिस[illegible]क वे कर्मो से मुक्त हो पर वे वैसे ही है जैसे कोई अधा खजैला आदमी हो, भिखारी हो, उससे कहा जाय [illegible] इस नगरी मे चला जाय और मनमाना भर पेट भोजन करे। एक गाव मे चारदीवारी घिरी थी, उस चार दीवारी मे कुछ दरवाजे थे। वह उनका कोट पकड़ कर चलता है। जब दरवाजा आता है तब वह हाथ उठाकर सर खुजलाने लगता है और पैरो से चलना जारी रखता है। फिर हाथ रखकर चलने लगता है, आगे जब दरवाजा आ गया तब सर खुजलाने लगा। इस तरह से वह दु ख ही दु ख पाता रहा।

इसी तरह यह जीव ८४ लाख योनियो मे भ्रमण कर रहा है। जब यह मनुष्यभव आता है तो विषयभोग के खाज खुजलाने लगता है, उन विषयभोगो मे ही मस्त हो जाता है। फिर खोटे परिणाम करके मर जाता है । इस तरह से जन्ममरण के चक्कर मे पड़ा रहता है। इस ससार से छूटने के नाना अवसर आते है, पर मनुष्य उस समय असावधान हो जाता है। जो मनुष्य जन्म पाया है तो भीतर मे ऐसा उपयोग बनाओ कि प्रभु की भक्ति मे लग जाओ और व्यवहार से ऐसा चारित्र बनाओ कि अपने द्वारा कोई जीव दु खी न हो सके। सब सुखी रहे, उनका दिल न दुखे, किसी की झूठी गवाही न दो,

झूठ न बोलो, कोई चीज चोरी से न हड़प जाओ, किसी मनुष्य पर बुरी दृष्टि न हो, अनावश्यक धनसचय न किया जाय। यदि इस तरह का जीवन व्यतीत किया तो समझो कुछ काम किया।

अब तक बतलावो तुम्हारी उम्र इतनी हो गयी, नाना खेल देख लिया, किस किसका सयोग हुआ और किस-किस का वियोग हुआ, क्या-क्या रग देखे ? इस जगत के सारे रग देख लिए, समस्त नाच और रहस्यो को देख लिया। किसी से शाति मिली ? किसी से भी तो शान्ति नहीं मिली। जिसके पीछे मरे, उसने ही तुम्हे सताया। अपने से उनमे कुछ भी नहीं जाता और न तो कुछ उनसे अपने को मिलता ही है। तब फिर अपने एक स्वरूप को देखो। अपना स्वरूप प्रभु का ही स्वरूप है, ज्ञान पिड है, आनन्दघन है, सबसे निराला है, ज्ञान ज्योतिर्मय है। जिसमे क्लेशो का नाम नही, जहा पर कोई आकुलताये नही। आत्मकल्याणमय है, पूर्ण मगलमय है। सच पूछो तो तुम्हारे लिए तुम ही हो और मेरे लिए मै ही हूँ। ब्रह्म स्वरूप भगवान वह अन्यत्र नहीं है। मै हू, स्वत हूँ, स्वय हू, ऐसा उपयोग बनाकर रागद्वेषो से कुछ अवकाश मिले तो अपने स्वरूप के दर्शन होगे। सो भाई विषयो से विश्राम लो और अपने आपके स्वरूप मे रमकर यथार्थ आत्मपरिचय पाओ। फिर जब प्रवृत्ति मे आवो तो सब जीवो पर अच्छा व्यवहार करो। जो खोटी बाते है उनको छोड़ दो। इन कषायो से तो बरबादी ही है। क्रोध न करो, घमड न करो, जितना हो सके इन विषयो से हटकर, ज्ञान के अर्जन मे लगो, प्रभु की भक्ति मे लगो। यही इस जीवन का सार है। ऐसा करके अपने जीवन को सफल बनाओ।

इस जीव को दु ख देने वाली एक आशा है। आशा अगर लगी है तो सारे क्लेश ही क्लेश हैं। आशा मे क्लेश क्यो है ? यो कि क्लेश होते है कि आशा होती है दूसरी चीजो की । अपनी तो कोई आशा करता नहीं, मोही जीव अपने स्वरूप को जानता ही नही तो अपने स्वरूप की आशा ही क्या करे? अपने स्वरूप की आशा करे तो अपने स्वरूप को जल्दी पाले और अगर आशा मिट जाय तो क्लेश मिट जाये। बड़े-बडे योग्य पुरुष जो ऋषिजन होते है उन्होने अपने स्वरूप का ज्ञान किया और अपने ही स्वरूप की आशा की और इसी से ही सुखी हुए। परन्तु हम ये ससार के जीव अपना स्वरूप तो जानते नहीं सो पर की ही आशा कर रहे हैं और पर की आशा करने मे दु ख यह होता है कि वह पर की चीज तुम्हारे आधीन नहीं। पर की चीज अगर तुम्हे मिल भी जाय तो तुम्हारे आधीन नही। जब हमारी परचीज नहीं रही और हम आशा रखते है तो दु ख होते हैं। यह तो अपने अनुभव की बात है कि जिसकी आशा करो और वह नहीं मिलती तो वहा दुख होते हैं। ज्ञानी पुरुष वह है जो किसी की आशा न करे। जो आशा नहीं करता वही जगत मे पूज्य होता है। और पूज्य की बात तो अलग है। वे अपने मे बडी शान्ति रखते है। जो आशा रखते हैं वे निरन्तर दु खी रहते हैं। सो ऋषि लोग किसी भी बाहरी चीज की आशा नहीं रखते हैं। आशा से बडे दु ख होते हैं। सो सबको अनुभव होगा कि जिसने आशा की, वह दु खी अवश्य हुआ होगा। ये योगी पुरुष बाहर में जो बड़ा तप करते हैं, पचाग्नि तपते हैं, धूप सहते हैं, ठड सहते हैं, उपवास करते हैं ये बाहरी तप किसलिए करते हैं आशा के नाश के लिए। उसमे भी यह दृष्टि उनकी रहती है कि यह आशा पिशाचिनी मुझ से दूर हो जाय। यह आशा पिशाचिनी बड़ी

भयकर है जिसके पीछे लग जाती है उसे बरबाद कर देती है। इस जीव को मिलता तो कुछ है नहीं। यह तो दूसरो के लिए भार सहता है। जिनके लिए यह रात दिन परिश्रम करता है, उनसे कुछ मिलेगा-नहीं। यह मेरा आत्मा तो ज्ञानमय है, आनन्द का पिड है। मन की अशुद्धि की वजह से इसमे नाना विकार उठ रहे है सो तरगे उठकर ये तरंगे ही हाथ लगेगी। सो ये भी न रहेगी, और और आयेगी, चीजे कुछ नही मिल जायेगी । जैसे जिसे जो चीज मिलती है, उसकी आत्मा भी उन चीजो से न्यारी है, उन चीजो मे वह क्या तन्मय है ? बताओ करोड़पति है, अरबपति है, पर धन उसका बाहर ही पड़ा है कि धन उसकी आत्मा मे आ गया क्या ? वे तो ज्यो की त्यो चीजे हैं, उनसे कुछ मिलता भी तो नही। केवल आशा करते है। आशा करने से ही इस जगत के जीव दु:खी हो रहे है। योगीजन जो कुछ करते है वे आशा के नाश के लिए करते हैं। ज्ञानी पुरुष जो कुछ भी करते है, वे आशा के नाश के लिए करते है। सो भैया ! किसी भी काम मे आशा न रखो।

जब तक आशा लगी है तब तक क्लेश हैं। जिस दिन आशा मिट जायगी, उस दिन क्लेश भी मिट जायेगे। आजकल कभी किन्ही के कानो मे कोई भयकर समाचार सुनाई दे तो वह दु खी हो जाता है। क्यो दु खी हो जाता है। क्यो दु खी हो जाता है कि कोई आशा लगाये है सो बैठे-बैठे दु खी हो रहे है उनकी आशा पर अगर पानी फिर जाय तो फिर दु ख काहे को हो। आशा से ही बाधा लगी उससे ही दु ख बनते है। उससे ही कष्ट बढ़ते है। उस आशा का पहले ही नाश कर दो। उस आशा को आप ही स्वय समझ लो कि आशा एक विकार है, वह क्लेशो के लिए मिलती है। यदि आशा न रखे तो क्लेश न रह जायेगे। सो भैया ! पूजा करो, भक्ति करो, तपस्या करो, दान दो, कुछ भी धर्म के काम करो। उसमे आशा के नाश का लक्ष्य रखो। तुम भगवान की पूजा करो और कुछ आशा रखकर पूजा करने की भावना न करो। मेरे बच्चो को सुखी रखना, भगवान् मेरे बच्चो का पालन-पोषण करना, भगवान् मेरी गरीबी दूर हो इत्यादि आशाये रखने से भक्ति कहा रही ? भगवान की भक्ति है कि पुत्रो की भक्ति है? यदि ऐसा होगा तो दु ख जरूर होगा और यदि ऐसा नही है तो दु ख काहे को होगे ? देखो आशा का कितना गहरा रग इस मोही जीव पर चढ़ा हुआ है , जो भगवान् है, वीतराग है, सर्वज्ञ है, निर्दोष है, उन भगवान् की भक्ति करके भी आशा रखते हैं, तो कुछ भला नही होता है, फल नहीं मिलता है। फल तो तब मिलता है जब निष्कपट भक्ति होगी। यह तो कपट वाली भक्ति होगी। यह बात बहुत पते की कह रहा हूँ जिससे अपना सक्षात् भला होता है। परीक्षा करके देख लो। सब आशाओ को दूर कर दो तो आनन्द मिल जायगा। आशा को नहीं छोड़ते और आनन्द चाहते तो दोनो बाते तो हो ही नहीं सकती है। भगवान् को हम क्यो पूजते हैं कि वह सब आशाओ से दूर हैं गुरुवो को क्यो पूजते है कि वे सब आशाओ से दूर हैं। जिन भगवान् को हम पूजते हैं उनसे यदि हम आशाये ही आशाये, रखे तो जीवन मे हम शुद्ध नहीं होगे। मैं प्रभु की भक्ति करू तो आशाओ के नाश के लिए। भगवान् से कुछ मागो तो यह मागो कि हे प्रभु! कब ऐसा समय हो कि मेरे मे रच भी आशा न रहे, मै किसी पदार्थ मे आशा न लगाऊ, यह मुझे वर दीजिए। ऐसी भगवान् की भक्ति की आवाज निकले, ऐसा वर यदि

नहीं मागते है तो भगवान् भी विमुख हो जाता है। विषयो की इच्छा से भगवान् का प्रसाद नहीं मिलता है। अब यह देख लो कि किसी मित्र से मित्रता रखो और यदि उसको मालूम हो जाय कि यह स्वार्थ के कारण से मित्रता कर रहा है तो बतलावो क्या वह अव्वल मे मित्र तुम्हारा हो सकेगा ? नही होगा। जब मित्र को यह मालूम हो जाये कि इस गरज से मेरे पास आया है तब क्या कुछ महत्व रहेगा ? कुछ भी तो महत्व नही रहेगा। यदि निष्कपट होकर प्रीति मे आया है, ऐसा मालूम पड़े तो सच्चा मित्र बनेगा। भगवान् का प्रसाद तो हमे तब मिलेगा जब निष्कपट भाव से हम भगवान् के पास पहुचते है।

यहा तो ऐसी खुदगर्जी लगी होती है कि ये भगवान् की भक्ति मे नही आते, कुछ न कुछ आशाये लगाकर आते है। प्रभु की भक्ति वह है, जिसमे आशा नही है। बिल्कुल जिसने आशाओ को त्याग करके भक्ति की, प्रभु मुझे कुछ नही चाहिए, केवल मुझे उपासना भक्ति आपकी चाहिए, आप मे ही मेरा मन लगा रहे, आपके गुणो मे ही मेरा चित्त रहे, ऐसा अगर भाव है तो मै सुखी हो सकता हूँ। किन्हीं चीजो से मुझे लाभ नहीं है। हे प्रभु तुम्हारे दर्शन मुझे प्राप्त हो यही मेरी एक चाह है और मै कुछ नहीं चाहता। ऐसी भक्ति हो तो कुछ पल्ले पडेगा, नही तो कुछ पल्ले नहीं पड़ सकता है। जैसे कहते है कि एक साधु को किसी गरीब आदमी ने आहार दिया। वह आदमी बड़ा ही सयमी था, सदाचारी था। आहार देने से उसके घर मे रत्नो की वर्षा हुई। उसके पडोसी ने ऐसा सोचा कि साधु को दूसरे दिन हम भी आहार दे जिससे हमारे घर मे भी रत्नो की वर्षा हो। भोजन बनाया, साधु को भोजन खिलाया और ऊपर को देखता है कि अब बरसे, पर कहा बरसे ? वहा तो आशा रखकर साधु को आहार कराया था। तो निष्ककपट भाव से जो साधुवो की सेवा करे, उसका भला होता है। यदि आशा को छोड़ सको तो अपनी दया करके छोड़ने का यत्न करो और न छोड सके तो जो होता है वह होता ही रहता है। जब हम बच्चो की आशा करे, पोतो की आशा करे तो हम अपने ही क्लेशो को बढ़ाते है। अनुभव कर लो कि जीव बहुत हैं और सबकी मशा है जुदा-जुदा, सबकी इच्छा है जुदा-जुदा, सबका कषाय है जुदा-जुदा, वे अपने-अपने कषाय से अपना-अपना खेल करेगे। अपने-अपने सुख की ओर झुकेगे। इतनी खुदगर्जी क्यो है, यो कि आशालिप्त है। ऐसी पिशाचिनी इस आशा को छोडो और अपने आप मे झुको। तब तो कुछ मिलेगा, नहीं तो कुछ नही मिलेगा।

धर्म के काम करो और यह भाव रखो कि हे प्रभु! मेरी आशाओ का कब नाश होगा? तो किसी भी चीज की आशा नहीं करना चाहिए। सभी चीजे मिटने वाली हैं, लोग छीन लेगे। यदि न छोड सकोगे तो मरने पर सब छूट जावेगी। किसी पदार्थ की आशा न करो सो उस अपने आत्मस्वरूप की ही उपासना करो और आशा का नाश कर स्वय सुखी होवो।

धर्म उद्धारकस्त्राता पावको बान्धवो गुरु।
सोह रागादिक मुक्त्वा स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-४०।।

अर्थ– धर्म आत्मा का उद्धारक है रक्षक है पवित्र करने वाला है बान्धव है और गुरु है सो वह धर्मस्वरूप में उद्धारकवाधक रागादि को छोडकर अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

धर्म ही उद्धारक है, तुम्हारा उद्धार करने वाला धर्म है कि जिनके नाक बहती है ऐसे लड़के उद्धार कर देगे? स्त्री, पुत्र, मित्र कौन उद्धार कर देगे, कोई भी तो उद्धार नहीं करेगा, उनके सुख के लिए जिन्दगीभर परिश्रम करना ही बना रहेगा। वे कोई मेरा उद्धार न कर सकेगे, बल्कि उद्धारके काम मे विघ्न करेगे। वे इधर-उधर कहेगे कि पिताजी कुछ काम नही करते, जब देखो मन्दिर मे ही बैठे रहते है। न पैसा कमाते है, न कुछ करते है। इस तरह से पतन के लिए ही सोचेगे, उद्धार के लिए न सोचेगे। अपना उद्धार करने वाला एक धर्म ही है और रक्षा करने वाला धर्म ही है, कोई दूसरा रक्षा नही कर देगा।

जब तक पुण्य का उदय है दसो आदमी अपने पीछे लगे रहते है और यदि पुण्य का उदय नहीं आता है तो कोई नही पूछता है। अच्छी तरह से रहो, धर्म से रहो तो अपना स्वरूप ही रक्षक है। यह मै आत्मा स्वय ही धर्मस्वरूप हूँ। धर्म मुझ से अलग नहीं है, मै धर्म से मिला हुआ हूँ। मै धर्मस्वरूप हूँ ज्ञानस्वरूप हूँ। धर्म स्वभाव को ही कहते है और स्वभाव है तुम्हारा ज्ञान। अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव करो यही धर्म है और यह धर्म ही हमारा रक्षक है। मुझे पवित्र करने वाला धर्म है और अन्य मुझे पवित्र कोई नही करता।

ये जो बड़े-बड़े समारोह होते है, बड़े गाजे-बाजे बजते है? वे सब पवित्रता के लिए बजते है कि अपवित्रता के लिए बजते है। ये गाजे-बाजे तो अपवित्रता के लिए ही बजते है।

कोई लडका पैदा हुआ तो बाजे बजाते है। ये बाजे मोह मे पड़ने के लिए ही तो बजते है। वे इसमे खुश होते है। खुश होकर ही तो बाजे बजवाते है। यह अपवित्रता ही तो है। विवाह शादी आदि के समय मे बाजे बजवाना अपवित्रता ही तो है। वे अपवित्रता बनाने की तैयारी मे खुश है। तो जितने ये समारोह होते है ये सब पापो के समारोह है। ये समारोह धर्म के नहीं होते है। ये पवित्र करने वाली चीजे नही है। ये सब लोक मे फसने की बाते है। ये आत्मा को पवित्रता मे नही ले जायेगे। आत्मा के पवित्र करने की तो धर्मपरिणति है। धर्म करना, पवित्र बनना, एक ही बात की रटन लगाओ कि मै सबसे न्यारा हूँ, मेरा किसी से पूरा नही पड़ेगा, मै अपने आप को देखू और अपने आपमे ही रमू यही मेरे सुधार का उपाय है। धर्म ही पवित्र करने वाली चीज है। तुम्हारा असली बन्धु कौन है? बड़ा भाई है अथवा छोटा भाई है, वह तुम्हारा असली भाई नही है। आप लोगो ने तो जमाने देख लिए। जो ४०-५० वर्ष की उम्र के भाई है वे एक परिवार मे रहते हो ऐसा तो बहुत कम दिखता है। ऐसा तो आज शायद देखने को नही मिलेगा। तो फिर तुम्हारा बन्धु कोई नही है। जिनको अपना बन्धु मानते हैं वे भी अलग हो जाते है। वे बन्धु तो दगा देने के लिए है, नुकसान देने के लिए है, मौका पड़ने पर मतलब सिद्ध करने के लिए है। ये तुम्हारे असली बन्धु नही है। असली बन्धु तो तुम्हारा धर्म ही है। यह धर्म तुम्हे धोखा नही देगा। अपने परिणाम शुद्ध हो, क्षमा की भावना हो, अहकार न हो, सतोष हो, ये सब हो तो आनन्द मिलता है, अपने प्रभु के दर्शन होते है, अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव होता है। धर्म धोखा नहीं देता है। तुम्हारा असली बन्धु धर्म ही है। तुम्हारा गुरु कौन है? दूसरे लोग लोकाचार मे गुरु हैं। मेरा गुरु तो मैं ही हूँ क्योकि मै ही स्वय आचार-विचार से रहू तो मुझे शान्ति मिलेगी, मोक्ष का मार्ग

मिलेगा। यदि विकल्प मे हम दूसरे के आधीन हो गए तो समझो कि मुझसे भूल हो गयी। इसलिए मेरा गुरु मैं ही हूँ। जब सूर्य का उदय होता है तो प्रकाश हो जाता है। रास्ता दिखने लगता है, किन्तु चलने वाले खुद चले तभी रास्ता निकलेगा कि सूर्य चला देता है। सूर्य के चलाने से रास्ता कटता है ऐसा किसी को नहीं होता। सूर्य का काम है उजेला हो, आगे चलने वाला खुद चले। इसी तरह गुरुओका काम है कि हित की बात कह दे, आगे चलना आप लोगो का काम है। केवल बात से तो आनन्द नही आता है। अब भोजन की बात मुख से खूब कह दे कि फलानी चीज यो बनायी जाती है, तो इससे क्या पेट भर गया? अरे पहले बनाये, फिर खाये तब पेट भरेगा। लोक मे जो गुरुजन होते है वे हित की बाते बतला देते है। मै उन बातो को अपनाकर चलू तब जीवन सफल हो सकता है। परमार्थ से मेरा गुरु कौन है? मेरा गुरु मै ही हूँ। मैं ही इस लोक मे मेरे को सर्वस्व हूँ। अब इन रागो को छोड़कर गुरुजनो की बातो को पकड़कर चलू, अपने ज्ञानस्वरूप को देखू और अपने मे अपने आप सुखी होऊ मेरा सुख मेरे ऊपर निर्भर है और मेरा दु ख मेरे ऊपर निर्भर है। कोई दूसरा मुझे सुखी-दु खी नहीं कर सकता है। यदि मै राग से हटकर ज्ञाता दृष्टामात्र रहूँ, तो मै ही अपने को कुछ बना सकूगा। दूसरे मेरा कुछ नही कर सकते। दूसरा कोई मुझे गाली दे दे या कही धन का नाश हो जाय तो वहा भी दु खी कर लेना अपने विकल्प के आधीन बात है। अरे यदि धनका नाश हो रहा है तो इससे मेरा क्या नुकसान हो रहा है ? यदि किसी ने मुझे गाली दे दिया तो इससे मेरा क्या नुकसान हो गया? कुछ भी तो नुकसान नहीं हो गया। जो यहा पैदा हुआ वह यहा से जायगा जरूर तो फिर हमारा यहा क्या रहा ? हमारा यहा कुछ भी तो नहीं रहा । सो रागादि को छोड़कर अपने आपके ज्ञानस्वरूप को देख कर स्वय सुखी होऊ।

धर्मोवेशे न यात्राया वदन न च मंदिरे।
धर्मे ज्ञप्तिमये तिष्ठन्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।३-४१।।

अर्थ– धर्म वेश में नहीं है यात्रा में वन्दना में और मंदिर में नहीं है अत. मैं तो ज्ञप्तिमय धर्म में ठहरता हुआ मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

धर्म भेष मे नही है, भेष मे धर्म नही है। यह बतलाया जा रहा है कि लगोटी कस लीजिए, गेरुवे कपड़े पहिन लीजिए, लगोटी लगा लीजिए, हाथ मे कमडल ले लीजिए तो क्या इससे धर्म मिल जायगा? इन बातो से धर्म नहीं मिलता है। यह तो बाहर की बात है बल्कि धर्म की आशा से कोई ऐसा रूप बनाए तो उसको धर्म है ही नहीं क्योकि उसने आशा बना रक्खी है, धर्म किसी भेष मे नहीं मिलेगा, धर्म किसी यात्रा मे नहीं मिलेगा। चलो शिखर जी, चलो हरिद्वार वहा धर्म मिलेगा ऐसी बात नही है। वहां पर धर्म बिखरता नहीं, केवल कल्पनाये ही कर लेते हैं। कितने ही पाप करते हैं, कहते हैं, हरिद्वार चले जायेगे, गगास्नान कर लेगे तो पाप कट जायेगे। ऐसा नहीं है। खूब पाप करते हैं कहते हैं ३-४ साल मे गंगा स्नान कर लेगे। तो सारे पाप धुल जायेगे, ऐसा नहीं है।

धर्म किसी यात्रा मे भी नहीं है, किसी तीर्थ स्थान मे भी नहीं है। यहा वदना करे, भगवान् की

भक्ति करे, मूर्ति के सामने रोज सर रगड़े, इससे तो धर्म नही मिलता। तो धर्म किससे मिलता है? अभी बतला दूगा। मस्तक नमा लेना तो शरीर की चेष्टाये है, इसमे धर्म नही है। धर्म मिलेगा कैसे, अब कहेगे। क्या धर्म किसी मदिर मे मिलता है? मन्दिर मे चले गए। मन्दिर के आगे सिर नमाकर बैठ गए तो इससे धर्म नहीं मिलेगा तो मन्दिर मे भी धर्म नही है तो धर्म है क्या ? धर्म है आत्मा का स्वभाव। आत्मा का स्वभाव है ज्ञान तो इस ज्ञानस्वरूप को पाकर उसी मे ठहरे तो धर्म मिलेगा तो फिर मन्दिर मे क्यो जाते है ? मन्दिर एक धर्मस्थान है। वहा पर वीतराग सर्वज्ञता की मूर्ति विराजमान है। वह मूर्ति हमे शिक्षा देती है कि यदि शाति चाहते हो तो सारे नटखट झगड़े त्यागकर धर्म मे लीन हो जाये। मूर्ति यह शिक्षा देती है कि कही मत जावो, एक स्थान पर स्थिर हो जावो, हाथ मे हाथ रखकर मूर्ति यह उपदेश देती है कि कोई करने योग्य काम नही है। मूर्तिमुद्रा उपदेश देती है कि शान्ति चाहते हो तो आत्मा का ध्यान करो, आदर से भगवान की साधना करो। इतना करने से अपने ज्ञानस्वरूप का पता लगता है। यही व्यवहार से धर्म है। वास्तव मे अपने आपको सम्भालना ही धर्म है। यहां तो लोग ऐसा करते है, कि मन्दिर मे पहुच गए ख्याल बनाए हुए, वहा बोलते है कि भगवान् हमे सुख दो। हे भगवान् फलाने का नाश कर दो तो अब यह बतलावो कि यह धर्म है कि अधर्म है। भले ही मन्दिर मे हो। धर्म कोई चाहे तो मन्दिरमे बैठे-बैठे कर सकता है। धर्म की बात मिल सकती है। सब जीवों को एकस्वरूप चैतन्यमात्र देखो। सब जीवो को सुखी करने की भावना रखो। कोई भी जीव दु खी न हो, ऐसा सबको प्रभु के समान निरखो तो धर्म मिलेगा। बाहर ही बाहर भटकते रहने से धर्म नही मिलेगा। आप कहे कि अभी कहा है कि वदना पूजा मे धर्म नही है , हा सो ठीक है। वदना पूजा करके तो अपने ज्ञानस्वरूप की खबर आवे, प्रभु की याद आवे तो वदना और पूजा धर्म हो जायेगा और यदि अपने ज्ञानस्वरूप का ख्याल नही, प्रभु की याद न आवे तो वदना और पूजा ही कष्ट है। अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव हो तो धर्म मिलेगा। । यात्रा मे यात्रा स्वय धर्म नही है। टिकट खरीदा, गाड़ी मे बैठे, मुसाफिरो से भिड़े, कम से कम पैसो मे पहुच जाये तो ठीक है, यह सोचा । क्या अटपट सोचना कहना धर्म है? धर्म नहीं है। धर्म तो तब है यात्रा मे जब प्रभु की भक्ति हो। वह प्रभु शान्त है, शुद्ध है, पवित्र है, उनकी महिमा कौन गा सकता है ?

यदि प्रभु का स्मरण हो तो यात्रा भी धर्म है। अपने भगवान् का स्मरण रखना ही धर्म है। कहो कि भेष मे धर्म क्यो नही तो भैया भेष बना लेने से ही धर्म नहीं। अगर घर मे कुछ न हो फिर भी कहे कि हमने सब कुछ त्याग दिया यह धर्म नहीं है। अगर मात्र जानन बन गया तो यही त्याग है। धर्म त्याग मे है। कितने ही लोग धर्म के नाम पर गाजा भी पीते पिलाते, भाग भी पीते पिलाते तो इससे धर्म नहीं मिलेगा। और भी करते है पर वे इसको धर्म ही मानते है। कुछ लोग यह मानते हैं कि मदिरा पीने मे धर्म है, अफीम खाने मे धर्म है। अरे ये काम धर्ममे नहीं होने चाहिये। ऐसा गृहस्थी को विवेक होना चाहिए समझना चाहिये कि साधु महाराज आप किस तरफ जा रहे हैं, धर्म के ध्यान मे लगो। एक भूख ही ऐसी है जिसके बिना नहीं रहा जा सकता सो एक बार खा लो बाकी ध्यान करो। धर्म तो ज्ञान

मे है। तो अपने उस ज्ञानस्वरूप मे ठहरो और अपने मे ही स्वय सुखी होओ। तो भैया! धर्म ही र है, उस धर्म का ही स्मरण करो।

मोहक्षोभौ न यत्रस्त स धर्मो वीतरागता।
सा मे परिणतिस्तस्मात्स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-४२।।

अर्थ– जहा पर मोह और क्षोभ नहीं है वह धर्म है वह वीतरागता है और वह वीतरागता मेरी परिणित है इसलिये मैं निजपरिणतिमय अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

धर्म किसे कहते है? जिसमे मोह नही और क्षोभ नहीं उसे धर्म कहते है। मोह कहते है मिथ्यात्व को। किसी पर के साथ सम्बन्ध मानना इसीका नाम मोह है। जैसे मेरा पुत्र है, मेरा घर है, मेरी स्त्री है, जहा पर मेरापन का भाव हो उसे मोह कहते हैं। क्षोभ, रागद्वेष के कारण जो आकुलताये मची है उनको क्षोभ कहते है। तो धर्म वह है जिसमे मोह और क्षोभ न हो। ऐसे भी लोग है जिन्हे मोह नहीं है, पर क्षोभ है। ऐसे भी लोगो को ज्ञानी कहते है। ज्ञानी को भी किसी किसी समय क्षोभ आ जाता है तो जितने अश मे क्षोभ है वह धर्म नही है, मोह तो धर्म है ही नही । धर्म तो वीतरागता का नाम है। जहा पर वीतरागता हो वहा पर मोह और क्षोभ कैसे? शान्ति तो अपनी सत्य ज्ञानदृष्टि पर है। यहा जो चीजे अपनी नही है उन्हे अपनी माना, यह तो बहुत बड़ा पाप है। ऐसे पाप करते हुए भी कलेश न हो, यह कैसे हो सकता है? सब जुदा जुदा जीव है, जुदा जुदा बाते है, जुदे जुदे परिणमन हैं और फिर भीतर मे यह मानते कि मेरा सब कुछ है। यह मानना तो बड़ा पाप है। असदूव्यवहार से किसी जीव को सता लिया जाय, किसी का किसीसे घात हो जाय, हत्या हो जाय तो उसे मानते है कि बड़ा पाप किया। कोई किसीका घात कर दे उसे कहते है बडा पाप है। जीव घात करने से भी बड़ा पाप है। मोह परवस्तु को भीतर में समझ ले कि यह मेरी है, यह सबसे बड़ा पाप है। घर मे रहते हो, धर्म की बात मानते हो, पूजा करते जीवन गुजार रहे हो और आप मान रहे हैं कि हम सही मार्ग मे है, मोक्षमार्ग मे हैं, भगवान् की सेवा पूजा करते है, यहा हम शुद्ध मार्ग मे है। पर भीतर यह टटोलो कि तुम्हारे अन्दर यह परिणाम है कि नहीं यह मेरा घर है यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी ही तो देह है, यह देह ही तो मै हूँ, इस तरह पादर्थो मे आत्मबुद्धि आती है, तो यह बहुत बड़ा पाप है। महसूस नही कर रहे है, अपने घर मे बैठे है, आनन्द से बैठे है, कुत्ता, बिल्ली पर दया करे, पर अपने आप पर दया न करे तो विवेक तो न रहा। चूहे को बचा दिया, बिल्ली को बचा दिया और यह समझ लिया कि हम बडे धर्मात्मा है। लालटेन जलने पर कीड़े आते हो और छिपकली कीड़ो को खाने आती हो तो उन कीड़ो को बचा दिया, मान लिया अच्छा यदि यह करते हो तो ठीक है, मगर यह चाह न करो कि हम स्वर्ग जायेगे। यह न चाह करो कि हम अच्छी ही गति मे जायेगे, ऐसी आशा न रखो। आशा ऐसी रखो जिससे भीतर मे मोह परिणाम न हो। कुत्तो पर दया करो, बिल्लियो पर दया करो, यह तो ठीक है। पर परमार्थ दया वह कहलाती है कि मोह न हो। ज्ञान सही आ जाय यही तो आत्मा की दया है। जब तक ज्ञान सही नहीं आ जाता सम्यग्दर्शन नहीं होता है। कितने ही व्रत कर लो, तप कर लो, सयम कर लो, मुनि

भी हो जाओ, पर सही ज्ञान जब तक नही आयेगा तब तक अच्छा फल नहीं मिलेगा। इसलिए सबसे बड़ा पाप मोह है। यह मोह न रहे तो उसे धर्म कहते है और यह बतलावो मोह किस चीज का करते हो? तुम्हारी चीज हो तो मोह करो। ये चीजे तुम्हारी है क्या? बतलावो। यह हमारा घर है, अरे अगर मान लो सरकार छीन ले तो अगर कोई जबरदस्ती छीनना चाहे उसे दे दो तो या न ले ठीक-ठीक रहे तो मरोगे तब तो छोड़ना ही पड़ेगा। तो फिर कोई वश नहीं चलता। फिर तुम्हारे घर, पुत्र, स्त्री आदि कैसे हुए? बतलावो। उन सबके लिए ही चाकरी कर रहे हो, स्त्री पुत्रो की सेवा कर रहे हो। मरे जा रहे है, पर स्त्री, पुत्र, परिवार की सेवा कर रहे है। उनके पुण्य का उदय है इसलिए कमाने वाले टट्टू से जोते जा रहे है। और उनसे ही आशा कर रहे हे। तो इससे हटे तो अच्छे हो जाये। यदि हम सही हो जाये तो ठीक है। और यदि नही हुए तो हमे मोह होगा। मोह ही सबसे बड़ा पाप है। दुनिया मे इस शरीर के द्वारा जितने भी पाप होते है सब मोह के ही पाप है। ये मोह बड़े सस्ते लग रहे है, खूब चिपक रहे है, लिपटा रहे है, पर इस मोह के कारण दुनिया मे अहकार है। जिसमे मोह और क्षोभ नहीं होता है उसे धर्म कहते है और वह धर्म वीतरागता है। सो ऐसा मेरा स्वभाव हो कि मै वीतरागी बन जाऊ, केवल ज्ञानपरिणमन रहूँ, तो मेरा जीवन सफल हो सकता है, मेरी ही तो वह परिणति है। इस कारण मैं अपने ज्ञानस्वरूप को ही देखू मै ज्ञान और आनन्द से ही रचा गया हूँ, ज्ञान और आनन्द का पुञ्ज हू अर्थात् मेरे मे और कुछ नही भरा है। मेरे मे न रूप है, न रस है, न गध है, न स्पर्श है। मैं तो केवल ज्ञान और आनन्द से भरा हू। सो मै अपने ज्ञानमय तत्व को देखू और स्वय सुखी होऊ।

लोके रिक्तं न तत्स्थानमनता जन्ममृत्यव·।
नाभूवन् यत्र कि रज्यै स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-४३।।

अर्थ– लोक में ऐसा स्थान कोई खाली नहीं है जहाँ पर्याय बुद्धि होते हुए मेरे अनन्त जन्म मरण न हुए हों। बस अब क्या राग करू ? मैं तो अपने में अपने लिए अपने आप सुखी होऊ।

यह कैसा मोह अपने मे आ गया है कि जन्म मरण के चक्कर यह जीव काटता चला आ रहा है। इस दुनिया मे ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जिसमे इस जीव ने जन्म न लिया हो और मरण न किया हो। एक भी जगह नहीं बची जहा पर इस जीव ने जन्म न लिया हो। अनन्त बार इस जीव ने जन्म लिया और अनन्त बार मरण किया। जिस जगह इस जीव ने जन्म लिया, वहा भी इस जीव ने राग किया। अच्छा बताओ, राग किया कि नही किया। फिर भी पेट राग करके नहीं भरा, रागो से तृप्ति नहीं हुई। इस समागम मे क्या तृप्ति हो जायगी ? क्या मन भर जायगा ? नहीं। तो असलियत पहिचान लो घर मे रहते हुए विरागी बनो। राग से लाभ नहीं है। इसलिए राग रहित अपने को देखो। कहा राग करते हो ? यह लोक कितना बडा है? मन्दिर मे कहीं-कहीं लोक के नक्शे बने रहते है? ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। ये सब लोक ३४३ घन राजू प्रमाण है। कहते हैं, रूस, जर्मनी, जापान, ब्रिटिश ये समस्त भरतक्षेत्र की एक थोडी सी जगह मे है। भरत क्षेत्र मे यह पूरी दुनिया नही है। भरतक्षेत्र के ५ हिस्से है। उसमे एक आर्यखड है, उसकी थोडी जगह मे ये वर्तमान अवगत सारी दुनिया है तो भरतक्षेत्र कितना

बड़ा है? जम्बूद्वीप इत्यादि असख्य बड़े द्वीप हैं। कोई जगह नही बची जिसमे इस जीव ने जन्म न लिया हो, मरण न किया हो। और जब जन्म लिया था तो जैसा समागम मिला था वैसे ही उसी परिवार में झुक गए थे। और उन जीवो मे बार बार राग करते रहे। इसी तरह वर्तमान मे भी रागद्वेषो मे ही सारी जिन्दगी गुजार दी, कुछ भी चीजे हाथ मे नहीं रही। धर्म नही किया, मोह राग ही सदा किया। यह तो इस जीव ने अच्छा नहीं किया। हा धर्म मे दृष्टि दे दो तो कुछ चीज साथ मे रह जायेगी और अगर धर्म न किया तो कोई भी चीज साथ मे नही रहेगी। धर्म साथ मे रख लेने की चीज है कि परिवार कुटुम्ब इत्यादि मे रागद्वेष मोह करना ठीक है ? यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है आदि। अरे ये सब मिट जाने वाली चीजे है। तो जो मिट जाने वाली चीजे है उनसे तो प्रीति करते और जो अपनी चीज है, जिस पर अपना अधिकार है उससे प्रीति नही करते। रात दिन चौबीस घण्टे यह व्यर्थ मे ही तो जा रहे है। कमाई मे कितना समय लगता है, दुकानमे समय लगता है थोड़ा ही तो, और बाकी समय गप्पो मे ही तो जाता है। इधर उधर की बातचीतो मे ही तो जाता है। धर्म मे दृष्टि हो तो जीव को कुछ पुण्य भी हो जाय, नही तो जैसे अनन्तो भव गुजर गये तैसे ही यह भव भी गुजर जायगा। तो भैया राग मत करो। इन रागो को छोड़कर रागो से रहित अपने स्वभाव को देखकर अपने आप मे ही तृप्त होकर सुखी होओ। परकी आशा न रखो।

लोक कृतवान्न कोपीम हरिष्यत्यपि नो तथा।
अमरोऽहमजन्माह स्या स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-४४।।

अर्थ– किसी ने भी इस लोक को नहीं किया तथा कोई इस लोक को न नष्ट करेगा यहा मैं तो अमर और अजन्मा हूँ इसलिये अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊ।

हम क्या है ? इस बात पर विचार करे। हम एक चेतन पदार्थ है। हमको किसने कभी बनाया था क्या? किसी ने नहीं बनाया था ? बनाया था तो किन चीजो से बनाया था ? हम अनादि से है और जो प्रभु की शक्ति है, चैतन्यस्वरूप है वह भी अनादि से है। इस अपने स्वरूप को ही प्रभु कहते है। यदि अपने स्वरूप को देख लो तो प्रभु के दर्शन हो गए। इस मुझको किसी ने कुछ नही किया। मै तो अजर अमर हूँ, मैं तो अजन्मा हूँ, न मेरा कभी जन्म हुआ और न मरण हुआ। जैसा मै हूँ, तैसे ही जगत के सब जीव हैं। जैसे मेरा जन्म मरण नही है तैसे ही सब जीवो का जन्ममरण नहीं है। मुझे किसी ने नहीं बनाया। मै अनादि से हूँ। मेरा कोई अन्त नही है। फिर यही तो लोग कहते है। जीवो को, समुदाय पुदगलो को, ६ द्रव्यो को ही लोग समुदाय कहते है। तो इस लोक मे मुझे किसीने नहीं बनाया और न मेरा कभी नाश हो सकेगा। तीन काल मे मैं कभी नष्ट नहीं हूँगा, सदा बना रहूगा। मै कैसा बना रहूँगा? अपने परिणाम की बात है। यदि हम खोटे परिणाम करेगे तो खोटे ही बने रहेगे और यदि अच्छे परिणाम करेगे फिर तो अच्छे ही बने रहेगे। मुझको न तो किसी ने बनाया और न कोई मिटायेगा। मै अपने ही परिणमन मे रहता हूँ। तो जो मेरी दशाये मिटती हैं वे मिटने की चीज है और जो दशाये बनती हैं वे बनने की चीज है। पर मैं जो हूँ वह अजन्मा हू। इस मुझको किसी ने नहीं बनाया और न कोई

मिटायेगा। जब मै कभी मिटूगा नहीं तो यदि इस संसार मे रहे तो ये दशाये बनी ही रहेगी। अब तुम्हे क्या मजूर है ? इस संसार के गर्त मे भ्रमण करना मजूर है या केवल ज्ञाता दृष्टा रहना मंजूर है। ससार मे भ्रमण करना स्वीकार न करो। ससार मे भ्रमण करना यदि नहीं चाहते हो तो ऐसा उपयोग होना चाहिए कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ। मैं उस प्रभु की ही उपासना करू इस जगत् मे कोई शरण नहीं है। मेरा इस जगत् मे कोई शरण नही है। मेरा इस जगत् मे कोई साथी नहीं है। तो भैया! सबकी प्रीति छोड़कर अपने आपको देखो, अपने प्रभु के देखने के अतिरिक्त तेरा कोई काम ही नही है। ऐसा विचार रखो कि मै परिपूर्ण हूँ, अछूता हूँ, ज्ञानमात्र हूँ, ऐसा यदि उपयोग रहे तो दु ख नहीं होते हैं। गुरुवो के सत्सग से, गुरुवो की आध्यात्मिक वाणी से शुद्ध ज्ञान बनता है। शुद्ध ज्ञान होने से ही जीवन सफल है यदि मोहदृष्टि रहे तो ऐसा जीवन पशु के समान है और ऐसा जीवन पाने से कोई लाभ नहीं है।

लोके द्रव्याण्यनेकानि वर्तन्ते किन्तु वै निजे।
अहन्तां कि पुनः कुर्या स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-४५।।

अर्थ– लोक में द्रव्य अनेक हैं किंतु निश्चय से तो निज ही में हूँ फिर क्या-क्या अहंकार करूं मैं तो अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

इस लोक मे पदार्थ कितने है ? कितनी चीजे आखो से देखने मे आती हैं ? कितनी चीजे दुनिया के अन्दर है ? (किसी ने कहा असख्य) और असख्य नहीं, अनन्त हैं। असख्य उसे कहते है जिसकी गिनती तो नहीं है, मगर आखिरी जरूर है। अनन्त उसे कहते है, जिसमे आखिरी भी नही होती है, तो इस लोक मे पदार्थ अनन्त है। जैसे चौंकी देख रहे हो तो यह एक पदार्थ है कि अनन्त पदार्थ ? अनन्त है, एक पदार्थ नहीं है। एक तो उतनी चीज होती है जिसके टुकड़े नहीं होते हैं और चौंकी वगैरा के तो टुकड़े हो जाते है, यह वैज्ञानिक सत्य है। जो यूनिट है, अविभाज्य है, वह एक कहलाती है। यह शरीर एक पदार्थ नही है, किन्तु परमाणु एक पदार्थ है, जो अविभाज्य हो जिसके टुकड़े न हो वह एक कहलाता है। ऐसा अविभाज्य एक परमाणु है। यह शरीर एक पदार्थ नहीं है, किन्तु अनेक परमाणुओ का पिड स्कन्ध है। यह शरीर अनन्त परमाणुओ के समूह द्वारा बना है। यह शरीर एक नहीं, अनन्त है। यह टूटता नहीं अनन्त है बल्कि बिखरता है। जैसे अगुली टूटी नहीं, बल्कि बिखर गयी। अनन्त थी और अलग अलग हो गई। यह शरीर एक नहीं, बल्कि अनत परमाणुओ का पुञ्ज है, समुदाय है सो यह टूट टूटकर, चूर चूर, होकर छोटे छोटे अश बन जाता है, बिखर जाता है। एक चीज वह कहलाती है, जिसका दूसरा टुकड़ा न हो सके। जैसे भौतिक मे एक-एक परमाणु है, और जीवो में एक-एक जीव है। हम और आपका सबका एक-एक स्वतन्त्र जीव है इसके अश नहीं हो सकते। वह तो पूरा का पूरा ही रहेगा। एक चीज वह कहलाती है, जिसका दूसरा अश न हो सके। तो परमाणु अनन्त हैं और जीव अनन्त है। हर एक जीव एक है, यो सब अनन्त हैं। सबका अस्तित्व न्यारा-न्यारा है, सबका अनुभव न्यारा-न्यारा है, सबकी परिणति न्यारी-न्यारी है। इस कारण जीव अनन्त है, पर जाति अपेक्षा जीव एक है। जितने जीव हैं, वे सब चैतन्यस्वरूप है, सबका एकसा स्वरूप है। इसलिए जाति अपेक्षा एक है, पर

अनुभूति की अपेक्षा, परिणति की अपेक्षा अनन्त हैं। जैसे दो मन गेहूँ भर रखा तो बतलावो गेहूँ, एक है कि अनेक है, मगर जाति अपेक्षा एक है, गेहूँ की जाति एक समान है। इसलिए गेहूँ एक है और अनेक भी है। इसी तरह जीव एक है और अनेक भी हैं। इसी तरह लोक मे देखो तो द्रव्य अनन्तानन्त हैं। किन्तु वे हैं सब अपने-अपने ही स्वरूप मे। किसी द्रव्य के स्वरूप मे किसी दूसरे द्रव्य का प्रवेश नहीं है।

जैसे एक गिलास मे पावभर दूध और पावभर पानी मिला हुआ हो तो दोनो के मिले होने पर भी दूध के स्वरूप मे दूध है और पानी के स्वरूप मे पानी है। न तो दूध का पानी बन गया और न पानी का दूध बन गया। दूध मे जो रस है, स्वाद है, दूध की जो परिणति है, वह दूध मे है पानी मे नहीं। तो दूध जुदा और पानी जुदा है। एक गिलास मे एक आधा सेर पानी है तो पानी एक समान है। पानी का एक एक कण ले लो वह एक समान है। एक-एक बूद ले लो एक समान है। फिर भी प्रत्येक कण अपने-अपने स्वरूप मे है। किसी बूद मे दूसरा बूद मिला हुआ न मिलेगा। ऊपर से तो मिलेगा, मगर स्वरूप देखे, करेक्टरिस्टिक (गुण) देखो तो किसी कण का स्वरूप दूसरे कण के स्वरूप मे न आवेगा, ये पानी की बात है। ऐसी ही बात देह मे देखो तो अनन्त परमाणु है, प्रत्येक परमाणु अपने अपने स्वरूप मे है। किसी परमाणु मे दूसरे परमाणु का स्वरूप नहीं है तो एक का यदि दूसरे मे स्वरूप आ जाय तो अनेक नहीं रहेगे एक हो जायगा। फिर तो सर्व सर्वात्मक होगा, किन्तु ऐसा तो नहीं है। सर्व सर्वात्मक होने के मायने कोई भी कुछ न रहा और है सो सब । सबकी भिन्न प्रकृति है, भिन्न-भिन्न अस्तित्व है। इसलिए सिद्ध है कि जगत् मे जीव अनेक हैं, जगत मे और सब अलग-अलग रहते हैं तो मैं अपने स्वरूप मे हूँ। दूसरे अपने ही स्वरूप मे रहे, न उनमे मैं गया और न मुझमे वे आये, फिर मै अहकार किसलिए करू कि मै तो यही हूँ ऐसा अहकार क्यो हो जबकि वस्तु का स्वरूप अलग-अलग है। इसलिए अहकार न करो, अपने स्वरूप को अपने आप मे देखो। जगत मे कितना ही भाग लो, दौड लो, उसमे शान्ति न मिलेगी। इस लोक मे ही देख लो जो राजा महाराजा लोग ऐश आराम मे रहते थे विषयो मे रहते थे, मदिरा पान करते, वेश्या इत्यादि से नृत्य कराते थे, उनको देख लो सब खत्म हो गए और और भी सोच लो, जो बड़े बड़े लोगो के लड़के होते हैं, उनमे जो व्यसनो से जकड़े होते हैं, वे कुछ ही दिनो मे बरबाद हो जाते हे। धन का विनाश व्यसनो से ही होता है, क्योकि व्यसन है तो खोटी परिणति ही, इस खोटी परिणति से ही अपने को बिगाड़ लेते हैं। इन व्यसनो का मूल है मोह। तो यह चीज दोपहर मे भी कही थी कि सबसे बड़ा पाप है मोह। मोह कितना बडा पाप है ? ये शिकारी लोग जो जीवहत्या करते हैं वे इस मोह से ही करते है इसलिए वे तो पापी है ही, मगर उसमे भी भेद करो तो जीव हनन से भी अधिक पाप मोह ही है, मोह का परिणाम पाप ही है। मोह मे तो भीतर अधेरा ही रहता है। वह और कोई ज्ञान का काम नहीं करने देता है। सो जो अहकार है वह मोह की ही तो बात है। इस मोह को बाहर कर अपने स्वरूप को देखो और अपने मे अपने लिए अपने आप स्वय सुखी होवो।

अक्षि पूर्णत्वसज्जातिध्यादि दुर्लभवस्तुनि।
प्राप्ते लाभो यदि स्वस्थ: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-४६।।

अर्थ– इन्द्रियों की पूर्णता, उत्तमजाति बुद्धि आदि दुर्लभ वस्तु के प्राप्त होने पर लाभ तब माना जावे जबकि मैं स्वस्थ होऊं इसलिये अब स्वस्थ होता हुआ मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

पहिले तो इस जगत् से जीवो मे दृष्टि पसारकर देखो तो कितनी ही तरह की स्थिति के जीव पाये जाते हैं। कोई जीव पृथ्वी कायिक है, कोई जलकायिक है तो कोई अग्निकायिक तो कोई वायुकायिक है, कोई वनस्पतिकायिक है, कोई अनेक इन्द्रियों वाला है। यह जो अग्नि जलती है वह भी एक जीव है। कोई तो पेड़ रूप है, कीड़े-मकोड़े रूप है, कोई जीव पशुपक्षी रूप है, कोई देवतारूप, कोई मनुष्यरूप है। जीवो की स्थितियॉ अनेक है। उनमे सबसे निम्न श्रेणी एक इन्द्रिय जीव की है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तथा इस वनस्पति का एक भेद निगोद भी है। इन जीवो की स्थिति सबसे निम्न है। उनके जीभ भी नही है, मन भी नहीं है, वे सोच भी नहीं सकते, वे असहाय है, अग-उपाग भी नहीं हैं, वे चल भी नही सकते।

ऐसे एक इन्द्रिय वाले जीव सबसे अधिक निम्न है। यदि कुछ इनका विकास हुआ तो दो इन्द्रिय वाले हो गए तो एक इन्द्रिय से छूटकर दो इन्द्रिय बन जाना दुर्लभ है कि नहीं। दो इन्द्रिय के जीव बन गए तो उससे अधिक जब विकास किया तो तीन इन्द्रिय के जीव बन गए। जिनके स्पर्शन, रसना और घ्राण है, ऐसे तीन इन्द्रिय के जीव बन गए। दो इन्द्रिय से तीन इन्द्रिय मे आना कठिन है। तीन इन्द्रिय से विकास करने पर चार इन्द्रिय मे जीव जाते है जिनके आख भी हो, कान न हो, जैसे मक्खी, मच्छर आदि। यह होना उससे भी अधिक दुर्लभ है फिर पाच इन्द्रिया आयीं उनमे भी असज्ञी हुए तो मोक्षमार्ग नही चल सकता। पचेन्द्रिय मे भी मन का पाना दुर्लभ है। मन वाले बने, मनुष्य बने और मनुष्य बनकर भी सब इन्द्रिय सही रहे, चेतना युक्त रहे तो इन्न्यिोकी पूर्णता पाना यह उससे भी अधिक दुर्लभ है। इन्द्रिया भी पूर्ण हो और जाति भी उच्च न हो तो भी कोई श्रेष्ठ नहीं, उच्च जाति मे जन्म हो जाय, उच्च परम्परा हो, उत्तम रीति रिवाज हो ऐसी जगह भी पाना दुर्लभ है और उच्च जाति मे भी जन्म ले लिया मगर बुद्धि न ठीक हुई तो बेकार सो बुद्धि का मिलना दुर्लभ है मान लो इन्द्रिया भी हैं, जाति कुल भी अच्छा मिल गया, पर बुद्धि नहीं है तो बेकार है न सब।

जैसे किसी-किसी रईस के लड़को को देखो तो वे बाहर से तो सुन्दर लगते हैं, मगर उनसे बात करके देखो तो स्पष्ट बेवकूफ नजर आते है। ऊपर से चाहे कोट हो, पैन्ट हो, बूट हो और ऊपर से एक टोप रखे हो, मगर उनसे जरा बात करके देखो तो वे अटपट बाते करते हैं। तो पाचो इन्द्रिया पा जाना, अच्छी जाति, कुल पा जाना हुआ, फिर भी विवेक न जागा तो यह जिन्दगी उनकी बेकार है कि नहीं बतलावो? बेकार है। ऊची जाति भी मिल गई, सब कुछ मिल गया, बुद्धि भी मिल गई, किन्तु उसका उपयोग न किया याने उनमे बुद्धि कार्यान्वित करने की सुमति न हो तो भी बेकार है। धर्म सच न हो तो यह और सब भी बेकार है। धर्म का प्रसग भी पा लिया, फिर भी यह जीव अपने स्वरूप में स्थित

नहीं होता तो यह पायी हुई चीज भी व्यर्थ है। दुर्लभ वस्तु पाने का प्रयोजन यह था कि यह आत्मा अपने स्वरूप मे स्थित है और आनन्दपुञ्ज अपने आपके स्वरूप मे तृप्त होकर कर्मो का क्षय कर ले, कर्मो से छूटने का उपाय बना ले, इसलिए दुर्लभ वस्तु प्राप्त हुई थी। सभी समागम पाया और पाने पर भी स्वस्थ न हो सके तो सब व्यर्थ है। लाभ तो तब है जब स्वस्थ हो जाऊ, स्वस्थ होकर यथार्थ ज्ञान पाऊ और वैसा ही ज्ञान करता रहूँ। यदि ऐसा हो जाय तो स्वय मे अपने मे अपने लिए अपने आप सुखी हो सकता है। सुख दूसरे के आधीन नहीं है। कोई दूसरा मुझे सुखी दु खी कर दे यह हो ही नहीं सकता है। यह आत्मा ही सारे वैभवपूर्ण है। पर ख्याल उल्टा बना लिया और दु.खी हो गये। यह जीव ख्याल बनाकर ही दु खी हो जाता है। जैसे कोई रईस गद्दो पर पड़ा हुआ है, नौकर चाकर काम कर रहे हैं, लड़के काम अपना-अपना कर रहे हैं। किन्तु अभी कोई दु ख का ख्याल बना ले, लड़का मेरी बात नहीं मानता, इसने ऐसा काम नहीं किया तो इतने से ही दु खी हो गए। सो दु खी होना किसी दूसरे के आधीन नहीं है, दु खी होना तो अपनी कल्पनाओ के ही आधीन है। सो अपनी कल्पनाये आकुलतायें मिटाओ और अपने आप मे सुखी होवो।

आत्मयाथात्म्य विज्ञानं दुर्लभादपि दुर्लभम्।
लभै रमै च तत्रैव स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-४७।।

अर्थ– आत्मा के यथार्थ स्वरूप का बोध दुर्लभ से भी दुर्लभ है मैं तो उस आत्मज्ञान को प्राप्त करूं और आत्मा में ही रमण करू और अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

दुनिया मे अनेक पदार्थ दुर्लभ हैं, पर सबसे अधिक दुर्लभ चीज अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान करना है। यही सबसे दुर्लभ चीज है।

**"धन, कन, कचन, राज सुख सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है ससार में एक यथार्थ ज्ञान।"**

धन, कन, कचन आदि मिलना तो ससार मे सुगम है पर आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होना कठिन है, सही ज्ञान हो जाना यही दुर्लभ चीज है। देखो आत्मा स्वय प्रकाशवान चीज है, फिर उसको ढूढने के लिए प्रकाश की जरूरत पड़े, ऐसा क्या हो सकता है ? जलती हुई लालटेन को उठाने के लिए दूसरी जलती हुई लालटेन की आवश्यकता नहीं। किसी ने कहा कि कमरे मे लालटेन जल रही है उसे उठा लावो। सो कहे कोई कि दूसरी लालटेन जलती हुई दे दो तो हम उठा लावे। अरे जलती हुई लालटेन की क्या आवश्यकता है ? कोई आवश्यकता नहीं है। यत्न करने की जरूरत नहीं थी। यहा तो स्वय ज्ञान की बात ज्ञान के द्वारा आना चाहिए थी, पर यहा अधेर मच गयी। यह अधेर मोह से,अज्ञान से मची हुई है। अभी देखो कोई मनुष्य जो बड़ा बुद्धिमान है। उसकी बुद्धि हर विषय मे बहुत अच्छी चलती है। किसी प्रकार का कषाय आ जाय तो फिर उसकी बुद्धि नहीं बढती, उसकी बुद्धि रुक जाती है। जैसे कि वकील विपक्षी को गुस्सा दिलाया जाय। गुस्सा आ जाने पर विपक्षी ठीक बयान नहीं कर पाता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, पतित हो जाती है। यह बुद्धि मोह रागद्वेषसे खराब होती है।

यदि व्यवस्था रहे बुद्धिकी तो यही सबसे बड़ा वैभव है। सबसे बड़ी चीज क्या है दुनियामे? सबसे बड़ी चीज है आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान करना वह दुर्लभ से भी दुर्लभ है। किन्तु ये स्वयं अपने में मुड़ते नहीं हैं, इसलिए दुर्लभ है। अपने स्वरूप की ओर दृष्टि दे तो इससे सुगम और कुछ नही है। यह तो सुगम है, प्राप्त ही है। निकट की बात क्या है? अंतर मे ऐसी दृष्टि नहीं है। सुगम होते हुए भी दुर्लभ है जैसे मुट्ठी मे कोई चीज हो, जैसे अंगूठी या और कोई मूल्यवान चीज हो और उस चीज को भूल जाये तो वह चीज कितनी दूर हो गयी ? अरे वह तो बिल्कुल ही दूर हो गयी। अब पेटियो मे ढूंढ़ते हैं, पर नहीं मिलती है। जिस चीज को ढूढते है वह है मुट्ठी मे, पर कितनी दूर हो गयी ? अप्राप्य हो गई। वह बहुत दूर हो गई, अप्राप्य हो गई। कहीं बक्स खोलते, कही बिस्तर खोलते। दूसरे दिन दाहिने हाथ से सदूक खोलते थे, अब बाये हाथ से खोलते है, दाहिने हाथ मे चीज बांधे है। न मिलने पर दु ख हो रहा है। देखो है मुट्ठी मे ही, पास मे ही, पर भूल जाने पर वह चीज कितनी दूर हो जाती है ? इसी तरह यह आत्मा कैसी है और बाहर है क्या? निकट है क्या ? और निकट की बात क्या, खुद ही तो शान्तिमय है, आनन्दस्वरूप है, मगर खुद को भूल गए तो यह आत्मा कितना दूर हो गया?

बहुत दूर हो गया, खुद और दूर। अरे यह कितने आश्चर्य की बात है कि आत्मा है खुद और दूर हो गई, कितनी अधिक दूर हो गई, अप्राप्य भी हो गई। तो आत्मा का ज्ञान होना बहुत दुर्लभ चीज है। सबसे बड़ी भारी विपत्ति यह है कि मिले हुए सारे पदार्थ समाप्त हो जायेगे सबका वियोग हो जायगा। कुछ भी हमारा आपका नही है। मगर यह आत्म स्वरूप मेरा है, आपका है, यह तो कभी मिटेगा नहीं। यह तो सदा रहेगा, इस निजस्वरूप का ज्ञान न करके यह जीव कितना भटक रहा है, जन्म मरण करता यह जीव चला जा रहा है ? अपने आत्मस्वरूप का बोध न होने से ही यहा भटकना पड़ रहा है। तो अब समझ लीजिए कि सबसे दुर्लभ चीज क्या है ? आत्मा के स्वरूप का ज्ञान होना ही दुर्लभ चीज है। चित्त क्षुब्ध है, आकुलताये करते हैं और दु खी होते है, देश पर आक्रमण की बात सुनकर कितना दुख सबको होता है, समाज की, घर की बातो को सुनकर कितना दु ख हो जाता है ? इस सारी दुनिया के सारे क्लेश मिट जाये ऐसी इसकी कोई पेटेन्ट औषधि है ? सारे क्लेशो को दूर करने की औषधि ज्ञान है। अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होना ही सारे क्लेशो को दूर करने की दवा है। जैसे अमृतधारा चला है वह १०० रोगो की दवा है। पेट दर्द, सिर दर्द तथा अन्य दर्दो के लिए यह अमृतधारा दवा चली है तो जैसे अमृतधारा बन गया है। उसी प्रकार दु खो को मिटाने के लिए अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होना एक परमार्थ दवा है। भारी क्लेश हो रहे हो, जरासा अपने स्वरूप की ओर झुको, अपने ज्ञानस्वरूप मे डुबकी लगा लो तो सारे क्लेश दूर हो जाये। जैसे बड़े समुद्रो मे मछलिया होती हैं। एक-एक, दो-दो मील की लम्बी तो लोग समझते है कि यह कोई टापू है, उसमे बड़ी-बड़ी घास उग जाती है, उस पर बड़ी-बड़ी सेनाये बस जाती हैं। उस मछली पर बहुत बड़ा बोझ आ जाता है, बोझ आ जाने से क्लेश आ जाते है। उसमे क्लेश के मिटने की कुजी यह है कि वह नीचे डूब जाय। तो इस जीव को सकट दूर करने का क्या उपाय है कि वह अपने ज्ञान के समुद्र में डूब जाय। उन सब सकटों को मिटाने की

दवा यह है कि वह अपने को समझे कि मै ज्ञानमात्र हूॅ। ये सब मुझसे अत्यन्त जुदे हैं। कोई कैसे है, कोई कैसे ? इन सबकी उपेक्षा कर लो, अपने ज्ञान की प्रतीति कर लो, अपने आप मे डूब लो फिर अपने सारे दु ख समाप्त कर लो। जैसे किसी घर मे इष्ट का वियोग होगा तो समझाने वाले लोग सबको समझाते हैं, तो यही कहेगे कि वे भिन्न थे, वे आये थे और चले गए। इसलिए समझाते हैं कि उनसे उपेक्षा हो जाय और बात ज्ञान की आ जाय। अपने आपको अकेला अनुभव कर सके तो वे सुखी हो जाये। ऐसे हो तो एक यह ही उपाय है कि आत्मा का सच्चा ज्ञान हो और आत्मा मे ही रगड़ा करके उसमे ही तृप्त होकर ही दु ख दूर करने का उपाय करे।

यस्य ज्ञायक भावस्य स्वस्य वित्ति विना जगत्।
ज्ञातं व्यर्थं हितं ज्ञात्वा स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।३-४८।।

अर्थ– जिस ज्ञायक भाव स्वरूप स्वके ज्ञान के बिना जाना हुआ समस्त जगत भी व्यर्थ है इसलिये हित को जान कर मैं अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होऊं।

यह आत्मा स्वय ज्ञायकस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है याने ज्ञान ही इसका सारस्वरूप है। सबसे विलक्षण यह ज्ञानमय पदार्थ है। इसी को ही ज्ञायकभाव कहते है। आत्मा के अन्दर कौन सी चीज है ? यदि ऐसा पूछा जाय तो क्या उत्तर दोगे ? आत्मा मे रूप है कि रस है, ईट है, पत्थर है, सो बतलावो। आत्मा मे क्या मिलेगा ? आत्मा मे मिलेगा केवल ज्ञान। जो जानकारी है जो ज्ञान है सोई आत्मा है। ऐसा जो मात्र ज्ञानस्वरूप आत्मा है उसको यदि न जाना तो, इस मर्म मे न पहुंचो तो सारा जगत् भी जान डालें, दुनिया भर समझ डाले तो भी वह सारी समझ व्यर्थ है। एक अपने आत्मा के स्वरूप का ज्ञान किया तो ज्ञान सफल है और यदि एक ज्ञान ही आत्मा मे नहीं आता तो सारे लोक को जानता रहे तो वह सारा जानना बेकार है। अब यह जीव या हम और आप अपने आपको इस रूप मे देखे कि यह मैं केवल ज्ञान ज्योति रूप हूॅ। शरीर का भी भान न रखना, शरीर मे भी दृष्टि न रखना, केवल ज्ञान ही ज्ञान का प्रकाश अपने मे नजर आवे और ज्ञानरूप ही अपने को जानता रहे तो उस समय से आत्मा की सच्ची जानकारी होती है। हम और कुछ अपने को जाने तो सत्य जानकारी नहीं कर सकते। यही बात प्रभु की है, भगवान की है। भगवान को यदि स्वच्छ असीम ज्ञानरूप देखो तो प्रभु के दर्शन हुए समझो और प्रभु को यदि और और रूप वाला देखो, हाथ पैर वाला है, घर मे रहने वाला है, अमुक का लड़का है, अमुक का पिता है और कई रूपो मे देखो तो प्रभु का अनुभव न होगा, प्रभु का ज्ञान न होगा। प्रभु का ज्ञान और अनुभव उसको ही होगा जो अपने आप के ज्ञानस्वरूप को ही देखे। मेरा ज्ञान असीम है, सारे विश्व को जानने के स्वभाव वाला है। सो असीम, सर्व ज्ञाता के रूप मे अपने स्वरूप को देखो, ज्ञान को ज्ञान से जानो तो प्रभु के स्वरूप का पता पड़ेगा। प्रभु को और और रूपो मे देखने से प्रभु का दर्शन न होगा। यही बात अपनी है। हम अपने को केवल ज्ञान ज्योति रूप देखे, ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव करें, कोई विकल्प न हो, कोई क्लेश न हो, कोई आकुलताये न हो वह आनन्दमय है। अपने आपका अनुभव आनन्दमय ही होता है। अपने ज्ञानस्वरूप का ज्ञान किए बिना यह सारा लोक

भी जान जाये, बड़े-बड़े आविष्कारो को जान जाये, जिन्हे कहते है बड़ी कलाये है, ऐसी बड़ी कलाओ को भी जान जाये, पर एक ज्ञानस्वरूप का अनुभव न किया तो वह सारा जानना व्यर्थ है। ऐसा समझकर ज्ञानमय जो अपना स्वरूप है उस स्वरूप को अनुभवे और अपने को ही आप स्वय ही देखे। यह चीज स्वय की है, प्रिय भी है। गृहस्थावस्था मे दसो राग करने पड़ते है, पुत्रो की याद रखना पड़ता है, धन कमाने की भी कोशिश करना होता है। सब कुछ करते हुए भी अपने स्वरूप का सही भान रहे तो उसे आकुलताये नही सतार्ती। कितनी ही विपदाये आ जाये अपने आपके स्वरूप को दखो, अपने को सारे झझटो से न्यारा, शुद्धमात्र केवल ज्ञानरूप, ऐसा अपने आपको सबसे जुदा विश्वास से लखो, उसमे ही ये सकट दूर हो जाते है। ये प्रभु के दर्शन भी किसलिए किए जाते है ? अपने आपको शुद्ध मार्ग मिले, मुझे क्या करना चाहिए, इन बातो के लिए प्रभु के दर्शन किए जाते है। मोह की बुद्धि करने का तो यह फल है कि जब प्रवृत्ति उन मोहो मे होती है तभी क्लेश प्राप्त होते है। प्रभु ने क्या किया था कि अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जाना था और जानकर इस ही उपयोग मे लग गये थे। विषयो से, मोह से जुदा हो गये थे और इसी ब्रह्मस्वरूप मे रत होकर वे मोक्ष पधारे थे। ऐसा विश्वास निरन्तर रहना चाहिए कि ऐसा कर सके तो ठीक है। तो इससे ही आत्मा झझटो से परे हो जाती है। इसलिए आत्मा के ज्ञानस्वरूप को ही देखकर सुखी होऊ।

।।सुख यहां का द्वितीय भाग समाप्त।।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के कतिपय महत्वपूर्ण प्रकाशन

क्रम	ग्रन्थ का नाम	लागत (रुपयों में)
१	आत्मसम्बोधन	१०
२	सहजानन्द गीता	५
३	अध्यात्मसहस्री	१०
४	सहजानन्द डायरी १९५६	५
५	भागवत धर्म	८
६	समयसार दृष्टान्तमर्म	२
७	मनोहर पद्यावली प्रथम व द्वितीय भाग	३
८	आत्मकीर्तन अर्थ हिन्दी इ०	१
९	वास्तविकता हिन्दी इ०	१
१०	सामायिक पाठ	१
११	अध्यात्मसूत्र मूल	१
१२	एकीभाव स्तोत्र	१
१३	कल्याणमन्दिर स्तोत्र	१
१४	विषापहार स्तोत्र	१
१५	स्वानुभव	१
१६	धर्म	१
१७	आत्म-उपासना	१
१८	समयसार महिमा	१
१९	अध्यात्मरत्नत्रयी	२
२०	समयसार एक्सपो० पूर्वरग	१
२१	सहजानन्द वाणी	१०
२२	समाधितन्त्र सतात्पर्य	३
२३	अध्यात्मभावना	१
२४	मगलतन्त्र सार्थ	१
२५	आत्मपरिचयन	२२
२६	अध्यात्म सूत्र प्रवचन	५
२७	सह० ज्ञानामृत	२
२८	सह० वात्सल्य	३
२९	वस्तुविज्ञानतन्त्र	२
३०	अविरुद्ध निर्णय	१
३१	आत्महिंसा	२
३२	आत्मशत्रु	२
३३	कारण-कार्य-विधान	१
३४	समयसार सप्तदशागी टीका	५०
३५	प्रवचनसार सप्तदशागी टीका	(प्रेस में)
३६	एकीभाव-स्तोत्र प्रवचन	६
३७	धर्म प्रवचन (दश धर्मो पर मार्मिक विवेचन)	१०
३८	प्रवचनसार प्रवचन १-२ भाग (गाथा १ से ५२)	१५
३९	प्रवचनसार प्रवचन ३-५ भाग (गाथा ५३ से ११४)	१५
४०	प्रवचनसार प्रवचन ६-११ भाग	(प्रेस में)
४१	देवपूजा प्रवचन	६
४२	श्रावक षट्कर्म प्रवचन	४
४३	प्रवचनसार प्रवचन सेट	६०
४४	परमात्म प्रकाश भाग १	६
४५	सुख यहाँ	८०
४६	भक्तामरस्तोत्र प्रवचन	५
४७	कष्टों से कैसे छूटें	२
४८	सरल दार्शनिक प्रवचन	२
४९	ज्ञानार्णव प्रवचन सेट	६३

क्रम	ग्रन्थ का नाम	लागत (
५०	आत्मकीर्तन प्रवचन	
५१	सहजपरमात्मतत्व प्रवचन	
५२	सिद्धभक्ति	
५३	शाति भक्ति	
५४	पचगुरुभक्ति	
५५	इष्टोपदेश	(प्रेस
५६	पचास्तिकाय प्रवचन सैट	
५७	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय	
५८	अध्यात्म सहस्री सैट	
५९	परमानन्दस्तोत्र	
६०	स्वरूप सम्बोधन	
६१	पात्रकेशरीस्तोत्र	
६२	द्वात्रिशतिका	
६३	बृहत्स्वयभू स्तोत्र	
६४	रत्न करण्ड श्रावकाचार	२
६५	मगलतन्त्र प्रवचन	
६६	परमात्म आरती प्रवचन	
६७	मोक्षशास्त्र प्रवचन	१०
६८	सरल अध्यात्मिक प्रवचन	१
६९	सहजानन्द वस्तु-तथ्य प्रवचन	
७०	सह० विहार पौरुष प्रवचन	
७१	दर्शनपाहुड	
७२	सूत्रपाहुड	
७३	चारित्र पाहुड	
७४	लिगपाहुड	२
७५	शीलपाहुड	३
७६	भावपाहुड	४०
७७	मोक्ष पाहुड	२५
७८	परीक्षामुखसूत्र प्रवचन (८ पुस्तकों का सैट)	
	प्रमेय कमल मार्तण्ड पर विद्वतापूर्ण प्रवचन	४०
७९	आप्त परीक्षा	७
८०	आप्त मीमासा प्रवचन (अष्ट सहस्री पर प्रवचन ६ पुस्तकों का सैट)	३०
८१	सप्तभगतरगिणी प्रवचन	५
८२	पचाध्यायी प्रवचन (छ पुस्तकों का सेट)	३०
८३	युक्त्यनुशान	५
८४	समस्थानसूत्र सार्थ प्रथम स्कन्ध	२
८५	सहजानन्द साहित्य ज्योति	१६
८६	शिशु धर्मबोध	२
८७	धर्मबोध	३
८८	छहढाला टीका	४
८९	तत्वार्थ सूत्र सक्षिप्त टीका	१०
९०	लघु जीवस्थान चर्चा	३
९१	गुणस्थान दर्पण	३
९२	लघु कर्मस्थान चर्चा	३
९३	कर्मक्षपणदर्पण	२
९४	नयचक्र प्रकाश	१
९५	द्रव्यसग्रह प्रश्नोत्तरी टीका	२०
९६	अध्यात्मसिद्धान्त	३
९७	ज्ञान और विज्ञान	२